

PURCH 1850

॥ श्रीः ॥

सिद्धनित्यनाथप्रणीतः

रसरत्नाकरः ।

(समस्तरसग्रन्थानां शिरोभूषणम्)

माथुरवैश्याऽऽयुर्वेदोद्धारकशालग्रामकृत-
भाषाटीकाविभूषितः ।

स च

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रुतिना

मुद्रयित्वा

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः । ,

संवत् १९६६, शके १८३१.

अस्य सर्वे अधिकाराः १८६७ तमावधिकपञ्चावश २५ राज-
नियमानुगारेण प्रकाशकाधीनाः ।

S
615 ' 537
N 722 113
V. 1

THE ASIATIC SOCIETY
CALCUTTA 700016

App. No. S 3408
Date. 11.7.94

Sl. no. 077651

अनुवादकः—

लालाशालिग्रामजी ।



“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम् प्रेस—मुम्बई.

॥ श्रीः ॥

भूमिका ।

प्रिय मित्रवरो ! यह तो आपको भलीभाँति विदित होगा कि, यह संसार अनेक प्रकारकी विद्याओंका पूर्ण भाण्डागार है, परन्तु आयुर्वेदविद्या ईश्वरने महा अद्भुत और तत्काल चमत्कार दिखानेवाली बनाई है, ऐसा कौन अज्ञानी मूर्ख होगा जिसको इस विद्यासे काम न पड़ता होगा, विचार करके देखा जाय तो कैसाही ज्ञानी, ध्यानी, राजा, महाराजा, योगी, वियोगी क्यों न हो, परन्तु इस संसारमें रहकर, दो चार बार प्रत्येक पुरुषको इस वैद्यक विद्याके जाननेवाले वैद्योंसे अवश्यही काम पड़ता है, क्योंकि यह शरीर आतङ्क भवन है, और इसका मूल पृथ्वी, पावक, आकाश, पानो, और पवन है, इनहीं पाँचों तत्त्वोंसे यह शरीर रचा गया है, इन तत्त्वोंको वैद्य लोग भली भाँति जानते हैं, ऐसे वैद्योंका सदैव तन मन धनसे आदर सत्कार करना चाहिये, क्योंकि वही इस देहके उपकारकर्त्ता और कष्टहर्त्ता हैं, जिनकी कृपादृष्टिसे यह शरीर सदा स्वस्थ रहता है, फिर उनकी समान प्राणदान देनेवाला और कौन है ? इस कारण आयुर्वेदविद्या सर्वोत्तम है ॥

इस विद्याके अनन्त भेद हैं, परन्तु इसमें चार प्रधान हैं, कोप, निदान, निघण्टु और चिकित्सा, उस चिकित्सामें भी चार भेद हैं, दैवी, आसुरी, मानुषी और सिद्धि ॥

रसेन कथितो वैद्यो मानुषो मूलकादिभिः ॥

अधमः शस्त्रदाहाभ्यां सिद्धवैद्यस्तु मांत्रिकः ॥ १ ॥

अर्थ—रसोंके आश्रयसे जो वैद्य लोग चिकित्सा करते हैं, वह वैद्य हैं । जो काष्ठादिक औषधियोंसे उपाय करते हैं, वह मनुष्य चिकित्सक हैं । जो शस्त्रसे अथवा दाहसे प्रयत्न करते हैं, वह अधम भिषक् हैं । और जो यंत्र मंत्रसे उपचार करते हैं, वह सिद्ध अगदङ्कार कहलाते हैं । इन सब प्रमाणोंसे यह रसायनविद्या (रस बनानेकी विधि) सर्वोत्तम और तत्काल फल देने वाली है, इसीलिये इसका नाम दैवी चिकित्सा रक्खा है ॥

रसविद्या परा विद्या त्रैलोक्येऽपि च दुर्लभा ॥

भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात् तस्माज्ज्ञेया गुणान्वितः ॥ १ ॥

अर्थ—रसविद्या अत्यन्त श्रेष्ठ है, और तीनों लोकोंमें भी दुर्लभ है, तथा भुक्ति (भोग) और मुक्ति (मोक्ष) पदार्थ की देने वाली है, इस कारण इस सर्व गुण युक्त रसविद्या को अवश्य सीखना चाहिये, क्योंकि आयुर्वेदमें, रसायनविद्याही मुख्य है ॥

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना ॥

असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठमुच्यते ॥ १ ॥

अर्थ—तत्त्वके जानने वाले वद्यों ने साध्य रोगों के लिये अनेक औषधि कहा हैं, परन्तु असाध्य रोगों के लिये एक औषधि भी नहीं कही, वहां यही कहा (औषधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः) परन्तु रस उन असाध्य रोगों में भी तत्काल फल देता है, इसकारण रस सम्पूर्ण औषधियों से उत्तम है, क्योंकि यह रसायन विद्या शिवजीने बड़े उत्साहसे निर्माण की है ॥

कोई वैद्यवर प्रश्न करै कि रसायन विद्या शिव प्रणीत कैसे है ? सो उसका वृत्तान्त लिखते हैं—

महोदय ! जब ब्रह्मा ने सृष्टि रची और चार वेद अपने हृदय कमल से प्रगट किये, तो विचार किया कि इस संसारमें मनुष्य अनेक प्रकारके रोगों से महा दुःखी होंगे, उनका हाहाकार शब्द सुझसे न सुना जायगा यह समझकर ब्रह्माजीने चारों वेदों का मथनकर आयुर्वेद उत्पन्न किया, उस आयुर्वेदको जगत् हितकारी सर्व रुजहारी जान महा विद्वान् सकल गुण निधान दक्षप्रजापति को अष्टांग सहित आयुर्वेद पढ़ाया, इसके उपरान्त दक्षप्रजापति ने सूर्य के अंश, परम चतुर, देवताओं में श्रेष्ठ अश्विनीकुमारों को परमोदार समझकर आयुर्वेद का उपदेश किया, उन अश्विनीकुमारों ने सम्पूर्ण वैद्यों को विद्वान् बनाने के लिये अपनी रची हुई अश्विनीकुमारसंहिता का सब संसार में प्रचार किया ॥

जब अश्विनीकुमार की संसार में अधिक प्रतिष्ठा हुई और सब देव विचार करने लगे, तब अश्विनीकुमार की यह अद्भुत दशा देख, वीरभद्र के चित्तमें अत्यन्त उत्साह उत्पन्न हुआ कि किसी प्रकार आयुर्वेद पढ़ना चाहिये, जो संसार में मेरी भी प्रतिष्ठा और सत्कार इसी प्रकार हो, यह विचार शिवजीसे आज्ञा ले वीरभद्र ब्रह्मा जीके समीप गये, दण्डवत् प्रणाम करके बोले कि हे प्रजापते ! मेरी इच्छा आयुर्वेद के पठनकी है, अनुग्रह करके मुझको आयुर्वेदका उपदेश कीजिये, क्योंकि आजकल पृथ्वी पर प्राणियों को महाभयंकर रोगों ने प्रस रक्खा है, उनके दूर करनेका कोई उत्तम उपाय बताइये ? ब्रह्मा ने कहा कि हे गणोत्तम ! यह आयुर्वेद विद्या सौम्य पुरुषोंके पढ़नेके लिये है, और आप चञ्चलबुद्धि हैं, आपसे इस विद्याका माधन न होगा, यह विद्या स्थिर बुद्धिवाले को पढ़ानी चाहिये, दूसरे यह विद्या मैं दक्ष को संकल्प कर चुका हूँ, इस लिये यह विद्या मैं तुमको नहीं पढ़ा सकता, ब्रह्माके रुक्ष वचन सुन वीरभद्र के चित्तमें अत्यन्त क्रोध बढ़ा, शरीर से अग्निकी लपटें निकलने लगीं, नेत्र लाल लाल होगये, तब महा कुपित होकर बोला कि अरे चतुरानन ! यह अच्छा नहा किया जो मेरा निरादर किया, इस निरादरका फल तत्काल ले, यह कह उसी समय ब्रह्माका शिर त्रिशूलसे छेदन किया, फिर दक्षकी सभ में जा दक्ष और जितने दक्षके अध्यक्ष थे सबको विध्वंस कर अपना क्रोध शान्त किया, अश्विनीकुमारोंने

कामरत्नतंत्र—सिद्ध नित्यनाथकृत.
नागार्जुनीय—सिद्धनागार्जुनकृत.
पञ्चसायक—कविशेखर ज्योतिरीश्वरकृत.
रसराजशिरोमणि—परशुरामकृत.
रससङ्केतकलिका—चामुण्डकृत
कौतुकचिन्तामणि—प्रतापरुद्रदेवकृत
रसेन्द्रशूरप्रभाव—शूरसेनकृत.
आयुर्वेदरसायन—भोजराजकृत.
सन्निपातकलिका—शम्भुनाथकृत.
क्षेमकौतूहल—क्षेमराजकृत.
सन्निपातकलिका—रुद्रनाथकृत.
गहारसांकुश—रसांकुशकृत.
रससारासूत—रामसेनकृत.
रसवारीधि—माण्डवकृत.
मण्डूकब्राह्मीकल्प—ब्रह्माचार्यकृत.
काकचण्डेश्वरीतंत्र—काकचण्डेश्वरकृत.
रसेन्द्रचिन्तामणि—हुंठनाथकृत.
रससंजीविनी—हरीश्वरकृत

कामरत्नतंत्र—श्रीनाथभट्टकृत.
योगसुधानिधि—बन्दी मिश्रकृत.
रसकपायवैद्यक—वैद्यराजकृत.
रसराजशिरोमणि—रेवणकृत.
रसविद्यारत्न—शिवनन्दन गोस्वामीकृत.
गोरक्षसंहिता—गोरक्षनाथकृत.
आयुर्वेदरसशास्त्र—माधवकृत.
आयुर्वेदसर्वम्ब—भोजराजकृत.
रसराजशंकर—शंकरजीकृत.
चिकित्सासृग—गणेशजीकृत.
रसचन्द्रोदय—चन्द्रसेनकृत.
रसराजमहोदधि—कपालीकृत.
रससर्वेश्वर—वामुदेवकृत.
रसेन्द्रभैरव—भैरवकृत.
मन्थानभैरव—भैरवकृत.
रसेन्द्रभास्कर—सिद्ध भास्करकृत.
रसेन्द्रभाण्डागार—रसेन्द्रकृत.

जब ऐसे ऐसे उत्तम ग्रन्थ बड़े बड़े विद्वान् कवियोंने निर्माण किये तब सब जगत्में रसका प्रचार फैल गया और वैद्यलोग रसोंको मुख्य समझकर रसोंही से सब काम लेने लगे, सब रोगियोंकी और वैद्योंकी जिह्वा पर रसहीरस बस गया, यह चर्चा सहस्रों वर्ष तक रही; जब दैवयोगसे इस भारतवर्षके बुरे दिन आये, यवनोंने हिन्दोस्थान पर चढ़ाईकी उस समय पृथ्वीराजका राज्य था, कई बार तो पृथ्वीराजसे हार मान भाग भाग गये, निदान एकबार धोखा देकर पृथ्वीराजको पकड़ लिया और उसकी आँखोंमें विपकी सलाई फिरवाकर उसको अन्धा करदिया, तब पृथ्वीराजकी पराजय हुई और हिन्दोस्थान पर मुसलमानोंका हंका वजा, तब तो हमारी परमप्रिय, सिद्ध प्रयोजनीय आयुर्वेदीय चिकित्साओंकी और रसोंकी जैसी उन्नति हुई थी वैसेही अवनति हुई, जिन ग्रन्थोंको पण्डितोंने एक एक अक्षर करके बड़े परिश्रमसे लिखा था, उन ग्रन्थोंको यवनोंने छोर २ करके यमुनाके जलमें बहा दिया । उस समय जो औषधियाँ कण्ठाग्र थीं उनके बलसे वे रोगियोंका उपचार करते रहे, जब वे वैद्यलोग मृत्युको प्राप्त हुए तो उनके बाल बच्चे ठेठ मूर्ख रहगये, क्योंकि ग्रन्थ तो प्रथमही लुट लुटा गये थे लिखना पढ़ना कैसे हो सका ? इस कारण आयुर्वेदका विचार और प्रचार सम्पूर्ण छूट गया, जिनको किञ्चित्मात्र भी स्मरण था वह अपने आपको धन्वतरिकी समान मानने लगे और सब क्रिया कर्म त्याग अभिमानकी आगमें जलने लगे, यहां तक आलस्य ने घेरा कि रोगियोंके घरोंका फेरा करना भी छोड़दिया रसोंके बनानेकी सम्पूर्ण विधि भूलगये, रसपारिजात, रसपद्मचन्द्रिका, रसभस्म विधि, रसराजहंस, रसरहस्य, रस-

सुधाकर, रससिद्धान्तसागर, तंत्रोद्धार, इन ग्रन्थोंका तो केवल नामहीनाम रहगया वैद्य लोगोंको यह भी ध्यान न रहा कि यह कैसे ग्रन्थ थे, इनमें कौन कौनसे रसग्रन्थ थे, इनमें कितने श्लोकोंकी संख्या थी और कौन कौन कवि उनके कर्त्ता थे, यह सब परिपाटीही हिन्दोस्थानसे उठ गई, जब वैद्योंहीने औषधि करनी छोड़ दी तो पंसारी विचारे क्यों न भूलते, सब जानते हैं कि मूलहीके अधीन पत्र और फल फूल हैं, जब वैद्योंका सूर्यास्त हुआ और मुसलमानोंकी मुस्तरी (बृहस्पति) चमकी, सब दिल्ली विद्याविहान होगई, तब यूनानी हकीम हिकमत करने लगे, जहां तहां उनहीके शफाखाने खुल गये; बीमार लोग उन्हींमें आने जाने लगे, उन्हीं हकीमोंका आदर सत्कार होनेलगा, गावजबाँ, गुलेबनुफशः, रेशःखतमी, मगजकद्दू, उस्केकद्रस, शर्वतनीलोफर, शर्वतउन्नाव, शर्वत-अंजवार, शर्वतवर्द, शर्वतवज्जरी, शर्वतखसखस, अर्कवादियान, अर्कमकोह, अर्कगुलाब, अर्ककेवड़ा, माजून जवारिश जालीनूस, माजूनऊद, आदि तरहतरहकी माजून बनाने लगे, शीशियोंमें कारुरे आने लगे, उन्हींको देख देखकर रोगोंकी परीक्षा करने लगे, बीमारोंको नुस्खे लिखने लगे, अत्तारोंसे चहारुम ठहराने लगे, अत्तारभी अर्कोंमें पानी और गुलकन्दमें गुड़ मिलाने लगे, हरेक तरह बीमारोंके छूटनेका ढंग लगा दिया, जो कोई इन हकीमोंको अपने घर बुलाता मानो अपनी जानको झाड़ लगाता, जातेही चार रुपये भेटके लेने, आठ आने पालकीके कहारोंको दिलवाने, चार आते नौकरके लिये बतलाने, कमसे कम चार छः आनेका नुस्खा, जब बीमार पर यह मार पड़ी तो चार दिनके जीने वालेको एक दिन भी दुशवार हो गया, इसी प्रकार जब उनका सब छूट लिया और वर्तन भांडे तक बिकवादिये तो भी उन निर्दई हकीमोंको दया न आती थी, तब ऐसा अन्याय करने लगे और अपने आपको सबसे बड़ा समझने लगे, जहाँ जायँ वहाँ चहार तुल्म, मगज-बादाम, शर्वतउन्नावहीकी प्रशंसा करै, घर घर और दूकान दूकान यूनानीही दवाइयोंकी चर्चा थी, सबकी जवानसे तिमर हिन्दी और नीलोफरही निकलता था ।

धन्य है उस जगदाधार निर्विकार परमात्माको, एक दिन तो वह था कि घर घर मिश्रांनी ही वैद्यककी चर्चा थी, आज एक दिन वह है प्रत्येक मनुष्यके मुखसे स्वप्नमें भी अर्कगुलाब और गिलेअरमनीकी ही प्रशंसा सुननेमें आती है । देखिये थोड़े ही दिनोंमें, क्यासे क्या होगया, हाय ! जहाँ रस और आसव बनते थे वहाँ अर्क और माजूमें बनने लगीं, जिन रोगियोंको वैद्य लोग दो रत्ती नाराच अथवा पांच बिन्दु घृतबिन्दुसे विरेचन कराते थे उसके बदलेमें चार तोले अमलतास, दो तोले तुरंजबीन, छः मासे सौंफ, छः मासे गुलसुखै, छः मासे गावजबाँ, छः मासे हड़की बकली, छः मासे निसोत, छः मासे सनाय, दश दाने आलूबुखारे, दश दाने मुनक्का, तीन तोले इमली, चार तोले गुलकन्द, दो तोले खभीरा वनुफशः, पाव भर अर्क बादियान, पाव भर अर्क मकोह, पाव भर गुलाब, जब यह तीन पाव घुला हुआ रबड़ा रोगीके मुखके सन्मुख आया, उसी समय रोगीके प्राण सूख गये, अमलतासकी वास, सनायकी कषाय, हड़की दुर्गन्ध आतेही कहने लगा कि हे परमेश्वर ! ऐसी औषधि पीनेसे तो हमारे प्राणहीं ले ले तो अच्छा है, जब उनके

विलाप भारतवासी वैद्योंकी सन्तानसे न सुनेगये तो सबने परस्पर मिलकर सम्मति की और देश देशान्तरोंमें जाकर बड़े परिश्रमसे अनुसरण कर कराके रसों के ग्रन्थ लाये और फिर उन भिषक्पुत्रोंने अधिक परिश्रम करके वैद्यक विद्या पढ़ी और रसरूपी भण्डार खोल डाले और कहने लगे कि हमारी आपधियोंके सामने इन हकीमोंकी औषधि किञ्चित्मात्र भी फलदायक नहीं है, तो भी यह मिथ्याभिमानी हमारे सन्मुख हमारे आयुर्वेदकी निन्दा करते हैं, अब इनको नीचा दिखाना चाहिये, जो यह बारम्बार अहंकार न करें, और हारमान अभिमान छोड़ दें, यह विचार उनमेंसे पांच चार वैद्यपुत्रोंने मिल औषधालय खोला और रोगियोंको रस देना आरम्भ किया, तब तो यूनानी और ईरानी जो बड़े बड़े अभिमानी और लासानी हकीम थे सब कहानी भूल गये, अत्तारोंसे चहारूमखानी और झूठी बातें बनानी तो सी कोस गईं उनको जान बचानी कठिन होगई और जो अत्तार पानीके दाम उठाते थे पैसेकी दवाके आठ आने बतलाते थे और तबीबोंके घर बैठे चहारूम हिस्सा पान छाली पहुंचाते थे वह मिसरानी वैद्योंके सामने सब गज्जे जाते रहे । यूनानी हकीमोंके अन्याय, रसोंके दर्शन करतेही जहां तहां गुप्त होगये, और घर घर रसोंकीही चर्चा होने लगी, जो वर्षोंके जीर्णज्वरवाले थे उनके ज्वर रसोंके खाते ही जाते रहे, मिसरानी वैद्योंके भाग्य खुले और उनका सुयश मार्त्तण्ड खण्ड खण्डमें प्रकाश करने लगा, जो अत्तार पानीके दाम उठाते थे उनकी तो नानी मरगई और सब घमण्ड खण्ड खण्ड होगया । जबसे इस देशमें परम सुखदानी विकटोरिया महारानीका राज्य हुआ तबसे गवर्नमेण्टकी ओरसे आयुर्वेदके पढ़ानेके लिये आयुर्वेदीय पाठशालायें बनाकर आयुर्वेद पढ़ाना आरम्भ कियागया, और देश देशान्तरोंसे औपधियोंकी लता, द्रुम, वेलि मैंगामैंगा कर औषधालयोंके निकट बाग लगादिये गये कि, विद्यार्थी लोग रातदिन देखा करें, उन्हीं बागोंमें रसभवन बनाये जिनमें अनेक प्रकारके यन्त्र और उनकी क्रियाके सिखाने वाले वैद्यलोग उनमें नौकर रखदिये, विद्यार्थियोंको इतना उपकार किया कि लेखनी बारम्बार विचार करती है कि क्या लिखूं ? निदान हारमान मनमारकर असमर्थ हो रहजाती है, जब आयुर्वेदीय रसोंके ग्रन्थ बहुत छपने लगे और वैद्यलोग अपने नामके नवान्न ग्रन्थ भी निर्माण करने लगे, ऐसा श्रेष्ठ समय देख, वैश्यवंश उजागर, सवर्गुण आगर, गोब्राह्मणहितकारी, सत्यव्रतधारी, पूर्ण सुखरासी सुम्बई पत्तन निवासी-सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासने बड़े उत्साहके साथ रसाभिलाषी चातकोकी तृषा बुझानेके लिये स्वातिवर्पाक्षी रस ग्रन्थोंको सहस्रों रुपया व्ययकरके देश देशान्तरोंसे मैंगाया और उन्हीं रसग्रन्थोंमें अपना तन मन धन समर्पण कर दिया, कि जिससे संसारमें सुन्दर रस बना रहे, और कवियोंसे उनके भाषा तिलक कराये कि, जिनसे जगत्का उपकार हो, फिर उनको अपने निज यंत्रालयमें छापकर प्रसिद्ध किया, उसी अवसरमें मेरे पास कृपापत्र भेजा कि रसरत्नाकरकी भाषाटीका लिखो कि, जिससे सर्वसाधारणका उपकार हो, और रोगीजनोंको उपयोगी हो, भाषा ऐसी सरल और मनोहर हो जो प्रत्येक

मनुष्यके मनको मोहित कर ले, सेठजीका कृपापत्र देख भेरे चित्तमें बड़ा उत्साह बढ़ा, और उनकी आज्ञानुसार रसरत्नाकरका अनुवाद करना आरम्भ किया, जब परमेश्वरकी कृपासे यह टीका पूर्ण हुई तो उसका नाम (रसप्रदीपिका) रक्खा और वैद्यजनोंके उपकारार्थ इस ग्रन्थको श्रीमान् सर्व गुण निधान वैश्यवंशावतंस पूर्णयशोगार परमोदार, कविजन हितकारी, सर्व विद्या विहारी, मुम्बई पत्तन निवासी-हरि पद विश्वासी, श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको पूर्णगुणग्राम सर्व, सुलक्षणधाम जानकर मैंने यह (रसरत्नाकर) (रस प्रदीपिका) टीका सहित समर्पण किया, उनको कोटि कोटि धन्यवाद है कि जिन्होंने अपना धनव्यय करके भेरे रचे हुए अनेक ग्रन्थ और यह 'रसरत्नाकर' सटीक अपने जगत्प्रसिद्ध "श्रीवैकटेश्वर" यंत्रालयमें मुद्रित करके मुझको कृतार्थ किया, सब सज्जनोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि इस रसरत्नाकरके "रसप्रदीपिका" तिलकको देखकर भेरा परिश्रम सफल करें, और जहाँ कहीं अशुद्धि देखें तो क्षमा करें, और मुझपर कृपादृष्टि करके सूचित करें जिससे द्वितीयावृत्तिमें शुद्ध कर दिया जाय, मैं अपनी रचित संकलित और अनुवादित पुस्तकोंका भी सूचीपत्र विद्यानुरागियोंके निमित्त लिखे देता हूँ कि, स्मरण रहे।

शालिग्रामनिघण्टुभूषण ।

भाषाटीका सहित, वैद्यगण ! इसमें प्रत्येक औषधिके संस्कृत अनेक नाम, फिर हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, तैलंगी, कर्णाटकी, तामिली, औत्कली, द्राविडी, ब्राह्मी, लुसाई, दक्षिणी, सिन्धी, अंग्रेजी, लैटिन, फारसी, अरबी, पञ्जाबी, तुर्की और यूनानी इत्यादि और भी भाषा लिखी हैं, उसके पश्चात् अनेक मतान्तरोंस गुणागुण लक्षण, आकृति, उत्पत्ति और विवर्णादि लिखा है, इस प्रकार इसके पन्नीस २५ वर्ग हैं. कर्पूरादि वर्ग इस ग्रन्थमें प्रथम लिखा है, इस कारण इस ग्रन्थका नाम कर्पूरादि निघण्टु भी है, अन्तमें परिशिष्टभाग भी लिखा है, उसमें अनेक यूनानी और अंग्रेजी औषधियें पूर्वोक्त रीतिसे लिखी हैं, आर औषधियोंके चित्रभी दिये हैं, हमको पूर्णविश्वास है कि जो विषय इस ग्रन्थमें हैं वह और ग्रन्थोंमें न होंगे, और अन्य ग्रन्थोंके सम्पूर्ण विषय इसमें विद्यमान हैं, यह ग्रन्थ १४०० पृष्ठों पूर्ण हुआ है, इस ग्रन्थके बनानेमें अनेक निघण्टु, कोप और संहितादि पुस्तकोंसे सहायता ली गई है, प्रमाणके लिये श्लोकके अन्तमें ग्रन्थका नाम भी लिख दिया है मूल्य ८) रुपये हैं ॥

शालिग्रामौषधिशब्दसागर ।

भाषाटीका सहित, इसमें अकारादि क्रमसे वैद्यकके सम्पूर्ण शब्द संस्कृतमें लिखे हैं, फिर उनकी व्याख्या और हिन्दी भाषामें उनका अर्थ भी लिखा है, ऐसा उत्तम कोप आजतक दूसरा कहीं नहीं छपा मूल्य २) रुपये हैं ।

राजवल्लभनिघण्टु ।

भाषाटीका सहित, यह ग्रन्थ अति प्राचीन है, इसमें छः परिच्छेद हैं । पहिलेमें प्रभातकालके, दूसरेमें दुपहरसे पहिलेके, तीसरेमें दुपहरके, चौथेमें तीसरे पहरके, पांचवेंमें रात्रिमें होनेवाले कार्य और छठेमें सम्पूर्ण औषधियोंके गुण लिखे हैं, यह ग्रन्थ भी आज कल अपने रंग डंगका निराला है और बहुतसी आयुर्वेदीय पाठशालाओंमें पढ़ाया जाता है । मूल्य १॥) रुपया है ।

अर्कप्रकाश ।

भाषाटीकासहित (श्रीमन्महाराजाधिराज लंकेश्वर रावणाचार्य्य प्रणीत) इस ग्रन्थमें महात्मा रावणाचार्य्यने सब प्रकारकी औषधियोंके अर्क निकालनेकी विधि और सम्पूर्ण रोगोंमें केवल अर्कही प्रधान समझ कर उसहीसे चिकित्सा करना लिखा है । मूल्य ?) रुपैया है ।

वोपदेवशतक—वैद्यक ।

भाषानुवादसहित, इस ग्रन्थमें अनेक बार परीक्षित चूर्ण, गुटिका, अवलह, तेल, घृत और काथ, उत्तम ललित सौ १०० श्लोकोंमें भिषक्शिरोमणि वोपदेवने निर्माण किये हैं । मूल्य १=) आने हैं ।

द्रव्यगुणशतक ।

भाषाटीका सहित, इस छोटेसे निघण्टुमें श्रीमान् पण्डित त्रिमलभट्टने सम्पूर्ण औषधियोंके गुण १०० केवल सौही मनोहर श्लोकोंमें वर्णन किये हैं, जो काम चार रुपयेकी पुस्तक देती है वह काम यह चार आनेकी पुस्तक देती है । मूल्य १) आने हैं ।

वंगसेन ।

भिषग्वर्य्य गदाधरतनय वंगसेन विरचित ।

यह ग्रन्थ निखिल वैद्यक ग्रन्थोंका मुकुटमणि और वैद्योंका सिद्धमन्त्र है । और यही एक वैद्यकका ग्रन्थ है कि जिसके संग्रह तथा विचार करनेसे फिर दूसरे ग्रन्थोंके लिये नहीं दौड़ना पड़ता, इसमें निदान, चिकित्सा आदि विषय बड़ा उत्तमता सरलता तथा विस्तरतासे वर्णित हैं । और अनेकानेक क्या प्रायः सभी रोगोंके लक्षण लिख साथही चिकित्सा भी लिख दी गई है । कहांतक कहें नानाप्रकारके घृत, तैल, मोदक वटी, चूर्ण, नस्य, आसव, काथ, अवलेह, धूप, रसायन आदि औषधोंके उत्तम उत्तम प्रकार वर्णित हैं जिनसे कि अनेक रोग अच्छे होते हैं और रोगियोंकी सुसाध्यता, कष्ट साध्यता, असाध्यता आदिका लक्षणोंसे भली मीति निरूपण है, मूत्रों यह कि जो कार्य अन्य ग्रन्थोंसे बहुत छिष्टतासे भी नहीं साध्य है वह इससे बहुतही सुगमतासे वैद्य कर सकते हैं और जिन रोगोंका निदान तथा चिकित्सा किसी ग्रन्थमें नहीं मिलती उसकी इसमें उत्तमता तथा विस्तरपूर्वक मिलती है और इसके सब विषय आर्यग्रन्थोंके आधारसे हैं । इसका भाषानुवाद भी मूलके अनुरूपही है, जैसा सरल मूलानुसार होना चाहिये उसमें कसर नहीं । इस ग्रन्थका बाह्यांग भी ऐसा सजाया गया है कि, चार रंगोंमें खूब-सूत विलायती बार्डरसे टैटल बना है, टीकाकारका दर्शनीय चित्र भी साथ है । तथा विलायती मुलायम कपड़ेका बॉथडिंग भी देखने योग्य है और सोनेके अक्षरोंसे इसकी द्विगुणित शोभा होगई है । इस सर्वांगसुन्दर ग्रन्थको अवश्य संग्रह करनेकी शिफारस न करके सबके लाभके लिये सूचना की जाती है । इसके सिर्फ देखनेसेही विचित्र प्रसन्न होगा तिसपर भी मूल्य बहुत कम रक्खा है ८) २०

शुकसागर ।

अर्थात् श्रीमद्भागवत बारह स्कन्धकी भाषा, यह पुस्तक अत्यन्त मनोरञ्जन और भयभञ्जन है, और सरल हिन्दी भाषामें लिखी गई है, स्थल स्थलपर दोहे, कवित्त, चौपाई, छन्द, भजन और सबैये आदिभी डाले गये हैं, शंका समाधानभी उचित स्थानोंपर किया है, और उपयोगी दृष्टान्त भी उचित स्थलोंपर लगाये गये हैं, इस पुस्तकको मुक्तिकी मूल समझना चाहिये, अक्षर भी इतने मोटे हैं, कि जिनके पढ़ने से नेत्रोंकी ज्योति अधिक होती है, मूल्य १० रुपये हैं । मझोला ग्लेज ८) रुपये रफ ७) ६० बारीख छपता है ।

सुदामाचरित्र ।

अत्यन्त ललित भाषा दोहे, चौपाई, छन्दोंमें लिखी गई है । मूल्य ३) आने हैं ।

मयूरध्वज नाटक ।

यह नाटक भक्तिका भण्डार और सब प्रकार, रौद्र, वीर, करुणा और सत्यतासे परिपूर्ण, सुन्दर सरल भाषा, बीच बीचमें दोहे, चौपाई, कवित्तोंसे जटित, गुणियोंके देखने योग्य है । मूल्य ॥) आठ आने हैं ॥

माधवनल कामकन्दला नाटक ।

इस नाटकमें कामकन्दला वेदया और माधवानल ब्राह्मण का अपूर्वरीति से पूर्ण प्रेम झलकाया है, इसकी भाषा परम मनोहर और अत्यन्त सरल है और बीच बीच में दोहे, चौपाई, कवित्त इसरीतिसे लगाये हैं मानो रत्न जड़ दिये हैं । मूल्य ॥) बारह आने हैं ॥

अभिमन्यु वध नाटक ।

यह ऐसा मनोहर और चित्ताकर्षण नाटक है कि आजतक न सुना होगा न देखा होगा, एक तो रसीली कविता, दूसरे महाभारत का युद्ध, पढ़तेही चित्त पर मोहनी सी डाल देता है और यही जी चाहता है कि इसको विना पूरा किये कोई काम न करें, जिन्होंने हरिश्चन्द्र नाटक पढ़ा है उनको तो अवश्यही एक बार पढ़ना चाहिये, सुन्दर सरलभाषा, अत्यन्त स्पष्ट अक्षर, रंगीन जिल्द, मूल्य ॥) है ॥

इश्कचमन ।

(बिसमिल परीवारका स्वांग) इसमें बिसमिल शाहजादे और परीवार शाह जादीकी सखी प्रीति उर्दू भाषाके चौबोलोंमें दिखाई है । मूल्य ॥) आने हैं ॥

गोपीवियोगकी बारहखड़ी ।

परमोत्तम है । मूल्य २) आने हैं ॥

मार्कण्डेयपुराण ।

भाषानुवादसहित ६)

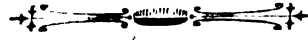
पुस्तक मिलनेका पता—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम् प्रेस—मुम्बई.

॥ श्रीः ॥

अथ रसरत्नाकरविषयाऽनुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ग्रन्थकारोक्त मंगलाचरण...	१	तप्तखरल वर्णन ...	८
टीकाकारोक्त मंगलाचरण ...	१	श्रीखण्डादिके रससेपारेका शोधन ...	९
रससाधनका उपाय ...	२	घीकारादि औषधियोंसे पारेकाशोधन ...	९
पञ्चखण्डशास्त्रका वर्णन ...	२	सिंगरफूसेपारेको निकालनेकी विधि ...	९
मृतकपारेके गुण ...	२	शुद्धपारेके मारनेमें मूलिका वर्णन ...	१०
मूर्छितपारेके गुण ...	२	अन्यऔषधियोंसे पारेका मारण ...	११
बद्धपारेके गुण ...	३	गंधकके तैलादिकसे पारेका मारण ...	११
पारेकी उपासनाका फल ...	३	श्वेतादि औषधियोंसे पारेका मारण ...	१२
निर्दोषपारेके गुण ...	३	देवदाल्यादि औषधियोंसे पारेका मारण ...	१२
पारेके सेवन करनेका फल ...	३	कटूमरादि औषधियोंसे पारेका मारण ...	१२
पारेके प्रयोगोंकी अल्पमात्राका वर्णन ...	३	अपामार्गादि औषधियोंसे पारेका मारण ...	१२
पारेकी ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसंज्ञा...	३	कटुतुम्ब्यादि औषधियोंसे पारेका मारण ...	१३
पारेकी विशेष प्रशंसा ...	३	वर्तीक्रियासे पारेके मारनेकी विधि ...	१३
सर्वऔषधियोंमें पारेकी प्रधानता ...	३	पुटपाकसे पारेके मारनेकी विधि ...	१३
अन्यग्रन्थोंसे रसरत्नाकरकी श्रेष्ठता	४	पारेके मारनेमें वज्रमूपा ...	१४
पारेके परोपकारका वर्णन ...	५	पारेकीचार प्रकारकी भस्म ...	१४
पारा माताकीसमान हितकारी है...	५	इति द्वितीयोपदेशः समाप्तः ।	
योगमुक्तावलिकथित रस रत्नाकरकी प्रशंसा ...	५	जारणपूर्वक पारेका मारण ...	१५
विनाशास्त्रार्थजाने रसकेप्रयोग करने-वाले वैद्यको यमकी समान जाने	६	मुखकथन ...	१५
पारेके आठदोष और उनके उपद्रव	६	मुखयुक्तपारेकी भस्म करना ...	१५
निर्दोषऔर दोषयुक्त पारेके गुणदोष	६	निर्मुख पारेकी भस्म ...	१६
शोधनार्थ पारेकेलेनेका प्रमाण ...	६	विड वर्णन...	१६
पारेके संस्कारमें अघोरमंत्रका वर्णन	७	पारे और सुवर्णादिकोंको जारणपूर्वक मारण ...	१७
इति प्रथमोपदेशः समाप्तः ।		कुम्भीमूलादि धातुओंसे पारेको मारण ...	१७
रसयुक्ति कथन ...	७	गोघृतादि औषधियोंसे पारेको मारण ...	१७
वैद्यके सिद्ध और प्रशंसनीयहोनेका कारण ...	७	कर्काटादि औषधियोंसे पारेको मारण ...	१८
पारेकेआठदोष दूर करनेकी औषधि	८	गन्धककेसाथनियामकद्रव्योंसे पारेकी भस्मकरनेकी विधि ...	१८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सर्पाक्षीआदि नियामक द्रव्य ...	१९	गन्धक शुद्धि ...	३०
अन्यऔषधियोंसे पारेकीभस्म करना ...	२०	शुद्धगन्धकके गुण ...	३०
पारेकी भस्मकी पूर्ण परीक्षा ...	२०	घी दूधसे गन्धकका शोधन ...	३०
मूलिकासे मारे हुये पारेके गुण ...	२१	वज्रमारण ...	३१
इति तृतीयोपदेशः समाप्तः ।		दोलायंत्र द्वारा वज्रकी भस्म ...	३१
मेघनादादि औषधियोंसे पारेको मूर्छित- करना ...	२१	हरितालके योगसे वज्रकी भस्म ...	३१
वालुकायंत्रमें पारेके पकानेकी विधि ...	२२	अशुद्धहीरेके दोष ...	३२
भूधरयंत्रमें पारेकेपकानेकी विधि... ..	२२	वर्णोंके भेदसे हीरेकेचारभेद और उनके भिन्नभिन्न प्रयोग ...	३२
रोलायंत्रमेंतुपाभिद्वारा पारेको पकाना ...	२२	स्त्री पुरुष और नपुंसक हीरेके लक्षण गुण और प्रयोग ...	३२
तांबेकेसम्पुटमें पारेकी भस्मकरनेकी विधि ...	२३	हीरेका शोधन ...	३३
पारेको मूर्छितकरनेमें अन्धकारमूपा ...	२३	ब्राह्मणहीरेका मारण ...	३४
पारेको मूर्छित करनेकेलिये लवण यंत्रका- वर्णन ..	२४	क्षत्रियहीरेका मारण ...	३४
स्थालीसम्पुटमें पारेकीमूर्छा ...	२४	वैश्यजातिके हीरेका मारण ...	३४
पारेको मूर्छितकरनेकेलिये भूधरयंत्र ...	२५	शूद्रजातिके हीरेका मारण ...	३४
रसवन्धनप्रणाली ...	२५	स्त्रीजातिके हीरेका मारण ...	३४
वैक्रान्त बद्धपारा ...	२६	नपुंसक जातिके हीरेका मारण ...	३४
गन्धक बद्धपारा ...	२६	हीरेका विशेषमारण ...	३५
मूर्छितपारेके लक्षण ...	२७	हीरेकी भस्मकेगुण ...	३५
मूर्छितपारेके गुण ...	२८	वैक्रान्त शोधन मारणविधि ...	३६
दीपिका ...	२८	उत्तम भस्मकेगुण ...	३६
मूर्छितपारेके विशेषगुण ...	२८	इति पंचमोपदेशः समाप्तः ।	
पारेकीभस्म रखनेके पात्र ...	२८	अभ्रकशोधन मारण विधि ...	३७
पारेकेसेवन करनेकी गुणावली ...	२८	अशुद्ध अभ्रकके दोष ...	३७
पारेकी गुणसंख्या ...	२८	कच्चे अभ्रकके दोष ...	३७
देवी, मानुषी और राक्षसी चिकित्सा ...	२९	वर्णोंकेभेदसे अभ्रकके चारभेद ...	३७
इति चतुर्थोपदेशः समाप्तः ।		पिनाकादि जातिकेभेदसे अभ्रकके चारभेद ...	३७
उपरस शोधन मारण ...	२९	पिनाक अभ्रकके लक्षण ...	३७
उपरसोंके नाम ...	२९	दर्दुर अभ्रकके लक्षण ...	३७
उपरसशोधन मारणविधि ...	३०	नागाभ्रकके लक्षण ...	३७
अशुद्ध गन्धकके दोष...	३०	वज्राभ्रकके लक्षण ...	३७
		धान्याभ्रकके बनानेकी विधि ...	३८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
धान्याभ्रकके मारणकी विधि ...	३८	मृगेका शोधन ...	४७
निश्वेद्राभ्रकवनानेकी विधि ...	३९	बैडूर्यादि आठप्रकारकी मणियोंका शोधन...	४७
अभ्रकके चूर्णकेगुण ...	३९	मोतियोंका शोधन ...	४७
अभ्रककी भस्मवनानेकी विधि ...	३९	मोतियोंकी मारणविधि ...	४७
मृताभ्रकको अमृतकरना ...	४२	शंखका शोधन ...	४८
अभ्रककी भस्मको अनुपानद्वारासेवन और सर्व रोगनाशकर्ताका वर्णन	४२	नीलाञ्जनका शोधन ...	४८
मृताभ्रमके गुण ...	४२	शिलाजीतका शोधन ...	४८
इति पद्योपदेशः समाप्तः ।		सिंगरफका शोधन ...	४८
हरिताल शोधन ...	४३	सबप्रकारके उपरसोंका शोधन ...	४८
अशुद्ध हरितालके दोष ...	४३	उपरसोंके सत्व निकालनेकी विधि	४९
पेठे आदिके रसमें हरिताल शोधन	४३	गूगलादिके योगसे धान्याभ्रकका सत्त्वनिकालना ...	४९
शोधित हरितालके गुण ...	४३	लाक्षादि योगसे हरितालका सत्त्व-निकालना ...	४९
मैनशिलकी शुद्धि ...	४४	मैनशिलका सत्त्वनिकालना ...	५०
अशुद्ध मैनशिलके दोष ...	४४	सोनामाखीका सत्त्वनिकालना ...	५०
शुद्धमैनशिलकेगुण ...	४४	इति सप्तमोपदेशः समाप्तः ।	
खपरिया शोधन ...	४५	सबप्रकारके लोहका शोधनमारण...	५१
नरमूत्र और गोमूत्रसे खपरियाको शुद्ध-करना ...	४५	लोह और उपलोहके नाम ...	५१
तूतिया शोधन ...	४५	सबप्रकारके लोहेकी शुद्धि ...	५१
बिलावआदिकी विष्टामें तूतिये और नीलाथोथेका शोधन ...	४५	सबप्रकारके लोहेका मारण ...	५१
रूपामाखी शोधन ...	४५	अशुद्ध सुवर्णके दोष ...	५२
केलेआदिमें रूपामाखी शोधन ...	४५	सुवर्ण शोधन ...	५२
सोनामाखी शोधन ...	४५	सुवर्ण, रूपा, तामा, शीशा, बंग, और तीनोंप्रकारके लोहोंको एकएक धातुसे भस्म करना ...	५२
अशुद्धसोनामाखीके दोष ...	४५	सुवर्णका शोधन ...	५३
सैन्धवादिसे सोनामाखी शोधन ...	४६	स्वर्णकी भस्मके गुण ...	५४
किसप्रकारकी सोनामाखी मारण योग्य है...	४६	रूपा शोधन ...	५५
बृहद्वती सोनामाखीके लक्षण ...	४६	अशुद्ध रूपेके दोष ...	५५
सम्पूर्ण उपरसोंका साधारण रीतिसे शोधन ...	४७	मालकांगनी आदि तेलसे चाँदीकी भस्मकरनी ...	५६
अशुद्ध उपरस सेवनकरनेके दोष...	४७	पारदादि योगसे चाँदीकी भस्म करनी ...	५६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
चाँदीकी भस्मके गुण ...	५६	दूर्वादिके रससे गजपुटमें लोहेका	
ताम्र शोधन मारण ...	५७	मारण ...	६८
अपक्व ताँबेके दोष ...	५७	पियावासादिके पत्तोंके रससे तीन	
गोमूत्र द्वारा ताँबेका शोधन ...	५७	प्रकारकी लोहेकी भस्म करनी	६८
पारे जम्भीरी आदिसे ताँबेकी भस्म		माक्षिकादिके योगसे लोहेकी भस्म	६८
करना ...	५८	कुचलेके योगसे लोहेकी भस्म ...	६९
ताँबेकी भस्मके गुण ...	५९	मतान्तर	
शीशेका शोधन ...	६१	मधुधृतादिसे लोहेका मारण ...	७१
अपक्व शीशे और बगक दोष ...	६१	गन्धकादिके योगसे लोहेकी शुद्धि	७१
हरिद्रादि योगसे शीशा शोधन ...	६१	सिद्धमतसे लोहेका मारण ...	७१
खपरियाके योगसे शीशेकी भस्म		पारदादि योगसे लोहेका मारण ...	७१
करना ...	६२	लोहेकी भस्मके गुण ...	७२
शीशेकी भस्मके गुण ...	६२	मृतक लोहेको अमृत करना ...	७२
बंग मारण ...	६३	गुडके साथ लोहेकी भस्मके गुण ...	७३
माक्षिकादियोगसे बंगका मारण ...	६३	घृतके साथ लोहेकी भस्मके गुण...	७३
बंगकी भस्मके गुण ...	६४	लोह सेवन करनेका मंत्र	७३
इति अष्टमोपदेशः समाप्तः ।		लोहेकी भस्मके गुण ...	७३
कान्तलोह शोधन मारण ...	६५	उपलोह शोधन और मारण ...	७३
अशुद्ध और अपक्व लोहेके दोष ...	६५	कौंसी पीतलका शोधन मारण ...	७३
कान्तलोहके लक्षण ...	६५	पीतल कौंसीकी भस्मके गुण ...	७४
श्रेष्ठकान्ति लोहके लक्षण ...	६५	मण्डूर शोधन ...	७४
कान्ति लोहेकी भस्मके गुण ...	६६	मण्डूर किसको कहते हैं ...	७४
सब प्रकारके लोहेकी शोधन विधि	६६	मण्डूरादिके गुण ...	७४
रक्तमालादिसे लोहेके सम्पूर्ण दोष		कान्ति लोहेकी गुणसंख्या ...	७४
दूर करना ...	६६	इति नवमोपदेशः समाप्तः ।	
लोह कल्पके गुण ...	६६	अनेक प्रकारके तैल पातन ...	७५
कैसा लोहामारण कर्ममें लेना योग्यहै	६६	सूर्यपाक, अग्निपाक और यंत्रपाक	
लोह मर्दनमें मंत्र ...	६६	द्वारा तैल निकालनेकी विधि ...	७५
लोह मारणमें बलिदान मंत्र ...	६६	घट्टेके बीजोंका तैल निकालना...	७५
सबप्रकारके लोहोंका मारण ...	६६	सहजनेके बीजोंका तैल निकालना	७५
स्त्रीके दूध आदिसे लोहेका मारण	६७	कौआठोड़ी आदिका तैल निकाल	७५
अर्जुनकी छालादिसे लोहेका मारण	६७	कड़वी तौबीके बीजोंका तैल निका	७५
इन्तीके पत्रादिसे लोहेका मारण	६७	पीपलके दानोंका तैल निकालना	७६
इमलीके पत्रादिसे लोहेका मारण	६८		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
कान्त पाखाण बीजोंका तेल ...	७६	सुहागोंके योगसे विष मारण ...	८२
चौटली इत्यादिका तेल ...	७६	जंगम विषोंमें श्रेष्ठता और उसके	
अंडी आदिका तेल निकालना ...	७६	गुण	८२
बेलके बीजोंका तेल ...	७६	सांपके विषकोवीर्य मुक्त करनेकी	...
बालोंका तेल निकालना ...	७६	विधि	८३
अखरोटका तेल निकालना ...	७६	विष मात्रासे अधिक भक्षणकी शान्ति	८३
सबप्रकारके बीजोंका तेल ...	७७	विषके प्रयोग	८३
पाताल यंत्रसे तेल निकालना ...	७७	जयावटी	८३
गर्भयंत्र वंशादिका तेल निकालना	७७	योगवाहिका वटी	८३
अन्यमूलिका विधि वर्णन ...	७८	जंगम विषके कर्म	८३
वत्सनाभविषके गुण	७८	स्थायर विषके कर्म	८३
उत्तम विषके लक्षण	७८	चिह्नित्वा विना जानेविषखानेकी	
वत्सनाभ विषके ग्रहण करनेका		निन्दा विषको निर्विषकरनेकी	
समय	७८	विधि	८३
विषके रखनेका स्थान...	७९	विष अभिमंत्रित करनेका मंत्र ...	८३
विषकोपारद, अभ्रक और लोहेकी		पित्तकी शुद्धि	८४
समता	७९	पित्त शोधन विधि	८४
विषकी मात्रा	७९	शिलाजीत शोधन	८४
विषसेवन करने योग्य मनुष्य ...	७९	शिलाजीतकी उत्पत्ति... ..	८४
विषभक्षण करनेका नियम ...	७९	शिलाजीतके लक्षण	८४
शिष्यके निश्चय करनेकेलिये प्रथम		शिलाजीतके गुण	८४
गुरुको विष भक्षण करना चाहिये	७९	जिनजिन धातुओंसे शिलाजीत निकलती	
विष मर्दन करनेका मंत्र	७९	है उनका वर्णन	८४
अन्य द्रव्योंके साथ विष मिलानेका		खानेकी खानसे उत्पन्न हुए शिलाजी-	
मंत्र	७९	तके गुण लक्षण	८४
आठप्रकारके विष व्यवहारमें लेने	८०	चौंटीकी खानसे उत्पन्न हुए शिला-	
दश प्रकारके विष व्यवहारमें नहीं		जीतके गुण लक्षण... ..	८४
लेने	८०	तांबेकी खानसे उत्पन्न हुए शिला-	
विषकी जाति और प्रकार भेद ...	८०	जीतके लक्षण गुण... ..	८४
ब्राह्मण विषके लक्षण और गुण ...	८१	लोहेकी खानसे उत्पन्न हुए शिला-	
क्षत्रिय विषके लक्षण और गुण ...	८१	जीतके गुण लक्षण... ..	८४
वैश्य विषके लक्षण और गुण ...	८१	लोहेकी खानसे उत्पन्न हुए शिला-	
शूद्र विषके लक्षण और गुण ...	८१	जीतको सबमें श्रेष्ठता	८४
चारों प्रकारके विषोंकी परीक्षा ...	८१	चारोंप्रकारके शिलाजीतके गुण ...	८५

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
शिलाजीतकी परीक्षा ...	८५	अनुक्त रोगोंकी चिकित्सा	९३
शिलाजीतकी शुद्धि ...	८५	वातज रोगोंकी शान्ति ...	९३
दग्धहीरेकी शुद्धि ...	८७	कुपित पित्तके दोष ...	९३
गूगलकी उत्पत्ति ...	८७	मलके लक्षण ...	९३
उत्तम गूगलके लक्षण ...	८७	पापके लक्षण ...	९३
गूगलके गुण ...	८७	ज्वरादिक रोगोंमें भिन्नभिन्न दोषोंके चिह्न ...	९४
गूगलकी शुद्धि	८७	पित्तके संचित और कुपित तथा शान्त होनेका समय	९५
शंखनाभ शुद्धि ...	८८	कफके संचित और कुपित तथा शान्त होनेका समय	९५
कौडीकी शुद्धि ...	८८	वातके संचित और कुपित तथा शान्त होनेका समय ...	९५
मोतियोंकी शुद्धि ...	८८	विकृत वातादिके दोष... ..	९५
इति दशमोपदेशः समाप्तः ।		प्रकृत वातादिके गुण... ..	९५
मङ्गलाचरण, शिववन्दना ...	८९	वातादि दोष शरीरको धारणकर रहे हैं इसमें दृष्टान्त ...	९५
आयुर्वेदके लक्षण ...	८९	तीनों दोषोंमें वायुकी प्रधानता ...	९५
वैद्यके लक्षण... ..	८९	पित्त कफादिकी कर्मण्यता और वायुसे कार्य्योंकी साधना ...	९६
चिकित्साके चार चरण ...	८९	वात, पित्त और कफके स्थान	९६
उत्तम वृक्षके लक्षण	८९	प्राणवायुके स्थान और उसके कर्म	९६
उत्तम रोगीके लक्षण ...	८९	उदान वायुके स्थान और कर्म ...	९६
औषधिके लक्षण ...	८९	समान वायुके स्थान और म ...	९६
परिचारकके लक्षण ...	८९	अपान वायुके स्थान और कर्म ...	९६
वैद्यवचनमें रोगीका विश्वास ...	८९	व्यान वायुके स्थान और कर्म	९६
वैद्यको प्रधानता ...	९०	पित्तके स्थान और कर्म ...	९७
राजवैद्य	९०	पाचक और भ्राजक पित्तके कर्म... ..	९७
वैद्यके गुण	९०	कफके स्थान और उसके कर्म ...	९७
असाध्य रोगकी चिकित्साके दोष...	९०	पांच प्रकारके कफका वर्णन ...	९८
सुखसाध्य रोग	९०	अवलम्बन कफके गुण... ..	९८
रोगको विनाजाने चिकित्सा करनेके दोष	९१	अविकृत कफके गुण	९८
रोगको जानकर चिकित्सा करनेका फल	९१	अविकृत कफके कर्म... ..	९८
ज्वर चिकित्सा	९२	आमके दो प्रकारका वर्णन ...	९८
कर्मज रोग	९२	साम वायुके कार्य्य	९९
पापज रोग... ..	९३		
कर्म दोषज रोग	९३		
रागोंका अनुबन्ध	९३		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सन्निपातके लक्षण ...	१२६	कालामि रुद्ररस ...	१४२
सन्निपातकी निरुक्ति ...	१२६	इति सन्निपातचिकित्सा ।	
सन्निपातमें प्रथम कर्त्तव्य ...	१२६	विषमज्वर ...	१४३
सन्निपातमें प्रथम कौनसा दोष दूर करना चाहिये उनका वर्णन ...	१२६	जीर्णज्वर ...	१४३
सन्निपातकी गति ...	१२७	जीर्णज्वरमें दुग्धपान ...	१४३
दोषोंके बल जाननेका उपाय ...	१२७	तरुणज्वरमें दुग्धपान निर्गन्ध ...	१४३
सैन्धवादि मुखमें धारण ...	१२७	विषमज्वरके लक्षण ...	१४३
गण्डूष और नास ...	१२७	मुस्तादि काथ ...	१४४
अंजन ...	१२८	कृष्णजीरकादि ...	१४४
मुखमें धारण ...	१२८	लशुनादि ...	१४४
कोहेर्षी सलाकासे दग्ध करना ...	१२८	शुंठ्यादि ...	१४४
किरातायवलेह ...	१२९	वासादि ...	१४५
अष्टांगावलेहिका ...	१२९	विदारि कन्दादि ...	१४५
आमलक्यादि अवलेह ...	१२९	अष्टांग धूप... ..	१४५
दशमूलकादि ...	१२९	कौनसे ज्वरमें घृत प्रयोग ...	१४५
द्वादशांग ...	१३०	क्षीरपट्पलक घृत ...	१४६
त्रयोदशांग... ..	१३०	पिप्पल्यादि घृत ...	१४६
चतुर्दशांग ...	१३०	दशमूलपट्पलक घृत... ..	१४७
पञ्चदशांग... ..	१३१	चन्दनाद्य घृत ...	१४७
षोडशांग ...	१३१	अंगारक तैल ...	१४८
अष्टादशांग... ..	१३१	महत्पट्कट्टर तैल ...	१४८
द्वितीय अष्टादशांग ...	१३२	महालाक्षादि तैल ...	१४९
त्रिवृतादि ...	१३२	सुदर्शन चूर्ण ...	१४९
शृंगादि ...	१३२	चन्दनादि लोह ...	१५१
कर्णशोधकी औषधि ...	१३३	इति ज्वराधिकारः समाप्तः ।	
सन्निपात भैरव रस ...	१३३	ज्वरातिसार चिकित्सा ...	१५१
सिंहनाद रस ...	१३४	ज्वरातिसारके लक्षण ...	१५१
सन्निपात गजाङ्कुश रस ...	१३५	ज्वरातिसारका निर्णय ...	१५१
सन्निपात विध्वंसन रस ...	१३५	ज्वरातिसारकी सामान्य चिकित्सा ...	१५१
पानीयकुमार रस ...	१३६	ज्वरातिसारमें निषिद्ध औषधि ...	१५१
बृहत्कस्तूरी भैरव रस ...	१३८	नागरादि काथ ...	१५२
बालरस बटिका ...	१४०	पाठादि काथ ...	१५२
बालरस ...	१४१	ह्रीवेरादि काथ ...	१५२
रसशोधन ...	१४२		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
बृहत्तहोबिरादि	१५३	शाल्मल्यादि	१५८
उशीरादि	१५३	चन्दनादि	१५८
जम्बवादि	१५४	रसांजनादि	१५८
इति ज्वरातिसारचिकित्सा ।		पक्कबेल	१५८
अतीसार चिकित्सा	१५४	पक्कबिल्वादि	१५९
अतीसारके लक्षण	१५४	गुदभ्रंश चिकित्सा	१५९
आम और अपक्क मलकों वर्णन	१५४	घृतादि	१५९
सामान्य चिकित्सा	१५४	पंचवल्लल	१५९
आमातिसारमें मलरोधक औषधि		सर्वातिसार	१६०
देनेसे जोजो रोग उत्पन्न होते हैं		लवंग चतुःसम	१६०
उनका वर्णन	१५४	दशमूलादि	१६०
जिस जिस रोगमें जोजो औषधि		किरात तिलक्यादि	१६१
सदैव निषिद्ध हैं उनका वर्णन...	१५४	इति वातातिसारचिकित्सा ।	
हर और पीपलका काथ	१५५	कफातिसार	१६१
वायुबिडंगादिका काथ	१५५	सामान्य चिकित्सा	१६१
धान्यादि पंचक	१५५	पड्यूप	१६१
शुठ्यादि	१५६	इति कफातिसारचिकित्सा ।	
हरीतक्यादि	१५६	कुटजादि	१६१
पाठादि	१५६	कुटजइन्द्रयवादि	१६२
कुलिस्थादि	१५६	इन्द्रयवादि	१६२
कुडेकी छालका काथ... ..	१५६	वत्सकादि	१६२
इति आमातिसारचिकित्सा ।		लोकनाथ रस	१६२
रक्तातिसार चिकित्सा... ..	१५६	कनकसुन्दर रस	१६३
सामान्य चिकित्सा	१५६	रसायनामृत	१६३
यवान्यादि चूर्ण	१५७	असाध्यातिसारके लक्षण	१६४
पाठादि चूर्ण	१५७	असाध्य संग्रहणीके लक्षण	१६४
काकमाच्यादि चूर्ण	१५७	इत्यतिसारचिकित्सा ।	
सर्पाक्ष्यादि	१५७	संग्रहणीचिकित्सा	१६५
बिल्वादि	१५७	संग्रहणी रोगकी उत्पत्ति	१६५
कुलिस्थादि	१५७	नायिकाचूर्ण	१६५
कुडेका काथ	१५७	अभ्रवटिका	१६६
कालेतिल और बकरीका दूध	१५७	कणाद्यलोह	१६७
धातक्यादि	१५८	रसांजनादि चूर्ण	१६८
जम्बवादि	१५८	वेद्यनाथ वटिका	१६८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
साम पित्तका वर्णन ...	९९	दोष ...	१०४
पकातिसारका वर्णन ...	९९	ज्वर रोगवाले मनुष्यको तृषा दूर	
साम कफके लक्षण ...	९९	करनेके लिये कैसा जल पीने	
नवीन ज्वरमें त्यागनेके योग्य ...	१००	कोदेना चाहिये ...	१०४
आगन्तुक रोग ...	१००	आमज्वरमें कैसा जल देना चाहिये	१०५
चिकित्साके समयका विचार ...	१००	औषधिके खानेका पात्र ...	१०५
प्राणोंके स्थान ...	१००	औषधि पीकर फिर किसप्रकार	
ज्वर रोगीको सेवन करने योग्य		पात्र डालदेना चाहिये ...	१०५
पदार्थ ...	१००	औषधि खाकर फिर क्या खाना	
संशमन औषधि ...	१००	चाहिय... ..	१०५
वैद्यके लक्षण ...	१००	ज्वर नाशक मन्त्र ...	१०५
पृथ्वीके गुण...	१०१	धूपका मंत्र ...	१०५
जलके गुण ...	१०१	चातुर्थिक ज्वरमें मंत्र पढ़कर धूप और	
वायुके गुण ...	१०१	नास देना चाहिये उनका वर्णन	१०६
आकाशके गुण ...	१०१	विषम ज्वरका अनुबन्ध ...	१०६
शरीरमें पञ्चभूतोंके रहनेके भिन्न		संततकादि पाँच प्रकारके ज्वरोंका	
भिन्न स्थान ...	१०१	वर्णन ...	१०६
गिलोय और सोंठका काथ ...	१०२	विषम ज्वर...	१०६
ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानता ...	१०२	भूत ज्वरमें नास ...	१०७
जिन जिन ज्वरोंमें लंघन नहीं		भूत ज्वरमें कंठ और कानोंमें	
कराना चाहिये उनका वर्णन	१०२	औषधि बन्धन ...	१०७
क्षय शब्दका अर्थ ...	१०२	एकाहिक और रात्रिज्वरकी औषधि	१०७
उष्ण साम पित्त जिसके द्वारा		सर्व ज्वरनाशक औषधि ...	१०७
पकते हैं उनका वर्णन ...	१०२	औषधिके बाँधनेसे शीतज्वर और	
जिस कारणसे धुआको सहनेकी		व्याहिक ज्वरका नाश ...	१०८
सामर्थ्य नहीं होती उसका वर्णन	१०२	व्याहिक ज्वरमें बन्धन, अंजन और	
रोगके उत्पन्न होनेका कारण ...	१०२	तिलक ...	१०८
ज्वरमें प्रथम लंघन कर्त्तव्य ...	१०२	चातुर्थिक ज्वरमें बन्धन, धूप और	
लंघनका विशेष वर्णन ...	१०३	अंजन ...	१०८
रोगोंका प्रधान आश्रय वर्णन ...	१०३	मंत्रद्वारा उलूकादिकोंकी सिद्धि ...	१०९
वाग्भटके मतसे वमन ...	१०४	औषधि लानेकी विधि...	१०९
किस अवस्थामें वमन कराना		मंत्रसे औषधिको उखाड़ना, छेदन	
योग्य है ...	१०४	और बंधन ...	११०
निर्दोष अवस्थामें वमन करानेके			

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मण्डूरादि धूपसे सब ज्वरोंका नाश	११०	मय्यादा ...	११९
मंत्र पढकर धूप देना ...	११०	ज्वरकी प्रथमावस्थामें काथ ...	११९
मूषिकादि विष्टाकी धूप ...	११०	इति वातज्वरचिकित्सा ।	
ज्वर पत्रिका बलिदान ...	१११	कुटकी और इन्द्रयवादिका काथ....	१२१
मंत्र पाठ ...	१११	पाठादि ...	१२१
वात ज्वरमें पिप्पल्यादि योग ...	१११	पित्त पापडेका काथ ...	१२१
ज्वरमें पथ्यदेनेका समय ...	१११	पटोलादि ...	१२१
मुस्तादि प्रयोग ...	१११	मुस्तादि ...	१२१
चन्द्रशेखर रस ...	११२	द्राक्षादि ...	१२१
त्रिफला लोह ...	११३	विदारीकन्दादि ...	१२१
ज्वरारि रस ...	११३	दारु हरिद्रादि लेप ...	१२१
ज्वरांकुश ...	११४	दाह निवारणार्थ ...	१२१
द्वितीय ज्वरांकुश ...	११४	शीतल जल युक्त ...	१२१
जयन्ती प्रयोग ...	११५	हरीतक्यादि ...	१२२
महाज्वरांकुश ...	११५	इति पित्तज्वरचिकित्सा ।	
द्वितीय महाज्वरांकुश ...	११५	पिप्पल्यादि गुण ...	१२२
सत्तु इत्यादि ...	११६	चातुर्भद्रादि अवलेहिका ...	१२३
मण्ड ...	११६	कटु फलादि अवलेहिका ...	१२३
जल ...	११६	मधुमिश्रित पीपलका चूर्ण ...	१२४
कुलित्थजल ...	११६	इति कफज्वरचिकित्सा ।	
दशमूलकाथ ...	११७	शुंठ्यादि काथ ...	१२४
तरुण ज्वरमें मुख्यौषधि निषेध ...	११७	पञ्चांग ...	१२४
पेयादि ...	११७	मूँगका यूप ...	१२४
धनिये आदिकी यवागू ...	११७	इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ।	
मृद्वीकादिकी यवागू ...	११७	गुडूच्यादि काथ ...	१२५
गोखरू और कटेहरीकी यवागू ...	११७	पटोलादि काथ ...	१२५
कुलित्थ आदिकी यवागू ...	११७	कण्टकाय्यादि काथ ...	१२५
तर्पण ...	११८	इति पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।	
खीलोंका तर्पण ...	११९	चातुर्भद्र ...	१२५
द्राक्षारि तर्पण ...	११९	पञ्चकोल	१२६
यूष ...	११९	पिप्पल्यादि ...	१२६
शाक	११९	शुंठ्यादि ...	१२६
अरुचिकी औषधि ...	११९	इति वातकफज्वरचिकित्सा ।	
संघ प्रकारके ज्वरोंमें औषधि देनेकी		सन्निपातके पूर्वरूप ...	१२६

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
सामान्य चिकित्सा ...	२३७	क्षयशब्दकी निरुक्ति ...	२५५
स्तम्भन क्रिया ...	२३७	राजयक्ष्माकी निरुक्ति ...	२५५
अपतर्पण ...	२३७	राजयक्ष्मामें वीर्य और मलकी रक्षा	२५५
उष्ण जल ...	२३७	साध्यरोगीके लक्षण ...	२५५
ऊर्द्धगत रक्त पित्तकी चिकित्सा ...	२३७	छागमांसादि ...	२५६
अधोगत रक्त पित्तकी चिकित्सा ...	२३८	पिप्पल्यादि यूष ...	२५६
कतिपय योग ...	२३८	सोथे इत्यादिका लेप ...	२५६
धूम्र प्रयोग ...	२३८	त्रयोदशांग... ..	२५७
एलादि गुटिका ...	२३९	दशमूलादि... ..	२५७
प्रलेप ...	२४०	अश्वगन्धादि ...	२५७
नास ...	२४०	ककुभादि ...	२५७
नासिकागत रक्तस्रावकी औपधि...	२४०	पारावतादिका मांस ...	२५७
भेदगत रक्तस्रावकी चिकित्सा ...	२४०	ऐलादि चूर्ण ...	२५८
पायुगत रक्तस्रावकी चिकित्सा ...	२४०	सितोपलादि लेह ...	२५८
सतावरि घृत ...	२४१	लवंगादि चूर्ण ...	२५९
वासादि रस ...	२४२	तालीशारा मोदक ...	२५९
अहूसे इत्यादिके रसका नाश ...	२४२	च्यवनप्रास ...	२६०
वृहत् वासादि घृत ...	२४२	छागलाघ घृत ...	२६२
कामदेव घृत ...	२४२	वासावलेह ...	२६२
खण्ड कूष्माण्ड ...	२४४	पंचामृत रस ...	२६३
वासाखण्ड कूष्माण्ड ...	२४५	वातक्षय रोगके लक्षण ..	२६३
मृगगज रस ...	२४६	पित्तक्षय रोगके लक्षण ...	२६३
नीलोत्पलादि ...	२४६	कफक्षय रोगके लक्षण ...	२६३
नवनीतादि ...	२४६	रत्नगर्भपोटली रस ...	२६४
द्राक्षादि ...	२४६	मृगांकरस ...	२६५
वासकादि ...	२४६	अमृतश्वर रस ...	२६५
कर्पूरक रस ...	२४७	शंखेश्वर रस ...	२६५
माहेश्वर घृत ...	२४८	लोकनाथ ...	२६६
समशर्करा लोह ...	२४८	स्वल्पमृगांकरस ...	२६६
खण्डखाद्य लोह ...	२४९	लोहामृत ...	२६६
अमृताख्य लोह ...	२५१	हरनेत्र रस ...	२६७
ईत रक्तपिताधिकारः समाप्तः ।		कनकमुन्दर रस ...	२६७
रोगराज (राजयक्ष्मा) चिकित्सा	२५५	नीलकण्ठ रस ...	२६८
शोषकी निरुक्ति	२५५	वज्रेश्वर रस ...	२६८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
भस्मसूत रस	२६९	पिप्पल्यादि	२८६
अग्निरस	२७०	कडुफलादि	२८७
चन्द्रामृत रस	२७०	दशमूली काथ	२८७
कांचनाभ्र रस	२७१	कडु फलादि	२८७
राजमृगांक रस	२७२	कण्टकारी काथ	२८८
वातकफज यक्ष्मा रोगके लक्षण	२७३	घृतमें भुना हुवा बहेडा	२८८
पित्तकफज यक्ष्मा रोगके लक्षण ..	२७३	अङ्गुलेका रस	२८८
कफ पित्तज यक्ष्मा रोगके लक्षण...	२७३	जीवनीय दशकादि	२८८
सन्निपात यक्ष्मा रोगके लक्षण	२७३	मंजिष्ठादि काथ	२८८
शंखगर्भ पोटलीरस	२७३	पिप्पल्यादि	२८८
बृहत्कांचनाभ्र रस	२७४	मनशिलादि	२८८
चन्द्रामृत रस	२७५	मरिच्यादि चूर्ण	२८९
महामृगांक रस	२७७	समशर्कर चूर्ण	२९०
असाध्यक्षय रोगके लक्षण	२७६	हरीतक्यादि मोदक	२९०
प्राणव्राण रस	२७७	व्योषान्तिका गुटिका	२९०
हेम मृगांक रस	२७७	धूम्रपान	२९१
कालान्तक रस	२७८	मनशिलादि	२९१
राजयक्ष्मा रोगमें पथ्यापथ्य	२७९	मरिच्यादि	२९१
वमन और रक्त वमन निवारक औषधि	२७९	कतिपय योग	२९१
रास्नादि लोह	२८०	दशमूलादि घृत	२९२
बिन्धवासियोग लोह	२८०	कालान्तक रस	२९२
मध्वादि लोह	२८०	चन्द्रामृत रस	२९३
शिलाजत्वादि लोह	२८१	सर्वांग सुन्दर रस	२९४
महाभ्र वटिका	२८१	बृहत्कण्टकारी	२९५
चन्दनाद्य तैल	२८३	व्याघ्री हरीतकी	२९६
महश्चन्दनाद्य तैल	२८३	अगस्त्य हरीतकी	२९६
इति राजयक्ष्मा समाप्तः ।		वातजकास रोगके लक्षण	२९७
कास चिकित्सा	२८४	रुद्रपर्पटी रस	२९८
वातजकास रोगकी चिकित्सा	२८४	अमृतार्णव रस	२९८
पित्तजकास रोगकी चिकित्सा	२८६	भूताङ्कुश रस	२९९
कफजकास रोगकी चिकित्सा	२८६	पित्तजकासके लक्षण	२९९
वमन प्रयोग	२८६	त्रिनेत्र रस	२९९
द्राक्षादि	२८६	लोकेश्वर रस	३००

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ताम्रयोग १६९	पंचामृत रस १९२
द्वितीय ताम्रयोग १६९	चन्द्रप्रभा वटिका १९३
बृहद्वनंगादि चूर्ण १७०	शंकर लोह... १९५
ग्रहणीकपाट रस १७२	अग्निमुख लोह २००
लवंगादि चूर्ण १७३	चव्यादि लोह २०२
ग्रहणीकपाट रस १७३	विद्याधर लोह २०३
जातीयफलादि वटिका १७४	इति अर्शरोगचिकित्सा ।	
मृतसंजीवनी रस १७५	मन्दाग्नि चिकित्सा २०५
शुठ्यादि अनुपान १७५	चारप्रकारकी जठराग्नि २०५
पंचामृत पर्पटी १७६	अजीर्ण रोगके लक्षण...	... २०६
पंचा० वटी १७७	हिंवाष्टक चूर्ण २०७
लोह पर्पटी....	... १७८	हिंगुमण्ड २०७
कंचटावलेह १७९	सैन्धवाद्रक २०७
ग्रहणीमिहिर तैल १८०	हरीतक्यादि २०७
कल्याणगुड १८१	सैन्धवादि चूर्ण २०८
चांगेरी घृत १८२	अभयानिम्ब २०८
ग्रहणीगजेन्द्र वटिका १८३	स्वल्पाग्निमुख चूर्ण २०८
इति ग्रहणीचिकित्सा ।		बृहदाग्निमुख चूर्ण २०९
अर्शरोगकी चतुर्विध चिकित्सा १८४	भास्कर लवण २१०
अर्शरोगमें पथ्य १८४	समशर्कर चूर्ण २११
अर्शरोगमें रक्तस्त्राव १८४	हरीतक्यादि योग २१२
प्रलेप १८४	लवणोदक २१२
गुडिका १८४	रसशेषाजीर्ण २१२
प्रलेप और धूप १८५	दिवानिद्रा निषिद्ध २१२
तक्र प्रयोग...	... १८५	हिंवादिम्लेप २१२
गुडहरीतकी १८५	धान्याशुंठी जल २१२
तिलादि १८५	हरीतकी पिप्पल्यादि २१२
व्योपादि चूर्ण १८६	शुंठी पिप्पल्यादि २१२
श्रीवाहुशाल गुड १८६	शुठ्यादि चूर्ण २१२
कुटजलेह १८८	सैन्धवादि २१२
अर्शकुठार रस १८९	विडंगादि २१२
चक्रेश्वर रस १९०	अभिकुमार रस २१३
तीक्ष्णमुख रस १९१	वारिभक्त वटिका २१४
अर्शोहर रस १९१	शुभावती वटिका २१४
कनकावती वटी १९२	अभिकुमार रस २१५
		वैरोचन रस २१६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
पारदादि ...	२१६	अयोमलादि ...	२२४
अभिकुमार रस ...	२१७	सिन्दूरभूषण रस ...	२२५
पिप्पल्यादि ...	२१७	मण्डूर वज्र ...	२२६
पारदादि ...	२१७	पुनर्नवा मण्डूर ...	२२६
दिव्य पारदादि ...	२१७	नवायस लोह ...	२२७
मस्तकादि ...	२१७	योगराज लोह	२२७
अभिकुमार रस ...	२१७	मूर्वादि घृत ...	२२८
पंचामृत चूर्ण ...	२१९	दाव्यादि लोह ...	२२९
पंचामृतवटी ...	२१९	धात्री लोह ...	२२९
वडवानल चूर्ण ...	२२०	विडंगादि लोह ...	२२९
इति अजीर्णाधिकारः समाप्तः।			
कृमिरोग चिकित्सा ...	२२०	पंचानन वटी ...	२३०
कृमिरोग उत्पन्न होनेका कारण...	२२०	लोहामृत ...	२३०
कृमिरोगमें पथ्य ...	२२०	कोकिलाक्षादि ...	२३०
कृमिरोगमें त्याज्य द्रव्य ...	२२०	हंसमण्डूर ...	२३१
कृमिरोगके उपद्रव ...	२२०	कामेश्वर रस ...	२३१
सामान्य चिकित्सा ...	२२०	सिद्ध मण्डूर ...	२३२
पिप्पली मूलादि ...	२२०	वातज पाण्डुरोगके लक्षण ...	२३२
विडंगादि योग ...	२२०	पित्तज पाण्डुरोगके लक्षण ...	२३२
मुस्तादि ...	२२०	कफज पाण्डुरोगके लक्षण ...	२३३
पारदप्रलेप ..	२२१	त्रिदोषज पाण्डुरोगके लक्षण ...	२३३
विडंगाद्य तैल ...	२२१	असाध्य पाण्डुरोगके लक्षण ...	२३३
पारसीक यवान्यादि योगत्रय ...	२२१	कालविध्वंसन रस ...	२३३
त्रिफला घृत	२२२	त्रिनेत्रादि रस ...	२३४
लाक्षादि धूप ...	२२२	कामलाहलीमक रोगकी चि० ...	२३५
शुद्ध सूतादि ...	२२२	दरिद्रादि अंजन ...	२३५
कीटभद्र रस ...	२२३	अपामार्गादि ...	२३५
इति कृमिरोगाधिकारः समाप्तः।			
पाण्डुरोग चिकित्सा...	२२३	कुम्भकामलाकी औषधि ...	२३५
साध्य पाण्डुरोग चिकित्सा ...	२२३	कामला रोगमें नास	२३५
पक्कदुग्ध हितकारक ...	२२३	विडंगादि ...	२३६
वातजादि पाण्डुरोगकी चिकित्सा	२२३	कुम्भेरादि...	२३६
गोमूत्रमें भावनादिया हुवा लोहका		वन्धन और अंजन ..	२३६
चूर्ण	२२४	पंचास्य रस ...	२३६
फल त्रिक्यादि	२२४	इति पाण्डुरोगाधिकारः समाप्तः।	
		रक्तपित्त चिकित्सा	२३७

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
कफजकासके लक्षण ...	३००	विभीतकादि ...	३१५
काससंहार भैरव रस ...	३००	काकोल्यादि दुग्ध ...	३१५
त्रिकट्वादि चूर्ण ...	३०१	चव्यादि चूर्ण ...	३१६
रसेन्द्र गुटिका ...	३०१	भृंगराजाद्य घृत ...	३१६
बृहद्रसेन्द्र गुटिका ...	३०२	पश्याद्य घृत ...	३१६
विजयभैरव रस ...	३०३	अश्वगन्धादि घृत ...	३१७
क्षतजकासके लक्षण ...	३०४	कल्याणावलेह ...	३१७
तालेश्वर रस ...	३०४	ब्राह्मी घृत ...	३१८
क्षयजकासके लक्षण ...	३०५	इति स्वरभेदाधिकारः समाप्तः ।	
अग्नि रस ...	३०५	अरोचक चिकित्सा ...	३१९
इति कासाधिकारः समाप्तः ।		वातज अरुचिकी चिकित्सा ...	३१९
हिका और श्वासकी चिकित्सा ...	३०६	पित्तज अरुचिकी चिकित्सा ...	३१९
सामान्य चिकित्सा	३०६	कफज अरुचिकी चिकित्सा ...	३१९
कतिपय योग ...	३०६	सर्वप्रकारकी अरुचिकी चिकित्सा	३१९
पिप्पल्यादि लोह ...	३०७	पिप्पल्यादि ...	३१९
शृंग्यादि चूर्ण ...	३०९	मधुगणका काथ ...	३१९
कुलत्थ पदपल घृत ...	३०९	निम्बकाकाथ ...	३१९
कुलत्थ गुड़ ...	३०९	अमलतासका काथ ...	३१९
बृहत्कुलत्थ गुड़ ...	३१०	कुटजादि ...	३२०
सूर्यावर्त रस ...	३११	लोध्रादि ...	३२०
उदयभास्कर रस ...	३११	विडलवणादि चूर्ण ...	३२०
दाडिमाद्य चूर्ण ...	३१२	कारव्यादि गुटिका ...	३२१
विडंगादि चूर्ण ...	३१२	यवानी खाण्डव ...	३२१
गन्धकादि योग	३१२	कल हंसक ...	३२२
मेघडम्बर रस ...	३१२	यवक्षार काथ ...	३२२
योग बाहक ...	३१३	मुस्तकादि ...	३२२
चन्द्रिका वद्ध रस ...	३१३	पिप्पल्यादि ...	३२३
इति हिकाधिकारः समाप्तः ।		कपित्थमज्जादि ...	३२३
स्वरभेद चिकित्सा ...	३१५	इति अरोचकाधिकारः समाप्तः ।	
वातज स्वरभेद चिकित्सा ...	३१५	छर्दि चिकित्सा ...	३२४
पित्तज स्वरभेदचिकित्सा ...	३१५	छर्दि रोगमें लक्षण ...	३२४
कफज स्वरभेद चिकित्सा ...	३१५	दुग्ध जलादि ...	३२४
हरीतक्यादि ...	३१५	मूंगादि यूष ...	३२४
वनयमान्यादि ...	३१५	बालादि ...	३२४

विषय.	पृष्ठांक.	विषय:	पृष्ठांक.
भर्जित मुद्गादिका काथ ३२४	पिप्पल्यादि ३२९
गुडूच्यादि	... ३२४	शुंठ्यादि	... ३२९
बदरमज्जादि ३२४	त्रिफलादि	... ३३०
लाजादि ३२४	दुरालभादि ३३०
हरीतक्यादि	... ३२४	आभादि	... ३३०
एलादि चूर्ण	... ३२५	वातज मूर्छाके लक्षण ३३१
पद्मकाय घृत	... ३२५	पित्तज मूर्छाके लक्षण	... ३३१
इति छन्दार्थधिकारः समाप्तः ।		कफज मूर्छाके लक्षण	... ३३१
तृष्णा चिकित्सा	... ३२६	चूर्णखानेसे जो पीडा उत्पन्न हो उसकी औषधि ३३१
तृष्णारोगमें वमन ३२६	हरीतक्यादि काथ	... ३३१
गुडदधि ३२६	अंजन दशनादि	... ३३२
मांस रसादि ३२६	पुनर्नवाद्य घृत	... ३३३
रक्त	... ३२६	मुस्तादि चूर्ण नस्य	... ३३३
आम्रादि ३२६	इति मूर्छाभ्रमनिद्रातन्द्राधिकारः समाप्तः ।	
शीतल जल प्रयोग	... ३२६	दाह चिकित्सा ३३३
दाडिमबीजादि ३२७	दाहरोगमें १००वारका धुलाघृत	३३३
बटांकुरादि	... ३२७	केलेके पत्तोंपर शयनकराना इत्यादि वर्णन	... ३३३
मुस्तादि	... ३२७	शीतल दुग्धादि पान	... ३३३
पुनर्नवादि ३२७	प्रियंगवादि ३३३
पिण्ड खर्जूरादि	... ३२७	धातुक्षयज दाहरोगकी औषधि	... ३३४
रक्तचन्दनादि काथ	... ३२७	कुशाद्य तैल ३३४
द्राक्षादि ३२७	कुशाद्य तैल घृत	... ३३४
तृष्णा पीडित मनुष्यको सर्वअवस्थाओंमें जलदेना चाहिये ३२८	महत्कल्याण घृत	... ३३४
इति तृष्णाधिकारः समाप्तः ।		इति दाहाधिकारः समाप्तः ।	
मूर्छा रोगकी चिकित्सा	... ३२९	उन्माद चिकित्सा	... ३३५
मूर्छामें जल, पुष्प, पवन और सुगन्धित अर्क परम हितकारक	३२९	वात उन्मादकी चिकित्सा	... ३३५
मूर्च्छाकी तीन प्रकारसे क्रिया वर्णन	३२९	पित्त कफ उन्मादकी चिकित्सा	... ३३५
मूर्छा और माशत्यरोगीको पंचकर्म-प्रयोग	... ३२९	तीक्ष्ण नासादि	... ३३५
मधुर वर्गकी औषधि	... ३२९	तर्जनादि	... ३३६
रक्तज मद्यजादि मूर्छाकी औषधि	३२९	क्षेत सूर्षपादि	... ३३६
बदर मज्जादि	... ३२९	त्र्यूपणाद्या वर्ति	... ३३७
		उन्मादहरोपायाः	... ३३७

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
हिंमवादि घृत ...	३३८	वातव्याधि चिकित्सा...	३५०
स्वल्प चैतस घृत ...	३३८	हितकारी उपचार और पूषादियोग	३५०
महापैशाचिक घृत ...	३३९	रोग संख्या ...	३५२
शिवा घृत ...	३४०	कुपित वायुके उपद्रव ...	३५३
निम्ब पत्रादि ...	३४१	चित्रकइन्द्रयवादि ...	३५३
कार्पासाद्य ...	३४१	हरीतक्यादि ...	३५३
भूताकुश रस ...	३४२	विभीतक्यादि ...	३५३
चण्ड भैरवरस ...	३४३	धनुस्तम्भन रोगकी चिकित्सा	३५४
नरसिंहमन्त्रः ...	३४३	पक्षाघातादि रोगोंकी चिकित्सा	३५४
सर्पपादि धूप ...	३४३	मापबलादि ...	३५४
इति उन्मादाधिकारः समाप्तः ।		रास्नागुग्गुल ...	३५४
अपस्मार चिकित्सा ...	३४४	कटिशूलकी औपधि ...	३५५
अपस्मार रोगमें रसायन प्रयोग करनेका		झिनझिन वातकी औपधि	३५५
कारण ...	३४४	स्वल्परसोन पिण्ड ...	३५५
वातजादि अपस्माररोगकीचिकित्सा	३४४	त्रयोदशांग गुग्गुल ...	३५६
विष्पल्यादि नस्यम् ...	३४४	छागलाद्य घृत ...	३५६
मनोहाव्यअञ्जन ...	३४४	बृहद्रत्ना तैल ...	३५७
यष्टीमध्वादि धूप ...	३४४	विष्णुतैल ...	३५८
गुनः पित्ताञ्जन ...	३४४	छागलक्षण ...	३५९
नकुलादिक पुरीपादिकी धूप ...	३४४	बृहच्छागलादि घृत ...	३५९
स्वल्प पंचगव्य घृत ...	३४५	नारायण तैल ...	३६३
समधुत्रिफलायोग ...	३४५	बृहद्विष्णुतैल ...	३६४
शुद्धयष्टीमधु ...	३४५	महानारायण तैल ...	३६६
सतैललग्न ...	३४५	मापतैल ...	३६७
सदुग्ध शनावरी ...	३४५	बृहन्महामाप तैल ...	३६८
समधु ब्रह्मांरस ...	३४५	त्रिकात्रयादि लौह ...	३६९
बृहत्पंचगव्य घृत ...	३४६	महामुगन्धित लक्ष्मीविलास तैल...	३६९
महाचैतस घृत ...	३४७	महाप्रसारिणी तैल ...	३७०
ब्रह्मा घृत ...	३४८	वात कुलान्तक तैल ...	३७६
प्रचण्ड भैरवरस ...	३४८	गन्धराज तैल ...	३७६
भूत भैरवरस ...	३४८	पंचपल्लव के जलसे द्रव्यशोधन ...	३७८
इन्द्र ब्रह्मवटी ...	३४९	नखी कर्कट शुद्धि ...	३७८
अपस्मारनाशक धूप	३५०	बच हरिद्रा शुद्धि ...	३७८
इति अपस्माराधिकारः समाप्तः ।		मुस्तक शुद्धि ..	३७९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
शैलज शुद्धि ...	३७९	आमवातहर योग ...	३९४
खट्वासी ...	३७९	सर्वांगवातहर ...	३९४
शिलारसादिकोंकी शुद्धि ...	३८०	हरीतकी सेवनविधि ...	३९५
गन्धद्रव्य शुद्धि ...	३८१	वातरक्तहर कल्क ...	३९५
शुद्ध और अशुद्ध गन्धद्रव्योंका		सघृतगुडसेवनगुण ...	३९५
धारण कस्तूरी परीक्षा ...	३८१	पटोलादि काथ ...	३९५
द्रव्योंके लक्षण ...	३८२	कटुका गुडूच्यादिकल्क ...	३९५
मित्रगण ...	३८५	आमलक्यादि काढ़ा ..	३९५
मध्यमगण	३८५	कोकिलादि काथ	३९६
षड्वर्ग ...	३८५	नवकार्पिक काथ ...	३९६
स्वच्छन्द भैरवरस ...	३८६	शतावरी घृत	३९६
षडंगगुग्गुलु	३८६	गुडूची घृत ...	३९६
ज्यूषणादि गुटिका ...	३८७	अमृतादि घृत ...	३९६
वातारि रस ...	३८७	गुडूच्यादि तैलत्रय ...	३९७
बडवानलरस ...	३८८	खुड्डाकपद्मक तैल ...	३९७
स्वच्छन्द नायक रस ...	३८९	गुडूची तैल ...	३९८
त्रिगुणाख्य रस	३८९	शतावरी तैल ...	३९८
वातगजांकुश	३९०	कामकलावाटिका ...	४००
विजयभैरव तैल ...	३९०	पिण्ड तैल ...	४०१
सर्वांगकम्पारि रस ...	३९१	शारिवाय तैल ...	४०१
अर्द्धांगवातारि रस ...	३९१	वात रक्तान्तक रस ...	४०२
पित्तज वातरोगके लक्षण	३९१	कैशारेक गुग्गुलु ...	४०२
वातपित्तारि रस ...	३९१	अमृता गुग्गुलु ...	४०३
वातरोगमें हितकारी पदार्थ ...	३९२	योगसारामृत ...	४०४
इति वातरोगाध्यायः समाप्तः ।		स्वायंभुव गुग्गुलु	४०५
अथ वातरक्त चिकित्सा	३९२	काकोल्यादि घृत ...	४०६
वातरक्तकी सामान्य चिकित्सा ...	३९२	वातरक्तान्तक रस ...	४०६
वातमें रक्तमोक्षण	३९२	वज्रगुग्गुलु ...	४०७
वातरक्तमें हितकारक और पथ्य-		त्रिनेत्र रस ...	४०८
औषधि ...	३९२	लांगलायलौह ...	४०९
प्रलेपाः ...	३९३	गुडूच्यादि लौह ...	४०९
पाचन औषधि ...	३९३	इति वातरक्ताधिकारः समाप्तः ।	
गुडूच्यादि स्वरस ...	३९४	अथ उरुस्तम्भ चिकित्सा ...	४१०
गुग्गुलुवादियोग ...	३९४	भोजनादि वर्णन ...	४१०
		करञ्जफलादि ...	४१०

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
शिलाजत्वादि ...	४१०	रसोनपिण्ड ...	४२३
पिप्पल्यादि	४११	बृहत् रसोनपिण्ड ...	४२४
पिप्पलीमूलादि काथ औरकल्क ...	४११	प्रथम बृहत्सैन्धवादि तैल ...	४२६
त्रिफलादि लेह ...	४११	द्वितीय बृहत्सैन्धवादि तैल ...	४२६
पङ्कधरणयोग (वातोक्त) ...	४११	इति आमवाताधिकार स० ।	
कुष्ठाद्य तैल ...	४११	अथ शूलचिकित्सा ...	४२७
अष्टकट्टर तैल ...	४१२	सामान्य चिकित्सा ...	४२७
सैन्धवादि तैल ...	४१२	वातजशूलकी चिकित्सा ...	४२८
इति उरुस्तम्भरोगाधिकारः समाप्तः ।		बिल्वमूलादि गुटिका ...	४२८
अथामवात चिकित्सा ...	४१२	नाभिप्रलेप ...	४२८
साधारण चिकित्सा ...	४१२	बलादिकाथ ...	४२८
कार्पासादिस्वेद ...	४१२	धान्याकहरोतक्यादिकाथ ...	४२८
मकोयआदिका लेप ...	४१३	यवान्यादि चूर्ण ...	४२८
पञ्चवर्णन ...	४१३	शुण्ठ्यादिकाथ ...	४२८
शुण्ठीगोक्षुरकाथ कटिशूलमें ...	४१३	विश्ववादिकाथ ...	४२८
रास्नासप्तककाथ जंघादिशूलमें ...	४१३	पित्तशूलरोगमें पञ्च ...	४२९
रास्नापञ्चककाथ ...	४१३	दाहशूलमें शतावरीका रस ...	४२९
रास्नादशमूलकाथ ...	४१४	बृहत्यादि काथ पित्तशूलमें ...	४२९
एरंडतैलप्रयोग ...	४१४	त्रिफलादि काथ दाहशूलमें ...	४२९
दशमूलकाथ ...	४१४	वस्ति नास्यादि कफशूलमें ...	४२९
हरीतक्यादि चूर्ण ...	४१४	पञ्चमूलका काथ ” ...	४२९
शतपुष्पादि चूर्ण ...	४१४	सैन्धवादि योग ” ...	४३०
वैश्वानर चूर्ण ...	४१५	बिल्वमूलादि सगःशूलमें ...	४३०
अलम्बुषाण चूर्ण ...	४१५	मातलुंगादि पार्श्वदिशूलमें ...	४३०
योगराजगुग्गुल ...	४१५	यवान्यादि चूर्ण ...	४३०
वातारिगुग्गुल ...	४१६	बृहद्विश्ववादि चूर्ण ...	४३०
सिंहनादगुग्गुल ...	४१७	विदार्यादि चूर्ण त्रिदोष शूलमें ...	४३१
व्याधिशार्दूलगुग्गुल ...	४१८	एरण्डसप्तक ...	४३१
त्रिफलागुग्गुल ...	४१९	धान्यकादि चूर्ण ...	४३१
वृद्धदारकादिलौह ...	४२०	सर्वेश्वर चूर्ण ...	४३२
पञ्चाननरस ...	४२०	चित्रकाण चूर्ण ...	४३३
बृहत् सिंहनादगुग्गुल ...	४२२	शंखादि चूर्ण त्रिदोषजशूलमें ...	४३४
दग्धहरिण शृंगादि भस्म ...	४२३	त्रिफलामण्डूर चूर्ण ...	४३४
त्याज्यपदार्थ ...	४२३	बीजपूराणघृत ...	४३४
		रास्नादि घृत और तैल ...	४३५

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
प्रथम अभिमुखरस ...	४३६	पथ्यादि लौह ...	४५५
उदय भास्कररस ...	४३७	कृष्णाद्य लौह ...	४५५
भूदाररस ...	४३८	बृहत्रिफलाद्य लौह ...	४५५
शिलाबद्धरस ...	४३८	धात्रीलौह ...	४५६
शूलसिंहरस ...	४३८	शुक्र्यादिकाथ ...	४५७
सर्वांगसुन्दररस ...	४३९	हिंवादिवाटिका ...	४५७
शूलवाञ्जिणी वटिका ...	४४०	त्रिफलामोदक ...	४५७
द्वितीय अभिमुखरस ...	४४१	इति परिणामशूलाधिकारः ।	
ताम्रादियोग ...	४४१	अथान्नद्रवशूल और जरत्पित्तकी चि० ...	४५८
शूलकेसरी रस ...	४४२	अन्नद्रवशूलके लक्षण ...	४५८
शूलगजकेसरी रस ...	४४२	पित्तार्तमें वमन ...	४५८
गौडीरस ...	४४३	कफार्तमें विरेचन ...	४५८
षण्मुखरस ...	४४४	अन्नद्रवशूलमें जरत्पित्तोक्त ...	४५८
त्रिक त्रयाद्यलौह ...	४४४	भाषेण्डरी प्रयोग ...	४५८
शर्करादिलौह ...	४४४	आमलक्यादि चूर्णादि... ..	४५९
चतुःसम लौह ...	४४५	पायस विधि ...	४५९
शूलरोगमें अपथ्य ...	४४६	गौडिकादियोग ...	४५९
इति शूलाध्यायः समाप्तः ।		अन्नद्रवशूलमें हितकारक द्रव्य ...	४६०
अथ परिणामशूल चिकित्सा ...	४४६	गुडमण्डूर ...	४६१
सामान्य यत्न ...	४४६	विद्याधराभ्रक ...	४६१
विडंगादि मोदक ...	४४६	लौहगुटिका ...	४६२
शुक्र्यादि काथ ...	४४६	कलापगुटिका ...	४६२
शम्बूकभस्म ...	४४७	इति अन्नद्रवजरत्पित्ताधिकारः समाप्तः ।	
लहशुनके पत्तोंका स्वरस ...	४४७	अथोदावर्तारोग चिकित्सा ...	४६३
पिप्पलीघृत ...	४४७	उदावर्तारोगमें हितद्रव्य ...	४६३
नारिकेलखण्ड ...	४४७	क्षारादियोग ...	४६३
बृहन्नारिकेलखण्ड ...	४४८	त्रिवृतादि गुटिका ...	४६३
खण्डामलकी ...	४४९	नाराच चूर्ण ...	४६४
समुद्राद्य चूर्ण ...	४५०	गुडाष्टक ...	४६४
तारामण्डूर ...	४५०	हिंवादिवार्ति ...	४६४
बृहच्छतावरी मण्डूर ...	४५१	त्रिवृतादि वटिका ...	४६५
शतावरी मण्डूर ...	४५२	स्थिरादि घृत ...	४६५
शर्करामण्डूर ...	४५२	शुष्कमूलाद्य घृत ...	४६५
रसमण्डूर ...	४५३	नाराचयोग ...	४६५
त्रिनेत्राख्य रस ...	४५४	इति आनाहोदावर्त्ताधिकारः समाप्तः ।	
अमृत मण्डूर ...	४५४		

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
अथगुल्म चिकित्सा ...	४६६	वमनविधि ...	४८०
सामान्य चिकित्सा ...	४६६	गोधूमादियोग ...	४८०
मांसादि पिण्ड ...	४६६	दशमूली काथ ...	४८०
मातुलुंगादि ...	४६६	हिंवादियोग ...	४८०
हिंवादि चूर्ण ...	४६७	वल्लभ घृत ...	४८०
पृथिकादिचूर्ण ...	४६७	पाठाद्य चूर्ण ...	४८१
काङ्कायनगटिका ...	४६८	श्वदंष्ट्राद्य घृत ...	४८१
हृण्पादि घृत ...	४६९	बलाद्य घृत ...	४८२
द्राक्षाद्य घृत भार्गवपट्टपलक घृत...	४७०	अर्जुनघृत ...	४८२
दन्तीहरीतकी ...	४७१	पञ्चसाररस ...	४८२
लौहगुग्गुलु ...	४७१	हृदयार्णवरस ...	४८३
विरेचन ...	४७२	दुग्धपान ...	४८३
काम्पिलादियोग ...	४७२	गुग्गुभाभद्ररस ...	४८३
शतपुष्पादियोग ...	४७२	अकक्षीरलेप ...	४८४
क्षारादियोग ...	४७२	पद्मकेशरादियोग ...	४८४
तिलकाथादियोग ...	४७३	पुष्करमूल चूर्ण ...	४८४
वर्तिप्रयोग ...	४७३	इति हृदयरोगाधिकारः समाप्तः ।	
भल्लातक घृत ...	४७४	अथोरुग्रह चिकित्सा ...	४८५
शिखिवाडवरस ...	४७४	उरुग्रहकी उत्पत्ति ...	४८५
उड्डामर रस ...	४७५	उरुग्रहके लक्षण ...	४८५
नाराच रस ...	४७५	उरुग्रहकी चिकित्सा ...	४८५
विद्याधर रस ...	४७५	इति उरुग्रहाधिकारः समाप्तः ।	
काञ्चनमोहन रस ...	४७६	मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा ...	४८६
पित्तश्लेष्मजगुल्मचिकि० ...	४७६	सामान्य चिकित्सा ...	४८६
रक्त प्रदरचिकित्सा ...	४७६	अश्वगन्धादि ...	४८६
धात्रीपट्टपलक घृत ...	४७७	एरण्डकाथ ...	४८६
वचादि चूर्ण ...	४७७	एवीरुवीजकल्क ...	४८७
हिंवादि चूर्ण ...	४७८	सेकावगाहादि ...	४८७
कल्हाराद्य घृत ...	४७८	तृष्णापञ्चमूल ...	४८७
गुल्मरोगमें अपथ्य ...	४७९	शतावय्यादि काथ ...	४८७
इति गुल्माधिकारः समाप्तः ।		हरीतक्यादि काथ ...	४८७
अथ हृद्रोग चिकित्सा...	४७९	यवान्नक्षारादि ...	४८८
सामान्य चिकित्सा ...	४७९	शुंठ्यादि	४८८
शीतल प्रलेपादि: ...	४७९	वृहतीथावन्यादि ...	४८८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ईषदुष्णसगुडदुग्धपान	... ४८८	प्रमेहरोग हितकारक पदार्थ	... ४९८
गोक्षुरादियोग	... ४८८	दूर्वादिकाथ शुक्रमेहमें	... ४९८
मनशिलादियोग	... ४८८	आमलक्यादि चूर्ण शुक्रमेहमें	... ४९९
कण्टकारीका स्वरस	... ४८८	त्रिफलादिकाथ फेनप्रमेहमें	... ४९९
सरक्त मूत्रकच्छ चि०	... ४८९	हरीतक्यादिकाथ उदकमेहमें	... ४९९
शतावरी घृत और दुग्ध	... ४८९	पाठादिकाथ इक्षुमेहमें	... ४९९
त्रिकण्टकादि घृत	... ४८९	हरिद्रादिकाथ सान्द्रमेहमें	... ४९९
सुकुमार यमक०	... ४८९	कदम्बादि काथ सुरामेहमें	... ४९९
मूत्रकच्छहर लौह	... ४९१	दारुहरिद्रादि काथ पिष्टमेहमें	... ४९९
मूत्रकच्छान्तक रस	... ४९१	देवदार्वदि काथ शुक्रमेहमें	... ४९९
लघुलोकेश्वर रस	... ४९१	दारुहरिद्रादि काथ सिकतामेहमें	... ४९९
यष्टिमध्वादि काथ	... ४९२	पाठादिकाथ शीतमेहमें	... ४९९
इति मूत्रकच्छाधिकारः समाप्तः ।		यवान्यादिकाथ शनैः मेहमें	... ४९९
अथमूत्राघातचिकित्सा	... ४९२	जम्बूवादि काथ लालामेहमें	... ४९९
सामान्य चिकित्सा	... ४९२	पीपलकाकाथ नीहामेहमें	... ५००
मूत्राघातहट्योग	... ४९२	अमलतासकाकाथ हरिद्रमें	... ५००
चित्रकादि घृत	... ४९३	न्यग्रोधादिकाथ शुक्रमेहमें	... ५००
इति मूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।		त्रिफलाकाथ क्षारमेहमें	... ५००
अथाश्मरीरोग चिकित्सा	... ४९४	मंजिष्ठादिकाथ मंजिष्टमेहमें	... ५००
सामान्य चिकित्सा	... ४९४	अश्वत्थादिकाथ रक्तमेहमें	... ५००
वातज अश्मरीके लक्षण	... ४९४	लोघ्रादिकाथ पित्तमेहमें	... ५००
वातज अश्मरीकी चिकित्सा	... ४९४	गुडूच्यादिकाथ	... ५०१
शुंठ्यादि काथ	... ४९५	कंदादिकाथक्षौद्रमे०	... ५०१
वरुणादि काथ	... ४९५	आग्निमन्थादिकाथ वसामेहमें	... ५०१
अतिप्रसंगजरक्तस्राव चि०	... ४९५	पाठादिकाथ हस्तिमेहमें	... ५०१
कर्पूरयोग	... ४९५	वातजमेहका यत्न	... ५०१
वरुणादिघृत	... ४९५	गुंडादिकाथ कफपित्तमेहमें	... ५०१
शरादि पंचमूलाद्यघृत...	... ४९६	त्रिफलादिकाथ सब मेहमें	... ५०२
पाषाण वज्रकरस	... ४९६	आमलक्यादियोग सब मे०	... ५०२
त्रिविक्रमरस	... ४९७	द्वि० त्रिफलादिकाथ सब मे०	... ५०२
पाषाणभेदकरस	... ४९७	गोधावत्यादिकाथ असाध्यमे०	... ५०२
इति अश्मरीरोगाधिकारः समाप्तः ।		फलत्रिकादिकाथ	... ५०२
अथ प्रमेह रोगचिकित्सा	... ४९८	कंटकटोर्यादिकाथ सब मे०	... ५०२
सामान्यचिकित्सा	... ४९८	त्रिफला चूर्ण	... ५०२

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अश्मजतु चूर्ण सब मे०	५०२	लालाप्रमेहके लक्षण	५१८
लोहादि चूर्ण सब मे०	५०२	लालामेहकी चि०	५१८
न्यमोधादि चूर्ण सर्वमेहमें	५०३	पिष्टमेहके लक्षण	५१८
त्रिकण्टकाद्य घृत, तैल "	५०३	पिष्टप्रमेहकी चिकित्सा	५१८
दाडिमादिघृत "	५०४	बहुमूत्रप्रमेहके लक्षण	५१९
धान्वन्तर घृत "	५०५	तारकेश्वररस बहुमूत्रमेहमें	५१९
बह्मन्वान्तर घृत "	५०६	पंचवक्त्ररस सेवनविधि	५१९
शिलाजतुलेह "	५०६	क्षारप्रमेहके लक्षण	५१९
दशमूलादि घृत "	५०७	चन्द्रप्रभावटी सबमेहोंमें	५२०
जयंत्यादि चूर्ण "	५०८	हारिद्रमेहके लक्षण	५२०
विडंगादिलोह "	५०८	पारदादिभस्म, वेदविद्यावटी	५२०
श्वदंष्ट्रादिलोह "	५०९	रक्तमेहके लक्षण	५२१
चन्द्रप्रभावटिका	५०९	अर्जुनवृक्षका काथ रक्तमेहमें	५२१
मेहरोगीको नित्यकर्तव्य	५१२	अडुसेका काथ "	५२१
मेहरोगकी उत्पत्तिका कारण	५१२	विद्यावागीश्वररस "	५२१
साध्यासाध्यप्रमेहके भेद	५१२	हीरेकी भस्म "	५२१
मेहरोगके सामान्य लक्षण	५१२	मुशलीका चूर्ण "	५२१
विंशतिप्रमेहोंके नाम	५१२	मांजिष्टमेहके लक्षण	५२१
उदकमेहके लक्षण	५१३	मृगमालारस मांजिष्टमेहमें	५२१
उदकमेहमें उपचार	५१३	नीलमेहके लक्षण	५२२
मेषबन्धरस	५१३	हरिशंकर नील और कालमे०	५२२
इक्षुमेहके लक्षण	५१४	वसाप्रमेहके लक्षण	५२२
इक्षुमेहकी चिकित्सा	५१४	मेहकुलान्तकरस वसामेहमें	५२२
वंगेश्वररस	५१४	पंचवक्त्ररस वसामेहमें	५२३
सान्द्रमेहके लक्षण	५१४	मज्जामेहके लक्षण	५२३
सुरामेहकी चिकित्सा	५१४	मज्जामेहमें वसामेहोक्त चि०	५२३
सुरामेहके लक्षण	५१५	क्षौद्रमेहके लक्षण	५२३
मृगमालारस	५१५	इन्द्रवटी क्षौद्रमेहमें	५२३
उत्कटप्रमेह चिकि०	५१५	प्रमेह गजसिंहरस "	५२३
सिकतामेहके लक्षण	५१६	आनन्दभैरवरस "	५२३
नागेन्द्रगुटिका सिकतामे०	५१६	वेदविद्यावटी "	५२३
शुक्रप्रमेहके लक्षण	५१६	हस्तिमेहके लक्षण	५२४
मेहद्विरदसिंहरस शुक्रमे०	५१६	हरगौरी मृष्टिरस सर्वमेहोंमें	५२४
शीतमेहके लक्षण	५१७	निशादि तैल वातजपित्तजादिमें	५२५
नित्यारोगेश्वररस	५१७	कफप्रमेहके उपद्रव	५२५
पाठादि काथ	५१७	पित्तजप्रमेहके उपद्रव	५२५
शनैर्मेहलक्षण	५१८	वातजप्रमेहके उपद्रव	५२६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
प्रमेहरीग्रीके मरणचिह्न ...	५२६	बद्धोदरकी चिकित्सा... ..	५३८
दशमूलादिघृत ...	५२६	त्रैदोषिकोदरकी चिकित्सा ...	५३८
एलादियोग ...	५२७	सामुद्रादिचूर्ण	५३८
शुक्रमातृकावटी ...	५२७	नारायणचूर्ण ...	५३९
सोमेश्वररस वातजादिमे० ...	५२८	पुनर्नवादि काथ ...	५४०
मेहमुद्गरवाटिका सर्वमेहोंमें	५२९	बिन्दुघृत ..	५४०
करणादि तैल प्रमेहापिडिकामें ...	५३०	नाराचघृत ...	५४१
त्रिफलादि काथ सब मेहोंमें ...	५३०	बृहदभिमुख चूर्ण ...	५४१
रुद्रासनकाथ ” ...	५३१	त्रैलोक्य सुन्दररस ...	५४२
प्रमेहियोंमें असाध्य ...	५३१	उदरारिरस ...	५४३
इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः ।		वैश्वानरी वटिका ...	५४३
अथ स्थौल्यचिकित्सा... ..	५३२	जलोदरारिरस ...	५४४
स्थौल्यरोगकी साधारण चिकित्सा	५३२	बडवाभिमुखरस ...	५४५
संतर्पणकृत स्थौल्यकी चिकि०	५३२	अभिकुमाररस ...	५४५
प्रियङ्गुवादि हितकारक द्रव्य ...	५३२	वह्निवीर्यरस ...	५४६
वासीजल	५३२	श्लेष्मशैलेन्द्ररुद्ररस	५४७
उष्णान्नमण्ड ...	५३२	ब्रह्मवटी ...	५४८
व्योषाभिगुग्गुलु ...	५३३	उदरारिलोह ...	५४९
त्रिफलाद्य तैल ...	५३३	वह्निकुमाररस ...	५५०
दुर्गन्धहर उद्वर्तन ...	५३३	पिप्पल्यादिलोह ...	५५१
हरीतक्यादि अङ्गराग... ..	५३३	त्रिकट्वादिलोह ...	५५१
बाडवाभिरस ...	५३४	शोथोदरारिलोह ...	५५२
लोहरसायन ...	५३४	उदररोगमें अपथ्य	५५३
बिडंगादि लोह ...	५३६	इति उदररोगाधिकारः समाप्तः ।	
त्र्युषणादिलोह ...	५३६	अथ यकृत्प्रीहोदर चिकित्सा ...	५५३
त्रिकत्रयादिलोह	५३६	प्रीहावृद्धिका हेतु ...	५५३
इति स्थौल्यध्यायः ।		कफजप्रीहाके लक्षण ...	५५३
अथोदररोग चिकित्सा ...	५३७	पित्तजप्रीहाके लक्षण ...	५५४
उदररोगकी सामान्य चिकित्सा...	५३७	वातजप्रीहाके लक्षण ...	५५४
उदररोगकी उत्पत्तिका कारण ...	५३७	रक्तजप्रीहाके लक्षण ...	५५४
उदररोगका पूर्वरूप ...	५३७	असाध्यप्रीहाके लक्षण ...	५५४
वातोदरकी चिकित्सा ...	५३७	प्रीहामें स्नेहादि उपचार	५५४
पित्तोदरकी चिकित्सा... ..	५३७	यवानिकादि चूर्ण ...	५५४
कफोदरकी चिकित्सा ...	५३७	तालपुष्पजक्षार ...	५५५
प्रीहोदरकी चिकित्सा	५३८	शंखनाभिका चूर्ण ...	५५५
जलोदरकी चिकित्सा ...	५३८	शरपुंखाका चूर्ण ...	५५५

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक
अभयालवण ...	५५५	अरुक्करादिलेप ...	५६९
गुह्यपिप्पली ...	५५६	प्रलेपत्रय ...	५६९
चित्रकघृत ...	५५७	कौंचकी फलीसे उत्पन्न हुई सूजनका	
महारोहितकघृत ...	५५७	उपाय ...	५७०
वंगेश्वररस ...	५५८	वृश्चिक पत्रीसे उत्पन्न शोथका उपाय	५७०
प्रीहाशनिरस ...	५५९	सामान्यतासे शोथोत्पत्ति ...	५७०
अग्निगर्भावटिका ...	५५९	विषजशोथ ...	५७०
त्रिकत्रयादि लौह ...	५६०	शोथरोगमें अपथ्य ...	५७०
यकृतप्रीहादरप्रलौह ...	५६०	इति शोथाधिकारः समाप्तः ।	
त्रिलोचनरस ...	५६२		
इति यकृतप्रीहाधिकारः समाप्तः ।		अथ ब्रध्नवृद्धयधिकारः ...	५७०
अथ शोथचिकित्सा ...	५६२	प्रपौण्डरीकादि लेप ...	५७०
वातज शोथके लक्षण ...	५६२	निचुलादिलेप ...	५७१
पित्तज शोथके लक्षण ...	५६३	गुग्गुलु या एरण्डतैल गोमूत्रके साथ	५७१
कफज शोथके लक्षण ...	५६३	एरण्डतैल दूधके साथ ...	५७१
वातजशोथचिकि०	५६३	पुनर्नवा तैल आदि ...	५७१
त्रिविध शोथ चिकित्सा ...	५६४	गैरिकादिप्रलेप ...	५७१
पित्तजादिशोथचिकि० ...	५६४	पद्मात्पलादिप्रलेप ...	५७१
पथ्यादि काथ ...	५६५	जलीकाप्रयोग ...	५७२
पुनर्नवाष्टक ...	५६५	कुलत्थ्यादिस्वेद ...	५७२
सौवर्चलाद्यघृत ...	५६५	त्रिकट्वादि काथ ...	५७२
शुठ्यादिकाथ ...	५६६	चटकपक्षीक्षारादि ...	५७२
पुनर्नवादिघृत ...	५६६	वचासर्षपयोग ...	५७२
मानकघृत ...	५६६	गोमूत्रसिद्धहरीतकी ...	५७२
शुष्कमूलाद्यतैल ...	५६६	ऐन्द्रीमूलचूर्ण ...	५७३
बृहच्छुष्कमूलाद्यतैल ...	५६६	कुरण्डरोगचिकित्सा ...	५७३
दशमूलहरीतकी ...	५६७	गन्धर्वहस्तकतैल ...	५७३
मण्डूरचूर्ण ..	५६८	अन्नवृद्धिहरयोग ...	५७३
योगद्वय ...	५६८	शतपुष्पाद्य घृत ...	५७४
कटुकाद्यलौह ...	५६८	बृहत्सैन्धवादितैल ...	५७५
करञ्जपत्रप्रलेप ...	५६९	घत्तूरादिलेप ...	५७५
मानकघृत ...	५६९	सौरेश्वरघृत ...	५७५
भस्मातकादिप्रलेप ...	५६९	एकादशायस ...	५७६
मक्षीपीनवनीतादिप्रलेप ...	५६९	सैन्धवादियुटिका ...	५७६
		इति ब्रध्नवृद्धयधिकारः समाप्तः ।	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अथ गलगण्डगण्डमाला चिकित्सा	५७७	सौरेश्वर घृत	५८६
सामान्ययत्न	५७७	महासौरेश्वरघृत	५८७
निचुलादिलेप	५७७	वृद्धदारकाद्यघृत	५८८
सर्षपादिलेप	५७७	वृद्धदारक घृत और तैल	५८९
सिन्दूरादितैल	५७८	विडंगाद्य तैल	५८९
तुम्बातैल	५७८	धान्यादिघृतगुग्गुलु	५८९
शाखोटतैल	५७८	चक्रेश्वर रस	५९०
निर्गुण्डीतैल	५७९	नित्यानन्द रस	५९०
त्रिफलादिगुटिका	५७९	कामदेव रस	५९२
बचाद्यघृत	५७९	पंचाननघृत और तैल	५९२
पंचतिक्तकगुग्गुलु	५८०	पुनर्नवादि प्रलेप	५९३
अपचीचिकित्सा	५८०	श्रीपदादिलौह	५९४
त्रिगुणाख्य ताम्र	५८०	वातरक्तान्तक रस	५९४
न्योपादितैल	५८१	इति श्रीपदाधिकारः समाप्तः ।	
चन्दनाद्यतैल	५८१	अथ विद्रधिचिकित्साधिकारः	५९५
गुञ्जाद्यतैल	५८१	सामान्य चिकित्सा	५९५
इति गलगण्डगण्डमालाधिकारः समाप्तः ।		वातविद्रधिकी चिकित्सा	५९५
अथ श्रीपदचिकित्सा	५८२	पित्तविद्रधिकी चिकित्सा	५९६
सामान्ययत्न	५८२	कफविद्रधिकी चिकित्सा	५९७
सर्षपलेप	५८२	भूनिम्बादि चूर्ण	५९८
धतूरेण्डादिलेप	५८२	आभ्यन्तरिकविद्रधिचिकित्सा	५९८
रूपिकामूललेप	५८२	प्रियंगवाद्य तैल	५९९
रक्तचित्रकादि	५८२	दशमूलाद्य तैल	५९९
सिद्धार्थकादिलेप	५८२	वरणादिकाथ	५९९
हरिद्रादियोग	५८२	इति विद्रधिरोगाधिकारः समाप्तः ।	
कृष्णाद्य मोदक	५८३	अथ व्रणशोथाधिकारः	६००
जिङ्गिनीदलस्वेद	५८३	सामान्य यत्न	६००
मंजिष्ठादिलेप	५८३	वातशोथ चिकित्सा	६००
पूतीकस्वरसादियोग	५८३	पित्तशोथ चिकित्सा	६००
हरीतकीयोग	५८३	कफशोथ चिकित्सा	६०१
पुनर्नवादि चूर्ण	५८३	तिलाष्टक लेप	६०१
वृद्धदारक चूर्ण	५८४	व्रणरोपण चिकित्सा	६०२
पिप्पल्यादिचूर्ण	५८४	वटिका गुग्गुलु	६०२
निर्गुण्ड्यादि सन्धान	५८५	अमृतागुग्गुलु	६०२
दन्त्यादिघृत	५८५	गुणवतीवर्ती	६०४

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
ब्रणशोथलेप	६०४	विष्यन्दन तैल	६१७
ब्रजगजांकुश रस	६०४	करवीरादि तैल	६१८
ककोटाद्य तैल	६०५	निशादि तैल	६१८
इति ब्रणशोथाधिकारः समाप्तः ।		कालाम्नि रस	६१८
अथ शारीरब्रण, सद्योब्रणाधिकारः	६०५	साध्यासाध्यभेद	६१८
सामान्य चिकित्सा	६०५	रविताण्डव रस	६१९
विडंगादिवाटिका गुग्गुलु	६०६	भूनिम्बादि चूर्ण और काथ	६१९
अमृतावटिका गुग्गुलु	६०७	गुग्गुल्वादि योग	६२०
जात्यादिघृत	६०७	भगन्दरब्रणलेप	६२०
गौराद्यघृत	६०८	सैन्धवादि तैल	६२१
करञ्जाद्यघृत	६०८	हरिद्रादि तैल	६२१
विपरीतिमल्ल तैल	६०९	भगन्दररोगमें अपथ्य	६२२
कुठारक तैल	६०९	इति भगन्दराधिकारः समाप्तः ।	
दूर्वातैल	६१०	अथउपदंशचिकित्साधिकारः	६२२
मंजिष्ठाद्य घृत	६१०	सामान्य यत्न	६२२
लांगली घृत	६११	पटोलादि काथ	६२२
पाटली तैल	६११	प्रपौण्डरीकादि काथ	६२३
चन्दनादि यमक	६११	गैरिकादि प्रलेप	६२३
मनःशिलादिलेप त्वग्निवशुद्धिमें	६११	निम्बाज्जुनादि सेक, लेप, घृत	६२३
अयोरज आदिका लेप	६१२	त्रिफलादि काथ	६२३
त्वग्लोमादिका लेप रोमोंके जमानेमें	६१२	दान्यादि प्रलेप	६२४
ब्रणरोगमें अपथ्य	६१२	वटाङ्कुरादि लेप, और चूर्ण	६२४
इति शरीररोगाधिकारः समाप्तः ।		भूनिम्बादि घृत	६२४
नाडीब्रणचिकित्सा	६१३	उपदंशप्रयोगवर्णन	६२४
गुग्गुल्वादि चूर्ण	६१३	गृहधूमादि तैल	६२५
कार्पास तैल	६१३	कोपीतक्यादि तैल	६२५
कुम्भीकाद्य तैल	६१३	महाशंख प्रलेप	६२५
निर्गुण्डी तैल	६१४	कुप्रादि लेप	६२५
हंसपदी तैल	६१४	खदिरसार प्रलेप	६२५
इति नाडीब्रणाधिकारः समाप्तः ।		त्रिफला योग	६२६
भगन्दरचिकित्साधिकारः	६१४	सगन्धक घृत	६२६
सामान्य यत्न	६१४	पंचारविन्द घृत	६२६
नवकार्षिक गुग्गुलु	६१६	तुत्यादि लेप	६२६
सप्तविंशति गुग्गुलु	६१६	जीरकादि लेप	६२७
भगन्दरनाशक योग	६१७	लोहादि लेप	६२७
		भृंगराजादि लेप	६२७
		इति उपदंशरोगाधिकारः समाप्तः ।	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अथशूकदोषचिकित्साधिकारः ...	६२७	महाभल्लतक	६४०
सामान्य यत्न ...	६२७	पंचतिक्त घृत ...	६४२
अष्टोलादि चिकित्सा ...	६२७	खदिरादिपंचतिक्तघृत ...	६४३
इति शूकदोषाधिकारः समाप्तः ।		तिक्तक घृत ...	६४३
अथ भग्नचिकित्साधिकारः ...	६२८	महातिक्तक घृत ...	६४४
सामान्य यत्न ...	६२८	वज्रक घृत ...	६४५
अस्थिसंहारादियोग ...	६२९	बृहत्पंचतिक्त घृत और तैल ...	६४६
रसोनादि कल्क ...	६२९	महामार्कर तैल ...	६४६
वराटिका चूर्ण ...	६२९	बृहद्बुद्धी तैल ...	६४८
लाक्षादि चूर्ण ...	६२९	तृणक तैल ...	६४९
आभागुग्गुलु	६२९	महातृणक तैल ...	६४९
अभिघातजपीडामें लेप ...	६३०	वज्रतैल ...	६५०
भग्नरोगमें अपथ्य	६३०	बृहन्मरिचाय तैल ...	६५१
वज्रवल्यादि गुग्गुलु ...	६३०	बृहत्सोमराजी तैल	६५२
कोष्ठशुद्धयर्थ उपाय ...	६३१	विषतैल ...	६५३
इति भग्नदराधिकारः समाप्तः ।		पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ...	६५४
अथ कुष्ठचिकित्साधिकारः ...	६३१	महातलेश्वर रस ...	६५४
कुष्ठरोगके बीसभेद ...	६३१	भानुतैल ...	६५५
सामान्य यत्न ...	६३१	वडवानल रस ...	६५५
मनःशिलादि लेप ...	६३२	वृद्धदारक घृत ...	६५७
करञ्जबीजादि लेप ...	६३२	विस्फोटक कुष्ठके लक्षण ...	६५७
अमलतास आदिके पत्तोंका लेप ...	६३२	कनक संकोच रस ...	६५७
षड्योग ...	६३३	कुष्ठान्तक रस ...	६५८
हरिद्रादि तैल ...	६३४	गजचर्म कुष्ठके लक्षण ...	६५८
ददु आदि कुष्ठोंमें लेप ...	६३४	काकणप्रवटी ...	६५९
नवकषाय ...	६३६	वज्रतैल ...	६५९
पटोलादि काथ ...	६३६	सूर्यकान्त रस ...	६६०
फाकोदुम्बरिकादि काथ	६३६	कुष्ठ कुठार रस ...	६६०
पंचतिक्त घृत ...	६३६	लंकेश्वर रस ...	६६१
पिप्पल्यादि योग ...	६३७	कुष्ठान्तक रस ...	६६१
विडंगादि लेह ...	६३७	बालकादिलेप ...	६६२
विजया योग ...	६३७	रसादिप्रलेप	६६२
वाकुची घृत ...	६३७	कूष्मांड बीजादि लेप ...	६६३
कुष्ठहरयोग ...	६३८	पारदादिलेप ...	६६३
एकविंशति गुग्गुलु ...	६३८	वेताल रस ...	६६३
गुग्गुलुपंचतिक्तघृत ...	६३९	लंकाधिपेश्वर रस ...	६६३
		चक्रमर्वादिलेप ...	६६४

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
कुष्ठशैलेन्द्र रस ...	६६४	हरितक्यादिकाथ ...	६७६
पूर्णचन्द्र लेप	६६५	समसप्तक चूर्ण	६७६
सप्तामृत लेप ...	६६६	सुपकजम्बीररस ...	६७७
मित्रतैल ...	६६६	धन्याकलेह ...	६७७
धात्र्यादि लेप ...	६६७	एलादिमन्थ ...	६७७
बृहत्यादि लोह ...	६६७	अम्लपित्तजवमनहर चूर्ण ...	६७७
योगराज लोह	६६७	द्राक्षाघृत ...	६७८
बृहत्पञ्चनिम्बचूर्ण ...	६६८	प्रथमखण्डपिप्पली ...	६७८
अमृतांकुरलोह ...	६६९	द्वितीयखण्ड पिप्पली ...	६७८
अमृताणलोह ...	६७१	खण्डशुंठो ...	६७९
समशर्करगुग्गुलु ...	६७१	अभिमुख ताम्र ...	६८०
काकमाच्यादिवटी श्वेतकुष्ठमें ...	६७२	वातपित्तान्तक रस ...	६८०
स्नुहादिलेप ...	६७२	पञ्चाननवटिका ...	६८१
वागुबीजादि लेप ...	६७३	पानीयभक्तवटिका ...	६८२
धात्र्यादियोग ...	६७३	नारिकेलामृत ...	६८५
आरग्वधादि तैल ...	६७३	आमलक्यादिलौह ...	६८६
इति कुष्ठरोगाधिकारः समाप्तः ।		लौहमृतलौह ...	६८६
अथ शीतपित्तादीचिकित्साधिकारः ६७३		इति अम्लपित्ताधिकारः समाप्तः ।	
कडुवे तैलकी मालिस, उष्णजलका		अथ विसर्पचिकित्साधिकारः ...	६८८
सेक ...	७७३	सामान्य यत्न ...	६८८
उदररोगमें वमन, विरेचन, ...	६७३	पटोलादियोग वमनार्थ ...	६८८
श्वेतसर्षपादि लेप	६७३	मदनफलादि योग	६८९
दूर्वादि प्रलेप ...	६७३	त्रिवृतादिचूर्ण विरेचनार्थ	६८९
हरिद्रादिप्रलेप ...	६७४	द्राक्षादिकाथ ,	६८९
हितकारी भोजन ...	६७४	पथ्य भोजन ...	६८९
पटोलादि काथ	६७४	वातजविसर्प चिकित्सा ...	६८९
अभिमन्थमूल घृतके साथ ...	६७४	पित्तजविसर्प चिकित्सा ...	६९०
इति शीतपित्ताधिकारः समाप्तः ।		कफजविसर्प चि० ...	६९१
अथाम्लपित्तचिकित्साधिकारः ...	६७५	सर्वविसर्पचिकित्सा ...	६९२
वमन विरेचनाद्यर्थयोग ...	६७५	बृहदमृतादिकाथ ...	६९२
१-धात्र्यादियोग ...	६७५	अमृतादिकाथ ...	६९२
२-धात्र्यादि योग ...	६७५	घृतादि (कुष्ठारोगोंमें उक्त) ...	६९२
यवादिकाथ	६७५	कालाभिरुद्ररस ...	६९३
किरातादिकाथ	६७६	विसर्परोगमें अपथ्य ...	६९३
दशांग काथ ...	६७६	इति विसर्पाधिकारः समाप्तः ।	
बासादि काथ ...	६७६		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अथ विस्फोटकचिकित्साधिकारः...	६९३	शिरीषादिलेप ...	७००
सामान्ययत्न ...	६९३	शालककाथ ...	७०१
पटोलादिकाथ वमनार्थ ...	६९३	दुरालभादि काथ ...	७०१
अशेषविस्फोटकचिकित्सा ...	६९४	अमृतादि काथ (पूर्वोक्त)	७०१
द्विपंचमूलादिकाथ ...	६९४	निम्बादि काथ ...	७०१
द्राक्षादि काथ ...	६९४	काञ्चनारादि काथ ...	७०१
भूनिम्बादि काथ ...	६९५	बिल्वपत्र मूर्च्छितपारदरस ...	७०१
पटोलादि काथ ...	६९५	पटोलादि काथ ...	७०२
पटोलात्रिफलादि काथ...	६९५	पटोला मूलादि काथ	७०२
भूनिम्बवासादि काथ...	६९५	खदिराष्टक ...	७०२
पंचतितकघृत ...	६९६	मसूरिकाके पकनेके समयकी औषध	७०३
महापद्मकघृत ...	६९६	बादरचूर्णादि योग ...	७०३
कम्पिलादि तैल ...	६९६	मुखकण्ठरोगहर योग ...	७०३
इति विस्फोटकाधिकारः समाप्तः ।		अष्टाङ्गाकावलेहादि योग	७०३
अथ स्नायुचिकित्साधिकारः ...	६९७	मसूरिकान्तकर रस	७०४
सामान्य यत्न ...	६९७	इति मसूरिकाधिकारः समाप्तः ।	
काजिकसिद्धभेकस्वेद ...	६९७	अथ क्षुद्ररोगचिकित्साधिकारः ...	७०५
हिज्जलकबीजलेप ...	६९७	अजगलिका चिकित्सा ...	७०५
शिम्भुमूलादि लेप	६९७	इन्द्रलुप्तहरलेप ...	७०५
मोक्षत्वग्लेप ...	६९७	मालत्यादितैल	७०६
सप्तपर्णमूलका पान और लेप	६९७	सुंठ्यादितैल ...	७०६
गन्धघृतनिर्गुण्डीस्वरस ...	६९७	आदित्यपाकतैल ...	७०७
हिंग्वादियोग ...	६९७	यष्टिमध्वाद्यतैल ...	७०७
सघृतपरण्डमूल ...	६९७	सर्पपकत्कसे स्नान या लेप	७०७
इति स्नायुरोगाधिकारः समाप्तः ।		प्रियालबीजादिलेप ...	७०७
अथ मसूरिका चिकित्साधिकारः ...	६९८	नागरंगपलत्वचासे स्नानादि ...	७०८
सामान्ययत्न	६९८	नीलोत्पलादिलेप ...	७०८
मसूरिकाहरयोग ...	६९८	चित्रकादितैल	७०८
मसूरिकादि अद्भुत क्रिया ...	६९९	गुंजातैल ...	७०८
वानीरादिकाथ ...	६९९	भृङ्गराजतैल ...	७०८
वेणुत्वगादिधूप ...	६९९	हरिद्रादितैल ...	७०९
दशमूलादि काथ ...	७००	वंशतैल ...	७०९
गुह्यादि काथ	७००	काकमार्चा तैल ...	७०९
श्यामापर्पटकादि काथ ...	७००	लोहमूलादिलेप ...	७०९
द्राक्षादिकाथ ...	७००	शंखचूर्णादि ...	७०९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
धात्रीफलादि लेप	७१०	कालकचूर्ण ...	७२४
त्रिफलादिलेप ...	७१०	पीतकचूर्ण ...	७२५
ओण्डपुष्पनस्य	७११	अशेषदन्तरोग चि०	७२५
चन्दनादितैल ...	७११	कृमिशूलादि चि० ...	७२५
नीलबिन्दुतैल	७११	मलरोग चिकित्सा ...	७२७
बृहद्भृंगराजतैल ...	७१२	पूतिगंधहर योग ...	७२७
मुशसौंकी चिकित्सा ...	७१४	अरिमेदादि तैल ...	७२८
व्यंग (झाई) की चिकित्सा ...	७१४	लाक्षादि तैल ...	७२८
पुनर्नवादि उद्धर्तन ...	७१५	सहिकारी वटिका ...	७२९
मक्षिकाकी चिकित्सा...	७१५	स्वल्पखदिर वटिका ...	७२९
माक्षिकादिलेप ...	७१६	बृहत्खदिर वटिका ...	७३०
महिषीनवनीतादि ...	७१६	सप्तामृतरस ...	७३१
प्रथम मंजिष्ठादि तैल ...	७१६	इति मुखरोगाधिकारः समाप्तः ।	
द्वितीय मंजिष्ठादि तैल ...	७१७	अथ कर्णरोगचिकित्साधिकारः ...	७३२
तृतीय मंजिष्ठादि तैल ...	७१७	सामान्ययत्न ...	७३२
कुंकुमादि तैल	७१७	कपित्थादि योग कर्णशूलमें ...	७३२
गुदनिर्गम (कांच निकलने) की चिकित्सा ...	७१८	लसुनादि योग ...	७३२
वृक्षाम्लकादि योग ...	७१८	आर्द्रकादि ...	७३२
चाङ्गेरी घृत ...	७१८	सौभाञ्जनरसतैल ...	७३२
मूपिकादि तैल ...	७१९	सेहुण्डका स्वरस कर्णशूलमें ...	७३२
इति शुद्ररोगाधिकारः समाप्तः ।		आकके पत्तोंका स्वरस ...	७३२
अथ मुखरोगचिकित्साधिकारः ...	७१९	वकरीका मूत्र और सैधानोन ...	७३३
सामान्ययत्न ...	७१९	पिप्पलके पत्तोंका स्वरस ...	७३३
ओष्ठास्फुटनादि चिकित्सा ...	७२०	हिंवादि तैल ...	७३३
शीतादिप्रशमनार्थ योग ...	७२०	राक्षादिगुग्गुल, ...	७३३
दन्तपुष्पटक, दन्तवैदर्भकी चिकित्सा ...	७२१	कर्णरोगहर नस्य ...	७३४
दन्तचाल चिकित्सा	७२१	क्षारतैल ...	७३४
सहाचर तैल ...	७२२	स्वर्जिकाश तैल ...	७३४
बकुलादि तैल ...	७२२	दशमूल तैल ...	७३५
कृमिदन्तक चिकित्सा ...	७२३	बिल्वतैल ...	७३५
दन्तरोगीके लिये पथ्य ...	७२३	जम्बूवादियोग ...	७३५
उपाजिह्वक, कण्ठशालूक, गलशण्डीकी चिकित्सा ...	७२३	ताम्यूलादियोग ...	७३५
कण्ठरोहिणी चि० ...	७२४	नीलबह्मादितैल ...	७३५
		रसांजनादि योग ...	७३५
		निर्गुड्यादितैल ...	७३५
		जातीतैल ...	७३५

विषयः	पृष्ठांक.	विषयः	पृष्ठांक.
बृहत् शम्बुकाय तैल ...	७३६	सैन्धवादिलेप ...	७४४
शम्बुकाय तैल ...	७३६	गिरिमृच्चन्दनादि ...	७४५
धुतूर तैल ...	७३७	भूम्यामलकी ...	७४५
केतक्यादि लेप ...	७३७	बृहत्यादिवर्ति ...	७४५
पुत्रजीव लेप ...	७३७	हरिद्रादि अंजन ...	७४५
मूपलीगोलकप्रलेप ...	७३८	गैरिकादि अंजन ...	७४५
जीवनाय तैल ...	७३८	मंजिष्ठादि प्रलेप ...	७४५
गन्धक तैल ...	७३८	प्रपौण्डरीकादि लेप ...	७४५
निर्गुण्डी तैल ...	७३८	शुक्र्यादि अंजन ...	७४६
शतावरी तैल ...	७३९	पारिभद्रवल्कलादि ...	७४६
इति कर्णरोगाधिकारः समाप्तः ।		विल्वाञ्जन ...	७४६
अथ नासारोगचिकित्साधिकारः ...	७३९	सैन्धवादियोग ...	७४६
न्योपचित्रकादि चूर्ण ...	७३९	वासकादि काथ ...	७४७
शीतोदक पान ...	७३९	बृहद्वासकादि काथ ...	७४७
दाडिमाण चूर्ण ...	७३९	गुडूच्यादि काथ ...	७४७
त्रिफलाय चूर्ण ...	७४०	चिभीतकादि ...	७४८
पाठाय तैल ...	७४०	विभीतकादि घृत ...	७४८
कलिगाय तैल ...	७४०	चन्दनादिवर्ति ...	७४८
चित्रहरीतक्यादि ...	७४१	चन्द्रोदयावर्ति ...	७४८
व्याघ्रीदन्त्यादि तैल ...	७४१	त्रिकट्टादिवर्ति ...	७४९
त्रिकटु बिडंगादि तैल ...	७४१	नागार्जुनादिवटिका ...	७४९
मरिचादि चूर्ण ...	७४२	चन्द्रप्रभावर्ति ...	७५०
सोषणादि योग ...	७४२	रक्तचन्दनादिवर्ति ...	७५०
गृध्रूमादि तैल ...	७४२	नीलोत्पलादि अञ्जन ...	७५०
करवीराय तैल ...	७४२	मृणालादि ...	७५१
चित्रकादि तैल ...	७४३	हरिद्रादि ...	७५१
इति नासाधिकारः समाप्तः ।		नागादिवर्ति ...	७५१
चक्षुरोगचिकित्साधिकारः ...	७४३	तारकाय वटिका ...	७५१
सामान्य यत्न ...	७४३	टंकणादि अञ्जन ...	७५१
श्रीवासादियोग ...	७४३	निशादि अंजन ...	७५१
लघनादि उपचार ...	७४३	कण्टकारि सिद्धाञ्जन ...	७५२
नेत्ररोगाधिकारों लघन ...	७४३	दशमूलघृत ...	७५२
स्वेदप्रलेपादि ...	७४४	त्रिफलाचूर्ण ...	७५३
पटोलादि व्यञ्जन ...	७४४	स्वल्पनिषेधाद्युक्त ...	७५३
घात्रीफलरस ...	७४४	मध्यमत्रिफलाघृत ...	७५३
हरीतकीलेप ...	७४४	बृहन्निफलाघृत ...	७५४

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
भृंगराज तैल ...	७५५	शारिवादिलेप ...	७७०
गोमयाद्य तैल और मधुरघृत ...	७५५	भृंगराजमूलनस्य	७७०
नृपवल्लभ तैल ...	७५६	पटोरिमूल लेप ...	७७०
तोयस्त्रावकी सलक्षण चिकित्सा...	७५७	इति शिरोरोगाधिकारस्समाप्तः ।	
अजित तैल ...	७५७	अथ प्रदररोगचिकित्साधिकारः	७७०
अमृताघृतगुग्गुलु ...	७५७	वातजप्रदररोगकी चिकित्सा ...	७७०
वासाभृतगुग्गुलु ...	७५८	पित्तजआदि प्रदरोंकी चिकित्सा...	७७१
त्रिफलादि लौह ...	७५९	दान्यादि काथ ...	७७२
पडंगरस ...	७५९	शुष्कवदरादिचूर्ण ...	७७२
रतौधेकी औषधि ...	७६०	चन्दनादि चूर्ण ...	७७२
हरिद्रादि वर्ति ...	७६१	प्रदरान्तक लौह ...	७७३
भूधात्री सिद्धवर्ति ...	७६१	पुष्पानुग चूर्ण ...	७७४
पुष्पचिकित्सा और कृमिघ्नभूम ...	७६१	शीतकल्याणकघृत ...	७७५
इति चक्षुरोगाधिकारः समाप्तः ।		अशोकघृत ...	७७५
अथ शिरोरोगचिकित्साधिकारः ...	७६२	शिलाजतु वटिका ...	७७६
सामान्य यत्न	७६२	प्रदरान्तकरस	७७८
चर्मभन्धन विधि ...	७६२	इति प्रदररोगाधिकारस्समाप्तः ।	
नागरसिद्धनस्य ...	७६३	अथ सोमरोगचिकित्साधिकारः ...	७७८
मृणालविसादिकाथ ...	७६३	सोमरोग निदान आदि ...	७७८
यष्टिमध्वादिघृत	७६३	मूत्रातिसारके लक्षण	७७८
कृष्णाह्लादिलेप ...	७६३	कदलीफलादियोग ...	७७९
देवदावादि तैल ...	७६३	मापचूर्णादि ...	७७९
त्रिकट्वादि काथ ...	७६३	धात्रीघृत ...	७७९
नतोत्पलादिलेप ...	७६४	इति सोमरोगाधिकारः समाप्तः ।	
प्रपौण्डरीकादिलेप ...	७६४	अथ योनिव्याभिचिकित्साधिकारः	७८०
जीवकाश तैल	७६४	सामान्यचिकित्सा ...	७८०
षडविन्दु तैल ...	७६४	कदम्बमूलादियोग ...	७८०
दशमूल तैल ...	७६५	रास्नादिसिद्धदुग्ध ...	७८०
द्वितीय षडविन्दु तैल...	७६५	वासकादियोग ...	७८०
वरुणाद्य घृत ...	७६५	शतावरीघृत ...	७८१
मयूराद्य घृत ...	७६६	पेटारीमूललेप ...	७८१
द्वितीय मयूराद्य घृत ...	७६७	मूषलीका लेप ...	७८१
त्र्युषणादि गुटिका ...	७६८	शम्युकमांसलेप ...	७८१
सूर्योदयरस ...	७६८	घोषापुष्पलेप ...	७८१
महालक्ष्मीविलासरस ...	७६९	फलघृत ...	७८१
दशमूलादिघृत ...	७७०	शंखभस्मादिलेप ...	७८२

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
रक्तांजनपुष्पलेप ...	७८२	तृतीयसे षष्ठ मास पर्यन्त गर्भशूल	७९६
आरग्वधादि तैल ...	७८३	सप्तमसे दशममास पर्यन्त गर्भशूल-	
कपूरादेतैल ...	७८३	लकी चिकित्सा ...	७९७
लोमहर क्षारतैल ...	७८३	चन्दनादिप्रलेप	७९८
वातज पुष्पदोषकी निदान और		काकोदुम्बरफलादियोग ...	७९८
चिकित्सा ...	७८४	बृहद्र्भक्षिन्तामणिरस...	७९८
पित्तज पुरुषदोषकी नि० ...	७८४	गर्भविनोदरस ...	७९८
कफजपुष्पदोषनि० ...	७८५	गर्भस्थिति और शूलहर योग ...	७९९
प्रथमपुष्पप्रवृत्तिदिनफल ...	७८६	विकृतगर्भके सप्तधा होनेका हेतु...	७९९
ऋतुमती स्त्रीके स्नानादिकी विधि	७८७	विकृतगर्भके स्वरूप ...	७९९
किस अवस्थामें स्त्रियोंको रज होताहै	७८७	गर्भपातकी औषधि ...	८००
गर्भाधानके समयका निर्णय ...	७८७	गर्भिणीज्वरका यत्न ...	८००
पुत्र, कन्या, और नपुंसककी		सहचरादि काथ ...	८००
उत्पत्तिमें हेतु ...	७८७	एरण्डमूलादि काथ ...	८०१
गर्भाधानके नियम ...	७८७	रास्नादि काथ ...	८०१
गर्भधारणार्थ अनेक योग ...	७८८	मुस्तादि काथ ...	८०१
बन्ध्यागर्भप्रदयोग ...	७८९	आम्रत्वगादि काथ ...	८०१
सोमघृत ...	७८९	ह्रीवेरादि काथ ...	८०१
पुंसवन विधि ...	७९१	इति योनिव्यापद्रोगाधिकारः समाप्तः ।	
तत्कालगर्भ धारणके लक्षण	७९१	अथ प्रसूतिकाव्याधिचिकित्साधिकारः	८०२
पूर्णगर्भके लक्षण ...	७९१	मुखसे प्रसव होनेका यत्न ...	८०२
मासक्रमसे गर्भाङ्गरचनाका वर्णन	७९२	मुखसे प्रसव होनेके लिये समुच्चय यत्न	८०३
गर्भविलासरस ...	७९३	नवें महीने प्रसूतिकाको सूतिका	
प्रथम गर्भचिन्तामणिरस ...	७९३	गृहमें प्रवेश करना ...	८०३
द्वितीय गर्भचिन्तामणिरस ...	७९३	सूतिका गृहके लक्षण ...	८०३
तृतीय गर्भचिन्तामणिरस ...	७९४	प्रसव होनेके लक्षण ...	८०४
गर्भवती स्त्रियोंके त्यागनेयोग्य वस्तु	७९४	प्रसवके समय कर्तव्य...	८०४
गर्भिणी स्त्रीको कबसे मैथुनका त्याग		पान खानेका मंत्र ...	८०५
करना चाहिये ...	७९४	जलपीनेका मंत्र ...	८०५
आठवें महीनेमें मैथुन करनेसे जो जो		सुखप्रसव होनेके लिये यत्न ...	८०५
दोष होतेहैं उनका वर्णन ...	७९५	पुत्र और कन्याको उत्पत्तिज्ञानार्थ यत्न	८०६
गर्भिणी स्त्रियोंके ऋतुप्रवर्तन और		३० और १५ का यन्त्र ...	८०६
रक्तस्रावकी चिकित्सा तथा		अमरा पातन और नारी शुद्धि ...	८०७
गर्भपात और मूढगर्भ होनेका		प्रसूताकेलिये हितकारी योग ...	८०७
कारण और लक्षण ...	७९५	मकल्लाकादि शूलोंकी चिकित्सा...	८०८
और द्वितीय मासमें उत्पन्न गर्भशूलकी		सूतिकारोगके निदान....	८०८
चिकित्सा ...	७९५		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
सूतिका रोगोंकी सम्प्राप्ति	... ८०९	अतिविषादि	... ८१८
सूतिका चिकित्सार्थ लंघनादि ८०९	यष्टिनिम्बादि	... ८१८
दशमूली काथ	... ८०९	वचादि	... ८१८
ह्रीबेरादि काथ	... ८०९	बलादि	... ८१९
सहाचर काथ ८१०	मुण्डीतैल ८१९
पातझिण्ठी काथ	... ८१०	श्यामाद्यतैल	... ८१९
मुद्रयूषादि...	... ८१०	स्तनादिदृष्टिमें कासीसादितैल ८२०
सहाचरादि काथ	... ८१०	वायविडंगनास ८२०
दशमूल्यादियूप	... ८१०	दीपककी बत्तीका फूल	... ८२०
दशमूलसिद्धदुग्ध	... ८११	माध्वीमूल	... ८२०
देवदावादि काथ	... ८११	श्वेतबलादि...	... ८२०
पिप्पल्यादियूप ८११	स्वामीके चरणारविन्दका धोवन...	८२०
यवाद्यघृत... ८१२	इति स्त्रीरोगाधिकारः समाप्तः ।	
भटोत्कटादिघृत	... ८१२	अथ बालरोगचिकित्सा	... ८२१
पिप्पल्यादिघृत	... ८१३	तीनप्रकारके बालक	... ८२१
बृहत्सूतिविनोदरस	... ८१३	सामान्य यन्न	... ८२१
स्तनरोगके हेतु	... ८१३	माताके दूध न होय तो किसका दूध	... ८२१
शुद्ध दूधके लक्षण	... ८१४	देना चाहिये	... ८२१
दूषितदुग्धशुद्ध्यर्थयोग	... ८१४	जो बालक दूध न पिये उसका यन्न	... ८२१
वज्रकांजिक	... ८१४	शोथनाशक औषधि	... ८२१
सूतिकारिरस	... ८१४	नाभिपाककी औषधि	... ८२२
पंचजीरकगुड	... ८१५	हरिद्रादि	... ८२२
सूतीरोगहर यत्न	... ८१५	मूर्वादि	... ८२२
सूतिकारोगान्तकरस	... ८१६	स्तन्यरोगकी औषधि	... ८२२
इति सूतिकाधिकारः समाप्तः ।		कृमिरोगकी औषधि	... ८२२
अथ स्तनरोगचिकित्साधिकारः	... ८१६	अनासक रोगकी औषधि	... ८२३
स्तनशोथचिकित्सा	... ८१६	सर्वज्वररोगकी औषधि	... ८२३
इन्द्रायण प्रलेप	... ८१६	चोरकरोगके लक्षण	... ८२३
निशाकनक लेप	... ८१६	चोरकरोगकी औषधि	... ८२३
मुखमें धारण करनेकी औषधि	... ८१६	जलप्रदान	... ८२३
पिप्पली काथ	... ८१७	मुस्तादि काथ	... ८२३
स्तनरोगमें शीतक्रिया	... ८१७	कटुकादि चूर्ण	... ८२३
स्तनगतपकीहुई सृजनका चीरना	... ८१७	शृंग्यादि चूर्ण	... ८२४
स्तनविद्रधि चिकित्सा...	... ८१७	हरिद्रादि चूर्ण	... ८२४
महिषी नवनीतादियोग	... ८१७	मुस्तादि चूर्ण	... ८२४
श्रीपर्णी तैल	... ८१७	बालरोगचिकित्सा	... ८२४
परण्ड मूलादि प्रलेप	... ८१८	पारसीक यवान्यादि	... ८२४

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
सर्पत्वगादि	८२५	हरिद्रादि ...	८३१
बदरीपत्रादि ...	८२५	जम्बीररसादि ...	८३१
धातकी बिल्वादिलेह ...	८२५	कुमार कल्याणघृत ...	८३२
रजन्यादिलेह ...	८२५	अष्टमंगलघृत ...	८३२
त्रिफलादि ...	८२५	लाक्षादि तैल ...	८३३
नागरादि काथ ...	८२६	महामुण्डीतकादि ...	८३३
कपित्थरसादि ...	८२६	श्वेतापराजितादि ...	८३३
मंजिष्ठादि ...	८२६	मंत्र ...	८३३
सिन्दूरादि लेप ...	८२६	बंधन ...	८३४
वालकुटजावलेह	८२६	ग्रहदोष दूर करनेकी औषधि ...	८३४
नागार्जुन चूर्ण ...	८२७	सप्तदलपुष्पादि	८३४
व्योषादि ...	८२७	उदुम्बर मूलादि ...	८३४
द्राक्षादि ...	८२८	अहिण्डिका रोगकी औषधि ...	८३४
धान्यकादि ...	८२८	इति वालरोगाधिकारस्समाप्तः ।	
विल्वमूलकषाय ...	८२८	विषरोगकी चिकित्सा ...	८३५
समंगादि ...	८२८	अनेक प्रकारके विष... ..	८३५
हीवेरादि	८२८	स्थावर जंगम विषके लक्षण ...	८३५
मरिचादि ...	८२८	स्थावर विषके स्थान... ..	८३५
लाजादि ...	८२८	स्थावर विषके कर्म ...	८३५
चन्दनादि ...	८२९	साँपके डसेहुण मनुष्यका यत्न ...	८३५
गुदपाक चिकित्सा ...	८२९	चर्मादि द्वाराबन्धन ...	८३५
रसांजन लेप ...	८२९	सब प्रकारके विषोंकी औषधी ...	८३५
बृहत्तिकास्वरसादि ...	८२९	मंत्रपाठ	८३५
आम्रादि ...	८२९	सर्पदष्ट चिकित्सा ...	८३६
वटादि ...	८२९	सर्पविषमारणोपाय ...	८३६
हरीतक्यादि चूर्ण ...	८२९	गरुडमंत्र	८३७
पुष्करमूलादि ...	८२९	सर्पमारणोपाय ...	८३७
पिप्पल्यादि ...	८३०	छैःप्रकारके विष ...	८३८
पटोलादि ...	८३०	विषके बत्सनाभादि भेद ...	८३८
दाडिमादि	८३०	विषशास्त्र पठन ...	८३८
पथ्याकुष्ठादि ...	८३०	पचीस २५ प्रकारके स्थावर विषोंके नाम	८३८
तालुपाककी औषधि ...	८३१	पाँच प्रकारके क्रूर विष ...	८३८
लालासावकी औषधि... ..	८३१	उनके कर्म ...	८३८
मुखपाककी औषधि ...	८३१	कुकुदविषके कर्म ...	८३८
दारुहरिद्राकर्ण व्रणसावके ऊपर ...	८३१	पुत्रजीवादि ...	८३९
शारिबादि... ..	८३१		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक
सर्पाक्ष्यादि ...	८३९	मृतजीवनी गुटिका	८५२
मंत्रद्वारा चिकित्सा	८३९	उदयभास्कर रस ...	८५२
मंगलाविद्या ...	८३९	बारिसागररस ...	८५३
मृत्युपाशापहृत् ...	८४१	श्वेतादि लोह ...	८५४
तन्दुलीयकघृत	८४१	उषःपान ...	८५४
विषवज्रपातरस ...	८४२	नासिका द्वारा जल पीनेके गुण ...	८५५
भीमरुद्ररस ...	८४२	प्रातःकालजलपीनेवालेके परिजितप०	८५६
शृगालादिदृष्ट चिकित्सा ...	८४२	त्रिफला रसायन ...	८५६
गोरोचनादि ...	८४२	सर्वतोभद्रलोह ...	८५६
रसोनादि ...	८४३	रसाभ्र गुटिका ...	८५७
धत्तूरादि ...	८४३	सर्वेश्वररस ...	८५८
कनकादिघृत श्रद्धंशके ऊपर ...	८४३	लक्ष्मीविलासरस ...	८५९
इति विपादिरोगाधिकारस्समाप्तः ।		शृंगाराभ्ररस	८६०
रसायन ...	८४३	शुक्रसंजीवनीय मोदक	८६०
रसायनके लक्षण ...	८४३	अमृतसार गुटिका ...	८६१
रसायन सेवनका वय... ..	८४३	शंकरावलेह ...	८६२
ऋतुहरीतकी ...	८४४	इति रसायनाधिकारस्समाप्तः ।	
मधुहरीतकी ...	८४४	रसाजीर्णके लक्षण ...	८६३
आयुर्वृद्धिकरोपाय ...	८४४	रसाजीर्णकी चिकित्सा	८६३
हस्तिकर्ण पलासके बीजोंका रस...	८४४	विधिपूर्वक पारेके सेवनके गुण	८६४
गुडूच्यादि ...	८४४	इति रसोपद्रवाधिकारस्समाप्तः ।	
भांगरेका स्वरस ...	८४४	अथ वार्जाकरणाधिकारः ...	८६५
अश्वगन्धादि चूर्ण ...	८४४	वातादि दोषोंसे दूषित शुक्रके लक्षण	८६५
धान्यादि केशकृष्णीकरणयोग ...	८४५	वार्जाकरणका यन्त्र ...	८६६
वृद्धदारुकादि चूर्ण ...	८४५	नरसिंहचूर्ण ...	८६७
अमृतमल्लातकी ...	८४५	शतावरी घृत ...	८६८
क्रन्धादरस... ..	८४६	वृष्यपदार्थोंके लक्षण ...	८६८
अभ्रकादिरस ...	८४७	मैथुन करनेकी विधि ...	८६९
भक्तपावक गुटिका ...	८४८	श्रीमन्मदनमोदक	८७०
त्रैलोक्यचिन्तामणिरस ...	८४८	महामदनमोदक ...	८७१
पंचामृतसरस ...	८४८	शतावरीमोदक ...	८७२
शुद्धपंचामृतसरस	८५०	द्वितीयशतावरीमोदक ...	८७४
धातुबद्धरस ...	८५०	रतिवल्लभमोदक ...	८७६
सुरसुन्दरी वटिका ...	८५१	महारतिवल्लभमोदक ...	८७७
सर्वतोभद्ररस ...	८५१	कामेश्वरमोदक	८७८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
महाकामेश्वरमोदक ...	८७९	अष्टांगघृत ...	८९४
द्वितीयकामेश्वरमोदक...	८८०	कामदीपक रस ...	८९५
बृहत्कामेश्वरमोदक ...	८८१	कामदूतरस ...	८९५
कामामिसन्दीपनमोदक ...	८८२	पूर्णचंद्ररस ...	८९६
आम्रखण्ड ...	८८२	बृहत्पूर्णचन्द्ररस ...	८९६
मदनसन्दीपनचूर्ण ...	८८४	अभिनव कामदेवरस ...	८९७
बृहदश्वगन्धाघृत ...	८८५	मदनसुन्दररस ...	८९८
अश्वगन्धाघृत ...	८८६	कामदीपकरस ...	८९८
यौवनघृत ...	८८७	वसन्तसुकुमाररस ...	८९९
गुडकुष्माण्ड ...	८८७	कामकलाख्यरस ...	९००
मेथी मोदक ...	८८८	पूर्णन्दुरस ...	९००
महासुगन्धि तैल ...	८८८	मदनोदयरस ...	९०१
तालकतैल ...	८८९	वसन्ततिलकरस ...	९०१
गर्भहरयोग ...	८८९	धात्रीलोह ...	९०२
हंसांगसुन्दर रस ...	८८९	चन्द्रोदयरस ...	९०२
कनककंदपरस ...	८९१	शृंगाराभ्ररस ...	९०३
ताम्रपर्पटीरस ...	८९१	स्तम्भन ...	९०३
पाण्डुरोगहररस ...	८९१	रतिवल्लभगुटिका ...	९०५
शिलाजीतकी उत्पत्ति....	८९२	स्थूलीकरण ...	९०७
शिलाजीतके गुण ...	८९२	वशीकरण	९०७
शिलाजीतके लक्षण ...	८९२	द्रावण ...	९१०
शिलाजीतके भेद और उनके भिन्न		उत्थापन ...	९१०
भिन्न प्रयोग...	८९२	पुष्पप्रकाशनाप्रकाशनोपाय ...	९११
शिवागुटिका ...	८९३	इति वाजीकरणाधिकारः समाप्तः ।	

इति श्रीरसरत्नाकरविषयानुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ श्रीः ॥

अथ रसरत्नाकर ।

भाषाटीकासमेत ।

॥ श्रीत्रैलोक्यपतये नमः ॥

स्वर्गापवर्गविस्फारौभुवनस्योदयेयथा ।
भवरोगहरौवन्देचण्डिकाचन्द्रशेखरौ ॥ १ ॥

टीकामंगलाचरण—

विश्वेशंसज्जनानन्दं पार्वतीवल्लभं शिवम् ।
भूतिभूषितसर्वांगं देवदेवं जगत्पतिम् ॥ १ ॥
रसग्रन्थप्रवक्तारं लोकानां हितकाम्यया ।
वन्दे हं देवदेवेशं भक्तानामभयप्रदम् ॥ २ ॥
शालग्रामेण वैश्येन लोकोपकृतये खलु ।
रसरत्नाकरस्येयं भाषाटीका विरच्यते ॥ ३ ॥
नानाग्रन्थान्समालोच्य नित्यनाथेन धीमता ।
रसरत्नाकरो ग्रन्थो रचितो लोकहेतवे ॥ ४ ॥
अस्मिन् महारसाः प्रोक्तास्तत्कालगुणदायकाः ।
अज्ञानां खलु दुर्बोधा विदुषां च सुखावहाः ॥ ५ ॥
सर्वेषां प्रकाराय भिषजां तु विशेषतः ।
मर्त्यानां व्याधिनाशाय कुर्वे व्यख्यां हरेरमाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के देनेवाले, संसारकी उत्पत्तिमें भवरोगके नाशक, ऐसे चण्डिका (पार्वती) और चन्द्रशेखरको मैं ग्रन्थकार नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

रससाधनोपायः ।

रसोपरसलोहानांतैलमूलफलैःसह ।

असाध्यंप्रत्ययोपेतंकथ्यतेरससाधनम् ॥ २ ॥

वैद्यानांयशसेऽर्थायव्याधितानांहितायच ।

वादिनांकौतुकार्थायवृद्धानांदेहसिद्धये ॥ ३ ॥

मन्त्रिणांमंत्रसिद्ध्यर्थविविधाश्चर्यकारणम् ।

पंचखण्डमिदंशास्त्रसाधकानांहितंप्रियम् ॥ ४ ॥

रसखण्डेतुवैद्यानांव्याधितानारसेन्द्रके ।

वादिनांवादखण्डेचवृद्धानाञ्चरसायने ॥ ५ ॥

मन्त्रिणांमंत्रखण्डेचरससिद्धिःप्रजायते ।

सुतरानास्तिसंदेहस्तत्तत्खण्डविलोकिनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—तेल, मूल और फलोंके साथ रस, उपरस लोहादिकका जो असाध्य रूप रस साधनहै उसको विश्वासयुक्त कहताहूं ॥ २ ॥ वैद्योंके यश और अर्थ के निमित्त, रोगियोंके हितके लिये, वादी मनुष्योंके कौतुकके लिये, वृद्धपुरुषोंके देहकी सिद्धिके लिये ॥ ३ ॥ और मंत्रियोंके मंत्रसिद्धिके लिये अनेक प्रकारके आश्चर्योंका हेतु और साधकोंको हितकारक तथा प्रिय ऐसा पाँच खंड संयुक्त यह “रसरत्नाकर” है सो जानना ॥ ४ ॥ तहाँ रसखण्डमें वैद्योंको, रसेन्द्रखण्डमें रोगियोंको, वादखण्डमें वादियोंको, रसायनखण्डमें वृद्धोंको और मंत्रखण्डमें मंत्रिजनोंको रससिद्धि प्राप्त होगी; इस प्रकार जानकर इन पाँच खण्डोंके देखनेवालोंको निःसन्देह रससिद्धि प्राप्तहो जायगी ॥ ५ ॥ ६ ॥

हतादिपारदगुणाः ।

हतोहन्तिजरामृत्यूमूर्छितोव्याधिघातकः ।

धत्तेचखेगतिंबद्धःकोन्यःसृतात्कृपाकरः ॥ ७ ॥

जरप्रसक्तदारिद्र्यरोगनाशकरोऽतः ।

मूर्च्छितोहन्तिव्याधीन्सोदेहेचरन्नपि ॥ ८ ॥

मोहयेद्यः परान्बद्धोजीवयेच्चमृतः परान् ॥
 मूर्च्छितो बोधयेदन्यास्तंमृतं को न सेवते ॥ ९ ॥
 आयुर्द्रविणमारोग्यं वह्निर्मेधामहद्वलम् ।
 रूपयौवनलावण्यं रसोपासनया भवेत् ॥ १० ॥
 मारयेज्जारितं सूतं गंधकेनैवमूर्च्छयेत् ।
 बद्धः स्याद्भुतिसत्त्वाभ्यां रसस्यैव त्रिधा गतिः ॥ ११ ॥
 दोषहीनो रसो ब्रह्मामूर्छितस्तु जनार्दनः ।
 मारितो रुद्ररूपः स्याद्बद्धः साक्षान्महेश्वरः ॥ १२ ॥
 वेधको देहलोहाभ्यां सूतो देवि ! सदाशिवः ।
 दर्शनाद्रसराजस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ १३ ॥
 स्पर्शनान्नाशयेद्देवि ! गोहत्यां नात्र संशयः ।
 किंपुनर्भक्षणाद्देवि ! प्राप्यते परमं पदम् ॥ १४ ॥
 अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ॥
 क्षिप्रमारोग्यदायित्वाद्भेषजेभ्यो रसोऽधिकः ॥ १५ ॥

अर्थ—माराहुआ पारा अर्थात् पारेकी भस्म-जरा (बुढापा) और मृत्यु-नाशक है । मूर्छित पारा व्याधिनाशक है । और बद्धपारा आकाशमें गमन करनेकी शक्तिको देव है, ऐसे जान पारेसे अधिक कृपा करनेवाला और कौन है ? ॥ ७ ॥ शरीरमें विचरती हुई पारेकी भस्म जरा, मरण, दरिद्रता और रोगनाश करे है । तथा मूर्छित पागभी रोगोंके समूहको नाश करे है ॥ ८ ॥ जो पारा बद्ध होनेपर मोहको उत्पन्न करे, भस्म होनेपर प्राणोंकी रक्षा करे, और मूर्छित होनेपर बोधको उत्पन्न करे; ऐसे पारेकी कौन सेवा नहीं करे ? अर्थात् सब मनुष्योंके सेवने योग्य है ॥ ९ ॥ पारेकी उपासना करनेसे आयु, धन, आरोग्यता, जठराग्नि, मेधा, अत्यन्त बल, रूप, यौवन और लावण्यता उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ जारित पारेको गंधकेके द्वारा मारित, मूर्छित, द्रावण और वीर्ययुक्त, बद्ध-करना चाहिये, पारेकी यह तीन गति जाननी ॥ ११ ॥ दोषहीन अर्थात् शुद्ध पारा साक्षात् ब्रह्मा है, मूर्छित पारा जनार्दन (विष्णु) है, मारित पारा रुद्र-रूप है और बद्धपारा साक्षात् महेश्वर (शंकर) जानना ॥ १२ ॥ महादेवजी

कहते हुए की हे देवि ! देह और लोहवेधी पारा सबकालमें शिवरूप है । और इस पारेके दर्शनकरनेसे ब्रह्महत्या दूरहोती है ॥ १३ ॥ तथा हे देवि ! इसके स्पर्श करनेसे गोहत्याका पाप दूर होजाता है इसमें संशय नहीं है । और इसके भक्षण करनेसे हे देवि ! परमपद अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ और अल्प मात्राका उपयोगी होनेसे तथा रुचिके अनुसार देनेसे और शीघ्र आरोग्यता देनेसे पारेको और औषधियोंकी अपेक्षा अधिक गुणवाला कहा है १५ ॥

यदुक्तं शम्भुना पूर्व रसखण्डे रसार्णवे ।

रसस्य वन्दनार्थं च दीपिकारः मंगले ॥ १६ ॥

व्याधितानां हितार्थाय प्रोक्तं नागार्जुनेन यत् ।

उक्तं च र्पटसिद्धेन स्वर्गवैद्यकपालिके ॥ १७ ॥

अनेकरसशास्त्रेषु संहितास्वागमेषु च ।

यदुक्तं वाग्भटे तन्त्रे सुश्रुते वैद्यसागरे ॥ १८ ॥

अन्यैश्च बहुभिः सिद्धैर्यदुक्तञ्च विलोक्य तत् ।

तत्र यद्यदसाध्यं स्याद्यद्यदुल्लभमौषधम् ॥ १९ ॥

तत्तत्सर्वपरित्यज्य सारभूतं समुद्धृतम् ।

क्वचिच्छास्त्रे क्रियानास्तिक्रमसंख्यानचक्रचित् ॥ २० ॥

मात्रायुक्तिः क्वचिन्नास्तिसम्प्रदायोनचक्रचित् ।

तेन सिद्धिर्न तत्रास्ति रसे वाथ रसायने ॥ २१ ॥

वैद्ये वा देप्रयोगे च तस्माद्यत्नोऽप्यकृतः ।

यद्यद्गुरुः स्वाज्ज्ञातं स्वानुभूतं च यन्मया ॥

तत्तल्लोकहितार्थाय प्रकटीक्रियतेऽधुना ॥ २२ ॥

अर्थ—पूर्वकालमें महादेवने रसार्णवग्रन्थके रसखण्डमें जो तथा रसमंगल ग्रंथमें रसकी वन्दनाके अर्थमें जो दीपिका कही है ॥ १६ ॥ रोगियोंके हितके लिये नागार्जुनमुनिने जो कहा है, स्वर्गवैद्य कपालिक ग्रंथमें चर्पट सिद्धने जो कहा है ॥ १७ ॥ तथा अनेक रसशास्त्र, संहिता, आगम, वाग्भट, तन्त्र, सुश्रुत और वैद्यसागर ग्रंथमें जो कहा है ॥ १८ ॥ तथा अन्यान्य अनेक सिद्धैः कृतैः जो विषय कहा गया है उन सबको मैं देखकर उनमें जो असाध्य

और दुर्लभ औषधि हैं ॥ १९ ॥ उन सबको त्यागकर सारभूत विषय इस ग्रंथमें समुद्धृत करता हूँ । किसी शास्त्रमें किया नहीं है, किसी शास्त्रमें क्रमसंख्या नहीं ॥ २० ॥ किसी शास्त्रमें मात्रायुक्ति नहीं और किसी शास्त्रमें सम्प्रदाय नहीं है इस कारण उन शास्त्रोंके द्वारा कुछभी सिद्ध नहीं होता है इससे मैंने रस, रसायन, वैद्यवाद और प्रयोग विषयमें यत्न किया है । मैंने जो २ विषय गुरुके मुखसे श्रवण और अपने ज्ञानसे अनुभव किये हैं, वह सब विषय मुझ करके लोकके हितके लिये इस ग्रन्थमें प्रकट किये जाते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

श्रीमान्सूतनृपोददातिविलसलक्ष्मीवपुःशाश्वतं
स्वानांप्रीतिकरीमचंचलमनोमातेवपुंसांयथा ।
अन्योनास्तिशरीरनाशकगदप्रध्वंसकारीततः
कार्यनित्यमहोत्सवैःप्रथमतःसूताद्रपुःसाधनम् ॥ २३ ॥
साक्षादक्षयदायकोभुविनृणांपंचत्वमुच्चैःकुतो
मूर्च्छामूर्च्छितविग्रहोगदभृतांहन्त्युच्चकैःप्राणिनाम् ।
बद्धंप्राप्यसुरासुरेन्द्रचरितं तांगतिंप्रापयेत्
सोऽयंपातुपरोपकारचतुरःश्रीसूतराजोजगत् ॥ २४ ॥

अर्थ—पारा माताकी समान प्रीति करनेवाला तथा लक्ष्मी, सुन्दर शरीर और अचल मनको देने वाला है । पारेकी समान शरीरनाशकरोगको हरनेवाली और कोईभी औषधि नहीं है, इस कारण नित्यप्रति महोत्सवसंयुक्त मनुष्योंको पारेका सेवन कर शरीरका साधन करना चाहिये ॥ २३ ॥ यह पृथिवीमें मनुष्योंको साक्षात् अक्षयदायक और पंचत्वनाशक है । मूर्च्छित पारा प्राणियोंकी मूर्च्छाको हरनेवाला है । बद्धपारा सुर और असुरेन्द्रचरित गति देव है । सो इस पारेकी समान परोपकारी जगमें और कौन है ? ॥ २४ ॥

योगमुक्तावल्ल्यामिमौ ।

यदन्यत्रतदत्रास्ति यदत्रास्ति नतत्कचित् ।

२५ ॥ २६ ॥ सोऽयं नित्यनाथेन निर्मितः ॥ २५ ॥

ततः कुर्यात्प्रयत्नेन रससंस्कारमुत्तमम् ।

अविज्ञानशास्त्रार्थप्रयोगकुशलोभिषक् ।

यमएवसविज्ञेयोमर्त्यानामृत्युरूपधृक् ॥ २६ ॥

अर्थ—ऐसा योगमुक्तावली ग्रन्थमें कहा है कि, नित्यनार्थकृत इस रसरत्नाकर ग्रन्थमें अन्यान्य ग्रन्थोंके सर्व विषय हैं किन्तु इसमें जो विषय है वह विषय अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं है ॥ २५ ॥ अतएव इसके द्वारा यत्नके साथ उत्तम प्रकारसे रससंस्कार करना जो मनुष्य शास्त्रार्थ नहीं जानते और रसका प्रयोग करते हैं उनको मृत्युरूपधारी यम समान जानना ॥ २६ ॥

दीपिका ।

नागोवङ्गोमलोवह्निश्चांचल्यश्चविषंगिरिः ।

असह्याग्निर्महादोषानिषिद्धाः पारदेस्थिताः ॥ २७ ॥

जाड्यंगण्डस्तनौनागात्कुष्ठंवंगादुजामलात् ।

वह्नेर्दाहोबीजनाशश्चांचल्यान्मरणंविषात् ॥ २८ ॥

गिरिस्फोटोह्यसह्याग्नेर्दोषान्मोहोपजायते ।

दोषहीनोयदासूतस्तदामृत्युजरापहः ॥ २९ ॥

साक्षादमृतमप्येषदोषयुक्तोरसोविषम् ।

तस्मादेषविशुद्ध्यर्थरसशुद्धिर्विधीयते ॥ ३० ॥

अर्थ—नाग, वंग, मल, अग्नि, चांचल्य, विष, गिरि और असह्याग्नि यह निषिद्ध महादोष पारेमें रहतेहैं ॥ २७ ॥ तहाँ नागदोषसे शरीरकी जड़ता, वंगदोषसे कुष्ठरोग, मलदोषसे अनेक प्रकारके रोग, अग्निसे दोषसे दाह, चांचल्यदोषसे वीर्यका नाश, विषदोषसे मरण ॥ २८ ॥ गिरिदोषसे स्फोटक और असह्याग्नि दोषसे मोह उत्पन्न होता है । दोषहीन पारा मृत्यु और जरानाशक है ॥ २९ ॥ साक्षात् अमृतसमान भी पारा दोषयुक्त होनेपर विषकी समान होता है; इस कारण दोषोंको दूर करनेकेलिये रसशुद्धि कहीजाती है ॥ ३० ॥

रसोग्राह्यः सुनक्षत्रेपलानांशतमात्रकम् ।

पंचाशत्पंचविंशद्वाद्वादशंचैकमेववा ॥ ३१ ॥

पलादूननकर्तव्यरंससंस्कारस्तमम् ।

अघोरेणचमंत्रेणससंस्कारंसपूजनम् ॥ ३२ ॥

ओंअघोरेभ्योऽथघोरेभ्योघोरघोरतरेभ्यः ।

सर्वतः सर्वसर्वेभ्योनमस्तेरुद्ररूपेभ्यः ॥ ३३ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखण्डे

रसपीठिकानाम् प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

अर्थ—शुभनक्षत्रमें १०० सौ, ५० पचास, २५ पच्चीस, १२ बारह अथवा
१ एकपल प्रमाण पारा लेंवै, किन्तु एकपलसे कम कभी नहीं लेंवै, क्योंकि, १
एकपलसे न्यून पारा उत्तम प्रकारसे शुद्ध नहीं होसकताहै । रस संस्कारके समय
अघोर मंत्रसे पारेकी पूजाकरै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ (ओं अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो
घोरघोरतरेभ्यः । सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्र रूपेभ्यः) ॥ ३३ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां भिषक्शालि-

ग्रामशैल्यकृतायां रसपीठिकानाम् प्रथमोपदेशः समाप्तः ॥ १ ॥

निःसारंवीक्ष्यविश्वंगदविकलवपुर्व्याप्तमेवातितप्तं
भूयःकारुण्यसिन्धोःसकलगुणनिधेःसूतराजस्ययुक्तिम् ।
दृष्ट्वासूतस्यशास्त्राण्यवाहितमनसाप्राणिनामिष्टसिद्धयै
शृण्वन्तूच्चैर्मयोक्तंसुविपुलमतयोभोगिकेन्द्रानरेन्द्राः ॥

अर्थ—संसारके प्राणियोंको रोगोंसे विकलशरीर, निःसार और अत्यन्त
संतप्त देखकर करुणानिधान सकलगुणोंकी खान सूतराज अर्थात् पारेकी युक्ति
कहताहूँ । पारदेके शास्त्रको अवलोकन कर प्राणियोंकी इष्टसिद्धिके लिये हे
नरेन्द्रो ! मेरे कहेहुएकी ऊँचसे सुनो ॥ १ ॥

योगस्तौवल्याम् ।

यावत्सूतंनशुद्धंनचतमथनोमूर्च्छितंनपुण्यं
नोवज्रंमारितंनचगगनवधेनोपभूताश्चशुद्धाः ।

दृष्ट्वाहं सर्वलोहंविषमपिनमृतंतैलपातो नयावत्
तावद्वैद्यःकसिहोभवतिवसुः जांमंडलेऽथ्ययाग्यः २ ॥

अर्थ—जबतक पारेको शुद्ध, मूर्च्छित और बद्ध नहीं करसकै तथा जबतक हीरेको मार न सकै, तैसेही जबतक अभ्रकको नहीं मारसकै, तथा जबतक उपरसोंको शुद्ध नहीं करसकै, तथा जबतक स्वर्णादि सब लोहोंको और विषको न मारसकै तथा जबतक तैलपात नहीं करसकै तबतक वैद्य सिद्ध और राजमंडलमें प्रशंसाके योग्य नहीं होताहै ॥ २ ॥

पारददोषनिवारणम् ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामिदोषाष्टकनिवारणम् ।

इष्टकारजनीचूर्णेःषोडशांशैरसस्यतु ॥ ३ ॥

मर्दयेत्तप्तखल्वेतजम्बीरोत्थद्रवैर्दिनम् ।

खल्वंलोहमयंवाथपाषाणाश्ममथापिवा ॥ ४ ॥

कांजिकैःक्षालयेत्सूतंनागदोषस्यशान्तये ।

विशालांकोलचूर्णेनवंगदोषंविनाशयेत् ॥ ५ ॥

राजवृक्षोमलंहन्तिचित्रकंहन्तिदूषणम् ।

चांचलं कृष्णधत्तुरैस्त्रैफलैर्विषनाशनम् ॥ ६ ॥

कटुत्रयंगिरिंहन्तिअसह्यार्गिन्त्रिकंटकैः ।

प्रतिदोषंकलांशेनतत्रचूर्णंसकन्यकम् ॥ ७ ॥

सुवस्त्रगालितंसूतंखल्वेक्षिप्त्वायथाक्रमम् ।

प्रत्येकंप्रत्यहंयत्नात्सप्तरात्रंविमर्दयेत् ॥ ८ ॥

उद्धृत्योष्णारनालेनमृद्भाण्डेक्षालयेत्सुधीः ।

सर्वदोषविनिर्मुक्तःसप्तकंचुकवर्जितः ॥ ९ ॥

जायतेशुद्धसूतोऽयंयुज्यतेवैद्यकर्मणि ।

अजाशकृत्तुषाग्निंचक्षालयित्वाभुविक्षिपेत् ॥

तस्योपरिस्थितंखल्वंपूर्वोक्तंमर्दयेद्रसम् ॥ १० ॥

अर्थ—अब पारेके आठ दोषोंका निवारण कहते हैं । पारेसे सोलमा भाग ईंट और हलदीका चुरन मिलाकर ॥ ३ ॥ लोहके अथवा पाषाणके तप्त खरलमें एक दिन जम्बीरी नींबूके रसके द्वारा मर्दन करै ॥ ४ ॥ फिर कांजीसे

धोलेवै पारेका नागदोष दूर होजायगा तथा पारेका बंगदोष इन्द्रायन और अंकोलके द्वारा ॥ ५ ॥ मलदोष अमलतासके द्वारा अग्निदोष लालचीतेके द्वारा, चांचल्यदोष कालेधतूरेके द्वारा, विषदोष त्रिफलेके द्वारा ॥ ६ ॥ गिरिदोष त्रिकुटेके द्वारा और असह्याग्निदोष गोखुरोंके द्वारा दूर होताहै । प्रतिदोष दूर करनेके लिये पारेका सोलहमा भाग पूर्वोक्त चूर्ण गेरू और धीक्कारके रसमें घोटे फिर वस्त्रमें छान लेवै, फिर खरलमें डाल रोज रोज खरल करै, इस प्रकार प्रति दोष दूर करनेके लिये एक एक चूर्णके साथ पारेको सात सात दिन मर्दन करना चाहिये और मर्दनके बाद मट्टीके बासनमें गरम कांजीसे धोवै, इस प्रकार करनेसे पारा सर्व दोषोंसे मुक्त, सप्तकंचुकीरहित और शुद्ध होजाता है । यह पारा सर्वकार्यमें योजना चाहिये । (तप्तखरल) । बकरीकी विष्टा और भूसी इनकी आग बनाकै धरतीमें गड़ढा खोदकर उस आगको गड़ढेमें धर देवै उसके ऊपर खरल धर देवै, उसको तप्त खरल कहते हैं उसमें पारेको मर्दन करना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

अथान्यमतम् ।

श्रीखंडेदेवदारुचकाकतुंडीजयाद्रवैः ।

कर्कोटीमूषलीकन्याद्रवदत्त्वाविमर्शयेत् ।

दिनैकपातनायंत्रेशुद्धचविनियोजयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—और किसीके मतसे—सफेदचन्दन, देवदारु, कौआठोड़ी, जैती, ककोडा, मुसली और धीकुवार इन प्रत्येकके रसमें एक दिन मर्दनकर फिर पातनायंत्रमें पातन करै तो पाग शुद्ध होजाता है ॥ ११ ॥

अन्यशास्त्रमतम् । ,

कुमार्याश्वनिशाचूर्णेर्दिनंमृतविमर्दयेत् ।

पातयेत्पातनायंत्रेसम्यक्शुद्धोभवेद्रसः ॥ १२ ॥

अर्थ—धीकुवारका रस और हलदीके चूर्णके साथ पारेको एकदिन मर्दन कर फिर पातनायंत्रमें पातन करै पारा शुद्ध होजाता है ॥ १२ ॥

अथ हिंगुलोत्थो यथा ।

पारिभद्रसैःपेष्यं हिं लंयाभमात्रकम् ।

जम्बीराणाम्बर्बायपात्यं प तालयंत्रके ॥ १३ ॥

तंसूतं योजयेद्योगे सप्तकंचुकवर्जितम् ।

इत्येवं शुद्धयः ख्याता यथेष्टैकां प्रकाशयेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—पारिभद्र (फरहद) के रसमें अथवा जम्बीरी नींबूके रसमें एक ग्रहर सिंगरफको खरलकर फिर पातालत्रके द्वारा पातन करनेसे पारां शुद्ध निकलता है सप्तकांचलियोंसे रहित ऐसे पारेका सर्व कर्मोंमें प्रयोग करना चाहिये, इस प्रकार यह पारेकी शुद्धि कही । जौनसी अच्छी लगे वही करनी चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ मूलिकाः ।

अथैता मूलिकावक्ष्येशुद्धसूतस्य मारणे ।

ब्रह्मदण्डी मेघनादाचित्रकंतृणमुस्तिका ॥ १५ ॥

वज्रवल्ली बलाशुण्ठी कटुतुम्ब्यर्द्धचन्द्रिका ।

विषमुष्ट्यर्कलाक्षाश्च गोक्षुरः काकतुण्डिका ॥ १६ ॥

कन्याचंडालिनी कन्दसर्पाक्षी शरपुंखिका ।

वस्तारक्ताग्रनिर्गुण्डी लज्जाली देवदालिकाः ॥ १७ ॥

जाती जयन्ती वाराही भूकदम्बं कुरण्टकम् ।

कोषातकी नीरकणालांगली सहदेविकाः ॥ १८ ॥

चक्रमर्दोऽमृताकन्दं काकमाचीरविप्रिया ।

विष्णुकान्ताहस्तिशुण्ठी स्नुक्पयोभृंगरादपटुः ॥ १९ ॥

इत्येता मूलिकाः ख्याता योज्याः पारदमारिकाः ।

एताः समस्ता व्यवस्तावादेया ह्यष्टादशाधिकाः ॥ २० ॥

अर्थ—अथानन्तर शुद्ध पारेको मारने के लिये मूलिका कहते हैं—ब्रह्मदण्डी, चौलाई, चीता, मोथा, ॥ १५ ॥ वज्रवल्ली, खिरैटी, सोंठ, कडवी तोबी, काला निसोत, कुचला, आक, लाख, गोखरू, कौआ ठोडी ॥ १६ ॥ घीकुवार, चण्डालकन्द, सर्पाक्षी, शरफोंका, वकरियावेल, रक्ताग्र, सम्हाल, लज्जावंती, देवदाली ॥ १७ ॥ जाई, जयन्ती, वाराहीकन्द, भूमिकदम्ब, नीली कटसरैया, कडवी तोरई, सुगंधवाला, पीपल, कलिहारी, सहदेई ॥ १८ ॥ चकवड, गिलोय, जर्मीकन्द, मकोय, सूर्यमुखी, कोयल, हाथीशुण्डी, थूहरका दूध,

भांगरा और पित्तपाषडा ॥ १९ ॥ यह सर्व पारेके मारनेवाली मूलिकाहै । यह सर्व व इनमेंसे कुछेक पारेके मारनेके लिये प्रयोग कीजाती है ॥ २० ॥

अप्रसूतगवामूत्रपेषयेद्रक्तमूलिकाः ।

तद्वैःशोधितं सूतं तुल्यं पातकसंयुतः ॥ २१ ॥

तप्तखल्वेचतुर्याममविच्छिन्नं विमर्दयेत् ।

तत्पिण्डं पातयेद्यन्त्रे त्रिंशद्वट्टमहापुटे ॥ २२ ॥

एवं दशपुटैर्मार्यमर्घ्यपात्यं पुनः पुनः ।

तदुद्धृत्य पुनर्मर्घ्यवज्रमूपान्तरोक्षिपेत् ॥ २३ ॥

भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दशधा भस्मतां व्रजेत् ।

द्रवैर्द्रवैः पुनर्मर्घ्यसिद्धोऽयं भस्मसूतकः ॥ २४ ॥

मूलिकामारितः सूतोजारणक्रमवर्जितः ।

न क्रमेद्देहलोहाभ्यां रोगहर्त्ता भवेद्भुवम् ॥ २५ ॥

अर्थ—अप्रसूता गाय अर्थात् बछिया या उसरियाके मूत्रमें लज्जावंतीको पीसे उस पिसी हुई लज्जावंतीसे पारेको शुद्ध करे, फिर पारेमें बराबरका गंधक मिलाकर ॥ २१ ॥ चाग्रहरतक तप्तखरलमें मर्दन करे, फिर गोला बना यंत्रमें रख तीस अंगुलीसे बनाये महापुटमें पचावे ॥ २२ ॥ इसप्रकार दशपुटदेवे और खरल तथा पातन बराबर करता जाय, फिर पारेको लेकर वज्रमूपामें धर ॥ २३ ॥ भूधरपुटके द्वारा दशवार पचायकर भस्म करलेवे, वागंवार उपरोक्त औषधियोंके द्वारा खरल करता जाय इस प्रकार पारेकी भस्म अर्थात् पारा सिद्ध हो जाता है ॥ २४ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त औषधियोंसे मारण किया हुआ यह पारा जारणक्रमसे वर्जित, देह और लोहेको न उल्लंघनेवाला और रोगोंको हरनेवाला होजाता है ॥ २५ ॥

रसगंधकतैलेन द्विगुणेन विमर्दयेत् ।

दिनैकं वाथ सर्पाक्षीविष्णुक्रान्ताह्वभृंगजैः ॥ २६ ॥

त्र्यहं विमर्दयेद्वावैस्त्रिंशद्वट्टमहापुटे ।

इत्येवमष्टधा पाच्यं रसो भस्मी भवेद्भुवम् ॥ २७ ॥

अर्थ—पारेको द्विगुने गंधके तेलमें एकदिन, अथवा सर्पाक्षी, कोयल, और भांगरेके रसमें तीन दिन खरल कर तीस अंगुलोंसे बनायेहुये महापुटमें पकावै, इसप्रकार आठवार पकानेसे पारेकी निश्चय भस्म होजातीहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

श्वेतांकोटजटावारिसूतंमर्द्यदिनत्रयम् ।

पुटयेद्बुधरेयंत्रेमूषायांभस्मतां व्रजेत् ॥ २८ ॥

देवदालीहरिकान्तामारनालेनपेषयेत् ।

सप्तधामसूतकंतेनकुर्यान्मर्दितामुत्थितम् ॥ २९ ॥

नसूतं खर्परेकुर्यादत्त्वादत्त्वाचतुर्द्रवम् ।

चुल्लयोपिष्टेद्ब्रह्मैभस्मस्यादरुणोपमम् ॥ ३० ॥

कोष्ठोदुम्बरजैःक्षीरैःसिताहिंगुविभावयेत् ।

सप्तवारंप्रयत्नेनशोध्यंपेष्यंपुनःपुनः ॥ ३१ ॥

कोष्ठोदुम्बरपंचांगैःकषायंषोडशांशकम् ।

हत्वातेनपुनर्मर्द्यहिंगुवंगरसेश्वरम् ॥ ३२ ॥

क्षिप्तवानिरुद्धयमूषायांभूधराख्येपुटेपचेत् ।

अष्टधाम्प्रियतेसूतोदेयंहिगुपुटेपुटे ॥ ३३ ॥

अर्थ—कोयला और अंकोलकी जड़के रसमें पारेको तीन दिन खरल करै फिर मूषामें रस भूधरयंत्रके द्वारा फूंक दें तब पारेकी निश्चय भस्म होजावै ॥ २८ ॥ देवदाली और नीली कोयलको काँजीमें सातवार पीसकर रस बनाले उस रसमें पारेको खरलकरै ॥ २९ ॥ फिर पारेको कड़ाहीमें डाल पूर्वोक्त चौगुना रस मिलाकै चूलेपै चढ़ाकर अग्नि जला दें तब पारेकी भस्म होकर लाल होजायगा ॥ ३० ॥ कटूमरके दूधमें वंग और हींगको सात भावना दें फिर यत्नसहित सुखावै और खरल करै ॥ ३१ ॥ फिर कटूमरके पंचांगोंका षोडशांश कषाय बना उसमें फिर वंग और हींग तथा पारेको खरल करै ॥ ३२ ॥ पीछे मूषामें रस सुखको बंदकर भूधरयंत्रके द्वारा आठ पुट दें और प्रतिपुटमें हींग देतारहै तो पारेकी भस्म होजातीहै ॥ ३३ ॥

अपामार्गस्यर्बिजानितथैरण्डस्यर्गयेत् ।

तच्छिप्यंपारदेदेयंमूषायामवरोधयेत् ॥ ३४ ॥

रुद्धालघुपुटेपश्चाच्चतुर्भिर्भस्मतां व्रजेत् ।
 कटुतुम्बुद्भवेकन्देगर्भेनारीपयःसुवै ॥ ३५ ॥
 सप्तधाप्रियतेसूतःस्वेदयेद्गोमयाग्निना ।
 अंकोलस्यजटातोयैःपिष्ट्वाखल्वेविमर्दयेत् ॥ ३६ ॥
 सूतंगंधकसंयुक्तंदिनान्तेतंनिरोधयेत् ।
 पुटयेद्भूधरेयंत्रेदिनान्तेतत्समुद्धरेत् ॥ ३७ ॥
 धान्याभ्रंसूतकंतुल्यंमर्दयेन्मारकद्रवैः ।
 दिनैकंतेनकल्केनवस्त्रेपिष्ट्वाचवर्तिकाम् ॥ ३८ ॥
 विलिप्यतैलैर्वर्त्तिन्तामेरण्डोत्थैःपुनःपुनः ।
 प्रज्वालयतद्धृतंभाण्डेग्राहयेत्पतितामधः ॥ ३९ ॥
 कृष्णभस्मभवेत्तच्चपुनर्मर्द्यत्रियामकैः ।
 दिनैकंतत्पचेद्यंत्रेकच्छपाख्येनसंशयः ॥ ४० ॥
 मृतःसूतोभवेत्सद्यस्तत्तद्योगेषुयोजयेत् ।
 द्विपलंशुद्धसूतन्तुसूतार्द्धशुद्धगंधकम् ॥ ४१ ॥
 मर्दयेन्मारकद्रवैर्दिनमेकंरिन्तरम् ।
 बद्धातुभूधरेयंत्रेदिनैकमारयेत्पुटात् ॥ ४२ ॥

अर्थ—चिरचित्तेके बीज और अंडीके बीजोंका चूरण पारेमें मिला मूषामें रख
 मुख बन्दकर ॥ ३४ ॥ चार लघुपुट देनेसे पारेकी भस्म होजातीहै । कडबीतों-
 वीके कंदमें गड़ढाकर उसके बीचमें स्त्रीका दूध और पारेको रखकर ॥ ३५ ॥
 सातवार उपलोंकी अग्निसे पकावै तौ पारेकी भस्म होजावै । अंकोलकी जड़के
 रसमें गंधकयुक्त पारेको खरलमें पीसकर मर्दन करै फिर उसको संध्याके समय
 मूषामें डाल फिर भूधर यंत्रमें पचावै, फिर पारेकी बराबर धान्याभ्रक लेकर
 पारेको मारनेवाले द्रव्योंके रसमें एकदिनतक मर्दन करै फिर पूर्वोक्त द्रव्योंके
 कल्कके साथ उक्त पारेको वस्त्रपै लेपकर सुखावै, पीछे बत्ती बना अंडीके तेलमें
 भिजो लैवै पीछे उन बत्तियोंको एक बरतनमें अग्निके द्वारा जला देवै, तिसके
 उपरान्त बरतनमें जो कृष्णवर्ण भस्म बनकर लगजाय उस भस्मको लेकर
 हलदीके रसमें खरल करै पीछे एक दिन कच्छप यंत्रमें पचानेसे तत्काल पारे-

की भस्म होजाती है और वह भस्म सर्व रोगोंमें प्रयोग करने योग्य है । आठ तोले शुद्ध पारा और चार तोले शुद्ध गंधक इनको एकत्र कर पारेके मारनेवाले द्रव्योंके रसमें एकदिन खरल करके पुटके द्वारा एकदिन भूधर यंत्रमें पचवै तो पारेकी भस्म होजाती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ रसमारणे वज्रमूषामा ।

तुषदग्धस्य भागौ द्वावेकं वल्मीकमृत्तिका ।
लोहकिट्टस्य भागैकं श्वेतपाषाणभागकम् ॥ ४३ ॥
नरकेशसमं किंचिच्छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
यामद्वयं दृढमर्घ्यतेन मूषान्धसंपुटात् ॥ ४४ ॥
शोषयित्वा थसंलिप्त्वा तत्कल्कैः संनिरुध्य च ।
वज्रमूषासमाख्याता सम्यक् पारदमारिका ॥ ४५ ॥
श्वेतं पीतं तथारक्तं कृष्णञ्चेति चतुर्विधम् ।
लक्षणं भस्मसूतस्य श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखण्डे रसशोधन-
मारणाधिकारो नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

अर्थ—भूसीकी राख दोभाग, बाँबीकी मट्टी एकभाग, लोहेका मैल एकभाग, सफेद पत्थर एक भाग और सबकी बराबर मनुष्यके केश लेकर कुछेक बकरीके दूधमें पीसै, फिर दोप्रहर पर्यन्त दृढ़ मर्दनकर मूषासम्पुट बनाके सुखादे और उपरोक्त कल्कसे लेपन करै और उपरोक्त कल्कसे मुखकोभी बंदकरै, इसप्रकार वज्रमूषा बनता है और इसमें उत्तम प्रकारसे पारेकी भस्म होजाती है । पारेकी भस्म सफेद, पीत, लाल और कृष्ण भेदोंसे चार प्रकारकी है इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जाननी अर्थात् सफेदसे पीली, पीलीसे लाल, और लालसे काली, श्रेष्ठ है ॥ ४३ । ४४ । ४५ । ४६ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां भिष्कु-
शालग्रामकृतायां रसशोधनमारणाधिकारो नाम द्वितीयो-
पदेशः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ पारदमारणम् ।

अथातो ज रणात् पूर्वबीजमारणमुच्यते ।
 अजीर्णचापः खिञ्जितः सूतकंयस्तुमारयेत् ॥ १ ॥
 ब्रह्महासदुराचारो ममद्रोहिमहेश्वरि ।
 तस्मात्सर्वं यत्नेनजारितं मारयेद्रसम् ॥ २ ॥
 संस्थाप्यगोमयंभूमौपक्कमूषांततोपरि ।
 तन्मध्येकदुत्तुम्बुत्थंतैलंदत्त्वारसंक्षिपेत् ॥ ३ ॥
 काकमाचीरसंदेयंतैलतुल्यंततःपुनः ।
 गन्धकंत्रीहिमात्रंचक्षिष्वातंचनिरोधयेत् ॥ ४ ॥
 तत्पृष्ठेपावकोदेयः पूर्णवावह्निस्पर्षम् ।
 स्वांगशीतलतांज्ञात्वाजीर्णेतैलेचगंधकम् ॥ ५ ॥
 काकमाचीद्रवंचाग्नौदत्त्वादत्त्वाचजारयेत् ।
 मूषाधोगोमयंचात्रदत्त्वाचोर्द्ध्वपावकम् ॥ ६ ॥
 षड्गुणगंधकंजार्यसूतस्यैवंमुखंभवेत् ।
 तंसूतमर्दयेन्नीरैर्जम्बीरोत्थैःपुनःपुनः ॥ ७ ॥
 चतुःषष्ट्यंशकैःपूर्वेर्द्रात्रिंशांशंततःपुनः ।
 षोडशांशंशुद्धहेमपत्रंसूतेषुनिक्षिपेत् ॥ ८ ॥
 शिखिपित्तेनसं प्रोक्षंतैलेश्चसर्षपोद्भवैः ।
 लिप्त्वाहेमक्षिपेत्सूतंयामंजम्बीरजैर्द्रवैः ॥ ९ ॥
 मर्द्यंतंपूर्ववत्पच्यान्मूषायांजम्बिरद्रवैः ।
 पूरयेद्रोधयेच्चाग्निंदत्त्वायत्नेनजारयेत् ॥ १० ॥
 ग्रासेग्रासेचतन्मर्द्यजम्बीराणांद्रवैर्दृढम् ।
 मूलिक लवणंगंधमभावेपित्तैलयोः ॥ ११ ॥
 पिष्ट्वाजम्बीरनीरेणहेमपत्रंप्रलेपयेत् ।
 इत्येवंजारणाकार्याततःसूतञ्चमारयेत् ॥ १२ ॥

अथवानिःखंसूतंविडयोगेनमारये ।

विडप्रप्रव्यामिसाधयेद्विषजांवरः ॥ १३ ॥

अर्थ—अथानंतर जारणपूर्वक और बीजसहित पारेका मारण कहतेहैं—महा-
देव बोले कि, हे देवि ! जो मनुष्य अजीर्ण (जारणरहित) और अबीज पारेकी
भस्म करता है वह मनुष्य ब्रह्मघाती, दुराचारी और मेरा द्रोही होता है,
इसकारण अत्यंत यत्नकर जारित पारेको मारना चाहिये । भूमिपै गोबरको
रख उसके ऊपर पक्कमूषा स्थापनकरै उसमें कड़वी तोंबीका तेल और पारा तथा
तेलकी समान मकोयका रस और वीहिप्रमाण गंधकका चूरण डाल मूषाके
मुखको बंद करदेवै, उसके ऊपर अग्नि जलावै, जब स्वयं शीतल होजाय तब पुराने
तेलमें गंधक और मकोयका रस बार२ डालकर जारण करै, उपरोक्त मूषाके तले
गोबर रखै और ऊपर अग्नि जलादेवै वा अग्निसे भरेहुए पात्रको रखदेवै, छैगुने
गंधकका जारणकरै, इसप्रकार पारेके मुख उत्पन्न होता है, फिर उक्त पारेको
जम्बीरी नींबूके रसमें बारबार खरलकर पीछे चौंसठवें भाग सुद्धसुवर्णके पत्र
मिलाकर पारेको खरलकरै, फिर सोलहमें भाग शुद्ध सुवर्णके पत्र मिलाकर
पारेको खरलकरै, फिर मयूरके पित्त और सरसोंके तेलमें सुवर्णको पीस
पारेके ऊपर लेपकरै, फिर एकप्रहर पर्यन्त जम्बीरी नींबूओंके रसमें मर्दन करके
मूषामें रखकर पूर्ववत् यंत्रके द्वारा पकावै और ग्रास ग्रासमें जम्बीरके रसमें
दढ़ मर्दन करताजाय । मयूरके पित्त और तेलके अभावमें मूलिका, लवण और
गंधक लेना चाहिये, फिर जाम्बीरीके रसमें मर्दनकर सुवर्णके पत्रोंपै लेपकरै,
इसप्रकार जारणकार्य संयुक्त करके पीछे पारेको भस्म करै, अथवा निर्मुख
पारेको विडके संयोगसे मारना चाहिये । अब विडको कहतेहैं और यह विड वैद्यों-
को सिद्ध करना चाहिये ॥ १॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥

शंखचूर्णरविक्षीरैश्चातपेभावयेदिनम् ।

तद्रज्जम्बीरजैर्द्रवैर्दिनैकंधूमसारकम् ॥ १४ ॥

सुर्द्रव्यैः काथ्यं यामचतुष्टयम् ।

कण्टकारीश्चसक्काथ्यदिः पंचरमूत्रकैः ॥ १५ ॥

साजीक्षारतिन्तिडीकिंकाशीशश्चशिलाजतुम् ।

जम्बीरेत्यैर्द्रवैर्भाव्यंपृथग्यामचतुष्टयम् ॥ १६ ॥

जैपालबीजत्वग्घीनंमूलकानांद्रवैर्दिनम् ।

सैन्धवंटङ्कणं गुंजाशिमुमूलद्रवैर्दिनम् ॥ १७ ॥

गतत्सर्वसमांशन्तुमर्द्यजम्बीरजैर्द्रवैः ।

तद्गोलंरक्षयेद्यत्नाद्विडोऽयंवाडवनलः ॥

अनेनमर्दयेत्सूतंग्रासतेतप्तखल्वके ॥ १८ ॥

अर्थ—शंखके चूनेको एकदिन आकके दूधमें और वज्रखारको एकदिन जम्बीरी नींबूओंके रसमें भावना देवे ॥ १४ ॥ फिर कालेलोनको बकरीके मूत्रमें चार प्रहर और कटेरीको मनुष्यके मूत्रमें एकदिन औटालेवे ॥ १५ ॥ फिर सजी, इमलीका खार, कसीस, और शिलाजीत, इनको अलग अलग चार प्रहरतक जम्बीरी नींबूके रसमें भावना देवे ॥ १६ ॥ और जमालगोटेके बीजांको छालसे अलग करके एकदिन मूलीके रसमें खरल करै सेंधानोनको एकदिन चौंटलीकी जड़के रसमें और सुहागेको एकदिन सेजिनके जड़के रसमें खरल करलेवे । पीछे इन सबको बराबर लेकर जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करके ॥ १७ ॥ गोला बनालेवे, इसको विड़ कहते हैं इस विड़के साथ पागेको तप्तखरलमें मर्दन करै ॥ १८ ॥

स्वर्णाभ्रसर्वलोहानियथेष्टानिचजारयेत् ।

मारयेत्पूर्वयोगेनमारणंचात्रकथ्यते ॥ १९ ॥

कुम्भींसमूलामुद्धृत्यगोमूत्रेणमुपेषयेत् ।

तद्रवैर्मर्दयेत्सूतंदिनैककान्तसंपुटे ॥ २० ॥

लिप्त्वानियमकादेयाऊर्ध्वश्चाधस्तदन्वयेत् ।

मृद्वग्निनादिनैकन्तुपचेच्छुल्यामृतोभवेत् ॥ २१ ॥

गोघृतंगंधकंसूतंपिष्ट्वापिण्डींप्रकल्पयेत् ।

कुमारीदलमध्यस्थंकृत्वामूत्रेणवेष्टयेत् ॥ २२ ॥

तंकान्तंसंपुटरुद्धात्रिभिर्लघुपुटैःपचेत् ।

ततोध्मातेभवेद्भस्मचान्धमूपेक्षयंध्रुवम् ॥ २३ ॥

शाकवृक्षस्यपक्वानिफलान्यादायशोधयेत् ।

पेषयेद्रविदुग्धेनतेनमूर्षांप्रलेपयेत् ॥ २४ ॥

आदिप्रसूतगोर्जातजरायोश्चूर्णपूरितः ।

तन्मध्येसूतकरुद्धाध्मातोभस्मत्वमाप्नुयात् ॥ २५ ॥

कर्कोटीकाकमाचीचकंचुकीकटुतुम्बिका ।

काकजंघाकाकतुण्डीकाकिनीकाकमंजरीः ॥ २६ ॥

पिष्टैतान्वज्रमूषास्तैर्लेपंकृत्वारसंक्षिपेत् ।

मर्दितंदिनमेकन्तुतैरेवाद्रौत्थितैरसैः ॥ २७ ॥

रुद्धाथभूधरेपच्यादष्टवारंपुनःपुनः ।

मर्दयेल्लितमूषास्तारुद्धाध्मातोमृतोभवेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—फिर सोना, अभ्रक, और सर्व प्रकारके लोह, इन सबको यथेष्ट प्रमाण जारण करके पूर्वोक्तयोगके द्वारा अथवा निम्नोक्तप्रकारसे मारण करै ॥ १९ ॥ मूलसहित जलकुम्भीको उखाड़कर गोमूत्रमें पीसे, फिर इसी रसमें एक दिन पारेको खरलकर पीछे कान्तसंपुटमें रख लेपकरकै निम्नलिखित सर्पाक्षी आदि पारेको बांधनेवाली औषधी उसके चारों ओर देकर एकदिनतक चूले पै रख मृदुअग्निके द्वारा पकानेसे पारेकी भस्म होजातीहै ॥ २० ॥ २१ ॥ गायका धी, गंधक और पारा इनको एकत्र पीसकर पिण्डा बनाकै वीकुवारके पत्तोंके बीचमें रखकर सूत्रसे बांधै, फिर कान्तसंपुटरख अवरोधकरके तीन लघुपुट देकै पचावै, पीछे अंधमूषामें रखकै अग्निको धोंकनेसे पारेकी भस्म होजातीहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ शाकवृक्षके पके हुए फलोंको शोधकर आकके दूधमें पीस करकै मूषाको लीपलेवै, पीछे पहिलीवार व्याईहुई गायकी जरायु (जेर) के चूर्णसे मूषाको भर उसमें पारेको रख संपुटित दे मुख बंदकर आगमें रख धोंकनेसे भस्म होजातीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ ककोडा, मकोय, कंचुकी, कड़वीतोवी, काकजंघा, कौआठोडी, चोंटली और काकमंजरी (काकनासा) इन सबको बारीक पीस वज्रमूषाके भीतर लेप करकै उसमें पारेको डालकर रखदेवै, किन्तु पहिले पारेको अदरखके रसमें खरल करै पीछे रोधनकर भूधरयंत्रके द्वारा वारंवार इसीप्रकार आठबेर पचावै, फिर लिपटेहुए द्रव्यको मूषामेंसे खुरचकर खरलकरके फिर मूषामें रख मूषाके मुखको बंदकर आगबाल धोंकनेसे पारेकी भस्म होजातीहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

रसोनियामकैर्मायोदृढंयामचतुष्टयः ।

द्रिगुणैर्गन्धतैलैश्चपचेन्मृद्रग्निनाशनैः ॥ २९ ॥

यावत्खोटोभवेत्तत्तद्रोधयेल्लोहसंपुटे ।

हरीतकीजलेपिष्ठालोहकिट्टेनमूषिकाः ॥ ३० ॥

कृत्वातन्मध्यतःक्षिप्त्वासंपुटंचान्धयेत्पुनः ।

तस्योर्ध्वंस्त्रावकाकारंरुद्वानागंद्रुतंक्षिपेत् ॥ ३१ ॥

कठिनेनधमेत्तावद्यावन्नागोद्रुतोभवेत् ।

नधमेच्चपुनस्तावद्यावत्कठिनतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥

एवंपुनःपुनर्ध्मातस्त्रियामैर्घ्रियतेरसः ।

पित्तामकास्ततोवंगसूतस्यमारकर्मणि ॥ ३३ ॥

अर्थ—निम्नलिखित नियामकद्रव्य और दुगुनेगंधक तथा तेलके साथ चार प्रहर मर्दनकर मृदुअग्निसे पारेको धीरे धीरे पचावे ॥ ३० ॥ जब खोट अर्थात् जमजावे, तब लोहेके सम्पुटमें रख मुख बंद करदेवें, फिर हरडोंको जलमें पीस कर उसमें लोहेकी कीट मिलाकै मूषा बनालें ॥ ३० ॥ उसके बीचमें उक्त पारेको रख आग देवें और तिसके उपरान्त उसके ऊपरके भागमें कृष्णवर्ण लेपनद्रव्यादि फैलाकर शीघ्रही उमके ऊपर रांगको छोड़ें, जबतक रांग गल कर फिर कठिन न होजावै तबतक आंच देतारहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसप्रकार वारंवार तीनप्रहर पर्यन्त अग्नि धाँकनेसे पारा भस्मरूप होता है । अब निम्नोक्त सर्पाक्षीआदि नियामक द्रव्य वंग और पारेके मारण कर्ममें कहे जाते हैं ॥ ३३ ॥

सर्पाक्षीक्षीरिणीवन्ध्यामत्स्याक्षीशरपुंखिका ।

काकजंघाशिखिशिखाब्रह्मदण्ड्यांखुपर्णिका ॥ ३४ ॥

वर्षाभूकंचुकीमूर्वापट्टकोत्पलचिंचिका ।

शतावरीवज्रलतावज्रकन्दात्रिकर्णिका ॥ ३५ ॥

मण्डूकपर्णीपाटलीचित्रकोश्रीष्मसुन्दरः ।

काकमाचीमहाराष्ट्रीहरिद्रातिलक्षर्णिकः ॥ ३६ ॥

श्वेतार्कशिमुधत्तूरमृगदूर्वाहरीतकी ।

गुडूचीमूषलीपुंखाभृंगराडूक्तचित्रकः ॥ ३७ ॥

तगरंभूरणमुण्डीमलंकापोतको ~~देख~~ ।
 सैन्धवंश्वेतवर्षाभूसाम्बरंहिंगुमाक्षिकम् ॥ ३८ ॥
 विष्णुकान्तासोमवल्लीव्रणघ्नीयक्षलोचनम् ।
 व्याघ्रपादीहंसपादीवृश्चिकालीकुरण्टकम् ॥ ३९ ॥
 स्वयम्भूकुसुमंकुञ्जीहस्तिशुण्डीन्द्रवारुणी ।
 बीजान्यहस्करस्यादिसर्वत्रैतेनियामकाः ॥ ४० ॥
 एताःसमस्ताव्यस्तावादेयाह्यष्टदशाधिकाः ।
 मारणेमूर्च्छनेबन्धेरसस्यैतानियोजयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ—सर्पाक्षी (गंडिनी) खिरनी, बालककोडा, मछेली, शरपुंखा, काकजंघा
 (मसी), मयूरशिखा, ब्रह्मदण्डी, मूषापणी ॥ ३४ ॥ पुनर्नवा, कंचुकी (औष-
 धिविशेष), मूर्वा (चुरनहार), पित्तपापडा, कमल, इमली, शतावर, हडसंवारी,
 वज्रकन्दा, त्रिकर्णिका (गोखरू) ॥ ३५ ॥ ब्रह्माण्डुकी, कठपाढल, चीता,
 ग्रीष्मसुन्दर, मकोय, जलपीपल, हलदी, तिलकर्णिका (तिलकन्द) ॥ ३६ ॥
 सफेद आक, सैजिना, धतूरा, मृगदूर्वा (इन्द्रायण), हरड़, गिलोय, मृषली,
 नील, भोंगरा, लालचीता ॥ ३७ ॥ तगर, जिमीकन्द, गोरखमुण्डी, कठुमर,
 करंज, तालमखाना, सैधानोन, विषखपरा, सामर नोन, हींग, मधु ॥ ३८ ॥
 कोयल, सोमवल्ली, विकङ्कत, हंसपदी, वृश्चिकाली, पियावांसा ॥ ३९ ॥ शिव-
 लिंगीका फूल, कलौजी, हाथीशुण्डी, इन्द्रायन और आकके बीज, इन सबको
 नियामकगण कहते हैं । यह सर्वद्रव्य पारंके मारनेमें, मूर्च्छित करनेमें और बद्ध
 करनेमें व्यवहारमें लायेजाते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अप्रसूतगवाम्मूत्रैःपिष्ट्वापूर्वनियामकाः ।
 तद्वैर्मर्दयेत्सूतंयथापूर्वोदितंक्रमात् ॥ ४२ ॥
 इत्येवंजारणंप्रोक्तंमारणंपरिकीर्तितम् ।
 परीक्षामारितेसूतेकर्तव्याचयथोदिता ॥ ४३ ॥
 अधस्तुषाग्निनातप्तोह्यक्षीणस्तिष्ठतेयदा ।
 तदाभस्मविजानीयाच्छल्यांयामंनिरीक्षयेत् ॥ ४४ ॥

मूलिकामारितंमृतंसर्वयोगेषुयोजयेत् ।

जारितोमारितःमृतोजरादारिद्र्यरोगनुत् ॥ ४५ ॥

मूर्च्छितोव्याधिनाशायबद्धंसर्वत्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखंडे
मारणाधिकारो नाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

अर्थ—अप्रसूता गाय (बछिया) के मूत्रमें उपरोक्त नियामक औषधियोंको पीसकर पूर्वोक्त अनुक्रमसे उसके द्वारा पारेको मईन करके पीछे जारण और मारण करे । पारेकी निश्चय भस्म हुई है या नहीं इस सन्देहको दूर करनेके लिये पारेकी परीक्षा करे, भूसीकी आगके ऊपर पारेकी भस्मको धरे, जो वह भस्म एक प्रहरमें कम न होवै तो उसको उत्तम भस्म जाननी । अथवा चूलेपै आग बाल उमपै तवा रख उसके ऊपर पारेकी भस्म एकप्रहरपर्यन्त धरी रहनेदेवै, जो वह भस्म उडे नहीं तो जानो कि पाग मरगयाहै । मूलिका अर्थात् नियामक द्रव्योंसे माराहुआ पारा सर्वरोगोंमें देना चाहिये । प्रथम पारेको जारणकर पीछे मारे । माराहुआ पारा जग और दरिद्रता नाशक है । मूर्च्छित पारेको रोगके दूरकरनेके लिये और बद्ध पारेको सर्वत्र देना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायाः निपक्वशालिग्राम-
वैद्यकृतमारणाधिकारनामकस्तृतीयोपदेशः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ पारदमूर्च्छा ।

अथातःशुद्धमृतस्यमूर्च्छनाविधिरुच्यते ।

मेघनादोवचाहिंशूरणैर्मर्दयेद्रसम् ॥ १ ॥

नष्टपिष्टनुतद्गोलंहिगुनावेष्टयेद्बहिः ।

पचेल्लवणयन्त्रस्थंदिनैकंचण्डवाह्निना ॥ २ ॥

ऊर्ध्वलग्नसमादायदृढवस्त्रेणबन्धयेत् ।

ऊर्ध्वाधोगंधकंतुल्यंदत्त्वासौम्यानलेपचेत् ॥ ३ ॥

जीर्णेगंधेपुनर्देयंपङ्क्तिभिर्वारैःसमंसमः ।

पङ्क्तुणेगंधकंजीर्णमूर्च्छितोरोगहाभवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—अनंतर शुद्धपारेकी मूर्च्छाविधि कहतेहैं—चौलाई, वच, हींग और जिमकिन्द इनके रसमें पारेको मर्दन करके गोला बना लेवै, जब वह गोला सूखजावै तब उसके ऊपर हींगसे लेप करदेवै, फिर लवणयंत्रके द्वारा प्रचण्ड अग्निसे एकदिन पचावै, पीछे ऊपरके लगे हुए द्रव्यको लेकर गाढ़ेवस्त्रमें बाँध देवै फिर नीचे और ऊपर समान भाग गंधकका चूर्ण देकर मृदु अग्निसे पचावै, जीर्ण गंधक होजानेपर बराबर गंधक देतारहै, इसप्रकार छेवार गंधकका जारण होनेसे पारा मूर्च्छित होजाताहै, यह पारा सर्वरोगनाशक है ॥ १ । २ । ३ । ४ ॥

गंधकंमधुसारश्चशुद्धसूतसमंसमम् ।

यामैकंपाचयेत्खल्वेकाचकुप्यानिवेशयेत् ॥ ५ ॥

रुद्धाद्वादशयामन्तंवालुकायन्त्रगंपचेत् ।

स्फोटयेत्स्वांगशीतंतंतद्रुद्धगंधकंत्यजेत् ॥ ६ ॥

अधस्तरसमादायसर्वरोगेषुयोजयेत् ।

शुद्धसूतद्विधागंधसूतार्द्धसैन्धवंक्षिपेत् ॥ ७ ॥

द्रवैःसितजयन्त्याश्चमर्दयेद्विसत्रयम् ।

कृत्वागोलश्चसंशोष्यक्षिप्वामूषानिरुन्धयेत् ॥ ८ ॥

शोषयित्वाधमेत्किंचित्सुततांतांजलेक्षिपेत् ।

तस्माद्रसंसमुद्धृत्यत्रिकण्टरसभावितम् ॥ ९ ॥

योजयेत्सर्वरोगेषुधमेद्राभूधरेपचेत् ।

रसार्द्धगंधकंमर्द्यधृतैर्युक्तन्तुगोलकम् ॥ १० ॥

कृत्वातंबन्धयेद्रस्त्रेदोलायंत्रगतंपचेत् ।

गोमूत्रान्तकृतंयामंनरमूत्रैर्दिनत्रयम् ॥ ११ ॥

शोषयेच्च नर्वस्त्रेबद्धावेष्टयंसदादृढम् ।

शुष्कंनिरुध्यमूषायांततस्तुषाग्निनापचेत् ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वभागमधःकृत्वाअधोभागंचऊर्ध्वगम् ।

इत्यादिपरिवर्तेनस्वेदयेद्विसत्रयम् ॥ १३ ॥

पश्चादुद्धृत्यतंसूतयोऽप्याहंज्यापह्य ॥ १४ ॥

अर्थ—गंधक, मोम और शुद्धपारा, यह सर्व समान भाग लेकर एकपहर पर्यन्त खरलमें खरलकरकै एक कौचकी शीशीमें रस डेढ़दिन बालुकायंत्रमें पकावै फिर शीतल होनेपर शीशीको फोड़ ऊपरके गंधकको छोड़ नीचेके पारेको ग्रहणकर सर्वरोगोंमें प्रयोगकरै । दोभाग पारा, चारभाग गंधक और एकभाग सेंधानोन, इन सबको तीनदिन श्वेतजयन्तीके रसमें मर्दनकर गोला बनालेवै उसगोलेको सुखाकर मृषामें रख रोधनकरै, फिर सुखाकर कुछेक फूँके फिर गरमकर जलमें छोड़े, शीतल होनेपर उसमेंसे पारेको निकालकर कटेरी, बडीकटेरी और गोखरूके रसमें भावनां देकर भूधरयंत्रमें पकाले इसको सब योगोंमें योजना चाहिये । एकभाग गंधक और दोभाग पारा, इन दोनोंको घृतमें मर्दन करकै गोला बनालेवै, उसगोलेको बस्त्रमें बाँधकर दोलायंत्रमें पचाले, फिर उसको एकप्रहर गोमूत्रमें और तीन दिन नरमूत्रमें खरलकरकै सुखालेवै, फिर बस्त्रमें बाँधकर मृषामें रखकै तुषाग्निसे पकाले, तदनंतर नीचेके भागको ऊपरकी ओर और ऊपरके भागको नीचेकी ओर करै, इसप्रकार परिवर्तन करकै तीनदिन पर्यन्त स्वेदन करै, फिर पारेको ग्रहण करै, वह पारा योगवाही और सर्व रोग नाशक जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

सद्योजातस्यबालस्यविष्टापालाशबीजकम् ।

चण्डालीरुधिरंमूतंमूतपादंचटंकणम् ॥ १५ ॥

जयन्त्यामर्दयेद्वावैर्दिनकंतन्तुगोलकम् ।

पेषयेत्सहदेव्याथलेपयेत्ताम्रसंपुटम् ॥ १६ ॥

तन्मध्येगोलकंक्षिप्त्वाद्वियामंस्वेदयेत्पुनः ।

बालुकायंत्रमध्येतुसमुद्धृत्यततःपुनः ॥ १७ ॥

चित्रकैः सहदेव्याचगंधकैर्लेपयेद्बहिः ।

संपुटं बन्धेत्तद्देमृदालेप्यचशोपयेत् ॥ १८ ॥

तरुद्धाअन्धमृषायांध्मातेसंपुटमाहरेत् ।

सूक्ष्मचूर्णंरोगन्योगवाहोमहारसः ॥ १९ ॥

संपुटंमूततुल्यंस्य आस्रहृष्टेनकर्मणा ॥ २० ॥

अर्थ—तत्कालके उत्पन्नहुए बालककी विष्टा, ढाकके बीज, चण्डालीका रुधिर, पारा और पारासे चौथाभाग सुहागा इनसबको एकत्र करके जयन्तीके रसमें एकदिन खरलकरै, फिर उसका गोला बनालेवै, फिर सहदेईको पीस उसके रससे ताम्रसंपुटमें लेपकरकै तिसके बीचमें गोलारख बाहुकायंत्रमें दोपहर-पर्यंत आग्निदेवे, तदनंतर, चीता सहदेवी और गंधकका बाहर लेप करै, फिर संपुटको वस्त्रमें बांधकर मट्टीके गारेका लेप कर सुखादेवै, फिर उस संपुटको अंधमूषामें रख धोंकके पकावै, फिर पारेको निकाल उसका सूक्ष्म चूर्णकर सब रोगोंमें व्यवहार करै । शास्त्रके मतसे संपुट पारेके ममान होना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

धत्तूरकद्रवैर्मर्द्यदिनंगंधंससूतकम् ।

अन्धमूषेदिनस्वेद्यंभूधरेमूर्च्छितोभवेत् ॥ २१ ॥

कृत्वाषडंगुलामूषांसुपक्रामृन्मर्याद्विदाम् ।

मूषागर्भविलेप्याथमूलैर्बहुलपत्रकैः ॥ २२ ॥

तन्मध्येसूतकंक्षिप्त्वा मूषांपूर्यात्तुतद्रवैः ।

रुद्धासलवणैर्यन्त्रैश्चुल्ल्यादीताग्निनापचेत् ॥ २३ ॥

सप्ताहान्तेसमुद्धृत्ययवमात्रंज्वरापहम् ।

काशीशंसैन्धवंसूतंतुल्यंतुल्यंविमर्दयेत् ॥ २४ ॥

काशीशस्यास्यभागेनदातव्याफुल्वतूरिका ।

स्तोकंस्तोकंक्षिपेत्खल्वेत्रियामञ्चैवमूर्च्छयेत् ॥ २५ ॥

प्रत्येकंशतनिष्कंस्यादूनंनैवाधिकंभवेत् ।

स्थालीसंपुटयंत्रेणदिनंचंडाग्निनापचेत् ॥ २६ ॥

उद्धृत्यलग्नं तश्चुल्ल्यामूर्च्छितंचाहरेत्सुतम् ।

कुरण्टकरसैर्भाव्यमातपेमर्दयेद्भस्म ॥ २७ ॥

लताकरंजपत्रैर्वाअंगुष्ठेनविमर्दयेत् ।

दिनैकमूर्च्छितंसम्यक्सर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ २८ ॥

अशुद्धस्यमूर्च्छितस्य प्याविधिः ।

सूततुल्यं घृतं जीर्णं द्वाभ्यां तुल्यं च गंधकम् ॥ २९ ॥

रविक्षीरैर्दिनमर्धमंधयित्वा तु भूधरे ।

पुटकेन भवेत्सिद्धो रसो हैरण्यगर्भकः ॥ ३० ॥

अर्थ—समानभाग गंधक और पारेको लेकर धतूरेके रसमें एक दिन खरल करै फिर अन्धमूषामें डाल भूधरयंत्रके द्वारा पचानेसे पारा मूर्च्छित होजाताहै छै अंगुल प्रमाण उत्तममट्टीकी मूषा (घड़िया) बनाकर अग्निमें पका तैयार करले, उस मूषाके मध्यभागको लाल सैजिनेके और मूलीके पत्तोंके रससे लेप देवै, फिर मूषामें पारेको डाल सैजिनेके रससे मूषाको भर मुखको बंदकर चूलेपे धर सातदिन दीप्ताग्निद्वारा लवणयंत्रमें पकावै, फिर संपुटमेंसे निकाल जौकी बराबर देनेसे यह पारा सबप्रकारके ज्वरोंको हरता है । हीराकासीम, मंधानोन, फुल्वतुरिका और पाग, यह प्रत्येक दोसै दोसै तोले लेकर सबको एकत्र करके तीन प्रहर पर्यन्त खरल करै, फिर स्थाली संपुटयंत्रमें प्रचण्ड अग्निसे पकावै, फिर यंत्रके ऊपरके पात्रमें उड़के लगेहुए पदार्थ छुटालेवै, इस प्रकार पारा मूर्च्छित होताहै । सूर्यकी धूपमें कटसैरैयाके रसमें पारेको भावना देकर मर्दन करै, अथवा करंजुवाके पत्तोंके रसमें अंगूठेसे मर्दन करै, इसप्रकार एकदिन भलेप्रकार मूर्च्छित किये हुए पारेको सर्व रोगोंमें देना चाहिये । एक भाग पारा, एक भाग पुरानाघी, और दो भाग गंधक, इन सबको एकत्र करके आकके दूधमें एक दिन खरल करै, फिर घड़ियामें डाल भूधरयंत्रमें पुटपाक करै तो हैरण्यगर्भरस सिद्ध होजाताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ रसबंधनं यथा ।

कटुतुम्बुद्रवेकन्देवंध्यायाः क्षिरकन्दके ।

अपक्वैकंसमादाय तद्गर्भेऽपिण्डकाततः ॥ ३१ ॥

दशानिष्कं शुद्धसूतं निष्कैकं शुद्धगंधकम् ।

स्तोकं स्तोकं क्षिपेद्गन्धं पापाणे तु च कुट्टयेत् ॥ ३२ ॥

याममात्रे भवेत्पिण्डी रसकन्दे विनिक्षिपेत् ।

अधोर्ध्वं भस्मवैक्रान्तं दत्त्वा निष्कार्द्धमात्रकम् ॥ ३३ ॥

ततःकन्दस्यमज्जाभिर्मुखंबद्धामृदादृढम् ।

लिप्तामंगुलमानेनसर्वतःशोष्यगोलकम् ॥ ३४ ॥

। चयेद्भूधरेयन्त्रेतथोद्धृत्यपुनःपचेत् ।

उर्ध्वभागमधःकुर्यादित्येवंपरिवर्तयेत् ॥ ३५ ॥

क्रमेणचालयेद्बद्धं बहिर्युग्मोत्पलैःपचेत् ।

ततोभिन्नस्तुसंग्राह्योबद्धःस्यादाडिमोपमम् ॥

नाम्नावैक्रान्तबद्धोऽयंसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कडवीतोंबीका कन्द, वा बाँझककोडोका कन्द अथवा विदारी कन्दके बीचमें २० बीसतोले शुद्धपारा और दोतोले शुद्धगंधक देकर पत्थरके ऊपर होले होले एकप्रहर पर्यन्त कूटे, फिर उसका गोला बनाले, उस गोलेको लाल प्याजके भीतर फिर नीचेको और ऊपर एक तोला वैक्रान्तमणिकी भस्म देवै, फिर पूर्वोक्तकन्दकी मज्जासे उसके मुखको बंदकर मट्टीके गारेका एक अंगुल ऊंचा लेपकर सुखादेवै, फिर भूधर यंत्रमें पकावै, फिर पकाकर निकाललेवै और फिर इसी प्रकारसे पकावै, फिर उसके उर्ध्वभागको नीचे और नीचेके भागको ऊपर करै इस प्रकार क्रमसे परिवर्तन करके दो उपलोंकी अग्निके द्वारा पकावै, इस प्रकार करनेसे पारा अनारकी समान बद्ध होजाताहै और इसको वैक्रान्तबद्ध कहते हैं, यह सर्वरोगोंमें देना चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथवा गन्धपीठिनांवस्त्रेबद्धातुगन्धकम् ।

तुल्यंदत्त्वानिरुन्ध्याथसंपुटेलोहजेहृढे ॥ ३७ ॥

पुटयेद्भूधरेतावद्यावज्जीर्यतिगन्धकम् ।

एवंपुनःपुनर्देयंयावद्गन्धस्तुपङ्गुणम् ॥ ३८ ॥

इत्येवंगंधकेबद्धःसूतःस्यात्सर्वरोगजित् ।

मूषाजम्बीरविस्तारादैर्घ्येणषोडशांगुला ॥ ३९ ॥

अपक्वासुहृढाकार्यासिकताभाण्डमध्यगा ।

त्रिभागंवालकालग्नपादांशेनबर्हिःस्थिता ॥ ४० ॥

• पलैकंचूर्णितंगंधः। मध्येविनिक्षिपेत् ।

इद्धसूतंसमंपश्चात्क्षिपेद्गन्धपलंततः ॥ ४१ ॥
 भाण्डमारोपयच्छल्यामूषामाच्छाद्यततः ।
 मन्दाग्निनापचेत्तावद्यावन्निर्धूमतां व्रजेत् ॥ ४२ ॥
 गन्धधूमेगते पूर्याकाकमाचीद्रवैस्तुसा ।
 द्रवेजीर्णे पुनः पूर्यानागवल्लीदलद्रवैः ॥ ४३ ॥
 यावज्जीर्यतितद्गन्धः काकमाच्यादिभिः पुनः ।
 दत्त्वादत्त्वापचेत्तद्गच्छत्तूरादिकमाद्रसम् ॥ ४४ ॥
 भित्त्वा मूषांसमादाय ज्वरव्याधिहरोरसः ।
 योजयेद्गन्धबद्धोऽयं योगवाहेषु सर्वतः ॥ ४५ ॥

अर्थ—अथवा समानभाग पारा और गंधकको बस्त्रमें दृढ़ बाँध पोटलीबना लोहेके सम्पुटमें रख भूधरयंत्रमें पचावै, जबतक गंधक जीर्ण हो तबतक वारंवार गंधक देवै, और जारणकरै इसप्रकार छैगुने गंधकको जारण करनेसे गंधकबद्ध पारा बनतहै, यह पारा सर्वरोगनाशकहै, । जम्बीरी नींबूके समान चौड़ी, सोलह अंगुल लम्बी, कच्ची और दृढ़ ऐसी घडिया बनावै, उसको रेतसे भरेहुए बरतनमें धरदेवै और उसके भीतर तीन भाग रेत लग रहा हो, एक भाग रेत बाहिर लगाहो, उस घडियामें प्रथम आठ तोले गंधकका चूरन, और आठ तोले शुद्धपारा तथा तिसके ऊपर आठ तोले गंधकका चूरन डाले, फिर बरतनको चूल्हे पै धर मूषाको यत्नपूर्वक दृढ़कर जबतक धुआँ न निकले तबतक मृदुअग्निसे पकावै, जब गन्धकका धुआँ निकलजाय तब मकोयके रससे मूषाको भरदेवै फिर जब मकोयका रसभी जल जावै, तब पानोंके रससे मूषाको भरदेवै, जब पकनेसे पानोंका रसभी जल जावै तब धतूरेका रस मूषामें भरदेवै और फिर जब धतूरेका रसभी जलजावै तब फिर मकोयादिके रसोंसे मूषाको भरता रहै, इसप्रकार क्रमसे वारंवार धतूरेआदिके रससे भरकर पचावै फिर पकनेपर मूषाको तोड़ उसमेंसे पारेको ग्रहण करै, यह गंधबद्धपारा ज्वरादि सर्वरोगोंको नाश करै है और सर्वकार्योंमें देना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कज्जलाभोयदासूतोविहायघनचापलम् ।

मूर्च्छितः सतदाज्ञेधोरसां पश्चान्निवित्रैः ॥ ४६ ॥

माधुर्यगौरवोपेतस्तेजसाभास्करोपमः ।

वह्निमध्येयदातिष्ठेत्तदावृक्षस्यलक्षणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—जब पारा कज्जली समान होजावै, घन अर्थात् भारीपन और चपल-
ताको छोड़ देवै तब वह मूर्च्छित कहा जाता है । यह मूर्च्छित पारा मधुरता
और गौरवयुक्त, सूर्यकी समान तेजस्वी और अग्निमें रखनेसे वृक्षके लक्षणों
को करनेवाला होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

दीपिका ।

सजयतिरसराजोमृत्युशंकापहारी

सकलगुणनिधानःकायकल्पाधिकारी ।

वलिपलितविनाशंसेवनाद्रीर्यवृद्धिं

स्थिरमपिकुरुतेयःकामिनीनांप्रसंगे ॥ ४८ ॥

इत्येतेमारिताःसूतामूर्च्छिताबद्धमागताः ।

प्रत्येकंयोगवाहःस्यात्तत्तद्योगेषुयोजयेत् ॥ ४९ ॥

मारितंदेहसिद्धयर्थमूर्च्छितं व्याधिनाशनम् ।

रसभस्मक्वचिद्रोगेदेहार्थेमूर्च्छितंक्वचित् ॥ ५० ॥

बद्धंद्वाभ्यांप्रयुंजीतशास्त्रदृष्टेनकर्मणा ।

दन्तेशृंगेऽथवावंशेरक्षयेत्साधितंरसम् ॥ ५१ ॥

पारदंकिमिष्टघ्नंबल्यमायुष्यदृष्टिदम् ।

सेवनात्सर्वरोगघ्नंरुच्यंगुरुकषायकम् ॥ ५२ ॥

सूतेगुणानांशतकोटिवज्रे

चाभ्रेसहस्रंकनकेशतैकम् ।

तारेगुणाशीतितदर्द्धकान्ते

तीक्ष्णेचतुःषष्टिरवौतदर्द्धम् ॥ ५३ ॥

रसादिभिर्याक्रियतेऽपि

दैवीतिसद्भिः परिकीर्तितासा ।

आयुधीमंत्रहताशिफाद्यैः साराक्षसीशस्त्रकृतादिभिर्या ॥ ५४ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे
रसखण्डे चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

अर्थ—मूर्च्छितपारा मृत्युनाशक, सकलगुणजनक, कल्पकालपर्यन्त कायकी रक्षा करनेवाला, बलि (शरीरमें बलपडने) व पलित (विना समयही वालोंका श्वेत होजाना)का विनाशक, वीर्यवर्धक और स्त्रीसंगमें वीर्यको स्थिर करनेवाला है ॥ ४८ ॥ मारित, मूर्च्छित और बद्ध, यह तीनों पारे योगवाहक हैं; इनको अनेक प्रकारके योगोंमें योजना चाहिये ॥ ४९ ॥ तहाँ मारित पारा देहकी सिद्धिके लिये और मूर्च्छित पारा रोगोंको दूरकरनेके लिये सेवनकरना चाहिये । और कहीं पारेकी भस्म रोगोंको नाश करनेके लिये और कहीं मूर्च्छित पारा देहकी सिद्धिके लिये प्रयोग किया जाता है ॥ ५० ॥ और बद्ध पारा रोगोंको हरनेके और देहकी सिद्धि इनदोनोंके लिये दिया जाता है । सिद्ध कियेहुए पारेको हाथीआदिके दांतोंमें, भैंस आदिके सींगोंमें अथवा वांसके भीतर रखना चाहिये. पारेको सेवन करनेसे कृमिरोग और कुष्ठरोग नष्ट होतेहैं. बल और आयुकी वृद्धि होतीहै, दृष्टिको बढ़ानेवाला, रुचिकारक, भारी, कपैला और सर्वरोगनाशक है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ पारेमें सौकरोड गुणहैं, हीरे और अभ्रकमें हजारगुण हैं, सुवर्णमें सौ गुणहैं, चान्दीमें ८० अस्सी, कांतलोहमें चालीस, तीक्ष्ण लोहमें चौंसठ, और ताँबेमें बत्तीस गुण रहतेहैं ॥ ५३ ॥ रसादिकके द्वारा जो चिकित्सा करी जाती है उसको देवी, मंत्रमूलादिकके द्वारा जो चिकित्सा करी जातीहै उसको मानुषी और शस्त्रादिकके द्वारा जो चिकित्सा करी जातीहै उसको राक्षसी चिकित्सा कहतेहैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे प्रदीपिकाभाषाटीकायां भिषक्शालिग्राम-
वैद्यकृतचतुर्थोपदेशः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथात उपरसशोधनमारणमाह ।

गंधकंवज्रवैक्रान्तंवज्राभंतालकंशिला ।
खपरंशिखितुत्थंचविमलाहेममाक्षिकम् ॥ १ ॥
गौषिकंकान्तपाषाणंवराटीमथहिरलम् ।

कंकुष्ठशंखभूनागटंकणचशिलाजनु ॥ २ ॥

एतेउग्रसाःशोध्यामार्याद्राव्याःपुटेकचित् ॥ ३ ॥

• अर्थ—गंधक, हीरा, वैकान्त, सफेदअभ्रक, हरताल, मैनाशिल, खपरिया, नीलाथोथा, रूपामाखी, सोनामाखी, गूगल, तंतुप्राण, कौडी, सिंगफ, कंकुष्ठ, शंख, भूनाग, सुहागा, और शिलाजीत, इनसबको उपरस कहतेहैं। इनको शोधन, मारण और द्रावण करना ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ गंधकमारणमाह ।

अपक्वगंधंकुरुतेऽतिकुष्ठंतापंभ्रमंपित्तरुजांकरोति ।

रूपंसुखंवीर्यबलंचहन्ति तस्मात्सुशुद्धंविधियोजनीयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—अशुद्धगंधक कुष्ठ, ताप, भ्रम, पित्तरोग, इनको उत्पन्न करैहै तथा रूप, सुख, वीर्य और बलको हर्नैहै। इसकारण गंधकको शुद्ध करकै भेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ गंधकशुद्धिः ।

साज्यंभाण्डेपयःक्षिप्वाःखंस्त्रेणबन्धयेत् ।

तत्पृष्ठेचूर्णितंगंधंक्षिप्वास्त्रावेणशोधयेत् ॥ ५ ॥

भाण्डंनिक्षिप्यभूम्यन्तेऋध्वेदेयंपुटंलघु ।

ततःक्षीरेद्रुतंगंधंशुद्धंयोगेषुयोजयेत् ॥ ६ ॥

अथवार्कस्नुहीक्षीरैर्वस्त्रलेप्यञ्चसप्तधा ।

गंधकंनवनीतेनपिष्ठावस्त्रंप्रलेपयेत् ॥ ७ ॥

तद्वह्निज्वलितादेशेदृत्वाधार्याह्नधोमुखा ।

तैलंपतेदधोभाण्डेग्राह्ययोगेषुयोजयेत् ॥ ८ ॥

शुद्धोगन्धोहरेद्रोगान्कुष्ठमृत्युज्वरादिकान् ।

अग्निकारीमहानुष्णोवायं वृद्धिकरोतिच ॥ ९ ॥

अर्थ—घृतसंयुक्त दूधको एक पात्रमें करलेवै, उस पात्रके मुखको कपड़ेसे बन्द करदेवै, फिर उस कपड़ेपै गंधकका चूरन रख, उसपै सरैया रखदेवै फिर पृथ्वी में गड्ढा खोद उस गड्ढेमें बरतनको रखदेवै, ऊपर लघु पुट देनेसे गंधक झर कर दूधमें गिरे, इसप्रकार गंधककी शुद्धि होतीहै। यह शुद्धगंधक सर्वयोगोंमें

देना चाहिये । अथवा आकका दूध और सेहुण्डका दूध इन दोनों दूधोंमें वस्त्रको लेपितकर फिर गंधकको माखनमें पीस, उक्तवस्त्रको सातवार लेपे, फिर उसकी वत्ती बनालेवै फिर उन वत्तियोंमें अग्नि लगा नीचेको मुख करदेवै, उन जलतीहुई वत्तियोंसे गिरते हुये तेलकी बूंदोंको पात्रमें लेताजावै, पात्रमें तेलके जमजाने-पर शुद्धगंधक बनजाताहै, यह गंधक सर्व योगोंमें योजना चाहिये । शुद्ध गंधक कुष्ठ, मृत्यु और ज्वरादिक रोगोंको हरैहै, अग्निजनक, अत्यन्तगरम और वीर्य वर्धकहै ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ वज्रमारणमाह ।

व्याघ्रीकन्दयुतंवज्रंदोलायंत्रेणपाचितम् ।

सप्ताहात्कोद्रवक्काथेकौलत्थेविमलंभवेत् ॥ १० ॥

त्रिःसप्तकृत्वस्तत्तत्तंरूपेणसेचयेत् ।

षड्गुणैस्तालकंपिष्ठातद्गोलेकुलिशंक्षिपेत् ॥ ११ ॥

प्रध्मातंवाजिमूत्रेणसिक्तं पूर्वोदितक्रमैः ।

भस्मीभवतितद्वज्रंवज्रवत्कुरुतेतनुम् ॥ १२ ॥

ऊर्णासुशृंगपरिपिष्यपिण्डमेतस्यमध्येतुनिधायवज्रम् ।

पिण्डेऽथवाधायचवज्रवल्याःपुटत्रयंतस्यरसेविदध्यात् १३ ॥

मृत्युरेवंभवेदस्यवज्राख्यस्यनसंशयः ॥ १४ ॥

अर्थ—व्याघ्रीकन्दके साथ हीरेको दोलायंत्रमें पकाके सातदिन कोदोंके काथमें और कुलथीके काथमें भिजोवै, फिर इक्कीसवार आगमें गरम करके इक्कीसवार गंधके मूत्रमें बुझाव तौ हीरा भस्मरूप होजायगा, हीरेसे छेगुनी हरताल ले उसका गोल बना उस गोलेमें हीरेको रख दोलायंत्रमें पकावै और घोडेके मूत्रमें बुझालेवै, फिर अग्निमें गरमकर पूर्वोक्त कोद्रवादिके काथमें भिजोवै, इसप्रकार करनेसे हीरेकी उत्तम भस्म बनजाती है और इस भस्मको सेवन करनेसे शरीर वज्रकी समान होजाता है । मेढासिंगीको पीस उसका गोलाबना उसमें हीरेको रखकर अथवा हडसंघारीके गोलेमें हीरेको रखकर उनके रसमें तीनपुट दे, दोलायंत्रमें पकावै, इसप्रकार हीरेकी निःसन्देह भस्म होजाती है ॥ १४ ॥

विशेषमाह ।

अशुद्धवज्रमायुर्ग्रीवाङ्कुष्ठं करोति च ।

पाण्डुतापगुरुत्वं च तस्माच्छुद्धन्तुमारयेत् ॥ १५ ॥

श्वेतरक्तपीतकृष्णाद्विजाद्यावज्रजातयः ।

रसायने भवेद्विप्रः श्वेतः सिद्धिप्रदायकः ॥ १६ ॥

क्षत्रियो मृत्युजिद्रक्तो वलीपलितरोगहा ।

द्रवकारी भवेद्वैश्यः पीतो देहस्य दाहकृत् ॥ १७ ॥

कृष्णः शूद्रो रजां हन्ति वयःस्थैर्यं करोति च ।

पुंस्त्रीनपुंसकाश्चैते लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ १८ ॥

वृत्ताः फलकसंपूर्णा ते जस्वान्ता बृहद्भवाः ।

पुरुषास्ते समाख्याता रेखा बिन्दुविवर्जिताः ॥ १९ ॥

रेखा बिन्दुसमायुक्ताः षट्कोणास्तास्त्रियः स्मृताः ।

त्रिकोणापत्तना दीर्घा विज्ञेयास्तानपुंसकाः ॥ २० ॥

पूर्वार्धमिमेशस्ताः पुरुषा बलवत्तराः ।

शरीरकान्तिजनका भोगदा वज्रयोषितः ॥ २१ ॥

नपुंसकास्त्वल्पवीर्याः कामुकाः सत्त्ववर्जिताः ।

स्त्रीतु स्त्रीणां प्रदातव्या क्लीबं क्लीबे तथैव च ॥ २२ ॥

सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ २३ ॥

अर्थ—अशुद्धहीरा आयुनाशक, तथा पीडा, कोढ़, पाण्डु, दाह और भारीपन, इनको उत्पन्न करैहै, इसकारण प्रथम शोधकर फिर मारना चाहिये ॥ १५ ॥ सफेद, लाल, पीत और कृष्ण, यह चारों प्रकारके हीरे क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजातिके जानने । अर्थात् सफेद रंगका हीरा ब्राह्मण, लाल रंगका हीरा क्षत्रिय, पीले रंगका हीरा वैश्य और कालेरंगका हीरा शूद्र जानना । रसायनकर्ममें सफेद रंगका ब्राह्मण हीरा लिया जाताहै और यह सिद्धिदायक है ॥ १६ ॥ लालरंगका क्षत्रिय हीरा मृत्यु और वलीपलितनाशकहै । पीलेरंगका वैश्य हीरा द्रवजनक और देहको दृढ़ करैहै ॥ १७ ॥ और कालेरंगका शूद्र हीरा

रोगोंको हरनेवाला और अवस्थाको स्थापन करनेवाला है । अब हीरेके स्त्री, पुरुष और नपुंसक, इन तीन लक्षणोंको कहतेहैं ॥ १८ ॥ जो हीरा गोलकार, गट्टेदार, कान्तिशुक्त, बड़ेआकारवाला और रेखा तथा बिन्दुओंसे रहिहो उसको पुरुष जानना ॥ १९ ॥ जो हीरा रेखा और बिन्दुसहितहो और षट्कोनवालाहो, उसको स्त्री जानना । तीनकोनवाला और लंबाहो, उसको नपुंसकहीरा कहतेहैं ॥ २० ॥ यह तीनोंप्रकारके हीरे पूर्वानुक्रमसे उत्तम जाने, अर्थात् नपुंसकहीरेसे स्त्रीहीरा और स्त्रीहीरेसे पुरुषहीरा उत्तमहै । पुरुषहीरा—अत्यंतवलकारक और कान्तिजनक है । स्त्रीहीरा भोगदायकहै । और नपुंसक हीरा—अल्पवीर्यवाला, कामुक और सत्ववर्जितहै । स्त्रीहीरा स्त्रियोंको, नपुंसकहीरा नपुंसकोंको और पुरुषहीरा सब मनुष्योंको सर्वकालमें सेवन करना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

गृहीत्वातुशुभंवज्रं व्याघ्रीकन्दोदरेक्षिपेत् ।
महिषीविष्टयालेप्यंकरीषाग्नौविपाचयेत् ॥ २४ ॥
निशायान्तुचतुर्यामनिशान्तेवाश्वमूत्रके ।
सेचयेत्तानिप्रत्येकंसप्तरात्रेणशुध्यति ॥ २५ ॥
मेघनादाशमीश्यामाशृंगीमदनकोद्रवम् ।
कुलत्थंवेतसंचाथअगस्त्यंसिन्धुवारकाः ॥ २६ ॥
एतेषांसज्जलैःकाथैर्वज्रंजम्बीरमध्यगम् ।
दोलायन्त्रेऽयहंपाच्यमेवंवज्रंविद्धये ॥ २७ ॥
कुलत्थकोद्रवकाथेदोलायन्त्रेविपाचयेत् ।
व्याघ्रीकन्दमतंवज्रंसप्ताहाच्छुद्धिमिच्छति ॥ २८ ॥
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृत्नालिप्तं पुटेपचेत् ।
अहोरात्रात्समुद्धृत्यहयमूत्रेणसेचयेत् ॥ २९ ॥
वज्रीक्षीरेणवासिंचेदेवं शुद्धश्चमारयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ—उत्तमहीरेका लेकर व्याघ्रीकन्दके बीचमें रख भैंसके गोवरका लेपकर अन्यउपलोंकी आगसे रात्रिमें चारप्रहर पका रात्रिके अन्तमें घोड़ेके मूत्रमें बुझालेवे, इसप्रकार सातरात्रि पकानेसे हीरा शुद्ध होजाता है । जम्बीरी नाबूके

बीचमें हीरेको रख दोलायंत्रमें पकाकर चौलाई, शमी, कोयावासाँउ, ककड़ा-
दिंगी, मैनफल, कोदों, कुलथी, वैत, अगस्तिया और सहस्रल्लुके काथमें झा-
लेतो हीरा शुद्ध होजावे । कटेरीके कन्दके बीचमें हीरेको रख फिर कुलथी
और कोदोंके काथमें दोलायंत्रके द्वारा सातदिन पकानेसे हीरा शुद्ध होजाता-
है। कटेरीकन्दमें हीरेको स्थापितकर मट्टीके गारेसे लेपकर गजपुटमें एकरात्रि-
यन्त पचा फिर घोडेके मूत्रमें अथवा सेहुंडके दूधमें सेवनकरनेसे हीरा शुद्ध
होजाताहै । इस प्रकार हीरेको प्रथम शुद्धकर पीछे मारना ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥
॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

विप्रजात्यादिवज्राणांमारणंकथ्यतेपुनः ।

अश्वत्थवदरीझिण्टीमाक्षिकंकर्कटास्थिच ॥ ३१ ॥

तुल्यंस्तुहीपयःपिष्ट्वाक्त्रंतद्गोलकेक्षिपेत् ।

रुद्धागजपुटेपच्याद्विप्रजातिर्मृतोभवेत् ॥ ३२ ॥

करवीरंमेषशृंगंबदरश्चउदुम्बरम् ।

अर्कदुग्धंसमं पिष्ट्वाविप्रवन्मारयेन्नृपम् ॥ ३३ ॥

बलांचातिबलांगंधंपेषयेत्कच्छपास्थिच ।

एतैर्वावारुणीदुग्धैर्म्रियेद्वैश्योपिविप्रवत् ॥ ३४ ॥

सूरणंलशुनंशंखंसमंपेष्यंमनःशिलाम् ।

वटक्षीरेणमूपान्तर्विप्रवच्छूद्रमारणम् ॥ ३५ ॥

स्त्रियस्तेषांम्रियन्तेचतत्तदौषधयोगतः ।

नपुंसकमृतिस्तेषांचतुर्णामौषधैःसमम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अब ब्राह्मणजाति आदिके हीरोंका मारण कहतेहैं—पीपल, बेरी, कट-
सरैया, सोनामाखी, केकडेकी हड्डी और थूहरकादूध, इन सबको समान भाग-
लेकर खरलकरै फिर उसका गोलाबनाकर उसमें ब्राह्मणजातिका हीरा रख
गजपुटमें पचानेसे हीरेकी भस्म होजातीहै । कनैर, मेढाशिगी, बेर और गूलर,
इन सबको समानभाग लेकर आकके दूधमें खरलकर गोला बनालेवै, उस गोलेमें
क्षत्रियहीरेको रख गजपुटमें पकानेसे हीरेकी भस्म होजाती है । खिरैटी, कंधी,
गंधक और कछुवेकी हड्डी इन सबको समान भागलेकर इन्द्रायनके दूधमें खर-
लकर गोलाबनालेवै उसगोलेमें वैश्यहीरेको रख गजपुटमें पचानेसे भस्म होजा-

तीहै । जमीकन्द, लशुन, शंख और मैनशिल, इनसबको समान भागलेकर
बडके दूधमें पीसकर खरल करै, फिर उसका गोलाबनाकर उसगोलेमें शूद्रही-
रेको रख गजपुटमें पचानेसे हीरेकी भस्म होजातीहै । स्त्रीजातिका हीरा उन्हीं
उन्हीं औषधोंके योगसे और नपुंसकजातिका हीरा चारो प्रकारकी औषधोंसे
माराजाताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ समुदायेन वज्रमारणमाह ।

द्विवर्षरूढकार्पासैर्मूलकान्तमुखैः सह ।

नारीस्तन्येनसंपिष्यपिष्ट्वाध्मातंसुतंभवेत् ॥ ३७ ॥

मेषशृंगभुजंगास्थिकूर्मपृष्ठाभ्लवेतसैः ।

गजदन्तसमंपिष्ट्वावज्रीदुग्धेनगोलकम् ॥ ३८ ॥

कृत्वातन्मध्यगंवज्रंभ्रियतेधमनेनच ।

त्रिवर्षनागवंध्यास्तुकार्पासस्याथमूलिका ॥ ३९ ॥

पिष्ट्वातन्मध्यगंवज्रंकृत्वामूर्षानिरोधयेत् ।

पचेद्गजपुटेतश्चभ्रियतेसप्तधापुटैः ॥ ४० ॥

मत्कुणानान्तुरक्तेनसप्तधातपशोषितम् ।

कुलिशंभावितंतद्रच्चूर्णितापिमनःशिला ॥ ४१ ॥

लिप्त्वाचबदरीपत्रैर्वैष्टयित्वापुटेपचेत् ।

पुनर्लेप्यपुनःपाच्यंसप्तधाभ्रियतेऽपिच ॥ ४२ ॥

वज्रमहानदीशुक्तौक्षिप्रंभाव्यंमुहुर्मुहुः ।

सुह्यर्कोन्मत्तकन्यानांद्रवेणैकेनचाह्निकम् ॥ ४३ ॥

कृष्णकर्कटमांसेनपिष्टितंवेष्टयेद्बहिः ।

भूनागस्यमृदासम्यग्ध्मातेभस्मत्वमाप्नुयात् ॥ ४४ ॥

रक्तोत्पलस्यमूलैश्चमेघनादस्यकुड्मलैः ।

पिण्डितैर्वैष्टितंध्मातंवज्रंभस्मभवत्यलम् ॥ ४५ ॥

वज्रमायुर्बलरूपं देहसौख्यं करोति च ॥

सेवितोहन्तिरोगांश्चमृतोवज्रो न संशयः ॥ ४६ ॥

अर्थ—दो वर्षकी कपासकी जड़ और धीकुवार इन दोनोंको खींचे दूधमें पीस गोला बना उसगोलेमें हीरेको रख आगजलानेसे हीरा मरजाता है । भेड़ाके सींग, सांपकी हड्डी, कछुएकी पीठ, हाथीके दांत, और भ्रमलवंत यह सब समान भाग लेकर सेहंडके दूधमें बारीक पीस गोला बनालेवै, उसगोलेके बीचमें हीरेको रख अग्नि जलानेसे हीरा मरजाता है । तीनवरसकी नागदमन वा कपासकी जड़को पीसकर गोलाबना, उसगोलेमें हीरेको रख गजपुटमें सातवार पचानेसे हीरेकी भस्म होजाती है । मच्छरोंके रुधिरमें हीरेको सातवार भिगोकर धूपमें सुखादेवै, फिर मैन्शिलका चूरणकर उसके ऊपर लेपकर बेरीकेपत्तोंसे बाँधदेवे, फिर सातवार गजपुटमें पकानेसे हीरेकी भस्म होजाती है । बड़ी नदीमें उत्पन्नहुई सीप, उसमें थूहरका दूध, आककादूध, धतूरेका रस और धीकुवारका रस, इनांमें हीरेको एकदिन पर्यन्त वारंवार भिगोवै, फिर ककेड़ाको चीर मांस निकाल उसमांसकी पिठ्ठीसे लेपकरै फिर उसके ऊपर गिंडोयाकी मट्टीछिड़ादेवै, फिर अग्निमें पचानेसे हीरेकी भस्म होजाती है । लालकमलकी जड़ और चौलाईके शाककी वालको पीसकर गोलाबनालेवै, उसगोलेमें हीरेको रख अग्निदेनेसे हीरेकी भस्म होजाती है । हीरेकी भस्म—आयु, बल, रूप, देह और सुखकी वृद्धि करै और सर्वप्रकारके रोगोंका नाशकरै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ वैक्रान्तशोधनमारणमाह ।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं नीलं वालोहितं च वा ।

हयमूत्रेण तत्सेव्यं तत्तत्तत्रिसप्तधा ॥ ४७ ॥

ततश्चोत्तरवारुण्यापंचाङ्गे गोलके क्षिपेत् ।

रुद्धामूषापुटे पच्यदुद्धृत्य गोलके पुनः ॥ ४८ ॥

क्षिप्त्वारुद्धापचेदेवं सप्तधा भस्मतां व्रजेत् ।

भस्मीभूतश्च वैक्रान्तं वज्रस्थानेनियोजयेत् ॥ ४९ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखण्डे

वज्रवैक्रान्तशोधनमारणोनाम पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

अर्थ—नीलेरंगकी अथवा लाल रंगकी वैक्रान्तमणिको हीरेकी समान शोधना चाहिये । फिर वैक्रान्तको अग्निमें गरम कर घोंडेके मूत्रमें इक्कीसवार बुझावै, इसके उपरान्त बड़ी इन्द्रायणके पत्ते, मूल, छाल, फल और फूल पीसकर गोला

वनालेवै, उसगोलेमें वैक्रान्त रख मूषापुटमें पकावै। इसप्रकार सातवार पकानेसे वैक्रान्तकी भस्म होजातीहै । वैक्रान्तकी भस्म हीरेके अभावमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखंडे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां भिषक्शालिग्रामवै-
द्यकृतवज्रवैक्रान्तशोधनमारणनाम पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

अथाभ्रशोधनमारणमाह ।

अशुद्धाभ्रं निहन्त्यायुर्वर्द्धयेन्मारुतंकफम् ।

अहतं छेदयेद्देहं मन्दाग्निं किमिदायकम् ॥ १ ॥

कृष्णं पीतं सितं रक्तं योज्यं योगेरसायने ।

पिनाकदर्दुरं नागं वज्रञ्चेति चतुर्विधम् ॥ २ ॥

पिनाकाद्यास्त्रयो वर्ज्या वज्रं यत्नात्समाहरेत् ।

मुंचत्यग्नौ विनिक्षिप्ते पिनाकोदलसंचयम् ॥ ३ ॥

अज्ञानाद्भक्षणन्तस्य महाकुष्ठप्रदायकम् ।

दर्दुरो निहितो ह्यग्नौ कुरुते दर्दुरध्वनिम् ॥ ४ ॥

नागश्चाग्निगतः शब्दं फूत्कारं च विमुंचति ।

स च देहगतो नित्यं व्याधिकुर्याद्भगन्दरम् ॥ ५ ॥

वज्राभ्रकं वह्निं संस्थं न किंचिद्विकृतिं व्रजेत् ।

तस्माद् वज्राभ्रकं योज्यं व्याधिवाद्धं क्यमृत्युजित् ॥ ६ ॥

अर्थ—अशुद्धअभ्रक—आयुनाशक तथा वात और कफवर्द्धक है । और बिना-
मारा अभ्रक—देहनाशक तथा मंदाग्नि और कृमिरोगको उत्पन्न करे ॥ १ ॥
काला, पीला, सफेद, लाल, इनरंगोंके भेदोंसे अभ्रक चार प्रकारकाहै, और
यह रसायनयोगमें प्रयोग करना चाहिये तथा पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र
इन भेदोंसे अभ्रक चारप्रकारकाहै और इनमें पिनाकादि तीन अभ्रक त्यागने-
चाहिये और वज्र अभ्रकलेना चाहिये ॥ (अथ पिनाकअभ्रकका लक्षण) ॥
जिस अभ्रकको अग्निमें डालनेसे बहुतसे परत होजाय उसको पिनाकअभ्रक
जानना । इस अभ्रकको जो मनुष्य अज्ञानसे भक्षण करलेते हैं उनके महाकुष्ठ-
रोग उत्पन्न होताहै ॥ (अथ दर्दुरअभ्रकलक्षण) ॥ दर्दुरअभ्रकको अग्निमें

डालनेसे दर्दुर अर्थात् मेडकैसा शब्द करता है ॥ (अथ नागअभ्रकका लक्षण) ॥ नागअभ्रकको अग्निमें डालते ही सर्पकी समान फुंकार करताहै, और इसको जो प्राणी विनाविचारे भक्षण करलेतेहैं, उनके भगन्दर रोग उत्पन्न होताहै ॥ (अथ वज्राभ्रकका लक्षण) ॥ वज्राभ्रक अग्निमें डालनेसे कुछभी विकारको नहीं प्राप्त होताहै, इसकारण वज्राभ्रक लेना चाहिये और यह व्याधि, बुढापा तथा मृत्युनाशकहै ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

धमेद्वज्राभ्रकंवह्नौततःक्षीरेनिषेचयेत् ।
 भिन्नपत्रंतुतंकृत्वामेघनादद्रवाम्लयोः ॥ ७ ॥
 भावयेदष्टयामन्तन्धान्याभ्रकारयेत्सुधीः ।
 अथवाभ्रस्यभागौद्वौटंकश्चैकंजलैःसह ॥ ८ ॥
 द्विदिनंस्थापयेत्पात्रेसूक्ष्मंकृत्वाप्रपेषयेत् ।
 बद्धाधान्ययुतंवस्त्रेमर्दयेत्कांजिकैःसह ॥ ९ ॥
 अधोयद्वालितंसूक्ष्मंशुद्धंधान्याभ्रकंभवेत् ॥ १० ॥

अर्थ—वज्राभ्रकको लेकर अग्निमें तपावै, फिर दूधमें बुझावै फिर इसके अलग अलग परत करले, पीछे चौलाईके रसमें और कांजीमें आठ ग्रहर भावना देकर धान्याभ्रक बनालेवै । अथवा दोभाग वज्राभ्रक और एकभाग सुहागा, जलमें भिगोकर अत्यंत बारीक पीसलेवै, फिर धान्योंके साथ वस्त्रमें बाँधकर काँजीके साथ मर्दन करै, फिर छानलेवै उसको धान्याभ्रक कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ शुद्धस्यमारणमाह ।

पुनर्नवामेघनादद्रवैर्धान्याभ्रकंदिनम् ।
 मर्द्यगजपुटेपच्यात्पुनश्चिचाथशूरणैः ॥ ११ ॥
 द्वैर्मुस्तभवैर्मर्द्यपृथग्देयंपुटत्रयम् ।
 एवमर्कदलैर्वैष्टंदेयंवामोचसंपुटे ॥ १२ ॥
 निश्चन्द्रंजायतेह्यभ्रंयथादोषेषुयोजयेत् ।
 गोघृतैस्त्रिफलाकाथैःपक्त्वाचपूर्ववत्पचेत् ॥ १३ ॥

पंचविंशत्पुटैरेवंकासमर्द्याद्रवैः पचेत् ।

देयं पुटत्रयं क्षीरैश्च पुटे पुटे ॥ १४ ॥

निश्चन्द्रं जायते ह्यभ्रजरा मृत्यु रूजापहम् ।

धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टंकणस्य तु ॥ १५ ॥

पिष्टात दन्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ।

स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—धान्याभ्रकको एकदिन पुनर्नवा और चौलाईके रसमें मर्दनकर गजपुटमें पचावै, फिर उसको इमली, जमीकंद और नागरमोथेके रसमें अलग अलग तीनवार पुटपाककर आकके पत्तोंमें लपेट मोचसंपुटमें पचानेसे निश्चन्द्र अभ्रक बनजाता है और वह सर्व रोगोंमें देना चाहिये । धान्याभ्रकको नागरमोथेके रसमें मर्दनकर पाँचवार पुटपाक करै, फिर गायके घी और त्रिफलाके काढ़ेमें पकाकर पचीसवार पुटपाक करै, फिर कसौं दीके रसमें मर्दन करके पचीसवार पुटपाक करै, फिर इसको दूधमें मर्दन करके तीनवार पुटपाक करै, इस प्रकार करनेसे निश्चन्द्र अभ्रक होजाताहै, और यह जरा, मृत्यु और रोगनाशक है ॥ धान्याभ्रक एकभाग और सुहागा दोभाग इन दोनोंको एकत्र पीसकर अंधमूषाओंमें रख मूषाका मुख बंदकर तीव्राग्निसे पचावै, जब स्वयं-शीतल होजाय तब उस चूर्णको ग्रहणकरै । यह चूर्ण—सर्वरोगोंमें देना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

धान्याभ्रकमम्लपिष्टं पुटे तप्तेऽम्लसेचनम् ।

तत्पिष्टाधारयेत्खल्वेभाव्यमम्लारनालकैः ॥ १७ ॥

तप्तं तप्तं चारनालैः पाच्यं शोध्यं पुनः पुनः ।

पुटे वा धमने पाच्यं विंशद्वारं पुनः पुनः ॥ १८ ॥

तप्तन्तप्तं क्षिपेद्दुग्धेऽपि द्वाथशोषयेत्पुनः ।

दुग्धतप्तं पुटं पच्यात्तप्तं दुग्धेन सेचयेत् ॥ १९ ॥

एवं त्रिसप्तवाराणि शोष्यं पेप्यं पुटे पचेत् ।

पेषयित्वा पचेत्स्थाल्यां लौहदाव्यां विचालयेत् ॥ २० ॥

दुग्धस्थंचततो दुग्धैः पुटे पच्यात्पुनः पुनः ।

एवंसप्तदिनंपच्यादिवाचैकंपुटंनिशि ॥ २१ ॥

तण्डुलीवज्रवल्लीचतालमूलीपुनर्नवा ।

चाङ्गेरीमरिचंचैवबलायाःपयसासह ॥ २२ ॥

एभिश्चपेषयेच्चाभ्रप्रत्येकंतंयहंयहम् ।

स्थित्वातप्तेपुटेपश्चात्प्रत्येकेनपुनःपुनः ॥ २३ ॥

पिष्टापुनःपुटेघृष्टंकज्जलाभंमृतंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—धान्याभ्रकको काँजीमें पीस पुटपाककरै, जब गरम होजावै तब काँजी में बुझावै, फिर खरलमें डाल बारीक पीस अम्लरस और काँजीमें भिगोवै, फिर पुटपाककर जब गरम होजावै तब काँजीमें बुझावै, ऐसे बारंबार काँजीमें बुझावै, और पुट वा धमनद्वारा पकावै । इसप्रकार बीसबार पकाकर फिर दूधमें पीस पुटपाककर दूधमें बुझावै । इसप्रकार इक्कीस बार करै फिर पीस कढ़ाईमें डालकर पकावै, और लोहकी करछीसे चलाताजावै, फिर दूधके साथ एक पुट दिनमें और एक रात्रिमें ऐसे सात दिन पर्यन्त पकावै, तदनंतर चोलाई, हडसंधारी, मुसली, पुनर्नवा, चाँगेरी, कालीमिर्च और खिरैटी तथा दूध, इन सबके साथ अलग अलग अभ्रकको तीन तीन दिन खरल करै और हरेक मर्दनके साथ पुटदेताजावै, अर्थात् जितनीबार खरल करै उतनीहीबार पुटपाक करै । इसप्रकार करनेसे अभ्रककी निश्चय कज्जलकी समान भस्म बनजातीहै ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

धान्याभ्रकस्यशुद्धस्यदशांशंमरिचंक्षिपेत् ।

पेषयेत्तुल्यग्रेणचाम्लेभाव्यंदिनत्रयम् ॥ २५ ॥

तंशुष्कंसंपुटेधान्यंखदिरांगारकैर्दृढम् ।

उद्धृष्टपात्रंनिरूप्याथसेचयेदम्लकेनतम् ॥ २६ ॥

अगस्त्यशिशुवर्षाभूमूलैस्तं पत्रजैरसैः ।

पिष्ट्वाभ्रंसेचयेत्तेनषड्वान्याम्लरसेनच ॥ २७ ॥

क्षित्तमध्वाज्यगोक्षीरैर्दध्नाम्लपेष्यमभ्रकम् ।

मत्स्याक्ष्याःकरवीरायाद्रवैःपिष्ट्वात्रिधापचेत् ॥ २८ ॥

ततो गजपुटेपाच्यंनिश्चन्द्रंजायतेऽभ्रकम् ।

धान्याभ्रकंद्रवैर्मर्द्यमत्स्याक्षीतुलसीद्रवैः ॥ २९ ॥

मूलजैःकोकिलाक्षस्यकुमारीश्वेतदूर्वयोः ।

व्याघ्रीकन्दपुनर्नव्यादिनमेतैर्विमर्दयेत् ॥ ३० ॥

कुंजराख्यैःपुटैःसप्तपिष्टापिष्टापचेत्पुनः ।

तद्वत्पंचामृतैःपाच्यंपिष्टापिष्टातुसप्तधा ॥ ३१ ॥

एवंनिश्चन्द्रतांयातिसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—धान्याभ्रकसे दशमा भाग मिरचोंका चूरन भिला अम्लवर्गके रसमें खरलकर तीनदिनपर्यन्त कांजीमें भिगोवै, फिर सूखने पर सम्पुटमें रख खैरके अंगारोंकी प्रचंड अग्निसे पचावै और उसके ऊपर पात्रग्रव अम्लरसमें सींचता जावै, फिर अगस्तिया, सैजिना और पुनर्नवा इनकी जड़ तथा पत्तोंके रसमें पीमके पकावै, फिर कांजीमें भिगोलैवै, फिर मिश्री, मधु, घृत, दूध और दही-के साथ पीमकर एकवार मछेछीके रसमें खरलकर, और एकवार कनेके रसमें खरलकर, तीनवार पुट देकर पचावै, फिर गजपुटमें फूँकेदेवै तो अभ्रककी निश्चन्द्र और उत्तम भस्म बनजातीहै । मछेछी, तुलसी, तालमखानेकी जड़, वीकु-वार, मफेददूब, व्याघ्रीकंद और पुनर्नवा, इन सबके रसमें धान्याभ्रकको एक दिन खरलकरै, फिर गजपुटमें सातवार पकावै तो अभ्रकका निश्चन्द्रभस्म होजा-तीहै, और इसका सर्वरोगोंमें प्रयोग करना योग्यहै ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

धान्याभ्रकणंतुल्यंगोमूत्रैस्तुलसीदलैः ।

वाकुच्याःसूरणैरुपैर्दिनंपिष्टापुटेपचेत् ॥ ३३ ॥

जयन्त्याश्वद्रवैःपश्चान्मर्द्यमर्द्यत्रिधापुटेत् ।

चतुर्गजपुटेनैवंनिश्चन्द्रंसर्वरोगजित् ॥ ३४ ॥

धान्याभ्रकंरविक्षीरैरविमूलद्रवैश्चवा ।

मर्द्यमर्द्यपुटेपश्च त्सप्तधाग्नियतेध्रुवम् ॥ ३५ ॥

धान्याभ्रकंतुपाम्लाम्लैरातपस्थापयेद्दिनम् ।

यामंमर्द्यचतुर्गोलंरुद्धागजपुटेपचेत् ॥ ३६ ॥

एवंगोक्षीरमध्यस्थंस्थाप्यमर्द्यपुटेपचेत् ।

एवंकार्पासतोयेनस्थाप्यंपेष्यंपुटेपचेत् ॥ ३७ ॥

ततोम्लैश्चैवकार्पासैर्गवाक्षीरैःपुनःपुनः ।

धर्मपाकंमर्दनंचपुटश्चैवमनुक्रमात् ॥ ३८ ॥

एकविंशत्पुटेप्राप्तेमृतोभवतिनिश्चितम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—धान्याभ्रक और सुहागा समानभाग लेकर गोमूत्र तुलसीपत्र वापची और जमीकंदके रसमें एकदिन खरलकर गजपुटमें पकावै, फिर जयन्तीके रसमें खरलकर तीनवार पुटमें पकावै, इसप्रकार चारवार गजपुटदेनेसे अभ्रककी निश्चन्द्रभस्म बनजातीहै और यह सर्वरोगनाशकहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ धान्याभ्रकको आकके दूधमें अथवा आककी जड़के रसमें खरलकर पुटदेताजावै, इसबार सातवार पुटदेनेसे अभ्रककी भस्म होजातीहै ॥ ३५ ॥ धान्याभ्रकको जोकि काँजी और अम्लरसमें डाल एकदिन धूपमें धरदेवै, फिर चारप्रहर खरलकर गोला बना लेवै, उस गोलेको संपुटमें रख गजपुटमें पचावै, इसीप्रकार गायके दूधमें डाल खरलकर गजपुटमें पचावै, इसीप्रकार कपासकी जड़के रसमें डाल खरलकर गजपुटमें पचावै, फिर अम्लरसमें, गायके दूधमें तथा कपासकी जड़के रसमें स्थापनकर बारंवार सूर्यकी धूपमें धर, मर्दनकर गजपुटमें पकाता जाय, इसप्रकार इक्कीस पुट देनेसे अभ्रक निश्चय मरजाताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सर्वेषांचातिताभ्राणाममृतीकरणंशृणु ।

त्रिफलोत्थकषायस्यपलान्यादायषोडश ॥ ४० ॥

गोमूत्रस्यपलान्यष्टौमृताभ्रस्यपलान्दश ।

एकीकृत्यलौहपात्रेपाचयेन्मृदुवहिना ॥ ४१ ॥

द्रवेजीर्णसमादायसर्वरोगेषुयोजयेत् ।

अनुपानंविनाह्यभ्रंजरामृत्युरुजापहम् ॥ ४२ ॥

योजयेदनुपानैर्वातत्तद्रोगहरंक्षणात् ।

मृतंचाभ्रंहरद्रोगाञ्जरामृत्युमनेकधा ॥ ४३ ॥

सेवितंदेहदाढ्यञ्चरूपंवीर्यंविवर्द्धयेत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे

रसखंडे अभ्रकमारणं नाम षष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब सर्वप्रकारके मृताभ्रकोंका अमृतीकरण कहतेहैं—त्रिफलाका काथ चौंसठतोले, गोमूत्र बत्तीसतोले और मृताभ्रक चालीसतोले, इन सबको एकत्र करके लोहेके पात्रमें मृदु अग्निसे पकावै, जब द्रवहीन होजाय तब लेकर सर्वरोगोंमें प्रयोग करै । विना अनुपानकेही यह अभ्रक—जरा, मृत्यु और रोगोंका नाश करताहै । और अनुपानोंके साथ इसका सेवन करनेसे क्षणभरमें सर्वप्रकारके रोग दूर होजातेहैं । मारित अभ्रक अर्थात् अभ्रककी भस्म ज्वरादिरोग, जरा और मृत्युनाशकहै, देहको दृढ करनेवाली, तथा रूप और वीर्यको बढ़ानेवालीहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां भिषक्शालिग्राम-
वैश्यकृतायामभ्रकमारणं नाम पष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

अथ तालकशुद्धिमाह ।

अशुद्धतालमायुर्ध्रुवकफमारुतमेहकृत् ।

तापशोफाङ्गसंकोचंकुरुतेतेनशोधयेत् ॥ १ ॥

तालकंकणशःकृत्वादशांशेनचटंकणम् ।

जम्बीराणांद्रवैःक्षाल्यंकाञ्जिकैःक्षालयेत्पुनः ॥ २ ॥

वस्त्रैश्चतुर्गुणैर्बद्धादोलायंत्रेदिनंपचेत् ।

संयुक्तेचारनालेनदिनंकूष्माण्डजैरसैः ॥ ३ ॥

तिलतैलैःपचेद्यामंयामश्चत्रिफलाजलैः ।

त्रिवारंतालकंभाव्यंपिष्ट्वामूत्रैश्चकाञ्जिकैः ॥ ४ ॥

तत्फलैर्दशभिर्देयंरुद्धापुटंचपेषयेत् ।

एवंद्वादशधापाच्यंशुद्धंयोगेषुयोजयेत् ॥ ५ ॥

तालकंपोटलीबद्धंसप्ताहंकाञ्जिकेपचेत् ।

दोलायंत्रेणयामैकंततःकूष्माण्डजैरसैः ॥ ६ ॥

तिलतैलेपचेद्यामंयामश्चत्रिफलाजलैः ।

एवंयंत्रेचतुर्यामंपाच्यंशुद्धयतितालकम् ॥ ७ ॥

तालकोहरतेरोगान्पृष्ठमृत्युज्वरापहः ।

शोधितःशान्तिवीर्यंचकुरुतेवायुवर्द्धनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अशुद्ध हरताल—आयुनाशक, तथा कफ, वात, प्रमेह, दाह, लिंगसंकोच और अंगसंकोचको उत्पन्न करैहै । इसकारण हरतालको शुद्ध करना चाहिये ॥ १ ॥ हरितालके छोटे छोटे कण करके उसमें दशमाभाग सुहागा भिलाखै, फिर उसको जम्भीरी नाँवुओंके रसमें एकवार और कांजीमें एकवार धोकर चौशुने वस्त्रमें बाँध दोलायंत्रमें एकदिन पचावै, फिर कांजीमें पीसके एकदिन पेटेके रसमें, एकप्रहर तिलोंके तेलमें और एकप्रहर त्रिफलाके काढेमें पकाकर गोमूत्र और कांजीमें तीनवार भावना देवै फिर त्रिफलाके काढेमें दशवार भावना देकर संपुटमें रख मुख बंदकर पुट देवै, इसप्रकार बारह पुट देनेसे हरिताल शुद्ध होजातीहै । और यह सर्व योगोंमें योजनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ हरितालको पोदलीमें बाँध कांजीमें सातदिन दोलायंत्रके द्वारा पकावै । इसीप्रकार पेटेके रसमें एकप्रहर, तिलोंके तेलमें एकप्रहर और त्रिफलाके काढेमें एकप्रहर दोलायंत्रके द्वारा पचावै, इसप्रकार चारप्रहर दोलायंत्रमें पचानेसे हरिताल शुद्ध होजाताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥ शुद्धहरिताल—मृत्यु, कुष्ठ और ज्वरादि रोग नाशक है । तथा शांति, वीर्य और वायुवर्द्धक है ॥ ८ ॥

अथ शिलाशुद्धिमाह ।

अश्मरीमूत्रहृद्रोगमशुद्धाकुरुतेशिला ।

मन्दाग्निमलबंधचशुद्धासर्वरुजापहा ॥ ९ ॥

अजामूत्रेऽयहंपाच्यादोलायंत्रेऽमनःशिला ।

सप्तधातैरजापित्तैर्धर्मैर्भाव्यं विशुद्धये ॥ १० ॥

जयन्तीभृंगराजोत्थरक्तागस्त्यरसैःशिला ।

दोलायंत्रेदिनंपाच्यायामंछागस्यमूत्रके ॥ ११ ॥

क्षारयेदारनालेनसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—अशुद्धमनशिल—अश्मरी (पथरीरोग), मूत्ररोग, हृदयरोग, मंदाग्नि और मलवद्धताको उत्पन्न करै है और शुद्धमनशिल सर्वरोगनाशकहै ॥ ९ ॥ मनशिलको बकरीके मूत्रमें दोलायंत्रके द्वारा तीन बार पकावै, फिर बकरीके पित्तकी धूपमें सात भावना देवै, इसप्रकार करनेसे मनशिल शुद्ध होजाताहै ॥ १० ॥ मनशिलको एकदिन दोलायंत्रमें जयन्ती, भांगरा और अगस्तियाके पत्तोंके रसमें तथा एक प्रहर बकरीके मूत्रमें पचाकर काँजीसे धोलेवै, ऐसे मैनशिल शुद्ध होजाती है और इसका सर्व रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ खर्परशुद्धिः ।

नरमूत्रैश्चगोमूत्रैःसप्ताहंरसकंपचेत् ।

दोलायंत्रेणसम्यक्तच्छुद्धंयोगेषुयोजयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—नरमूत्र और गोमूत्रमें दोलायंत्रके द्वारा सातदिन पकानेसे खपरिया शुद्ध होजाती है ॥ १३ ॥

अथ तुत्थकशुद्धिमाह ।

विष्टयामर्दयेत्खल्वेमार्जारककपोतयोः ।

दशांशंटकणंदद्यात्पाच्यमृदुअग्निनाततः ॥ १४ ॥

पुटंदध्रापुटंशौद्रैर्देयंतुत्थविशुद्धये ॥ १५ ॥

अर्थ—विलावकी विष्टा और कवृतरकी विष्टाके साथ नीलेथोथेको खरल कर फिर उसमें दशमाभाग सुहागा मिलाय मृदु अग्निसे पकावै, फिर एकवार दहीमें भिगो पुटदेकर और एकवार मधुमें भिगो पुटदेनेसे नीला थोथा शुद्ध होजाताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ विमलाशुद्धिः ।

विमलात्रिविधापाच्यारम्भातोयेनसंयुता ।

अम्लवेतसधान्याम्लमेपीमूत्रेणपेपयेत् ॥ १६ ॥

दोलायंत्रेचतुर्यामंशुद्धिरेषामहोत्तमा ।

कर्कटीमेषशृंग्युत्थद्रवैर्जम्बीरजैर्द्रवैः ॥ १७ ॥

भावयेदातपेतीत्रेविमलाशुध्यतिध्रुवम् ॥ १८ ॥

अर्थ—रूपामाखीको केलेके जलमें तीनवार पकाकर अमलवैत, कांजी और भेडके मूत्रमें पीसलेवै फिर दोलायंत्रमें चारग्रहर पकावै तो शुद्ध होजातीहै ॥ काकडाशिगी, मेढाशिगी, और जम्भीरी नींबू इन सबके रसमें रूपामाखीको तेज धूपमें भावनादेनेसे शुद्ध होजाती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ मासिकशुद्धिः ।

मंदाग्निबलहानिचव्रणविष्टम्भनेत्ररुः ।

रुतेमासिकोमृत्युमशुद्धोनात्रसंशयः ॥ १९ ॥

माशिकं नरसूत्रेण काथयेत्कोद्रवैर्द्रवैः ।
 वेतसेनाम्लवर्गेण टंकणेन कटुत्रिकैः ॥ २० ॥
 दोलायंत्रे दिनं पाच्यं सूरणस्यैव मध्यगम् ।
 दिनं रम्भाद्रवैः पच्यात्तद्धृत्वापेषयेद्घृतैः ॥ २१ ॥
 एरण्डतैलसंयुक्तं पुटे पश्चाद्विशुद्ध्यते ।
 माशिकस्य त्रयोभागाभागेकं सैन्धवस्य च ॥ २२ ॥
 मातुलंगद्रवैर्वाथजम्बीरोत्थद्रवैः पचेत् ।
 लोहपात्रे पचेत्तावद्यावत्पात्रं सुलोहितम् ॥ २३ ॥
 ताम्रवर्णमयो याति तावच्छुध्यति माशिकम् ।
 अगस्तिपुष्पनिर्यासैः शिशुमूलं विघर्षयेत् ॥ २४ ॥
 द्रवैः पापाणभेद्याश्च पश्चादेभिश्च माशिकम् ।
 तद्वटीचान्धमूषायां विंशद्विरूपलैः पचेत् ॥ २५ ॥
 पुनः पिष्ट्वाथ रुन्ध्याच्च पुटे षड्भिर्विशुद्ध्यति ॥ २६ ॥
 मेघनादपापाणभेदीं पिष्ट्वा तत्पिण्डमध्ये मा-
 शिकं काणशः कृत्वानि क्षिपेत् । तद्रोलकं वस्त्रे
 बद्ध्वा दोलायंत्रे कुलत्थकाथे दिनमेकं पचेत् ।
 एतच्छुद्धलोहानां युक्तास्थाने मारणे योज्यम् ॥ २७ ॥
 भंगे सुवर्णसंकाशो मनाक् कृष्णो बहिश्छविः ।
 बृहद्वर्ण इति ख्यातो माशिकश्चेष्ट उच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—अशुद्ध सोनामाखी—मंदाग्नि, बलहानि, व्रण, विष्टम्भ, नेत्ररोग और मृत्युको करती है ॥ १९ ॥ सोनामाखीको मनुष्यके धूत्रमें पकाके जमी कंदके भीतर रखदेवै, फिर कोदों, अमलवैत, अमलवर्ग, सुहागा और त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल) इन सबके काथके साथ एकदिन दोलायंत्रमें पकाके फिर एकदिन केलेके जलमें पकाकर, फिर धीमें पीसकर अंडीके तेलमें मिलाकर पुटपाक करनेसे सोनामाखी शुद्ध होजाती है । तीनभाग सोनामाखी और एकभाग सेंधानोन इनको बिजोरेके रसमें अथवा जम्बीरी नींबूके रसमें

डालकर लोहेके पात्रमें पकावै, जब लोहेका पात्र लाल होजावै और सोना-
माखी तांबेकी रंगकी हीजावे, तब शुद्ध होजाती है । अगस्तके फूलोंका गोंद,
सैंजिनेकी जड़ और पाषाणभेदका रस इनमें सोनामाखीको खरलकर गोला
बनालेवै उस गोलेको अंधमूषामें रख बीस उपलोंके द्वारा पकाकर, फिर पूर्ववत्
पीसके सम्पुटमें रख मुखबंदकर छैवार पुट देनेसे सोनामाखी शुद्ध होजाती है ।
चौलाई और पाषाणभेदको पीसकर गोलाबनालेवै, उस गोलेमें चूरण कीहुई सोना-
माखी रख गोलेको वस्त्रमें बाँध कुलथीके काथमें दोलायंत्रके द्वारा एकदिन
पकावै तौ सोनामाखी शुद्ध होजाती है ॥ (अथ परीक्षा) जो माखी तोडनेमें
भीतरसे सुवर्णकी समान प्रकाशवाली हो और ऊपरसे किंचित् काली दीखै,
तथा गहरे रंगवाली हो ऐसी सोनामाखी श्रेष्ठ होती है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥
॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथोपरसानां समुदायेन शुद्धिमाह ।

व्यापयत्यङ्गमङ्गान्तितैलविन्दुरिवाम्भसि ।

नविनाशोधनं सर्वधातवः प्रबलादयः ॥ २९ ॥

रोगोपशमकर्तारः शोधनं तेन वक्ष्यते ॥ ३० ॥

प्रवालानां स्त्रीदुग्धेन भावना पश्चा-
द्वण्डिकामध्ये स्थापयित्वा निरुध्यो-
परिशरावकं दत्त्वा लेपयेत् ।

वह्निसंदीपनं कृत्वा प्रहरद्वयेन विद्रुमं प्रियते ॥ ३१ ॥

कुलत्थस्य पचेद्द्रोणं वारिद्रोणेन बुद्धिमान् ।

तेन पादावशेषेण काथेष्टौ मणयः शिला ॥ ३२ ॥

आतपे त्रिदिनं शुष्कं काथसिक्तं पुनः पुनः ।

मुक्ताचूर्णं समादाय करकाम्बुविभावितम् ॥ ३३ ॥

आतपे त्रिदिनं भाव्यं चूर्णितं मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥

(अत्र वर्षोपलंकरका ।)

अर्थ—जैसे जलमें तेलकी बूंद गेरनेसे फैलजाता है तैसेही विनाशोधित प्रवा-
लादिक धातु देहमें फैल रोगोंको शांति नहीं करती है इसकारण उनको

शोधना चाहिये । मूँगेको स्त्रीके दूधमें भावना देकर हाँडीमें रक्त सरैयासे ढक मटीके गारेको लेप करै, फिर दोप्रहर आग्नि देवै तो मूँगेकी भस्म होजाती है । आठसेर कुलथीको ३२ बत्तीस सेर जलमें पकावै जब चौथाभाग जल शेष रहै तब उसमें वैदूर्यादि आठ प्रकारकी मणि और भैनशिलको बुझाकर बारंवार धूपमें सुखावै तो मणि और मुक्ता शुद्ध होजाते हैं । मोतियोंके चूर्णको ओलोक पानीमें डालेके धूपमें तीनवार भावना देवे तो मोतीकी भस्म होजाती है ॥२९॥
॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

शंखनीलांजनश्चैवपूर्ववच्छोधयेद्दिने ।

गोमूत्रैस्त्रिफलाकाथैर्भृंगराजद्रवैर्जतुम् ॥ ३५ ॥

मर्दयेदायसेपात्रेदिनाच्छुद्धिःशिलाजतोः ।

मेषीक्षीरेणदरदमम्लवर्गेऽश्वभावितम् ॥ ३६ ॥

सप्तवारंप्रयत्नेनशुद्धिमायातिनिश्चितम् ।

सूर्यावर्तवज्रकन्दंकदलीदेवदालिका ॥ ३७ ॥

शिमुकोषातकीवन्ध्याकाकमाचीचवायसी ।

आसामेकरसेनैवत्रिषारैर्लवणैर्युतम् ॥ ३८ ॥

अम्लवर्गेणदिनमेकंप्रयत्नतः

सौवीरकान्तपाषाणंशुद्धभूनागमृत्तिका ॥ ३९ ॥

शंखोनीलाञ्जनंचैवसर्वेऽपरसाश्चये ।

पृथग्भाष्यंविधानेनशुद्धियान्तिदिनेदिने ॥ ४० ॥

ततःपश्चात्तुतद्वावैर्दोलायत्रेदिनंसुधीः ।

शुध्यन्तेनात्रसंदेहःसर्वेषुपरमाअमी ॥ ४१ ॥

मुंचंतिद्रुतसत्त्वाश्चमतंसाधारणंस्मृतम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—शंख और सुरमेको मोतियोंकी समान एक दिनमें शोधना चाहिये । शिलाजीतको लोहेके पात्रमें डाल उसमें गोमूत्र, त्रिफलाका काथ और भांग-रेका रस मिलाकर एकदिन खरलकरै तौ शिलाजीत शुद्ध होजाताहै । सिंग्र-फको भेड़के दूध और अम्लवर्गमें सातवार भावना देनेसे शुद्ध होजाताहै । सूर्यावर्त (हुलहुल), वज्रकन्द, केला, सोनैया, कड़वीतोरई, वनककोड़ा, मकोय

और काकादनी इनमेंसे किसीएकके रसमें जवाखार, सजी, सुहागा, पंचलवण और अम्लवर्ग मिलाले उससे एक एक दिनमें पृथक् पृथक् भावना देवै तो सुर्मा, कांतपाषाण, शुद्धभूनागमृत्तिका, शंख और कालासुर्मा आदि सर्व उपरस शुद्ध होजातेहैं । फिर इन पूर्वोक्त औषधियोंके रसमें दोलायंत्रके द्वारा पकानेसे एकदिनमें उपरोक्त सर्वप्रकारके उपरस शुद्ध होजातेहैं और सर्व सतको छोड़ने-वाले होजातेहैं, यह साधारण मतहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ सत्त्वपातनमारणमाह ।

गुग्गुलुंटंगणलाक्षामज्जासर्जरसंपुनः ।

ऊर्णागुंजाक्षेत्रमीनमस्थीनिशशकस्यच ॥ ४३ ॥

गुडमध्वाज्यपिण्याकंतुत्थपेष्यमजाजलैः ।

सर्वतुल्यंचधान्याभ्रभूनागमृत्तिकापिच ॥ ४४ ॥

कान्तपाषाणचूर्णञ्चकठिन्युपरसाश्रये ।

मेलयेन्माहिषैःपंचदध्यादिगोमयान्तिकैः ॥ ४५ ॥

दृढमर्धवटींकुर्यात्कर्षमात्रन्तुशोषयेत् ।

गोष्ठीयंत्रेधमेद्वाढमंगारैश्चचिरोद्भवैः ॥ ४६ ॥

त्रिवारंधमनादेवंसत्त्वंपततिनिर्मलम् ।

असाध्यान्मोचयेत्सत्त्वान्मृत्तिकादेश्चकाकथा ॥ ४७ ॥

लाक्षाआज्यंतिलाःशिशुटंगणलवणंगुडम् ।

तालकाद्धेनसंयोज्यच्छिद्रमूपांनिरोधयेत् ॥ ४८ ॥

पुटेपातालयंत्रेणसत्त्वंपततिनिश्चितम् ।

तालकंचूर्णयित्वातुच्छागीक्षीरेणभावयेत् ॥ ४९ ॥

वारत्रयंततोविद्धिमूलंपिष्ट्वातुमिश्रितम् ।

कृत्वाचगुडकंशुष्कंसत्त्वंग्राहयंचपूर्ववत् ॥ ५० ॥

अर्थ—गूगल, सुहागा, लाखकीमिंग, राल, ऊन, चोटली, खेतकी मछली, खरगोशकी हड्डी, गुड़, मधु, घृत, खल और तूतिया, इन सबको समानभाग लेकर बकरीके मूत्रमें पीसलेब, तदनंतर इन सब औषधियोंकी समान धान्या-

भ्रक, गेमेकीमट्टी, कान्तपाषाण और रेलखडी आदि उपरस ले एकत्रकर
 भैंसके पंचामृतम दृढ़ मर्दनकर दोतोलेभरकी गोली बनाकर धूपमें सुखादेवै फिर
 पुराने कोयलोंकी आगसे गोष्ठियंत्रमें तीनबार पकानेसे निर्मलसत्त्व पतित होता-
 है । इसके द्वारा असाध्य उपरसोंकाभी सत्त्व निकलजायहै, और मृत्तिका
 आदिकी तो क्या कथा ? ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ लाख, घी,
 तिल, सैजिना, सुहागा, सैंधानोन और गुड यह सब समानभाग और इनसे
 आधाभाग हरिताल लेकर सबको एकत्रकर छिद्रमूषामें रख पातालयंत्रके द्वारा
 पकानेसे निश्चय सत्त्व पतित होताहै । हरितालके चूर्णको बकरीके दूधमें
 तीनबार भावनादेवै फिर पाढकी जडको पीस चूरन बना उस चूरनको हरिता-
 लमें मिला बडी बनालेवै, उन बडियोंको सुखाकर पूर्ववत् अग्निमें जलानेसे
 सत्त्व पतित होताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अन्यमतम् ।

तालकंमर्दयेदुग्धैःसर्पाक्षीवाथमूलकैः ।

पूर्ववद्वाहयेत्सत्त्वंछिद्रमूषानिरुध्यच ॥ ५१ ॥

तालवच्चशिलासत्त्वंग्राह्यंतैरेवचोषधैः ।

तुल्येनटङ्गणेनैवध्वान्तंसत्त्वंचतुर्थकम् ॥ ५२ ॥

गोक्षीरैश्चतुर्थक्षीरैर्भाव्यमेरण्डतैलकैः ।

माक्षिकंदिनमेकन्तुमर्दितंवटकीकृतम् ॥ ५३ ॥

अभ्रवद्धमनेकत्वंसम्यगस्याप्ययंविधिः ।

जयन्तीत्रिफलाचूर्णहरिद्रागुडटंगणम् ॥ ५४ ॥

पादांशंटंगणस्येदंपिष्टामूषाविलेपयेत् ।

नालिकासंपुटंबद्धाशोषयेदातपेखरे ॥ ५५ ॥

ग्राह्यंपातालयंत्रेचसत्त्वंध्मातंपुटेनच ॥ ५६ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखण्डे

सर्वोपरसानां सत्वपातनं नाम सप्तमोपदेशः ॥ ७ ॥

अर्थ—हरितालको दूध अथवा सर्पाक्षीकी जडके रसमें मर्दनकर छिद्रमूषामें
 रख पूर्ववत् पातालयंत्रमें पकानेसे सत्त्व निकलताहै ॥ ५१ ॥ पूर्वोक्त हरिता-
 लकी औषधी और समान भाग सुहागेको ग्राह्यलिखित साथ लवणकाड़ा, बकरीका

लकी समान पाक करनेसे मनशिलका सत्त्व पतित होता है ॥ ५२ ॥ सोना-
माखीको गायके दूधमें तूतियाके रसमें और अंडके तेलमें भावनादे, फिर एक-
दिन खरल कर बड़ी बना अभ्रकवत् पातालयंत्रमें पकानेसे सत्त्व पतित होता है।
जैती, त्रिफला, हलदी, गुड और सुहागा, इन सबका चूरन कर और उस चूर-
नसे चौशुना सुहागा मिला व बारीक पीस तिसके द्वारा मूषाका मध्यभाग लेप
नलिकासम्पुटमें बद्ध कर तेजधूपमें सुखा पातालयंत्रके द्वारा पकानेसे सब
उपरसोंका सत्त्व पतित होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां भिषक्शालिग्रामवैश्य-
कृतसर्वोपरससत्त्वपातनं नाम सप्तमोपदेशः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथ सर्वलौहानांशोधनमारणमाह ।

स्वर्णतारंताम्रनागंवंगंकान्तंचतीक्ष्णकम् ।

मुण्डान्तमष्टधालौहंकाश्यारंधोषकंत्रिधा ॥ १ ॥

उपलौहाःसमाख्यातामण्डुरोलौहकिट्टकम् ।

एतेद्वादशधाशोध्यामार्याद्राव्याःपुटादिषु ॥ २ ॥

तैलेतकेगवां मूत्रेह्यारनालेकुलत्थकैः ।

क्रमात्प्राप्तंतथातप्तंद्रावेद्रावेतुसप्तधा ॥ ३ ॥

स्वर्णादिलौहपात्राणांशुद्धिरेषाप्रकीर्तिता ।

हेमःपादंमृतंमृतंपिष्टमम्लेनकेनचित् ॥ ४ ॥

पत्रेलिध्वापुटेपच्यादष्टाभिर्प्रियतेध्रुवम् ।

शुद्धानांसर्वलौहानांमारणेरीतिरीदृशी ॥ ५ ॥

अर्थ—मोना, रूपा, ताँबा, सीसा, राँग, कान्तलौह, तीक्ष्णलोह (ईसपात)
और मुण्डलोह, पीतल तथा काँसी ऐसे लोहा दश प्रकारके हैं, मण्डूर और
लोहेकी कीट ऐसे उपलोहा दो प्रकारके हैं, और सर्व मिलकर यह बारह हैं, यह
सर्वशोधन, मारण और पुटमें द्रावण करने चाहिये । तेल, तक्र, गोमूत्र, काँजी
और कुलथीके कादेमें स्वर्णादि बारह लोहोंको क्रमसे सातसातबार बुझाता
जाय, इसप्रकार स्वर्णादि लोहे शुद्ध होजाते हैं । सोनेमें चौथाभाग माराहुआ
पाग मिलाकर काँजीमें खरलकरे, फिर उममे सुवर्णादिकोंके पत्रोंपै लेपकर

गजपुटमें पकावै, इसप्रकार आठबार पुट देनेसे सर्वप्रकारके लोहे मरजातेहैं ।
सर्वप्रकारके शुद्धलोहोंके मारनेकी यही रीतिहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ स्वर्णशोधनमाह ।

सौख्यवीर्यबलंहन्तिनानारोगंकरोति च ।

अशुद्धं नमृतं स्वर्णतस्माच्छुद्धं तु मारयेत् ॥ ६ ॥

वल्मीकमृत्तिकाधूम्रगैरिकं चेष्टकापुटे ।

इत्याद्यामृत्तिकाः पञ्चजम्बीरैरारनालकैः ॥ ७ ॥

पिष्ट्वा लेप्यं स्वर्णपत्रं श्रेष्ठं पुटेन शुध्यति ।

भावयेन्मातुलुंगाम्लैस्त्रिदिनं पञ्चमृत्तिकाः ॥ ८ ॥

सैन्धवं भूमिभस्मापि स्वर्णं शुध्यति पूर्ववत् ॥ ९ ॥

नागैः सुवर्णं रजतञ्च ताप्यैर्गन्धेन ताम्रं शिला च नागम् ।

तालेन वंगं त्रिविधं च लौहं नारीपयो हन्ति च हिंशुलेन १० ॥

अर्थ—अशुद्ध सुवर्णकी भस्म सेवन करनेसे—सुख, वीर्य, और बलका नाश होता है, तथा नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं, इसकारण प्रथम सुवर्णको शोध पीछे मारणा चाहिये । बँबईकी मट्टी, धूम्रगेरु और ईट आदिक पाँच प्रकारकी माट्टियोंको जम्बीरी नीबूका रस और काँजीमें खरलकर उसके द्वारा स्वर्णोंके पत्तोंपे लेपकर पुटपाक करनेसे सुवर्ण भले प्रकारसे शुद्ध होजाताहै । पाँच प्रकारकी मट्टी, सैधानोन और भूमिभस्मको विजोरेके रस और काँजीमें तीनदिन पर्यन्त भावनादे पश्चात् खरल कर फिर उसकेद्वारा स्वर्णके पत्रोंपर लेपकर स्वर्णको पुटमें पकानेसे शुद्ध होजाताहै । राँगके द्वारा सुवर्ण, सोनामाखीके द्वारा रूपा, गंधकके द्वारा ताँबा, मैनाशिलके द्वारा सीसा, हरितालके साथ वंग, स्त्रीके दूधके और सिंगफके साथ तीनों प्रकारके लोहे मरजातेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

माक्षिकं नागचूर्णञ्च पिष्टमर्करसेन तु ।

हेमपत्रं पुटेनैव म्रियते क्षणमात्रतः ॥ ११ ॥

स्वर्णाद्द्विपारदं दत्त्वा कुर्याद्यत्नेन पीठिकाम् ।

दत्त्वा द्विधा नागचूर्णं पुटनान्म्रियते ध्रुवम् ॥ १२ ॥

नागचूर्णं शिलावज्रीक्षीरेण परियोजितम् ।

तेनालिप्यसुवर्णस्यकल्कश्चाप्रियतेपुटात् ॥ १३ ॥
 मृतं नागं स्नुहीक्षीरैरथवाम्लेन केनचित् ।
 पिष्ट्वा लेप्यं स्वर्णपत्रं रुद्धा गजपुटे पचेत् ॥ १४ ॥
 आदाय पेषयेदम्लैर्मृन्नागं चाष्टमांशकम् ।
 बद्धा गजपुटे पच्यात् पूर्वनागयुतं युतम् ॥ १५ ॥
 एवं पुनः पुनः पच्यादष्टधा प्रियते ध्रुवम् ।
 शुद्धसूतसमं गंधं माक्षिकं च महाम्लकैः ॥ १६ ॥
 अष्टाभिश्च पुटैर्हं प्रोप्रियते पूर्ववत्क्रियाम् ।
 शुद्धसूतं समं स्वर्णखल्वेकुर्याच्च गोलकम् ॥ १७ ॥
 अधो वै गंधकं दत्त्वा सर्वतुल्यं निरुध्य च ।
 त्रिंशद्गुणैर्देयं पुटान्येवं चतुर्दश ॥ १८ ॥
 निरुत्थं जायते भस्म गंधं देयं पुटे पुटे ।
 स्वर्णस्य द्विगुणं सूतं याममम्लैः मर्दयेत् ॥ १९ ॥
 अधोर्द्धं माक्षिकं पिष्ट्वा मूषायां स्वर्णतुल्यकम् ।
 तत्पृष्ठे मर्दितं हेमतत्पृष्ठे हेममाक्षिकम् ॥ २० ॥
 देयं स्वर्णसमं तच्च पृष्ठे गंधं च तत्समम् ।
 षड्वारं चूर्णितं दत्त्वा रुद्धा मूषांधमेहृढम् ॥ २१ ॥
 स्वभावशीतलं ग्राह्यं तद्भस्म भागपंचकम् ।
 टंगणं श्वेतकाचश्च भागैकश्च प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥
 त्रितयं मधुना जरे न मिलितं गोलकीकृतम् ।
 धान्याभ्रकस्य भागैकमधश्चोर्ध्वश्च दापयेत् ॥ २३ ॥
 निरुध्य तद्धमेद्राढं मूषायां घटिकाद्वयम् ।
 निरुत्थं जायते भस्मतत्तद्योगेषु योजयेत् ॥ २४ ॥
 शुद्धमाक्षिकं भागैकं भागं चावोटमाक्षिकम् ।
 त्रिभागं रतकं क्षिप्त्वा त्रयमम्लेन मर्दयेत् ॥ २५ ॥

तद्गोलेऽं । तालयंत्रे तदायामत्रयं पचेत् ।

इत्येवं प्रियते स्वर्णं निरुत्थं नात्र संशयः ॥ २६ ॥

तथैव च राजवृक्षभस्मात्तैष्टङ्गणेन च ।

लिप्त्वा स्वर्णस्य पत्राणि रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ २७ ॥

तैर्द्रवैश्च पुनः पिष्ट्वा घृतेऽथवा पुटे ।

हेममारभ्य तोलैकं मासैकं शुद्धनागकम् ॥ २८ ॥

लिप्त्वा देयन्तु तंचूर्णं तच्छुद्धैर्गन्धमाशिकैः ।

अम्लेऽथवा पुटे पचेत् ॥ २९ ॥

गंधपुनः पुनर्देयं प्रियते दशभिः पुटैः ।

सुवर्णं भवेच्छीतं तत्तं स्निग्धं हिमं गुरु ॥ ३० ॥

बुद्धिविद्यास्मृतिः खण्डिः हारिरसायनम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—सोना माखी और वंगका चूरन आकके रसमें खरल करे, उसके द्वारा स्वर्णके पत्रोंके पुटमें पकानेसे सोनेकी तत्काल भस्म होजातीहै ॥ ११ ॥ एक भाग पारा और दोभाग सोना लेकर दोनोंको बारीक पीस पिटी बना उसके ऊपर और नीचे वंगका चूरन रख गजपुटमें पकानेसे सोनेकी भस्म होजातीहै ॥ १२ ॥ राँगके चूर्ण और मैन्शिलको थूहरके दूधमें खरल कर कल्क बनाले, उस कल्कसे सुवर्णके पत्रोंको लेपकर पुटपाक करनेसे सोनेकी भस्म होजातीहै ॥ १३ ॥ जारितवंगको थूहरके दूधमें अथवा काँजीमें खरलकर कल्क बना उस कल्कके द्वारा सुवर्णके पत्रोंपै लेपकर सम्पुटमें रख गजपुटमें पकानेसे सोनेकी भस्म होजातीहै ॥ १४ ॥ सुवर्णसे आठमा भाग गेसेकी मृत्तिकाले अम्लरसमें खरलकर गजपुटमें पकावै, इसप्रकार आठपुट देनेसे सुवर्ण मरजाताहै ॥ शुद्धपारा, शुद्धगंधक और सोनामाखीको समानभाग लेकर नीबूके रसमें खरलकर फिर आठबार गजपुटमें पकानेसे सोना मरजाताहै ॥ शुद्धपारा और सोना समानभाग लेकर खरलमें खरल कर गोला बनालेवै, फिर गोलेकी बराबर गंधकका चूरन गोलेके नीचे धर गोलेको मूषामें रख ३० उपलोंके द्वारा चौदहबार पुट देनेसे स्वर्णकी भस्म बनजातीहै और हरेक पुटमें गंधकका चूरन देता जाय ॥ एकभाग सुवर्ण और दोभाग पारा इनदोनोंको एकप्रहर काँजीमें खरल करे, फिर सुवर्णकी बराबर सोनामाखीका पीसकर मूषामें ऊपर और नीचे धर उस

के ऊपर सोनेको और सोनेके ऊपर सोनामाखीका और सोनामाखीके ऊपर गंधकका चूरन धरे इस प्रकार छैबार चूर्ण रख मूषाको बंदकर तेज अग्निसे पकावै, जब स्वयं शीतल होजावै तब उस भस्मको पांचभाग लेवै और सुहागा तथा सफेद कांच एक एक भाग लेवै पश्चात् इनको मधु और घीके साथ खरल कर गोला बनालेवै, तदनंतर धान्याभ्रक एक भाग लेकर मूषामें रखदेवै, उसके ऊपर गोला धर फिर उसके ऊपर धान्याभ्रक धर मूषाके मुखको बंदकर दोघड़ी पर्यंत तेज अग्निके द्वारा पकावै तो उत्तम भस्म बनजाय और यह भस्म सर्वयोगोंमें प्रयोगकरनी योग्य है ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ शुद्धसोनामाखी एकभाग, कच्ची सोनामाखी दोभाग और पारा तीनभाग ले कांजीमें मर्दनकर गोला बनालेवै, उस गोलेको स्वर्णके पत्रोंपै लेपकर तीन प्रहर पातालयंत्रमें पकावै तो निःसन्देह सोनेकी भस्म बनजातीहै ॥ २५ ॥ २६ ॥ अमलतास, भिलावा और सुहागा इनसबको एकत्र खरल करै, उसको सुवर्णके पत्रोंपै लेपकर पश्चात् सम्पुटमें रख सातबार गजपुटमें पकावै तो सुवर्णकी भस्म बनजातीहै । एकतोला सोना, एकमासा वंग, एकमासा गंधक और एकमासा सोनामाखीको ले कांजीमें एकप्रहरपर्यन्त खरलकर सम्पुटमें रख दशवार लघुपुटमें पकानेसे सुवर्णकी भस्म बनजातीहै और हरेकपुटमें गंधक देताजावै । सोनेकी भस्म-शीतल, कड़वी, चिकनी, शीतवीर्य, भारी तथा बुद्धि, विद्या और स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाली है, एवं विषविनाशक और रसायन है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ तारशोधनमारणमाह ।

आयुःशुक्रबलहन्तिरोगवंगंकरोतिच ।

अशुद्धममृतंतारंशुद्धमार्यमतोबुधैः ॥ ३२ ॥

नागेनटंग एतेह द्रवितं शुद्धिमिच्छति ।

माक्षिकंगंधकंचैवमर्कक्षीरेणमर्दयेत् ॥ ३३ ॥

तेनलिप्तंरूप्यपत्रंपुटेनप्रियतेध्रुवम् ।

तारंत्रिवारनिक्षिप्तंतैलेज्योतिष्मतीभवेत् ॥ ३४ ॥

स्नुक्क्षीरैःपेषयेत्ताम्रंतारपत्राणिलेपयेत् ।

रुद्धागजः टेपच्यात्पूर्वोक्तैःपेषयेत्पुनः ॥ ३५ ॥

भूधात्रीमाक्षिकंतुल्यंपिप्पलीसैन्धवाम्लकैः ।
 लिप्वातारस्यपत्राणिरुद्धासप्तपुटेपचेत् ॥ ३६ ॥
 द्रवैःपुनःपुनःपिष्टाभ्रियतेनात्रसंशयः ।
 तारपत्रैस्त्रिभिर्भागोभागैकंशुद्धमाक्षिकम् ॥ ३७ ॥
 मर्द्यजम्बीरजैर्द्रावैस्तारपत्राणिलेपयेत् ।
 शेषयेद्रन्धयेत्तत्रत्रिंशद्वनोपलैःपचेत् ॥ ३८ ॥
 चतुर्दशपुटेनैवनिरुत्थंभ्रियतेध्रुवम् ।
 रौप्यपत्रचतुर्भागाद्भागैकंमृतवंगकम् ॥ ३९ ॥
 अथवागंधतालेनलेप्यंजम्बीरपेषितम् ।
 रुद्धात्रिःपुटैःपच्यात्पंचविंशद्वनोपलैः ॥ ४० ॥
 भ्रियतेनात्रसंदेहोगन्धोदेयःपुटेपुटे ।
 रसगंधौसमौकृत्वाकाकतुंडस्यमूलकम् ॥ ४१ ॥
 मर्दयेन्महिषीक्षीरैःपिष्टातंक्षालयेज्जलैः ।
 हरिद्रागोलकेशिस्वागोलंहयपुरीषके ॥ ४२ ॥
 क्षिप्वादिनैकविंशन्तंतद्गोलमुद्धरेत्पुनः ।
 तत्पिष्टातारपत्राणिलेप्यान्यम्लेनकेनचित् ॥ ४३ ॥
 पुटैर्विंशतिभिर्भस्मजायतेनात्रसंशयः ।
 भस्मनाचाम्लपिष्टेनमेलयेत्तालकंपुटैः ॥ ४४ ॥
 जायतेतद्विधानेनसर्वरोगापहारकम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—अशुद्ध और अमारित रूपा—शुक्रनाशक, बलविनाशक, आयुविनाशक और रोगोंको उत्पन्नकरनेवालाहै, इस कारण रूपेको प्रथम शोध पीछे मारना चाहिये ॥ ३२ ॥ रूपा, वंग और सुहागेके साथ गलानेमें शुद्ध होजाता है । सोनामाखी और गंधकको आकके दूधमें खरल करै, उस खरलकिये हुए द्रव्यसे चाँदीके पत्रोंपे लेपकर गजपुटमें पकानेसे चाँदीकी भस्म होजातीहै । रूपेको गलाकर मालकँगनीके तेलमें तीनबार बुझालेवै, फिर थूहरके दूधमें तँबिको खरल कर तिमके द्वारा रूपके पत्रोंपर लेपकर संपुटमें स्थापन कर

गजपुटमें पचावै, तदनंतर पूर्ववत् फिर भुईआँवला, सोनामाखी, पीपल, सैंधानोन और काँजीको एकत्र पीसकर तिस पिसेहुए द्रव्यके द्वारा चाँदी (रूपा) के पत्रोंपै लेपकर सम्पुटमें रख गजपुटमें पचावै इसप्रकार सातपुट देनेसे चाँदीकी भस्म होजाती है । तीनभाग चाँदीके पत्र और एक भाग शुद्ध सोनामाखी लैवै, सोनामाखीको जम्भीरी नीबुओंके रसमें खरल कर उसके द्वारा चाँदीके पत्रोंपै लेपकर धूपमें सुखादेवै, फिर तीस उपलोंकी अग्निके द्वारा चौदह पुट देनेसे निःसंदेह चाँदीकी भस्म होजातीहै । चार भाग चाँदीके पत्र और एकभाग वंगकी भस्म लैवै, फिर वंगकी भस्मको अथवा हरिताल और गंधकको जम्भीरी नीबुओंके रसमें खरल कर चाँदीके पत्रोंपै लेपकरै, फिर सम्पुटमें रख पचीस उपलोंकी अग्निके द्वारा हेकपुटमें गंधक देकर तीनवार पुटपाक करै तो निःसन्देह रूपेकी भस्म होजायगी । पारा, गंधक और कौआठोडीकी जड समान भागले भँसके दूधमें पीस पानीमें धोडालै, फिर हलदीके गोलेमें और घोडेकी लीदके गोलेमें इक्कीमदिन रखे, फिर उसमेंसे निकाल काँजीमें पीसके चाँदीके पत्रोंपर लेप करै, फिर बीसवार पुटमें पकावै तो रूपेकी भस्म होजातीहै । और इसी भस्मको हरिताल तथा काँजीके साथ पीसकर पुटपाक करनेमें सर्व रोगोंको हरनेवाली भस्म बनजातीहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ ताम्रशोधनमारणमाह ।

अपक्वताम्रमायुर्ग्रकान्तिघ्नसर्वधातुहा ।

वान्तिमूर्च्छाभ्रमोत्क्लेशानानारुकुष्ठशूलकृत् ॥ ४६ ॥

स्तुह्यर्कक्षीरलवणकांजिकैस्ताम्रपत्रकम् ।

लिप्त्वाप्रताप्यनिर्गुण्डीरसैःसिंच्यात्पुनःपुनः ॥ ४७ ॥

वारद्वादशदाहत्वंलेपनात्ताम्रसिंचनात् ।

खटिखालवणंतक्रैरारनालैश्चपेषयेत् ॥ ४८ ॥

तेनलिप्त्वाताम्रपत्रंतंततंनिषेचयेत् ।

षड्वारमम्लपिष्टेननिर्गुण्ड्याशुविशुद्ध्ये ॥ ४९ ॥

गोमूत्रेणपचेत्ताम्रपत्रंयामंदृढाग्निना ।

शुद्धं तेनात्रसंदेहोमारणंकथ्यतेऽधुना ॥ ५० ॥

गंधेनताम्रतुल्येन चाम्लपिष्टेनलेपयेत् ।
 कण्टकवेधिकृतं पत्रं सिद्धयित्वा पुटेपचेत् ॥ ५१ ॥
 उद्धृत्य चूर्णयेत्तस्मिन्पादांशं गंधकं क्षिपेत् ।
 जम्बीरैः पालैर्वाऽप्युर्वाथवाद्रवैः ॥ ५२ ॥
 पिष्ट्वा पिष्ट्वापचेत्तद्रत्सगंधं च चतुष्पुटे ।
 मातुलुंगरसैः पिष्ट्वा पुटमेकं प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥
 अनेनैव विधानेन ताम्रपत्रं भवेद्भ्रुवम् ।
 ताम्रस्य द्विगुणं रतं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ५४ ॥
 सितशर्करयाप्येवंपुटत्रये मृतं भवेत् ।
 पाषाणभेदी मत्स्याक्षीद्रवैर्द्विगुणं गंधकैः ॥ ५५ ॥
 ताम्रस्य लेपयेत्पत्रं रुद्धा गजपुटेपचेत् ।
 सप्तांशेन पुनर्गन्धं दत्त्वा द्रावैश्च पेषयेत् ॥ ५६ ॥
 एवं सप्तपुटेपकं ताम्रभस्म भवेद्भ्रुवम् ।
 ताम्रस्य द्विगुणं सूतं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ५७ ॥
 आदौ मूषान्तरे क्षिप्वा धत्तूरस्य तु पत्रकम् ।
 तत्पृष्ठे ताम्रतुल्यन्तु गंधकं चूर्णितं क्षिपेत् ॥ ५८ ॥
 तत्पृष्ठे मर्दितं ताम्रपूर्वतुल्यन्तु गंधकम् ।
 आच्छाद्य धत्तूरपत्रे रुद्धा गजपुटेपचेत् ॥ ५९ ॥
 स्वांगशीतन्तु तच्चूर्णं भस्मीभवति निश्चितम् ।
 किञ्चिद्गन्धेन चाम्लेन क्षालयेत्ताम्रपत्रकम् ॥ ६० ॥
 तेन गंधेन सूतेन ताम्रपत्रं प्रलेपयेत् ।
 गंधेन पुटितं पश्चान्म्रियते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥
 ताम्रद्विगुणं गंधेन चाम्लपिष्टेन तत्पुनः ।
 क्षित्वा ह्यधोर्द्ध्वभागेन देया पिष्टाम्लकैर्बुधः ॥ ६२ ॥
 तत्पिण्डं भांडगर्भे तु रुद्धा लल्यां विपाचयेत् ।

यामैकंतीः पाकेनभस्मीभवतिनिश्चितम् ॥ ६३ ॥
 सूतमेकंद्विधागंधयामंकृत्वाविमर्दितम् ।
 द्वयोस्तुल्यंताम्रपत्रंस्थाल्यांगर्भेनिधापयेत् ॥ ६४ ॥
 सम्यग्ववणयंत्रस्थंपार्श्वेभस्मनिधाययेत् ।
 चतुर्यामंपचेच्चुल्ल्यांपात्रं पुनरेवमयम् ॥ ६५ ॥
 जलंपुनः पुनर्देयंस्वाङ्गशैत्यंविचूर्णयेत् ।
 म्रियतेनात्रसंदेहः सर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ ६६ ॥
 नानाविधंमतंताम्रंशुद्धयर्थंभागपंचकम् ।
 भागैकंश्चेतकाचञ्चभागपंचैकटंगणम् ॥ ६७ ॥
 मूषायांमिश्रितंकृत्वाभागैकंताम्रपत्रकम् ।
 ऊर्ध्वेदत्त्वातिरुद्ध्याथध्मातैर्ग्राह्यंमुशीतलम् ॥ ६८ ॥
 निर्दोषन्तुभवेत्ताम्रं सर्वरोगहरं भवेत् ।
 अथवामारितंताम्रमम्लेनैकेनमर्दयेत् ॥ ६९ ॥
 तद्गोलंशूरणस्यान्तेरुद्धारुद्धातुलेपयेत् ।
 शुष्कंगजपुटेपच्यत्सर्वदोषहरोभवेत् ॥ ७० ॥
 वान्तिभ्रान्तिविरेकञ्चनकरोतिकदाचन ।
 ताम्रंतीक्ष्णोष्णंमधुरंकषायंशीतलंसरम् ॥ ७१ ॥
 कफपित्तक्षयपांडुकुष्ठं चरसायनम् ।
 परिणामशूलमर्शांसिमंदाग्निञ्चविनाशयेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—कच्चाताँबा—आयु, कान्ति और सर्वधातुओंका नाश करैहै, तथा
 वमन, मूच्छा, भ्रम, उल्लेख, अनेकप्रकारके रोग, कुष्ठ और शूलको उत्पन्न
 करैहै ॥ ४५ ॥ थूहरकादूध, आककादूध, सेंधानोन और काँजीके साथ ताँबेके
 पत्रोंको लेपकर अग्निमें तपा बारहबार सम्हालूके रसमें बुझालेवें, फिर खाडिया
 और सेंधानोनको तक और काँजीमें पीसकर उसको ताँबेके पत्रोंपर लेपकर
 बारंबार आगमें तपाकर छैबार काँजी एवं सम्हालूके रसमें बुझावें, इसप्रकार
 करनेसे ताँबा शुद्ध होजाताहै । ताँबेके पत्र गोमूत्रमें मिलाकर तेज अग्निमें एक-

प्रहर पचानेसे ताँवा शुद्ध होजातीहै ॥ अब ताँबेका मारण वर्णन करते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ताँबेकी बराबर गन्धक ले काँजीमें खरल कर उसको उन ताँबेके पत्रोंपर लपेटे फिर उस कंटकवेधी ताँबेके पत्रोंको गजपुटमें पचावै, फिर उसको महीनपीस चूरण करले, इसके उपगन्त उसमें चौथाभाग गंधक मिला जम्भीरी नीबू काँजी और इन्द्रायनकी जड़के रसमें अलग अलग पीसकर गंधक मिला चार पुट दे और बिजोरे नीबूके रसमें पीसकर एक पुटदे इसप्रकार पुटपाक करनेसे ताँबेकी भस्म होजाती है, एकभाग ताँवा और दोभाग पारा, इनको जम्भीरीके रसमें खरल कर खाँड-मिला, तीनवार पुटपाक करनेसे ताँबेकी भस्म होजातीहै, पाषाणभेद, ब्राह्मी-घासका रस और दुगुना गंधक इन सबको खरल करके ताँबेके पत्रोंपर लपेटे, फिर उनको संपुटमें रख गजपुटमें पचावै, फिर उसमें सातवाँ भाग गंधक मिला उपरोक्त औषधियोंके रसमें खरल करै, फिर सातवार पुटपाक करनेसे ताँबेकी राख होजातीहै, ताँबेसे दूनाभाग पारा लेकर नीबूकेरसमें खरल करै, फिर उसको मृषासम्पुटमें रख, ऊपरसे धतूरेके पत्ते रख, तिसके ऊपर ताँबेकी समान गंधक रख, उसपर मर्दन कियाहुआ ताँवा स्थापित कर, तिसके ऊपर ताँबेकीसमान गंधक रख, धतूरेके पत्तोंसे ढककर गजपुटमें पचावै, स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करले तो ताँबेकी भस्म बनजाती है ॥५०॥५१॥५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ किंचित् गंधक और काँजीके द्वारा ताँबेके पत्रोंको क्षालनकर, फिर उसी गंधक और पारेसे उपरोक्त ताँबेके पत्रोंको लेपकर गंधकके साथ गजपुटमें पचानेसे ताँबेकी भस्म होजातीहै । ताँबेसे दुगुना गंधक लेकर काँजीमें पीसलेवै, फिर तिसको ताँबेके नीचे तथा ऊपर रख हाँडीमें स्थापन कर, और उस हाँडीका मुख बंद कर चूल्हेपै चढ़ा तीव्राग्निके द्वारा एकप्रहर पचानेसे ताँबेकी भस्म होजातीहै । एकभाग पारा और दोभाग गन्धक इन दोनोंको एकप्रहर मर्दनकर, फिर इनदोनोंके समान भाग ताँबेके पत्र ले एक स्थालीके बीचमें धर, भलेप्रकारसे लवणयंत्रमें स्थापन कर, दोनों पसलियोंपै राख धर चारप्रहर पर्यन्त चूल्हेपै चढ़ाकर पचावै और उसकी पीठपै गोबर रख बारंबार जल देताजाय, फिर स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण-करले, इसप्रकार करनेसे ताँबेकी भस्म होजातीहै; और यह ताँबेकी भस्म सर्वरोगोंमें प्रयोग करनी योग्यहै; अने प्रकारस शुद्धकियाहुआ ताँवा पाँच-भाग, श्वेतकाँच एकभाग, सुहागा पाँचभाग और ताँबेके पत्र एकभाग, इन सबको एकत्र मिला मृषामें रख मृषाको बंदकर पुटपाक करै, जब शीतल

होजाय तौ ग्रहण करले, इसप्रकार निर्दोष और सर्वरोगोंको हरनेवाली भस्म होजातीहै । ताँबेकी भस्मको काँजीमें पीस गोला बनाले, उस गोलेको जमीकंदके बीचमें धर गजपुटमें पचानेसे सर्वरोगोंको हरनेवाली भस्म होजातीहै । ताँबेकीभस्म—अमन, भ्रम और विरेचनको कभीभी नहीं करतीहै । तथा तीक्ष्ण गरम, मधुर, कषेही, शीतल, भेदक और कफ, पित्त, क्षय, पांडु, कुष्ठ, परिणामशूल, बवासीर और मंदाग्रिको नष्ट करे है और रसायन तथा सारक है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

अथ नागशोधनमाह ।

गण्डहीनो नागवंगौ कुष्ठगुल्मरुजाकरौ ।
मेहपाण्डूदरवातकफमृत्युकरौ किल ॥ ७३ ॥
निर्गुण्डीमूलचूर्णेन मार्कटुग्धेन लेपयेत् ।
नागपत्रन्तुतंशुष्कंद्रावयित्वानिषेचयेत् ॥ ७४ ॥
निर्गुण्डीद्रवमध्येतुततःपत्रन्तुकारयेत् ।
लिप्त्वाभाव्यंपुनःसेच्यंसप्तवारंविशुद्ध्ये ॥ ७५ ॥
निशातुम्बुरुबीजानिकोकिलाक्षंकुठारिकाम् ।
गौरीफलाम्लिकाचण्डीक्षुद्राब्राह्मीसजीरकम् ॥ ७६ ॥
यथालाभेनभस्मैकंवज्रीक्षीरेणभावयेत् ।
तन्मध्येभावितंनागंशुद्धेसेकन्तुसप्तधा ॥ ७७ ॥
अश्वत्थचिंचात्वग्भस्मनागस्यचतुरंशतः ।
क्षिप्त्वाचुल्ल्यांपचेत्पात्रेचालयेल्लौहचट्टके ॥ ७८ ॥
यावद्भस्मभवेत्तच्चभस्मतुल्यंमनःशिलाम् ।
जम्बीरैरारनालैर्वापिष्ट्वारुद्धापुटेपचेत् ॥ ७९ ॥
स्वांगशीतंपुनःपिष्ट्वाविंशत्यंशैःशिलाम्लकैः ।
स्वंपिष्ट्वापुटेपाकोन गस्यपिनिरुत्थितः ॥ ८० ॥
अथवानागपत्राणिचूर्णलिप्तानिखर्परे ।
अत्प्रौपाचयेद्यामंतद्भस्मचित्रकद्रवैः ॥ ८१ ॥

भर्जयेल्लौहजेपात्रे चाल्यमर्जुनदण्डकैः ।
 यामषोडशपर्यन्तं द्रवंदेयंपुनःपुनः ॥ ८२ ॥
 ण्डेनमर्दयेत्काथ्य मुद्गृत्यचित्रकद्रवैः ।
 गोलयित्वानिरुध्याथषट्पुटेमारयेल्लघु ॥ ८३ ॥
 चिंचाक्षामिक्षुभल्लातबलावज्रलताभवैः ।
 अपामार्गार्जुनाश्वत्थभस्मभिर्भर्जयेद्दण्डम् ॥ ८४ ॥
 लोहपात्रेतुसप्ताहंतुल्यंभस्मानिचाशुच ॥
 दण्डेपलाशकेचैवम्रियतेनात्रसंशयः ॥ ८५ ॥
 पिष्ट्वागस्तिचभूनागंलिप्त्वापादंविशोधयेत् ।
 तद्भाण्डेद्वावयेद्यामंदढेभाण्डेविनिक्षिपेत् ॥ ८६ ॥
 वासाचिंचिटयोःक्षीरंवासादलेविघट्टयेत् ।
 यामैकंपाचयेच्चुल्ल्यांसमुद्गृत्यविमिश्रयेत् ॥ ८७ ॥
 तच्चूर्णन्तुशिलाताप्यैर्वासकक्षारसंयुतैः ।
 तच्चतुल्यंपूर्वनागविंशदेकपुटेपचेत् ॥ ८८ ॥
 द्विपुटंचिंचिटाक्षरैर्देयंवासारसैःसह ।
 नागःसिन्दूरवर्णाभोम्रियतेसर्वकार्यकृत् ॥ ८९ ॥
 कुलटामाक्षिकञ्चैवसमभागन्तुकारयेत् ।
 अर्कपर्णेनतत्पिष्ट्वासीसपत्राणिमारयेत् ॥ ९० ॥
 सतिक्तमधुरोनागो मृतोभवतिभस्मसात् ।
 आयुष्कीर्तिवीर्यवृद्धिकरोतिसेवनात्सदा ॥ ९१ ॥

अर्थ—कच्चाशीशा और बंग—कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, पाण्डु, उदररोग, वात, कफ और मृत्युको करतेहैं, सम्हालूकी जड़के चूर्णको भाँगरेके रसमें खरल करके शी-
 शोंके पत्रोंपै लेपकरके सुखादे, फिर उन पत्रोंको अग्निमें तपाकर सम्हालूके रसमें
 बुझादेवै; इसप्रकार सातवार अग्निमें तपाकर सम्हालूके रसमें बुझानेसे शीशा
 शुद्ध होजाताहै । हलदी, तोंबीके बीज, तालमखाना, कुठारिका, कुलथी, इमली,
 असवण, छोटीब्राह्मी और जीरा, इन सबकी भस्मकर थूहरके दूधमें भावना दे,

उसमें शीशेको गर्म करके सात भावनादे, इसप्रकार सातभावना देनेसे शीशा शुद्ध होजाताहै, पीतल और इमलीकी राख चौथुना शीशा मिला पात्रमें रख चूल्हे पर धरकर पचावै, और लोहेकी करछीसे चलातारहै, भस्म होनेपर भस्मकी बराबर मैनाशिल मिलाकर जम्भीरी नीबू अथवा कौंजीमें पीसकर संपुटमें रख गजपुटमें पकावै, स्वांगशीतल होनेपर बीसवाँ भाग मैनाशिल और कौंजीमें खरल कर छैवार गजपुटमें पकानेसे शीशेकी भस्म होजातीहै। शीशेके पत्रोंको चूनेसे लेपकर मट्टीकी कढ़ाईमें एकप्रहरपर्यंत पकाकर भस्म करले, उस भस्मको चीतेके रसमें डाल लोहेकीकढ़ाईमें सोलहप्रहरतक पचावै और अर्जुनवृक्षके दंडेसे सहज सहज चलातारहै, फिर चीतेके रसमें खरल कर गोला बना छै पुट देनेसे शीशा मरजाताहै । इमली, बहेड़ा, ईख, मिलावा, खिर्रैटी, अस्थिसंहार, चिरचिटा, अर्जुन और पीपलवृक्ष, इन सबकी भस्मसे शीशेको भून लोहेके पात्रमें रख, दाकके सोटेसे घोटनेसे शीशेकी भस्म होजातीहै । अगस्तियेके पत्तोंको पीस शीशेके ऊपर चौथाभाग लेप करै, फिर सुखाकर पात्रमें रख अग्निसे एक प्रहर द्रावण कर हृद् पात्रमें रखदे, फिर अडूसा और चिंचोटकटुणके खारको बाँसेके पत्तोंपर लपेटकर एक प्रहर चूल्हेपर चढ़ाकर पचावै, तदनन्तर उत्तचूर्णको मैनाशिल, रूपामाखी, और अडूसेके खारमें मिलाकर इक्कीस पुटमें पकावै । फिर चिंचोटकटुणका खार और अडूसेका रस इनकी दो पुट देनेसे शीशेकी सिंदूरकी समान भस्म होजातीहै और यह भस्म सब कार्योंको सिद्ध करनेवाली है। मैनाशिल और सोनामाखी समानभाग लेकर आकके पत्तोंमें खरलकरके शीशेके पत्रोंपै लेप करनेसे शीशेकी भस्म होजातीहै। शीशेकीभस्म—कड़वी, मधुर तथा आयु, कीर्त्ति और वीर्य वर्द्धकहै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथ वंगमारणमाह ।

माक्षिकंहरितालञ्चपलाशस्वरसेनच ।

हृतकल्केनसंलिप्यवंगपत्राणिमारयेत् ॥ ९२ ॥

नागवच्छोधयेद्रंगतद्रदश्वत्थचिंचयोः ।

तस्महरितालंचतुल्यमम्लेनकेनचित् ॥ ९३ ॥

पालाशोत्थद्रवैर्वाथगोलयित्वान्धयेत्पुटे ।

उद्धृत्यदशमांशेनतालेनसहमर्हयेत् ॥ ९४ ॥

पूर्वद्रावैःसहल्लघ्वगजपुटेपचेत् ।

एवंविंशत्पुटेपक्त्वामृतंभवतिभस्मसात् ॥ ९५ ॥

वंगपादेनसूतेनवंगपत्राणिलेपयेत् ।

चिंचावृक्षस्यसंगृह्यचान्तश्छन्नश्चतण्डुलैः ॥ ९६ ॥

पिष्टातत्पिण्डमध्येतुवंगपत्राणिमिश्रयेत् ।

शिरीषरजनीचूर्णैःकुमार्याःशुभगोलकम् ॥ ९७ ॥

सूतलिप्तंवंगपत्रंगोलकेसमलेपितम् ।

रुद्धागजपुटेपक्कंपूर्वसंख्यामृतोभवेत् ॥ ९८ ॥

अक्षभल्लातकंतोयैःपिष्टातानिविलेपयेत् ।

ततस्तिलखलीमध्येक्षिप्त्वारुद्धापुटेपचेत् ॥ ९९ ॥

गजाख्यंजायतेभस्मचत्वारिंशतिवंगकम् ।

सतिक्तलवणंवंगपाण्डुघ्नंक्रिमिमेहजित् ॥ १०० ॥

लेखनंपित्तलंकिंचित्सर्वदेहभयापहम् ॥ १०१ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसरखण्डे
स्वर्णादिवंगांतानां मारणं नामाष्टमोपदेशः ॥ ८ ॥

अर्थ—सोनामाखी और हरितालको ढाकके पत्तोंके रसमें खरल कर कल्क बनाले उस कल्कके द्वारा वंगके पत्रोंपै लेप करे, फिर गजपुटमें पकानेसे वंगकी भस्म होजातीहै, वंगको शीशेकी समान शोधना चाहिये । पीपल और इमलीका खार तथा हरिताल इन सबको नीबूके रसमें खरल करै अथवा ढाकके पत्तोंके रसमें खरलकर गोला बनावै, फिर पुटपाक कर दशमाभाग हरिताल मिला उपरोक्तद्रावमें पीस सम्पुटमें रख गजपुटमें पचावै; इस प्रकार बीस पुट देनेसे वंगकी भस्म होजातीहै । चौथाभाग पारा लेकर वंगके पत्रोंपै लेप करे, फिर इमलीके बीजोंको चावलोंके साथ बारीक पीस गोला बनालेवै, उस गोलेमें वंगके पत्रोंको रक्खै फिर सिरसके बीज, हलदी और धिकुवारके पट्टेका चूरण मिला संपुटमें रख गजपुटमें पचावै, इसप्रकार बीस पुट देनेसे राँगकी भस्म होजातीहै । बहेड़ा और भिलावा इनको जलमें पीसकर वंगके पत्रोंपै लेप करै,

फिर उनको तिलकी खलमें रख गजपुटमें पकावै, इसप्रकार चालीस पुट देनेसे वंगकी भस्म होजातीहै ॥ वंगकी भस्म—कड़वी, नमकीन, लेखन, पिचजनक तथा पाण्डु, प्रमेह, कृमि और सर्वरोग नाशक है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥

इति श्रीशालिग्रामवैश्यकृतसरस्वनाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां स्वर्णादिमारणनामाष्टमोपदेशः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ कान्तलौहशोधनमारणमाह ।

अशुद्धममृतं लौहमायुर्हानिरुजाकरम् ॥

हृत्पीडाञ्च तृषां जाड्यं तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ १ ॥

पात्रे यस्मिन् प्रसरति न च तैलबिन्दुर्विसृष्टः ।

हिं गुग्गुन्धं विसृजति निजं तित्कतां निम्बकश्च ॥

पाके दग्धं भवति शिखराकारतानैव भूमौ ।

कान्तं लौहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं न चान्यत् ॥ २ ॥

कान्तं मृदुतरं ताक्षररूपमाभंतिमिरंकरम् ।

स्वादुर्यतो भवेन्निम्बकलकोरात्रिर्निवेशितः ॥ ३ ॥

कान्तं तदुत्तमं यच्च रूप्येनावर्तितं मिलेत् ।

सर्वरोगहरं ह्येतत्सर्वकुष्ठहरं परम् ॥ ४ ॥

अर्थ—अशुद्ध और कच्चा लोहा—आयुनाशक, रोग, हृदयगोग, पीड़ा, तृषा और जड़ताको उत्पन्न करी है, इसकारण इसको प्रथम शोध फिर मारना चाहिये ॥ १ ॥ जिसके पात्रमें तेलकी बूँदें डालनेमें फैलें नहीं, और जिसके पात्रमें हांग रक्खी हुई अपनी गंधको छोड़देवे, जिसके पात्रमें नीमका रस रखनेसे कड़वेपनको त्यागदेवे और जिसके पात्रमें दूध औटानेसे दूध शिखरके आकार ऊँचा होजावे, परन्तु पृथ्वीमें नहीं गिरे उसको कान्तलोहा कहतेहैं ॥ २ ॥ जो कान्तलोहा अत्यन्त मृदु (नरम) चाँदी और सुवर्णकी कान्तिवाला हो, तथा जिसके वरतनमें रात्रिको नीमका कल्क रखनेसे प्रातः—काल मीठा होजाय और जो रूपासे आवर्तित हो, वह कान्तलोहा उत्तम होताहै । कान्तलोहेकी भस्म सर्व प्रकारके कुष्ठ और सर्व प्रकारके रोग नाशक है ॥ ३ ॥ ४ ॥

छागशशरक्तसंलिप्तं त्रिवारं चाग्नितापितम् ।
 कान्तादिमुण्डपर्यन्तं सर्वरोगहरंपरम् ॥ ५ ॥
 त्रिफलाष्टगुणैस्तोयैस्त्रिफलाषोडशंपलम् ।
 तत्काथेपादशेषेतुलौहस्यपलपंचकम् ॥ ६ ॥
 कृत्वापत्राणितप्तानिसप्तवाराणि सेचयेत् ।
 एवं प्रलीयते दोषो गिरिजोलौहसम्भवः ॥ ७ ॥
 त्रिविधं लौहचूर्णं वा गोमूत्रैः षड्गुणैः पचेत् ।
 प्रक्षालयेदारनालेशोष्यं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
 रक्तमालाहंसपादीगोजिह्वा त्रिफलामृता ।
 गोपालीतुम्बुरुदन्तीतुल्यगोमूत्रपेषितम् ॥ ९ ॥
 अस्मिन्मध्ये लौहपत्रं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ।
 सेचयेत्कान्तमुण्डान्तं सर्वदोषापनुत्तये ॥ १० ॥
 सर्वेष्वौषधकल्पानां लौहकल्पं प्रशस्यते ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लौहमादौ विमारयेत् ॥ ११ ॥
 अयःपंचपलादूर्द्ध्वावत्पलत्रयोदशात् ।
 आदौ मंत्रस्ततः कर्मयथाकर्तव्यमुच्यते ॥ १२ ॥

मर्दनमंत्रः ।

“ओं अमृतोद्भवाय स्वाहा ।”

बलिदानमन्त्रः ।

“ओं अमृतोद्भवाय हुँ स्वाहा ।”

“ओं नमश्चण्डवज्रपाणये महायक्षासनाधिपत-
 यसुरसुरस्वाहा यक्षविद्याबलाय स्वाहा ॥”

अर्थ—त्रिकरेके रुधिर और खरगोशके रुधिरका तीनबार लोहेपै लेपकर
 तीनबार अग्निमें तपावै तौ कान्तादिमुण्डपर्यन्त सर्वप्रकारके लोहे सर्व प्रकारके
 रोगोंको हरनेवाले होजातेहैं । सोलहपल त्रिफलाको आठगुने जलमें काथ करै

जव जलकर चौथाभाग शेषरहै तौ पाँचपल लोहेके पत्र अग्निमें तपाकर उस काथमें सातबार बुझावै, इसप्रकार करनेसे लोहेका गिरिजदोष दूर होजाताहै ॥ तीनों प्रकारके लोहेके चूर्ण छैगुने गोमूत्रमें पकाकर काँजीमें धोनेसे लोहा शुद्ध होजाताहै । रक्तमाला (कन्दविशेष), हंसपदी, गोभी, त्रिफला, गिलोय, गोपालककडी, कड़वी तोंवी और दन्ती, इनसबको बराबर लेकर बराबरके गोमूत्रमें पीसे, फिर लोहेके पत्रोंको अग्निमें चौदह बार तपाकर इसमें चौदह-बार बुझावै, इसप्रकार करनेसे कांतादि लोहांके सर्व दोष दूर होजातेहैं । सर्व-प्रकारके औषधकल्पोंमें लोहकल्प श्रेष्ठहै, इसकारण सर्वयत्नोंसे प्रथम लोहेको मारना चाहिये । पाँच पलसे तेरह पल पर्यन्त लोहेको लेकर “ओं अमृतो-द्भवोद्भवाय स्वाहा” इस मंत्रको पढ़कर मर्दन करे “ओं अमृतोद्भवाय विद्या-वलाय स्वाहा” इसमंत्रसे वलिदानकरै ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

हिङ्गुलस्यपलान्पंचनारीस्तन्येनपेपयेत् ।

तेनलोहस्यपत्राणिलेपयेत्पलपंचकम् ॥ १३ ॥

रुद्धागजपुटेपच्यात्कपायैस्त्रैफलैःपुनः ।

जम्बीरैरारनालैर्वाविंशत्यंशेनहिङ्गुलम् ॥ १४ ॥

पिष्ट्वारुद्धापुटेल्लोहंतथैवंपाचयेत्पुनः ।

चत्वारिंशत्पुटैरेवंकान्तंतीक्ष्णश्चमुंडकम् ॥ १५ ॥

प्रियतेनात्रसन्देहोदत्त्वादत्त्वाचहिङ्गुलम् ।

अर्जुनस्यत्वचापेप्याकांजिकेनातिलोहिता ॥ १६ ॥

तन्मध्येलोहचूर्णञ्चकांस्यपात्रेविनिक्षिपेत् ।

दिनैकंभावयेद्दध्मेद्रवैःपूर्यपुनःपुनः ॥ १७ ॥

अर्जुनैःसारनालैर्वात्रिविधंमारयेदयः ।

दन्तीपत्रंद्रवंयच्चलौहचूर्णविलोडयेत् ॥ १८ ॥

दिनैकंधारयेद्दध्मेद्रवंदेयंपुनःपुनः ।

रुद्धारात्रौपुटेपच्यादेभिर्द्रावैश्चभावयेत् ॥ १९ ॥

एवमष्टदिनंकुर्यात्रिविधंप्रियतेह्ययः ।

चिंचापत्रनिभंकुर्यात्रिविधलोहपत्रकम् ॥ २० ॥

मृत्पात्रस्थंक्षिपेद्घर्मेदन्त्याद्रावैःप्रपूरयेत् ।

पत्रंपुनःपुनस्तावद्यावज्ज्वरतिवैत्वयः ॥ २१ ॥

म्रियतेतीव्रघर्मेणचूर्णीकृत्यनियोजयेत् ।

कान्तंतीक्ष्णंतथामुण्डचूर्णमत्स्याक्षजैर्द्रवैः ॥ २२ ॥

आतपेत्रिदिनंभाव्यंद्विदिनंचित्रकद्रवैः ।

त्रिकण्टकद्रवैरुयहंसहदेव्याद्रवैरुयहम् ॥ २३ ॥

गोमूत्रैस्त्रिफलाक्वाथेभावयेच्चत्र्यहंत्र्यहम् ।

धातव्याश्चततोमर्द्यक्रमादेयंपुटंपुटम् ॥ २४ ॥

रुद्धागजपुटेनैवमृतंयोगेषुयोजयेत् ।

द्रवैःकुरंत्पत्रोत्थैर्लोहचूर्णविमर्दयेत् ॥ २५ ॥

दिनैकमातपेतीव्रेद्रवैर्मर्द्यत्रिकण्टकैः ।

वन्ध्याभृंगीपुनर्नव्योगोमूत्रैश्चदिनंपुनः ॥ २६ ॥

गोमूत्रैस्त्रिफलाक्वाथ्यातत्कपायेणभावयेत् ।

त्रिसप्ताहंप्रयत्नेनदिनैकमर्दयेत्ततः ॥ २७ ॥

रुद्धागजपुटेपच्यादिदंक्वाथेनमर्दयेत् ।

दिवामर्द्यपुटंरात्रावेकविंशदिनानिवै ॥ २८ ॥

एकविंशदिनेनैवम्रियतेत्रिविधंहायः ।

माक्षिकंचशिलाह्यम्लैर्हरिद्रामरिचानिच ॥ २९ ॥

पिष्ट्वामर्द्यलोहपत्रंतप्ततप्तंनिषेचयेत् ।

सप्तधात्रिफलाक्वाथेजलेनक्षालयेत्पुनः ॥ ३० ॥

कुट्टयेल्लोहदण्डेनपेषयेत्त्रिफलाजलैः ।

षोडशांशेनलोहस्यदातव्यंमाक्षिकंशिला ॥ ३१ ॥

अम्लेनलोडितंरुद्धागजान्धकपुटेपचेत् ।

निरुत्थंजायतेभस्मकान्तंतीक्ष्णादिमुण्डकम् ॥ ३२ ॥

तिन्दुफलस्यमज्जाभिर्लिप्त्वास्थाप्यातपेखरे ।
 धारयेत्कांस्यपात्रस्थंदिनैकेनपुटत्यलम् ॥ ३३ ॥
 लेप्यंपुनःपुनःकुर्यादिनान्तान्तंप्रलेपयेत् ।
 त्रिफलाकाथसंयुक्तंदिनैकेनमृतम्भवेत् ॥ ३४ ॥
 स्थाल्यांवालोहपात्रेवालौहदाव्याविलोडयेत् ।
 पाचयेत्त्रिफलाकाथेदिनैकंलोहचूर्णकम् ॥ ३५ ॥
 तत्पिण्डंत्रिफलातोयैःपिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटेपचेत् ।
 षोडशांशेनमूषायांनिर्वातिहर्निशंपचेत् ॥ ३६ ॥
 एवंत्रिधाप्रकर्तव्यंस्थालीपाकंपुटान्तरम् ।
 भृंग्याद्रावंतालमूलीहस्तीकर्णस्यमूलकम् ॥ ३७ ॥
 शतावरीविदार्याश्चमूलकाथेचत्रैफले ।
 पिष्ट्वातत्पूर्ववत्स्थाल्यांपाच्यंपेप्यंपुटेत्रिधा ॥ ३८ ॥
 ततःपुनर्नवातोयैर्दशमूलकषायकैः ।
 बृहत्याश्चकषायैर्वाबीजपूरस्यतोयतः ॥ ३९ ॥
 ब्रह्मबीजस्तथाशिमुकाथेगोपयसापिवा ।
 प्रत्येकेनप्रपेप्यादौपूर्वगर्भपुटेपचेत् ॥ ४० ॥
 भावयेत्तुद्रवेणैवपुटान्तेयाममात्रकम् ।
 प्रत्येकेनक्रमादेवपिष्ट्वापुटैश्चभावयेत् ॥ ४१ ॥
 म्रियतेनात्रसंदेहःकान्तंतीक्ष्णंचमुण्डकम् ।
 सर्वमेतत्स्मृतंलौहंध्मातव्यमित्रपंचकैः ॥
 यद्येवंस्यान्निरुत्थानंसेव्यंवारितरंभवेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-पाँचपल अर्थात् बीसतोले सिंग्रफको खीके दूधमें खरल करै, उससे पाँचपल लोहेके पत्र लपेटकर सम्पुटमें रख गजपुटमें पकावै, फिर बीसभाग सिंग्रफको त्रिफलेके काढ़में, जम्भीरी नीबुओंके रसमें अथवा काँजीमें पीसे, इससे पूर्वोक्तलोहेको लेपकर सम्पुटमें रख गजपुटमें पकावै, इसप्रकार चालीस पुट देनेसे

कान्तादि तीनोंप्रकारके लोहोंकी भस्म होजातीहै और हरएकपुटमें सिंग्रफ देता-
जावै। अर्जुनवृक्षकी छालको काँजीमें पीस उसमें लोहेका चूरनडाल काँसेके पात्रमें
करके एकदिन धूपमें धरकर अर्जुन तथा काँजीके रसमें बारंबार भावनादेवै,
फिर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पचानेसे लोहे मरजातेहैं। दन्तीके पत्तोंके रसमें
लोहेका चूरन खरलकर तीनदिन धूपमें रखवे जब लोहा मरजाय तब शरावसं-
पुटमें रख गजपुटमें पचावै, इसप्रकार आठदिनपर्यंत करनेसे लोहे मरजातेहैं।
इमलीके पत्तोंकी समान लोहेके पतले पत्रकर मिट्टीके बरतनमें धर दन्तीका रस
मिलाकर धूपमें रख बारंबार भावनादेवै, इसप्रकार तेज धूपमें रखनेसे लोहा मर-
जाताहै इसका चूरन करके काममें लाना चाहिये। कान्तलोह, तीक्ष्णलोह और
मुण्डलोहका चूरनकर मछेछीके रसमें तीनदिन भिजोके धूपमें रखवै फिर चीतेके
रसमें दोदिन भिजो धूपमें धरै, फिर कटाई, कटेरी और गोखरूके रसमें तीन
दिन भिजो धूपमें धरै, फिर सहदेईके रसमें तीन दिन भिजो धूपमें रखवे, फिर
गोमूत्रमें तीनदिन भिजो धूपमें धरै, तदनन्तर त्रिफलेके काढ़ेमें तीनदिन भिजो
धूपमें धरै, फिर धायके फूलोंके रसमें खरल कर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें
पचावै, इसप्रकार अनेकपुटदेनेसे तीनों प्रकारके लोहे मरजातेहैं, इनकी भस्म
सर्वकम्मोंमें प्रयोग करनी चाहिये। लोहेके चूरणको कटसरैयाके रसमें मर्दन
करै फिर कटाई, कटेरी औ गोखरूके रसमें धूपमें धरकै खरल करै फिर बांझ-
खखसा, भृंगी, पुनर्नवा और गोमूत्रमें एकदिन भावना देकर फिर गोमूत्रमें त्रिफ-
लेको औटाकर काढाबना उसमें भावना देकर फिर इक्कीसवार मर्दनकर शराव-
संपुटमें रख गजपुटमें पचावै, फिर एकदिन त्रिफलेके काढ़ेमें भावनादेकर खरल
करै, इसप्रकार दिनमें तौ खरल करै और रात्रिमें पुट देताजाय, इस प्रकार
इक्कीस दिन पर्यन्त करनेसे तीनों प्रकारके लोहे मरजातेहैं। सोनामाखी, मैन-
शिल, हलदी और मिरच, इन सबको नीबूके रसमें खरलकर तिसके द्वारा लोहे-
के पत्रोंपै लेपकरै, फिर अग्निमें तपाकै त्रिफलेके काढ़ेमें बुझाताजाय, इस प्रकार
सातवार बुझाकर पानीसे धोवै, फिर लोहेके दंडेसे कूटकर त्रिफलेके रसमें खरल
करै, फिर लोहेसे सोलहवाँभाग सोनामाखी और मनशिल मिला नीबूके रसमें
मर्दनकर अंधमूषामें रख मुख बंदकर गजपुटमें पचानेसे तीनों प्रकारके लोहोंकी
भस्म होजातीहै। तैदूकी मींगसे लोहेके पत्रोंको लेपकर काँसेके बरतनमें धर
धूपमें सुखावै, फिर एकदिन पुटपाककरै फिर इसीप्रकार बारंबार तैदूकी मींग-
से लेपकर पुटपाककरकै त्रिफलेके काढ़ेमें मिलानेसे एकदिनमें लोहेकी भस्म
होजातीहै। लोहेके चूरनको कढ़ाईमें अथवा लोहेके बासनमें डाल त्रिफलेके काढ़ेमें

पकावै, और लोहेकी करछीसे चलाताजाय, फिर उसका गोलाबनाकर उस गो-
लेको त्रिफलेके काढ़ेमें खरलकर सुखादे, फिर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पचावै
और इसका सोलहवाँ भाग मूषामें रख रात्रिदिनमें तीनबार स्थालीपाक करै,
फिर भृंगीका रस, मूसली, हस्तिकर्णपलाशकीजड़, शतावर, विदारीकंद, और
त्रिफलेके काढ़ेमें खरलकर पूर्ववत् तीनबार स्थालीपाक करै, फिर पुनर्नवेके रसमें
दशमूलके काढ़ेमें, बृहतीके काढ़ेमें, बिजोरे नीबूके रसमें ढाकके बीजोंके छाथमें,
सौंजिनेके काढ़ेमें और गोमूत्रमें पीसपीसकर एकदिन पुटद्वारा स्थालीपाक कर
नेसे कान्तादितीनोंप्रकारके लोहोंकी भस्म होजातीहै। सर्वप्रकारके मृतलोहोंको
मित्रपंचकेसाथ अग्निमें फूँकनेसे पानीपै पैरनेवाली सुन्दरभस्म होजातीहै ॥१३॥
॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥
॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥
॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

मतान्तरम् ।

मध्वाज्यंमृतलौहञ्चसरूप्यंसंपुटेक्षिपेत् ॥

रुद्धाध्वागजपुटं ह्यंरूप्यञ्चपूर्वमानकम् ॥ ४३ ॥

तदालौहंमृतंविद्यादमृतंमारयेत्पुनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—सहत, घृत और मृतलोहेको रूपाके सम्पुटमें रख मुखबन्दकर अग्नि
जलानेसे लोहेकी भस्म होजातीहै, यदि एकवारमें भस्म न हो ती फिर पुटपाक
करै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ शोधनमाह ।

गंधकंतुमृतलौहंतुल्यंखल्वेविमर्दयेत् ।

दिनैकंकन्यकाद्रवैरुद्धागजपुटेपचेत् ॥ ४५ ॥

इत्येवंसर्वलोहानांकर्तव्योऽयंनिरुत्थितः ॥ ४६ ॥

अर्थ—गंधक और मृतलोहेको खरलमें डालकर एक दिन बीकुवारके रसमें
मर्दनकरै, फिर उसका गोला बना उस गोलेको सम्पुटमें रख गजपुटमें पचावै,
इस प्रकार करनेसे सर्वप्रकारके लोहे शुद्ध होजातेहैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ सिद्धमते लौहमारणमाह ।

शुद्धसूतंद्रिधागंधंकृत्वाखल्वेतुल्लीम् ।

द्रयोःसमंलौहचूर्णमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ४७ ॥

यामद्वयात्समुद्धृत्यतल्लताम्रपात्रके ।
 आच्छाद्यैरण्डपत्रैश्चयामाऽर्द्धेनोष्णतां व्रजेत् ॥ ४८ ॥
 धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात्त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ।
 संपिष्यगालयेद्वस्त्रे सद्यो वारितरं भवेत् ॥ ४९ ॥
 कान्तं तीक्ष्णं तथा मुण्डं निरुत्थं जायते मृतम् ।
 स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णीकृत्य तु लोहवत् ॥ ५० ॥
 सिद्धयोगमिदं ख्यातं सिद्धानां संमुखागतम् ।
 अन्नभूतमायसाद्यं सर्वरोगज्वरापहम् ॥ ५१ ॥
 त्रिफलारससंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ५२ ॥
 मृतानि लोहानि वशी भवन्ति
 निघ्नंति युक्त्या ह्यखिलामयानि ।
 अभ्यासयोगाद्वद्वयोगसिद्धं
 कुर्वन्ति रुद्धं मृत्युजराविनाशनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—एकभाग शुद्धपारा और दोभाग गंधकको मर्दन कर कजली बनावै, फिर इन दोनों समान लोहेका चूरन मिश्रितकर दोप्रहर घीकुवारके गसमें खर-लकरकै गोला बनावै, फिर उस गोलेको ताँबेके पात्रमें रख उसके ऊपर अंडीके पत्तोंको ढक जब वह गरम होजाय तब धानोंके ढेरमें तीन दिन रखवै, फिर उसमेंसे निकाल वारीकपीस कपड़ेमें छान लेवै इसप्रकार करनेसे जलमें तिरने-वाली लोहेकी भस्म होजातीहै । इसीप्रकार सर्व लोहे और स्वर्णादिकी भस्म होजातीहै । इसको सिद्धयोग कहतेहैं, और यह सिद्धोंके मुखसे सुनाहै । अन्नके कोठेमें रखवा हुआ मृतलोहा सर्वप्रकारके ज्वरादि रोगोंको हरैहै । लोहेकी भस्म त्रिफलेके साथ सर्वरोगोंमें देनी चाहिये । ऐसे सर्वप्रकारके मारेहुए लोहे वशीभूत, और सर्वप्रकारके रोगोंको हरनेवाले होतेहैं, तथा इनको अभ्याससे सदैव सेवन करै तो जरा और मृत्यु तथा रोगोंको हरैहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ मृतलोहस्यामृतीकरणमा ।

तोयाष्टभागशेषेण त्रिफलापलघ्वचकम् ।

घृतं काथस्य तुल्यं स्याच्चूर्णं तुल्यं मृताय समम् ॥ ५४ ॥

पाचयेत्ताम्रपात्रेचलौहद्वारं विह्वलयेत् ।
 मृदग्निनापचेत्तावद्वज्जीर्यतिगंधकम् ॥ ५५ ॥
 लौहतुल्याशिवायोज्यासुपक्वमेवतारयेत् ॥
 योगवाहमिदंख्यातंमृतलौहंमहामृतम् ॥ ५६ ॥
 एवंकान्तस्यतीक्ष्णस्यमुण्डस्यापिविधिक्रमः ।
 गुडस्यकुडवेपक्वलौहभस्मपलान्वितम् ॥ ५७ ॥
 कोलप्रमाणरोगेषुतच्चयोगेनयोजयेत् ।
 घृतंतुल्यंमृतंलौहंलौहपात्रेगतंपचेत् ॥ ५८ ॥
 जीर्णेघृतंसमादाययोगवाहेषुयोजयेत् ॥ ५९ ॥
 ओंअमृतेनभक्षयायनमः । अनेनमनुनालौहंभक्षयेत् ।
 आयुर्वीर्यबलंदत्तेपाण्डुमेहादिकुष्ठजित् ।
 आमवातहरंलौहंवलीपलितनाशनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—पाँचपलत्रिफलाको आठभाग जलमें पचावै, जब आठवाँ भाग वाकी
 गैहू तब उसके समान घृत और मृतलोहेका चूरन मिलाकर गंधकके साथ ताँ-
 वेके पात्रमें पकावै और लोहेकी कढ़ाईसे चलाताजवै, जबतक गंधक जीर्ण
 न हो, तबतक मृदुअग्निसे पचावै, फिर लोहेकी समान हरड़ मिलाले, जब
 भलेप्रकार पकजावै तब उतार लेवै, इसप्रकार मृतलोहा अमृतरूप होजाताहै,
 और यह योगवाहीहै । इसीप्रकार कान्तलोह, तीक्ष्णलोह और मुण्डलोहकी
 विधिका क्रम जानना । वत्तीस तोले गुडको पका उममें चार तोले लोहेकी
 भस्म मिला बेरकी बराबर प्रयोग करनेसे सर्वरोगोंको दूर करताहै । घृत और
 लोहेकी भस्मको बराबर लेकर लोहेके वासनमें पकावै, जब घृत जीर्ण होजाय
 तब उतारले, यह योगवाही योगोंमें प्रयोगकरना योग्यहै । “ ओं अमृते भक्षाय
 नमः ” इसमंत्रको पढ़कर भक्षण करे । लोहेकीभस्म—आयु, वीर्य, और बलको
 देनेवालीहै, तथा पाण्डु, प्रमेह, कोढ़, आमवात और वली पलित रोगों को हरनेवाली
 है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अथोपलोहानांशोधनमारणमाह ।

त्रिक्षारंपंचलवणंसप्तधाम्लेनभावयेत् ।
 कांस्यावघोषपत्राणितिलकल्केनलेपयेत् ॥ ६१ ॥

रुद्धागजपुटेपच्याच्छुद्धिमायान्तिनान्यथा ।
 ताम्रवन्मारणतेषांकृत्वासर्वत्रयोजयेत् ॥ ६२ ॥
 कांस्यकषायमुष्णचलघुरूक्षंचतित्तकम् ।
 कफपित्तरुजंहन्तिदृढदेहायुवर्द्धनम् ॥ ६३ ॥
 वीतिकाचगलंरूक्षमतित्तलवणंसरम् ।
 शोधनंसर्वरोगघ्नंबलवीर्यायुवर्द्धनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—सजी, सुहागा, जवाखार, सेंधानोन, कालानोन, खाही और सांभर इन सबको कांजीमें सातवार भावना देवै, फिर इसमें तिलकल्क मिलाके, कांसी और पीतलके पत्रों पे लेप करै फिर सम्पुटमें रख गजपुटमें पचावै तो कांसी और पीतल शुद्ध होजावे । इनकी तांबेकी भस्मकर सर्व रोगोंमें देनी चाहिये । कांसीकी भस्म—रूखेली, गरम, हलकी, रूखी, कडवी, कफपित्तरोगनाशक, देहको दृढकरनेवाली और आयुको बढ़ानेवाली है । पीतलकी भस्म—रूखी, किंचित् कडवी, लवणरसान्वित, सारक, शोधन, तथा बल, वीर्य और आयुको बढ़ानेवाली है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ मंडूरसंस्कारः ।

अल्पाङ्गारेधमेत्किट्टलौहजंचगवांजलैः ।
 सेचयेदक्षपत्रैश्चसप्तवारंपुनःपुनः ॥ ६५ ॥
 मण्डूरोऽयंसमाख्यातःशुद्धंश्लक्ष्णंनियोजयेत् ।
 किट्टाच्छतगुणंमुण्डमुण्डात्तीक्ष्णंशताधिकम् ॥ ६६ ॥
 तीक्ष्णाल्लक्षगुणंकान्तंभक्षणात्कुरुतेगुणम् ।
 तस्मात्कान्तंसदासेव्यंजराभृत्युहरंपरम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखण्डे
 कान्तादिचिह्नमारणं नाम नवमोपदेशः ॥ ९ ॥

अर्थ—लोहेकी किट्टको अंगारोंमें तपाके सातवार गोमूत्रमें और सातवार वहेड़ेके पत्तोंके रसमें बुझावै, इसप्रकार करनेसे मण्डूर बनजाताहै । यह शुद्धमंडूर सर्वकर्मोंमें योजना चाहिये । लोहेकी किट्टसे सौगुण मंडूरमें, मण्डूरसे सौगुण

अधिक तीक्ष्ण लोहेमें, और तीक्ष्णलोहेसे अधिक लक्षगुण कान्तलोहेमें हैं । ये गुण भक्षणकरनेमें हैं । इसकारण जरा और मृत्युनाशक कान्तलोहा सदैव सेवन करना चाहिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

इति श्रीरसरत्नाकरे रसखण्डे रसप्रदीपिकानामभाषाटीकायां भिषक्शालिग्राम-
वैद्यकृतकान्तादिकिङ्गमारणं नाम नवमोपदेशः समाप्तः ॥ ९ ॥

नानाविधानि तैलपातनान्याह ।

तैलानां पातनं वक्ष्ये सूर्यपाकेऽप्यथानले ।

यंत्रयोगेन यत्तैलं ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ १ ॥

धत्तूरबीजचूर्णानि वस्त्रपूतानि कारयेत् ।

आलिप्य कांस्यपात्रन्तु धारयेदातपेखरे ॥ २ ॥

सुतप्तं वस्त्रपूतं च पातयेत्तैलमाहरेत् ।

शिशुपुष्करबीजानां बीजस्य माकुजस्य च ॥ ३ ॥

ग्राह्यं धत्तूरवत्तैलमेकैकस्य पृथक् पृथक् ।

यथा धत्तूरजंतलं काथाद्वर्मे समुद्धृतम् ॥ ४ ॥

तथा सर्वत्र तैलानि संग्राह्या न्यौषधान्तरैः ।

अंकोटस्यापि तैलं स्यात्काकतुण्ड्या समूलया ॥ ५ ॥

बाकुचीदेवदाल्याश्च कर्कोटीमूलतो भवेत् ।

अपामार्गकषायेण तैलं स्याद्विषतुण्डजम् ॥ ६ ॥

मूलकाथैः कुमार्यास्तु तैलं जैपालजं भवेत् ।

काथेन रक्तमार्गस्य बाकुची तैलमाहरेत् ॥ ७ ॥

काथेन त्वेन्द्रवारुण्यास्तैलमारग्वधं भवेत् ।

काकतुण्ड्यापामार्गेऽथ काथा तैलं समाहरेत् ॥ ८ ॥

बीजानि कटुतुम्ब्याश्च गे मयेन विलोडयेत् ।

शुष्कंधान्यतुषैः सार्द्धं दृष्ट्वेच्च उलूखले ॥ ९ ॥

निस्तुषंतं विचूर्ण्यार्थ भृंगराजरसैः सह ।

मर्दयित्वा तपे तैलं गृहीयात्पीडने सति ॥ १० ॥

कृष्णायाः काकतुण्ड्याश्च बीजं चूर्णानिकारयेत् ।
 कान्तपाषाणचूर्णञ्च एकीकृत्य निरोधयेत् ॥ ११ ॥
 शिगतं पक्त्वा उद्धृते तैलमाहरेत् ।
 धात्रीफलरसैर्भाव्यं चूर्णपाषाणबीजकम् ॥ १२ ॥
 दिनैकं च ततो यत्ने तैलं ग्राह्यञ्च तैलके ।
 गुंजाकरञ्जफलञ्च नरमूत्रेण भावयेत् ॥ १३ ॥
 सप्तवारं ततो घर्मे लेपयेत् कांस्यभाजनम् ।
 उद्धृत्य धारयेद्घर्मे तैलं पतति पीडनात् ॥ १४ ॥
 वर्द्धमानारनालेन पिष्ट्वा चूर्णं विभावयेत् ।
 ज्योतिष्मत्युत्थबीजानि आतपे तैलमाहरेत् ॥ १५ ॥
 पुत्रं जीवस्य बीजानां चूर्णमगस्तिबीजजम् ॥
 आम्रातवत्प्रकर्तव्यं ततस्तैलं पृथक् पृथक् ॥ १६ ॥
 नारिकेलाम्बुना भाव्यं बिल्वबीजस्य चूर्णकम् ।
 दिनैकं तैलयंत्रेण तैलमाकृष्य योजयेत् ॥ १७ ॥
 निस्तुषां कोलबीजानां मुखं किञ्चिद्विघर्षयेत् ।
 प्रलेपयेत् कांस्यपात्रे पिष्ट्वा चणकलेपने ॥ १८ ॥
 तन्मुखे टंकणं चूर्णं किञ्चित्किञ्चित् प्रलेपयेत् ।
 धारयेदातपेतीवैमुखात् तैलं समाहरेत् ॥ १९ ॥
 शमीचूर्णं समं पिष्ट्वा छिद्रभाण्डे निवेशयेत् ।
 छिद्राधः स्थापयेद्भाण्डं छिद्रे केशं च दापयेत् ॥ २० ॥
 जलेन सेचयेद्द्रव्यं छिद्राधोग्राहयेच्च तम् ।
 तन्मध्ये घृतकेशस्य क्षिपेद्दूर्ध्वपुटं शनैः ॥ २१ ॥
 तत्क्षणाद्भवत्पञ्चकेशतैलमिदं भवेत् ।
 अपक्वभानुपत्राणां रसः सः सः सः सः सः सः ॥ २२ ॥

समस्तबीजचूर्णञ्चउक्तानुक्तं पृथक्पृथक् ।

आतपेमुच्यतेतैलंसाध्यासाध्यंनसंशयः ॥ २३ ॥

तथैवोत्तरवारुण्याःकषायेणसमाहरेत् ।

तैलंसमस्तबीजानांग्राहयेदातरेखरे ॥ २४ ॥

सर्वबीजास्थिमांसानांशुष्कंपिष्ट्वाह्यनेकधा ।

सर्वबीजेषुवातैलंग्राह्यंपातालयन्त्रके ॥ २५ ॥

वंशादिसर्वकाष्ठानांनारिकेलकपालकम् ।

तुषधान्यादिबीजानांगर्भयन्त्रेणतैलकम् ॥ २६ ॥

ग्राहयेत्सर्वबीजानांतच्चयेगेषुयोजयेत् ॥ २७ ॥

अर्थ—सूर्यकी धूपमें और अग्निके योगसे तैलोंका पातन वर्णन करते हैं, जो यंत्र (कोल्हू) के योगसे तेल निकाला जाय वह तेल सब योगोंमें योजना चाहिये ॥ १ ॥ धतूरेके बीजोंको वारीक पीस चूरन करले, उस चूरनको वस्त्रमें छान कर जड़सहित इन्द्रायनके काथमें विलोर्व, फिर इसको कांसीके पात्रपै लेपकर धूपमें धरदेवै, जब गरम होजाय तब वस्त्रमें छानकर तेलको ग्रहण करें । सैजिनेके बीज, पोहकरमूलके बीज, और भांगरेके बीज, इन सबका तेल अलग अलग धतूरेके बीजोंकी समान निकालै, जिसप्रकार धतूरेके बीजोंको धूपमें धर तेल निकालाहै, उसी प्रकार सर्व औषधियोंका तेल निकालै, मूलसहित काँआठोड़ीके काथके साथ अंकोलका तेल, वाँझककोड़ेकी जड़के द्वारा देवदाली और बापचीका तेल अपामार्ग (चिरचिटा) के काथसे, विषतुण्डीका तेल धीकुवारकी जड़के काथसे, जमालगोटिका तेल लालचिरचिटेके द्वारा बापचीका तेल इन्द्रायणके काथके द्वारा, अमलतासका तेल और चिरचिटेके काथसे कावजंघाका तेल निकलताहै । कड़वीतोंबीके बीज गोबरमें सानकर सुखाव, फिर धानोंकी भूसिके साथ आंखलीमें कूट तुपग्रहित कर चूरन करले, उस चूरनको भाँगरेके रसमें खरल कर धूपमें वस्त्रके द्वारा तेलको ग्रहणकरें । पीपल और कौआठोड़ीके बीजोंको एकत्र पीसकर चूरन करले, फिर उसमें कान्तपापाणका चूरन मिला पात्रमें रख मुख बंदकर धानोंके ढंगमें धरदेवै, फिर कुछेक दिनोंमें निकालकर तेल निकालै । पाषाणबीजके चूरनको आमलेके रसमें भावना देकर एकदिन यंत्रमें डाल तेलको ग्रहणकरें । चाँटली और करंजके फलोंका

बारीक पीसकर चूरन करले उस चूरनको मनुष्यके मूत्रमें सातवार भावना देकर काँसीके पात्रपै लेपकर धूपमें धर पीड़न करनेसे तेल निकलताहै । अंडके बीज और मालकांगनीके बीजोंको काँजीमें भावना देकर धूपमें धरनेसे तेल निकलताहै । जियापोता और अगस्तियेके बीजोंका तेल आम्नातकके तेलकी समान निकलताहै । बेलके बीजोंको नारियलके जलमें भावनादे एकदिन तैलयंत्रमें पेल तेल ग्रहणकरना चाहिये । निस्तुष अंकोलके बीजोंका मुख किंचित् घिसकर काँसीके पात्रमें रख तिसपै चनोंके चूरनका लेप करै फिर उसके मुखपै कुछ कुछ सुहागेके चूरनका लेप करै, फिर धूपमें धरनेसे सुखपूर्वक तेल निकलताहै । समीके बीजोंका चूरनकर छिद्रयुक्तभाण्डमें रखै, और उसभाण्डके छिद्रमें वालोंको रखै, और छिद्रके नीचे एकभाण्ड और धरै, उसद्रव्यको जलसे सींचताजाय, जो छिद्रमेंसे निकल दूसरे पात्रमें जावे, उसको लेकर वालोंयुक्तपात्रमें धीरे २ पुटदवै, इसप्रकार पुटपाक करनेसे तत्क्षण जो द्रव्य निकले उसको केशतेल कहतेहैं । सर्व प्रकारके बीजोंका चूरन अलग अलग कच्चे आकके पत्तोंके रसमें भावना देकर धूपमें धरनेसे निःसन्देह तेल निकलताहै । इन्द्रायनके काथमें सबद्रव्योंके बीजोंको भावना देकर तेज धूपमें धरनेसे तेल निकलताहै । सर्वप्रकारके बीज, अस्थि और मज्जादिको सुखाकर अनेकवार पीस पातालयंत्रके द्वारा तेल निकालना चाहिये । वंशादि सर्व काष्ठ, नारियलकी खोपरी और तुषधान्यादिके बीज, इन सबका तेल गर्भयंत्रके द्वारा निकालना चाहिये । इसप्रकार सब बीजादिकोंका तेल निकालकर सर्वयोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथान्यमूलिकाविधिमाह ।

वत्सनाभंविषंस्वादुदीपनंकफवातजित् ।

त्रिदोषशमनंयोगयुक्तंसुधामयंभवेत् ॥ २८ ॥

बृंहणंबलवीर्यस्यवाडवाग्निशतोपमम् ।

सन्निपातेप्रतीकारेप्रभवःप्रभवोऽस्यहि ॥ २९ ॥

उद्धृतंफलपाकान्तेनवंस्निग्धंघनंगुरु ।

अव्यापकंविषहरंवातातपविशोषितम् ॥ ३० ॥

रक्तसर्षपतैलेनलिप्तवाससिधारयेत् ।
 अथवापियथाप्राप्तं द्विष्टोद्गृह संयुतम् ॥ ३१ ॥
 आतपेत्रिदिनं शुष्कं निहितं वीर्यधृग्भवेत् ।
 मृतं सूताभ्रकं लौहं विषञ्च तुल्यवीर्यकम् ॥ ३२ ॥
 तस्माद्विषं योगवाहे योज्यं योगेरसायने ।
 तानि चैव तु मानानि अष्टौ पट्टाचतुर्थकान् ॥ ३३ ॥
 मात्रात्रयं समाख्यातमुत्तमाधममध्यमम् ।
 दातव्यं सर्वरोगेषु घृताशिने हिताशिने ॥ ३४ ॥
 क्षीराशिने प्रदातव्यं रसायनवतेनरे ।
 नक्रोधितेन पित्ताढ्येन क्लीबे राजयक्ष्मणि ॥ ३५ ॥
 शुतृष्णाश्रमकर्माध्वशोपि नेक्षयरोगिणे ।
 गर्भिणीबालवृद्धेषु न विषं राजमंदिरे ॥ ३६ ॥
 नद तव्यं न भोक्तव्यं विसंवादे कदाचन ।
 आचार्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारकम् ॥ ३७ ॥
 अनेन मंत्रेण मर्दयेद्भूमौ न स्थापयेत् ।
 अमृतमिति वदेदिति क्रमोऽयम् ।
 ओं सिद्धगुरुभ्यो नमः । परमगुरुभ्यो नमः ।
 परात्परगुरुभ्यो नमः । परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ।

नवरंजनी कालगंजनी झङ्कारै वेसजव आनिमंत्रे वडवा-
 भ्रिण्डं दुर्भक्षन्ततो नृजामि नागलोक, उत्थाकालकुट्टं-
 तथा उपजिना एव घट्ट्या हिरे विषमाचीहोः जाहिरे
 विप्रो बटहोः ईश्वर महादेवकी आज्ञायो वा भक्ति गुरुकी
 शक्ति ॥ वारत्रयं पठितव्यम् ।

ततो द्रव्यान्तरेण मेलकम् । इति प्रज्ञासरस्वती मतम् ।

अर्थ—वत्सनाभविष (मीठा)—मधुर, अग्निप्रदीपक, कफवातनाशक, त्रिदोषनिवारक और योगमें मिला हुआ अमृतकी समान गुण करनेवाला है ॥ २८ ॥ पुष्टिकारक, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, १०० वडवाग्निकी समान दीपन और सान्निपातरोगमें विशेष उपकारी है ॥ २९ ॥ फलके पकजानेपर उखाड़ा हुआ, नवीन चिकना, घन, अव्यापक, विषको हरनेवाला, पवन और पसे सूखा हुआ ऐसा वत्सनाभ दिष ग्रहणकरना चाहिये । लालसरसोंके तेलसे लिप्त किये हुए वस्त्रमें विषको धारण करना चाहिये । अथवा विषको गोमूत्रमें मिलाकर तीन दिन धूपमें सुखावै तो निस्तेज और वीर्यको धारणकरनेवाला होजाता है ॥

मारा हुआ पारा, अभ्रक, लोहा और विष, यह सब समानवीर्यवाले हैं । इसकारण सर्वप्रकारके योगवाहकयोगोंमें और रसायनयोगोंमें विषप्रयोग करना योग्य है । इसकी उत्तम मात्रा आठ चावलकी, मध्यम छै चावलकी और अधम चार चावलकी है । घृत और दूध सेवन करनेवाले तथा रसायन मनुष्योंके लिये यह सर्व रोगोंमें हितकारी है । क्रोधी, पित्तकी प्रकृतिवाला, नपुंसक, राज रोगवाला, क्षुधासे व्याकुल, तृषासे घबड़ाया हुआ, परिश्रमसे और मार्गके चलनेसे थका हुआ, क्षयरोगवाला, गर्भिणी, बालक और वृद्ध इन सब मनुष्योंको तथा राजमंदिरमें और विषके बादमें कभीभी विषका सेवन करना, वा कराना तथा देना नहीं चाहिये ॥

शिष्यके निश्चयके लिये गुरुको विषका सेवनकरना चाहिये । अमृतमिति० की शक्ति, इसमंत्रको तीनवार पढ़कर विषको मर्दन करै परन्तु भूमिमें न रक्वै । अन्यद्रव्योंमें मिलावै ॥

सक्तुकंमुस्तकंशृंगीवालकंसर्षपाह्वयम् ।

वत्सनाभश्चकूर्मश्चश्वेतशृंगीतथाष्टमम् ॥ ३८ ॥

इत्यष्टौलोकल्लोकेकालकूटादिवर्जयेत् ।

कालकूटंमेषशृंगीहलहलंचदर्दुरम् ॥ ३९ ॥

कर्कटंमर्कटंग्रन्थिहरिद्रंरक्तशृंगकम् ।

केशवंदशमञ्चेतिवर्जनीयंभिषग्वरैः ॥ ४० ॥

सक्तुकाद्यानप्रयुजीतसर्वरोगेरसायने ।

एतद्विषंजातिचतुष्टयंचविचार्ययोज्यंभिषगुत्तमेन ॥ ४१ ॥

यथा—विप्रोरक्षतियौवनंनरपतिस्तद्भूतलेपालतां
 वैश्यःकुष्ठविनाशनेचकुशलःशूद्रेह्नेष्स्त्रीविनम् ॥
 तस्माच्चापिभिषग्वरेणनिपुणैस्तद्वेदिनाभावयेत्
 कुर्यादेवततोविषंनृपवरोमृत्युंजयायक्षितौ ॥ ४२ ॥
 श्वेतावायदिवापिङ्गामधुराउपरापिवा ।
 लोमशाब्रह्मजातिःस्यात्क्षत्रजातिस्तुलोहिता ॥ ४३ ॥
 पीतावांमधुराकिंचिद्वैश्यजातिस्तुधूसरा ।
 कृष्णाशूद्रस्यदृश्येतएतेषांचभिषग्वरैः ॥ ४४ ॥
 क्षीरंसंपूर्यभाण्डेपिविषंदत्त्वाविचिन्तयेत् ।
 जायतेपियदावर्णतदाजातिंविनिर्दिशेत् ॥ ४५ ॥
 शुक्लंरक्तंतथापीतंकृष्णञ्चेतिचतुर्विधम् ।
 ब्रह्मक्षत्रविद्विशूद्राणांज्ञातव्योजातिनिर्णयः ॥ ४६ ॥
 क्षितंदुग्धेविषंवैद्योजानीयात्कमशोयदि ।
 श्वेतंरक्तंतथापीतंकृष्णंचोष्णत्वमेवच ॥ ४७ ॥

अर्थ—सक्तुक, मुस्तक, शृंगी, वालक, सर्पपाद्विष, वत्सनाभ, कूर्म और
 ज्वेतशृंगी यह आठप्रकारके विष सर्वयोगोंमें व्यवहार करने चाहियें । और काल-
 कूटादिविषोंको वर्जना चाहिये । कालकूट, मेपशृंगी, हलाहल, दह्र, कर्कट,
 मरकट, हारिद्र, रक्तशृंगक, ग्रंथि और केशव यह दशप्रकारके विष सर्वयोगोंमें
 त्यागने चाहिये । सक्तुकादि आठ प्रकारके विष सर्वप्रकारके रोगोंमें और रसाय-
 नकर्ममें व्यवहार करने योग्यहैं । यह विष ब्राह्मणादि जातिभेदमें चारप्रकारकेहैं,
 इसकारण वैद्यको जातियोंका विचारकर विषका व्यवहार करना चाहिये ।
 ब्राह्मणविष यौवनकी रक्षा करतेहैं, क्षत्रियविष शरीरको पुष्ट करतेहैं, वैश्यविष
 कुष्ठनाशक और शूद्रविष प्राणनाशक है ॥ जो विष सफेद, पीगलवर्ण, मधुर,
 उषर और रोमयुक्त हो उसको ब्राह्मणजातिका जानना । जो विष लालरंगका,
 पीलेरंगका, और किंचित् मधुरहो उसको क्षत्रिय कहतेहैं । धूमररंगके विषको
 वैश्य और कालेरंगके विषको शूद्रजातिका जानना । किमीवरतनमें दूध भर
 और उसदूधमें विषको डालदेवै, कुछकालके उपरान्त जो दूध सफेद रहजाय

तौ ब्राह्मण, लाल होजाय तौ क्षत्रिय, पीला पडजाय तौ वैश्य और काला होजाय तौ शूद्रजातिका विष जानना । दूधमें विष मिलाकर दही जमावै; सफेद, लाल, पीला और काला इनमेंसे जिसरंगका दही जमके होजाय, उसही जातिका विष जानना चाहिये ॥ ३८-४७ ॥

ग्रन्थान्तरे ।

तुल्येनटंगणेनैवम्रियतेपेषणाद्विषम् ।

विषेषुजंगमाख्येषुविषंनागभवंहितम् ॥ ४८ ॥

इदमेवमहाश्रेष्ठंत्रिदोषक्षपणंक्षणात् ।

दीपनंकुरुतेसद्योवडवाग्निशतोपमम् ॥ ४९ ॥

सन्निपातप्रतीकारेप्रभावःप्रभवोहिंसः ॥ ५० ॥

अर्थ—विषके समानभाग सुहागा मिलाकर खरल करै तौ विष मरजाताहि । जंगमविषोंमें सर्पका विष हितकारीहै, सर्वश्रेष्ठ, त्रिदोषनाशक, दीपन और सौ वडवाग्निकी समान जठराग्निकी करदेताहि तथा मन्निपातके नाशकरनेमें अत्युत्तम औषधिहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

रसेन्द्रचूडामणौ ।

नागोद्भवंयथाप्राप्तंविषंगोमूत्रसंयुतम् ।

आतपेत्रिदिनंशुष्कंनिहितंवीर्यधृग्भवेत् ॥ ५१ ॥

अतिमात्रंयदाभुङ्केतदाज्यंटंगणंपिबेत् ।

रजनीमेघनादावासर्पाक्षीवाघृतान्विता ॥ ५२ ॥

लिहेद्रामधुसर्पिभ्यांचूर्णितामर्जुनत्वचम् ।

पुत्रंजीवकमजांवापिबेद्रानिम्बकद्रवम् ॥ ५३ ॥

एवंविषविधिःख्यातःप्रयोगंचवदाम्यहम् ।

विषंत्रिकटुकंमुस्तंहरिद्रानिंबपत्रकम् ॥ ५४ ॥

विडंगमष्टमंचूर्णच्छागमूत्रैःसमंसमम् ।

चणकाभावटीख्यातास्याज्यायोगवाहिका ॥ ५५ ॥

विषंपाठाश्चगंधाश्चललात्तलीशपत्रकम् ।

मरिचंपिप्पलीनिम्बमजामूत्रेणतुल्यकम् ॥ ५६ ॥

वटिकापूर्ववत्कार्यावटिकायोगवाहिका ।
 निद्रांतन्द्रांकुमंदाहंसफेनलोमहर्षणम् ॥ ५७ ॥
 शोषचैवातिसारश्चकुरुतेजंगमंविषम् ।
 स्थावरन्तुज्वरंहिक्कादन्तहर्षगलग्रहम् ॥ ५८ ॥
 फेनच्छर्दयरुचिश्वासंमूर्च्छाचकुरुतेविषम् ।
 नजानातियदामंत्रीविषंभक्षेच्चिकित्सितम् ॥ ५९ ॥
 विषमेवतदादायमज्जत्यम्बुनिधाविव ।
 तस्माद्यत्नेनसंरक्षेद्राजाविषचिकित्सकम् ॥ ६० ॥
 प्रथमंवह्निखर्परिकायामनाग्दृष्ट्वावक्ष्यमाण-
 मन्त्रेणनिर्विषंविधायगृहीयादिति ॥

अमृतशुद्धिः ।

भगवन् शिवाधिकारिन् विषन्नास्ति ।
 अनेनएकादशवाराभिमन्त्रितंकुर्यात् ॥
 'चरीधरेविषमाटीहोइ' अनेनसप्ताभिमन्त्रितंकुर्यात् ॥

अर्थ—सर्वके विषको गोमूत्रमें तीन दिन रखनेसे वीर्यवान् होजाताहै । जब विष मात्रासे अधिक भक्षण कियाजाय तब घृतमें सुहागा मिलाकर पीवै, अथवा हलदी, चौलाई, और सर्पाक्षीको घृतमें मिलाकर पीवै, अथवा उपरोक्त, तीनों औषधियोंके रसमें सहत और घी युक्तकर अवलेहकी समान बनाकर चाटे अथवा अर्जुनकी छालके चूनको सहत और घृतमें मिलाकर चाटे, तथा जिया-पोताकी मज्जाको पीसकर सहत और घीमें मिलाकर चाटे, अथवा नीबूके रसको पीवै तो विषके वेग शान्त होजातेहैं । इसप्रकार विषकी विधि कही अब विषके प्रयोग कहताहूँ ॥

विष, त्रिकुटा, नागरमोथा, हलदी, नीबूके पत्ते और वायविडंग, इन आठ औषधियोंको बकरेके मूत्रमें खरल कर चनेकी बराबर गोली बनालेवै इसको योगवाहिका जयावटी कहतेहैं । अथवा यह जयावटी सर्वरोगोंको जीतनेवाली है।

विष, पाठ, गंधक, खिरैटी, तालीसपत्र, मिरच, पीपल, और नीमके पत्ते इन सबको समानभाग लेकर बकराके मूत्रमें खरल करके चनेकी बराबर गोली बनालेवै, यह योऽहोऽहिति वटीहै । जंगमविष—निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, फेनयु

क्तवमन, लोमहर्षण, शोष और अतिसार रोगको उत्पन्न करैहै । स्थावरविष—ज्वर, हिक्का, दन्तहर्ष, गलवेदना, फेनयुक्तवमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छाको उत्पन्न करताहै । और जो मनुष्य विषको भक्षण करै और विषकी चिकित्सा नहीं जानै वह मनुष्य समुद्रमें डूबने योग्य है । इसकारण बुद्धिमान् प्रथम विषकी चिकित्सा जान तदनन्तर विषके भक्षण करनेकी इच्छा करै । प्रथम विषको अग्निके द्वारा कढ़ाईमें डाल पछि वक्ष्यमाणमंत्रको पढ़कर निर्विष करे ग्रहण करै। (भगवन् इत्यादि) इसमंत्रको ११ बार पढ़कर विषको अभिमंत्रितकरै और (चरीधरे विषमाटी होइ) इसमंत्रको सातबार पढ़कर विषको अभिमंत्रित करना चाहिये ॥

अथ पित्तशुद्धिः ।

निम्बद्रवेपित्तंवारत्रयंविभाव्यप्रक्षाल्यसंशोष्यगृह्णीयादिति ।

अर्थ—पित्तको नीमके पत्तोंके रसमें तीनबार भावना दे, पानीमें धोकर सुखालेवै तौ पित्त शुद्ध होजातहै ।

शिलाजतुशुद्धिः ।

हेमाद्याःसूर्यसन्तप्ताःस्रवन्तिगिरिधातवः ।

जत्वाभंमृदुमृत्स्नाभंयन्मलंतच्छिलाजतु ॥ ६१ ॥

अनघ्रंचाकषायञ्चकटुपाकेशिलाजतु ।

नात्युष्णशीतंधातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्यसम्भवः ॥ ६२ ॥

हेम्रोऽथरजतात्ताम्राद्वरंकालायसादपि ।

मधुरंचसतिकंचजपापुष्पनिभंचयत् ॥ ६३ ॥

विपाकेकटुशीतंचतत्सुवर्णस्यनिःसृतम् ।

राजतंकटुकंश्वेतंशीतंस्वादुविपच्यते ॥ ६४ ॥

ताम्राद्वर्हिणकण्ठाभंतीक्ष्णोष्णंपच्यतेकटु ।

यच्चगुग्गुलुसंकाशंसतिकंलवणान्वितम् ॥ ६५ ॥

विपाकेकटुशीतंचसर्वश्रेष्ठंदायसम् ।

गोमूत्रगंधःसर्वेषांसर्वकर्मसुयौगिकाः ॥ ६६ ॥

रसायनप्रयोगेषुपश्चिमन्तुविशिष्यते ।

यथाक्रमं वातपित्तश्लेष्मपित्तकफे त्रिषु ॥ ६७ ॥
 विशेषेण प्रशस्यन्ते मलाहेमादिधातुजाः ।
 लोहः किट्टायते वह्नौ विधूमं दह्यतेऽम्भसि ॥ ६८ ॥
 तृणाद्यग्रे कृतं श्रेष्ठमधोगलतितन्तुवत् ।
 (तदेव परीक्षितस्य शोधनं यथा—)
 दंशदष्टौषधादिदोषहरणार्थं मेषशृंगं भूर्जपत्रेण धूप-
 येत् । काथद्रव्यं शिलाजतुसमं चतुर्गुणेन जलं दत्त्वा
 चतुर्भागावशेषेण भावयेदित्येकः पक्षः । वाग्भटस्तु-
 अष्टगुणजलदानेनाष्टावशेषे पूर्ववदुभयथैव व्यवहारः ।
 भद्रशिलाजतुत्रिफलादशमूलउष्णकाथेन निक्षि-
 प्य केवल उष्णोदकेन वा स्थिते ऊर्द्धीभूते पद्मपत्रवत्
 सर्वग्राह्यं ततः शिवागुडिकोक्तक्रमेण भावनां दत्त्वा
 विशोध्य सालसारादिना भावयेद्यथा—
 सालयुग्मौकरं जौद्धौखदिरं चन्दनद्वयम् ।
 गर्दभाण्डोऽर्जुनश्चेहलोध्रयुग्मधवासनाः ॥ ६९ ॥
 शिरीषागुरुकालीयपूगपूतीककर्कटाः ।
 सालसारादिरप्येषगणः श्लेष्मगृदापहः ॥ ७० ॥
 मेहगुल्मार्शकुष्ठादिमेदः पाण्डुरुजापहः ।
 एभिर्दिवा तपेशोप्यं रात्रौ रात्रौ च भावयेत् ॥ ७१ ॥
 द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयाद्द्रवतां व्रजेत् ।
 भवेत्प्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ ७२ ॥
 भवेद्द्रव्यं समं काथ्यं काथं चाष्टावशेषितम् ।
 तेनार्द्रसमकृद्द्रव्यं शोषयेत्प्रबलातपे ॥ ७३ ॥

अर्थ—सुवर्णादि सर्व पर्वतकी धातु सूर्यकी उष्णतासे तमहोके सिग्नीहैं,
 उसको शिलाजीत कहतेहैं । लाखकी समान रंगवाला और मृदुमट्टीकी समान

कोमल सुवर्णादिकके मैलको शिलाजीत कहतेहैं । शिलाजीत—पापनाशक, अल्पकषेला, पचनेमें चर्परा, न अत्यंत गरम और न अत्यंत शीतलहै । सोना, चाँदी, ताँबा, कान्तलोह इन चारप्रकारकी धातुओंसे शिलाजीत उत्पन्न होता है । जो शिलाजीत—मधुर, कडवा, जवाके फूलकी समान लाल, पचनेमें चर्परा और शीतलहो उसको सुवर्णसे उत्पन्न हुआ जानना । जो शिलाजीत—चर्परा, सफेद, शीतल और पचनेमें मधुर हो उसको चाँदीसे उत्पन्न हुआ जानना । जो शिलाजीत—मोरके कंठकी समान कांतिवाला, तीक्ष्ण, उष्ण और पचनेमें चर्परा हो उसको ताँबेसे और जो शिलाजीत गूगलकी समान रंगवाला, कडवा, नमकीन, पचनेमें चर्परा और शीतल हो उसको लोहेसे उत्पन्न हुआ वा सर्वमें श्रेष्ठ शिलाजीत जानना । सर्वप्रकारके शिलाजीतोंमें गोमूत्रकी गंध आती है और यह सर्वकर्मोंमें प्रयोग करने चाहियें और लोहेसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत रसायनकर्ममें विशेषकर लेना चाहिये । पूर्वाक्त स्वर्णादि चारप्रकारके शिलाजीत क्रमसे वातपित्त, श्लेष्मपित्त, कफ और त्रिदोषमें प्रयोग करने चाहियें । जो शिलाजीत अग्निमें डालनेसे लोहेकी किट्टकी समान जलजाय और धुआं न उठे तथा पानीमें तृणके ऊपर रखकर उठानेसे ताँतकी समान गलजावे, ऐसा शिलाजीत उत्तम होताहै । अब शिलाजीतकी शुद्धि कहते हैं,—सर्पादिके दंश और अन्य औषधादिकके संयोगसे उत्पन्न हुए दोषोंको दूर करनेके लिये मँढेके सींगके चूर्णसे और भोजपत्रसे धूप देकर शिलाजीतको शुद्ध करें । काथद्रव्य शिलाजीतकी समान लेकर चौगुने अथवा आठगुने जलमें पकावें; जब चौथाभाग अथवा आठवाँ भाग शेष रहै तब उसमें शिलाजीतको भावना देवै । उत्तम शिलाजीतको त्रिफला और दशमूलके उष्णकाथमें अथवा केवल गरमजलमें गेरे जब वह कमलके पत्तोंकीसमान ऊपरको आजावै तब ग्रहण कर-लें, फिर शिवागुटिकाके क्रमसे भावना देकर शोधन करें, पश्चात् सालसारादिगणके काथमें भावना देवे । साल, पियासाल, करंज, घृतकरंज, लालचन्दन, सफेदचन्दन, गर्दभाण्ड, अर्जुन, धव, भोजपत्र, लोध, पठानीलोध, अमन, सिरस, अगर, पीलाचन्दन, सुपारी, पूतीक और काकड़ाशिंगी इन सबको सालसारादि कहतेहैं । यह कफरोग, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, कोढ़ और मेद, तथा पांडुरोग नाशकहैं । इसके काथमें शिलाजीतको रात्रिमें भावनादेवै, और दिनमें सुखावै । इसप्रकार द्रव वस्तुमें भावनायोग्यपदार्थ मग्न होकर आर्द्र होताहै उसकी वही भावनाविधि जाननी । काथ्यद्रव्य भावनाद्रव्यकी समान तथा

काथ आठवां भागशेष जानना । तिसके द्वारा गीलाकर धूपमें सुखालेवै, इसप्रकार शिलाजीत शुद्ध होजाताहै ॥

अथ दग्धहीरकशुद्धिः ।

दग्धहीरकं योज्यं निक्षिप्याग्नौ धमापयित्वानिर्गुण्डी-
रसेन सप्तवारान्निर्वाप्य प्रक्षाल्य गृह्णीयादिति ॥ ७४ ॥

अर्थ—दग्धहीरेको अग्निमें तपाके सातवार सम्हालूके रसमें भावना देकर धोलेवै तो दग्धहीरा शुद्ध होजाताहै ।

अथ गुग्गुलुपरीक्षा ।

जायन्ते वामरुकावथोजनपदे ग्रीष्मेऽर्कतापोर्दिताः
शीतोष्णेशिशिरेच गुग्गुलुरसमुच्चान्तिते पंचधा ॥
हेमाभं महिषाक्षतुल्यमपरंतत्पद्मरागोपमं
भृंगाभं कुमुदद्युतिश्च विधिना ग्राह्यापरीक्षाततः ॥ ७५ ॥
वह्नौ ज्वलन्ति तपने विलयं प्रयान्ति
क्लिद्यन्ति कोष्णसलिले पयसा समानाः ।
ग्राह्याः शुभाः परिहरेच्चिरकालजाता-
नङ्गात्स्फुटं स्वर्परगन्धिकतुल्यवर्णान् ॥ ७६ ॥
स्वादो स्वादु कषायतिक्तकटुकोवीर्ये विपाके कटुः
वृष्यो मार्गविशोधनेऽतिविशदस्तीक्ष्णो विकारी सरः ।
सायुष्यः सुरदस्त्रिदोषशमनो मेधास्मृतिश्रीकरो
धन्यः पापनिपूदनोऽग्निजननो हृत्कण्ठशोधी पुनः ॥ ७७ ॥

तदेवं परीक्षितस्य शोधनमाह ।

दशमूलक्राथेऽष्णे पूते गुग्गुलुं परिक्षिप्यालोढ्य च
वस्त्रपूतं विधाय चण्डातपे विशोध्य घृतं दत्त्वा पिण्डितम् ॥

अर्थ—मरुदेश (मारवाड) जनपदमें तथा ग्रीष्मकालके सूर्यकी उष्णतासे तप्त होकर गूगलके वृक्ष, शीतोष्ण तथा शिशिरऋतुमें सोनेकी समान कांति-युक्त, महिषाक्ष, पद्मरागमणिकी सदृश, भौंगरेकी समान और कुमुदिनीकी

कान्तिकी सदृश पाँचप्रकारके रसको छोड़तेहैं। जो गूगल अग्निमें डालनेसे जल-जाय, धूपमें धरनेसे पिघल जाय, और गरम पानीमें डालनेसे घुलकर दूधकी समान होजाय ऐसा गूगल उत्तम होताहै । इसको ग्रहण करना चाहिये और जो पुरानाहो तथा जिसमें दुर्गन्ध आतीहो और अग्निमें रखनेसे जिसकी खीली होजाय ऐसा गूगल त्यागना चाहिये ।

गूगल—मधुर, कबेला, चरपरा, कडवा, वीर्य और विपाकमें चरपरा, वीर्यवर्द्धक, शरीरके मार्गको शोधनेवाला, अतिविशद, तीक्ष्ण विकारोंको हरनेवाला, सारक, आयुको बढ़ानेवाला, स्वरको सुन्दर करनेवाला, त्रिदोषनाशक, मेधाकारक, स्मरणशक्तिको करनेवाला, श्रीजनक, धन्य, पापनाशक, अग्निप्रदीपक, तथा हृदय और कण्ठको शुद्धकरनेवालाहै । दशमूलके काढ़ेको वस्त्रमें छानकर तिसमें गूगलको डाल फिर वस्त्रमें छान तेज धूपमें सुखावै, तदनंतर तिसमें घी मिलाकर गोला बनावै तौ गूगल शुद्ध होजाता है ॥

अथशंखनाभिशुद्धिमाह ।

शंखनाभिस्तथाम्लेनसप्तवारंविभावयेत् ।

रौद्रेमलादिकंत्यक्ताप्रक्षाल्यग्राहयेदिति ॥ ७८ ॥

अर्थ—शंखनाभिको काँजीमें सातवार भावना देकर धूपमें रखदे, फिर उसमेंसे मलादिकको निकाल धोकर ग्रहणकर लेवै तो शंखनाभि शुद्ध होजायगी ॥७८॥

अथ वराटीशुद्धिमाह ।

वराटींतक्रचांगेरीजम्भीराणांरसेशुभे ।

प्रक्षिप्यभावयेत्तावद्यावच्छुक्कानपश्यति ॥ ७९ ॥

पश्चादुद्धृत्यगृहीयाद्वराटींशुद्धिमागताम् ॥ ८० ॥

अर्थ—तक्र, चाङ्गेरी और जम्भीरी नीबूके रसमें कौडीको भावना देवै जब-तक सफेद न होवै तबतक भावना देतारहै, फिर सफेद होनेपर ग्रहण करै तौ शुद्ध होजातीहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ मुक्ताशुद्धिमाह ।

भौमिकंजलमासाद्यमुक्तांचव्युषितामपि ।

त्यक्तामलादिकांताञ्चप्रक्षाल्यग्राहयेदिति ॥ ८१ ॥

इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते रसरत्नाकरे रसखंडे

तैलपातनं नाम दशमोपदेशः ॥ १० ॥

अर्थ—मोतियोंको पृथ्वीके जलमें भिजोकर दूसरे दिन मैल आदिको दूरकर पानीसे धोकर ग्रहण करले ॥ ८१ ॥

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारकभिषक्शालिग्रामवैद्यमुरादावादनवासिकृतरसरत्नाकरे रस-
खण्डे प्रदीपिकानामभाषाटीकायां तैलपातनं नाम दशमोपदेशः समाप्तः ॥१०॥

अथ चरकमतमाह ।

आयुरारोग्यदातारंभववैद्यंजगद्गुरुम् ।
आधिव्याधिहरं वन्दे परं शक्तियुतं शिवम् ॥ १ ॥
आयुर्हि ताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र धीमद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥ २ ॥
श्रुतेः पर्यवदातव्यं बहुशो दृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥ ३ ॥
वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।
एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ ४ ॥
प्रत्युत्पन्नमतिः श्रीमान्व्यवसायी विशारदः ।
सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक् पाद उच्यते ॥ ५ ॥
आयुष्मान्सत्यवान्साध्यो द्रव्यवान्मित्रवानपि ।
उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ६ ॥
प्रशस्ते देशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ।
अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ७ ॥
दोषघ्नमम्लाम्लिकरमविकारिविपर्यये ।
समीक्ष्य काले दत्तञ्च भेषजं पाद उच्यते ॥ ८ ॥
स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे ।
वैद्य-~~इत्युक्त्वा~~श्च पादः परिचरः स्मृतः ॥ ९ ॥
मातरं पितरं पुत्रं बान्धवानपि चातुरः ।
अप्येताञ्शंकते नित्यं वैद्ये विश्वासमेति च ॥ १० ॥

कारणं षोडशगुणं सिद्धेः पादचतुष्टयम् ।
 विज्ञाताशासितायोक्ता प्रधानं भिषगत्रतु ॥ ११ ॥
 पक्तये कारणं पत्तुर्यथा पात्रेन्धनानलाः ।
 त्रिजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि च ॥ १२ ॥
 आतुराद्यास्तथापादाः सिद्धेः कारणसंज्ञिताः ।
 वैद्यस्य ते चिकित्सायां प्रधानं कारणं भिषक् ॥ १३ ॥
 मृत्कुण्डचक्रसूत्राद्याः कुम्भकारादृते यथा ।
 नावहन्ति गुणं वैद्यादृते पादत्रयन्तथा ॥ १४ ॥
 तस्माच्छास्त्रेषु विज्ञाते प्रवृद्धे कर्मदर्शने ।
 भिषक् चतुष्टये उक्तः प्राणाभिश्च उच्यते ॥ १५ ॥
 हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगानामपुनर्भवे ।
 ज्ञानं चतुर्विधं यस्य सराजार्हो भिषग्वरः ॥ १६ ॥
 विद्यावितर्का विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया ।
 यस्यैते पङ्गुणास्त्वस्य न साध्यमपि वर्तते ॥ १७ ॥
 यस्य ह्येते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः ।
 स वैद्यशब्दसंभूतो जनप्राणसुखप्रदः ॥ १८ ॥
 भिषग्जितश्चतुष्पादं पादं पादं चतुर्विधः ।
 भिषक् प्रधानं पादेभ्यो यस्माद्वैद्यश्चतुर्गुणः ॥ १९ ॥
 साध्यासाध्यविभागज्ञो ज्ञानपूर्वचिकित्सकः ।
 काले चारभते कर्मयत्तत्साधयति ध्रुवम् ॥ २० ॥
 अल्पविद्याय शोणानिमपत्रपत्वसंग्रहम् ।
 प्राप्नुयान्नियतं वैद्यो योऽसाध्यं समुपाचरेत् ॥ २१ ॥
 गतिरेकानवत्त्वश्चरोगस्योपद्रवेण च ।
 दोषश्चैकः समुत्पत्तौ देहः सर्वोषधक्षमः ॥ २२ ॥

चतुष्पादोपपत्तिश्चसुखसाध्यस्यलक्षणम् ।

भिषजाप्राक्परीक्ष्यैवंविकाराणांसुलक्षणम् ॥ २३ ॥

चकर्मसमारंभःकायःसाध्येतुधीमता ।

यस्तुरोगमविज्ञायकर्माण्यारभतेभिषक् ॥ २४ ॥

अप्यौषधविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छया ।

यस्तुरोगविशेषज्ञःसर्वभैषज्यकोविदः ॥ २५ ॥

देशकालप्रमाणज्ञस्तस्यसिद्धिरसंशयः ॥ २६ ॥

अर्थ—आयु और आरोग्यको देनेवाले. संसारके वैद्य जगतके गुरु, आधि व्याधिनाशक, सर्वमें श्रेष्ठ, और परमशक्तियुक्त ऐसे श्रीमहादेवको प्रणाम करूँ हैं ॥ १ ॥ आयुका हिताहित, रोगका निदान, और व्याधिके शमनका उपाय जिसके द्वारा जानाजाय उसको आयुर्वेद कहते हैं ॥ २ ॥ श्रुतिज्ञता (शास्त्रोंका जानना) बहुदृष्टकर्मता (गुरुके समीप बहुतसी वैद्यकी की क्रियायें देखना) दक्षता, और पवित्रता, यह चार गुण वैद्यमें होने चाहिये ॥ ३ ॥ वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक यह ४ चिकित्साके उपकरण जानने ॥ ४ ॥ चमत्कारबुद्धिवाला लक्ष्मीवान्, व्यवसायी, विशागद और सत्यधर्ममें प्रीति करनेवाला, ऐसा वैद्य होना चाहिये ॥ ५ ॥ आयुष्मान्, सत्यवान्, साध्य, द्रव्यवान्, मित्रवान्, वैद्यके वचनोंके अनुसार चलनेवाला और आस्तिक, ऐसा रोगी होना चाहिये ॥ ६ ॥ उत्तमदेशमें उत्पन्न हुई, शुभदिनमें उखाड़ी हुई, अल्पमात्र, महावीर्यवान्, गंध वर्ण और रससंयुक्त, सातदोष नाशक, ग्लानिको नहीं करनेवाला, विकारवर्जित, और यथासमयमें देनी ऐसी औषधि होनी चाहिये ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ स्निग्ध, निन्दाग्रहित, बलवान्, रोगीकी रक्षा और सेवाकर्ममें तत्पर, वैद्यके वचनोंके अनुसार चलनेवाला ऐसा परिचारक (सेवक) चिकित्साका पाद कहलाताहै ॥ ९ ॥ माना, पिता, पुत्र और भ्राता, इनके वचनोंमें भी शंका करनेवाला रोगी वैद्यके वचनोंमें शंका नहीं माने अर्थात् वैद्यके वचनोंका विश्वास करे ॥ १० ॥ सिद्धि (चिकित्सा) के षोडश गुणों पादचतुष्टय कारण हैं, विज्ञाता, शासिता, भोक्ता और प्रधान इनमें प्रधान वैद्य होताहै ॥ ११ ॥ जैसे कि—रसोईकरनेके लिये पात्र, इंधन और अग्नि कारण हैं, तथा जैसे विजयलाभके लिये, जय भूमि सेना और अस्त्रादि कारण हैं ॥ १२ ॥ तैसेही रोगी आदि चारपाद सिद्धिके कारण हैं किन्तु चारों पादोंमें प्रधान वैद्य है। जैसे चाक, मट्टी, डोरा

और दण्डा, यह चारों पात्रबनानेमें कारणहैं । परन्तु विना कुम्हारके पात्रको उत्पन्न नहीं करसकतेहैं, तैसेही रोगी, औषध और सेवक यह तीनों पाद विना वैद्यके फल देनेको समर्थ नहीं होते । इसकारण सब चिकित्सके पादोंमें प्रधान वैद्यहै । वैद्यशास्त्रमें प्रवीण, ज्ञानी और अनेक प्रकारके वैद्यकके कर्मोंको देखे हुएहों ऐसे वैद्यको वैद्य कहाहै । रोगका हेतु, रोगका लक्षण, रोगकी शान्ति और फिर रोगोंका उत्पन्न होना, यह चार प्रकारका रोगोंके विषयका ज्ञान जिसमें हो उसको राजार्हभिषक् अर्थात् राजवैद्य कहतेहैं ॥ विद्या, तर्क, ज्ञान, स्मृति, तत्परता और क्रिया, इन छेगुणोंसे युक्त वैद्य सर्व प्रकारके रोगियोंको सुख देनेवाला होता है । चारोंपादोंमें वैद्य प्रधानहै ॥ साध्य और असाध्य रोगको जानकर वैद्य चिकित्साकर्ममें प्रवृत्तहोवै तो निश्चय फलकी प्राप्ति अर्थात् रोगी आराम होजायगे ॥ और जो चिकित्सक असाध्यरोगीकी चिकित्सा करताहै । वह मदैव अल्पविद्या, अपयश, ग्लानि, लाजहीनता संग्रहको प्राप्त होता है । एकगति, नूतनता, उपद्रवहीनता, एकदोषसे रोगका उत्पन्न होना, रोगीका शरीर सर्वऔषधियोंके सहनेको समर्थ, और चारोंपादोंका होना यह सब रोगके मुखमाध्य लक्षण हैं । बुद्धिमान् चिकित्सक प्रथम विकारोंके लक्षणों को जानकर पश्चात् चिकित्सा करै ॥ जो वैद्य रोग और औषधिको नहीं जानता और चिकित्सा करने लगे तिसको सिद्धिकी प्राप्ति ईश्वराधीन जाननी । रोगोंको जाननेवाला और सर्वप्रकारकी औषधियोंमें प्रवीण और देश तथा कालको जाननेवाला ऐसा वैद्य निःसन्देह सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ऐसा चक्रमें लिखाहै १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ ज्वरचिकित्सामाह ।

पक्षाभिघातगलगंडगलग्रहाश्च
दण्डापतानकसमीरणशोणिताद्याः ।
इत्यामयाःस्युरपरत्रधनापहारा-
द्वर्बङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्ये ॥ २७ ॥
दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिहकर्मजास्ते

नोपक्रमेणभिषजामुपयांतिशान्तिम् ।
 दानैर्दयाभिरतिथिद्विजदेवतागो-
 गुर्वर्चनाप्रणतिभिश्चजपैस्तपोभिः ॥ २८ ॥
 इत्युक्तपुण्यनिचयैरुपचीयमाना
 प्राक्पापजायदिरुजःप्रशमंप्रयान्ति ॥ २९ ॥
 स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषै-
 रुपष्टुतैःखेपरितःस्वनद्धिः ।
 भवन्तियेप्राणभृतांविकारा-
 स्तेदोषजाभेषजसिद्धिसाध्याः ॥ ३० ॥
 दानादिभिःकर्मभिरोपधीभिःकर्मक्षयेदोषपरिक्षयेच ।
 सिध्यन्तियेयत्नवतांकथंचित्तेकर्मदोषेप्रभवाविकाराः ३१
 निवृत्तोऽपिमहाव्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना ।
 क्षीणेमंदीकृतेदोषेशोपःसूक्ष्मइवानलः ॥ ३२ ॥
 नास्तिरोगोविनादोषैर्यस्मात्कस्माच्चिकित्सकः ।
 अनुक्तमपिदोषाणांलिङ्गैर्व्याधिसमुच्चरेत् ॥ ३३ ॥
 वायुरायुर्बलंवायुर्धातावायुःशरीरिणाम् ।
 वायुर्विश्वमिदंसर्वप्रभुर्वायुश्चकीर्तितः ॥ ३४ ॥
 सर्वाहिचेष्टावातस्यसप्राणःप्राणिनांस्मृतः ।
 तेनैवजायतेरोगस्तेनचैवोपशाम्यति ॥ ३५ ॥
 पित्तादुष्मोष्मणःपक्तिर्नराणामुपजायते ।
 पित्तंचैवप्रकुपितंविकारान्कुरुतेबहून् ॥ ३६ ॥
 प्राकृतस्तुबलंश्लेष्मावेकृतोमलउच्यते ।
 जाठरोयःस्मृतःकायेसचपाप्मोपदिश्यते ॥ ३७ ॥
 एकःप्रकुपितोदोषःसर्वानेवप्रकोपयेत् ॥ ३८ ॥

अंगस्यगौरवमपाटवमन्तराग्ने-
 रुक्तेदिताचहृदयस्यमुखप्रसेकः ।
 आलस्यमास्यमधुरत्वमपाककण्डूः
 सापाण्डुतानयनयोरितिरोमहर्षः ॥ ३९ ॥
 प्रज्ञाश्रुतिर्वमथुवेपथुकाशनिद्रा-
 तन्द्रादयश्चुलुचुलायनमुल्बणच ।
 स्यादोष्ठकर्णरसनागलतालुमूल-
 घ्राणक्षेत्रवणशङ्कुलिकान्तरेषु ॥ ४० ॥
 श्लेष्मोद्भवेभवतिलिंगमिदं विकार-
 संसर्गजेषु च गदेषु भवेद्विदोषः ।
 जन्तोरिदं पवनपित्तकफप्रकोप-
 लिंगद्विदोषजरुजेप्रविभज्ययोज्यः ॥ ४१ ॥
 उद्देशमात्रमपिलक्षणमेतदुक्तं
 युक्त्याव्यनक्तिपवनादिगदांतराणाम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—पक्षाघात, गलगण्ड, गलग्रह, दण्डापतानक, और वातरक्त आदि रोग चोरी करनेसे, गुरुकी स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे, और ब्राह्मणादिको मारनेसे और दुष्टकर्म करनेसे उत्पन्न हुए यह सब केवल चिकित्सा करनेसेही शमन नहीं होते दान, दया, अतिथिपूजा, ब्राह्मणपूजा, देवपूजा, गौपूजा और गुरुकी पूजा और प्रणति तथा जप, तप आदि पुण्यकर्म करनेसे पूर्वोक्त रोग दूर होयें तौ उनको पापजरोग जानना. अपने कारणोंसे दूषित हुए, शरीरमें फैलेहुए वातादिसे उत्पन्न हुए रोग औषधिके द्वारा शान्त होनेसे वातादि दोषज, तथा दानादिकर्म और औषधके द्वारा दोष और कर्मका नाश होकर शान्त होनेसे कर्मजरोग कहेजातेहैं । क्षीण तथा दोषकी मंदताके होनेपर निवृत्त हुआ रोगभी अल्पकारणसेही फिर उत्पन्न होता है, जैसे अग्निका चैकाभी पवन और ईंधनके संयोगसे चैतन्य होताजाहै, तैसेही और दोषोंके कोष विना रोग नहीं उत्पन्न होताहै, इसकारण चतुरवैद्य प्रथम दोषोंके चिह्नोंसे रोगका निदान करे । आयु, स्वरूप और बलरूप

और प्राणियोंको जिलानेवाली, समस्त विश्व वायुमय, वायु प्रभुस्वरूप, वायुके द्वाराही संपूर्ण कार्य सिद्ध होतेहैं तथा प्राणियोंके प्राणरूप इसकारण वायुसे उत्पन्न हुए रोग वायुसे ही शमन होतेहैं । मनुष्योंके देहमें पित्तसे उष्णोष्णक्रिया पकती है और यही पित्त कुपित होनेपर अनेकप्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है । प्राकृत बल कफ कहाजाताहै और यही विकृत हुआ मल कहाजाताहै, इसलिये मनुष्योंके जो उदरमें मल है वह पापहै । एक दोषभी कुपित हुआ सब दोषोंको कुपित करदेवहै, और कुपित कफ प्राणियोंके देहमें अंगका भारीपन, जठराग्निकी मंदता, हृदयमें ग्लानि, मुखसे कफका गिरना, आलस्य, मुखमें मधुरता, अन्नका नहीं पचना, शरीरमें खुजलीका होना, नेत्रोंमें पीलापन, रोमावलीका खड़ाहोना, बुद्धिभ्रष्ट होजानी, वमन, कम्प, खाँसी, निद्रा और तन्द्राका उत्पन्न होना तथा ओष्ठ, जिह्वा, गल, तालूकीजड़, नाक, नेत्र, कान, और कनपटी इन अंगोंमें चुलचुलापनको उत्पन्न होना । यह सबलक्षण कफसे उत्पन्न हुए रोगोंमें होते हैं और दो दोषोंसे उत्पन्नहुए ज्वरादिरोगोंमें दो दोषोंके चिह्न उत्पन्न होते हैं और तीन दोषोंसे उत्पन्नहुए ज्वरादि रोगोंमें तीन दोषोंके चिह्न उत्पन्न होतेहैं । ऐसे उद्देशमात्र लक्षण कहते हैं । सुचिकित्सक युक्तिद्वारा भले प्रकार वातादिसे उत्पन्न हुए रोगोंका निर्णय करै ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

पित्तप्रावृषिचीयतेशरदिचप्राप्नोतिकोपंपुनः
शांतियातिहिमेकफस्यतुहिनेसञ्जायतेसंचयः ॥
कोपश्चास्यमधौप्रशान्तिरपिचग्रीष्मेसमीरःपुनः
ग्रीष्मेसंचितवान्प्रकुप्यति पयःकालेशरत्तंहरेत् ॥ ४३ ॥
वायुःपित्तकफश्चेतित्रयोदोषाःसमासतः ।
विकृताविकृतादेहंघ्नन्तिसंवर्त्तयन्तिच ॥ ४४ ॥
निसर्गादानविक्षेपैःसोमसूर्यानिल यथा ।
धारयन्तिजगदेहंकफपित्तानिलास्तथा ॥ ४५ ॥
विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वादन्यकोपनात् ।
स्वातंत्र्यद्विभुत्वाद्दोषाणांप्रभवोऽनिलः ॥ ४६ ॥

सर्वाहिचेष्टावातेनसप्राणःप्राणिनांमृतः ।
 पित्तंपङ्कुकफःपंगुःपङ्गवोमलधातवः ॥ ४७ ॥
 वायुनायत्रनीयन्तेतत्रवर्षन्तिमेघवत् ।
 शरीरेकर्मभिस्तैस्तैःपंचधातेपृथक्पृथक् ॥ ४८ ॥
 पक्काशयकटीसक्थिश्रोत्राक्षिस्पर्शनेन्द्रियम् ।
 स्थानंवातस्यतत्रापिपक्काधानंविशेषतः ॥ ४९ ॥
 स्थानंप्राणस्यमूर्द्धोरःकेचिजिह्वास्यनासिका ।
 घीवनंक्षवथूद्गारःश्वासहासादिकर्मच ॥ ५० ॥
 उरःस्थानमुदानस्यनासानाभिगलम्भवेत् ।
 वाक्प्रवृत्तिञ्चजनयेद्वलवर्णस्मृतिक्रियः ॥ ५१ ॥
 समानोऽग्निसमीपस्थःकोष्ठेचरतिसर्वतः ।
 अन्नंपचतिगृह्णातिविरेचयतिमुंचति ॥ ५२ ॥
 अपानोऽपानगःश्रोणिबस्तिमेद्रोरुगोचरः ।
 शुक्रार्तवशक्नुन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः ॥ ५३ ॥
 व्यानोहृदिस्थितःकृत्स्नदेहधारीमहाबलः ।
 गतिप्रक्षेपणाक्षेपनिमेषोन्मेषणादिकः ॥ ५४ ॥
 प्रायःसर्वाःक्रियास्तस्मिन्प्रतिबद्धाःशरीरिणाम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—पित्त प्रावृत्काल (वर्षाऋतु) में संचित होकर शरदऋतुमें कुपित होताहै, और शीतऋतुमें शान्त होताहै । कफ शिशिरऋतुमें संचित होकर वसन्तऋतुमें कुपित होताहै, और ग्रीष्मऋतुमें शांत होताहै । और वात ग्रीष्मऋतुमें संचित होकर वर्षाऋतुमें कुपित होतीहै, और शरत्कालमें शान्त होतीहै । वात, पित्त और कफ, यह तीनों दोष विकृत होनेसे देहको नष्ट करदेतेहैं, और अपनी प्रकृतिमें स्थित होनेपर शरीरकी रक्षा करतेहैं । जैसे—चन्द्रमा, सूर्य और वायु क्रमसे विसर्ग, आदान और विक्षेपके द्वारा जगत्को धारण कर रहेहैं, तैसे ही कफ, पित्त और वात यह तीनों मनुष्यके शरीरको धारण कर रहेहैं । सामर्थ्य, शीघ्रकारी, बलवान्, अन्यकोपनता, स्वतंत्र, और बहु वेगवाली होनेसे

वायु तीनों दोषोंमें प्रधानहै और सर्वप्रकारकी चेष्टा शरीरमें वायुसेही होतीहै।
तथा प्राणियोंके प्राणस्वरूप है ।

पित्त, कफ, मल, धातु, यह सब पंगुकी समान गमनकारणमें समर्थ नहीं हैं
इनको वायु जिसस्थानमें लेजातीहै उसी जगह मेघकी समान जातेहैं । वात,
पित्त और कफ यह त्रिदोष शरीरमें भिन्न भिन्न कर्मयुक्त पाँचविभागोंमें विभ
क्तहैं । पकाशय, कटि, सक्थि, कर्ण, चक्षु और चर्म इनमें रहतेहैं, किन्तु पका
शय इनका प्रधान स्थान जानना ।

प्राणवायु—मस्तक, वक्ष, जिह्वा, मुख और नासिकाओं रहतीहै, तथा छीवन,
हुचकी, उद्गार, श्वास और हास्यादि उसका कर्म है ।

उदानवायु—कक्ष, नासा, नाभि, और गलमें रहतीहै, तथा वाक्य, बल, वर्ण
और स्मृति उसका कार्यहै ।

समानवायु—जठराग्निके समीपमें बसती हुई कोठेके चारोंओर विचरतीहै ।
अन्नको पचवै, ग्रहण करे, विरेचन और त्यागकार्य करैहै ।

अपानवायु—गुह्यदेशमें बसतीहुई नितम्ब, बस्ति, मेढ्र (लिंग) और उरुदे-
शमें विचरती हुई शुक्र, आर्त्तव, विष्टा, मूत्र और गर्भको अधोनयन करैहै ।

महाबलवान् व्यान वायु—हृदयमें होकर समस्त शरीरमें चलाचलपूर्वक रक्षा
करके गति, प्रक्षेप, आक्षेप, निमेष और उन्मेषादि सर्वकर्मोंको सम्पादन
करतीहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥
॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

पित्ताग्निोष्मणःपक्तिर्नराणां प्रजायते ।

पित्तञ्चैवप्रकुपितं विकारान्कुरुतबहुन् ॥ ५६ ॥

दुस्पर्शनञ्चपित्तस्यस्थानं नाभिर्विशेषतः ।

पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टे पृथक्तथा ॥ ५७ ॥

तत्रस्थमेवपित्तानशिषाणामप्यनुग्रहः ।

ल्लोतेष्वलद नेन पाचकं भ्राजकं तथा ॥ ५८ ॥

प्राकृतरत्नबलं श्लेष्माविकृतो मल उच्यते ।

उरः कण्ठशिरः त्रैमपवाण्यामाश्चोत्सः ॥ ५९ ॥

मेनाप्राणञ्च जिह्वा च कफस्थानमुरः परम् ।

सचापिपंचधोरस्थःश्लेष्मणादिषुकर्मसु ॥ ६० ॥

कफधाम्लाञ्चशेषाणायत्करोत्यवलंबनम् ।

अतोऽवलंबनःश्लेष्मायश्चामाशयसंश्रयः ॥ ६१ ॥

उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टाधातुगतिःसमा ।

समोमोक्षोगतिमतावायोःकर्माविकारजम् ॥ ६२ ॥

दर्शनपंक्तिरूष्माचक्षुत्तृष्णादेहमार्दवम् ।

प्रभाप्रसादोमेधाचपित्तकर्माविकारजः ॥ ६३ ॥

स्नेहोबन्धःस्थिरत्वंचगौरवंवृषतावलम् ॥

क्षमाधृतिरलोभश्चकफकर्माविकारजः ॥ ६४ ॥

आममन्नरसंकेचित्केचिच्चमलसंचयम् ।

प्रथमदोषदुष्टञ्चआमइत्यभिधीयते ॥ ६५ ॥

अविपक्वंशकृदुष्टदुर्गन्धबहुपिच्छिलम् ।

सादनंसर्वगात्राणामामइत्यभिधीयते ॥ ६६ ॥

अर्थ—उष्णोष्मगुणयुक्तपित्तके द्वारा मनुष्यके शरीरमें अन्नआदि पचते हैं, और यही कुपित होनेपर नानाप्रकारके रोगोंको उत्पन्न करताहै, पित्तका स्थान दुस्पर्शन है, और विशेषकरके पित्त नाभिमेंही रहताहै । अन्नको पचाताहै, और अन्नकेसार तथा मैल अलग अलग करदेताहै । पाचक तथा भ्राजक पित्त अन्यान्यपित्तोंको अपना बल देकर सहाय देनेवालेहैं । प्राकृत बल कफ कहा-ताहै । और यही कफ विकृतहुआ मल कहाजाताहै । वक्ष, कण्ठ, मस्तक, ह्रोम, पर्वस्थान, आमाशय, रस, मेद, नासिका और जिह्वा यह एक एक कफका स्थानहै । तहाँ वक्ष इन सब स्थानोंमें प्रधानहै । वक्षस्थानोंमें पाँचप्रकारका वस-ताहुआ कफ शेषरहे कफके स्थानोंमें अवलंबन करताहै । उत्साह, उच्छ्वास, निश्वास, चेष्टा, धातुगति और मोक्ष यह सर्व निर्विकारवायुके कार्य हैं । निर्वि-कारपित्त—दर्शन, परिपाक, उष्मा, क्षुधा, तृष्णा, देहकी मृदुता, कान्ति, प्रस-न्नता और मेधाको करता रहताहै । स्नेह, बंध स्थिरता, गौरव, वृषता, बल, क्षमा, धृति और अलोभ यह सब निर्विकार कफके कार्य हैं । आमको कोई कोई वैद्य अन्नरस और कोईकोई मलसंचय कहते हैं । प्रथम आमको दोषदूषित तथा द्वितीयआमको अपक्व दुर्गंध दूषित बहुपिच्छिल सम्पूर्ण शरीरकी अवस-

नृताजनक मलको जानना ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥
॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

वायुःसामोविबद्धाग्निमान्द्यतंद्रान्त्रकूजनैः ।

वेदनाशोफनिस्तोदैःक्रमशोङ्गानिपीडयेत् ॥ ६७ ॥

विचरेद्युगपच्चापिगृह्णातिकुपितोभृशम् ।

स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायातिमेघेसूर्योदयेनिशि ॥ ६८ ॥

दुर्गन्धंहरितंश्यामंपीतमम्लंस्थिरंगुरुम् ।

अम्लिकाकण्ठहृदाहंसामंपित्तंविनिर्दिशेत् ॥ ६९ ॥

आताम्रंपीतमत्युष्णंरसेकटुकमस्थिरम् ।

पक्वंविबन्धंविज्ञेयंरुचिपक्तिबलप्रदम् ॥ ७० ॥

आविलस्तन्तुलःस्त्यानःकण्ठदेशेव्यवस्थितः ।

सामोबलासोदुर्गन्धःक्षुधोद्गारविघातकृत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—सामवायु-विबद्धता, मन्दाग्नि, तन्द्रा, अन्त्रकूजन, वेदना, सूजन, इन-
सबको उत्पन्नकर क्रमसे अंगोंको पीडित करे है, तथा एकसमयही अत्यन्त
कुपित होकर देहमें विचरण, ग्रहणादिकार्य करे है, वह स्नेहादिद्वारा मेघकाल,
सूर्योदय और रात्रिमें वृद्धिको प्राप्त होतीहै । दुर्गन्ध, हरित, श्याम, पीत,
अम्ल, स्थिर, गुरु, अम्लिका और कण्ठदाह तथा हृदयमें दाह उत्पन्नकरनेवाले
पित्तको सामपित्त कहते हैं । तथा ताँबेके रंगकी समान पीला, अत्यन्तगरम,
रसमें चरपरा, अस्थिर, विबन्ध, रुचि, पाक, और बलजनक पित्तको पक्वपित्त
कहतेहैं । आविल, तंतुल, स्त्यान, कण्ठस्थ, दुर्गन्ध तथा क्षुधा और डकारके
दूर करनेवालेको साम कफ कहते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

दिवास्वप्नंव्यवायंचव्यायामंशिशिरंजलम् ।

क्रोधप्रवातभोज्यानिकपायांश्चविवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

व्यायामाज्ज्वरसंवृद्धिर्व्यायामास्तम्भमूर्च्छनम् ।

मरणं नानतःस्नेहाच्छर्दिमूर्च्छामहारुचिः ॥ ७३ ॥

गुर्वन्नभोजनाच्चापिविष्टम्भोदोषकोपनः ।

शीतवारिकषायाश्चदोषविष्टम्भिनोऽहिताः ॥ ७४ ॥

अग्निसादःखरत्वञ्चस्रोतसाञ्चाप्रवर्तनम् ।
 तस्मान्नवज्वरीसर्वान्विषवत्परिवर्जयेत् ॥ ७५ ॥
 स्वधातुदौर्भ्यनिमित्तजाये
 विकारसंहारहराःशरीरे ।
 नतेपृथक्पित्तकफानिलेभ्य
 आगन्तवस्तेतुततोऽवशिष्टाः ॥ ७६ ॥
 देशकालवयोवह्निसात्म्यप्रकृतिभेषजम् ।
 देहसञ्चललब्धधीन्द्रष्टाकर्मसमाचरेत् ॥ ७७ ॥
 नाभिरोजोगुदंशुकंशोणितंशंखकौतथा ।
 मूर्ध्नाऽऽङ्गुष्ठहृदयं प्राणस्यायतनं दश ॥ ७८ ॥
 ज्वरितोहितमश्रीयादेनतस्यबलंभवेत् ।
 बलमायुर्बलंलक्ष्मीर्बलायत्तंहिजीवनम् ॥ ७९ ॥
 नलेप्रतिष्ठितं कर्म तस्माद्रक्षेद्बलं बुधः ।
 मनःप्रियंप्रदातव्यंहितंत्यक्तातदिच्छया ॥ ८० ॥
 हितभेषजप्रदातव्यमहितं व्यपदेशकृत ।
 संशोधयतियदोषान्समादीरयत्यपि ॥ ८१ ॥
 समीकरोतिसंज्ञांस्तत्संशमनमुच्यते ।
 तच्चनित्यंप्रयुंजीतस्वास्थ्यं येनोपपद्यते ॥ ८२ ॥
 अजतानां विकाराणामुत्पत्तिकरंचयत् ।
 संचयंचप्रकोपंचप्रशमंकालसंश्रयम् ॥ ८३ ॥
 व्यक्तिभेदश्चोषाणां योवैवेत्तिसर्वैर्भिषक् ॥ ८४ ॥

अर्थ—दिनमें सोना, मैथुन, व्यायाम (कसरत) शीतलजल, क्रोध, पवनका सेवन, भारीअन्न, और कषाय, यह सब नवीनज्वरमें त्यागदेवै; कारण यहहै कि—व्यायाम करनेसे ज्वरकी वृद्धि होतीहै, मैथुन करनेसे स्तम्भ, मूर्च्छा और मरण होताहै, स्नेहपान करनेसे वमन मूर्च्छा और अरुचि उत्पन्न होतीहै, भारी अन्न सेवन करनेसे विष्टम्भ और दोषोंका कोप होताहै, शीतलजल

और कषाय सेवन करनेसे विष्टंभ दोष, मंदाग्नि, ज्वरका तीक्ष्णवेग, शरीरमें जड़ता और स्रोत बन्द हो जलतेहैं, इस कारण नवीनज्वरवाला इनसबको त्याग देवै, अपने धातुओंकी विषमताके निमित्तसे जो शरीरमें विकार उत्पन्न होते हैं, वह पित्त, कफ, और वातसे पृथक् नहीं होते हैं इनसे अवशिष्ट रहे रोगोंको आगन्तुक रोग कहते हैं । देश, काल, अवस्था, अग्नि सात्म्य, प्रकृति, देह, सत्त्व, बल, और व्याधि इन सबको भले प्रकारसे विचार कर वैद्य चिकित्सा करे । नाभि, ओज, गुह्य, शुक्र, रुधिर, कनपटी, मस्तक, कटि, कण्ठ और हृदय यह प्राणोंके रहनेके दश स्थानहैं । ज्वरवाला मनुष्य हितकारकद्रव्योंको सेवन करता रहे जिससे उसके शरीरमें बल बना-रहे, क्योंकि बलही आयुहै, बलही लक्ष्मीहै, बलही जीवनहै, और सर्व कार्योंका आधारस्वरूपहै, इसकारण बुद्धिमान् मनुष्य बड़े यत्नांसे बलकी रक्षा करता रहे । जो द्रव्य रोगीको प्रियहो और हितकारकहो, वह द्रव्य रोगीको देवै, किन्तु अहितकारक द्रव्य कभी रोगीको न देवै, जो औषध त्रिदोषको संशोधित करे, समदोषको उदीरण करे और कुपितदोषोंको शान्त करनीहै, उसको संशमन औषधि कहतेहैं । यह नित्यप्रति रोगीको देनी चाहिये, इससे रोगीके आरोग्य उत्पन्न होताहै जो विकारोंकी उत्पत्तिको नहीं होनेदेवै तथा दोषोंका संचय, प्रकोप, शमन, कालसंश्रय, दोषोंका विभाग इनको जाने वह उत्तम भिषक् कहा जाताहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अस्थिचर्मनखमांसरोमाणिषृथिवीगुणाः ।

शुक्रशोणितमूत्रञ्चमज्जामेदःपयोगुणाः ॥ ८५ ॥

तेजसस्तृद्धृधानिद्राआलस्यमैथुनंगुणाः ।

प्रसाराञ्चनस्तम्भबन्धनञ्चावरोधनम् ॥ ८६ ॥

पाण्डुरोगाःखस्यकामःक्रोधलोभौसमोहकौ ।

रूपञ्चैतैपंचपंचपंचानांपरिकीर्तिताः ॥ ८७ ॥

आजा-प्रातःपृथ्वीआनाभिजानुतो जलः ।

नाभेराहृदयंतेजआध्र णहृदयान्मरुत् ॥ ८८ ॥

आमस्तंघ्राणतःस्वर्गमित्येषंस्थानपंचकम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—अस्थि, चर्म, नख, मांस और रोम, यह पृथिवीके गुण हैं । शुक्र, रुधिर, मूत्र, मज्जा और मेद यह सब जलके गुण हैं । तृष्णा, क्षुधा, निद्रा, आलस्य और मैथुन यह सब तेजके गुण हैं । प्रसारण, आकुञ्चन, स्तम्भन, बन्धन और अवरोधन, यह सब वायुके गुण हैं, और काम, क्रोध, लोभ, मोह और रूप, यह सब आकाशके गुण हैं, इस प्रकार पंचभूतोंके यह पांच पांच गुण जानने ।

पृथिवी पांवसे लेकर घुटनों पर्यन्त, जल घुटनोंसे लेकर नाभिपर्यन्त, अग्नि नाभिसे लेकर हृदयपर्यन्त, वायु हृदयसे लेकर नासिकापर्यन्त, और आकाश नासिकासे लेकर मस्तकपर्यन्त रहता है । इसप्रकार पाँच तत्त्वोंके पाँच स्थान शरीरमें कहे हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

गुडूचीनागरकाथंसमभागंविपाचयेत् ।

एवञ्चपाचनंकुर्यात्पिबेयुस्तरुणज्वरे ॥ ९० ॥

रोगराट्सर्वभूतानामन्तकृद्दारुणोज्वरः ।

तस्माद्विशेषतस्तस्यप्रशान्तौयत्नमाचरेत् ॥ ९१ ॥

देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगवरोबली ।

ज्वरःप्रधानंरोगाणामुक्तोभगवतापुरा ॥ ९२ ॥

जन्मादौनिधनेचायंभवतीहनसंशयः ।

अतःसर्वविकाराणांज्वरोराजाप्रकीर्तितः ॥ ९३ ॥

ज्वरेलंघनमेवादाबुपदिष्टमृतेज्वरात् ।

क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ ९४ ॥

क्षयोधातुक्षयोयक्ष्माक्षयात्प्रकुपितोऽनिलः ।

उष्णपित्तंयथासामंलंघनेनविपच्यते ॥ ९५ ॥

आमक्षयात्प्रशमितोवायुर्नसहतेक्षणम् ।

आमाशयस्थोद्धृत्वाग्निंसामोमार्गान्निषाधयन् ॥ ९६ ॥

निदधातिज्वरंदोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ।

अनवस्थितदोषाग्नेलंघनंदोषपाचनम् ॥ ९७ ॥

ज्वरघ्नदीपनंकांक्षारुचिलाघवकारकम् ।

प्राणाविरोधिनाचैनंलंघनेनोपपादयेत् ॥ ९८ ॥

बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोयंक्रियाक्रमः ।

तच्चमारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ॥ ९९ ॥

कार्यनबालेवृद्धेवानगुर्विण्यांनदुर्बले ।

वातमूत्रपूरीषाणांविसर्गेगात्रलाघवे ॥ १०० ॥

हृदयोद्धारकण्ठस्यशुद्धौतंद्राकुमेगते ।

स्वेदेजातेरुचौचापिक्षुत्पिपासासहोदये ॥ १०१ ॥

कृतंलंघनमादेश्यनिर्व्यथेचान्तरात्मानि ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकासःशोषोमुखस्यच ॥ १०२ ॥

क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णादौर्बल्यंश्रोत्रनेत्रयोः ।

मनसःसम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्द्धवातस्तमोहदि ॥ १०३ ॥

देहाग्निबलहानिश्चलंघनेऽतिकृतेभवेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ—गिलोय और सोंटको समान भाग लेकर काढा बनाने, यह पाचन तरुणज्वरमें पीनेमें आमदोषका परिपाक होताहै । ज्वर सबरोगोंका राजा, सर्व प्राणियोंके प्राणोंको हरनेवाला और अत्यंत भयानक है, इसकारण अनेक यत्नोंमें ज्वरके शान्तहोनेकी चेष्टा करनी चाहियें । ज्वर देह, इन्द्रिय और मनको तपानेवालाहै और सर्वरोगोंका राजा बलवान् तथा सर्व रोगोंमें श्रेष्ठ, ऐसे पूर्वकालमें भगवान्ने कहाहै । प्राणियोंके जन्मकी आदि और मरणसमयमें निश्चय ज्वर उत्पन्न होताहै, इसकारण सर्वरोगोंका राजा ज्वर कहाहै । क्षय, वात, भय, क्रोध, काम, शोक और श्रम इन सबको छोड़कर अन्यकारणोंमें उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम लंघन कराने चाहियें । क्षयशब्दका अर्थ यहाँ धातुक्षय और यक्ष्मारोगका है, इस क्षयमें वायु अन्यन्त कुपित होतीहै । उष्ण आमसहित पित्त लंघन करनेसे पकजाताहै, आमके नाश होनेपर वायु शान्त होजातीहै, और रोगी क्षणभरभी क्षुधाको नहीं सहन करसक्ताहै । आमाशयमें स्थित हुआ आमदोष अग्निको नष्ट करके सोतोंको आच्छादनकर रोगोंको उत्पन्न करताहै, इसकारण ज्वरमें प्रथम लंघन कराना चाहिये । जिनके वातादि दोष और अग्नि यथास्थलमें अवस्थित नहींहै, उनको लंघन दोषोंको पचानेवाला, ज्वरको हरनेवाला, अग्निप्रदीपक और रुचि तथा देहकी लघुताकारक होताहै ।

इसप्रकार लंघन करावै कि जिससे मनुष्य निर्बल न होय, क्योंकि बल आरोग्य-
का प्रधान आश्रय है, जिसके लिये यह क्रियाक्रम कहा है। वात, क्षुधा, तृषा, मुख-
शोष और भ्रमयुक्त मनुष्य, तथा बालक, वृद्ध, गर्भवती, और दुर्बलमनुष्यको
कभीभी लंघन नहीं कराने चाहियें। अधोवात, मूत्र, विष्टा इन सबके त्यागमें,
शरीरकी लघुतामें, हृदय, डकार, कंठ और मुखकी शुद्धि, तन्द्रा, ग्लानि, पसीना,
रुचि इनमें क्षुधा और तृषा यह एकवार उत्पन्न होवे इन सबमें लंघन कराना
चाहिये और अन्तरात्मा वेदनारहित होनेपर लंघन कराने योग्य है। पर्वभेद
कास, अंगमर्द, मुखशोष, क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, कर्ण और नेत्रोंकी दुर्ब-
लता, बारबार मनमें भ्रम, अत्यन्तडकार, अंधकारदर्शन, देह, अग्नि और बल-
हानि यह सब अत्यंत लंघनकरनेसे उत्पन्न होते हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥
॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥
॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

सद्योभुक्तस्यवाजातोज्वरेसन्तर्पणोत्थिते ।

वमनं वमनार्हस्यशस्तमित्याहवाग्भटः ॥ १०५ ॥

कफप्रधानानुत्किष्टान्दोषानामाशयस्थितान् ।

बुद्धाज्वरकरान्कालेवम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ १०६ ॥

उत्किष्टानिति उपस्थितवमने

उद्युक्तान् वमनैर्वमनाध्यायोक्तैः ॥ १०७ ॥

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे ।

हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च कुरुते भृशम् ॥ १०८ ॥

तृप्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातज्वरे ।

मद्योत्थे पैत्तिके वाथशीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥ १०९ ॥

दीपनपाचनं चैव ज्वरघ्नमुभयञ्च यत् ।

स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ ११० ॥

अविरेच्या बालवृद्धश्रान्तभीरुनवज्वराः ।

तथाभ्यामेव योगाभ्यां कषायं पिप्पली बलाम् ॥ १११ ॥

शृतशीतां पिबेच्चापि त्रिवृच्चूर्णावच्चार्णिताम् ।

आमेज्जरेकफेरक्तेएतत्संसनमुच्यते ॥ ११२ ॥

यवक्षारान्वितोयद्वाक्काथोधान्यपटोलयोः ॥ ११३ ॥

अर्थ—तत्काल भोजन करनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें और सन्तर्पणसे उत्पन्न हुए ज्वरमें वमन करने योग्य मनुष्यको वमन करानी चाहिये, यह वाग्भट आचार्य-का मत है । कफप्रधान, और अत्यन्त क्लेशकारक अर्थात् जिनसे वमन होनेकोहो, आमाशयमें स्थित ज्वरकारक दोषोंमें वमनयोग्य मनुष्यको वमनकारक औष-धिको सेवन कराय दोषोंको दूर करै । तरुणज्वरमें निर्दोषमनुष्यको वमन करावै तो हृदयरोग, श्वास, आनाह और मोह उत्पन्न होयहै, ज्वरगोरीको तृष्णा होवै तो कफज्वरमें गरम और पित्तज्वरमें तथा मद्यपानजनकज्वरमें कड़वी औषधियोंके रसके साथ औंटे हुए जलको शीतल कर पीनेको देवे, यह दोनों जलकी विधि—अग्निदीपक, पाचक, ज्वरनाशक, स्रोतोविशोधक, बलकारक तथा रुचि और पसी-नेको उत्पन्न करैहै । बालक, वृद्ध, श्रान्त, भीरु और नवीनज्वरवाले मनुष्यको कभी भी विरेचन नहीं करवे । कफ और रक्त सहित आमज्वरमें पीपल और खैरटीका काढ़ा शीतलकर उममें निसोतका चूर्ण मिलाकर पीवे, यह संसन है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

औषधंहेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितम् ।

पिवेत्प्रसन्नवद्भक्त्यापीत्वापात्रमधोमुखम् ॥ ११४ ॥

निक्षिप्यचाननेतस्यताम्बूलानुप्रयोजयेत् ।

ॐ ह्रीं ह्रीं विद्युताननद्वंद्वं फट् स्वाहा ॥ ११५ ॥

एतन्मंत्रं तालुस्थाने चूर्णमृक्षितेलिखित्वादिन-

त्रयं खादितं देयं ज्वरोपशमनं भवति ।

ॐ ब्रह्मरुद्रप्रभुर्मुन्दविष्णुवायुहुताशनाः ।

रक्षन्तु ज्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च इमं तथा ॥ ११६ ॥

ग्रहे स्वाहा ।

अनेन सर्पपंमंत्रयित्वानिर्मुञ्चयेत् ।

ओं ह्रीं ह्रीं हुं फट् स्वाहा ।

अनेननिर्गुण्डीपत्रचूर्णधूपंदद्यात् ।

विषमज्वरोनश्यतिडाकिन्यादयोनप्रभवन्ति ।

कृष्णाम्बरदृढाबद्धगुग्गुलूलूकपुच्छजः ॥

धूपश्चातुर्थिकंहन्तितमःसूर्योदयेयथा ॥ ११७ ॥

केशराजभृंगराजरसेनवस्त्रकृष्णंविधाय ।

तेनापिगुग्गुलुपेचकपुच्छपक्षंबद्धाधूपः ॥ ११८ ॥

ब्रह्मात्वमेवविष्णुश्चरुद्रस्त्वंसहदुर्गया ।

आर्तस्यरोगनाशायप्रत्यक्षोभवपावकः ॥ ११९ ॥

अनेनधूपयेत् ।

अगस्त्यपुष्पस्वरसेननस्यं

निहन्तिचातुर्थिकमुग्रवीर्यम् ॥ १२० ॥

अगस्त्यपुष्पंवाक्साना ।

कर्मसाधारणंकुर्यात्तृतीयकचतुर्थके ।

प्रायशःसन्निपातेनदृष्टःपंचविधोज्वरः ॥ १२१ ॥

आगन्तोरनुबन्धोहिप्रायशोविषमज्वरः ।

सन्निपातेततोभूयान्नदोषःपरिकीर्तितः ॥ १२२ ॥

ज्वराःपंचमयोक्तायेपूर्वसन्ततकादयः ।

चत्वारःसन्ततंहित्वाज्ञेयास्तेविषमज्वराः ॥ १२३ ॥

इदं ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—औषधिकां सुवर्णके वरतनमें वा चाँदीके वरतनमें, अथवा मट्टीके वरतनमें करके प्रसन्नमनसे भक्तिपूर्वक पीकर वरतनको उलटा करके गेर देवै, और फिर पान भक्षण करे । (ओं हीं हीं विद्युतानन हं हं फट् स्वाहा) इस मंत्रको चूरनकी टिकियापै लिख रोगीके तालूपै धरदेवै, इस प्रकार तीनदिन इस मंत्रको लिखकर उस टिकियाको पकाकर खवानेसे ज्वर शान्त होताहै । (ओं ब्रह्मरुद्रप्रभुर्मुन्दविष्णुवायुदुताशनाः । रक्षन्तु ज्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च इमं तथा ॥ ग्रहे स्वाहा) इस मंत्रसे सरसोंको पढ़कर रोगीके चारों-

और बखैरे, फिर (ओं हीं हीं हुं 'फद स्वाहा) इस मंत्रको पढ़कर सम्हा-
लके पत्तोंके चूर्णकी धूप रोगीके देहमें देवै, इससे विषमज्वर और डाकिनी
आदिग्रह दूर होतेहैं ।

कालेवस्त्रमें गृगल और उल्लूके पंखको खंचकर बाँध धूपदेनेसे चातुर्थिक
(चौथिया) ज्वर नष्ट होताहै । जैसे सूर्योदयमें अंधकार दूर होताहै । कुकुर-
भाँगरा और, भाँगरा इनके रसमें वस्त्रको कालाकर उस वस्त्रमें उल्लूके पंख
और गृगलको दृढ़ बाँधकर (ब्रह्मा त्वमेव विष्णुश्च रुद्रस्त्वं सह दुर्गया । आर्त्त-
स्य रोगनाशाय प्रत्यक्षो भव पावकः॥) इसमंत्रको पढ़ धूपदेनेसे अथवा अग-
स्तियाके फूलोंके रसका नास देनेसे चातुर्थिक ज्वर नष्ट होताहै । तृतीयक और
चातुर्थिकज्वरमें साधारण चिकित्सा करनी चाहिये । विषमज्वरमें प्रायः
आगन्तुकज्वरका अनुबन्ध होताहै । संततकादि पाँचप्रकारके ज्वरोंमें त्रिदो-
षका संस्रव होताहै, और उनमें सन्ततको छोड़ और चारप्रकारके ज्वरोंको
विषमज्वर कहतेहैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥
॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अथ रसरत्नाकरोक्तं यथा ।

कुर्याद्भूतज्वरेनस्यंव्योपाम्बुतुलसीरसैः ।

गोपालपुत्रिकामूलंसहदेवीबलाथवा ॥ १२४ ॥

गलेबद्धाज्वरंहन्तिविष्णुकान्ताथकर्णयोः ।

सूर्यावर्तस्यमूलन्तुकर्णेभूतज्वरापहम् ॥ १२५ ॥

कर्कटस्यरसेभूतमृदातुतैलकेकृते ।

एकाहिकंज्वरंहन्तिनस्येनगिरिकर्णिका ॥ १२६ ॥

भूतकर्कटधूपेन सद्यः शीतज्वरं हरेत् ।

काकमाच्याश्च मूलं तु कर्णे बद्धं निशिज्वरम् ॥ १२७ ॥

निहन्तिनात्रसंदेहोयथामूर्यादयेतमः ।

श्मशानसहदेव्यावादूर्वायावाथमूलिका ॥ १२८ ॥

सूत्रेणवेष्टिताबद्धाहस्तेसर्वज्वरापहा ।

वृक्षेपुनर्वसौग्राह्यामन्दारस्यचबन्धकम् ॥ १२९ ॥

तदक्षिणकरेबद्धंशीतज्वरहरंपरम् ।

चन्द्रस्यग्रहणेग्राह्यासर्पाक्ष्यामंत्रिताशिफा ॥ १३० ॥

वामेकरेचतांबद्धाकृष्णसूत्रैर्ज्वरं हरेत् ।

तामेवबन्धयेत्कर्णेकृष्णसूत्रेणदक्षिणे ॥ १३१ ॥

त्र्याहिकंतुज्वरं हन्तिनामकार्याविचारणा ।

ऊर्णनाभस्यजालेनवार्तिकृत्वाप्रयत्नतः ॥ १३२ ॥

क्षालयेत्तिलतैलेनकज्जलंग्राहयेच्छनैः ।

अञ्जयेन्नेत्रयुगलंत्र्याहिकन्तुज्वरं हरेत् ॥ १३३ ॥

श्मशानजातसर्पाक्ष्यारवौमूलंसमुद्धरेत् ।

घृतैःपिष्ट्वाललाटेपुतिलकरुयाहिकप्रणुत् ॥ १३४ ॥

अपामार्गस्यमूलन्तुःप्येचातुर्थिकप्रणुत् ।

बृहत्पौचापिपुष्येणसमुद्धृत्यतुमूलिकाम् ॥ १३५ ॥

धूपाच्चातुर्थिकंहन्तिवासागोपालपुत्रिका ।

श्वेतार्ककरवीरस्यअश्विन्यामूलमुद्धरेत् ॥ १३६ ॥

तण्डुलोदकपानेनपृथक्चातुर्थनाशनम् ।

त्रिवन्यायाश्चमूलन्तुःसमायुतम् ॥ १३७ ॥

चातुर्थिकंज्वरंहन्तितत्क्षणाद्भूपनाज्ज्वरः ।

चन्द्रस्यग्रहणेग्राह्यासर्पाक्ष्याश्चमूलिका ॥ १३८ ॥

अन्तर्धूमेनसादग्धाच्छागीमूत्रेणचाञ्जनम् ।

चातुर्थिकहराश्रेष्ठासद्यःप्रत्ययकारिणः ॥ १३९ ॥

अर्थ-त्रिकुटेके काढें तुलसीका रस मिलाकर नास देनेसे भूतज्वर शान्त होताहै । गोपालककडी पियाबाँसा वा खिरौंटीकी जडको गलेमें अथवा अपराजिता वा सूर्यावर्तकी जडको कानमें बाँधनेसे भूतज्वर नष्ट होताहै । केकडाजन्तुके रसमें तेलको पकाकर नास लेनेसे, अथवा कोयलीके रसके द्वारा नास लेनेसे ऐकाहिकज्वर दूर होताहै, केकडा जन्तुके मांसके द्वारा धूप देनेसे तत्काल शीतज्वर नाश होताहै । और मकोयकी जडको कानमें बाँधनेसे रात्रिज्वर दूर

होताहै । श्मशानभूमिमें उत्पन्न हुई सहदेवी अथवा दूबकी जड़को सूतके द्वारा हाथमें बाँधनेसे सर्व ज्वर नष्ट होतेहैं । पुनर्वसुनक्षत्रमें मन्दारकी शिफा लाकर दाहिने हाथमें बाँधनेसे शीतज्वर शमन होताहै । चन्द्रग्रहणके समय मंत्रपाठपूर्वक सर्पाक्षीकी जड़को ले सूतसे बांधे हाथमें बांधनेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होतेहैं, और दाहिने कानपै बांधनेसे तृतीयक ज्वर शान्त होताहै । मकड़ीके जालेकी बत्ती बनाकर तिलके तेलमें भिजो दीपकमें जला कज्जल ग्रहणकरै, फिर इस कज्जलको दोनों नेत्रोंमें लगावै तो व्याहिक ज्वर दूर होजाताहै । रविवारके दिन श्मशानभूमिमें उत्पन्न हुई सर्पाक्षीकी जड़को उखाडलेवै, फिर उसको घीके साथ पीसकर ललाटमें तिलक लगानेसे व्याहिकज्वर शांत होताहै । चिरचिटेकी जड़को पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर हाथपै बांधनेसे चातुर्थिकज्वर नष्ट होताहै । बृहती कटेरी अथवा गोपालकाकडीकी जड़को पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर धूपदेनेसे चातुर्थिकज्वर नाश होता है । सफेद आक और कनेरकी जड़को अश्विनीनक्षत्रमें उखाडकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे चातुर्थिक ज्वर दूर होवै । त्रिशुनीकी जड़को छुछुन्दरीके साथ धूप देनेसे चातुर्थिक ज्वर दूर होताहै । चन्द्रग्रहणमें सर्पाक्षीकी जड़को उखाडकर इसप्रकार जलावै कि—जिससे उसमें धुआँ न निकले, फिर उसको बकरीके मूत्रमें घिस अंजन लगावै तो चातुर्थिकज्वर शीघ्रही शांत होजाता है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

हंर्द्वाह्निफःन्द्रूफट्टनमः ।

अनेनउलूकादि सर्वेयोगाअष्टोत्तरशत-

मंत्रितेनसिद्धिःऔषधोत्पाटनमाह ।

स्वभावारण्यएकान्तेप्रभातेमंत्रयुक्तिः ।

संग्राह्यमौषधंसिद्धिनोचेद्भवतिकाष्ठवत् ॥ १४० ॥

ओंनमस्तेऽमृतसंभवेरसवीर्यविवर्द्धिनि ।

बलमारश्ममेदेहिप्राणमेजहिदूरतः ॥ १४१ ॥

येनत्वांखनतेब्रह्मायेनत्वांखनतेभृगुः ।

येनवेन्दोऽथवाणस्तेनत्वामुपचक्रमे ॥ १४२ ॥

तेनाहंखनयिष्यामिमंत्रपूतेनपाणिना ।

ओंआतप्तेतेमात्रियतेतेजोवीर्योऽन्यथाभवेत् ॥ १४३ ॥

अत्रैवातिष्ठकल्याणि ममकार्यकरीभव ।

ममकार्यभूतेसिद्धेततःस्वर्गेगमिष्यासि ॥ १४४ ॥

ॐ ह्रींचण्डेन्द्रंफट्स्वाहा ।

अनेनमंत्रेणनाणुसंयुतमातपेत्रिदिनंशुष्कं

निहितंवीर्यधृग्भवेत् ।

अर्कपुष्येसर्वाऔषध्यउत्पाट्यन्ते ।

उत्पाटितेसतिमूलिकायांछेदनबन्धनमाह ।

ओंरक्तेचामुण्डेओरुओरुअमुकस्यसर्वज्वरं

कचेवत्वंद्रुंफट्स्वाहा ।

अनेनमंत्रेणमूलिकाछेदनं क्रियते ।

अपरमंत्रेणवेष्टयित्वाउक्तस्थानेबंधयेत् ॥

मण्डूरंदेवदारुश्चनरविष्ठातुकुंकुमम् ॥

नरकेशसमायुक्तंधूपज्वरविनाशनम् ॥ १४५ ॥

उलूकस्यतुपक्षाणिमहिषाक्षन्तुगुगुलुम् ।

ज्वरार्तधूपयेत्तेनछादितंकृष्णकम्बलैः ॥ १४६ ॥

इमंमंत्रंपठेद्यस्तुज्वरंसर्वहरेत्परम् ॥ १४७ ॥

ओंनमोभगवतेरुद्रायओंक्षिप्रकारिणिकपालमालिनि

जटिलेदुर्गन्धर्धानखश्मश्रुरोमविकटाननधारिणि

ज्वरमैकाहिकंद्वयाहिकंत्रयाहिकंचातुर्थिकंमौहूर्तिकं

दिनज्वरंसन्ध्याज्वरंसर्वेषांनराणाम् उत्सादयउत्सा-

दयआरोग्यकरीभगवतीसर्वदेतिस्वाहा ।

अनेनमंत्रेणसर्वधूपादेयाः ।

मूषिकस्यपुरीषेणतथाचर्मचटस्यतु ।

सर्षपामहिषाक्षश्चमन्त्रैर्धूपोज्वरापहः ॥ १४८ ॥

ओंपित्तज्वरवातज्वरकफज्वराथब्रह्मज्वरमाहन्द्वाज्वरा-
मजातज्वरसह पातालजा श्रीराम तोहाकारे हञ्जसि-
द्धिगुरुरूपा ।

अनेनमंत्रेणमार्जयेदिति ।

अथ ज्वरपत्रिका यथा ।

ओंज्वरहृदयज्वरमार्त्तयिष्यामि ।

भोभोज्वरशृणुशृणुहनहनगर्जगर्जत्रैकाहिकं
द्वयाहिकं त्रयाहिकं चातुर्थिकं साप्ताहिकमर्द्धमासि-
कैर्नैमिषिकमटपटन्दुंफट्चक्रपाणिराज्ञापयति
ओंधृष्टशिवोमुञ्चवाटुंमुञ्चकचंमुञ्चउरुमुञ्च
कटिमुञ्चजंवांमुञ्चपादंमुञ्चभूम्यांगच्छस्वाहा ।
शृणुशृणुवज्रपाणिराज्ञापयति ।

अमुकस्यज्वरंहनहनदुंफट्स्वाहा ।

एतदलक्तकेनपत्रिकांलिखित्वाचाण्डालप्रोत्सा-
दनंविधायबलिपूर्वकंसवस्त्रंशिरसिबद्धादक्षिण-
स्यांदिशिप्रस्थापयेदिति ॥

ओंह्रींसःअमृतंकुरुअमृतेश्वरभैरवायनमः ।

अनेनसप्ताभिमंत्रितंकृत्वासर्वरोगाययोज्यम् ॥

तुल्यांशंचूर्णयेत्खल्वेपिप्पलीहिङ्गुलंविषम् ।

त्रिगुंजंमधुनापेयंवातज्वरविनाशनम् ॥ १४९ ॥

भोजनान्तेज्वरेजातेकुर्यात्पूर्वामिवक्रियाम् ।

दिनान्तेदापयेत्पथ्यंसज्वरेविज्वरेऽपिच ॥ १५० ॥

मुस्तपर्पटमेरण्डकपायैर्भस्मसूतकम् ।

गुंजमात्रमूर्च्छितंवादेयंवातज्वरापहम् ॥ १५१ ॥

अर्थ—(ओं हीं हीं फः न्दूं फद् नमः) इसमंत्रको एकसौआठवार पढ़नेसे सम्पूर्ण उल्लासियोग सिद्ध होजातेहैं । स्वभावसे अरण्याके एकान्तमें प्रभातके समय जाकर मंत्रयुक्तिके साथ औषधको ग्रहणकरै, इसप्रकार करनेसे सिद्धि होती है, नहीं तो औषधि काठके समान जाननी । 'ओं नमस्तेऽमृतसंभवे' इत्यादि । इस मंत्रको पढ़कर औषधिको उखाड़ लावै, फिर तीन दिन धूपमें सुखानेसे अत्यन्तवीर्यधारक होजातीहै । सर्वप्रकारकी औषधि पुण्यार्कनक्षत्रमें उखाड़नी चाहिये । आगे औषधिका मूलच्छेदन और बंध कहते हैं । ' ओं रक्ते चामुण्डे ओरु ओरु अमुकस्य सर्वज्वरं कचेवत्वं दूं फद् स्वाहा ' इसमंत्रको पढ़ कर औषधिका मूल छेदन करे और दूसरे मंत्रसे उक्तस्थानमें बाँधे, मण्डूर, देव दारु, नरविष्टा, केशर और मनुष्यके बाल इनसबको एकत्र करके धूपदेनेसे अथवा उल्लूके पंख और महिषाक्ष गूगलको काले कम्बलमें बाँधकर धूपदेनेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होते हैं । ' ओं नमो भगवते रुद्राय ' इत्यादि । इस मंत्रको पढ़कर सर्व प्रकारकी धूप देनी चाहिये । चूहे और चिमगादरकी विष्टा, सरसों और महिषाक्षगूगल, इन सबकी धूप देवैतो सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवें । ' ओं पित्त ज्वरवातज्वर कफज्वराथ० ' इत्यादि । इसमंत्रके द्वारा मार्जन करै । ' ओं ज्वर हृदय ' इत्यादि । इस मंत्रकी लाखसे पत्री लिखकर बालिदानपूर्वक चण्डालप्रोच्छादन विधानकर रोगीके मस्तकमें बाँध दक्षिण दिशामें स्थापन करनेसे ज्वर दूर होजाताहै । ' ओं हीं सः अमृतं कुरु अमृतेश्वर० ' इत्यादि । इस मंत्रसे औषधिको सातबार पढ़कर सबरोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये । पीपल, सिंग्रफ और विष इन सबको समान भाग लेकर खरलसे पीस तीन रत्ती प्रमाण दहीके पानीके साथ सेवन करै तो वातज्वर नष्ट होय । भोजनके अन्तमें ज्वर होवै तो पूर्वोक्तक्रिया करनी चाहिये । ज्वरयुक्त अथवा विनाही ज्वरवाले मनुष्यको दिनान्तमें पथ्य सेवनकरना चाहिये । नागरमोथा, पित्तपापड़ा, और अरंड इनका काढ़ा बना उसमें मूर्च्छित पाराकी भस्म एकरत्ती प्रमाण मिलाकर सेवन करनेसे वातज्वर नाश होताहै ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥ १५१ ॥

शुद्धसूतद्विधागंधंमरिचदंगणन्तथा ।

तुल्यं च सितायोज्य मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ १५२ ॥

त्रिदिनं मर्दयेत्तैलस्य अन्नद्रशेखरः ।

द्विगुणमार्द्रकद्रावैदं यं शीतोदकं द्युतु ॥ १५३ ॥

ततःपटोलमुद्गश्चपथ्यंतत्रप्रदापयेत् ।

त्रिदिनात्पित्तश्लेष्मोत्थमत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥ १५४ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एकतोला, शुद्धगंधक दोतोले, कालीमिरच एकतोला और सुहागा एकतोला, तथा सबकी बराबर मिश्री मिलाकर मत्स्यपित्तमें भावना देकर तीन दिन खरल करनेपर चन्द्रशेखररस बनजाताहै । अनुपान भदरखके रसके साथ दोगुंजाप्रमाण सेवन करै, पश्चात् शीतलजल पीवै. पथ्य परवल और भूंग-की दाल देवै । यह चन्द्रशेखररस पित्त और कफमें उत्पन्न हुए ज्वरको तीन दिनमें नष्ट करैहै ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

मृत्तलोहम् ।

त्रिफलामृत्तलोहश्चभृंगराजंचचूर्णितम् ।

चूर्णमर्जुनपत्रस्यत्रिजातकशिलाजतु ॥ १५५ ॥

त्र्यूपणंतुल्यतुल्यांशंसर्वेषाञ्चसमांशतः ।

क्षौद्रेणवटिकाकार्याकर्षमात्रन्तुभक्षयेत् ॥ १५६ ॥

सर्वज्वरहरःश्रेष्ठोह्यनुपानंप्रकल्पयेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ—हरड़, बहेडा, आमला, विष, लोहा, भाँगरेके पत्तांका चूर्ण, दालचीनी, अर्जुनवृक्षके पत्तांका चूर्ण, इलायची, तेजपात, शिलाजीत, सोंठ, मिरच, पीपल, इन सबको समानभाग लेकर सहतमें गोली बनावै, उन गोलियोंको दो तोले प्रमाण भक्षण करै, इससे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होजातेहैं । इसमें यथायोग्य अनुपान करना चाहिये ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

ज्वरारिरसः ।

मेषीक्षीरेणदरदमम्लवर्गैश्चभावितम् ।

सप्तवारंप्रयत्नेनशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥ १५८ ॥

दरदघनरसानांशुद्धनागाभ्रकाणां

सुभगविडशिलानांसर्वमेकत्रयोज्यम् ।

विपिननृपदलोत्थैःशोषयेन्मर्दयेच्च

दिवसदशसमाप्तैर्वर्तिकाकारणीया ॥ १५९ ॥

गुंजाप्रमाणतोदित्यंभक्षयेदार्द्रकेणवै ।

सर्वशूलविनाशार्थकफशोथविनाशनम् ॥ १६० ॥

दत्तमात्रं ज्वरं हन्ति ज्वरारिश्च निगद्यते ॥ १६१ ॥

अर्थ—सिंगफको भेड़के दूधमें सातवार भावना दे. फिर अम्लरसमें सातवार भावना देवै, इसप्रकार करनेसे सिंगफ शुद्ध होजाताहै, ऐसा शोधाहुआ सिंगफ, लोहा, पारा, शुद्धसीसा, अभ्रक, सुहागा, विडलवण और मैन्शिल इन सबको समान भाग लेकर अमलतासके पत्तोंके रसमें मर्दन कर सुखावै. इसप्रकार दश-दिन मर्दन और सुखाकर रत्तीके प्रमाण गोली बनावै, एक गोली अदरखके रसके साथ खावै, इससे सर्वप्रकारके शूल, कफ और सूजन दूर होजाते हैं और यह ज्वरारिस एकहीबार देनेसे ज्वरको दूर करताहै ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१ ॥

ज्वरांकुशः ।

सूतार्कगंधचपलाजयपालित्ता

पथ्यात्रिवृद्धिषकतिन्दुकजंसमांशम् ।

सम्मर्द्यवज्रिपयसामधुनाद्विगुंजं

त्रैलोक्यडम्बरभवोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ १६२ ॥

अर्थ—पारा, ताँबा, गन्धक, सोनामाखी, जमालगोटा, कुटकी, हरड़, निसोथ और कुचला इन सबको समानभाग लेकर थूहरके दूधमें खरल कर्के दो रत्तीप्रमाण गोली बनाले, एक गोली सहतके साथ खावै तौ नवीनज्वर दूर होताहै । यह त्रिलोकमें आश्चर्यकारक ज्वरांकुश है ॥ १६२ ॥

रसस्यद्विगुणं गंधं गंधतुल्यन्तुदंगणम् ।

रसतुल्यं विषं योज्यं मरिचं पंचधा विषात् ॥ १६३ ॥

कटफलं दन्तिबीजश्च प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ।

ज्वरांकुशरसो ह्येष चूर्णयेद्याममात्रकम् ॥ १६४ ॥

मासैकेन निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम् ॥ १६५ ॥

अर्थ—पारा एकभाग, गंधक दोभाग, सुहागा दोभाग, विष एकभाग, मिरच पाँच भाग, तथा कायफल और जमालगोटा दो दो तोले प्रमाण लेकर चूर्ण कर ले, इस चूर्णको सेवनकरनेसे एक महीनेमें जीर्णज्वर और सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

जयन्तीवाजयापीताविषमज्वरशान्तये ।

चन्दनस्यकषायेणरक्तपित्तज्वरापहा ॥ १६६ ॥

अर्थ—जयन्ती अथवा जया औषधिको पीनेसे विषमज्वर शान्त होताहै ।
चन्दनके काढ़ेको पीनेसे रक्तपित्तज्वर दूर होता है ॥ १६६ ॥

महाज्वराकुशः ।

सूतगंधविषंतुल्यंधूर्तबीजत्रिभिःसमम् ।

चतुर्णाद्विगुणंव्योपंचूर्णगुंजाद्वयंहितम् ॥ १६७ ॥

जम्बीरकस्यमज्जायामार्द्रकस्यद्वैर्युतम् ।

ज्वराकुशोरसोनाम्नाज्वरान्सर्वान्निकृन्तयेत् ॥ १६८ ॥

एकाहिकंद्वयाहिकंचत्रयाहिकंचाचतुर्थकम् ।

विषमञ्चत्रिदोषोत्थंहन्तिसद्योनसंशयः ॥ १६९ ॥

अर्थ—एकभाग पारा, एकभाग गंधक, एकभाग विष, तीनभाग धतूरेके बीज और बारहभाग त्रिकुटा, इन सबका चूर्ण बनावे, उम चूर्णको दोगुंजा प्रमाण लेकर जम्बीरी नींबूकी मज्जाके साथ और अदरकके रसके साथ सेवन करे, यह महाज्वराकुश नामवाला रस,—सर्वप्रकारके ज्वरांको हरैहै, तथा एकाहिक, द्वाहिक, त्रयाहिक, चातुर्थिक, विषमज्वर, त्रिदोषज्वर, इन सबको निःसन्देह तत्काल नष्ट करैहै ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

पारदंहिगुलंताम्रमाक्षिकंतुथमेवच ।

वंगंसूतञ्चगंधश्चखर्परश्चमनःशिला ॥ १७० ॥

तालकंचनपापाणोगैरिकंटंगणंतथा ।

दन्तीबीजश्चसर्वाणिचूर्णयित्वाविभावयेत् ॥ १७१ ॥

जयन्तीविजयाचिंचातुलसीशालपर्णिका ।

प्रत्येकंचरसंदत्त्वानिर्जलेवाथभूगृहे ॥ १७२ ॥

चणमात्रांवटीकृत्वाछायाशुष्कन्तुकारयेत् ।

महाभिकारकश्चैवज्वराणांकुलनाशनः ॥ १७३ ॥

द्वन्द्वजंसर्वजंचैवचिरकालसमुद्रवम् ।

एकाहिकंद्वयाहिकंचतथान्निदिवसज्वरम् ॥ १७४ ॥

चातुर्थिकंतथात्युग्रंजलदोषसमुद्भवम् ।

सर्वाञ्ज्वरान्निहन्त्याशुभास्करस्तिमिरंयथा ॥ १७५ ॥

महाज्वरांकुशोनामदेयंगुंजाचतुष्टयम् ॥ १७६ ॥

घनपाषाणमभ्रकम् ।

अर्थ—पारा, सिंग्रफ, ताँबा, सोनामाखी, तूतिया, राँग, पारा, गंधक, खपरिया, मैन्शिल, हरताल, अभ्रक, गेरू, सुहागा और जमालगोटा इन सबको समान भाग लेकर चूर्णकरै, फिर उस चूर्णको जयन्ती, भाँग, इमली, तुलसी और शालपर्णी इन सबके निर्जलरसमें अलग अलग भावना देकर चनेकी बराबर गोली बना लायामें सुखादे, यह महाज्वरांकुशरस अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवाला, ज्वरोंके कुलको विध्वंस करनेवाला, तथा द्वन्द्वज, त्रिदोषज्वर, जीर्णज्वर, एकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, तृतीयज्वर, चातुर्थिकज्वर, अत्युग्रज्वर, जलदोषज्वर, और सर्वप्रकारके ज्वरोंको दूर करै है, जैसे सूर्य अंधकारको दूर करै है । इस महाज्वरांकुशकी मात्रा चार गुंजाकी है ॥ १७० ॥ ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

कफज्वरादौ ।

लाजासक्तुकपथ्यंस्यात्सैन्धवेनविचूर्णयेत् ।

पचेजीर्यत्यविघ्नेनज्वरीजीवेत्तदाध्रुवम् ॥ १७७ ॥

रक्तपित्तहरत्वेनदाहज्वरकृतेतथा ।

सक्तवःशीतवीर्याःस्युर्लाजामण्डःकफोत्थके ॥ १७८ ॥

तेनादौकेवलानहितान् ।

पाचनोदीपनोलाजमण्डस्तेनोष्णइष्यते ।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ॥ १७९ ॥

शृतशीतजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ।

शुण्ठीबलाहकोशीरैःपिबेत्तोयंप्रसाधितम् ॥ १८० ॥

दाहशीतज्वरहरंपाचनंचतृषापहम् ॥ १८१ ॥

बलाहको मुस्तकम् ।

दोषावस्थांसमालोच्यप्रयुक्तःसन्निपातिनः ।
 लंघनेदशमूलादिकषायोनविरुध्यते ॥ १८२ ॥
 कषायोऽत्रार्द्धशृतंनवज्वरेमुख्यकषायनिषेधात् ।
 मुख्यभेषजसम्बन्धोनिषिद्धस्तरुणज्वरे ॥ १८३ ॥
 तोयपेयादिसंस्कारेनिर्दोषस्तेनभेषजम् ।
 यःकषायैःकषायःस्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ १८४ ॥
 कषायेणाकुलीभूतादोषाजेतुंसुदुस्तराः ।
 उद्यन्तेचविमुच्यन्तेकुर्वतेविषमज्वरम् ॥ १८५ ॥
 कर्पेकमात्रंतद्व्यंसाधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ।
 अर्द्धशृतंप्रयोक्तव्यंपानेपेयादिसंविधौ ॥ १८६ ॥
 अर्द्धशृतमर्द्धावशेषितम् ।
 वमितलंघितंकालेयवागृभिरुपाचरेत् ।
 यथाह्यौषधसिद्धाभिर्मण्डापूर्वाभिरादितः ॥ १८७ ॥
 धन्याकपिप्पलीविश्वदशमूलीजलंपिबेत् ।
 पेयांसर्वज्वरहरांसैन्धवेनावचूर्णिताम् ॥ १८८ ॥
 मृद्रीकापिप्पलीमूलचव्यामलकनागरैः ।
 यवाग्नःस्यान्निदोषघ्नीव्याघ्रीदुष्पर्शगोक्षुरैः ॥ १८९ ॥
 यावज्ज्वरमृद्भावात्पडहंवाविचक्षणः ।
 श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यांसिद्धांज्वरहरांपिबेत् ॥ १९० ॥
 कुलत्थपंचमूलाभ्यांधान्यपिप्पलीनागरैः ।
 पेयाश्लेष्मज्वरहरांसैन्धवेनावचूर्णिता ॥ १९१ ॥

अर्थ—खीलोंके सतुआंमें संधानोन मिलाकर ज्वररोगीको सेवन करा-
 नेमें हित करैहै, तथा ज्वर, रक्तपित्त और दाहको दूर करैहै । खीलोंके सत्तु
 शीतवीर्यहै । खीलोंका मोड़—~~अर्द्धशृतं~~ हितकारीहै, पाचक और अग्निप्रदीप-

कहे, इसकारण कुछ गरमभी है । नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, सुगंधवाला और सोंठ, इन सबको समानभाग लेकर काढा बनावै, जब ठंढा होजाय तौ पीवै, इससे-तृषा, ज्वर शान्त होजाता है । सोंठ, नागरमोथा, और खस समानभाग लेकर काढा बना पीवै तौ दाह, शीतज्वर, और तृषा दूर होती है, तथा पाचक है । सन्निपातज्वरमें दोषोंकी अवस्थाको विचारकर लंघन होनेपर भी दशमूलका काढा देना चाहिये । तरुणज्वरमें आधा जल-जावै तो काथ देना चाहिये, क्योंकि-तरुणज्वरमें सम्पूर्णलक्षणोंवाला काथ वर्ज्य है । मुख्य औषधीकाभी देना तरुणज्वरमें निषेध है । किन्तु तोयपेयादिमें संस्कारित कीहुई औषधी तरुणज्वरमें निषिद्ध नहीं है । तरुणज्वरमें यथार्थ कषाय वर्ज्य है, क्योंकि कषायसे त्रिदोष कुपित होकर विषमज्वरको उत्पन्न करतेहैं, इसकारण दोसेर जलमें २ दो तोले औषधिको डालकर पकावै, जब आधा अर्थात् सेरभर जल शेष रहै तब उतारले, इसको तृपालगनेपर पीतारहै । वमन और लंघन करायेहुए मनुष्यको औषधि और मण्डादिसे सिद्ध कियाहुआ यवागू देना चाहिये । धनियां, पीपलामूल, सोंठ, और दशमूल इनसबकी पेया बना उसमें सैंधेनोनका चूर्ण मिला सेवन करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होतेहैं । दाख, पीपलामूल, चव्य, आमला, सोंठ, कटेरी, जवासा और गोखरू इन सबका बनाया हुआ यवागू त्रिदोषनाशक है और जबतक मृदुज्वर रहै तबतक छै दिन पर्यन्त गोखरू और कटेरीकी यवागू बनाकर पीवै तौ ज्वरनाश होताहै । कुलथी, पंचमूल, धनियां, पीपल और सोंठ इनका यवागू बना तिसमेंसे सैंधेनोनका चूर्णमिलाकर पीनेसे कफज्वरका नाश होताहै ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ १७९ ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥ १९१ ॥

वातज्वरादौ ।

एषाचैवयवागूस्तुसचपित्तेऽप्ययंकमः ।

ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तंसमधुशर्करम् ॥ १९२ ॥

तत्रमदात्ययादौ ।

द्राक्षादाडिमखज्जूरपियालैःसर्पहृषकैः ।

तर्पणाहैषुकर्तव्यंतर्पणंज्वरनाशनम् ॥ १९३ ॥

छर्द्यदितंतथाक्षीणांविशुद्धंतृष्णयान्वितम् ।
 शर्करामधुसंयुक्तंपाययेच्छाजतर्णम् ॥ १९४ ॥
 उपवासश्रमकृतेज्वरेवाताधिकेतथा ।
 दीप्ताग्निभोजयेत्प्राज्ञोनरंमांसरसौदनम् ॥ १९५ ॥
 मुद्गयूपौदनश्चापिदेयःकफसमन्विते ।
 स एवसितयायुक्तःशीतपित्तज्वरेहितः ॥ १९६ ॥
 मुद्गामलकयूपस्तुवातपित्तज्वरेहितः ।
 निम्बमूलकयूपस्तुहितःपित्तकफाधिके ॥ १९७ ॥
 निम्बपत्रपटोलश्चवार्ताकुंकारखेल्लकम् ।
 कर्कोटकंपर्पटकंगोजिह्वावालमूलकम् ॥ १९८ ॥
 पत्रंगुडूच्याःशाकाद्यैर्ज्वरितायप्रदापयेत् ।
 अरुचौमातुलंगस्यकेशरंसाज्यसैन्धवम् ॥ १९९ ॥
 धात्रीद्राक्षासितानांवाकल्कमास्येनधारयेत् ।
 धारयेत्सर्वथैवनगिलेत् ।
 शर्करादाडिमाभ्याश्चद्राक्षादाडिमयोस्तथा ॥ २०० ॥
 तैरस्यधारयेदास्येगण्डूषश्चयथाहितम् ।
 ननक्तंनगुरुप्रायंभुंजीततरुणज्वरी ॥ २०१ ॥
 वातपित्तज्वरेदेयमौषधंपंचमेदिने ।
 सप्तमेष्टेष्मपित्तोत्थेतदूर्ध्वकफवातजे ॥ २०२ ॥
 नागरंदेवकाष्ठश्चधन्याकंबृहतीद्वयम् ।
 दद्यात्पाचनकंपूर्वज्वरितायज्वरापहम् ॥ २०३ ॥
 बिल्वादिपंचमूलस्यक्वाथःस्याद्वातिकेज्वरे ।
 पंचमूलीबलारास्नाकुलत्थैःसहपुष्करैः ॥ २०४ ॥
 पर्वभेदशिरःकम्पतंहन्यान्मरुज्ज्वरम् ।

गुडूचीशारिवाद्राक्षाशतपुष्पापुनर्नवा ॥

सर डोयंकषायःस्याद्रातज्वरविनाशनः ॥ २०५ ॥

अर्थ—पित्तज्वरमेंभी उपरोक्तक्रिया करनी चाहिये । ज्वरनाशक फलोंके रसमें मधु और शर्करा मिलाकर पीवै । तथा दाख, अनार, खजूर, चिरोंजी, और फालसा इनोके रसमें सहत और चीनी मिलाकर तर्पण करै, यह तर्पण ज्वरनाशकहै । वमनमे पीडित, क्षीण, विबन्धरोगी और तृषावान्मनुष्यको खीलोंके मांडमें सहत और चीनी मिलाकर तर्पण बनाकर पिलाना योग्यहै । उपवास तथा परिश्रमसे और उत्पन्न हुए ज्वरमें और वातज्वरमें दीप्ताग्निवाले मनुष्यको मांसरससंयुक्त भात भक्षण कराना चाहिये । कफज्वरमें मूँगके यूपके साथ भात सेवन कराना चाहिये । शीत और पित्तज्वरमें मूँगके यूपमें चीनी मिलाकर भातके साथ सेवन कराना चाहिये, वातपित्तज्वरमें मूँग और आमलेके यूपके साथ भात सेवन कराना चाहिये, नीम और मूलीका यूप पित्तश्लेष्मज्वरमें देना चाहिये । नीमकेपत्ते, परवल, बैंगुन करेला, ककोडा, पित्तपापडा, गोभी, कच्चीमूली और गिलोयके पत्ते, यह ज्वरवाले मनुष्यको शाकके लिये देने चाहियें । ज्वररोगीको अरुचि होनेपर बिजोरेकी केशरके साथ सेंधानोंन और घृत अथवा आमला, दाख और चीनी एकत्र मिलाकर सेवन करानी चाहिये । आमला, दाख और मिश्री इनका कल्क मुखमें रखनेमे अरुचि दूर होतीहै । इस कल्कको एकसाथ न निगले किन्तु मुखमें रख थोडा थोडा रस पीतारहै । शर्करा और अनारका रस अथवा दाख और अनार इनका गण्डूष ग्रहण करनेसे ज्वरमें उत्पन्नहुई अरुचि नष्ट होती है । तरुणज्वरवाला रोगी रात्रिमें भोजन और भारीपदार्थ भक्षण नहीं करै । वातपित्तज्वरमें पांचमें दिन, पित्तश्लेष्मज्वरमें सातमें दिन और वातकफज्वरमें सातमें दिनके भी पीछे औषधि देनी चाहिये । सांठ, देवदारु, धनियाँ, बृहती और कटेरी इनका काढा कर ज्वरकी प्रथम अवस्थामें देना चाहिये । यह पाचन ज्वरनाशक है । बिल्वादिपंचमूलका काथ वातज्वरमें देना चाहिये । स्वल्पपंचमूल, खिरौंटी, रास्ना, कुलथी और पोहकरमूल इनका काढा, पर्वभेद और शिरकम्पयुक्तवातज्वरनाशकहै । गिलोय, शारिवा, दाख, सांफ और पुनर्नवा इनका काढा गुडके साथ पीनेसे वातज्वर नाश होताहै ॥ १९२ ॥ १९३ ॥

॥ १९४ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ २०० ॥ २०१ ॥

॥ २०२ ॥ २०३ ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

पित्तज्वरादौ ।

सक्षौद्रं पाचनं पित्तेतिक्तासेन्द्रयवैः कृतम् ।

पाठेन्द्रयवतिक्ताभिः कटुफलैर्वासशर्करम् ॥ २०६ ॥

क्वाथः पित्तज्वरंहन्यादथवापर्पटोद्भवः ।

पटोलयवधन्याकमधुकानां मधुशुतः ॥ २०७ ॥

क्वाथः पित्तज्वरं दाहं हन्ति तृष्णां च दारुणाम् ॥ २०८ ॥

मधुकं यष्टीमधु ।

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशकः ।

किंपुनर्यदियुज्येत चन्दनो दीच्यनागरैः ॥ २०९ ॥

घनचन्दनपर्पटकं कटुकं समृणालपटोलदलंसजलम् ।

शृतशीतसितायुतपित्तहरं

ज्वरच्छर्दिं तृषारुचिदाहहरम् ॥ २१० ॥

द्राक्षाभयापर्पटकाम्लतिक्ता-

क्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात् ।

प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोष-

तृष्णान्विते पित्तभवज्वरे तु ॥ २११ ॥

विदारीदाडिमं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् ।

एभिः प्रलिह्यान्मूर्च्छानंतृड्दाहार्त्तस्य देहिनः ॥ २१२ ॥

करवीरस्य पत्राणि चन्दनं शारिवास्तिलाः ।

तृष्णादाहेशिरोलेपार्गनालेन पेयितः ॥ २१३ ॥

कालेयचन्दनानन्तापष्टीबदरकांजिकैः ।

सघृतः स्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहार्त्तिशान्तये ॥ २१४ ॥

चन्दनोदकशीतेषु दाहार्त्तिः संविशेन्मुखम् ।

हिमाम्बुपूर्णे सदनेशीतधारा गृहेऽपि वा ॥ २१५ ॥

पौष्करेऽम्भसिसामीप्ये सुप्तव्यं सह आदिशेत् ॥ २१६ ॥

सरः समीप इत्यर्थः ।

हेमशंखप्रवालानांमणीनांमौक्तिकस्यच ।

चन्दनोदकपीतानिसंस्पर्शात्तरसाभवेत् ॥ २१७ ॥

हरीतकीप्रियंगुश्चपिप्पलीलोध्रमेवच ।

चव्यंदावींहरिद्राचसक्षौद्रंमुखधारणम् ॥ २१८ ॥

अर्थ—कुटकी और इन्द्रजौ इनका काढ़ा सहतके साथ, अथवा पाद, इन्द्रजौ कायफल और कुटकी इनका काढ़ा चीनीके साथ, या पित्तपापड़ेका काढ़ा पीने पित्तज्वर नाश होताहै । कड़वेपरवल, इन्द्रजौ, धनियाँ और मुलैठी, इनका काढ़ा पीनेसे पित्तज्वर, दाह और तृषा दूर होतीहै । केवल एकही पित्तपापड़ा पित्तज्वरको नाश करसक्ता है, और जो यदि इनमें चन्दन, सुगंधवाला और सों मिलोकै देवै तब तौ क्याही कहनाहै । नागरमोथा, लालचन्दन, पित्तपापड़ा कुटकी, कमलकी नाल और पटोलपत्र, इनका काढ़ा, शीतलकर खाँडके सा पीनेसे पित्तज्वर वमन, तृषा, अरुचि, और दाह दूर होतीहै । दाख, हरड़, पित्तपापड़ा, इमली और कुटकी इनका काढ़ा बना उसमें अमलतासका गूदा मिलाव पीनेसे प्रलाप, मृच्छा, भ्रम, दाह, शोष और तृष्णा इनसे युक्त पित्तज्वर न होताहै । विदारीकन्द, अनार, लोध, कैथ और विजोरेकी केशर इनका कल्क, अथवा कनेरके पत्ते, चंदन, शारिवा और तिल इनको काँजीमें पीस शिरपै लेप करने तृषा और दाह दूर होतीहै । अथवा दारुहलदी, चन्दन, शारिवा, मुलैठी और बेरीके पत्ते इनसबको काँजीमें पीस घी मिला शिरपै लेप करनेसे तृषा और दाह शान्त होजातीहै । लालचन्दनको शीतलजलमें घिसकर मुखमें धारण करनेसे दाह दूर होतीहै । शीतलजलसे भरे हुए बागमें, शीतलजलकी धारा पड़ती हो ऐसे घरमें, और कमलयुक्तसरोवरके समीपमें वास करै, चन्दनोदक पीवै, तथा सोना, शंख, भूंगा, मणि और मुक्तादि धारण करनेसे दाह दूर होतीहै । हरड़, फूलप्रियंगू, पीपल, लोध, चव्य, दारुहलदी, और हलदी इनसबको सहता पीसकर मुखमें धारणकरनेसे दाह दूर होतीहै ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ २१६ ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

पिप्पल्यादिगणः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचव्यचित्रकनागरम् ।

मरिचैलाजमोदेन्द्रपाठावेल्हकजीरकम् ॥ २१९ ॥

भार्ङ्गीमहानिम्बफलंहिंगुरोहिणीसर्षपम् ।
 विडंगातिविषामूर्वाचेत्ययंकीर्तितोगणः ॥ २२० ॥
 पिप्पल्यादिःकफहरःप्रतिश्यायानिलापहः ।
 निहन्यादीपनोगुल्मशूलघ्नस्त्वामपाचनः ॥ २२१ ॥
 रविगुप्तोविनापाठामुस्तकोऽथचपाटला ।
 पठत्यत्रगणेकिन्तुप्रचारोलिखितेनतु ॥ २२२ ॥
 अजमोदा-वनयवानी । इन्द्र-इन्द्रयव ।

अर्थ-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सांठ, मिरच, इलायची, अजमोद, इन्द्रजौ. पाठ, गजपीपल, जीरा, भारंगी, हिंग, बकायन, कुटकी, सरसों, वाय विडंग, अतीस और मूर्वा, इनसबको पिप्पल्यादि गण कहते हैं । यह पिप्पल्या दिगण-कफ, प्रतिश्याय (जुकाम,) वात, गुल्म और शूलको दूर करेहै । तथा अग्निदीपक और आमपाचक है । इस पिप्पल्यादिगणमें रविगुप्तवद्यके मतसे पाठाको निकाल नागरमोथा या पाटला मिलाना चाहिये ॥ २१९ ॥ २२० ॥ ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ अजमोद-बडीअजवाइन, इन्द्र-इन्द्रजौ

चातुर्भद्रावलेहिका ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीकृष्णाचमधुनासह ।
 कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठोलेहःकफान्तकृत् ॥ २२३ ॥

अर्थ-कायफल, पोहकरमूल, काकड़ाशिगी, और पीपल इनका चूरण कर उसमें सहत मिला चाटनेसे खाँसी, श्वास, ज्वर और कफ दूर होतीहै ॥ २२३ ॥

कट्फलादिअवलेहिका ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीमुस्तकंकटुकंशठी ।
 सर्वान्पृथग्वासंचूर्ण्यलिह्यान्मध्वार्द्रकैर्द्रवैः ॥ २२४ ॥
 कफानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासरुजापहा ॥ २२५ ॥

अर्थ-कायफल, पोहकरमूल, काकड़ाशिगी, नागरमोथा, कुटकी और क-चूर, इनसबको मिला अथवा पृथक् पृथक् चूर्ण कर मधु और अदरकके रसके साथ चाटनेसे-कफ, वात, अरुचि, वमन और खाँसी, श्वास दूर होताहै ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

अथ कफजे ।

कासश्वासज्वरच्छर्दिप्लीहपाण्डूदरापहा ।

मधुनापिप्पलीलीढापाचनीदीपनीमता ॥ २२६ ॥

भिनत्तिश्लेष्मसंघातंवायुर्जलधरानिव ॥ २२७ ॥

अर्थ—पीपलको सहतके साथ चाटनेसे—खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, प्लीहा, पाण्डु और उदररोग नष्ट होते हैं । तथा यह चटनी—पाचन और दीपन है । जैसे पवनसे बादल दूर होजाते हैं उसी प्रकार इससे कफका समूह नष्ट होजाना है ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

वातपित्ते ।

संसृष्टदोषेषुहितंसंसृष्टमथपाचनम् ।

संसृष्टसंयुतंवातहरपित्तहरादिभिः ॥ २२८ ॥

विश्वामृताब्दभूनिम्बैःपंचमूलीसमन्वितैः ।

कृतःकषायोहन्त्याशुवातपित्तोद्भवंज्वरम् ॥ २२९ ॥

पंचमूलीस्वल्पावातपित्तहन्तृत्वात् ॥ २३० ॥

अर्थ—ज्ञात पित्त और श्लेष्मपित्तादि मिले हुए दोषोंमें मिलीहुई औषधादि प्रयोग करनी चाहिये । सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और स्वल्पपंचमूल, इनका काथ पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होताहै ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ यहां स्वल्पपञ्चमूली लियाहै क्योंकि स्वल्पपंचमूली वातपित्तको दूर करती है ॥ २३० ॥

पंचांगः ।

गुडूचीपर्पटंमुस्तंकिरातंविश्वभेषजम् ।

वातपित्तज्वरेदेयंपंचभद्रमिदंशुभम् ॥ २३१ ॥

कफपित्तहरोमुद्रःकारवेष्टादिजारसाः ।

नदेयावातपित्तोत्थेज्वरेविष्टम्भकारकाः ॥ २३२ ॥

अर्थ—गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ, इन सबका काथ पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होताहै यह पंचभद्र है ॥ २३१ ॥ मूंगका यूष कफपित्तनाशक है और करेला आदिका यूष वातपित्तज्वरमें नहीं देना चाहिये । क्योंकि यह विष्टम्भकारकहै ॥ २३२ ॥

गुडूच्यादिः ।

गुडूचीनिम्बधन्याकंपन्नकंचन्दनानिच ।

ग्वसर्वज्वरान्हन्तिगुडूच्यादिस्तुदीपनः ॥ २३३ ॥

हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ २३४ ॥

अर्थ—गिलोय, नीम, धनियाँ, पन्नाख और लालचन्दन, इनका यह गुडूच्यादि काढ़ा सर्वप्रकारके ज्वरोंको दूर करेहै, अग्निप्रदीपक है ॥ २३३ ॥ तथा हृल्लास, अरुचि, छर्दि, पिपासा और दाहनाशक है ॥ २३४ ॥

पटोलादिः ।

पटोलयवधन्याकमुद्रामलकचन्दनम् ।

पैत्तिकेश्लेष्मपित्तोत्थेतृदछर्दिज्वरदाहनुत् ॥ २३५ ॥

अर्थ—परवल, इन्द्रजौ, धनियाँ, मूंग, आमला और लालचन्दन इनका काढ़ा बनाकर पीनेसे—पित्तज्वर, कफपित्तज्वर, तृषा, वमन और दाहसंयुक्तज्वरका नाश होताहै ॥ २३५ ॥

कण्टकार्यादिः ।

कण्टकार्यमृताभाङ्गीनागरेन्द्रयवासकम् ।

भूनिम्बचन्दनमुस्तपटोलंकटुरोहिणी ॥ २३६ ॥

कषायंपाययेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।

हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहविवन्धनुत् ॥ २३७ ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, भांगी, साँठ, इन्द्रजव, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, नागरमोथा, परवल और कुटकी, इनका काढ़ा पित्तश्लेष्मज्वर, हृल्लास, अरुचि, वमन, तृषा दाह और विबन्धनाशक है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

चातुर्भद्रम् ।

किराततित्तकमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् ।

चातुर्भद्रमिदंख्यातंवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ २३८ ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और साँठ यह सब मिले हुए चातुर्भद्र कहे जातेहैं । इनका काढ़ा—वातश्लेष्मज्वरनाशक है ॥ २३८ ॥

पंचकोलम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।

दीपनीयःस्मृतोवर्गःकफानिलगदापहः ॥ २३९ ॥

पाचनःशीतहारुच्योग्रहणीकण्ठरोगनुत् ॥ २४० ॥

क्वाथव्यंजनाभ्याम् ।

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका काढ़ा—कफवात रोग नाशक, अग्निप्रदीपक, पाचक, शीतनाशक, रुचिकारक तथा संग्रहणी और कंठरोगको दूर करै है ॥ २३९ ॥ २४० ॥

क्षुद्रादिः ।

क्षुद्रामृतापुष्करनागराह्वैः

कृतःकषायःकफमारुतोद्भवे ।

सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे

ज्वरेत्रिदोषप्रभवेऽपिशस्यते ॥ २४१ ॥

अर्थ—कटेरी, गिलोय, पोहकरमूल और सोंठ इनका क्वाथ पीनेसे कफ वात-ज्वर, श्वास, खाँसी, अरुचि और पसलीकी पीड़ायुक्त ज्वर दूर होताहै और यह क्षुद्रादिकषाय सन्निपातज्वरमेंभी हितकारीहै ॥ २४१ ॥

अथ सन्निपातचिकित्सामाह चरकः ।

अकस्माच्छीतविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।

अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिःसन्निपाताग्रलक्षणम् ॥ २४२ ॥

गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् ।

चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वराकृतिः ॥ २४३ ॥

संगतानिचितादोषाःपातयन्तिकलेवरम् ।

ससन्निपातितायस्मात्सन्निपातःसुउच्यते ॥ २४४ ॥

लंघनंवालुकास्वेदोनस्यंनिष्ठीवनंतथा ।

अवलेहोऽन्नञ्चैवप्राक्प्रयोज्यंत्रिदोषजे ॥ २४५ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौकुर्याद्वाधौत्रिदोषजे ।

पश्चाच्छ्लेष्मणिसंक्षीणेशमयेति तमारुतौ ॥ २४६ ॥

त्रिरात्रपंचरात्रवासत्तरात्रमथापिवा ।

लंघनंसन्निपातेषुकुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ २४७ ॥

दोषाणामेवसाशक्तिर्लघनेयासहिष्णुता ।

नतुदोषक्षयेकश्चित्सहतेलंघनंमहत् ॥ २४८ ॥

अर्थ—अब सन्निपातकी चिकित्सा कहतेहैं । अकस्मात् शीत लगने लगे, अकस्मात् देह भारी होजाय और अकस्मात् इन्द्रियोंमें अधिक चेष्टा उत्पन्न होजावे यह सन्निपातके पूर्वलक्षण हैं ॥ २४२ ॥ जिसमें गीत, नृत्य, हास्यादि विकृत-क्रिया, पार्श्वपरिवर्त्तन और बहुत कालमें दोषोंका पाक हो उसको सन्निपातज्वर कहतेहैं ॥ २४३ ॥ मंचित तथा बढेहुए त्रिदोष शरीरको पातन करदेते हैं इस कारण उसको सन्निपात कहतेहैं । ऐसा चरकसंहितामें लिखाहै ॥ २४४ ॥ लंघन, बालूका स्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह और अंजन यह सब सन्निपातमें प्रथम प्रयोग करने चाहियें ॥ २४५ ॥ सन्निपातमें प्रथम कफको दूर कर जब कफ दूर होजावे तत्पश्चात् पित्त और वायुको दूर करना चाहिये ॥ २४६ ॥ तीन गत्रि या पाँचरात्रि अथवा सातरात्रि या आरोग्य होनेपर्यन्त सन्निपातमें लंघन कराने चाहियें ॥ २४७ ॥ जितने दिनोंतक रोगी लंघन सहसके उतने दिनोंपर्यन्त दोषोंका बल जानना चाहिये, क्योंकि दोषोंके नाश होनेपर ऐसा कौन मनुष्य है लंघनको सहलेवे ॥ २४८ ॥

कवलग्रहः ।

आर्द्रकस्वरसोपेतसैन्धवंसकटुत्रिकम् ।

आकण्ठधारयेदास्येनिष्ठीवेच्चपुनःपुनः ॥ २४९ ॥

तेनास्यहृदयाच्छ्लेष्मामन्यापार्श्वशिरोगलात् ॥

निश्चितंकृप्यतेशुष्कोलाघवञ्चास्यजायते ॥ २५० ॥

पर्वभेदोज्वरोमूर्च्छाकासश्वासज्वरामयाः ।

मुखाक्षिगौरवंजाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ २५१ ॥

नस्यम् ।

मातुलुंगार्द्रकरसंकोष्णंत्रिलवणान्वितम् ।

अन्यद्वासिद्धिविहितंनस्यंतीक्ष्णंप्रयोजयेत् ॥ २५२ ॥

तेनप्रभिद्यतेश्लेष्माप्रभिन्नश्चप्रसिच्यते ।

शिरोहृदयकण्ठस्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥ २५३ ॥

सैधवंश्वेतमरिचंसर्षपंकुष्ठमेव ।

वस्तमूत्रेणपिष्ट्वातुनस्यतन्द्राविनाशनम् ॥ २५४ ॥

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैधवैः ।

अंजनस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलावचैः ॥ २५५ ॥

मातुलुंगरसस्तस्यहिंशुशुंठीयुतमुखे ।

दद्याद्वाबोधनंतीक्ष्णंकटुतिक्तोपसंहितम् ॥ २५६ ॥

कृतेक्रियावरेचास्मिन्यस्यसंज्ञानजायते ।

पादयोश्चललाटेवादाहंलोहशलाकया ॥ २५७ ॥

अर्थ—सैधानोन, सांठ, मिरच, पीपल इनका चूर्णकर अदरखके रसमें मिला मुखमें रख बारंवार थूकता रहै ॥ २४९ ॥ इसप्रकार करनेसे हृदयका श्लेष्मा तथा मन्या, पसली, शिर और गलेका कफ बाहर निकलजाता है, देहमें लघुता आजाती है ॥ २५० ॥ तथा सांधियोंमें दर्द, ज्वर, मूर्च्छा, खाँसी, स्वास ज्वर के विकार, मुख और नेत्रोंकी गुरुता, शरीरकी जड़ता और ग्लानि दूर होजाती है ॥ २५१ ॥ विजौरेका रस और अदरखका रस किंचित् गरम कर उसमें सैधानोन और विरियासंचरनोन मिलाके कुल्ले करनेसे अथवा तीक्ष्ण नस्य लेनेसे कफ खांडित होकर शरीरसे बाहिर निकलजाता है और शिर, हृदय, कंठ, मुख और पसलीकी पीड़ा शान्त होजाती है ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ सैधानोन, सफेदीमर्च, सरसों और कूठ, इनसबको बकरेके मूत्रमें पीसकर नास लेनेसे तन्द्रा दूर होजाती है ॥ २५४ ॥ सिरसके बीज, पीपल, कालीमिरच, सधानोन, लहसुन, मैनशिल और वच इनसबको गोमूत्रमें पीसकर अंजन बना आँखोंमें लगानेसे मूर्च्छा नष्ट होती है ॥ २५५ ॥ विजौरेके रसमें हींग और सांठका चूरन मिलाकर मुखमें रखनेसे अथवा तीक्ष्ण, कटु और तिक्तपदार्थ मुखमें रखनेसे मूर्च्छा नष्ट होजाती है ॥ २५६ ॥ यदि उपरोक्त करनेसेभी मूर्च्छा नष्ट अर्थात् संज्ञा न उत्पन्न हो तब लोहेकी सलाईको अग्निमें तपा रोगीके दोनों पाँव अथवा ललाटमें दाग देवै ॥ २५७ ॥

किराताद्यवलेहः ।

किरातंसकणाशृंगीवासंकटफलपौष्करम् ।

मधुनासन्निपातघ्नोलेहःकार्यःपुनःपुनः ॥ २५८ ॥

अर्थ—चिरायता, पीपल, काकडाशिगी, अरूसा, कायफल और पोहकरमूल इनसबका चूरण कर सहत मिलाके बारंबार चाटनेसे सन्निपात दूर होताहै २५८

अष्टांगावलेहिका ।

कट्फलपौष्करंशृंगीव्योषयासश्चकारवी ।

विचूर्ण्यलेहयेद्युत्तयाक्षौद्रेणार्द्रसेनवा ॥ २५९ ॥

अष्टांगाख्यमिदंहन्तिसन्निपातंसुदुर्जयम् ।

प्रमोहश्वासकासांश्चतन्द्राहिक्कागलग्रहान् ॥ २६० ॥

उर्द्धगश्लेष्महरणेउष्णेस्वेदादिकर्मणि ।

निरुध्योष्णेमधुत्यक्त्वाकाय्यैपार्द्रकजै रसैः ॥ २६१ ॥

अर्थ—कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिगी, मांठ, मिरच, पीपल, जवाँमा और कलौंजी इन सबको समानभाग लेकर चूरण बना तिसमें सहत या अदरखका रस मिलाके चाटनेसे दुर्जय सन्निपात, मोह, श्वास, काम, तन्द्रा, हिका और गलग्रह नष्ट होते हैं ॥ २५९ ॥ २६० ॥

उर्द्धगकफ हरनेके लिये तथा उष्ण उष्ण स्वेदादिकर्ममें मधुको त्याग अदरखके रसमें यह अष्टांगावलेह व्यवहार करना चाहिये ॥ २६१ ॥

आमलक्याद्यवलेहः ।

स्विन्नमामलकंपिष्ट्वाद्राक्षाशुंठीसमन्वितम् ।

मधुनालेहयेन्मूर्च्छाकासश्वासोपशान्तये ॥ २६२ ॥

अर्थ—उवालेहुए आमले, दाख और मांठ इन सबको पीस सहतके साथ चाटनेसे मूर्च्छा, खाँसी और श्वास शान्त होताहै ॥ २६२ ॥

दशमूलीकषायस्तुपौष्करेणावचूर्णितम् ।

सन्निपातज्वरेदेयंकाशश्वासतृपान्विते ॥ २६३ ॥

अर्थ—दशमूलका काथ पौष्करमूलके चूरनके साथ पीनेसे खाँसी, श्वास और तृपायुक्त सन्निपातज्वर नष्ट होताहै ॥ २६३ ॥

दशमूलम् ।

विल्वस्योनाकगम्भरीपाटलागणिकारिका ।

दीपनंकफवातघ्नपंचमूलमिदं महत् ॥ २६४ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरम् ।

वातपित्तहरंवृष्यंकनीयः पंचमूलकम् ॥ २६५ ॥

उभयंदशमूलन्तुसन्निपातज्वरापहम् ।

कासेश्वासेचतन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥ २६६ ॥

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तंकण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ।

विशेषाङ्घ्रासकासघ्नमन्याकर्णाक्षिरोगनुत् ॥ २६७ ॥

अर्थ—बेल, सोनापाठा, खम्हराई, पाटल और अरणी इन पाँच मिली हुई औषधियोंको महत् पंचमूल कहते हैं, इनका काढा अग्निप्रदीपिक और कफवातनाशक है ॥ २६४ ॥ शरिबन, पिठवन, कटेरी दोनों, और गोखरू इन पाँचोंको स्वल्प पंचमूल कहते हैं, इनका काढा—वातपित्तनाशक और वीर्यवर्द्धक है ॥ २६५ ॥ यह दोनों बृहत्पंचमूल और स्वल्पपंचमूल मिलके दशमूल कहे जाते हैं । दशमूलका काढा सन्निपातज्वरनाशक है, तथा खाँसी, श्वास, तन्द्रा और पसवाडेकी पीडाको दूर करे है ॥ २६६ ॥ और इस काढेमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे कण्ठ और हृदयकी पीडा, तथा विशेषकरके श्वास, खाँसी, मन्या, कर्ण और नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ २६७ ॥

द्वादशांगः ।

दशमूलीकणाधान्यैः पित्तश्लेष्मोद्भवेज्वरे ।

दद्यात्पाचनकंपूर्वमामेस्तब्धे स नागरैः ॥ २६८ ॥

अर्थ—दशमूल, पीपल और धनियाँ इनका काढा पित्तश्लेष्मज्वरमें प्रथम देना चाहिये । तथा स्तब्ध और आमामवस्थामें इसकाढेको सोंठके साथ देना चाहिये ॥ २६८ ॥

चतुर्दशांगः ।

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ।

किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्धार्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः २६९

अर्थ—दशमूल, चिरायत, दिग्गण इनका काढ़ा जीर्णज्वर, वातकफज्वर और सन्निपातज्वर नाशक है, तथा इसमें निसोतका चूर्ण मिलाकर पीवै तौ कोष्ठ शुद्ध होजाताहै ॥ २६९ ॥

पंचदशाङ्गः ।

द्विपंचमूलीषड्ग्रन्थातथागृध्रनखीद्वयम् ।

कफवातहरःक्वाथःसन्निपातहरःपरः ॥ २७० ॥

अर्थ—दशमूल, वच और दोनों प्रकारकी बेगीकी छाल इनका काढ़ा कफवात नाशक और सन्निपातनिवारक है ॥ २७० ॥

दशमूलीशठीशृंगीव्योषंक्वाथंपिवेत्रः ।

सन्निपातज्वरंहन्यादित्याहकपिलमुनिः ॥ २७१ ॥

अर्थ—दशमूल, नरकचूर, काकडाशिगी, सांठ, मिरच, पीपल इनका काढ़ा पीनेसे सन्निपातज्वरका नाश होताहै ऐसा कपिलमुनिने कहाहै ॥ २७१ ॥

षोडशाङ्गः ।

त्र्यूषणदशमूलशठीशृंगीभार्गीछिन्नोद्भवःक्वाथः ।

पीतःशमयतिसहसाज्वरंचोग्रंसन्निपातभवम् ॥ २७२ ॥

अर्थ—सांठ, मिरच, पीपल, दशमूल, कचूर, काकडाशिगी, भारंगी और गिलोय इनका काढ़ा कर पीनेसे शीघ्रही सन्निपातज्वर नष्ट होता है ॥ २७२ ॥

अष्टादशाङ्गः ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-

तिक्तेन्द्रवीजधनिकेभकणाकपायः ॥

तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोह-

श्वासादियुक्तमखिलंज्वरमाशुहन्ति ॥ २७३ ॥

अर्थ—चिरायता, देवदारु, दशमूल, कचूर, सांठ, नागर्मोथा, कुटकी, इन्द्रजो, धनिया और गजपीपल इनका क्वाथ तन्द्रा, प्रलाप, खाँसी, अरुचि, दाह, मोह और श्वासादियुक्त सर्वप्रकारके ज्वरोंका नाशक है ॥ २७३ ॥

वातश्लेष्महरोऽष्टादशांगः ।

शठीपुष्करमूलंचव्याघ्रीशृंगीदुरालभा ।

गुडूचीनागरंपाठकैरातंकटुरोहिणी ॥ २७४ ॥

अष्टादशांगइत्येषसन्निपातज्वरापहाः ।

कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ २७५ ॥

अर्थ—नरकचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकडाशिंगी, जवासा, गिलोय, मोंठ, पाठ, चिरायता और कुटकी इनका काढ़ा पीनेसे सन्निपातज्वर, खाँसी, हृदयकीपीडा, पसलीकी वेदना, श्वास, हिचकी और वमन दूर होती है ॥ २७४ ॥ २७५ ॥

त्रिवृद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैःकृतः ।

संस्कारैर्भेदनःक्वाथःपेयःसर्वज्वरापहः ॥ २७६ ॥

अर्थ—निसोत, इन्द्रायन, कुटकी, त्रिफला और अमलतास इनका काढ़ावना कर पीनेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होतेहैं, तथा यह काढ़ा भेदक है ॥ २७६ ॥

अथ शृंग्यादिः ।

शृंगीभार्ङ्गचययाजार्जीकणाभूनिम्बपर्पटैः ।

देवदारुवचाकुष्ठयासकदफलनागरैः ॥ २७७ ॥

मुस्तधन्याकतिकेन्द्रशठीपाठाहरेणुभिः ।

हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ २७८ ॥

निम्बारग्वधत्रायन्तीविशालासोमराजिभिः ।

विडंगरजनीदावीयवानीद्वयसंयुतैः ॥ २७९ ॥

समांशैःसाधितःक्वाथोहिङ्गार्द्रकरसान्वितः ।

अभिन्यासज्वरंघोरंहन्तितद्राश्रुतत्क्षणात् ॥ २८० ॥

सन्निपातंतथारौद्रंत्रयोदशविधंचतत् ।

कर्णशूलञ्चहिक्काञ्चमूर्च्छाञ्चैवविशेषतः ॥ २८१ ॥

अर्थ—काकडाशिंगी, भारंगी, हरड, जीरा, पीपल, चिरायता, पित्तपापडा, देवदारु, वच, कूट, जवाँसा, कायफल, सोंठ ॥ २७७ ॥ नागरमोथा,

धनिया, कुटकी, इन्द्रजौ, नरकचूर, पाद, रेणुका, गजपीपल, चिरचिरा, पीपलामूल, चीता ॥ २७८ ॥ नीम, अमलतास, त्रायमान, इन्द्रायण, वापची, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अजवायन, अजमोद ये सम भाग लेकर ॥ २७९ ॥ इन सबका काढा बना उसमें अदरकका रस और हींग मिलाकर पीनेसे अभिन्यासादि तेरह प्रकारके सन्निपात दूर होतेहैं ॥ २८० ॥ २८१ ॥

ग्रन्थन्तरोक्तः—कर्णशोथे ।

कर्णशूलोत्थशोथेतुशस्तरक्तस्यमोक्षणम् ।

प्रलेपान्कफपित्तघ्नान्नस्यानिकवलग्रहान् ॥ २८२ ॥

लेहांश्चकफवातघ्नान्युज्ज्याच्चत्रिफलाघृतम् ।

कुलत्थकट्फलेशुण्ठीकालाजाजीसमांशकैः ॥ २८३ ॥

कर्णशोथहरोलेपःसन्निपातज्वरेभृशम् ।

बीजपूरकमूलानिअग्निमन्थंतथैवच ॥ २८४ ॥

सनागरदेवदारुरास्त्राचित्रकपेषितम् ।

प्रलेपनमिदंश्रेष्ठंगलेश्वयथुनाशनम् ॥ २८५ ॥

अर्थ—सन्निपातरोगके विषय कर्णमूलमें सूजन होय तो रुधिर निकलवाना, कफपित्तनाशक प्रलेप करना, नस्य, कुले, कफवातनाशक अवलेह और त्रिफला, घृत प्रयोग करना चाहिये । कुलथी, कायफल, मांठ और कालाजीग इन सबको समानभाग ले पीसकर लेपन करनेसे कर्णशूलज शोथ नष्ट होताहै । विजोरे की जड़, अग्नी, मांठ, देवदारु, गयसन और चीता इनको पीसकर लेप करनेसे गलेकी सूजन दूर होतीहै ॥ २८२ ॥ २८३ ॥ २८४ ॥ २८५ ॥

रसरत्नाकरोक्तः ।

सन्निपातभैरवोगसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधंशुद्धताम्राभ्रटंकणम् ।

जम्बीररसमध्यस्थंदोलायंत्रेपचेदिने ॥ २८६ ॥

१ घोर अभिन्यासचर व तन्द्राको तत्काल दूर करदेताहै तथा १३ प्रकारके सन्निपात, और विशेषकर कर्णशूल हिचकी व मूर्च्छाको दूर करताहै ।

सर्पाक्षीविजयाब्राह्मीमीनाक्षीहंसपादिका ।

हस्तिशुण्डीरुद्रजटांधूर्तवातारिवायसी ॥ २८७ ॥

दिनैकमर्दयेदेभिलोहसंपुटगंपचेत् ।

दिनैकंवालुकायंत्रेसमुद्धृत्यविचूर्णयेत् ॥ २८८ ॥

आमलक्यादिभिव्योषजैपालबीजचित्रकैः ।

समैःसमरसोन्मिश्रयत्रिगुंजंभक्षयेत्सदा ॥ २८९ ॥

सन्निपातज्वरंहन्तिमुद्रयूषादिकंहितम् ।

क्षौद्रंजातीयुतापेयारसस्त्रिदोषभैरवः ॥ २९० ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, ताँबा, अभ्रक और सुहागा इन सबको समानभाग लेकर जंभीरी नीबूके रसमें रखकर एकदिन दोलायंत्रमें पचावै फिर सर्पाक्षी, भौंग, ब्राह्मी, मत्स्याक्षी, हंसपदी, हाथीशुंडा, रुद्रजटा, धतूरा, अंड, और मकोयके रसमें एक दिन मर्दन करके लोहसंपुटमें रख वालुकायंत्रमें एकदिन पकावै, तदनंतर सम्पुटसे निकाल चूर्णकर आमलाआदि, सोंठ, पीपल, मिरच, जमालगोटा और चीतेका रस इसमें मिला तनिगुंजाप्रमाण खानेसे सन्निपात-ज्वर नाश होताहै । इसमें पथ्य मूंगका यूप, मधु, और आमलेयुक्त पेया पीनी चाहिये यह त्रिदोषभैरव रस है ॥ २८६ ॥ २८७ ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥

सिंहनादो रसः ।

लोहपात्रगतेगन्धेद्रावितेतत्रनिक्षिपेत् ।

शुद्धंसूतंसमंचाभ्रंव्याघ्रीद्रावंद्रयोःसमम् ॥ २९१ ॥

निर्गुण्ड्याःस्वरसोत्थञ्चतुल्यंतुल्यंरसंक्षिपेत् ।

पचेन्मृद्रग्निनातावद्यावच्छुष्कंद्रवद्वयम् ॥ २९२ ॥

विषंपादयुतंचूर्णंसिंहनादोरसोत्तमः ।

गुंजाभ्रप्रदातव्यंसन्निपातज्वरान्तकम् ॥ २९३ ॥

अनुपानपिबेत्काथंकण्टकार्याःसपुष्करम् ।

गुडूचीनागराक्तमरुचिश्वासकासजित् ॥ २९४ ॥

अर्थ—लोहेके बरतनमें गंधक डालकर पिघलावे फिर उसमें शुद्धपारा और शुद्धअभ्रक समानभाग मिलादेवै, और दोनोंके समान कटेरीका रस

मिलवै, जवतक कटेरी और सम्हालूका रस न सूखजाय तबतक मृदुअग्निसे पचावै, फिर चौथाभाग विष मिलवै, इसप्रकार सिंहनादरस बनताहै । इस रसको एकरत्तीप्रमाण देना चाहिये, इससे सन्निपातज्वरका निःसन्देह नाश होताहै । अनुपान—कटेरीके काढेमें गिलोय, पोहकरमूल, और सोंठका चूरण डालकर इस रसके साथ पीवै, इससे अरुचि, श्वास, और काससंयुक्त सन्निपातज्वरका नाश होताहै ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ २९४ ॥

सन्निपातगजांकुशः ।

शुद्धसूतमृतआभ्रंशुद्धौतालकताम्रकौ ।

हिंगुञ्चतुल्यतुल्यांशमर्दयेत्कटुकद्रवैः ॥ २९५ ॥

वन्ध्यापटोलनिर्गुण्डीशुण्ठीगंधालिचित्रकैः ।

धत्तूरलांगलीपाठाभृंगीजम्बीरजद्रवैः ॥ २९६ ॥

त्रिदिनमर्दयेद्देभिशूणीकृत्यविमिश्रयेत् ।

त्रिक्षारसैन्धवंबोलंविषंमधुकमार्कवम् ॥ २९७ ॥

तुल्यंतुल्यंविचूर्ण्याथपूर्वोक्तंचइदंसमम् ।

एकीकृत्यभवेत्सद्यःसन्निपातगजांकुशः ॥ २९८ ॥

सन्निपातंनिहन्त्याशुमासमात्रंप्रयोजयेत् ॥ २९९ ॥

अर्थ—शुद्धपाग, मृतअभ्रक, शुद्धहरिताल, शुद्धताँवा, और हींग इनसबको समानभाग लेकर त्रिकुटेके काथमें मर्दन करें, फिर बाँगककांडा, परवल, सम्हालू, हाथीशुंडा, गंधालि (पसगन), चीता, धतूरा, कलिहारी, पाठ, भृंगराज और जम्बीरी नीबू, इनके रसमें तीनदिन मर्दन करके फिर जवाखार, सजीखार, सुहागा, सेंधानोन, एलुवा विष, महुआ और भांगरा, इन सबका समानभाग चूर्णकर मिलादेव, इस प्रकार सन्निपातगजांकुश रस तैय्यार होताहै, इसको एकमामा उद्धप्रमाण सेवन करनेसे सन्निपातरोगका नाश होताहै ॥ २९५ ॥ २९६ ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ २९९ ॥

अथ सन्निपातविध्वंसनो रसः ।

सूतगंधंसमंशुद्धंतालकंमाक्षिकंतथा ।

मृतताम्राभ्रकंबोलंविषंधत्तूरबीजकम् ॥ ३०० ॥

त्रिक्षारंरविषत्रंचहिंगुपाठापटोलकम् ।

वन्ध्याभृंगद्रवंशुंठीकन्दलांगलिकंसमम् ॥ ३०१ ॥
 सिन्धुवारद्रवैःसर्वमर्द्यजम्बीरजैरपि ।
 दिनैकंवटिकाकार्याचणकाभाञ्चभक्षयेत् ॥ ३०२ ॥
 अत्युग्रसन्निपातञ्चसर्वोपद्रवसंयुतम् ।
 निहन्तिचानुपानेनदशमूलार्कजेनवा ॥ ३०३ ॥
 कषायेणनसंदेहःपथ्यंदध्योदनंहितम् ।
 रसोविध्वंसनोनामसन्निपातनिकृन्तनः ॥ ३०४ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, शुद्धहरिताल, शुद्ध सोनामाखी, मृततांवा, अभ्रक, एलुआ, विष, धतूरेके बीज, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, आकके पत्ते, हींग, पाट, पटोल, बोंझ, ककोडा, भाँगेरेका रस, सोंठ और कलिहारी इन सबको समानभाग लेकर सम्हालू और जम्भीरी नीबूके रसमें एकदिन मर्दन कर चनेकी सहश गोली बनावै इन गोलियोंको खानेसे—अनेक उपद्रवों समेत और अत्युग्र सन्निपात नाश होजाताहै । इनका अनुपान—दशमूल और आकका काढ़ा है । पथ्य—दहीके साथ भातहै । यह सन्निपातविध्वंसनरस—सन्निपातनाशक है ॥ ३०० ॥
 ॥ ३०१ ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥

अथ पानीयकुमाररसः ।

अनाथनाथोजगदेकनाथ-
 स्त्रिलोकनाथःप्रथमःप्रसिद्धः ।
 जगादपानीयवटींसुपद्भिं
 तामेववक्ष्यामिगुरुप्रसादात् ॥ ३०५ ॥
 जयार्कस्वरसाचैवनिर्गुण्डीवासकंतथा ।
 वाट्यालकंकरंजञ्चसूर्यावर्तकचित्रकौ ॥ ३०६ ॥
 ब्राह्मीचसर्षपंचैवभृंगराजंविनिक्षिपेत् ।
 दन्तीचत्रिवृताञ्चैवतथारग्वधपत्रकम् ॥ ३०७ ॥
 सहदेवामरंभण्डीतथात्रिपुटभण्टिका ।
 शाल्मलीपिप्पलीचैवद्रोणपुष्पीचवायसी ॥ ३०८ ॥

गुंजकिर्नीकेशराजंतथायोजनवल्लिकाम् ।
 आशारमेतिविरुयातंधत्तूरकरसस्तथा ॥ ३०९ ॥
 त्रैलोक्यविजयाञ्चैवतथाश्चेतापराजिता ।
 प्रत्येकंकार्पिकंचैवस्वरसंतत्रदापयेत् ॥ ३१० ॥
 स्नुहीदुग्धमर्कदुग्धंवटदुग्धंतथैवच ।
 प्रत्येकंकार्पिकंक्षीरंपुनर्दत्त्वातुमर्दयेत् ॥ ३११ ॥
 नूनंसुमर्दितंज्ञात्वायदापिडत्वमागतम् ।
 द्रव्याण्येतानिसंचूर्ण्यवस्त्रपूतंविनिक्षिपेत् ॥ ३१२ ॥
 दग्धहीरंचातिविपंकोचिनामाभ्रकंतथा ।
 शोधितंपारदंचैवगंधकंविषमाह्वयम् ॥ ३१३ ॥
 माक्षिकंशोधितंचैवप्रत्येकंमापकद्वयम् ।
 नूनंसुमर्दितंदृष्ट्वाचांगेरीस्वरसेनवा ॥ ३१४ ॥
 तथायंभिपजादृष्ट्वातिलमात्रान्तुकारयेत् ।
 गुटिकांसुदृढांचैवमतिमान्कुशलोभिषक् ॥ ३१५ ॥
 त्रिदोषजेज्वरेवैद्यउक्तोवैद्यविचक्षणः ।
 लंघनैर्वालुकास्वेदैःकृान्तोऽतिदीपदर्शनः ॥ ३१६ ॥
 प्रपूज्यकरुणायानंप्रणम्यनाथसर्पणम् ।
 शरावेवारिणाघृष्ट्वाविंशत्येकांपिवेन्नरः ॥ ३१७ ॥
 पीत्वातंभेषजंपश्चाद्रस्त्रेवाच्छादयेन्नरः ।
 रसशुद्धिषुप्रज्ञत्वादद्याद्रारिसुशीतलम् ॥ ३१८ ॥
 शरावपरिमितंवारिपातव्यंचपुनःपुनः ।
 सन्निपातस्वरंचैवदाहंहन्तिमुदुस्तरम् ॥ ३१९ ॥
 कासंश्वासंज्वरंहिक्कांप्रमेहंचाश्मरींतथा ।
 कफपित्तकृतञ्चैवदाहंहन्तिनसंशयः ॥ ३२० ॥
 मूत्रवेगविबन्धेतुपातव्यंक्षीरसंयुतम् ।

पंचतृणकृतं काथं पातव्यं च पुनः पुनः ॥ ३२१ ॥

पानीयवटिका ह्येषा लोकनाथेन निर्मिता ।

लोकानामुपकाराय वटिका कथिता पुरा ॥ ३२२ ॥

अर्थ—अनाथोंके नाथ, जगतके नाथ और त्रैलोक्यके नाथ ऐसे प्रसिद्ध महेश्वरने प्रथम पानीयवटीको कहा है, सो अब गुरुके प्रसादसे पानीयवटीका वर्णन करता हूँ। अरणी, आक, तुलसी, घमिरा, सम्हालू, वासा, खिरैटी, करंज, सूर्यमुखी, चीता, ब्राह्मी और सरसों इन सबके चूरनमें दन्ती, निसोत, अमलतासेके पत्ते, सहदेवी, अमरभंडी, त्रिपुरभंडी, सेमल, पीपल, गूमा, मकोय, गुंजाकी जड़, भोंगरा, योजन, आशारमा, धतूरा, भोंग, सफेद कोयल और नीलीकोयल, इन सबका एकएक ४ मासा भर रस मिश्रितकर मर्दन करै, फिर थूहरका दूध, आकका दूध और बडका दूध यह सब दूध चार २ मासा भर मिश्रितकर मर्दन करै, जब मर्दन करते करते पिंडकी तरह गोला बनजाय, तब इनचीजोंको बख्खमें छानकर पिलादेवै, फिर उसमें हीरेकी भस्म, अतीस, कोचीनअभ्रक, शुद्धपारा, गंधक, विष और शुद्धसोनामाखी यह प्रत्येक दो २ मासेलेवे, पश्चात् इन सबका चूर्णबना मिलादे, फिर लोनियां रसमें मर्दन कर तिलकी समान गोली बनाले, तदनन्तर चतुरवैद्य करुणासागरशिवजीको नमस्कार कर एक सिकोरेमें पानीभर उसमें २१ इक्कीस गोलियोंको घिराकर पिलादेवै, फिर उस रोगीको बख्खसे ढकदे और बत्तीसतोले पानी कईवार करकै पिलादे; इस प्रकार करनेसे सन्निपातज्वर, उग्रदाह, खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्रमेह, पथरी और कफपित्तसे उत्पन्न दाहको निःसन्देह दूर करै। और मूत्रका वेग बन्द होजाय तब इन गोलियोंको दूधमें घोलकर पीना चाहिये। और ऊपरसे पंचतृण (शाली, ईख, कुशा, काँस और रामसर) का काथ बारंवार पीवै, यह पानीयवटी शंकरने संसारके लिये निर्माण की है ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥ ३२२ ॥

अथ बृहत्कस्तूरीभैरवरसः ।

मृगमदशशिसूर्याधातकीशूकशिबी

रजतकनकमुक्ताविद्रुमंलोहपाठा ।

क्रिमिरिपुचनविश्वावारितालाभ्रधात्री

रविदलरसपिष्टंकस्तुरीभैरवोऽयम् ॥ ३२३ ॥
 कस्तूरीभैरवाख्यातःसर्वज्वरविनाशनः ।
 आर्द्रकस्यरसैःपेयोविषमज्वरनाशनः ॥ ३२४ ॥
 द्वन्द्वजान्भौतिकान्वापिज्वरान्कामादिसंभवान् ।
 अभिचारकृतांश्चैवतथाशत्रुकृतान्पुनः ३२५ ॥
 निहन्याद्भक्षणादेवडाकिन्यादियुतांस्तथा ।
 बिल्वचूर्णजीरकाभ्यामधुनासहपानतः ॥ ३२६ ॥
 आमातीसारग्रहणीज्वरातीसारमेवच ।
 अग्निदीप्तिकरःशान्तःकासरोगनिकृन्तनः ॥ ३२७ ॥
 दुर्बलंदुर्ग्रहंवापिनाडीसूक्ष्मकृतंपुनः ।
 दीपयेद्भक्षणादेवमेहरोगंमलीमकम् ॥ ३२८ ॥
 जीर्णज्वरंनूतनंवाद्वैकालिकसन्ततम् ।
 प्रक्षिप्तंभौतिकंवापिहन्तिसर्वान्विशेषतः ॥ ३२९ ॥
 हरितंवातरोगंवापाण्डुरोगंगलग्रहम् ।
 ऐकाहिकंद्वाहिकंवात्र्याहिकंचातुराहिकम् ॥ ३३० ॥
 पंचाहिकंपष्टसंस्थंपाक्षिकंमासिकंपुनः ।
 सर्वाञ्ज्वरान्निहन्त्याशुभक्षणादार्द्रकद्रवैः ॥ ३३१ ॥

अर्थ—कस्तूरी, कपूर, तौबा, धायके फूल, रूपा, सोना, मोती, मृंगा, लोहा, पाद, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, सुगंधवाला, हगिताल, अभ्रक, और आमला इन सबको आकके पत्तोंके रसमें मर्दनकरनेसे बृहत्कस्तूरीरस तैयार होता है । यह कस्तूरीभैरवनामवाला रस सर्वज्वरनाशकहै । इसको अदरखके रसके साथ पीनेसे विषमज्वर नाश होताहै, तथा द्वन्द्वज्वर, भूतज्वर, कामादिसे उत्पन्नहुए ज्वर, अभिचारकृतज्वर, शत्रुकृतज्वर और डाकिनी आदि दोषांयुक्त ज्वर नाश होताहै । बेलगिरी और जीरा इन दोनोंका चूर्णकर सहतमें मिला उसमें कस्तूरीभैरवरस मिलाकर चाटनेसे—आमातीसार, संग्रहणी, ज्वरातिमार और खाँसी दूर होतीहै, अग्निदीपन होताहै और कासरोग नष्ट होता है अदरखके साथ भक्षणकरनेसे दुर्बलता, दुर्ग्रह, नाडीव्रण, प्रमेह, हलीमक, जीर्ण-

ज्वर, नवीनज्वर, द्विकालिकज्वर, सन्ततज्वर, भूतज्वर, वातरोग, पाण्डुरोग, गल ग्रह, ऐकाहिक, द्वाहाहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, पंचाहिक, षष्ठाहिक, पाक्षिक और मासिक तथा सर्वप्रकारके ज्वरोंको दूर करदेवैहै ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥ ३३१ ॥

अथ बालरसवटिका ।

श्लक्ष्णपत्राणिताम्राणिअर्कक्षीरेणभावयेत् ।
 ततोवज्रपयसिचकांजिकेलवणान्विते ॥ ३३२ ॥
 पुटांश्चक्रमशोदत्त्वाद्रावयेत्पंचधापुनः ।
 ताम्रंभागंभवेदेकंद्वौभागौगंधकस्यच ॥ ३३३ ॥
 माक्षिकस्यार्द्धभागेनपुटेगजपुटेपचेत् ।
 म्रियतेनात्रसन्देहःसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ ३३४ ॥
 रसस्यगन्धकस्यापिप्रत्येकंमाषकद्वयम् ।
 भृंगञ्चकेशराजञ्चग्रीष्मसुन्दरमेवच ॥ ३३५ ॥
 मण्डूकपर्णिकाचैवसिन्धुवारस्तथैवच ।
 श्वेतापराजितामूलंशालिञ्चकालमाविषम् ॥ ३३६ ॥
 सूयावर्त्ततथैपाञ्चतुर्मापकसम्मितैः ।
 प्रत्येकंस्वरसेखल्वेशिलायामवधानतः ॥ ३३७ ॥
 लेपयेत्ताम्रगुडिकाघृष्टंतत्कज्जलीयुतम् ।
 क्षिप्वातच्चक्षिपेच्चूर्णमापकंस्वर्णमाक्षिकात् ॥ ३३८ ॥
 मरिचाच्चूर्णमाषञ्चततोघृष्टंपुनःपुनः ।
 राजीप्रमाणवटिकाछायाशुष्काविशेषतः ॥ ३३९ ॥
 पानीयवटिकासेयंदेयावैद्यविवर्जिते ।
 सम्यक्परीक्षिताऽसाध्येसन्निपातेप्रदीयते ॥ ३४० ॥

अर्थ—ताँबेके सूक्ष्मपत्रकर आकके दूधकी भावना देवै. फिर क्रमसे थूहरके दूधमें तथा लवणसंयुक्तकाँजीमें पाँचप्रकार द्रावित करै, इस प्रकार शुद्ध किया-हुआ ताँबा एकभाग, गंधक दोभाग और सोनामाखी आधाभागलेकर गजपु-

टमें पचानेसे ताँबेकी भस्म होजातीहै, यह भस्म सर्वयोगोंमें प्रयोगकरनी योग्यहै । दोमासे पारा और दोमासे गन्धक इन दोनोंकी कजली बना उस कजलीको लेकर भाँगरा, कुकुरभाँगरा, ग्रीष्मसुन्दर, मण्डूकपर्णी, सम्हालू, सफेदकोयलकी जड, शालिचशाक, कालशाक और सूर्यावर्त इन हरेकका चार चार मासे रस ले उस रसमें पूर्वोक्त कजलीको मिला खरलमें खरलकर फिर उक्त ताँबेपै कजलीका लेप करै, तत्पश्चात् चूर्णकर एकमासा सोनामाखी और एक मासा कालीमिरचका चूरन मिला बारंवार घिस राईकी बराबर गोली बनाकर छायामें सुखादेवै, यह पानीयवटिका बालकोंके सन्निपातमें और असाध्यसन्निपातमें दीजातीहै ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥ ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥ ३४० ॥

अथ बालरसः ।

शाणंशुद्धस्यसूतस्यगन्धकस्यचतत्समम् ।

ऽवर्णमाक्षिकस्यापिअर्द्धभागंप्रयोजयेत् ॥ ३४१ ॥

ततःकजलिकांकृत्वालौहपात्रेदृढेनवे ।

केशराजस्यभृंगस्यनिर्गुण्ड्याःपत्रसंभवम् ॥ ३४२ ॥

शुभेशिलामयेपात्रेलौहदंडेनमर्दयेत् ।

शुद्धमातपसंयोगाद्गुडिकांकारयेत्ततः ॥ ३४३ ॥

प्रमाणंसर्षपांकारंबालानाञ्चैवयोजयेत् ।

हन्तित्रिदोषजंभूतंज्वरंचैवसुदारुणम् ॥ ३४४ ॥

चिरज्वरञ्चकासंचशूलंसर्वगदन्तथा ।

शिशूनांरोगनाशायरसोऽयंशिवनिर्मितः ॥ ३४५ ॥

अर्थ—चारमासेपारा, चारमासेगन्धक और दोमामे सोनामाखी, इन सबको लेकर लोहेके बरतनमें कजली बना फिर कुकुरभाँगरा, भाँगरा, और सम्हालूके पत्तोंके रसमें लोहेके दण्डमे पत्थरके बरतनमें मर्दन करै, तदनन्तर धूपमें सुखाके सरसोंकी बराबर गोली बनाले । यह गोली बालकोंको देनी चाहिये, इससे सन्निपातज्वर, भूतज्वर, दारुणज्वर, जीर्णज्वर, खाँसी, शूल और सर्वप्रकारके रोग दूर होतेहैं । यह बालरस बालकोंके गंगोंको दूर करनेके लिये शिवजीने निर्माण कियाहै ॥ ३४१ ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥

अथ रसशोधनम् ।

त्रिशारैःपंचलवणैर्दिनैकमर्दयेद्रसम् ।

राजिकानागरंहिंगुणभिर्मूषान्तुकारयेत् ॥ ३४६ ॥

मूषान्तर्वर्तितसूतरुद्धावस्त्रेणबन्धयेत् ।

आरनलेनतत्पाच्यंदोलायंत्रेदिनत्रयम् ॥ ३४७ ॥

आदायमर्दयेत्खल्वेसूततुल्यैर्द्रवैःपृथक् ।

निर्गुण्डीभृंगधत्तरशताह्वागिरिकर्णजैः ॥ ३४८ ॥

मण्डूरीकाकमाचीचकविकर्णार्द्रकद्रवैः ।

करवीराग्निपाठाभिरेभिर्मर्द्यःक्रमाद्रसः ॥ ३४९ ॥

अर्थ—जवाखार, सजी, सुहागा, सैधानोन, कालानोन, कचियानोन, विड-
नोन और सामग्नोनके साथ पारेको एक दिन मर्दनकर फिर राई, सोंठ और
हींग इनको पीस मूषा बनालेवै, उस मूषामें पारेको रख वस्त्रमें बाँध कांजीमें
दोलायंत्रके द्वारा तीन दिन पचावै, तदनन्तर, सम्हालू, भाँगरा, धतूरा, सोंफ,
कोयली, मण्डूरी, मकोय, हस्तिकर्ण, पलाश, अदरख, कनेर, चीता, पाद
इनके रसमें पारेको क्रमसे मर्दन करैतौ पारा शुद्ध होजाताहै ॥ ३४६ ॥
॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥

अथ कालाग्निरुद्ररसः ।

मरिचंगंधतुल्यंचक्षिष्वापितैर्विभावयेत् ।

मायूरमात्स्यवाराहच्छागमाहिषजैरपि ॥ ३५० ॥

समस्तैरथवाव्यस्तैर्दिनैकंभावयेद्रसम् ।

संयोज्यगरलंचापिवटिकांकारयेद्बुधः ॥ ३५१ ॥

रसःकालाग्निरुद्रोऽयंद्विगुंजंभक्षयेत्ततः ।

शर्करालघुतोयंचपाययेत्स्नापयेज्जलैः ॥ ३५२ ॥

दाण्डमंचैरुदण्डश्चदध्यम्लंपथ्यमाचरेत् ।

सद्योपचारैरन्यैश्चसन्निपातंनिवारयेत् ॥ ३५३ ॥

सकटां वृष्टिं जिह्वांकासश्वासातिजिनिताम् ।

सद्यःकरोतिसुस्निग्धांपूर्वतारसमन्विताम् ॥ ३५४ ॥

सूतंबधिरसेवञ्चस्वस्तिजिह्वामरोचकम् ।

असाध्यसन्निपातेचरोगिणांपटुतांनयेत् ॥ ३५५ ॥

अर्थ—काली मिरच और गंधकको बराबर लेकर मयूर, मच्छ, सुअर, बकरा, और भैंसा इनके पित्तमें भावना देवै, तदनन्तर इनसबमें एक बार अथवा अलग अलग पारेको भावना देवै, फिर सबको मिला तिसमें विषमिश्रित कर गोली बनालेवै । इस कालाग्निरुद्रसकी मात्रा दोरत्तीकी है । अनुपान—शर्करा, मधु और जल है । पथ्य-शीतलजलसे स्नान, ईख, दधि, और अम्लरस है । यह सन्निपातको दूर करेहै तथा कण्टकयुक्त और कठोर जीभ इसमें चिकनी होजातीहै और खाँसी, श्वास, जिह्वाग्रेग, अरुचि और असाध्यसन्निपातरोग नष्ट होताहै ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥ ३५२ ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥

दोषोल्पोहितसंभूतोज्वरोत्सृष्टस्यवापुनः ।

धातुमन्यतमंप्राप्यकरोतिविषमज्वरम् ॥ ३५६ ॥

नमुंचतिज्वरोयस्यपक्षादूर्ध्वशरीरिणः ।

मन्दवेगोऽनुबंधश्चसज्वरोजीर्णतांगतः ॥ ३५७ ॥

त्रिसप्ताहव्यतीतन्तुज्वरोयस्त्वणुतांगतः ।

प्लीहाग्निसादंकुरुतेसजीर्णज्वरउच्यते ॥ ३५८ ॥

जीर्णज्वरेकफेक्षीणेशीरंस्यादमृतोपमम् ।

तदेवतरुणेपीतंविषवद्भन्तिमानवम् ॥ ३५९ ॥

चतुर्गुणेनाम्भसावाशृतंज्वरहरंपयः ।

धारोष्णंवापयःसद्योवातपित्तज्वरंजयेत् ॥ ३६० ॥

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ।

मुच्यतेज्वरितःपीत्वापंचमूलीशृतंपयः ॥ ३६१ ॥

यःस्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यांतथैवच ।

वेगतश्चापिविषमःसज्वरोविषमःस्मृतः ॥ ३६२ ॥

अर्थ—ज्वरमुक्तमनुष्यके अल्पदोषभी कुपथ्य आहारादिद्वारा कुपित होकर रक्तादि किसी धातुको प्राप्तहो विषमज्वरको उत्पन्न करेहै । जो ज्वर पंद्रह

दिनमेंभी न उतरे और मंदवेगयुक्तहो, उसको जीर्णज्वर कहते हैं, अथवा जो ज्वर इक्कीसदिनके पश्चात् मन्दवेगान्वित होकर घृहीत और अग्रिमन्द्यको उत्पन्न करै है, उसको जीर्णज्वर कहते हैं । जीर्णज्वरमें कफ क्षीण होनेपर दूधका पीना अमृतकी समान गुणदायक है । किन्तु तरुणज्वरमें वही दूध विषकी समान अपकारी जानना । चारभाग जलमें एक भाग दूध मिलाकर अग्रिममें पकावै जब जल जलकर दूध शेष रहै तब उतार शीतलकर पीवै, इससे जीर्णज्वर नाश होता है । धारोष्ण अथवा तत्कालका दूध—वातपित्तज्वरनाशक है । पंचमूलके चूर्णके साथ औटायाहुआ दूध पीनेसे खाँसी, श्वास, शिरशूल, पसलीकी पीडा, और पीन-सरोग दूर होजाता है । और जो अकालमें शीत तथा उष्णतासे वेगवाला ज्वर उत्पन्न हो, उसको विषमज्वर कहते हैं ॥ ३५६ ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥ ३५९ ॥ ॥ ३६० ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥

मुस्तादिः ।

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकंटकारिकाकाथः ।

शीतः सकण्डः समधुर्विषमज्वरान्हन्ति ॥ ३६३ ॥

अर्थ—नागरमोथा, आमला, सोंठ और कटेरी इनका काथ शीतलकर मधु और पीपलके चूर्णके साथ सेवनकरनेसे विषमज्वर दूर होता है ॥ ३६३ ॥

अजाजीगुडसंयुक्ताविषमज्वरनाशिनी ।

अग्निसादंजयेत्सम्यग्वातरोगांश्चनाशयेत् ॥ ३६४ ॥

रसोऽनन्तः तिलतैलमिश्रं

योश्चातिनित्यं विषमज्वरार्तः ।

विमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण

वातामयैश्चापि सुघोररूपैः ॥ ३६५ ॥

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः ।

काथस्तृतीयकंहन्ति शर्करामधुसंयुतः ॥ ३६६ ॥

अर्थ—जीरेको गुड़के साथ सेवन करनेसे विषमज्वर, मन्दाग्नि और वातरोगका नाश होता है । लसुनको पीस तिलके तेलमें मिलाकर सेवन करनेसे—विषमज्वर और वातरोग दूर होते हैं । सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चन्दन, खस और धनियाँ इनका काढ़ा चीनी और मधुके साथ सेवन करनेसे तृतीयकज्वर आरोग्य होता है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥

निदिग्धिकादिः ।

निदिग्धिकान गरकामृतानां

क्वाथंपिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ।

जीर्णज्वरारोचककासशूल-

श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ ३६७ ॥

अर्थ—कटेरी, साँठ और गिलोय इनके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण बुरकाकर पीनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खाँसी, शूल, श्वास, मन्दाग्नि, अर्दित और पीनसादि रोग दूर होतेहैं ॥ ३६७ ॥

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः ।

सितामधुघृतःक्वाथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ ३६८ ॥

विदारीक्षुरसंसर्पिर्मधुतैलशृतंपयः ।

पिबेच्चातुर्थिकश्वासकासवातरुजापहम् ॥ ३६९ ॥

अर्थ—विसोंठा, आमला, शरिवन, देवदारु, हरड और साँठ इनका काढ़ा चीनी और मधुके साथ पीनेसे चातुर्थिकज्वर नाश होताहै ॥ ३६८ ॥ विदारी-कन्द, ईखका रस, घृत, मधु और तेल, इनको दूधमें पकाकर पीनेसे चातुर्थिकज्वर, श्वास, खाँसी, और वातरोग नष्ट होताहै ॥ ३६९ ॥

अष्टांगधूपः ।

पलंकपानिम्बपत्रंवचाकुष्ठंहरतीक्री ।

सर्षपाःसयवाःसर्पिर्वृषपनंज्वरनाशनम् ॥ ३७० ॥

अर्थ—गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूट, हरड, ससौं, जी और घृत इन सबको एकत्र कर धूप देनेसे ज्वर आराम होताहै ॥ ३७० ॥

ज्वराःकषायैर्वमनैःपानैर्वालयुभोजनैः ॥

रूक्षस्ययेनशाम्यन्तिसर्पिस्तेषांभिषग्जितम् ॥ ३७१ ॥

अर्थ—रूखे मनुष्यके जो ज्वर कषाय, वमन, पाचन और लघुभोजनसे शांत नहीं होते तो उसकी घृतके द्वारा वैद्य चिकित्सा करे ॥ ३७१ ॥

१ भिषग्जितचिकित्सितं भैषज्यमिति ।

क्षीरषट्पञ्च घृतम् ।

पंचकोलैःससिन्धूत्थैःपलिकैःपयसासमम् ।

सर्पिःप्रस्थंशृतंप्लीहविषमज्वररुह्यत ॥ ३७२ ॥

अत्रद्रवान्तरानुक्तौक्षीरमेवचतुर्गुणम् ।

द्रवान्तरेणयोगेनक्षीरंस्नेहसमंभवेत् ॥ ३७३ ॥

अर्थ—पंचकोल और सेंधानोन, चार चार तोले और इनसबकी बराबर दूध और चौंसठ तोले घी इनसबको मिलाकर घृत सिद्ध करै । यह घृत विषम ज्वर, प्लीहा और गुल्म नाशक है ॥ ३७२ ॥ यहां अन्य कोई वस्तु नहीं कही है इसकारण दूधही चौगुना गेरना चाहिये । और जहां पानीमें काथ करै तो घृतके समान दूध गेरना चाहिये ॥ ३७३ ॥

पिप्पलाद्यं घृतम् ।

पिप्पलीचन्दनंमुस्तमुशीरंकटुरोहिणी ।

कलिंगकास्तामलकींशारिवातिविषेस्थिरा ॥ ३७४ ॥

द्राक्षामलकबिल्वानित्रायमाणानिदिग्धिका ।

सिद्धमेभिर्घृतंसद्योज्वरंजीर्णव्यपोहति ॥ ३७५ ॥

क्षयंकासंशिरःशूलंपार्श्वशूलमरोचकम् ।

अंगाभितापमग्निश्चविषमंचनियच्छति ॥ ३७६ ॥

पिप्पलाद्यमिदंकापितंत्रेक्षीरेणपच्यते ।

यत्राधिकरणेनोक्तंगणेस्यात्स्नेहसंविधौ ॥ ३७७ ॥

तत्रैवकल्कनिर्यूहाविष्येतेस्नेहवेदिना ।

एतद्वाक्यबलेनैवकल्कसाध्यमिदंघृतम् ॥ ३७८ ॥

अर्थ—पीपल, चन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रजव, भुईआवला, अनन्तमूल, अतीस, शालपर्णी, दाख, आमला, बेल, त्रायमान और कटेरी इन सबको समानभाग लेवै और यह सर्वतोलमें सेरभर हो, घृत चारसेर और दूध छै सेर लेवै (और किसीके मतसे दूध बिलकुल नहीं लेवै) फिर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करै । यह घृत प्लीहा हुआ घृत जीर्णज्वरको दूर करै है और नवीन ज्वरकोभी दूर करै है, तथा क्षय, खाँसी शिरशूल, पार्श्वशूल,

अरुचि, अंगाभिताप और विषमाग्निको शमन करैहै । यह पिप्पल्यादत्त किसी तंत्रमें तौ दूधमें सिद्ध होताहै और किसीके मतसे नहीं होताहै । और जिस अधिकरणमें तौ नहीं कहाहोवै और गणमें स्नेहविधि हो, उस जगह स्नेहके जाननेवाले वैद्योंको कल्क और निर्यूह (काढा) समझना चाहिये ॥ ३७४ ॥
॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥ ३७८ ॥

दशमूलषट्पलकं घृतम् ।

दशमूलीरसैः सर्पिः सक्षीरैः पंचकोलकैः ।

सक्षीरैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः ॥ ३७९ ॥

वातपित्तकफव्याधीन्प्लीहानश्चापि पाण्डुताम् ।

काथंचतुर्गुणं कार्यक्षीरंच सममेव च ॥ ३८० ॥

चतुर्यष्टिपलं काथ्यं शरावास्तत्समाजलात् ।

पादशेषः कषायोऽत्र क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ ३८१ ॥

अर्थ—दशमूलके काढें—पीपलामूल, चव्व, चीता और सांठ तथा जवा-
खारका कल्क मिला और घी, दूध समान भाग मिश्रित कर घृत सिद्ध करै, इस-
घृतको खानेमें—ज्वर, खाँसी, मन्दाग्नि, वात, कफ, पित्तरोग, प्लीहा, पाण्डुरोग
यह सब दूर होतेहैं ॥ ३७९ ॥ ३८० ॥ ३८१ ॥

चन्दनाद्यं घृतम् ।

चन्दनं चिचिं कंशिहं मुस्तकं च सनागरम् ।

काकोलीत्रायमाणा च धात्र्युक्षीरद्विसारिवे ॥ ३८२ ॥

एतान्यर्द्धपलांशानि सौम्यवारे समहरेत् ।

क्षीराढकं समायुक्तं सर्पिः सार्द्धं तुलां पचेत् ॥ ३८३ ॥

चातुर्थिकज्वरेशस्तमुन्मादविषमज्वरम् ।

द्वयाहिकंश्वासकासौ च सर्वापस्मारनाशनम् ॥ ३८४ ॥

अर्थ—चन्दन, चीता, कटेरी, नागरमोथा, सांठ, काकोली, त्रायमाण, आमला,
खस, अनन्तमूल और करियावासाऊ, इन सब औषधियोंको चार चार तोले
सोमवारके दिन लेवै, तीनसीछप्पन तोले दूध और दोसौ तोले घृत लेवै, इन-
सबको मिलां घृत तय्यार करै, यह ज्वर, चातुर्थिकज्वर, उन्माद, विषमज्वर ,

द्व्याहिकज्वर, श्वास, खाँसी और सर्वप्रकारके अपस्मार रोगोंको दूर करैहै ॥
॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥ ३८४ ॥

अंगारकतैलम् ।

मूर्वालाक्षाहारैद्रेद्रेमंजिष्ठासेन्द्रवारुणी ।

बृहतीसैन्धवंकुष्ठं रास्नामांसीशतावरी ॥ ३८५ ॥

आरनालाढकेनैवतैलप्रस्थं विपाचयेत् ।

तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ३८६ ॥

(अंगारको मंगलः)

इदं लोके मङ्गलतैलम् ।

अर्थ—मूर्वा, लाख, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, कटेरी, सैंधानोन कूट, रास्ना, जटामांसी और सतावर, इन सबका कल्क एकसेर, काँजी छैसेर और तिलोंका तेल चारसेर लेंवै फिर तेलको पका लगानेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होतेहैं ॥
॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

पिप्पल्यादिर्यथा ।

शुक्तारनालं दधिमस्तुतक्रं

फलाम्लभागेन ममं हितैलम् ।

कृष्णादिकल्कैर्मृदुवह्निसिद्ध-

मभ्यंजनं वातकफज्वराणाम् ॥ ३८७ ॥

एकाहिकद्वित्रिचतुर्थकाणां

मासार्द्धमासद्वयमासकानाम् ।

निवारणं तद्विषमज्वराणां

स्नेहादिषट्कद्वारकं महत्स्यात् ॥ ३८८ ॥

शुक्तं कांजिकम् । दधिमथिततक्रम् मातुलुंगरसः ।

अर्थ—शुक्तकाँजी, दहीका पानी, मट्ठा और बिजोरे नीबूका रस और इनमेंसे एककी बराबर तेल लेकर पिप्पल्यादि गणके कल्कमें मिलाकर मृदु आग्निसे तेल सिद्ध करै, यह तेल लगानेसे—वातकफज्वर, एकाहिक ज्वर, द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर, पाक्षिकज्वर, मासिकज्वर, त्रिमासिकज्वर, और विषमज्वरादिको दूरकरताहै ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥

अथ महालाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसाढकेप्रस्थतैलस्यविपचेद्विषक् ।

मस्त्वाढकसमायुक्तं पिष्ट्वाचात्रसमावपेत् ॥ ३८९ ॥

शतपुष्पांहरिद्रांचमूर्वाकुष्ठं हरेणुकाम् ।

कटुकामधुकं रास्नामश्वगंधांचदारुच ॥ ३९० ॥

मुस्तकंचन्दनञ्चैव पृथगक्षसमानकैः ।

द्रव्यैरेतैस्तु तत्सिद्धमभ्यंगान्मारुतापहम् ॥ ३९१ ॥

विषमाख्याञ्ज्वरान्सर्वानाश्वेषप्रशमनयेत् ।

कासंचप्रतिश्यायंच कण्डूदौर्बल्यगौरवम् ॥ ३९२ ॥

त्रिकपृष्ठकटीशूलंगात्राणां स्फुटनंतथा ।

पापालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३९३ ॥

अश्विभ्यानिर्मितं सम्यक् तैलं लाक्षादिकं महत् ॥ ३९४ ॥

अत्र दोलायंत्रविधानात् षड्गुणजलेन लाक्षामे-

कविंशतिवारान्परिस्ताव्य लाक्षारसो ग्राह्य इति वृद्धाः ३९५

अर्थ—लाखकारस २५६ दोसीछप्पन तोले, दहीकापानी २५६ दोसीछप्पन तोले इनमें चौंसठतोले तिलके तेलको पकावै, फिर सोंफ, हलदी, मूर्वा, कूठ, रेणुका, कुटकी, महुआ, रास्ना, असगंध, देवदारु, नागरमोथा और चन्दन, यह सब औषधी एक एक तोले ले महीन पीस उसमें मिलाकर तेलको सिद्ध करे इस तेलको मलनेसे वातरोग, सर्वप्रकारके, विषमज्वर, खाँसी, प्रतिश्याय, खुजली, दुर्बलता, शरीरकी गुरुता, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, शरीरमें दर्द, शरीरका फटजाना, पाप, अलक्ष्मी और सर्वग्रहदोष दूर होतहैं । यह महालाक्षादितैल श्रीमान् अश्विनीकुमारने निर्माण कियाहै । यहाँ दोलायंत्रमे छेगुने जलमें लाखको इक्कीसबार टपकाके रस निकालकर ग्रहण कियाजाता है । इस प्रकार वृद्ध आचार्योंने कहाहै ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥ ३९१ ॥ ३९२ ॥ ३९३ ॥ ३९४ ॥ ३९५ ॥

सुदर्शनचूर्णम् ।

कालीयकस्तुरजनीदेवदारुचाम्पकम् ।

अभयाधन्वयासञ्च शृंगीक्षुद्रमहौषधम् ॥ ३९६ ॥

त्रायन्तीपर्पटंनिम्बंग्रन्थिकंवालकंशठी ।

पूष्करंभागधंमूर्वाटजंमधुयष्टिका ॥ ३९७ ॥

शिग्रूत्तलंचेन्द्रयवापाठादार्वीचन्दनम् ॥

पद्मकंचबलोशीरत्वचंसौराष्ट्रमृत्तिका ॥ ३९८ ॥

यवान्यतिविषाबिल्वंमरिचंपत्रकंस्थिरा ।

आमलकंशिवाक्षश्चसचित्रकपटोलकम् ॥ ३९९ ॥

कलसी चैवसर्वाणिसमभागानिकारयेत् ।

सर्वद्रव्यस्यचाद्धेनकैरातंसंप्रकल्पयेत् ॥ ४०० ॥

एतत्सुदर्शनंनामज्वरान्हन्तिनसंशयः ।

प्राकृतंवैकृतंचैवसौम्यंतीक्ष्णमथापिवा ॥ ४०१ ॥

अन्तर्गतंबहिष्कंचनिरामंसाममेवच ।

ज्वरमष्टविधंहन्यात्साध्यासाध्यमथापिवा ॥ ४०२ ॥

नानादोषोद्भवश्चैववारिदोषोद्भवन्तथा ।

विरुद्धभेषजभवंज्वरमाशुव्यपोहति ॥ ४०३ ॥

अर्थ—पीलाचन्दन, हलदी, देवदारु, वच, नागरमोथा, हरड, जवासा, काक-
डाशिगी, कटेरी, सोंठ, त्रायमाण, पित्तपापडा, नीम, पीपलामूल, सुगन्धवाला,
नरकचूर, पोहकरमूल, पीपल, चूरनहार, कूडा, मुलैठी, सैंजिना, कमल, इन्द्रयव,
पाद, दारुहलदी, लालचन्दन, पद्माख, खिरैटी, खस, दालचीनी, सोरठकी
मिट्टी, अजवायन, अतीस, बेल, मिरच, तेजपात, शालपर्णी, आमला, भुईआ-
मला, बहेडा, चीता, परवल और पृश्निपर्णी, इन सब औषधियोंको समान
भाग लेंवै और इन सबसे आधाभाग चिरायता मिला चूरन करै यह सुदर्शन
नामवाला चूरन—निःसन्देह सर्वप्रकारके ज्वरोंको दूर करताहै । तथा प्राकृत
ज्वर, वैकृतज्वर, सौम्यज्वर, तीक्ष्णज्वर, अंतर्गतज्वर, बहिर्गतज्वर, निरामज्वर,
आमज्वर, घाटप्रकारका ज्वर, साध्यज्वर, असाध्यज्वर, नानाप्रकारके दोषोंसे
उत्पन्नहुआ ज्वर, पानीके दोषसे उत्पन्नहुआ ज्वर और विरुद्धऔषधियोंसे उत्प-
न्नहुआ ज्वर दूर होताहै ॥ ३९६ ॥ ३९७ ॥ ३९८ ॥ ३९९ ॥ ४०० ॥
॥ ४०१ ॥ ४०२ ॥ ४०३ ॥

चन्दनादिलौहम् ।

रक्तचन्दनह्रीबेरपाठोशीरकणाशिवा ।

नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेनसमन्वितः ॥ ४०४ ॥

लोहानिहन्तिविविधान्समस्तान्विषमज्वरान् ॥ ४०५ ॥

मुथाचिताविडंगइतित्रिमदम् ।

सर्वचूर्णप्रसृतं हचूर्णग्राह्यम् ।

अर्थ—लालचन्दन, सुगंधवाला, पाद, खस, पीपल, हरड़, सोंठ, कमल, आमला, नागरमोथा, चीता और वायविडंग इन सब औषधियोंको समान भाग लेवै और सबकी बराबर लोहा मिलावै, यह चन्दनादिलौह—सर्वप्रकारके विषमज्वरोंको दूर करताहै ॥ ४०४ ॥ ४०५ ॥

इति ज्वराधिकारः ।

अथज्वरातिसारचिकित्सामाह ।

ग्रन्थान्तरे-

पैत्तेज्वरेपित्तभवोऽतिसार-

स्तथातिसारेयदिवाज्वरः स्यात् ।

नेत्रादौ दृष्यस्यसमानभावो

ज्वरातिसारः कथितोभिषग्भिः ॥ ४०६ ॥

पृथक्छुभनिदानेनज्वरातीसारनिर्णयः ।

ज्वरातिसारिणामादौकुर्याल्लघनपाचने ॥ ४०७ ॥

प्रायस्तस्यामसम्बन्धंविनानभवतोयतः ।

ज्वरातिसारयोरुक्तंभेषजंयत्पृथक्पृथक् ॥ ४०८ ॥

नतस्मिन् द्वितयंकार्यमन्योऽन्यंवर्द्धयेद्यतः ।

प्रायोज्वरहरंभेदिस्तम्भनञ्चातिसारनुत् ॥ ४०९ ॥

अतोऽन्योन्यां विरुद्धत्वाद्बर्द्धनं तत्परस्परम् ।

व्यवस्यंज्वरौ द्विमुपेक्ष्य अनिलोबली ॥ ४१० ॥

पक्वोपिहिप्रकुर्वीतदोषःकोष्ठकृतेयतः ।

अतिसंवृतमानंवापाचनंसंग्रहंनयेत् ॥ ४११ ॥

अर्थ—अब ग्रन्थान्तरोंके मतसे ज्वरातिसारकी चिकित्सा कहतेहैं। पित्तज्वरमें पित्तसे उत्पन्नहुआ अतिसार, अथवा अतिसारमें ज्वर होजाय; तिसको दोष और दूष्यके समानभाव होनेसे भिषक्राज ज्वरातीसार कहते हैं। ज्वर और अतिसार इन दोनोंका पृथक् पृथक् निदानद्वारा ज्वरातीसार रोगका निर्णय करना। ज्वरातीसाररोगमें प्रथम लंघन और पाचन कराना चाहिये। कारण यह है कि—बिना आमके ज्वरातीसार उत्पन्न नहीं होताहै। ज्वर और अतिसारमें कहीहुई औषधि कभी भी ज्वरातिसारमें प्रयोग नहीं करनी चाहिये। कारण यह है कि—ज्वरनाशक औषधी प्रायः भेदक और अतीसारनाशक औषधी मल-स्तम्भक होतीहै। इसलिये दोनों परस्परमें रोगको बढ़ानेवाली हैं ॥ ४०६ ॥ ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥ ४०९ ॥ ४१० ॥ ४११ ॥

नागरादिः ।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवासकैः ।

सर्वज्वरहरःकाथःसर्वातीसारनाशनः ॥ ४१२ ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय और अडूसा इनका काथ सर्वप्रकारके ज्वर और सर्वप्रकारके अतीसार्गेको दूर करता है ॥ ४१२ ॥

पाठादिः ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तर्पटकामृताः ।

जयन्त्याममतीसारंसज्वरंवाथविज्वरम् ॥ ४१३ ॥

प्रक्षेपार्थंशुण्ठीचूर्णम् ।

अर्थ—पाद, इन्द्रजौ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापरा, गिलोय, इनका काढ़ा बना उसमें सोंठका चूर्ण बुरकाकर पीनेसे ज्वरयुक्त और बिना ज्वरका आमातीसार दूर होता है ॥ ४१३ ॥

द्विबिरादिः ।

द्विबिरोतिविषामुस्तबिल्वधन्याकमागधैः ।

पिबेत्पिच्छाविवन्धघ्नंशूलद्रोषामपाचनम् ॥ ४१४ ॥

सरक्तंहन्त्यतीसारंसज्वरंवाथविज्वरम् ॥ ४१५ ॥

अर्थ—सुगंधबाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, धनियाँ और पीपल इनका काथ—विबन्ध, शूलदोष और झागोंयुक्तआमको पाचन करै है । तथा ज्वर सहित अथवा ज्वररहित रक्तातिसारको हरै है ॥ ४१४ ॥ ४१५ ॥

बृहद्द्वीबेरादिः ।

द्वीबेरातिविपासुस्तबिल्वधन्याकवत्सकैः ।

समंगाधातकीलोध्रंविश्वंदीपनपाचनम् ॥ ४१६ ॥

हन्त्यरोचकपिच्छामंविबन्धंसातिवेदनम् ।

सशोणितमतीसारंसज्वरंवाथविज्वरम् ॥ ४१७ ॥

सरक्तेतिदृष्टफलः ।

अत्रप्रक्षेपशिमलिआठा ।

अर्थ—सुगंधबाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, धनियाँ, कुड़ा, मजीठ, धायके फूल, लोध और सोंठ इनका काढा—दीपन और पाचनहै । तथा अरुचि, झागोंयुक्तआम, वेदनासहितविबन्ध, रक्तातिसार, ज्वरसहित अतीसार, अथवा विनाज्वरके अतीसार दूर करै है ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥ यह रक्तातिसार मेरा कई बार अजमाया हुआ है ॥

उशीरादिः ।

उशीरंबालकंमुस्तंधन्याकंविश्वभेषजम् ।

समंगाधातकीलोध्रंबिल्वंदीपनपाचनम् ॥ ४१८ ॥

हन्त्यरोचकपिच्छामंविबन्धंसातिवेदनम् ।

सशोणितमतीसारंसज्वरंवाथविज्वरम् ॥ ४१९ ॥

धन्याकस्थानेभूनिम्बइतिपाठान्तरे ।

ज्वराधिकेयोज्यमिति ।

अर्थ—खस, सुगंधबाला, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, मजीठ, धायके फूल, लोध और बेलगिरी इनका काढा—दीपन और पाचन है । तथा अरुचि, झागों-युक्त आम, वेदनासहित विबन्ध, रक्तातिसार, ज्वरातिसार और ज्वररहित अति-सारको भी दूर करै है ॥ ४१८ ॥ ४१९ ॥ और कोई कोई बैद्य धनियेंके स्थानमें चिगयता डालते हैं ॥

जम्बवादिः ।

जम्बवाप्रपल्लवोशीरवटशुंगारविच्छदः ।

रसःकाथोऽथवाचूर्णमधुनासहयोजितः ॥ ४२० ॥

छर्दिज्वरातिसारञ्चतृष्णामूच्छाञ्चदुर्जयाम् ।

नियच्छत्यचिरं द्रक्तुतिञ्चानेकहेतुजाम् ॥ ४२१ ॥

इति ज्वरातीसाराधिकारः समाप्तः ।

अर्थ—जामन और आमके पत्ते, खस, बडके अंकुर, इनका रस काथ वा चूर्णको मधुके साथ सेवन करनेसे—वमन, ज्वरातीसार, तृषा, दुर्जयमूच्छा और अनेकारणोंसे रुधिरका गिरना दूर होताहै ॥ ४२० ॥ ४२१ ॥

इति ज्वरातीसाराधिकारः समाप्तः ।

अथातीसारचिकित्सामाह ।

शकृद्दुर्गन्धिसाटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ।

विपरीतनिरामन्तुकफात्पक्वन्तुमज्जति ॥ १ ॥

आमेविलंघनंशस्तमादौपाचनमेववा ।

कार्यञ्चानशनस्यास्तेप्रद्रवंलघुभोजनम् ॥ २ ॥

योतिद्रवंप्रभूतञ्चपुरीषमतिसार्यते ।

तस्यादौवमनंकुर्यात्पश्चालंघनमाचरेत् ॥ ३ ॥

नामेसंग्रहणंदद्यादतीसारेकदाचन ।

अकालेसंगृहीतोऽपिविकारान्कुरुतेबहून् ॥ ४ ॥

शोथपांड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ।

दण्डकालसकाध्मानग्रहणाशोर्गदास्तथा ॥ ५ ॥

क्षीणधातुबलार्तस्यबहुदोषातिविश्रुतः ।

आमोपिस्तम्भनीयःस्यात्पाचनान्मरणंभवेत् ॥ ६ ॥

स्थविराणांचबालानांबहुवेगोऽतिविश्रुतः ।

आमोऽपिस्तम्भनीयःस्यान्नतुपाचनमाचरेत् ॥ ७ ॥

वर्जयेद्वैदलंशूलीकुष्ठीमांसंक्षयीस्त्रियम् ।

द्रवमन्नमतीस रीसर्वश्चतरुणज्वरी ॥ ८ ॥

स्तोकंस्तोकंविबन्धवासशूलंयोऽतिसार्यते ।

अभयापिप्पलीकल्कैःसुखोष्णैस्तंविरेचयेत् ॥ ९ ॥

दीप्ताग्निर्बहुदोषोऽपिविबन्धमतिसर्यते ।

विडंगत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तंविपाचयेत् ॥ १० ॥

अर्थ—दुर्गन्धयुक्तमल उतरे, पेटमें गुड़गुड़ शब्द होय, विष्टम्भ, वेदना और प्रसेकसंयुक्त हो उसको आमातीसार कहतेहैं । इससे विपरीत होय तौ पक्कातिसार कहते हैं । कफके संयोगसे पक्कमल जलमें द्रवजाताहै । आमातिसारमें प्रथम लंघन अथवा आमपाचक औषध देनी चाहिये । लंघनके अंतमें पतला और लघु भोजन देना योग्य है । और जिस अतिसारवाले रोगीके अत्यंत पतला और अधिक मल उतरे, उसको प्रथम वमन और पश्चात् लंघन कराने चाहियें । आमातीसारमें कभीभी मलरोधक औषधि नहीं देनी चाहिये, कारण यह है कि-अकालमें संग्राहक औषधि देनेसे-सूजन, पांडुरोग, प्लीहा, कोढ, गुल्म, उदर-रोग, ज्वर, दंडक, अलसक, आध्मान, संग्रहणी और अर्शरोग उत्पन्न होताहै । धातुक्षीण, बलहीन, बहुतदोषोंसे पीडित, वृद्ध, बालक और अत्यन्त अतिसारके वेगोंसे युक्त रोगीके आमातीसार उत्पन्न होय तौ मलरोधक औषधि देनी चाहिये, कभीभी इनको पाचक औषधि नहीं देनी चाहिये । कारण यह है कि-आमके पचनेसे दुर्बल होकर मृत्युको प्राप्त होजातेहैं । शूलरोगी बैदल अन्न, कुष्ठ-रोगी मांस, क्षयरोगी स्त्रीप्रसंग, अतिसाररोगी पतला भोजन और तरुणज्वर-वाला रोगी इनसभी उपरोक्त अपथ्योंको त्यागदेवै, कुछ कुछ विबन्ध और शूलसंयुक्त मल उतरे तौ हरड और पीपलका कल्क बनाकर उष्णजलके साथ भक्षण करें । इससे दस्त होजायेंगे । दीप्ताग्नि और बहुतदोषयुक्त अतिसारवाले रोगीके विबन्धसहित मल उतरे तौ वायविडंग, त्रिफला और पीपल, इनका काथ पिलाना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

धान्यपंचकम् ।

धन्याकंनागरंमुस्तंबालकंबिल्वमेवच ।

आमशूलविबन्धघ्नपाचनंवह्निदीपनम् ॥ ११ ॥

अर्थ—धनियाँ, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और बेलगिरी, इनका काथ, आमशूल और विबन्ध नाशक है तथा पाचक और अग्निप्रदीपक है ॥ ११ ॥

नागरातिविषामुस्तैरथवाधान्यनागरैः ।

नृष्णाशूलातिसारग्रंपाचनंदीपनंलघु ॥ १२ ॥

हरीतकीसातिविषं हिं गुसौवर्चलान्वितम् ।

सैन्धवश्चसुचूर्ण्येदंपाययेदुष्णवारिणा ॥ १३ ॥

आमातिसारयोगेनयद्यनेननशाम्यति ॥

नतंयोगशतेनापिचिकित्स्योहिचिकित्सकैः ॥ १४ ॥

पाठावत्सकबीजानिहरीतकयोमहौषधम् ।

एतदामंसमुत्थानमतीसारंसवेदनम् ॥ १५ ॥

कफात्मजंसपित्तश्चवर्चोबध्नातिहिध्रुवम् ॥ १६ ॥

क्वाथेनचूर्णेनवा ।

कुलत्थस्वरसोदेयोऽर्जुनस्यसमाक्षिकः ।

जयत्याममतीसारंक्वाथोवाकुटजत्वचः ॥ १७ ॥

इति आमातीसारः ।

अर्थ—सोंठ, अतीस और नागरमोथा, अथवा धनियाँ और सोंठ, इनका क्वाथ तृपा, शूल और अतीसारनाशक है तथा पाचक, दीपन और हलका है ॥ १२ ॥ हरड़, अतीस, हींग, कालानोन और सेंधानोन इनका चूर्णकर गरम जलके साथ पीनेसे आमातीसार निःसन्देह दूर होताहै और जो इसयोगसे आमातीसार दूर न होवै तौ सैंकड़ों योगोंसे भी दूर न होगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ पाद, इन्द्रजी, हरड़ और सोंठ इनका क्वाथ अथवा चूर्ण करनेसे वेदनायुक्त आमातीसार दूर होताहै तथा कफ और पित्तसे उत्पन्नहुआ पतला मल सरल होताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥ कुलथी और अर्जुनकी छालका रस मधुके साथ अथवा कुड़ेकी छालका क्वाथ पीनेसे आमातीसार नष्ट होताहै ॥ १७ ॥

इति आमातीसारीचकित्सा समाप्ता ।

अथ रक्तातीसारे ।

ग्राह्यंषट्प्ररोहाग्रंतण्डुलोदकपेषितम् ।

पिबेद्वातक्रसंयुक्तं कर्षैकं रक्तदाहमुत् ॥ १८ ॥

तण्डुलोदकवासोत्थद्रवैरक्तोत्पलपिबेत् ।

मेघनादस्यमूलंवामधुनासितयायुतम् ॥ १९ ॥

तण्डुलोदकपानेनसर्वरक्तातिसारजित् ॥ २० ॥

अर्थ-वड़के अंकुरोंको चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे अथवा वड़के अंकुरोंका एक तोलाभर रस पीनेसे-रक्तस्राव और दाह दूर होती है ॥ १८ ॥ लाल कमल और चौलाईकी जड़को पीसकर तण्डुलोदक और अदुसेके रसके साथ तथा मधु और चीनीके साथ पीनेसे-अथवा केवल चावलोंके जलको ही पीनेसे सर्वप्रकारके रक्तातीसार नाश होतेहैं ॥ १९ ॥ २० ॥

यवान्यादिचूर्णम् ।

यवानींद्रयवापाठाबिल्वशुंठीरसांजनैः ।

चूर्णचापिहरेद्गुल्मंसततंचातिशोणितम् ॥ २१ ॥

अर्थ-अजवायन. इन्द्रजौ, पाद, बेलगिरी, सांठ और रसौत इनका चूर्ण भक्षण करनेसे गुल्म और रक्तातीसार नष्ट होताहै ॥ २१ ॥

पाठामोचरसमुस्तंघातकीबिल्वनागरम् ।

गुडतक्रयुतंपानेअसाध्यमपिसाधयेत् ॥ २२ ॥

काकमाचीरसंक्षौद्रंशुक्ताछागीपयःपिबेत् ।

रक्तातीसारशोथांश्चअतिरक्तक्षयंजयेत् ॥ २३ ॥

रक्तसूत्रैःकटिबद्धासर्पाक्षिकस्यमूलकम् ।

स्नुह्यावासहदेवस्यमूलैःस्यादतिसारजित् ॥ २४ ॥

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहःपीतःसक्षौद्रशर्करः ।

निहन्याच्छर्द्यतीसारंवैश्वानरईवाहुतिम् ॥ २५ ॥

कुलत्थस्वरसःपीतोहिज्जलस्यसमाक्षिकः ।

जयत्याममतीसारंक्राथोवाकुटजत्वचः ॥ २६ ॥

कल्कःशुष्पातिलानाञ्चशर्करापंचभागिकः ।

आज्येनपयसापीतःसटोरक्तंनियच्छाते ॥ २७ ॥

अर्थ-पाद, मोचरस, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी और सांठ इनसबको गुड और मट्टेके साथ पीनेसे असाध्यरक्तातीसारभी दूर होजाताहै ॥ २२ ॥ मकोयके रसको सहतमें मिलाकर सफेद बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्ताती-

सार, सूजन और अतिरक्तक्षयका क्षय होता है ॥ २३ ॥ सर्पाक्षीकी जड़को लालसूतसे कटिपै बाँधनेसे अथवा सेहूँडकी जड़को लालसूतसे कटिपै बाँधनेसे वा सहदेईकी जड़को लालसूतसे कटिपै बाँधनेसे अतिसार दूर होता है ॥ २४ ॥ बेलगिरी और आमकी गुठलीका काथ मधु और चीनीके साथ सेवन करनेसे वमन और अतीसार दूर होता है ॥ २५ ॥ कुलथी वा हिज्जलका रस मधुके साथ अथवा कुडेका काथ पीनेसे अतीसार दूर होता है ॥ २६ ॥ एक-भाग कालेतिलोंका कल्क और पाँचभाग चीनी इनदोनोंको मिलाकर घृत और दूधके साथ सेवन करनेसे तत्काल रक्तातीसार दूर होता है ॥ २७ ॥

धातक्यादिः ।

धातक्यतिविषामुस्तसमंगाबिल्ववत्सकम् ।

अजाक्षीरोदकेसिद्धंशर्करामाक्षिकंपिबेत् ॥ २८ ॥

रक्तातिसारं लघ्नंदाहशोथज्वरौरुचा ॥ २९ ॥

अर्थ--धायके फूल, अतीस, नागरमोथा, मजीठ, बेलगिरी और कुडा इन सबको बकरीके दूधमें औटाकर शर्करा और सहत मिलाकर पीनेसे रक्तातीसार, शूल, दाह, सूजन, ज्वर और अरुचि दूर होती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

जम्बवाभ्रामलकीनान्तुपल्लवोत्थरसंपिबेत् ।

अजाक्षीरसमंक्षौद्रंयुत्तयारक्तातिसागजित् ॥ ३० ॥

शल्लकीबदरीजम्बूपियालार्जुनकत्वचः ।

पीतःक्षीरेणमध्वाज्येपृथक्शोणितवारणः ॥ ३१ ॥

पीत्वासशर्करंक्षीरंचन्दनंतण्डुलाम्बुना ।

दाहंतृष्णांप्रमोहश्चसद्योरक्तंनियच्छति ॥ ३२ ॥

रसांजनंसातिविषं दृजस्यफलत्वचम् ।

धातकीशृंगवेरंचपिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ ३३ ॥

सक्षौद्रेणप्रनुदातेरक्तातीसारं लघ्नम् ।

मन्दश्चदीपयेच्चाग्निं लं चाशुनिवर्तयेत् ॥ ३४ ॥

गुडेनखादयेद्विल्वंरक्तातीसारनाशनम् ।

आमशूलविबन्धघ्नंकुक्षिरोगहरंपरम् ॥ ३५ ॥

स्विन्नं बालबिल्वम् ।

सुस्विन्नं कंचटं बालबिल्वं सनवनीतकम् ।

लिह्याद्रक्तातिसारघ्नं शूलं ग्रहणीप्रणुत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-जामन, आम और आमला इनके पत्तोंका रस बराबरके बकरीके दूधमें और सहतके साथ पीनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ३० ॥ शालई, बेरी, जामन, चिरोंजीका वृक्ष और अर्जुन इनमेंसे एक किसीकी छालको बकरीके दूध, मधु और घृतके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसार दूर होता है ॥ ३१ ॥ चन्दन, बूरा, दूध और तण्डुलोदक मिलाकर पीनेसे दाह, तृषा, मोह और तत्काल रक्तातीसार दूर होता है ॥ ३२ ॥ रसोत, अतीस, कुडेकी छाल, इन्द्रयव, धायकें फूल और सोंठ इनको चावलोंके जलके साथ पीसकर मधु मिलाकर सेवन करनेसे रक्तातीसार, अग्निमान्द्य और शूलको हरै है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कच्चे बेलको पानीमें उसेकर गुडके साथ भक्षण करनेसे रक्तातीसार, आम-शूल, विवन्ध और कोखके दर्दमें आराम होता है ॥ ३५ ॥ उसीजा हुआ कंचक शाक और बेल इनको नवनीतमें मिलाकर खानेसे रक्तातीसार, शूल और संग्रहणी दूर होजाती है ॥ ३६ ॥

गुदभ्रंशचिकित्सा ।

गुदपाकन्तुपित्तेनयस्यस्यादहिताशिनः ।

तस्यपित्तहराः सर्वा अभीष्टाश्चानुवासनाः ॥ ३७ ॥

सेकशौचादिकंचात्रपटोलमधुवारिभिः ।

अत्रान्तरेऽप्युक्तं वादिकंचत्रिकित्सितम् ॥ ३८ ॥

गुदेऽतिरक्तं सवति घृतैर्हि प्रतिसारयेत् ।

धातकीलोध्रमांसानां चूर्णैर्वा पंचवल्कलैः ॥ ३९ ॥

घृताक्तैर्गुदं दौशीतैः स्रावेऽतिसेचयेत् ।

पंचवल्कलं यथा ।

न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षसपिप्पलकपीतनाः ॥ ४० ॥

क्षीरवृक्षः पंचानां वल्कलं पंचवल्कलम् ॥

क्वचित्कपीतनस्थानेशीरीषोवेतसोऽपि च ॥ ४१ ॥

अर्थ—जसमनुष्यको अहित सेवनसे पित्तकरकै गुदा पकजावै उसके लिये पित्तको हरनेवाली और अनुवासनक्रिया तथा पटोलका रस, मधु और जलसे गुदाको सेकना और शौच हितकारक है । जो गुदासे अत्यन्त रुधिर गिरै तौ घृतफा लेप करना चाहिये । तथा धायके फूल, लोध और उड़दोंका चूर्ण अथवा पंचवल्कलोंके चूर्णको घृतमें मिला गुदा आदिको साँचनेसे रक्तस्राव बन्द होजाताहै ॥ (पंचवल्कल) बड़, गूलर, पाखर, पीपल और पारिस-पीपल, इनपांच क्षीरवृक्षोंके वल्कलोंको पंचवल्कल कहतेहैं, और कितनेक वैद्य पारिसपीपलके स्थानमें सिरस और बेंतको मिलातेहैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथसर्वातीसारमाह ।

लवंगचतुःसमम् ।

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितेन

जीरंचटंगणयुतंचरकैः प्रयुक्तम् ।

चूर्णानिमाक्षिकसितासहितानिलीङ्गा

सामातिसारमखिलंगुरुहन्तिशूलम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—जायफल, लोंग, जीरा और सुहागेकी खीलें, इन सबका चूर्ण कर सहत और चीनीके साथ खानेसे सर्वप्रकारके अतिसार और शूल नष्ट होतेहैं ॥ ४२ ॥

कंचटादिः ।

कंचटजम्बुदाडिमशृंगाटकपत्रबिल्वह्रीबेरम् ।

जलधरनागरसहितंगंगामपिवेगिनीरुंध्यात् ॥ ४३ ॥

अर्थ—जलपीपल, जामन, अनार, सिंघाडेके पत्ते, बेल, सुगंधबाला, नागरमोथा और सोंठ इनका काथ गंगाके समान वेगवाले अतिसारको रोकदेताहै ॥ ४३ ॥

वाते ।

दशमूलीबलाबिल्वधान्यकोत्पलविश्वजा ।

वातातीसारणेदेयातक्रेणान्यतमेनवा ॥ ४४ ॥

काथश्चूर्णोवा ।

काथपत्रेत्तद्वद्वज्रजलदेयम् ।

अन्यत्रोक्तं जिकजलाग्निना ॥

अर्थ—दशमूल, खिरौंटी, बेलगिरी, धायके फूल, कमल और सोंठ इनका काथ अथवा चूर्ण, तक्र वा कौंजी इत्यादिकेसाथ सेवन करनेसे वाताद्यतीसार नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥

पित्ति ।

किराततित्तकंमुस्तंवत्सकंसरसांजनम् ।

पिबेत्पित्तातिसारघ्नसक्षौद्रंवेदनापहम् ।

मृकंकटफलंलोध्रंदाडिमस्यफलत्वचौ ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तातिसारेषुयोजयेत्तण्डुलाम्बुना ।

चूर्णेन ।

अजाक्षीरप्रयोगेणबलंवर्णस्तुवर्द्धते ॥ ४६ ॥

अर्थ—चिरायता, नागरमोथा, कुडकी छाल और रसौत इनका काथ मधुके साथ पीनेसे पित्तातीसार और वेदनाका नाश होताहै ॥ मुलेठी, कायफल, लोध और अनारके फलकी छाल, इनका चूर्ण चावलोंके जलके साथ रक्तातीसार और पित्तातीसारमें देना चाहिये । और यहही चूर्ण बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे बल और वर्णको बढावै है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

कफे ।

श्लेष्मातिसारेप्रथमंहितलंघनपाचनम् ।

योज्यंचामातिसारघ्नयथोक्तंपूर्वमौषधम् ॥ ४७ ॥

सविडंगःसमरिचःसकपित्थःसनागरः ।

चांगिरीतक्रकोलाम्लःखडःश्लेष्मातिसारनुत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—कफातीसारमें प्रथम लंघन और पाचन कराना चाहिये । पश्चात् पूर्वोक्त आमातीसारको दूरकरनेवाली औषधि प्रयोग करनी योग्य है ॥ ४७ ॥ वायविडंग, कालीमिरच, कैथ, सोंठ, चांगेरी, तक्र और बेरके द्राग बनायाहुआ खड़यूष कफातीसार विनाशक है ॥ ४८ ॥

वातश्लेष्मे ।

कुटजातिविषादस्तहरिद्रापाण्णीद्वयम् ।

सक्षौद्रंशर्करंस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणम् ॥ ४९ ॥

कुटजत्वक्फलंस्तंकाथंयत्वाजलंपिबेत् ।

अतीसारंजयेदाशुशर्करामधुयोजितम् ॥ ५० ॥

कलिंगकवचासुस्तंदारुसातिविषंघनम् ।

कल्कंतण्डुलतोयेनपिबेत्पित्तानिलामयी ॥ ५१ ॥

अर्थ—कुड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हलदी, शरवण, और पिठवन, इनका काढ़ा मधु और खँडकेसाथ पीनेसे पित्तकफातीसार दूर होताहै ॥ ४९ ॥ कुड़ेकी छाल इन्द्रजौ और नागरमोथा, इनका काढ़ा शर्करा और मधुके साथ मिलाकर पीनेसे—शीघ्रही अतीसारको दूर करै है ॥ ५० ॥ इन्द्र-जव, वच, नागरमोथा, देवदारु, अतीस और मोथा, इनका कल्क बनाकर चावलेंके पानीके साथ पीनेसे—वातपित्तातीसार दूर होताहै ॥ ५१ ॥

वत्सकादिः ।

सवत्सकः सातिविपःसबिल्वःसोदीच्यमुस्तश्चकृतःकषायः ।

सामेसशूलेसहशोणितेच चिरप्रवृद्धेपिहितोऽतिसारे ॥ ५२ ॥

अर्थ—कुड़ेकी छाल, अतीस, बेलगिरी, सुगंधवाला और नागरमोथा, इनका काथ—आमातीसार, शूलातीसार, रक्तातीसार और जीर्णरक्तातीसारको दूर करै है ॥ ५२ ॥

लोकनाथरसः ।

रसभस्मस्यभागैकंचत्वारःशुद्धगंधकम् ।

पिष्टावराटिकापूर्याटकणेननिरुध्यच ॥ ५३ ॥

भाण्डंरुद्धापुटेपच्यात्स्वांगशीतंविचूर्णयेत् ।

लोकनाथोरसोनाम्नाक्षौद्रैर्गुजाचतुष्टयम् ॥ ५४ ॥

नागरातिविषामुस्तदेवदारुवचान्वितम् ।

कषायमनुपानंस्याद्वातातीसारनाशनम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगंधक चारभाग, इन दोनोंकी कज्जली करै, उस कज्जलीको पीलीकौड़ीमें भरे और कौड़ीके मुखको सुहागेमे बन्दकरै, फिर भाण्डमें रख मुखको बन्दकर अग्निका पुट देवै, शीतल होनेपर निकाल लेवै, पश्चात् बारीक चूर्ण करै तौ लोकनाथरस बनजाताहै। इस लोकनाथरसको चार रत्ती प्रमाण मधुके साथ चाटै, पश्चात् सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु और वचका काथ पीवै, इससे सर्वप्रकारके वातातीसार नष्ट होतेहैं॥५३॥५४॥५५॥

कनकसुन्दररसः ।

शुद्धंसूतंसमंगंधंमरिचं कण्ठं तथा ।

स्वर्णबीजंसमंसर्वभार्गीद्रावैर्दिनार्द्धकम् ॥ ५६ ॥

सूततुल्यंमृतं चाभ्रंरसः कनकसुन्दरः ।

योगंगुंजाद्वयंहंतिपित्तातीसारमद्भुतम् ॥

दध्यन्नंदापयेत्पथ्यमाजंवाथगवां दधि ॥ ५७ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, मिर्च, सुहागा और धतूरेके बीज, यह सब समानभाग लें, फिर सबको दोप्रहर भांगीके रसमें घोट पीछे पारेकी बराबर अभ्रककी भस्म मिलावे तौ कनकसुन्दररस सिद्धहो । दोगुंजाप्रमाण खानेसे पित्तातीसारको निःसन्देह दूर करे इसके ऊपर गायके दहीके साथ भान तथा बकरीके दहीके साथ भान पथ्य है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

रसायनामृतम् ।

कर्पगंधकमर्द्धपारदमुभेकुर्याच्छुभांकज्जलीं

त्र्याक्षं त्रूपणकंचपंचलवणात्सार्द्धश्च कर्पपृथक् ।

सार्द्धाक्षं द्विपलं विचूर्ण्य सकलं शक्राशनान्मिश्रयेत्

खादेच्छाणमतो नुकांजिकपलं मंदाग्निसं दीपनम् ॥ ५८ ॥

स्वेच्छाभोजनतोरसायनमिदं धूर्णादिकोपज्वरे

पेयंचात्रतुकांजिकं वदतिसानारीमहाभैरवी ।

हन्याद्वातंच पित्तं कफकृतकमर्तिसारदोषं ग्रहण्याः

श्वासंकासञ्च शूलं ज्वरमुदररुजौ राजयक्ष्माणमुग्रम् ॥ ५९ ॥

प्लीहानंचामवातं षडपिचगुदजांकुष्ठरोगंसमग्रम्

वातात्मकं ठरोगानि दमिहकथिलं दीपनं जाठराग्नेः ।

दीर्घायुः काममूर्तिर्जितवलिपलिनो धीरगंभीरनादो

मेधावी सत्त्ववीर्यस्मृतिबलसहितो मानवोऽस्य प्रसादात् ६० ॥

अर्थ—दो तोले गन्धक, एक तोला पारा, इन दोनोंकी सुन्दर, कज्जली, कर, पश्चात् नाँट दो तोले, मिर्च, दो तोले, पीपल दोनोंले संधानोन तीन तोले,

कालानोन तीनतोले, विडनोन तीनतोले, खारीनोन तीनतोले और सांभरनोन तीनतोले एवं भाँग १८ तोले लेकर सबका चूर्ण करले, इसचूर्णको पूर्वोक्त जलीमें मिलाकर चारमासे प्रमाण चार तोले काँजीके साथ खानेसे मन्दाग्नि दीपन होजायहै । इसमें मनोवांछित भोजन करै । यह रसायन घूर्णादिकोपज्वरमें हितकारीहै तथा वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार, संग्रहणी रोग, श्वास, खाँसी, शूल, ज्वर उदररोग, घोर राजयक्ष्मारोग, ह्मीहा, आम-वात, छै प्रकारका अर्शरोग, सर्वप्रकारके कुष्ठरोग, वातरक्त, कंठरोग और मन्दाग्निको नष्ट करैहै । और इसके प्रसाद अर्थात् सेवन करनेसे दीर्घायु, काम-स्वरूप, बलीपलितरहित, धीर, गंभीरशब्दवाला शुद्धबुद्धिमान, सत्त्वगुण, वीर्य स्मरणशक्ति और बलसंयुक्त मनुष्य होजाताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

शोथंशूलंज्वरंतृष्णांश्वासंकासमरोचकम् ।

छर्दिमूच्छांचहिक्कांचतृष्णातीसारिणंत्यजेत् ॥ ६१ ॥

मुतेपार्श्वद्वयेयस्यअतिरूक्षब्दउत्कटः ।

तृषार्तश्चबलैःक्षीणोऽप्यसाध्योग्रहणीगदी ॥ ६२ ॥

द्वित्रिपंचदशाहाद्रापक्षान्मासाच्चवाकदा ।

आमंस्त्रावंसपैच्छिल्यंस्निग्धंशुभ्रंघनंस्त्रवेत् ॥

दिवाकोपोनिशाशांतिःकटिभेदःसकृद्भवेत् ॥ ६३ ॥

ग्रहणीऽऽऽऽतेनदुश्चिकित्स्याभिषग्वरैः ॥ ६४ ॥

अथापिपाचनैःसम्यग्दीपनैस्तामुपाचरेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ—सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास खाँसी, अरुचि, वमन, मूच्छा, और हिक्कासंयुक्त अतीसाररोगवाले रोगीको त्यागदेवै । जिस संग्रहणीवाले रोगके सोनेके समय दोनों पसलियोंमें पीड़ा और उत्कट शब्द होवै, तृषा करके पीडित होवै, और बलकरके क्षीण होवै, उसको असाध्य जानना । जो कभी २-३-४-५-१०-१५-अथवा ३० दिनपर्यन्त पिच्छिल, स्निग्ध, शुभ्र, और घन आमयुक्तमल गिरै, तथा दिनमें कुपितहो और रात्रिमें शान्त होजावै और मल उतरनेके समय कमरमें दर्दहो ऐसा आमवातयुक्त संग्रहणीरोग असाध्य जानना यद्यपि यहरोग तौ असाध्यहै तथापि इसकी पाचन और दीपन औषधियोंसे चिकित्सा करै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

इति आमतीसारचिकित्सा समाप्ता ।

अथग्रहणीचिकित्सा ।

अतीसारेनिवृत्तेऽपिमंदाग्नेह्निशिनः ।

भूयःसंदूषितोवह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

अर्थ—अतीसारके निवृत्तहोनेपरभी मंदाग्नियुक्त और अहितसेवन करनेवाले पुरुषके जठराग्नि दूषित होकर ग्रहणीकलाको अभिदूषित कर संग्रहणीरोगको उत्पन्न करै है ॥ १ ॥

नायिकाचूर्णम् ।

चित्रकस्त्रिफलाव्योषंविडंगंरजनीद्वयम् ।

भल्लातकंयवानीचर्हिगुल्बणपंचकम् ॥ २ ॥

गृहधूमवचाकुष्ठंघनमभ्रंचगंधकम् ।

क्षारत्रयाजमोदाश्चपारदोगजपिप्पली ॥ ३ ॥

अमीषांगुण्डकंयावत्समंचूर्णविमर्दितम् ।

शकाशनस्यचूर्णन्तुतत्तुल्यंतत्रदापयेत् ॥ ४ ॥

बिडालपदमात्रन्तुभक्षयेदस्यगुण्डकम् ।

अभ्यर्च्यनायिकांप्रातर्योगिनीकामरूपिणीम् ॥ ५ ॥

मन्दाग्रिकासदुर्नामप्लीहपाण्डूरुचिज्वरान् ।

प्रमेहशोथविष्टम्भसंग्रहग्रहणीगदान् ॥ ६ ॥

उपयुक्तोविधानेननाशयत्यचिरादिमान् ।

नानातीसारशमनःकृमिकण्डूविनाशनः ॥ ७ ॥

आमवातमदच्छेद् सूतिकातंकनाशनः ॥ ८ ॥

रजनीद्वयोःस्थानेकेऽपिजीरकद्वयंपठन्ति ।

कांजिकाम्लंसदापथ्यंदग्धमीनन्तथादधि ।

तस्मादसौंसदासेव्योगुण्डकोनायिकामतः ॥ ९ ॥

काष्ठमप्युदरेयस्यभक्षणादतिजीर्णताम् ।

नतेऽस्मिन्व्याधयःसन्तिवातपित्तकफोद्भवाः ॥ १० ॥

सर्वास्तान्नाशयत्याशुगुण्डकोनायिकाकृतेः ।

वार्यन्नश्चव्यवायंचर्मासपिष्टकभक्षणम् ॥ ११ ॥

अर्थ—चीता, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, बायविडंग, हलदी, दारुहलदी, भिलावा, अजवायन, हींग, सैधानोन, कालानोन, विड़नोन, खारीनोन, साँभरनोन, गृहधूम (घरकाधुआँ) वच, कूट, नागरमोथा, अभ्रक, गन्धक, जवाखार, सज्जी, सुहागा, अजमोद, पारा और पीपल इनसबको समानभागलेकर बारीक चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर भांगका चूर्ण मिलावे। इस नायिकानामवाले चूर्णको कामरूपिणी योगिनीका पूजन करके दोनोले प्रमाण प्रातःकालमें भक्षणकरे, यह चूर्ण—मन्दाग्नि, खांसी, बवासीर, छीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, ज्वर, प्रमेह, सूजन, विष्टम्भ, मलरोध और संग्रहणीरोगको उपयुक्त विधानसे खानेपर शीघ्रही दूर करेहै। और नानाप्रकारके अतीसारोंको शमन करे है। तथा कृमि, कण्डू, आमवात और सूतिकारोगको नष्ट करेहै। और कितनेक वैद्य इसयोगमें दोनो हल्दियोंकी जगह दोनो जीरे डालते हैं। इसमें काँजी, भुनीहुई मछली और दही पथ्यहै। इस चूर्णको भक्षणकनेमे जिसके पेटमें काष्ठभी हो तो जरजाताहै। इस कारण यह नायिकाचूर्ण सर्वसेवनकरना चाहिये, वात, पित्त और कफसे उत्पन्नहुए रोगोंको यह नायिकानामवाला चूर्ण शीघ्रही नष्ट करदेताहै ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

अभ्रवटिका ।

अथसूतस्यशुद्धस्यगन्धकस्याभ्रकस्यच ।

प्रत्येकंकर्पमेकन्तुग्राह्यंसगुणैपिणा ॥ १२ ॥

ततःकज्जलिकांकृत्वाव्योपचूर्णप्रदापयेत् ।

केशराजस्यभृंगस्यनिर्गुण्ड्याश्चित्रकस्यच ॥ १३ ॥

ग्रीष्मसुन्दरकस्याथजयन्त्याःस्वरसन्तथा ।

मण्डूकपर्ण्याःस्वरसंतथाशक्राशनस्यच ॥ १४ ॥

श्वेतापराजितायाश्चस्वरसंपर्णसम्भवम् ।

दापयेत्तत्रतुल्यंचविधिज्ञःकुशलोभिषक् ॥ १५ ॥

रसतुल्यंप्रदातव्यंचूर्णमरिचसम्भवम् ।

येयंसार्द्धभागेनचूर्णटकणसम्भवम् ॥ १६ ॥

शुभेशिलामयेपात्रेवर्षणीयंप्रयत्नतः ।

शुष्कमातपसंयोगाद्घटिकांकारयेद्विपक् ॥ १७ ॥

कलायपरिमाणन्तुखादेत्तान्तुप्रयत्नतः ।

हन्तिकासंक्षयंश्वासंवातश्लेष्मभवरुजम् ॥ १८ ॥

वरंवाजीकरःश्रेष्ठोबलवर्णाग्निदीपनः ।

ज्वरेचैवातिसारेचसिद्धएषप्रयोगराट् ॥ १९ ॥

नातःपरतरंकिंचिद्विद्यतेऽभ्ररसायनात् ।

चातुर्थिकज्वरेश्रेष्ठंमूतिकातंकनाशनम् ॥ २० ॥

भोजनेशयनेपानेनास्त्यत्रनियमःक्वचित् ।

दधिचावश्यकंभक्ष्यंप्राहनागार्जुनोमुनिः ॥ २१ ॥

अर्थ—शुद्धपारा दो तांले, गंधक दोतांले और अभ्रक दो तांले इन तीनोंकी कजली कर, पश्चात् मांठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण कजलीमें मिलाकर कुकुरभांगरा, भांगरा, मम्हालू, चीता, ग्रीष्ममुन्दर, अग्नी, ब्रह्ममण्डूकी, भांग, मफेदकोयलके पत्ते इन प्रत्येकको दोदो तांले रसमें पृथक् पृथक् भिजो-वे, फिर पारेकी बराबर मिर्चोंका चूर्ण और पारेमें आधाभाग मुहागेका चूर्ण मिलावे, तत्पश्चात् पत्थरके खगलमें खगलकर धूपमें सुखाकर मटरकीसमान गोली बनावे—यह गोली खाँसी, क्षय, श्वास वातश्लेष्मोद्भवरोग, इनको दूर करे। श्रेष्ठ, उत्तम वाजीकरण, तथा बल, वर्ण और अग्निको दीपन करे। ज्वर और अनिसाररोगमें यह प्रयोगगर्ज मिद्ध है। इसमें पारे और कोई द्रव्यगी अभ्रग्रसायन नहीं है। यह चौथिया ज्वरमें हितकारिणी और मूतिकारो-गनाशक है। इसमें भोजनका, सोनेका और पीनेका कुछ नियम नहीं है परन्तु दही इसमें अवश्य खाना चाहिये। यह नागार्जुनमुनिने कहा है ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

कणानागरपाठाभिहि वर्गद्वितयेन च ।

बिल्वचन्दनद्वीवरैःसमंलोहंप्रदापयेत् ॥ २२ ॥

सर्वातीसारशमनःसंग्रहग्रहणीहरः ।

सर्वोपद्रवसंयुक्तामपिहन्यात्प्रवाहिकाम् ॥ २३ ॥

नानेनसदृशोलोतेविद्यतग्रहणीगदे ॥ २४ ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, पाठ, त्रिफला, चीता, बायविडंग, नागरमोथा, बेलगिरी चन्दन और सुगंधबाला, इन सबको समानभाग लेवै और सबकी बराबर लोहा लेवै, फिर सबको मिलाकर चूर्ण करले, यह सर्वप्रकारके अतिसारोंको शान्त करैहै और संग्रहणीरोगको हरै है तथा सर्वोपद्रवयुक्त प्रवाहिकारोगको नष्ट करै है । इसके समान संग्रहणीरोगको हरनेवाला और लोहा नहीं है । इसको कणादिलोह कहते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ रसांजनादिचूर्णम् ।

रसांजनंसातिविषंकुटजस्यफलत्वचम् ।

धातकीशृंगवेरंचपिवेत्तण्डुलवारिणा ॥ २५ ॥

क्षौद्रेणयुक्तंतुदतिरक्तातीसारमद्भुतम् ।

मन्दंदीपयतेचाग्निंशूलंचाशुनियच्छति ॥ २६ ॥

अर्थ—रसोत, अतीस, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौ, धायके फूल और सोंठ इनका चूर्ण तण्डुलोदक और मधुके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसार, मन्दाग्नि और शूल दूर होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

रसस्यशाणंसंगृह्यकांजिकेनतुशोषयेत् ।

चित्रकस्यरसेचापित्रिफलायाश्चबुद्धिमान् ॥ २७ ॥

रसार्द्धगंधकंशुद्धंभृंगराजरसेनवै ।

द्वाभ्यांसंमूर्च्छनंकृत्वास्वरसैःशाणसंमितैः ॥ २८ ॥

खल्लयेच्चशिलाखल्वेक्रमशोवक्ष्यमाणजैः ।

निर्गुण्डीमण्डुकीश्वेताकुचेलाग्नीष्मसुन्दरैः ॥ २९ ॥

भृंगाह्वकेश्चरस्यस्यज्जिह्वानुशनोत्कटैः ।

सर्षपाभ्यांवटीकृत्वादद्यात्ताग्रहणीगदे ॥ ३० ॥

आमवाताग्निमान्द्येचज्वरेष्ठीहोदरेषुच ।

वातश्लेष्म विकारेषुतथाश्लेष्मगणेषुच ॥ ३१ ॥

अम्लंतक्रादिसेवांचकुर्वीतस्वेच्छयाबहु ।

क्रियतेवैद्यनाथेनलोकानुग्रहकारिणा ॥ ३२ ॥

स्वप्नान्तेब्राह्मणस्येयंभाषितालिखितानतु ॥ ३३ ॥

अर्थ—चारमासे पारेको काँजीमें और चीतेके रसमें तथा फिलाक कार्डमें भावना देकर शोषणकरै, पश्चात् दोमासे गंधकको भाँगरेके रसमें मर्दन करै, इस प्रकार ३ छकियेहुए गंधकको मिलाकर कज्जलीकरै, फिर सहालू, मण्डूकपर्णी, सफेदकोयल, पाद, भांगरा, कुकुरभांगरा, जयन्ती, भाँग, और दालचीनी, इन प्रत्येकको चार चार मासे रसमें खरलकर सरसोंकी समान गोली बनावै । यह गोली—संग्रहणीरोगमें, आमवातमें, मन्दाग्रिमें ज्वरमें छीहा और उदररोगमें, वातकफविकारोंमें और कफरोगमें देनी चाहिये । पथ्य—अम्लरस और बहुतसा तक्र जितना जी चाहै उतनाही पीना चाहिये । यह गोली वैद्यनाथकी कही हुई है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ग्रहण्यादौ ताम्रयोगः ।

जयारुवुककाकमाचीशृंगवेररसैःपृथक् ।

सप्तधामूर्च्छितःशैलेरसोभवतिनिर्मलः ॥ ३४ ॥

सूक्ष्मपत्रीकृतंताम्रगंधचूर्णेनयोजितम् ।

पुटयित्वाऽन्धमूषायांचूर्णतक्रेणयोजयेत् ॥ ३५ ॥

तच्चूर्णत्रिकटूपेतंयोजयेन्मधुसर्पिषा ।

ग्रहणीक्षयरोगेषुहितःसोपद्रवेषुच ॥ ३६ ॥

अम्लपित्तचकुष्ठेचज्वरेमेहेचकामले ॥ ३७ ॥

अर्थ—अरणी, अरंड, मकोय और अदरखके रसमें सातबार मूर्च्छित किया हुआ पारा, ताँबेके बारीक कियेहुए पत्र और गंधकका चूर्ण इन तीनोंको मिलाकर मूषामें धरै, फिर गजपुटमें ढूँक देवै, तत्पश्चात् तिसमें सांठ, मिरच, और पीपलका, चूर्ण मिलाकर छाँछके साथ अथवा मधु और घृतकेसाथ खानेमें—उपद्रवयुक्तसंग्रहणी, क्षय, अम्लपित्त, कोढ़, ज्वर, प्रमेह, और कामलारोग दूर होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथताम्रयोगः ।

रसगंधकयोःप्रत्येकंशोधयेद्विषक् ।

ततःकज्जलिकांकृत्वानैपालंताम्रपत्रकम् ॥ ३८ ॥
 कण्टवेध्यंविधातव्यंसर्वमेकत्रकारयेत् ।
 पात्रेहिमृत्तिकोद्धूतेपरंदद्याद्रसंशुभम् ॥ ३९ ॥
 पंचजम्बीरसंभूतंयथाप्लावितमेवतत् ।
 आतपेस्थापयेत्पश्चाद्यावत्पंकोपमंभवेत् ॥ ४० ॥
 पाणिनामर्दयित्वातुवटिकांकारयेत्ततः ।
 विशोष्यभक्षयेद्रक्तिद्रयंतस्मान्महौषधात् ॥ ४१ ॥
 दिनत्रयान्तरेणैवरक्तिरक्तिविविर्द्धयेत् ।
 परिहारविधिस्तेनधान्यजीरानुपानतः ॥ ४२ ॥
 प्रातरेतद्विधातव्यंहन्तिपित्ताम्लसंभवम् ।
 ग्रहण्यामुद्रवंशूलमम्लपित्तञ्चदारुणम् ॥ ४३ ॥
 अजीर्णरक्तपित्तंचक्षयंकुष्ठंविशेषतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—पारा—दोतोले, गंधक दोतोले, इन दोनोंको अलग अलग शोधै, फिर दोनोंकी कज्जली करै, तदनंतर ताँवेको कण्टकवेधी बनाकर कज्जली मिलादेवे, फिर मट्टीके बरतनमें रख पकेहुए जम्बीरी नाँवुओंके रसमें भिजोवे, तत्पश्चात् जबतक गारेकीसमान न होजावे तबतक धूपमें रक्खा रहनेदेवे, फिर हाथसे मलकर गोली बनावे और उन गोलियोंको छायामें सुखादेवे, फिर दो रत्ती प्रमाण भक्षण करै और तीन तीन दिनके पश्चात् एक एक रत्ती बढ़ाता जाय और इसीप्रकार बहुतकालके बाद एकएकरत्ती घटाता जावे । इसका अनुपान—धनियाँ और जीरा है । इसको प्रातःकाल सेवन करै । यह ताम्रयोग—अम्लपित्त, संग्रहणी, शूल, अम्लपित्तोद्भवशूल, अजीर्ण, रक्तपित्त, क्षय और कुष्ठको नष्ट करै है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ बृहल्लवंगादिचूर्णम् ।

(ग्रन्थान्तरे)

लवंगातिविषामुस्तंपिप्पलीमारिचानिच ।
 सैन्धवंहपुषाधान्यंकट्फलंपौष्करंतथा ॥ ४५ ॥

जातिकोषफलाजाजीसौवर्चलरसांजनम् ।
 धातुमोचरसपाठापत्रंतालीसकेशरम् ॥ ४६ ॥
 चित्रकंचविडंचैवतुम्बुरुबिल्वमेवच ।
 त्वगेलापिप्पलीमूलमजमोदायवानिका ॥ ४७ ॥
 समंगावत्सकंविश्वदाडिमंयावशूकजम् ।
 भूनिम्बंसर्जिकाक्षारंसामुद्रंठंकणाभ्रकम् ॥ ४८ ॥
 ह्रीविरंकुटजंचैवअम्लकंकटुरोहिणी ।
 एतानिसमभागानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ ४९ ॥
 अनुपानंप्रदातव्यंबुद्धादोषबलाबलम् ।
 सर्वदोषभवंचैवग्रहणीमतिदुस्तराम् ॥ ५० ॥
 वातिकंपैत्तिकंचैवल्लैष्मिकंसान्निपातिकम् ।
 सर्वातिसारशमनंसर्वशूलनिपूदनम् ॥ ५१ ॥
 ग्रीहगुल्मोदरानाहसूतिकारोगनाशकम् ।
 आमवातंतथाजीर्णसंग्रहग्रहणीगदम् ॥ ५२ ॥
 लवंगादिवृहच्चेदंधन्वंतरिप्रकाशितम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—लौंग, अतीस, नागरमोथा, पीपल, कालीमिरच, सेंधानोन, हाऊवर, धनियाँ, कायफल, पोहकरमूल, जायफल, जीरा, कालानोन, रमौत, धायकेफूल, मोचरम, पाठ, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेदार, चीता, वायविडंग, तुम्बुरु, वेल, दालचीनी, इलायची, पीपगमूल, अजमोद, अजवायन, लज्जावंती, कुडकीछाल, सांठ, अनारदाना, जवाखार, चिरायता, मज्जी, समुद्रफेन, मुद्गागा, मोथा, सुगंधवाला, इन्द्रजव, अमलबंन, और कुटकी इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर कूट, वारीकचूर्ण करले, इसमें बलाबलका विचारकर अनुपानदेवे, यह चूर्ण—सर्वदोषोंमें उत्पन्नहुई अत्यन्तदुस्तर मंग्रहणी, वातानिमार, पित्तातीसार, कफातीसार, त्रिदोषजअतिमार, सर्वप्रकारके अतिमार, सर्वप्रकारके शूल, ग्रीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, सूतिकारोग, आमवात, अजीर्ण और संग्रहणीरोगको नष्ट करताहै । यह बृहल्लवंगादिचूर्ण श्रीमान् धन्वन्तरिजीने प्रकाशित किया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ ग्र. णीकपाटः रसरत्नाकरे ।

टंकणक्षारगन्धाश्मरसंजातं फलानेच ।

बिल्वं खांदरसारं च जीरकं श्वेतं नकम् ॥ ५४ ॥

कपिहस्तकबीजं च तथैवावाकं श्लिषिका ।

एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत् ॥ ५५ ॥

बिल्वपत्रककार्पासफलं शालिंच दुग्धिका ।

शालिञ्चमूलं कुटजत्वचं कंचकपत्रकम् ॥ ५६ ॥

सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।

रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम् ॥ ५७ ॥

दधिमण्डस्ततः पेयः पलमात्रप्रमाणतः ।

अपियोगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां त्यजेत् ॥ ५८ ॥

आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम् ।

रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नैवात्र युक्तिः ॥ ५९ ॥

कृष्णावार्त्ताकुमत्स्यञ्च दधितैलं च शस्यते ।

ज्ञात्वा वा योगं गतिस्तत्र जलं तैलं प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

ग्रहणीकपाटनामाऽयं कवाटघटनादिव ॥ ६१ ॥

अर्थ—सुहागा, गन्धक, शिलारस, जायफल, बेल, खैरसार, जीरा, सफेदराल, कौछकेबीज, और सोंफ, इन सब औषधियोंको चारचार मासे लेकर बारीक चूर्ण करले, पीछे उस चूर्णको बेलपत्र, कपासकेफल शालिंच, दुग्धी, शालिंचमूल, कुडेकी छाल और कंचकशाकके पत्तोंके रसमें भावना देकर एक रत्तीभरकी गोली बनावै, प्रतिदिन एक गोली खाय इसप्रकार तीनदिन पर्यन्त खावै और ऊपरसे चारतोले दहीका पानी पी लेवै । यह ग्रहणीकपाटरस—जिस संग्रहणीको सैकड़ों योगोंसे आराम न हुआ होय उसको, आमशूल, ज्वर, खाँसी, श्वास, मूजन, और प्रवाहिकारोगको दूरकरैहै । इसके ऊपर रक्तस्राव (रुधिरको गिरानेवाली) औषधी नहीं खानी चाहिये । कालेबैंगन, मछली, दही और तेल इसपै पथ्यहै, किंतु वैद्यको चाहिये कि, बायुकी गतिको जानकर तेल देवै । जिस प्रकार मनुष्योंको किवाड़ें रोक देतीहैं, उसीप्रकार यह ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीरोगको रोकदेताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ लवंगादिचूर्णम् ।

लवंगातिविषामुस्तंबिल्वं पाठाथशाल्मली ।

जं रकंधातकीपुष्पं लोध्रेन्द्रयवबालकम् ॥ ६२ ॥

धान्यकंसर्जकं शृंगीपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

समंगायावशूकंच सैन्धवं सरसांजनम् ॥ ६३ ॥

समभागानि चैतानि भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।

शमयेदग्निमान्द्यञ्च संग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥

न नानावर्णमतीसारं शोथं पाण्डुकामलम् ।

हृत्पृष्ठीलिकाहन्ति कुष्ठं कोष्ठगतं ज्वरम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—लौंग, अतीस, नागरमोथा, बेल, पाद, सेमल, जीरा, धायके फूल, लोध, इन्द्रयव, सुगंधबाला, धनियाँ, राल, काकड़ाशिगी, पीपल, सोंठ, लज्जावन्ती, जवारखार, सैधानोन और रसोत समानभाग लेकर पीस चूर्ण करले, इस चूर्णको प्रातःकाल उठकर खावै । यह चूर्ण मंदाग्नि, संग्रहणी, नानावर्णका अतिसार, शोथातीसार, पाण्डुरोग, कामला, अष्ठीलिकावात, कुष्ठ और कोष्ठगत ज्वरको नष्ट करै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ ग्रहणीकपाटरसः ।

रसगंधकयोश्चैव जातीफलं विडंगकम् ।

प्रत्येकं शाल्मली त्रन्तुश्चक्षुणचूर्णानि कारयेत् ॥ ६६ ॥

सूर्यावर्त्तरसैश्चैव बिल्वपत्ररसैस्तथा ।

शृंगाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येककंपलैः ॥ ६७ ॥

चण्डातपेन संशोध्य वटिकां कारयेद्भिषक् ।

बिल्वपत्ररसेनैव भक्षयेद्भक्तिकाद्वयम् ॥ ६८ ॥

दध्नापि भोजनीयञ्च ग्रहणीरोगनाशनम् ।

पाण्डुरोगमतीसारं शोथदुर्नामनाशनम् ॥ ६९ ॥

ग्रहणीकपाटनामाऽयं कपाटघटनादिव ॥ ७० ॥

अर्थ—पारा, गंधक, जायफल और बायविडंग, इन प्रत्येकको चार चार मासे लंबे फिर सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करले, पीछे डुलडुल, बेलपत्र और सिंघा-

डेके पत्ते, इन प्रत्येकको चार चार तोले रसमें भिजोवै, पश्चात् दोदो रत्तीकी गोली बनाकर तीक्ष्णधूपमें धरदे, एक गोली बेलपत्रके रसकेसाथ भक्षण करै, और दहीभातका भोजनकरै तो संग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, अतीसार, सूजन, और बवासीर दूर होजावै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ जातीफलाद्या वटिका ।

विशुद्धसूतस्यचगंधकस्यप्रत्येकशोमासचतुष्टयंच ।
 विधायशुद्धोपलपात्रमध्येसुकज्जलीवैद्यवरःप्रयत्नात्७१
 जातीफलंशाल्मलिवेष्टमुस्तंसटंकणंसातिविषंसजीरम् ।
 प्रत्येकमेतन्मरिचस्यशाणप्रमाणमेकंविषमासकञ्च७२
 विचूर्ण्यसर्वैरवमर्द्यपश्चाद्विभावयेत्पत्ररसैरमीषाम् ।
 वंशाभ्रभट्टोत्कटकद्रवाणामिन्द्राणिकेन्द्राशनकंसजम्बु॥
 जयन्तिकांदाडिमकेशराजंसावित्रकणोंपिचभृंगराजः ।
 विभाव्यसम्यग्वाटिकाविधेया
 कोलास्थिमानाथयथानुपानम् ॥ ७४ ॥
 सोमंनिहंत्यत्रबहुप्रकारंसूतीविकारंश्चयथुंसमग्रम् ।
 कासंचपंचात्मकमम्लपित्तमियंनिहन्याद्ग्रहणींप्रवृद्धाम् ।
 अभ्यस्यजीयाद्बुद्धजानसाध्यानामानुबंधंघृतिसारमुग्रम्
 श्वासंतथापाण्डुगदंनिहन्ति चिरोद्भवांचग्रहणींप्रदुष्टाम् ॥
 जयेद्भृशंयोगशतैरसाध्यांविवर्जनीयाइहदुष्टमत्स्याः ।
 मत्स्यास्तथापाण्डववर्णकाश्चरम्भाफलंमूलमथोदलंच॥
 बुधैर्विधेयंनकदाचिदत्रजातीफलाद्यावटिकाचहृद्या ।
 यशोर्थिनोवैद्यवरस्यविद्याह्यनेकसंभावितमर्त्यलोके७८
 नानाविधव्याधिपयोधिनौका ।
 जातीफलाद्यावटिकाप्रसिद्धा ॥ ७९ ॥

अर्थ—पारा चार मासे, गंधक चार मासे, इन दोनोंकी उत्तम खरलमें कज्जली करै, पश्चात् जायफल, मोचरस, नागरमोथा, सुहागा, अतीस, जीरा और

कालीमिरच यह सब चार चार मासे लेवै, विष एक मासा लेवै फिर इन सबका चूर्णकर कज्जलीमें मिला, वाँसके पत्ते, आमके पत्ते, नीमके पत्ते, जलपीपलके पत्ते, सम्हालू, भाँग, जामन, अरणी, अनार, कुकुरभाँगरा, पाद और भाँगरा, इन सबके रसमें भावना देकर बेरकी गुठलीकी बराबर गोली बनावै, यह गोली अनुपानके साथ खानेसे बहुतप्रकारके सोमरोग, सूतिकारोग, सर्वप्रकारकी सूजन, पांच प्रकारकी खाँसी, अम्लपित्त, उग्र संग्रहणी, उग्र अतीसार, श्वांस, पाण्डुरोग, प्राचीन संग्रहणी और असाध्यसंग्रहणीरोग दूर होते हैं । इसमें पाण्डुवर्णकी मछली, केलेकीफली, केलेकी जड़ और पत्र शाक भक्षण-कग्ना निषेधहै । यह जातीफलादिवटिका वैद्यांको यशदेनेवाली है, और यह नानाप्रकारके रोगरूपसमुद्रमें नौकारूप होकर रोगीको पार करदेतीहै ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ मृतसंजीवनो रसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधसूतपादंविपंक्षिपेत् ।

सर्वतुल्यंमृतञ्चाभ्रमर्द्यधुस्तूरजैर्द्रवैः ॥ ८० ॥

सर्पाक्ष्याश्चद्रवैर्यामंकपायेणाथभावयेत् ।

धातक्यतिविषामुस्ताशुण्ठीजीरकबालकम् ॥ ८१ ॥

यवानीडनिकाबिल्वंपाठापथ्याकणान्विता ।

कुटजस्यत्वचंबीजंकपित्थंदाडिमंवचा ॥ ८२ ॥

प्रत्येकंकर्पमात्रंस्यात्कलिकतंकाथयेज्जलैः ।

कल्कंचतुर्गुणंग्राह्यंकपायंपाद्रमात्रकम् ॥ ८३ ॥

अनेनत्रिदिनंभाव्यंपूर्वोक्तादिकृतंरसम् ।

रुद्धातंबालुकायंत्रेक्षणंमृद्वग्निनापचेत् ॥ ८४ ॥

मृतसंजीवनोनामरसोगुंजाचतुष्टयम् ।

दातव्योह्यनुपानेनअसाध्यंसाधयेद्ध्रुवम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, यह दोनो समानभाग लेवै, विष पारसे चौथा भाग लेवै और सबकी समान अभ्रककी भस्म लेवै, फिर इन सबको मिलाकर धतूरेके रसमें और सर्पाक्षीके रसमें एक प्रहर खरल कर, फिर धायके फूल, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, जीरा, सुगंधवाला, अजवायन, धनियाँ, बेलगिरी, पाद,

हरड़, पीपल, कुड़की छाल, इन्द्रयव, कैथा, अनार और बच प्रत्येक दोदो तोले लेकर कल्क अथवा काथ बनावै, कल्कमें ता पानी चारगुणा ग्रहण करै आर काथमें एकगुणा ग्रहण करै, पीछे इसमें पूर्वोक्तचूर्णको तीन दिन भावना देकर वालुकायंत्रमें रख मुख बन्द करै, क्षणभर मृदुअग्निसे पचावै । इस मृतसंजीवन रसको चार रत्तीभर अनुपानकेसाथ देनेसे असाध्यसंग्रहणी आदि रोगोंको दूर करैहै ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ मृतसंजीवनरसोऽपरः ।

नागरातिविषामुस्तदेवदारुकणावचा ।

यवान् बालकोधान्यंकुटजस्यत्वचाभया ॥ ८६ ॥

धातकीन्द्रयवंबिल्वं पाठामोचरसंसमम् ।

चूर्णैः समधुनालेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पीपल, बच, अजवायन, सुगंध-बाला, धनियाँ, कुड़कीछाल, धायकेफूल, इन्द्रयव, वेलगिरी, पाद, और मोचरस, इन सबको समानभाग लेकर चूर्णकरै, इस चूर्णको सहतकेसाथ खानेसे संग्रहणी-रोग दूर होताहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथ पंचामृतापर्पटी ।

अष्टौगन्धकतोलकान् रसपल्लोहं तदद्भिर्गुभं

लोहार्द्धबकुलाभ्रकंसुविमलं शुल्बस्य मासद्वयम् ।

पात्रेलोहमये च मर्दनविधौ चूर्णीकृतं चैकतो-

दाव्या बादरवत्तिना च मृदुना पक्वं विदित्वा दले ॥ ८८ ॥

रंभाया लघुचालयेत् । टैरियं पंचामृतापर्पटी

ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुंजात्रयं वृद्धितः ।

लोहे मर्दनयोगतः सुविमलं भक्ष्यं क्रियालो व-

ह्नुं जाया विह्वला धिकं त्रिकचतुः सप्तद्वयं युग्मतः ॥ ८९ ॥

न नावर्णातिसारग्रहणिपरिगदेदुर्दिहारेऽग्निमान्द्ये

छद्याच्चैवाम्लपित्ते प्रबलरुदग्देरक्तपित्ते क्षये च ।

श्रेष्ठापुष्टिप्रदायावलिपलितहरानेत्रोगैकान्त्री तीक्ष्णदीप्तिस्थिराग्निपुनरपिचनरदिव्यदेहं करोति ॥ ९० ॥

अर्थ—गंधक आठ तोले, पारा चार तोले, लोहा दो तोले, अभ्रक एक तोला और ताँबा दो मासे, इन सबको लोहेके पात्रमें एकत्र मर्दन करै, पश्चात् इसको लोहेके बरतनमें रख चूलेहैं चढा बेरीकी लकड़ियोंसे मंदमन्द पकावै, और लोहेकी करछीसे चलावै, पकजानेपर बरतनमेंसे लौटकरक केलेकेपत्तेपर ढाललेवै इसप्रकार पंचामृतपर्पटी बनती है । मात्रा तीन रत्तीकी है । इसको लोहेके बरतनमें पीस सहत और घृतके साथ सेवनकरै, तीन रत्तीसे आठ रत्तीतक बढ़ावै, आठ रत्तीमें अधिक एकदिनमें नहीं खाय । इसप्रकार इस पंचामृतपर्पटीको सेवनकरनेमें अनेकरंगका अतीसार, नानाप्रकारकी संग्रहणी, असाध्यमंदाग्नि, वमन, अम्लपित्त, प्रबल गुदरोग, रक्तपित्त और क्षयरोगका नाश होताहै, यह पंचामृतपर्पटी—पुष्टिकारक, बलि (शरीरमें बलि पड़ने) पलित (बिनाही अवस्था वालोंका धवल होजाना) नाशक, नेत्र रोगोंको दूर करने वाली, तीक्ष्णता, दार्प, जटराग्निको स्थिर और देहको दिव्यस्वरूप करती है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथ ग्रन्थान्तरोक्ता पंचामृतवटी ।

कृष्णाभ्रलोहमलशुद्धविडंगसारं
प्रत्येकमेकपलिकंविधिवद्विधाय ।
चव्यंकटुत्रयफलत्रयकेशराज-
दन्तीपयोदचपलानलघण्टकर्णाः ॥ ९१ ॥
मानोरुबूकबृहतीत्रिवृताथसूर्या-
वर्त्तपुनर्नविकयासहितस्त्वमीपाम् ।
चूर्णद्विष्टिसुशोचितमक्षमेकं
चूर्णात्तदर्द्धरसगंधकमेकसंस्थम् ॥ ९२ ॥
संपिष्यतस्यगुटिकाविधिवत्कृतासा
हन्त्यम्लपित्तमर्द्धिणीमसाध्याम् ।
दुर्नामकमलभगन्दरशोथगुल्मान्
शूलश्चपाकजनितंसतताग्निमान्द्यम् ॥ ९३ ॥

सद्यःकरोत्युपचितंचिरमन्दमग्निं
 कुष्ठंनिहन्तिपलितञ्चवलींप्रवृद्धाम् ।
 श्वासंचकासमपिपाण्डुगदंनिहन्ति
 वार्यन्नमांसदधिकांजिकमत्स्यमांसम् ॥ ९४ ॥
 वृक्षाम्लतैलपरिपक्वभुजोयथेष्टं
 शृंगाटविल्वगुडकंचटनारिकेलम् ।
 दुग्धादिसर्वविदलानिविवर्जयेच्च ।
 मुद्गमकुष्ठचणककलायाढकीभिराख्यातः ।
 वैदलइतिवर्गोयंविष्टम्भीपवनशूलकरः ॥ ९५ ॥

अर्थ--कृष्णाभ्रक, लोहमल और विडंगसार, यह प्रत्येक चार चार तोल लेंवें
 चव्य, त्रिकुटा, त्रिफला, कुकुरभाँगरा, दन्ती, नागरमोथा, पीपल, चीता, घंट-
 कर्ण, मानकन्द, अरंड, कटाई, निसोत, हुलहुल और पुनर्नवा, इन प्रत्येकका चूर्ण
 दो दो तोले लेंवें, और शुद्धपारा, शुद्धगन्धक चूर्णसे आधाभाग लेंवें, इनसबको
 मिला बागीक पीसकर विधिपूर्वक गोली बनावें, इन गोलियोंको सेवनकग्नेय-
 अम्लपित्त, अरुचि, अमाध्यमग्रहणी, बवासीर, कामला, भगन्दर, सूजन, गुल्म,
 पाकजनितशूल, मन्दाग्नि, कोढ, वलिपलित, श्वास, खाँसी और पांडुरोग, नष्ट
 होते हैं । जल, अन्न, माँस, दही, कांजी, मछलीका मांस, विपांवल नीबू और
 तैलसे बना हुआ भोजन यह सब इसपै पथ्य हैं । सिंघाडे, बेल, गुड, कंचटशाक-
 नारियल दूध और वैदल अन्नादि अपथ्य हैं । मूंग, वनमूंग, चनें, मटर, अगहर,
 इन सबको वैदल अन्न कहते हैं, यह वैदल अन्न विष्टम्भकारक, वात और शूलको
 उत्पन्न करेहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ लोहपर्पटी ।

रसगंधकयोःकृत्वाकज्जलंसमभागयोः ।
 लौहचूर्णरससमंदत्त्वासंश्लिष्यपर्पटी ॥ ९६ ॥
 कार्यासाविधिनासेव्यारोगिभिःपथ्यभोजिभिः ।
 अनुपानंशृतंकाथ्येधान्यजीरकनागरः ॥ ९७ ॥
 लौहेनपर्पटीचैवसिद्धालोकस्यसिद्धिदा ।
 रक्तिकैकंसमारभ्यवर्द्धयेद्रक्तिकाक्रमात् ॥ ९८ ॥

सप्तहैकंद्रयंवापियावदारोग्यदर्शनात् ।
 ग्रहणींदुस्तरांहन्तिशूलातीसारसूतिकाम् ॥ ९९ ॥
 अंगमर्दोज्वरःकम्पःपिपासागुरुगात्रता ।
 शोथःशूलातिसारौचसूतिकारोगलक्षणम् ॥ १०० ॥
 घ्नीहाग्निमान्द्यशोथार्शःपाण्डूदावर्तकामलाः ।
 तथामवातकुष्ठानिरोगाण्येवंविधानिच ॥ १०१ ॥
 भवेत्सचायसवर्णुर्निर्वलीपलितोऽनया ।
 पथ्यापथ्यविधिश्चात्रसर्वलौहविधानवत् ॥ १०२ ॥
 गणाध्यायोक्तचरकोक्तवर्चःसंग्रहगणेन ।
 तथालोहोक्तसंग्रहग्रहणीहरः ।
 जम्बादिविशेषभेषजैःपुटितलोहंग्राह्यमेवम् ।
 ग्रहाणांसर्वतस्मादिदमपिपुटनीयम् ।

अर्थ—पारा और गन्धकको समानभाग लेकर कज्जली करे, पश्चात् पारेकी समान उम कज्जलीमें लोहेका चूर्ण मिलाकर पूर्ववत् पर्पटी बनाले । यह लोह-पर्पटी—पथ्यसेवनकरनेवाले मनुष्यको सेवनकरनी चाहिये, इस पर्पटीको धनियाँ, जौं और मोंठके काथके साथ सेवनकरनी उचित है । इसको एक एक रत्तीसे बटावे मात वा चौदह अथवा जवतक आरोग्य नहो तबतक सेवन करे । यह पर्पटी घोरसंग्रहणी, शूल, अतीमार, सूतिकारोग, अंगमर्द, ज्वर, पियाम, शरीर-की गुरुता, घ्नीहा, मन्दाग्नि, सूजनयुक्त वशासीर, पाण्डुरोग, उदावर्त, कामला, आमवात, और कुष्ठरोगको नष्ट करे, तथा नानाप्रकारके रोगोंको हरे, शरीर-को लोहके समान दृढकरनेवाली, बलिपलितनाशकर है । इससे लोहेकी समान पथ्यापथ्य सेवन करे और इस लोहपर्पटीमें पुटपाकमें पकाया हुआ लोहा मिलाना चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथ कंचटावलेहः ।

काथेपचेत्कंचटालमूलयोःसितार्द्धप्रस्थःशृतपादशेषे ।
 ततोऽक्षमानेनसमंप्रदद्याच्चूर्णानिधीरोविधिवत्तथैषाम् १०३
 संगगाधातकीपाठाबिल्वंमुस्ताथपिप्पली ।

शक्रकातिविषाक्षारसौवर्चलरसांजनम् ॥ १०४ ॥

शाहमलीवेष्टकंचैवसर्वसिद्धेनिधापयेत् ।

शीतेचमधुनश्चात्रकुडवार्द्धक्षिपेत्ततः ॥ १०५ ॥

अस्यमात्राप्रयुञ्जीतयथाकालप्रमाणवित् ।

अम्लपित्तकृतदोषमौदरंसर्वरूपिणम् ॥ १०६ ॥

सर्वातीसारशमनंसंग्रहग्रहणींजयेत् ।

एकजंद्रन्द्रजंचैवदोषत्रयकृतंचयत् ॥ १०७ ॥

विकारंकोष्ठजंचैवहन्याच्छलमरोचकम् ।

एषकंचटकोलेहोविधेयोगुडपाकवत् ॥ १०८ ॥

अर्थ—कंचट (जलचौलाई) बत्तीस तोले, मुसली बत्तीस तोले, इन दोनों-को १६ सेर जलमें पकावै, जब जल जलकर चारसेर बाकी रहै तब उतारले पश्चात् इस काथमें बत्तीसतोले मिश्री मिलवै, फिर मजीठ, धायके फूल, पाठ, बेलगिरी, नागरमोथा, पीपल, इन्द्रयव, अतीस, जवाखार, कालानोन, रसोत और मोचरस, इन प्रत्येकका दोदो तोले चूर्ण मिलवै, शीतल होनेपर आधसेर सहत मिलवै, इस अवलेहको समय विचारकर खावै तौ—अम्लपित्तविकार, सर्व-प्रकारके उदररोग, सर्व प्रकारके अतीसार, संग्रहणी, एकदोषसे उत्पन्नहुआ विकार, दो दोषोंका विकार, तीन दोषोंसे उत्पन्नहुआ विकार, कोष्ठगत विकार, शूल और अरुचि दूर होवै । यह कंचटावलेह गुडपाककी तरह बनाना चाहिये ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ ग्रन्थान्तरोक्तं ग्रहणीमिहिरतैलम् ।

धान्यकंधातकीलोध्रसमंगातिविषाशिवा ।

उशीरंमुस्तकंचै जलमोचरसांजनम् ॥ १०९ ॥

बिल्वंनीलोत्पलंपत्रकेशरंपद्मकेशरम् ।

गुडूचैः त्रयवश्यामापद्मकंकदुरोहिणी ॥ ११० ॥

तगरंजटिलाभृंगकेशराजंपुनर्नवा ।

आम्रजम्बूकदम्बानांत्वचंकुटजवल्कलम् ॥ १११ ॥

यवानीजीरकंचैवकार्षिकाणिप्रकल्पयेत् ।

तैलप्रस्थंपचेतेनतक्रेणान्यतमेनवा ॥ ११२ ॥

कुटजत्वक्कषायेणधन्याकंकाथितंनवा ।

बुद्धादोषगतिंवैद्योयथास्वौषधवारिणा ॥ ११३ ॥

एतद्रसायनंतैलंवलीपलितनाशनम् ।

हन्तिसर्वानतीसारान्ग्रहणींसर्वजामपि ॥ ११४ ॥

ज्वरंतृष्णांतथाश्वासंतथाहिक्रांविमिभ्रमिम् ।

सोपद्रवांकोष्ठरुजंनाशयेत्सद्यएवहि ॥ ११५ ॥

ग्रहणीमिहिरंनामतैलंभुवनदुर्लभम् ॥ ११६ ॥

अर्थ—धनियाँ, धायके फूल, लोध, मजीठ, अतीम, हरड, खस, नागरमोथा मुगंधवाला, मोचरम, रसौत, बेल, नीले कमलके पत्ते, नागकेशर, कमलकेशर गिलोय, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, पद्माख, कुटकी, तगर, जटामांसी, भाँगरा, कुकुर-भाँगरा, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामनकीछाल, कदम्बकी छाल, कुडेकीछाल, अजवायन, और जीरा, ये प्रत्येक दो दो तोले लेवै, पीछे इन सबका कल्क कर, इस कल्कको और चौंसठतोले तेलको तक्रमें अथवा काँजीमें वा कुडेकी छालके काथमें अथवा धनियेके काथमें मिलाके दोपोंका बलाबल विचार तेलको मिद्ध करै । यह ग्रहणीमिहितेल रसायन, वलिपलितनाशक, तथा सर्व प्रकारके अतीमार, सर्व प्रकारकी संग्रहणी, ज्वर, तृषा, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम और उपद्रवयुक्तकोष्ठरोगको दूर करै है । यह ग्रहणीमिहितेल त्रैलोक्य-दुर्लभहै । १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

अथ कल्याणगुड ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्यशुद्धस्यदत्त्वाद्धतुलांगुडस्य ।

चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योपेभकृष्णाहपुपाजमोदैः ११७

विडंगसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्चपलप्रमाणैः ।

दत्त्वात्रिवृच्चूर्णपलानिचाष्टावष्टौचतैलस्यपचेद्यथावत् ११८

तंभक्षयेदक्षफलप्रमाणंयथेष्टचेष्टांसुगन्धियुक्तम् ।

अनेनसंवग्रहणीविकाराःसश्वासकासस्वरभेदशोथाः ११९॥

शाम्यन्तिचायंचिरमन्दवह्नेर्हृत्स्थंस्त्वस्यचवृद्धिहतुः ।

स्त्रीणांचवन्ध्यामयमाहहन्यात्कल्याणकोनामगुडःप्रदिष्टः
त्रिवृतांभर्जयन्त्यत्रमनाक्केचिच्चिकित्सकाः ।

अत्रोक्तमानसाधर्म्यात्रिसुगंधिपलंपृथक् ॥ १२१ ॥

अर्थ—अडतालीसपल आमलेके रसमें पचास पल शुद्ध गुड मिलावै, पीछे पीपरामूल, जीरा, चव्य, त्रिकुटा, गजपीपल, हाऊबेर, अजमोद, वायविडंग, सैधानोन, त्रिफला, अजवायन, पाद, और धनियाँ, इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलावै, तदनंतर निसोतका चूर्ण बत्तीस तोले और तिलका तेल बत्तीस तोले लेकर सबको मिला गुड सिद्ध करै, सिद्ध होजानेके पश्चात् त्रिसुगंधका चूर्ण मिलाकर बहेड़ेके फलकी समान भक्षण करे तौ—सर्वप्रकारके संग्रहणीरोग, श्वास, खाँसी स्वरभेद और सूजन दूर होय । तथा बहुतदिनोंकी मन्दाग्नि दीपन होतीहै, पुंस्त्वता बढ़तीहै और स्त्रियोंका बन्ध्यापन नष्ट होताहै । इस कल्याणगुडमें कितनेक भिषक् निसोतको भूनकर डालतेहैं, और यहाँ त्रिसुगंधि अर्थात् इलायची, दालचीनी और तेजपात, इन प्रत्येकका चार चार तोले अलग अलग चूर्ण मिलाना चाहिये ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ ॥ १२० ॥ १२१ ॥

अथ चांगेरीघृतम् ।

नागरंपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ।

श्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यंबिल्वंपाठायवानिका ॥ १२२ ॥

चांगेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरेतैर्विपाचितम् ।

चतुर्गुणेनदध्राचतद्घृतंकफवातनुत् ॥ १२३ ॥

अर्शासिग्रहणीदोषंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् ।

गुदभ्रंशार्तिमानाहंघृतमेतद्व्यपोहति ॥ १२४ ॥

हन्तिपिप्पलीचविकातन्त्रान्तरात् ।

दधिसाहचर्याच्चांगेरीस्वरसोपिचतुर्गुणः ॥ १२५ ॥

अर्थ—सोंठ, पीपरामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियाँ, बेल, पाद, और अजवायन, इन सबका चूर्ण चार चार तोले लेवै, और घृत चौमठ पल और चांगेरी (नोनिया) का रस दोसौछप्पन पल लेवै और दोसौछप्पन पल दही लेवै, फिर सबको यथाविधिसे मिलाकर घृत सिद्ध करे, यह घृत—

वात, कफ, सर्वप्रकारका अर्श (बवासीर) रोग, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश और आनाहुरोगको दूर करै है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

अथ ग्रहणीगजेन्द्रवटिका ।

रसगंधकलोहानिशंखटंकणरामठाः

शठीतालीशमुस्तानिधान्यजीरकसैन्धवाः ॥ १२६ ॥

धातक्यतिविषाशुण्ठीगृहधूमंहरीतकीम् ।

भल्लातंतेजपत्रञ्चजातीफललवंगके ॥ १२७ ॥

त्वगेलावालुकंबिल्वंमेथीशक्राशनंसमम् ।

छागीदुग्धेनवटिकारसवैद्येनकारिता ॥ १२८ ॥

गहनानन्दनाथेनभापितेऽयंरसायने ।

ग्रहणीगजेन्द्रसंज्ञोऽयंश्रीमतालोकरक्षणे ॥ १२९ ॥

ग्रहणीविविधाहन्तिज्वरातीसारनाशिनी ।

शूलगुल्माम्लपित्तानिकामलांचहलीमकम् ॥ १३० ॥

बलवर्णाग्निजननीसेविताचचिरायुपी ।

कुष्ठंकण्डूविसर्पञ्चगुदभ्रंशंकृमिंजयेत् ॥ १३१ ॥

मासद्वयंवटीभक्ष्याच्छागीदुग्धानुपानतः ।

बलाऽग्निबलमावेक्ष्ययुत्तयादात्रुटिवर्द्धनम् ॥ १३२ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, लोहा, शंखचूर्ण, सुहागा, हींग, कचूर, तालीसपत्र, नागमोथा, धनियाँ, जीरा, सेंधानोन, धायकेफूल, अतीम, मोंठ, गृहधूम, हरड़, भिलावा, तेजपात, जायफल, लोंग, दालचीनी, इलायची, सुगंधवाला, बेल और भाँग, इन सबको समानभाग लेकर बकरीके दूधमें पीमकर गोली बना लें। यह गोली गहनानन्दनाथने रसायनप्रकरणमें कही है। इसको ग्रहणीगजेन्द्रवटिका कहते हैं। यहगोली—अनेकप्रकारकी संग्रहणी, ज्वरातीसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, और हलीमकरोगको नष्ट करै। बल वर्ण—और अग्निजनक है, तथा कोढ़, कण्डू, विसर्प, गुदभ्रंश और कृमिगेरुको दूर करै। इसको सेवन करनेसे मनुष्य दीर्घायु होतेहैं। यह दो दो मासेकी गोली बनाकर बकरीके

दूधके साथ सेवनकरनी चाहिये, और अग्नि तथा बलको विचारकर मात्राको घटानी बढ़ानी भी चाहिये ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥
॥ १३१ ॥ १३२ ॥

इति ग्रहणीरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथार्शश्चिकित्सा ।

दुर्नाम्नांसाधनोपायश्चतुर्धापरिकीर्तितः ।
भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्युच्यते ॥ १ ॥
यद्वायोरनुलोम्यायदग्निबलवृद्धये ।
अनुपानौषधंद्रव्यंतत्सेव्यंनित्यमर्शसैः ॥ २ ॥
शालिषष्टिकगोधूमयवान्नसंस्कृतैर्घृतैः ।
दद्यात्क्षीरेणवानित्यंपटोलानांरसेनवा ॥ ३ ॥
मांसैर्मांसरसैर्वापिकन्दवार्ताकुमूलकैः ।
जीवन्त्युपोदिकाशाकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ ४ ॥
क्षारचित्रकबिल्वानांतैलेनाभ्यज्यबुद्धिमान् ।
यवकोलकुलत्थानांतक्राम्लनवनीतयोः ॥ ५ ॥
शस्त्रैर्वाथजलौकाभिस्तेषारक्तंचनिर्हरेत् ।
शुष्कार्शसांप्रलेपादिक्रियातीक्ष्णाविधीयते ॥ ६ ॥
स्त्राविणारक्तमालोक्यक्रियाकार्यास्रपैत्तिकी ।
स्नुक्क्षीररजनीयुक्तंलेपादुर्नामनाशनम् ॥ ७ ॥
अर्कक्षीरंस्नुहीक्षीरंतिक्ततुम्ब्याश्चपल्लवाः ।
करंजोऽरुणःसूक्ष्मलेपनंश्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ८ ॥
ज्योत्स्निकामूलकल्केनलेपोवाताऽर्शसांहितः ।
जम्बीरजमौद्गिदन्तुकाजिकपिष्टगुटीत्रयम् ॥ ९ ॥

१ अत्र करंजपदेन करंजत्वचो ग्रहणम् । २ ज्योत्स्निका घोषकः । ३ औद्भिदं साम्प्रार-
लषणम् ।

अशोहरंगुदस्थस्यादधिमाषिमश्रतः ।
 शिरीषस्यतुल्याद्विलांगलक्यास्तथैवच ॥ १० ॥
 एतेननाभिलेनसर्वतश्चतुरंगुलात् ।
 पतन्त्यशांसिसर्वाणिसप्तरात्रात्रसंशयः ॥ ११ ॥
 नृकेशाःसर्पनिर्मोकावृषदंशस्यचर्मच ।
 अर्कमूलंशमीपत्रंधूपोऽर्शःशूलशान्तये ॥ १२ ॥
 विड्विबन्धेहिंगुतक्रंयवानीविडसंयुतम् ।
 वातश्लेष्मार्शसांतक्रात्परंनास्तीहभेषजम् ॥ १३ ॥
 पित्तश्लेष्मप्रशमनीकण्डूकच्छूरुजापहा ।
 गुदजात्राशयत्याशुयोजितासगुडाभया ॥ १४ ॥
 तिलभल्लातकंपथ्यागुडश्चेतिसमांशिकम् ।
 दुर्नामश्वासकासघ्नंघ्रीहपाण्डुरुजापहम् ॥ १५ ॥

अर्थ—औषध, क्षार, शस्त्र, और अग्नि, इन चार प्रकारसे अर्शरोगकी चिकित्सा करनी कहीहै, तहाँ साध्य और सगल होनेसे औषधका उपाय कहतेहैं । जो औषध वायुको अनुलोमनकरनेवाली, तथा अग्निके बलको बढ़ानेवालीहै वह अर्शरोगीको सेवनकरनी चाहिये । शालिधान्य, साँठीधान्य, गेहूँ और जौ इनका भोजन घीके साथ, दूध, पटोलरस, मांस, मांसरस, जिमीकन्द, बेंगन, मूली, जीवंतिका शाक, पोईका शाक, चौलाईका शाक बथुएका शाक, जवाखार, चीता, बेल, तेलसे पकायेहुए द्रव्य, जौ, बेर, कुलथी, तक्र और माखन, यह सब अर्शरोगीके लिये हितकारक जानने । अर्शाकुर होनेपर शस्त्र अथवा जांकके द्वारा रुधिर निकलवाना चाहिये । शुष्क अर्शरोगमें प्रलेपादि तीक्ष्णक्रिया प्रयोगकरनी योग्यहै । रक्तवहनेवाले अर्शरोगमें रुधिरका विचारकर रक्तपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । थूहरके दूधमें हलदी मिलाकर लेपकरनेसे बवासीर दूर होतीहै । आकका दूध, थूहरका दूध, कडवीतांवीके पत्ते, और कंजकी छालको बकरेके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्शरोग आगम होताहै । तोरईकी जडको पीसकर लेप करनेसे बादीकी बवासीर दूर होतीहै । जंभीगी नीवृ और सामरको काँजीमें पीस कर तीन गोली बनावै, एकगोली भैमके दहीके साथ रोज खानेसे बवासीर दूर

होती है । शिरसकी जड़ और कलिहारीकी जड़को पीसकर नाभिपर चार अंगुल चारों ओर लेपकरनेसे निःसन्देह सातदिनमें सर्वप्रकारकी बवासीरके मससे गिर जाते हैं । मनुष्यके बाल, सँपकी कँचली, बिलावकी खाल, आककी जड़ और छीकरके पत्ते इन सबको एकत्र कर धूप देनेसे अर्शरोगका शूल शांत होता है । मलबद्ध अर्शरोगमें अजवायन, हींग, विड़नोन, इनको तक्रमें मिलाकर पीना चाहिये, वात तथा कफकी बवासीरमें तक्रसे उत्तम औषध नहीं है गुडके माथ हरड़को भक्षणकरनेसे पित्तकफार्श, कण्डू, कच्छू और वेदना नाश होती है । तिल भिलावा, हरड़ और गुड़, इन सबको समान भाग लेकर सेवनकरनेसे बवासीर, श्वास, खाँसी, ज्वर, छीहा और पाण्डुरोग दूर होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ व्योषादि चूर्णम् ।

व्योषाभ्यरुष्करविडंगतिलाभयानां

चूर्णगुडेन सहितं तु स दोपयोज्यम् ॥

दुर्नामशोथगरकुष्ठविकृद्विबन्धा-

न शौंजयत्यबलतां किमिपाण्डुताञ्च ॥ १६ ॥

चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः ।

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, भिलावा, वायविडंग, तिल और हरड़, इन सबका चूर्ण बनावै, उस चूर्णमें गुड़ मिलाकर खानेसे बवासीर, सूजन, विष-विकार, कोढ़, मलविबन्ध, बवासीर, निर्बलता, कृमि और पाण्डुरोग नाश होता है ॥ १६ ॥ चूर्णमें समानभाग और मोदकमें दुगुना गुड़ मिलाना चाहिये ।

अथ श्रीबाहुशालोगुडः ।

त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीश्वदंष्ट्राचित्रकंशठी ।

गवाक्षीमुस्तविश्वान्दविडंगानिहरीतकी ॥ १७ ॥

पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ।

षट्पलंवृद्धदारस्यसूरणस्यतुषोडश ॥ १८ ॥

जलद्रोणद्वयेकाथ्यंचतुर्भागावशेषितम् ।

पूतन्तुतद्रसंभूयः काथ्यं स्यात्त्रिगुणोऽऽ ॥ १९ ॥

पचेत्लेहन्तु तं तावद्यावद्द्वीप्रलेपनम् ।

अवतार्यततःपश्च ज्वरान्दीमानिदापयेत् ॥ २० ॥

त्रिवृत्ते ज्वरान्दीमान्दचित्रकान्द्विपलाशकान् ।

गलात्वङ्मरिचचापिगजाह्वश्चापिपट्पलम् ॥ २१ ॥

द्रात्रिंशच्चपलान्येवंचूर्णदत्त्वानिधापयेत् ।

ततोमात्रांप्रयुंजीतजीर्णैर्क्षीररसाशनः ॥ २२ ॥

पंचगुल्मान्प्रमेहांश्चपाण्डुरोगंहलीमकम् ।

जयेदर्शांसिसर्वाणितथासर्वोदराणिच ॥ २३ ॥

दीपयेद्ब्रह्णीमन्दायक्ष्माणंचापकर्पति ।

पीनसेचप्रतिश्यायेआढ्यवातेतथैवच ॥ २४ ॥

अयंसर्वगदेष्वेवकल्याणोलेहउत्तमः ।

दुर्नामारिरयंनाम्नादृष्टोवारसहस्रशः ॥ २५ ॥

भवत्येनंप्रयुञ्जानःशतवर्षनिरामयः ।

आयुष्योदैर्घ्यजननोवलीपलितनाशनः ॥ २६ ॥

रसायनवरश्चैवमेधाजननउत्तमः ।

गुडःश्रीबाहुशालोऽयंदुर्नामारिःप्रकीर्तितः ॥ २७ ॥

अर्थ—निमोत, तेजवल, दन्ती, गोखरू, चीता, नरकचूर, इन्द्रायण, नागर-
मोथा, सांठ, मोथा वायविडंग और हरड, यह सब चार चार तोले लेंव, भिलावा
वत्तीस तोले, विधारा चौबीस तोले, और जमीकन्द चौमठतोले लेंव, पीछे
इन सबको ६४ चौमठ सेर अर्थात् ५१२ पांचमौ बारह पल, जलमें पकाव,
जब चौथाभाग अर्थात् १६ सोलह सेर (१२८ एकमौ अट्ठाईसपल) जलकर
शेष रहै तब उतार लेंव, पश्चात् काथको वस्त्रमें छान रमका फिर चूल्हेपर चढा-
देव और उसमें तिगुना गुड मिलाकर पकाव, जब लेहवत् अर्थात् करछीमे
चिपटने लगजाय तब उतारकर निमोत, तेजवल, जमीकन्द और चीता, यह
प्रत्येक आठ आठ तोले और इलायची, दालचीनी, कालीमिरच और गजपी-
पल यह प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले लेंव, पीछे इन सबका चूर्णकर मिलादे,
इसको अनुमानमाफिक भक्षण करे । औषधिके जीर्णहोनेपर दूध और मांसरस
(सोरुआ) का भोजन करे, यह गुड—पाँचप्रकारके गुल्म, सर्व प्रकारके प्रमेह,

पांडुरोग, हलीमक, सर्वप्रकारकी बवासीर, सर्व प्रकारके उदररोग, संग्रहणी, राजयक्ष्मा, पीनस, प्रतिश्याय, और आढ्यवातको नष्ट करैहै । यह सर्वप्रकारके रोगोंमें हितकारीहै । और बवासीरको विशेषकरके विध्वंस करैहै, ऐसे हजारों-बार अजमायाहै । इसको सेवन करनेसे—मनुष्य रोगोंसे छूट १०० सौवर्ष पर्यन्त जीताहै । तथा यह गुड आयुको बढ़ानेवाला, बलीपलितनाशक, अवस्थास्थापक रसायनमें श्रेष्ठरसायन, मेधाजनक और उत्तम है । इसको श्रीबाहुशाल गुड कह-तेहैं और इसका दूसरा नाम 'दुर्नामारि' भी है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ कुटजलेहः ।

कौटजंकल्कमादायपिष्ठातक्रेणबुद्धिमान् ।
पीत्वारक्तार्शसोरक्तस्रुतिमाशुनियच्छति ॥ २८ ॥
कुटजत्वक्पलशतंजलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशेषन्तुकषायमवतारयेत् ॥ २९ ॥
वस्त्रपूतंपुनःक्वाथ्यंपचेत्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातकविडंगानित्रिकटुत्रिफलास्तथा ॥ ३० ॥
रसांजनंचित्रकंचकुटजस्यफलानिच ।
वचामतिविषांबिल्वंप्रत्येकंचपलंपलम् ॥ ३१ ॥
गुडात्पलानित्रिशच्चचूर्णीकृत्यनिधापयेत् ।
मधुनःकुडवंदद्याद्घृतस्यकुडवन्तथा ॥ ३२ ॥
लेहोऽयंशमयत्यर्शोयस्यरक्तसमुद्भवम् ।
वातिकंपैत्तिकञ्चैवश्लेष्मिकंसान्निपातिकम् ॥ ३३ ॥
येचदुर्नामजारोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि ।
अम्लपित्तमतीसारंपाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ३४ ॥
ग्रहणीमार्दवंकार्श्यंश्वयथुंकामलामपे ।
अनुपानं वृत्तं दन्तं तक्रंजलंपयः ॥ ३५ ॥
रोगानीकविनाशायकौटजोलेहउच्यते ॥ ३६ ॥

पलस्थानेफलमपिकेचित्पठन्तिअतस्त्वक्फल-

यो।प्रल्लिङ्गाः पलशतम् । फलन्तुरक्तेतियोगिकं दृष्टफलञ्च ।

अर्थ—कुडेकी छालको पीसकर मट्टेके साथ सेवनकरनेसे—रक्ताश (खूनी बवासीर) दूर होतीहै ॥ २८ ॥ कुडेकी छाल सौपल लेकर चौंसठसेर (५१२ तोले) जलमें पकावै, जब जलकर आठवाँ भाग अर्थात् सोलहसेर काथ शेष रहै तब उतारले, पीछे वस्त्रमें छानकर फिर चूल्हेपै चढ़ादेवे, जब पकते पकते-लेहकी समान हो जावे, तब भिलावा, बायविडंग, त्रिकुटा, त्रिफला, रसात, चीता, इन्द्रजो, वच, अतीस, बेलगिरी, यह प्रत्येक चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिलादेवै, फिर गुड़ तीसपल, सहत बत्तीसतोले, और घृत बत्तीसतोले इन सबको मिलादेवै तो कुटजलेह सिद्ध होजाताहै । यह कुटजलेह—रुधिरकी बवासीर, वातज बवासीर, पित्तज बवासीर, कफज बवासीर, मन्निपातकी बवासीर, सर्वप्रकारकी बवासीर अम्लपित्त, अतीसार, पाण्डु-गोग, अरुचि, संग्रहणी, मृदुता, कृशता, मूजन और कामलारोगको दूर करैहै । इसको घृत, मधु, तक्र, जल और दूधके साथ सेवनकरना चाहिये । यह रोगोंके विनाशके अर्थ कुटजलेह कहाहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

इसमें कोई कोई वैद्य पलके स्थानमें फल पढ़तेहैं इसकागण कुडेकी छाल फलको मिलाकर चारसौ तोले लेते हैं ॥

अथ अर्शःकुठारकोरसः ।

शुद्धगन्धकं लैकन्तुद्विपलं शुद्धगन्धकम् ।

ततः ताम्रं मृतलौहं प्रत्येकञ्च पलत्रयम् ॥ ३७ ॥

अथूपणं लांगलीदन्ताचित्रकं तुष्करन्तथा ।

प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं चटंकणम् ॥ ३८ ॥

उभौ पंचलौ योज्यौ सैन्धवं पलपंचकम् ।

द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् ॥ ३९ ॥

मृद्वग्निनापचेत्सर्वथा वत्तच्च सुपिण्डितम् ।

मासद्वयं सप्तदशदिनसोद्यर्शः कुठारकः ॥ ४० ॥

अर्थ—शुद्धपारा चार तोले, शुद्धगन्धक आठ तोले, ताँबेकी भस्म बारह तोले, लोहेकी भस्म बारह तोले त्रिकुटा, कलिहारी, वन्ती, चीता, पोहकरमूल,

यह प्रत्येक आठ आठ तोले, जवाखार, सुहागा और सैंधानोन, यह प्रत्येक बीस बीस तोले, गोमूत्र बत्तीस पल और थूहरका दूध बत्तीस पल, इन सबको एकत्र कर मृदुअग्निसे पकावै, जब पकते २ पिंडकी समान गाढ़ा होजाय तब दोमासेभर सदैव सेवन करै, इससे सर्व प्रकारकी बवासीर नष्ट होती है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ चक्रेश्वररसः ।

मृतमृतस्यचत्वारिपंचगंधकटकणम् ।

त्रिदिनंमर्दयेत्सर्वद्रवैःश्वेतपुनर्नवैः ॥ ४१ ॥

मूषायांगोलकंतन्तुक्षिप्त्वाताम्रस्यचक्रिके ।

रसगन्धसमोरुद्धाचान्धमूषापुटेपचेत् ॥ ४२ ॥

चक्रिकांचूर्णयेत्पश्चादभयाभृंगजैर्द्रवैः ।

दिनैकंभावयेत्तस्मिन्सिद्धश्चक्रेश्वररसः ॥ ४३ ॥

द्विगुंजंभक्षयेन्नित्यंजयेद्वातार्शसाक्षणात् ।

सिन्धूत्थंमागधंवह्निशुण्ठीतक्रैःपिबेदनु ॥ ४४ ॥

भोजनंस्निग्धमुष्णश्चमर्दनश्चप्रशस्यते ।

संजातेह्यतिविष्टम्भेस्नुहीक्षीरेणभावयेत् ॥ ४५ ॥

मरिचात्सततंयुक्तान्निशायाश्चप्रयोजयेत् ।

विडंगंत्रिफलाव्योषंत्रिवृन्मूषिकपर्णिका ॥ ४६ ॥

कम्पिल्लंनलिनीचूर्णतुल्यंक्षौद्रेणमेलयेत् ।

गुडेनसितयावाथवातरोगाणिवैजयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म चारभाग, गंधक और सुहागा पाँचभाग, इन सबको एकत्र कर तीन दिन सफेद पथरचटाके रसमें खरल करै, पश्चात् गोला बनाकर मूषामें रख ताम्रचक्रिकामें मूषाको धर, अंधमूषापुटमें पकावै, फिर चूर्णकर हरड़ और भाँगरके रसमें एकदिन भावना देवै तो चक्रेश्वररस सिद्ध होवै, इस रसको दो गुंजा प्रमाण नित्यप्रति, भक्षण करनेसे बादीकी बवासीर दूर होतीहै । सैंधानोन, पीपल, चीता और सोंठका चूर्ण तक्रमें मिलाकर पीना इसका अनुपान है । इसमें स्निग्ध और उष्णभोजन तथा मर्दनकरना हितकारी है । जो

यह रस अत्यन्त विष्टम्भ होजाय तो थूहरके दूधमें भिजोकर भक्षण करै, और वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा, निसोत, मूषाकर्णी, कबीला और कमलिनीका चूर्ण सहतके साथ अथवा गुड़के साथ वा मिश्रीके साथ खानेसे वाताश्ररोग दूर होता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ तीक्ष्णमुखरसः ।

मृतसूताभ्रहेमाह्वतीक्ष्णमुण्डञ्चगंधकम् ।

मण्डूरस्यसमंताप्यमर्धकन्याद्रवैर्दिनम् ॥ ४८ ॥

अंधमूपागतंपश्चात्त्रिदिनन्तुतुपाग्निना ॥ ४९ ॥

चूर्णितंसितयामासंखादेत्पित्तार्शसांजयेत् ।

रसस्तीक्ष्णमुखोनामनुस्यान्मधुरत्रयम् ॥ ५० ॥

अर्थ—पारकी भस्म, अभ्रक, सोना, तीक्ष्णलोहा, मुंडलोहा, गंधक और मण्डूर तथा सोनामाखी इन सबको समानभाग लेकर घीकुवारके रसमें एक दिन मर्दन करै, पीछे अंधमूपापुटमें भूरीकी आगसे तीन दिन पर्यन्त पकावे, फिर चूर्णकरै, उसको एकमासाभर मिश्रीके साथ खावे तो पित्तकी बवासीर दूरहो, इस तीक्ष्णमुखरसका अनुपान—मिश्री, घृत और सहन है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ अशौंहररसः ।

रसवैक्रान्तशुद्धाभ्रकान्तभस्मसंगंधकम् ।

तुल्यांशमर्दयेच्चाद्र्द्रदाडिमोत्थैरसैस्ततः ॥ ५१ ॥

भक्षयेन्मापमेकन्तुअर्शसांनाशनोरसः ।

अपामार्गस्यबीजानिवह्निशुंठीहरीतकी ॥ ५२ ॥

मुस्ताभूनिम्बतुल्यांशंसर्वतुल्यंगुडम्भवेत् ।

कर्पूकभक्षयेच्चानुर्जीर्णान्नभक्तभोजनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—पारा, वैक्रान्तमणि, शुद्धाभ्रक, कान्तलोहेकी भस्म, और गंधक यह प्रत्येक समानभाग लेकर अदरक और अनारके रसमें मर्दन करै । इसकी मात्रा एकमासेकी है । अनुपान—चिरचिटेके बीज, चीता, सोंठ, हरड, नागर-मोथा, चिरायता, यह प्रत्येक समानभाग और सबकी समान गुड मिलाकर दो तोले प्रमाण देनेसे सर्वप्रकारकी बवासीर दूर होती है । पथ्य—पुगना अन्न और भात है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ कनकावती वटी ।

शुद्धसूतंसमंगन्धंतालसिन्धूत्थलाङ्गली ।
 फलंतुम्बीफलैकैकलशुनश्चतुष्पलम् ॥ ५४ ॥
 कारवेल्याद्रवैर्मर्द्यदिनैकंवटकीकृतम् ।
 गुंजामात्रंसदाखादेत्पायुजश्चापिनाशयेत् ॥ ५५ ॥
 रक्तवातकफोत्थानिअर्शासिनाशयेद्भुवम् ।
 वटीकनकवतीनामअनुपानंचकथ्यते ॥ ५६ ॥
 भल्लातत्रिफलादन्तीवाह्निचूर्णसमंसमम् ।
 सैन्धवंसर्वतुल्यंस्त्र्यैस्त्वर्परेचिरम् ॥ ५७ ॥
 मृद्वग्निनाभवेत्सिद्धंकर्षतक्रंपिवेत्रः ॥ ५८ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, हरिताल, सैंधानोन, कलिहारीका फल, और तुम्बी, यह प्रत्येक एक एक पल लेवै और लहसुन चार पल लेवै पीछे इनसबको करेलेके रसमें एक दिन मर्दन कर एक एक रक्तीभरकी गोली बनावै, एक गोली नित्य खानेसे शुद्धाके रोग, रुधिरकी बवासीर, वातकी बवासीर और कफकी बवासीर दूर होतीहै । भिलावा, त्रिफला, दन्ती, और चीता, इनसबका चूर्ण समानभागले और सबकी बराबर सैंधानोन लेवै, पीछे सबको एकत्र कर खप-डेमें मृदुअग्निसे बहुतसमयतक भूनकर सिद्ध करै, पश्चात् दो ताल प्रमाण इसको तक्रके साथ भक्षण करै यह अनुपान है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ पंचामृतरसः ।

शुद्धसूताभ्रलौहानामृतगन्धार्कसंयुताम् ।
 सर्वेषांसमभागन्तुभल्लातंसर्वतुल्यकम् ॥ ५९ ॥
 लभकंसमादृष्टद्रवैःसूरणकन्दजैः ।
 मर्दयेदिनयुग्मश्चमाषमात्रंदिनेदिने ॥ ६० ॥
 भक्षणाद्धन्तिसर्वेषामशर्मसिचनसंशयः ।
 असाध्यान्याशुसर्वाणिरसःपंचामृतात्मकः ॥ ६१ ॥

कुष्ठरोगनिहन्त्याशुमृत्युरोगकुलान्तकः ।

मरिचंपिप्पलीशुण्ठीवह्निकमगुणोत्तरम् ॥ ६२ ॥

सर्वेषांद्रिगुणं योज्यं मूरणं पेषयेद्दृढम् ।

सर्वतुल्यो गुडो योज्यः कर्षैकं भक्षयेदनु ॥ ६३ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, अभ्रक, लोहा, गंधक, और ताँवा, यह सब समान भागलेवै, और भिलावेके बीज सबकी बराबर लेवै, पीछे सबको जमी-कन्दके रसमें दो दिन खरल करै, इसको एकमासेभर प्रतिदिन खानेसे सर्वप्रकारके अर्शरोग निःसन्देह दूर होतेहैं । तथा यह पंचामृतरस असाध्य बवा-सीर, कोढ और मृत्युरोगकोभी दूर करै है । इस औषधिके भक्षण करनेके बाद एक भाग कालीमिरच, दो भाग पीपल, तीन भाग सोंठ, चार भाग चिता और बीस भाग जमीकन्द लेकर खूब मर्दन करै, पीछे चालीस भाग गुड़ मिलाकर सेवन करै । यह अनुपानहै ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ चन्द्रप्रभावटिका ।

कृमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यभूनिम्बम् ।

मागधिमूलं मुस्तं शठीवचा धातुमाक्षिकं चैव ॥ ६४ ॥

लवणक्षारनिशायुककुस्तुम्बुरुगजकणातिविषा ॥ ६५ ॥

कार्पाशिकान्येव समानिकुर्यात्पलाष्ठकं चाश्मजतोर्विदध्यात्

निष्पत्र शुद्धस्य पुरस्य धीमान्पलद्वयं लौहरजस्तथैव ॥ ६६ ॥

शिलाचतुष्कंपलमत्रवास्यात्रिकुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम् ।

चन्द्रप्रभेयंगुटिकाप्रयोज्या अर्शासिनिर्णाशयति षडेव ॥ ६७ ॥

भगन्दरं पाण्डुचकामलाञ्चनिर्णयवह्नेः प्रकरोति दीप्तिम् ।

हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगतेर्मर्मगते व्रणे च ॥ ६८ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदेविद्रधिराजयक्ष्मणोर्महे भगाख्ये प्रबले च योज्या ।

शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च ॥ ६९ ॥

भक्तस्यैव सततं प्रयोज्या तक्रानुप्राप्तं त्वथमस्तुपानम् ।

अङ्गोस्त्रोङ्गद्वलिकोरसोवापयोथवाशीतजलानुपानम् ७०

बलेन न गत्तुरगोजवेन्द्रियसुपर्णः श्रवणैर्वराहः ।

नपानभोज्येपरिह र्यमांस्तनशीतवातातपमैथुनेच ॥ ७१ ॥

शम्भुंसमभ्यर्च्यकृतप्रणामंप्राप्ताग्नीचन्द्रमसःप्रसादात् ७२

शुक्रदोषान्निहंत्यष्टौप्रमेहानपिर्विंशतिम् ।

वलीपलितनिर्मुक्तोवृद्धोऽपितरुणायते ॥ ७३ ॥

शिलाजतुशोधनं यथा ।

दशमूलकाथउष्णेनालोड्य चण्डातपेप्रस्तरभाज-

नेकांस्येवास्थापयेत् । ऊर्ध्वभूतदण्डिस्तन्म-

स्तालिकाग्रहणंकर्तव्यम् । तदनुशिवागुटिको-

क्तकाकोल्याद्यष्टविंशतिद्रव्यकाथेभावनीयम् ।

तदनुसालसारादिगणकाथेभाव्यम् ।

तदनुत्रिफलाकाथेभाव्यम् ।

तदनुधान्यपटोलादिकाथेभाव्यम् ।

तदनुगुलञ्चकाथेभाव्यम् । तदनुयष्टीमधुकाथेभाव्यम् ।

तदनुलौहचूर्णशिलाजतुगुग्गुलुमिश्रयित्वा

काकोल्यादिशालसारादिकाथे । तदनुवि-

डंगादिचूर्णैःसंयोज्यधान्यपटोलकाथेविसृ-

ज्यशिलायांपिष्ट्वाछायाशुष्कावटिकाकार्या ।

भक्षणंरक्तिकापंचक्रमशःमाषकद्वयंयावत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—वायविडंग, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला-
देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपरामूल, नागरमोथा, अमियाहलदी, बच, सोना-
माखी, सैंधानोन, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, धनियाँ और अतीस, यह प्रत्येक
दोदो तोले ले, शिलाजीत बत्तीस तोले, शुद्धगुगल आठ तोले, लोहेका चूर्ण आठ-
तोले मिश्री सोलह तोले, वंशलोचन चार तोले, दन्ती, निसोत और त्रिसुगंधि,
यह प्रत्येक दोदो तोले लेवै, पीछे सबको एकत्रकर गोली बनावै, इन गोलियों-
को चन्द्रप्रभा कहतेहैं । यह चन्द्रप्रभावटिका छैप्रकारकी बवासीर, भगन्दर,
पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि, पित्तरोग, कफरोग, वातरोग, नाडीव्रण, मर्मगतव्रण,

ग्रंथिरोग, अर्बुदरोग, विद्रधि, राजयक्ष्मा, प्रमेह, योनिरोग, शुक्लक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रप्रवाह और उदररोगको दूर करैहै । इसको भोजनसे प्रथम भक्षण करै और भक्षणकरनेके बाद ऊपरसे तक्र तथा दहीका पानी पीवै, वा बकरीका सोरुआ, अथवा जांगलदेशके जीवोंके मांसका रस, या दूध, अथवा शीतलजलका अनुपान करै इसको सेवन करनेसे—मनुष्य बलमें हाथीकी समान, वेगमें घोड़ेकी समान; दृष्टिमें गरुडकी समान और सुननेमें बराहकी समान, होजाताहै । इसपै भोजन तथा पीनेका कुछ परहेज नहींहै तथा शीतपवन, आतप और मैथुनकाभी कुछ परहेज नहींहै ।

यह गोली—आठ प्रकारके शुक्रदोष, बीस प्रकारके प्रमेह और बली पलित रोगको दूर करैहै, और इसको सेवन करनेसे वृद्धमनुष्यभी तरुण होजाताहै ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ अब शिलाजीत, शोधनेकी विधि कहतेहैं । शिलाजीत को दशमूलके काढेमें आलोडनकर तीक्ष्णधूपमें पत्थरके अथवा कांसीके बरतनमें करके रखदेवै, जब दहीकी गरकी समान ऊपरको उठकर आजाय तब ग्रहण करै, पीछे काकोली आदि अट्राईस औषधियोंके काथमें सातदिन भावना देवै, तदनंतर सालसारादि गणके काथमें भावना देवै, पश्चात् त्रिफलेके काथमें भावनादेवै, तदनंतर धनियों और परवलके काथमें भावना देवै, फिर गुलकन्दके काथमें भावना देवै, तत्पश्चात् मुलैठीके काथमें भावना देवै, फिर लोहेका चूर्ण और गूगल मिलाकर काकोल्यादि और सालसारादिगणके काथमें भावनादेकर बायबिडंगका चूर्ण मिलावे, पीछे धनियों और परवलके काथमें भावना देकर सिद्ध करै, इसप्रकार शिलाजीतको शुद्धकर उपरोक्त चन्द्रप्रभावटीमें मिलावै, शिलाजीतको शिलापै पीसकर छायामें सुखाकर गोली बनावै, इन गोलियोंको पाँच रत्तीसे लेकर दो मासे तक भक्षण करै ॥ ७४ ॥

अथ शंकरमतं लोहम् ।

प्रणम्यशंकरं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम् ।

जितरोगं मृत्युस्य नारदः पृच्छते गुरुम् ॥ ७५ ॥

उत्सोपायेन हे नाथ शस्त्रशाराग्निभिर्विना ।

दुर्बलानां चोत्प्लवांचिकित्सां वक्तुमर्हसि ॥ ७६ ॥

तच्छिष्यवचनं श्रुत्वा लोकानां हृदयमप्ययम् ।

अर्शसांनाशनं श्रेष्ठं भैषज्यमिदमीरितम् ॥ ७७ ॥

रुण्डवज्रादिलोहानांलोहमन्यतमंशुभम् ।
 कृत्वानिर्मलमादौतुकुनत्थामाक्षिकेणच ॥ ७८ ॥
 पचूरमूसकल्केनस्वरसेनाहतस्ततः ।
 वह्नौनिक्षिप्यविधिवच्छालांगारेणनिर्धमेत् ॥ ७९ ॥
 ज्वालाचतस्यबोद्धव्यात्रिफलायारसेनच ।
 ततोविज्ञायगलितंशंकुनोर्द्ध्विनिक्षिपेत् ॥ ८० ॥
 त्रिफलायारसेपूतेतदाकृष्यविनिर्वपेत् ।
 नसम्यग्गलितंयच्चतेनैवविधिनापुनः ॥ ८१ ॥
 ध्मातंनिर्वापयेत् स्मिल्लोहंतत्रिफलारसे ।
 ततःसंशोष्यविधिवच्चूर्णयेल्लोहभाजने ॥ ८२ ॥
 लोहेनैवतथापिस्याद्दृशदिश्लक्ष्णचूर्णितम् ।
 कृत्वालोहमयेपात्रेमार्गेवालिप्तंरंध्रके ॥ ८३ ॥
 रसैःपंचोपमंकृत्वापाचयेद्गोमयाग्निना ।
 पुटानिक्रमशोदद्यात्पृथगेषांविधानतः ॥ ८४ ॥
 त्रिफलार्द्रकभृंगाणांकेशराजस्यबुद्धिमान् ।
 कन्दमाणकभल्लातवह्नीनांसूरणस्यच ॥ ८५ ॥
 हस्तिकर्णालाशस्यकुलिशस्यतथैवच ।
 पुटेपुटेचूर्णयित्वालोहात्षोडशिकंपलम् ॥ ८६ ॥
 तन्मानंत्रिफलायाश्चपलेनाधिकमाहरेत् ।
 अष्टभागावशिष्टेतुरसेतस्याःपचेद्बुधः ॥ ८७ ॥
 अष्टौषलादिस्त्वाचसर्पिषोलोहभाजने ।
 ताम्रेवाल्लोहद्व्यातुचालयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ८८ ॥
 ततःपाकविधानज्ञःस्वच्छेचोद्धृत्यर्पिपि ।
 मृदुमध्वादिभेदेनगृहीर्यात्पाकमानतः ॥ ८९ ॥
 अभिमंज्यविधानेनकृतकौतुकमंगलम् ।

भ्रामरं घृतसंयुक्तं लिहेद्वारक्तिकाक्रमात् ॥ ९० ॥
 वर्द्धमानानुपानं च गव्यं क्षीरोत्तमं मतम् ।
 गव्याभावेऽप्यजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोजनम् ॥ ९१ ॥
 सद्यो वह्निकरं चैव भस्मकञ्च नियच्छति ।
 हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरान् ॥ ९२ ॥
 गुल्माक्षिपाण्डुरोगांश्च तन्द्रालस्यमरोचकम् ।
 शूलं सपरिणामञ्च प्रमेहमपवाहुकम् ॥ ९३ ॥
 श्वयथुरक्तस्रावञ्च दुर्नामादिविशेषतः ।
 बलकृद्बृहणं चैव भ्रान्तिदं स्वरवर्द्धनम् ॥ ९४ ॥
 लाघवं च मनोज्ञञ्च आरोग्यं पुष्टिवर्द्धनम् ।
 आयुष्यं श्रीकरञ्चैव वयस्तेजस्करस्तथा ॥ ९५ ॥
 सश्रीकपुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ।
 दुर्नामारिरयं नाम्नादृष्टो वारसहस्रशः ॥ ९६ ॥
 निर्मूलं दह्यते शीघ्रं यथातूलञ्च वह्निना ।
 सौकुमार्यस्वकायत्वान्मद्यसेवी सदानरः ॥ ९७ ॥
 जीर्णमद्यानियुक्तानि भाजनैः सह पाययेत् ॥ ९८ ॥
 लावश्च तित्तिरिर्गोधामयूराः शशकादयः ॥ ९९ ॥
 चटकः कलविकश्च वर्तको हस्तितालकः ।
 श्येनकश्च बृहल्लावो वनविष्किरकादयः ॥ १०० ॥
 पारावतमृगादीनां मांसं जांगलजं तथा ।
 मद्भूरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः ॥ १०१ ॥
 मत्स्यराजा इमे प्रोक्ता हि तस्मिन् मत्स्याश्च येन वा ।
 प्रशस्तं वातं कृष्णं फलं पटोलं हताफलम् ।
 प्रलम्बाभीरुवेत्राग्रं तातकं तण्डुलीयकम् ।
 वास्तुं च तालशाकञ्च कर्णालुकपुनर्नवम् ॥ १०२ ॥

नारिकेलंचखर्जूरंदाडिमंलवलोफलः ।
 शृंगाटकश्चपक्वाम्रंद्राक्षातालफलानिच ॥ १०३ ॥
 जातीकोषलंगंचपूगंताम्बूलपत्रकम् ।
 नाश्रीयाल्लकुचंकोलकर्कन्धुबदराणिच ॥ १०४ ॥
 जम्बीरंबीजपूरंचकरमर्दकतिन्तिडी ।
 आःपानिचमांसानिकुवरःपुत्तदादयः ॥ १०५ ॥
 हंससारसदात्यूहमद्भुकाकबलाहकाः ।
 मकन्दकरवीराणिचणकश्चकलम्कम् ॥ १०६ ॥
 कूष्माण्डकश्चककोटंकेवुकश्चविशेषतः ।
 कश्चटश्चकदलकंकशेरुंकर्कटीन्तथा ॥ १०७ ॥
 विदलानिचसर्वाणिककारादींश्चवर्जयेत् ।
 लोहराजस्तथाचायंस्वयंरुद्रेणभाषितः ॥ १०८ ॥
 जनानामुपकारायदुर्नामारिरयंध्रुवम् ।
 स्थानादपैतिमेरुश्चपृथ्वीपर्येतिवापुनः ॥ १०९ ॥
 पतन्तिचन्द्रताराश्चमिथ्यानैववदाम्यहम् ।
 ब्रह्मघ्नाश्चकृतघ्नाश्चक्रूराश्चासत्यवादिनः ॥ ११० ॥
 वर्जनीयाविदग्धेनभैषज्यगुरुनिन्दकाः ।
 रक्तीद्वादशकादूर्ध्ववृद्धिरस्यभयप्रदा ॥ १११ ॥

अत्रजारितस्थालीः टपाकादिसिद्धंलोहचूर्णं ग्राह्यम् ॥

अर्थ—एकसमय कल्याणरूप खलोंको रुलानेवाले, दण्डधारी मनुष्योंके रोगोंके हरनेवाले, जगद्गुरु, महेश्वर ऐसे श्रीमान् शिवजीको नारदजी प्रणामकर पूछते हुए कि—हेनाथ ! शस्त्रक्रिया, क्षारकर्म और अग्निको छोड़कर सुखसहित उपायसे दुर्बल और भीरु (भयभीत) अर्शरोगवाले रोगियोंकी चिकित्सा कृपाकरके कहिये, तब शिष्य (नारदजी) के वचनोंको सुनकर संसारके प्राणियोंपै अनुग्रहकर शिवजीने अर्शरोगको दूरकरनेवाली यह औषधि कहीहै। मुण्डादि लोहोंमेंसे एक कोईसा लोहा लेवै उसको सोनामाखी तथा मैन्शिलके द्वारा शुद्ध और

निर्मल करै, पीछे शालिचशाककी जड़के कल्कके स्वरसमें भिजोकर मारे, फिर आगमें रख सालके अंगारोंसे फूँके, पश्चात् फूँककर त्रिफलेके रसमें बुझावै, फिर आगमें रख सालके अंगारोंसे फूँके, पश्चात् फूँककर त्रिफलेके रसमें बुझावै, इसप्रकार बारंबार आगमें रखकर फूँके और बारंबार बुझाता जाय, जब गल-जाय, तब शंकुसे ऊपरको उठाकर त्रिफलेके रसमें छोड़देवै, जो अच्छे प्रकार नहीं गले तौ फिर इसी विधिसे बारंबार गलावै, और त्रिफलेके रसमें बुझावै, पीछे, भलेप्रकार सुखाकर लोहेके बरतनमें चूर्ण करै और जो लोहेके बरतनमें अच्छेप्रकार चूर्ण न बनै तौ पथरपै पीसकर चूर्ण करै, पश्चात् लोहेके बरतनमें रख मुख बंदकर बरतनको मिट्टीके गारेसे लीप सुखावै, फिर उपलोंकी अग्निसे गजपुटमें पचावै, तदनंतर त्रिफला, अदरक, भांगरा, कुकुरभांगरा मानकन्द, भिलावा, चीता, जमीकन्द, हस्तिकर्ण, पलाश और थूहर इन प्रत्येकके रसमें अलग अलग भावना देकर गजपुटमें पकावै, और प्रतिपुट चूर्ण बनाता जाय, और सोलह पल लोहेके चूर्णको सोलह पलसे अधिक त्रिफलेके रसमें पुटदेवै, आठ भाग बाकी रहे हुए उस त्रिफलेके काथमें फिर इस लोहेको पकावै, फिर इस लोहेके चूर्णको लोहेकी कढ़ाई अथवा ताँबेकी कढ़ाईमें चढ़ाकर और उस कढ़ाईमें बत्तीस तोले घी डालकै पकावै, और लोहेकी करछीसे चलाता रहै, इस-प्रकार पाकको जाननेवाला वैद्य अच्छेप्रकारसे पकावै, जब तैरकर स्वच्छ घी ऊपरको आजाय तब सिद्ध जानकर उतारलेवै, इसप्रकार जब लोहा सिद्ध हो-जाय तब मंत्र पढ़कर और अनेकप्रकारके मंगलरूप उत्सवादि कार्य करके सहत और घीमें मिलाय एक रस्तीभरके क्रमसे बढ़ाता हुआ खावै और ऊपरसे गायके दूधको पीवै, यह अनुपान है । और जो गायका दूध न मिले तौ बकरीके दूधको पीवै और वृष्य तथा स्निग्ध भोजन करै । यह लोह-मन्दाग्नि, भस्मकरोग, वात-पित्त, कुष्ठ, विषमज्वर, गुल्म, नेत्ररोग, पाण्डुगोग, निद्रा, आलस्य अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, अपवाहुक, वात, सूजन, रक्तस्राव, और विशेषकरके ववासीरको दूर करैहै । तथा बलको करनेवाला, पुष्टिको करनेवाला, शरीरको हलका करनेवाला, आरोग्य और पुष्टिको बढ़ानेवाला, आयुवर्द्धक, लक्ष्मीदायक, नेजजनक, कांतियुक्तपुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला, बली और पलित को हरैहै । यह दुर्नाभारि लोह हजारोंबार अजमायाहुआहै । इससे ववासीर ऐसे नाश होतीहै जैसे आगसे रुई जलजाती है । इसके ऊपर मद्यपान करना निषेधहै परंतु जो मद्यको सदैव सेवन करतेहैं और सुकुमार तथा अल्पशरीरवालेहैं वह जीर्णमदि-राको भोजनके साथ सेवनकरतेहैं । लवा, तीतर, गोधा, मोर, शशक, चटक,

कलर्विक, वत्तक, हरियल, श्येणक, बडालवा और वनमें रहनेवाले विष्किरपक्षी परेवा, जंगलीजीवोंका मांस, मदगुरु, रोहित, शकुल, बैंगन, परवल, कटेरीका-फल, लंबाकदू, शतावर, बैतका अग्रभाग, देवदारु, चौलाईका शाक, बथुवा, कालशाक, कणाल, पुनर्नवा, नारियल, खजूर, अनार, हरफारेवडी, सिंघाड़े, पक्केआम, दाख, ताडके फल, जायफल, लौंग, सुपारी, और पान, यह सर्व पदार्थ लोहेके सेवनकरनेवाले मनुष्यको हितकारीहैं, और बडहर, बेर, बडेबेर (पोंडे), झडबेर, जम्भीरीनीबू, बिजोरानीबू, करोंदा, इमली, कुरव और पुत्तदाको आदि लेकर अनुपदेशके जीवोंका मांस, हंस, सारस, दात्यूह, मद्रगु, काक बलाहक, मानकन्द, कनेर, चने, कलम्बुक, पेठा, ककोडा, केबुक, कंचद, केला, कशेरु, ककडी, सर्वप्रकारके विदल अन्न, और सर्वप्रकारके ककारादि अन्न यह सब द्रव्य इस लोहेका सेवनकरनेवालेको त्यागने चाहियें । यह दुर्नामारिलोहराज लोकोंके कल्याणकरनेके लिये श्रीमान् शिवजीने स्वयं कहाहै । श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि—अपने स्थानसे सुमेरुपर्वत हटजाय, पृथ्वी लौटजाय, चन्द्रमा और नारायण आकाशसे पतित होजायँ, जो इस लोहेके सेवनकरनेसे बवासीर दूर न होवै तो । ब्रह्मघाती, कृतघ्नी, क्रूर, असत्यवादी और गुरुनिन्दक ऐसे मनुष्योंको यह लोहा कदापि नहीं देना चाहिये । बारह रत्तीसे अधिक इस लोहेको सेवन करनेसे भय उत्पन्न होताहै, इसकारण यह बारह रत्तीसे कम सेवन करना चाहिये, इसमें स्थालीपुटपाकमें सिद्धकिया तथा जारितकिया लोहा लेना चाहिये ॥७१॥७६॥७७॥७८॥७९॥८०॥८१॥८२॥८३॥८४॥८५॥८६॥८७॥८८॥८९॥९०॥९१॥९२॥९३॥९४॥९५॥९६॥९७॥९८॥९९॥१००॥१०१॥१०२॥१०३॥१०४॥१०५॥१०६॥१०७॥१०८॥१०९॥११०॥१११॥

अथ अग्निमुखलोहम् ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डितिकाजटाः ।

१ मुण्डितिका भण्डीरी जटातस्याः भूम्यामलकी । त्रिवृदादीनां रसेनापि व्यवहारः काथः पाश-वशिष्टत्वात् पाकावतारणकाले प्रक्षेपार्थं विडंगादीनां चूर्णम् । त्रिफलाया मिलित्वा पंचपलानि । शिलाजतु शिवागुटिकोक्तविद्याशोधितम् । दिव्यौषधिः स्वर्णमाक्षिकमनःशिले । शालिचायूक-शिम्बी वैकङ्कतो वनपालंकः रुक्मलौहं वज्रपाण्डूवादितश्च रसायनोक्तक्रमेण जारणपुटनादिस्-क्ष्मचूर्णितम् । घृताच्चतुर्विंशतिपलानि मधुशर्करयोश्चतुर्विंशतिमिलित्वा तप्तघृते लौहं दत्त्वा पश्चात् शर्करासहितं काथं दत्त्वा पाकः । अवतारणसमये विडंगादिचूर्णप्रक्षेपः । पथुषितमधु दत्त्वा विस्फुल्ललोहपात्रे घृतपात्रे वा स्थाप्यम् ततो विश्राम्य पश्चादुपविश्य अमृतसारतवत्त्वप्रयोज्यमिति निश्चलकरः ॥

प्रत्येकशोऽष्टपलिकाजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ११२ ॥
 पलत्रयंविडंगस्यव्ये षंकर्षत्रयंपृथक् ।
 त्रिफलायाः षलंपंचशिलाजतुपलंन्यसेत् ॥ ११३ ॥
 दिव्यौषधिहतस्यापिवैकङ्कतहतस्यवा ।
 पलद्वादशकंदेयरुक्मलौहस्यचूर्णितम् ॥ ११४ ॥
 घृताच्चतुर्विंशतिभिर्मधुशर्करयोरपि ।
 वनीभूतेषुशीतेचदापयेदवतारिते ॥ ११५ ॥
 एतदग्निमुखन्नामदुर्नामान्तकरंपरम् ।
 मन्दमग्निकरोत्याशुकालाग्निसमतेजसः ॥ ११६ ॥
 पर्वताअपिजीर्यन्तिप्राशनादस्यदेहिनः ।
 गुरुवृष्यानुपानानिपयोमांसरसोघृतम् ॥ ११७ ॥
 दुर्नामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्रीहोदरापहम् ।
 अकालपलितंचैवआमवातगुदामयम् ॥ ११८ ॥
 नसरोगोऽस्तितश्चापिनहिहन्यादिदंक्षणात् ।
 करीरकांजिकादीनिककारादींश्चवर्जयेत् ॥ ११९ ॥
 स्रवत्यतोऽन्यथालोहलोहात्किट्टंचदुर्जयम् ॥ १२० ॥

अर्थ—निसोत, चीता, निर्गुण्डी, थूहर, गोरखमुण्डी और भुईआमला
 यह प्रत्येक आठपल लेंवे, पीछे चौमठमेर जलमें पकाकर चतुर्थीश काथ बनावे,
 फिर वायविडंग १२ बारह तोले, सांठ ६ छः तोले, मिर्च छः तोले, पीपल छः
 तोले, त्रिफला २०बीस तोले, शिलाजीत ४चार तोले, मोनामाखी वा मैनाशिलसे
 माराहुआ तथा विक्कतके रसमे माराहुआ तीक्ष्ण लोह १२ बारह पल लेंवे,
 घृत २४ चौबीसपल, चीनी २४ चौबीसपल और महत चौबीसपल लेंवे। अब इसके
 बनानेकी विधि कहतेहैं। प्रथम घृतको कड़ाहीमें गरम कर, पीछे उसमें लोहा
 मिलाकर पकावै, फिर निसोतादिके काथमें चीनी मिलाकर उपरोक्त लोहेकी
 कड़ाहीमें छोड़देवै, पीछे चूल्हेपरसे उताकर वायविडंगादिका चूर्ण मिलादेवै, जब
 बहुतदेर रखनेसे शीतल होजाय तब सहत मिलादेवे तदनन्तर इसको लोहेके
 बरतनमें अथवा मिट्टीके चिकने बरतनमें भरके रख देवै, इसप्रकार यह अग्निमुख

अथ चव्यादिलोहम् ।

करीरकांजितं चैव काकमाचीं विवर्जयेत् ॥ १२७ ॥

अर्थ—चव्य बत्तीस तोले, खैर सोलह तोले, मुसली बीस तोले और त्रिफला चौंसठतोले लैवै, पश्चात् बत्तीससेर जलमें पकावै, जब जलकर काथ आठसेर बाकी रहै तब उतारले, फिर इस काथको तांबेके बरतनमें करले, तिसमें बत्तीसतोले घी और चौंसठ तोले तीक्ष्णलोह मिलाकर पकावै, जब पककर शीतल

होजाय तव उतारले, पीछे निसोत, दन्ती, बायबिडंग, हरड, आमला, सोंठ, बहेड़ा और पीपल, इन प्रत्येकका चूर्ण दोदो तोले, बूरा सोलह तोले, और सहत सोलह तोले मिलदेवै, पश्चात् चिकने बरतनमें भरके रखदेवै । इसके ऊपर भारी वृष्यभोजन, पान, दूध, और मांसरस (सोरुआ,) हितकारी है । यह लोह, बवासीर, कोढ़, सूजन, पाण्डु, प्लीहा, उदर रोग, हृदयशूल, गुदशूल, और परिणामशूलको निर्मूल करै है । तथा बल, वर्ण और वीर्यको उत्पन्न करै है, और अग्निको दीपन करै है । इसपै करीर, काँजी और काकमाची (मकोय) त्यागनी चाहिये ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

अथ विद्याधरलोहम् ।

स्वच्छपत्रीकृतं लौहं लिप्तं लिप्तं च निर्वपेत् ।

लवणैर्माक्षिकोपेतैस्त्रिफलाकार्षिकोदके ॥ १२८ ॥

सुसिक्तं लोहमादाय पूतं संचूर्णयन्ततः ।

पुटैर्यथा व्याधिहरं द्रव्यं संपादितैः पचेत् ॥ १२९ ॥

पिण्डेन शर्कराक्वाथः कलम्ब्या बहुपत्रतः ।

करिकर्णपलाशकलवणैरप्यरुष्करैः ॥ १३० ॥

चतुर्गुणेफलरसे लोहार्द्धघृतयोजितम् ।

पाचयेन्निष्ठुणस्तावद्यावत्सर्पिर्विमुञ्चति ॥ १३१ ॥

षोडशांशं क्षिपेत्तत्र ततः संशोधितं रसम् ।

राजिकापिण्डमध्ये तु व्योषमिण्डस्य मध्यगम् ॥ १३२ ॥

गवामलतुषाग्नौ च वस्त्रवत्त्वञ्चर्काजिकैः ।

सिद्धं सप्ताहमेव न्तु ततः संचूर्णयेत्पुनः ॥ १३३ ॥

चिञ्चाकषायज्येष्ठा म्बुक्षीरनिर्वापितेन तु ।

द्विगुणेन गंधकशिलासुश्लक्ष्णरजसा पुनः ॥ १३४ ॥

पादं विडंगमुस्ताग्नित्रिफलाव्येषजं रसः ।

लाहादेकीकृतं पिष्टमन्तु निधापयेत् ॥ १३५ ॥

तत्तत्तत्तत्प्रयुंजीत यथा नोपयथावयः ।

आहारपरिहारौचलौहान्तरसमानवित् ॥ १३६ ॥
 कुलत्थञ्चकपोतञ्चकरमर्दककांजिके ।
 करीरंकारवेल्लंचषट्ककाराणिवर्जयेत् ॥ १३७ ॥
 विद्याद्विद्याधरमतलौहंसर्वगदापहम् ।
 नसोऽस्थिरोगःकुक्षिस्थोयमिदंननिहन्तिच ॥ १३८ ॥
 नलोपकारान्यशांसिसर्वोपद्रववन्तिच ।
 अम्लकंग्रहणीमेहान्गुल्मानुदरमष्टकम् ॥
 गुरुपादप्रसादेनख्यातंभुविरसायनम् ॥ १३९ ॥

(श्लोकव्याख्या)

अत्रस्वच्छमितिशाणादिनिर्मलीकृतम् । लव-
 णैरितिसैन्धवादिभिः । रसशोधनमाह । राजिके-
 त्यादि । अयमर्थः । आदौपिष्टौषधमपिपिण्ड-
 मध्येगोलकःकर्त्तव्यः । तदनुबाह्यतोराजिकापि-
 ण्डकत्वेनवेष्टयित्वागुडकःकर्त्तव्यः तञ्चवस्त्रा
 च्छादितमिति वस्त्रेणवेष्टयित्वावस्त्रेणपोटलं कुर्या-
 त् । तदनुशरावेकृत्वातुषानलेमन्दपाकेपचनीयः ।
 उष्णःसन्पुनःकांजिकयापाचनीयः । एवंसप्ता-
 हंशोधनंकृत्वाशोधितश्लक्ष्णगंधकरजसारसान्
 द्विगुणेनसहितमूर्च्छयेत् ।

कज्जलिकांकृत्वाइत्यर्थः । गंधकशोधनप्रका-
 रमाह । चिंचेत्यादि । अयमर्थः । तत्रगंधकंचूर्ण-
 यित्वालोहपात्रेकृत्वाबदरीकाष्ठनिर्धूमाङ्गारेविधृत्यभाव-
 यित्वाप्रथमंतिन्तिडीकषायेतदनुकांजिकेतदनुगव्ये ग्धे
 निर्वाप्य नरातपतद्गन्धकंशिलायां श्लक्ष्णरजः कृत्वात-

**नरजसामूर्च्छयेदितिः । तदनुतंकज्जालकावस्थी-
कृतरसंप्रक्षिपेत् । विडंगादिनवद्रव्याणाम् ।**

अर्थ—लोहेके स्वच्छ पत्र बनाकर नोन और सहतका लेप करके त्रिफलेके रसमें बारंबार बुझावै, इस प्रकार शुद्धकिया लोहा लेकर चूर्णकरै, उस चूर्णको पुटके द्वारा पकावै, पश्चात् बूराका काथ, कलंबी, सतोना और हस्तिकर्ण, पलाशके पत्ते, नोन और भिलावेके रसमें भावना देकर बारंबार पुटदेवै, फिर चौगुने त्रिफलेके रसमें लोहेसे आधा घी मिलाकर पकावै, जबतक लोहा घृतको न छोड़दे तबतक पकाताही रहै, तदनन्तर उसमें शुद्धपारा सोलहभाग डालकर गोला बनाले, उस गोलेमें राई और त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर वस्त्रमें बाँध सम्पुटमें रख आरणे उपले और भूसीकी आगसे पकावै, फिर काँजीमें पकावै, इसप्रकार सातदिनतक पकावै, पश्चात् इसका चूर्णकर और गंधकका चूर्ण इसमें मिला लोहेके पात्रमें रख बेरीकी लकड़ीकी अग्निसे पकाकर प्रथम इमलीके काढ़ेमें बुझावै, पश्चात् काँजीमें बुझावै फिर दूधमें बुझावै, पश्चात् धूपमें सुखाकर शिलापे पीस पारेके साथ कज्जली करै, फिर इसमें वायविडंग, नागरमोथा, चीता, त्रिफला और त्रिकुटेका चूर्ण मिलादेवै, दोषोंका बलाबल विचारकर इसको देवै । इसपै कुलथी, कबूतर, करोंदा, काँजी, करीर, करेला यह छः प्रकार त्यागने चाहियं । यह विद्याधरलोहा सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करैहै और ऐसा मनुष्यकी कुक्षिमें स्थित कोईभी रोग नहीं है जो इससे दूर नहीं होता है । इससे सर्वउपद्रवयुक्त बवासीर, अम्लपित्त, संग्रहणी, प्रमेह, गुल्म और आठप्रकारके उदररोग दूर होते हैं । यह गुरुके चरणकमलोंके प्रसादसे उत्तमरसायन पृथिवीमें प्रसिद्ध है ॥
॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥
॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

इति अर्शरोगचिकित्सासमाप्ता ।

अथमन्दाग्निचिकित्सा ।

मन्दस्तीक्ष्णोऽथविषमःसमश्चेतिचतुर्विधः ।

कफपित्तादिनाग्निद्वयात्त्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

जाठरइतिधात्वग्निभूताग्निरासार्थम् ।

विषमे वातजोरोगास्तीक्ष्णःपित्तानिमित्तजान् ॥ २ ॥

करोत्यग्निस्तथामन्ोविकारान्कफसम्भवान् ।

रसासमाग्रेराशेतामात्रासम्यग्विपच्यते ॥ ३ ॥

स्वल्पापिनैवमन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तुदेहिनः ।

कदाचित्सम्यक्पचतेकचित्चनपच्यते ॥ ४ ॥

ग्लानिमात्राप्यशितामुखंयस्यविपच्यते ।

तीक्ष्णाग्निरितितंविद्यात्समाग्निःश्रेष्ठ उच्यते ॥ ५ ॥

समस्यरक्षणंकार्यविषमेवातनिग्रहः ।

तीक्ष्णपित्तप्रतीकारोमन्दश्लेष्मविशोधनम् ॥ ६ ॥

ग्लानिगौरवसाटोपभ्रममारुतमूर्च्छिता ।

विष्टम्भोऽतिप्रवृत्तिर्वासामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ ७ ॥

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णजायतेनृणाम् ।

तन्मूलोरोगसंयातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—कफकी अधिकतासे मन्दाग्नि, पित्तकी अधिकातासे तीक्ष्णाग्नि, वातकी अधिकतासे विषमाग्नि, और वात, पित्त, कफकी समतासे जठराग्नि-सम अर्थात् समाग्नि होतीहै; ऐसे चार प्रकारकी जठराग्नि जाननी । विषमाग्नि वातके रोगोंको, तीक्ष्णाग्नि पित्तके रोगोंको और मन्दाग्नि कफके रोगोंको उत्पन्न करैहै और समाग्निवाले मनुष्यके भक्षण की हुई समान मात्रा भलेप्रकार पचजातीहै । मन्दाग्निवाले मनुष्यके भक्षण की हुई अल्पमात्राभी नहीं पचतीहै । विषमाग्निवाले मनुष्यके खाईहुई मात्रा कभी पचतीहै और कभी नहीं पचतीहै और तीक्ष्णाग्निवाले मनुष्यके अधिक भक्षण कीहुई भी मात्रा तत्काल पचजातीहै । इन सबमें समाग्निश्रेष्ठहै, समाग्निकी सदैव रक्षा करनी चाहिये, विषमाग्निमें वातको दूरकरना उचितहै, तीक्ष्णाग्निमें पित्तको प्रशमनकरना चाहिये और मन्दाग्निमें कफको दूरकरना चाहिये । ग्लानि, शरीरभारी, पेटमें गुडगुड शब्द, भ्रम, वात, मूर्च्छा, विष्टम्भ और डकारका बहुत आना यह सब अजीर्ण-रोगके साधारण लक्षण जानने । आहारकी विषमतासे अजीर्णरोग उत्पन्न होताहै और अजीर्णरोगसे अनेक प्रकारके रोगोंका समूह उत्पन्न होताहै और उस अजीर्णके शांतहोनेसे सर्वरोग नष्ट होजातेहैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ हिंघवष्टकम् ।

त्रिकटुकमजमोदासैन्धवज्जिह्वसमधरणं तानाष्टमो-
हिंघुभागः प्रथमकवलभुक्तंसर्पिषाचूर्णमेतज्जनयतिजठ-
राग्निवातरोगांश्चहन्ति ॥ ९ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल अजमोद सैंधानोन, जीरा, कालाजीरा, भुनीहुई
हींग इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण करे, उस चूर्णको घीमें मिलाकर भोज-
नके प्रथमग्रासमें खावै, इससे जठराग्नि दीपन होतीहै और वातरोग नाश
होतेहैं ॥ ९ ॥

अथ हिंघुमंडः ।

अन्नमण्डपिबेदुष्णं हिंघुसौवर्चलान्वितम् ।

विषमोऽपिसमस्तेनमन्दोदीप्येतपावकः ॥ १० ॥

क्षुद्रोधनोबस्तिविशोधनश्चप्राणप्रदःशोणितवर्द्धनश्च ।

ज्वरापहारीकफपित्तहन्तावातजयेदष्टगुणोहिमंडः ॥ ११ ॥

अर्थ—भातके माँडमें हींग और कालानोन मिलाकर गरम गरम पीनेसे विष-
माग्नि और मन्दाग्नि दीपन होजातीहै । तथा यह माँड—भूखको बढ़ानेवाला,
बस्तिशोधक, प्राणरक्षक, रक्तवर्द्धक, ज्वरनाशक, कफपित्तनिवारक और वातको
दूर करेहै, इसप्रकार इसमें यह आठ गुण हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ अग्निदीपनचूर्णम् ।

भोजनाग्निहितं हृद्यं दीपनं लवणार्द्रकम् ।

हरीतकीभक्ष्यमाणानागरेण गुडेन वा ॥ १२ ॥

सैन्धवोऽपि हितो वापि सातत्येनाग्निदीपनः ।

हरीतकीहृद्यं त्रिसमं समुदाहृतम् ॥ १३ ॥

अग्नि सन्दीपनं नृणां त्रिदोषामयनाशनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—भोजनकेपूर्व सैंधानोन और अदरखका खाना अग्निदीपन करेहै । हर-
डको सोंठके साथ अथवा गुडके साथ वा सैन्धवनोनके साथ सेवन करनेसे जठराग्नि
दीपन होतीहै । हरड, पीपल और सोंठ इन तीनोंको समानभाग लेकर चूर्ण करे,
उस चूर्णको भक्षण करनेसे अग्निदीपन और त्रिदोष दूर होवे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ सैन्धवादिचूर्णम् ।

सिन्धूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्ण-
मुष्णाम्बुनापिबतियःखलुनष्टवह्निः ।
तस्यामिषेणसघृतेनवरंनवान्नं
भस्मीभवत्यशितमात्रमपिक्षणेन ॥ १५ ॥

अर्थ—सैधानोन, हरड, पीपल, और चीता इनका चूर्ण समानभाग लेकर गरमपानीके साथ पीवे, मांस घृतके साथ नवीन अन्नका भोजन करे । इससे नष्टअग्नि दीपन होजातीहै और भारी भोजन भस्म होजाताहै ॥ १५ ॥

अथाग्निवर्द्धिनी अभया ।

अभयानिम्बसंयुक्ताभक्षितानलवृद्धिकृत् ।
दद्रुविस्फोटकांश्चैवनाशयत्याशुदेहिनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हरडको नीमके साथ सेवनकरनेसे—जठराग्नि बढतीहै, तथा दाह, और विस्फोटक दूर होते हैं ॥ १६ ॥

अथ स्वल्पाग्निमुखचूर्णम् ।

हिंशुभागोभवेदेकोवचाचद्विगुणाभवेत् ।
पिप्पलीत्रिगुणाचैवशृंगवेरंचतुर्गुणम् ॥ १७ ॥
यवानिकापंचगुणाषड्गुणाचहरीतकी ।
चित्रकंसप्तगुणितंकुष्ठं चाष्टगुणम्भवेत् ॥ १८ ॥
एतद्वातहरंचूर्णपीतमात्रंप्रसन्नया ।
पिबेद्भ्रामस्तुनावासुरयाकोष्णवारिणा ॥ १९ ॥
क्षेपाम्बुनामजीर्णान्तुप्लीहानमुदरन्तथा ।
अंगानियस्यशीर्य्यन्तिविषंवायेनभक्षितम् ॥ २० ॥
अशोहरंणीपनंचश्लेष्मघ्नंगुल्मनाशनम् ।
कासंश्वासंनिहन्त्याशुतथैवक्षयनाशनम् ॥ २१ ॥
र्णमग्निमुखन्नामनक्वचित्प्रतिह्न्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—हींग एकभाग, वच दो भाग, पीपल, तीनभाग, अदरक चारभाग अज-वायन पांचभाग, हरड छैभाग, चीता सातभाग और कूट आठ भाग लें, पीछे

इनसबको कूट पीस चूर्ण बनावे । इस वातनाशक अग्निमुखचूर्णको प्रसन्नानाम-
क मदिराके साथ, अथवा दहीके साथ वा दहीके पानीके साथ, वा सुराके साथ
अथवा किंचित् गरमजलके साथ, पीनेसे दोपोंसे उत्पन्नहुआ अजीर्णरोग, प्लीहा,
उदररोग, गलतेहुए शरीरको, विषका भक्षणकरना, बवासीर, कफ, गुल्म, खाँसी,
श्वास और क्षयरोगको दूर करैहै तथा अग्निको दीपन करैहै ॥ १७ ॥ १८ ॥
॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ बृहदग्निमुखचूर्णम् ।

द्वौक्षारौचित्रकंपाठाकरंजलवणानिच ।
सूक्ष्मैलापत्रकंभाङ्गीकृमिघ्नंहिं गुणुष्करम् ॥ २३ ॥
शठीदावींत्रिवृन्मुस्तंवचाचेन्द्रयवास्तथा ।
धात्रीजीरकवृक्षाम्लंश्रेयसाचोपकुंचिका ॥ २४ ॥
उम्लवेतसमम्लीकायवानीसुरदारुच ।
अभयातिविपेश्यामाहपुपारगवधंसमम् ॥ २५ ॥
तिलमुष्ककशिग्रूणांकोकिलाक्षपलाशयोः ।
क्षाराणिलोहकिट्टञ्चतप्तंगोमूत्रसेवितम् ॥ २६ ॥
समभागानिसर्वाणिश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ।
मातुलुंगरसेनैवभावयेच्चदिनत्रयम् ॥ २७ ॥
दिनत्रयन्तुशुक्तेनआर्द्रकस्वरसेनवा ।
अत्यग्निकारकंचूर्णप्रदीप्ताग्निममप्रभम् ॥ २८ ॥
उपस्त्रुक्तंविधानेननाशयत्यचिराद्बदान् ।
अजीर्णकमथोगुल्मंप्लीहानंगुदजानिच ॥ २९ ॥
उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्चाप्लीलांवातशोणितम् ।
प्रणुदत्युल्बणान्रोगान्नष्टवह्निञ्चदीपयेत् ॥ ३० ॥
समस्तव्यञ्जनोपेतंभक्तंदत्त्वासुभाजने ।
वायुपेदस्थवृणस्थविडालपदमात्रकम् ॥ ३१ ॥
गोदोहमात्रात्तत्सर्वद्वीभवतिसोष्मकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—सजी, जवाखार, चीता, पाढ, करंज, पंचलवण, छोटीइलायची, तेज-
 पात, भारंगी, बायविडंग, हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहलदी, निसोत, मोथा,
 बच, इंद्रजौ, आमला, जीरा, विषाविल, रास्ना, कलौंजी, अमलबेत, इमली,
 अजवायन, देवदारु, हरड़, अतीस, पीपल, हाऊबेर, अमलतास, तिलोंकाखार,
 मोखेकाखार, सेंजिनेका खार तालमखानेका क्षार, ढाकका खार और गोमूत्रमें
 शुद्ध की हुई लोहेकी कीट इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे,
 पछि इस चूर्णको बिजोरा नींबूके रसमें तीनदिन भावना देवै, फिरतीनदिन
 काँजी अथवा अदरखके रसमें भावना देवै, तो बृहदग्निमुखचूर्ण बनजाताहै ।
 यह बृहदग्निमुखचूर्ण—अत्यन्त अग्निकारक है । इसको उपयुक्त मात्राके
 अनुसार सेवनकरनेसे बहुतदिनोंके रोग नष्ट होतेहैं, तथा अजीर्ण, गुल्म,
 प्लीहा, गुदाके रोग, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्टीला और वातरुक्तरोग दूरहोताहै
 और नष्टअग्निको दीपन करैहै। सम्पूर्णव्यञ्जनोंसे युक्त भातको बरतनमें रख पश्चात्
 उसमें दोतोले भर इस चूर्णको डालकर खानेसे गोदोहनकाल अर्थात् शग्नि-
 खाया भोजन द्रवी अर्थात् पचजाताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥
 ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ भास्करलवणम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंधान्यकंकृष्णजीरकम् ।

सैन्धवंचविडंचैवपत्रंतालीशकेशरम् ॥ ३३ ॥

एपांद्रिपलिकान्भागान्पंचसौवर्चलस्यच ।

मरीचाजाजीशुंठीनामैकैकस्यपलंपलम् ॥ ३४ ॥

त्वगेलाचार्द्धभागेनसामुद्रात्कुडवद्वयम् ।

दाडिमात्कुडवञ्चैवद्वेपलेचाम्लवेतसात् ॥ ३५ ॥

एतच्चूर्णीकृतंसूक्ष्मंगन्धाढ्यममृतोपमम् ।

लवणंभास्करन्नामभास्करेणविनिर्मितम् ॥ ३६ ॥

जगतान्तुहितार्थायवातश्लेष्मभयापहम् ।

वातगुल्मंनिहन्त्येतद्वातशूलानियानिच ॥ ३७ ॥

तक्रमस्तुसुरासीधुशुक्तकर्मजिकयोजितः ।

जांगलानान्तुमांसेनरसेषुविविधेषुच ॥ ३८ ॥

अर्शासिग्रहणीदोषंकुष्ठामयभगन्दरान् ।

हृद्रोगमामदोषांश्चविविधानुदरस्थितान् ॥ ३९ ॥

प्लीहानमश्मरीश्चैवश्वासकासोदरकृमीन् ।

विशेषतःशर्करादीन्नोगान्नाविधानपि ॥ ४० ॥

पाण्डुरोगांश्चविविधान्नाशयत्यशनिर्यथा ॥ ४१ ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, धनियाँ, कालाजीरा, सेंधानोन, विडनोन, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेशर, यह प्रत्येक आठ आठ तोले, कालालोन बीस तोले, कालीमिरच, जीरा, सोंठ यह प्रत्येक चार चार तोले, दालचीनी और इलायची दो दो तोले, समुद्रनोन बत्तीस तांले, अनारदाना सौ तोले और अमलबेंत आठ तोले इन सबको महीन पीसकर चूर्ण बनावे तो भास्करलवण सिद्धहो । यह भास्करलवण श्रीमान् भास्कराचार्यजीने संसारके उपकारार्थ निर्माण कियाहै । यह भास्करलवण—वातरोग, कफरोग, वातगुल्म और वात-शूलको नष्ट करेहै । इसपै तक्र, दहीकापानी, सुग, सीधु, शुक्त और कांजी, तथा जांगलदेशके जीवोंके मांसका रस यह अनुपानेहै ।

यह लवणभास्कर-सर्वप्रकारकी बवासीर, संग्रहणीरोग, कोदरोग, भगन्दर, हृदयरोग, आमदोष, अनेकप्रकारके उदररोग, प्लीहा, पथरी, श्वास, खाँसी, उदररोग, कृमि, विशेषकरके शर्करादिरोग और पाण्डुरोगको दूर करेहै ॥ ३३-४१ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

शुंठीकणामरिचनागदलत्वगेलं

चूर्णीकृतंक्रमविवर्द्धितमूर्द्धमन्त्यात् ।

खादेदिदंसमशितंगुदजाग्रिमान्द्य-

कासारुचिश्चसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ४२ ॥

अर्थ—सोंठ सातभाग, पीपल छे भाग, कालीमिरच पांचभाग, नागकेशर चार भाग, तेजपात तीनभाग, दालचीनी दोभाग और इलायची एकभाग लेवे पीछे सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्णकरे, फिर सबचूर्णकी समानखांड मिलाकर खानेसे—मंदान्नि, खाँसी, अरुचि, श्वास, कण्ठरोग और हृदयरोग दूर होताहै ॥ ४२ ॥

अयाजीर्णनाशकचूर्णम् ।

हरीतकीधान्यतुषोदसिद्धासपिप्पलीसैन्धवहिङ्गुयुक्ता ।
सोद्गारधूमंभृशमप्यजीर्णविजित्यसद्योजनयेत्क्षुधाञ्च ४३
विष्टम्भेस्वेदनं पथ्यं पेयञ्चलवणोदकम् ।

रसशेषेदिवास्वप्नोलंघनं वातवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥

व्यायामप्रमदाऽध्ववाहनवतः कान्तानतीसारिणः

शूलश्वासवतस्तृषापारिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् ।

क्षीणान्क्षीणकफान्हिशूलजमदान्वृद्धान्नसाजीर्णितान्

रात्रीजागरितान्नरात्रिरशनान्कामंदिवास्वापयेत् ॥ ४५ ॥

आलिप्यजठरं प्राज्ञो हिङ्गुसैन्धवत्र्यूपणैः ।

दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ४६ ॥

धान्यनागरसिद्धञ्च तोयं दद्याद्विचक्षणः ।

आमाजीर्णप्रशमनं दीपनं वास्तिशोधनम् ॥ ४७ ॥

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ।

मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्धादोषगतिं भिषक् ॥ ४८ ॥

चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमथारुचिम् ।

आध्मानं वातशूलं च गुल्मं चाशुनियच्छति ॥ ४९ ॥

भवेदजीर्णप्रतियस्यशंका स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोन्नकाले ।

पूर्वसंशुंठीमभयामशंकोभुञ्जीतसंप्राश्यहितं हितार्थी ॥ ५० ॥

सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायवानीव्योषैर्गुडांशैर्गुटिकान् प्रकुर्व्यात् ।

तैर्भक्षितैः सुप्तिमवाप्नुवन्वा भुञ्जीतमन्दाग्निरपि प्रभूतम् ५१ ॥

विडंगभल्लातकचित्रकामृताः सनागरास्तुल्यैः देन सर्पिषा ।

निहन्ति ये भण्डुलशानान्वाभवन्ति ते वै उवतुल्यवह्नयः ५२

अर्थ—हरडको धान्यतुषोदक नामवाली काँजीमें सिद्धकर भक्षण करनेसे अथवा पीपल, सैधानोन और हींग इन तीनोंका एकत्र चूर्णकर खानेसे डकार और धुँआयुक्त अजीर्ण दूर होता है और भूख उत्पन्न होती है । विष्टम्भाजीर्णमें स्वेद

और लवणोदक प्रयोगकरना योग्य है । रसशेषाजीर्णमें दिनमें सोना, लघन और वातवर्द्धक द्रव्य सेवनकरने चाहिये, व्यायाम (दंडकसरत) स्त्रीप्रसंग, मार्गचलने और वाहन (सवारी) के दौड़नेसे थके हुए मनुष्यको, अतिसार, शूल, श्वास, तृषा, हिक्का और वातपीडित मनुष्यको, तथा क्षीण, क्षीणकफ, शूल और मदेसे पीडित, वृद्ध, रसाजीर्णरोगी, रात्रिका जगाहुआ और लंघितमनुष्यको दिनमें सोना चाहिये । हींग, सैंधानोन, सांठ, मिरच, पीपल, इन सबको बारीक पीस पेटपै लेपकरे और दिनमें सोवे तो सबप्रकारके अजीर्ण दूर होते हैं—धनियों और सांठ डालकर औटाय़ा हुआ जल पीनेसे आमाजीर्ण शांत होता है और यह जल दीपन और बस्तिशोधक है । हरड, पीपल और कालानोन इनको कूट पीस कर चूर्णकरे, पीछे उस चूर्णको दहीके पानीके साथ अथवा गरमजलके साथ दोपोंकी गतिको जानकर पीनेसे चारों प्रकारके अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, आध्मान, वातशूल और गुल्मरोग दूर होता है । स्निग्ध और बलवान् मनुष्यके अन्नकालमें जो अजीर्णकी शंका होवे तो प्रथम सांठ, हरड इनके चूर्णको शीतलजलके साथ पीकर पश्चात् हितकारी भोजन करे तो कुछ भय नहीं है । सैंधवलवण, हींग, त्रिफला, अजवायन, त्रिकुटा, इनका चूर्ण बनावे, पीछे उसको गुडमें मिलाकर गोली बनाकर खानेसे अजीर्ण और मन्दाग्नि दूर होती है । बायविडंग, भिलावा, चीता, हरड और सांठ इनके चूर्णको गुड और घीके साथ भक्षण करनेसे मन्दाग्नि नष्ट होकर बडवानलकी समान जठराग्नि होजाती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ रसरत्नाकरोक्ताग्निकुमाररसः ।

शुद्धसूतंविषंगंधंप्रतिनिष्कंत्रयंत्रयम् ।

मरिचंसर्वतुल्यंस्यात्कण्टकारिः ॥ ५३ ॥

मर्दयेद्भावेतेनभावनाचैकविंशतिः ।

देयागुंजाद्वयंखादेत्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ५४ ॥

विषूचिकानिहन्त्याशुरसोद्दग्निःकुमारकः ॥ ५५ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, विष, यह प्रत्येक बारह बारह मासे लेवे और कालीमिरच सबकी बराबर लेवे, पीछे कटेरीके फलोंके रसमें २१ भावना देकर मर्दन करे तो अग्निकुमाररस सिद्धहो, इसको दोरत्तीभर भक्षण करे, इससे रसप्रकारक अजीर्णरोग और विषूचिका रोग नाश होती है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ वारिभक्तवटिका ।

रसगंधकमभ्रञ्चगुडूचीसत्त्वमेवच ।

विडंगमर्द्धिचैवः र्वमेकत्रकारयेत् ॥ ५६ ॥

आर्द्रकस्यरसेनापिगुटिकांकारयेद्बुधः ।

भक्षयेन्माषमात्रन्तुअम्लतोयानुपानतः ॥ ५७ ॥

अग्निञ्चकुरुतेदीप्तंसामाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, अभ्रक, गिलोयका सत्त्व, वायविडंग और कालीमिरच इन सबका एकत्र चूर्ण करे, पीछे अदरखके रसमें मर्दनकर गोली बनावे । इसको एकमासेभर खावे और ऊपर कांजी पीलेवै तो अग्नि दीपनहो और आमाजीर्ण नष्ट होवे ॥ ५३-५८ ॥

अथ क्षुधावतीवटिका ।

रसगंधकमभ्रञ्चयूषणंत्रिफलात्वचम् ।

यवानीशतपुष्पाचचविकाजीरकद्वयम् ॥ ५९ ॥

प्रत्येकंपलमेकन्तुघण्टाकर्णपुनर्नवा ।

मानकंग्रन्थिकन्दंचकेशराजःसुदर्शनः ॥ ६० ॥

दण्डेत्पलंत्रिवृदंतीसूर्यावर्तकचित्रकैः ।

भृंगापामार्गकुलिशमण्डूराणांपलार्द्धकम् ॥ ६१ ॥

आर्द्रकस्यरसेनाथगुटिकाःसंप्रकल्पयेत् ।

षण्माषप्रमिताञ्चैकांभक्षयित्वाभजेदनु ॥ ६२ ॥

वारिभक्तजलंचैवप्रातरुत्थायमानवः ।

वटीक्षुध वतीनामसर्वव्याधिविनाशिनी ॥ ६३ ॥

अग्निञ्चकुरुतेदीप्तंभस्मकंचनियच्छति ।

अम्लपित्तञ्चशूलञ्चपरिणामकृतंचयत् ॥ ६४ ॥

तत्सर्वनाशयत्याशुभास्करस्तिमिरंयथा ॥ ६५ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, अभ्रक, त्रिकुटा (सेंठ, मिरच, पीपल,) त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला) दालचीनी अजवायन, सोंफ, चव्य, जीरा, कालाजीरा यह प्रत्येक एक एक पल अर्थात् चार चार तोले, घण्टाकर्ण, पुनर्नवा, मानकंद,

ग्रन्थिकंद, कुकुरभांगरा, सुदर्शन, दण्डोत्पल, निसोत, दंती, सूर्यावर्त्त, चीता, भांगरा, चिरचिटा, हाडजोडा और मण्डूर यह प्रत्येक दो दो तोले लेवे, पीछे इन सबको एकत्रकर अदरखके रसमें मर्दनकरके छे छे मासेकी गोली बना-लेवे । इसको नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर सेवनकरे । पश्चात् इसके ऊपर भातका माँड पीवे ।

यह क्षुधावतीनामवाली बटी—सर्वव्याधिविनाशक, अग्निको दीपनकरनेवाली, भस्मकरोरुगको हरनेवाली, तथा अम्लपित्त, शूल और परिणामशूलको नष्ट करै है, जैसे सूर्य अंधकारको नष्ट करै है ॥ ५९—६५ ॥

अथ अग्निकुमाररसः ।

शुद्धसूतंमृतगंधं त्रिशारं पटुपंचकम् ।

दशकंतुल्यतुल्यांशं भर्जितं विषयापिच ॥ ६६ ॥

दशानांतुल्यभागानांतस्यार्द्धशिशुमूलकम् ।

तत्सर्वविजयाद्रावैः शिशुचित्रकभृंगजैः ॥ ६७ ॥

द्रवैर्दिनद्वयं मर्त्यरुद्धाभाडेपचेच्छु ।

दीप्ताग्निनातुयामैकं शुद्धं पाच्यं समुद्धरेत् ॥ ६८ ॥

सप्तधा चार्द्रकद्रावैश्चित्रकैर्भावयेद्भिषक् ।

दीप्यकोऽग्निकुमारो यं निष्कैकं मधुना लिहेत् ॥ ६९ ॥

प्रतिकर्षगुडं शुंठीमनुस्यादग्निदीपनः ॥ ७० ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, सज्जी, जवाखार, सुहागा, कालानोन, सैंधानोन, साँभरनोन, विड़नोन, खारीनोन, यह प्रत्येक एक एक भाग, अतीस दश भाग और सैंजिनेकी जड़ पांचभाग लेवे, पीछे सबको एकत्र कर भांगके रसमें सैंजनेके रसमें चीतेके रसमें, और भांगरेके रसमें दोदो दिन खरलकरे, फिर लघुपुटमें दीप्ताग्निके द्वारा एक प्रहर पकावे, फिर उसमेंसे निकालकर अदरखके रसमें सातबार भावनादेवे और सातभावना चीतेके रसमें देवे तो अग्निकुमाररस तैय्यार हो । इसको चार मासे भर लेकर सहतेके साथ चाटे, इससे सर्वप्रकारकी मन्दाग्नि आदि दोष नष्ट होतेहैं । इसके अन्तमें दो तोले गुड और दो तोले सोंठ दोनों मिलाकर खाने चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ वैरोचनरसः ।

मृतमृतचतुर्भागं भागैकं मृतहेमकम् ।
 अष्टभागं शुद्धगन्धदिनैकं चित्रकैर्द्रवैः ॥ ७१ ॥
 मर्दितं शोधितं चूर्णं वरार्तिनेन पूरयेत् ।
 टंकणेन मुखं रुद्ध्वा भाण्डमध्ये निरोधयेत् ॥ ७२ ॥
 शुष्कं गजपुटे पच्यात्स्वांगशैत्यं विचूर्णयेत् ।
 चतुर्गुणं आकणाक्षौद्रं लेह्यमग्निप्रदीपनम् ॥ ७३ ॥
 समं क्षौद्रार्द्रकद्रवैः पलाययेदनु ।
 वैरोचनरसो नाम सर्वरोगकुलान्तकृत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म चारभाग, सोनेकी भस्म एकभाग, आठभाग शुद्ध गंधक इन तीनोंको एकदिन चीतेके रसमें मर्दन कर कौड़ीमें भरदेवे और कौड़ीका मुख सुहागेसे बंदकर देवे, पश्चात् उस कौड़ीको भांडमें रख मुखबंदकर धूपमें सुखा गजपुटमें पचावे, शीतलहोनेपर चूर्ण करले । इसको चाररत्ती भर लेकर पीपलका चूर्ण और सहत मिला चाटे, इससे अग्नि दीपन होती है । इसके अंतमें सहत दो तोले और अदरखकारस दो तोले मिलाकर पीवें, यह अनुपान है । यह वैरोचननामवाला रस सर्वरोगनाशक है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

अथापरोमिकुमाररसः ।

रसेन्द्रगंधौ सह टंकणेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम् ।
 कपर्दकं शंखमिह त्रिभागं मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ ७५ ॥
 सुपक्वजम्बीररसेन घस्रं सिद्धो भवेदग्निकुमाररसः ।
 विषूचिकाजीर्णसमीरणार्त्ते दद्याद्विबन्धेऽग्रहणीगदे च ॥ ७६ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, सुहागा, यह सब एक २ भागले, विष तीनभागले, कौड़ीकी भस्म और शंखकी भस्म तीनभागले, कालीमिरच आठभागलेवे, पश्चात् सबको एकत्रकर पके हुए जम्बीरीनींबुओंके रसमें खरल करे तो अग्निकुमाररस तय्यार होता है । यह अग्निकुमाररस—विषूचिका, अजीर्ण, वातरोग, विबन्ध और अग्रहणीरोगमें देना चाहिये ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथापरोप्यग्निज्माररसः ।

शुद्धसूतं विषंगंधमजमोदाफलत्रयम् ।
 स्वर्जिकाक्षारं यवक्षारं वह्नि सैन्धवजीरकम् ॥ ७७ ॥
 सुवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ।
 विषमुण्डी सर्वतुल्यं जम्बीराम्लेन पेपयेत् ॥ ७८ ॥
 मरीचा भावटी खादे द्रह्मिमान्द्यप्रशान्तये ।
 पथ्याशुंठी गुडं चानुपलार्द्धं भक्षयेत्सदा ॥ ७९ ॥
 कणामूलं कण वह्नि त्रिवृदन्ती पलं पलम् ।
 सर्वतुल्या मृताशुंठी गुडेन कृतमोदकम् ॥ ८० ॥
 कर्पेकं गोलकं खादे दीपनं कुरुते क्षणात् ।
 रसभस्मसमं गन्धधात्री द्विगुणतं कणम् ॥ ८१ ॥
 दिनं जम्बीरजैर्द्रवैर्मद्यं पूर्य्यावराटिका ।
 रुद्धा गजपुटे पच्य्याद्यथा वैरोचनोरसः ॥ ८२ ॥
 तथा कुय्याच्चरोगाणां फलं तद्रन्नसंशयः ।
 कुमारी सैन्धवश्चानुलेहयेदग्निदीपनम् ॥ ८३ ॥
 पलैकं मूर्च्छितं सूतं मरीचं हिं गुजीरकम् ।
 प्रतिकर्षवचाशुंठी तत्सर्वभृंगजैर्द्रवैः ॥ ८४ ॥
 दिनं मर्द्यलिहेन्माषं मधुवह्निदिने पिबेत् ।
 कर्पेकं भक्षयेच्चानुदाडिमं नागरं गुडम् ॥ ८५ ॥
 कणामूलं कणाशुंठी च व्यवह्निसमं समम् ।
 सर्वतुल्यां पचेच्छाजां पेयां मन्दाग्निशूलनुत् ॥ ८६ ॥
 मुस्तधान्याक कर्पेकं पचेच्छाजाः पलैर्जलैः ।
 दीपनीया च पेया च पथ्यं स्यादग्निमान्द्यके ॥ ८७ ॥
 द्विपलं शुद्धताम्रं तु शुद्धसूतं पलत्रयम् ।
 पिष्टं जम्बीरजैर्द्रवैः पूर्य्यात्स्वल्वेभिषग्वरः ॥ ८८ ॥

गन्धकञ्चमृततंत्रप्रत्येकंपलपंचकम् ।

कज्जलीकृत्यसर्वञ्चभावयेन्निम्बकद्रवैः ॥ ८९ ॥

चूर्णितंपिष्टिकापृष्ठेक्षिपेच्चनिम्बकद्रवैः ।

घर्मेदिनाष्टकंभाव्यंद्रवंदेयंपुनःपुनः ॥ ९० ॥

भृंगद्रावैरुयहंभाव्यंत्रिवारस्यार्द्रकद्रवैः ।

त्रिधामृतारसेभाव्यंसमग्रिकुमारकम् ॥ ९१ ॥

रसंगुआत्रयंखादेदग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ९२ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, विष, गंधक, अजमोदा, त्रिफला, सज्जी, जवाखार, चीता, सेंधानोन, जीरा, कालानोन, वायबिडंग, समुद्रनोन और त्रिकुटा यह सब समान भाग और कुचिला सबकी बराबर लेवे, पीछे सबको एकत्र कर जम्भीरी नाँवूके रसमें खरल करे, काली मिरचकी बराबर गोली बनावे, प्रतिदिन एक गोली खानेसे मंदाग्नि नष्ट होतीहै । इसके अंतमें हरड, सोंठ, और गुड मिलाकर दोतोलेभर खाय यह अनुपानहै । पीपलामूल, पीपल, चीता, निसोत, और दंती यह प्रत्येक चार चार तोले, गिलोय बीसतोले और सोंठ बीस तोले लेवे, पीछे सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करे, इस चूर्णमें गुड मिलाकर दोदो तोले भरके लड्डू बनावे, एक लड्डू प्रतिदिन खानेसे अग्नि प्रदीप्त होतीहै । पारेकी भस्म, गंधक एक एकभाग, आमला, सुहागा दोदो भागलेवे, पीछे इन सबको एकत्रकर जम्भीरी नाँवूके रसमें एकदिन मर्दन करके कौडीमें भरदेवे, पश्चात् जिसप्रकार वैरोचनरसको पकावे उसीप्रकार इसको गजपुटमें पकावे, इसको सेवन करनेसे अनेकप्रकारके रोग निःसन्देह दूर होतेहैं । इसके अन्तमें घीकुवारके रसमें सेंधानोन मिलाकर लेहकी तरह बनाकर चाटे, यह अनुपानहै । इससे अत्यन्त अग्निदीपन होतीहै । मूर्च्छितपारा चार तोले, कालीमिरच, हांग, जीरा, वच और सोंठ प्रत्येक दो दो तोले लेवें, पीछे इन सबको भांगरेके रसमें एकदिन मर्दन करे । इसको मासेभर लेकर चीतेके चूर्णके और मधुके साथ लेहकी तरह बनाकर चाटे । इस औषधिके अन्तमें अनार, सोंठ और गुड मिलाकर दो तोले खावे । इससे अग्निदीपन होतीहै । पीपलामूल, पीपल, सोंठ, चव्य, चीता, यह सब समानभाग लेवे, और खीलें सबकी बराबर लेवें, पश्चात् सबको मिलाकर पेया बनावे, इसको पीनेसे मंदाग्नि और शूल नष्ट होताहै । नागरमोथा, धनियाँ यह प्रत्येक दोदो तोले, खीलें चार तोले इन सबको आठतोलेभर पानीमें मिलाकर पेया

बनावे, यह पेया अग्निप्रदीपक और मन्दाग्निरोगमें हितकारी है । आठतोले शुद्ध ताँवा, बारहतोले शुद्ध पारा इन दोनोंको जम्भीरीनींबूओंके रसमें खरलकर पश्चात् बीसतोले मृतगंधक मिलाकर कज्जलीको बनावे, फिर उस कज्जलीको कागजी नींबूके रसमें खरलकर आठदिनतक नींबूके रसमें भावना देता जाय और प्रतिभावना धूपमें सुखाता जाय, फिर तीनदिन भांगरेके रसमें भावना देवै, पश्चात् तीनवार अदरखके रसमें भावना देवे, फिर तीनवार गिलोयके रसमें भावनादेवे तो अग्निकुमाररस सिद्ध होता है । इसको तीनरत्तीभर खानेसे मन्दाग्नि दूर होती है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ पंचामृतचूर्णम् ।

पारदंगन्धकंलोहंताम्रमभ्रकमेवच ।

एषामापकमेकैकजम्बीरद्रवभावितम् ॥ ९३ ॥

देयंत्रिकटुनातुल्यंसम्यग्गुञ्जाचतुष्टयम् ।

तप्ततोयानुपानेनवह्निमान्द्यहरंपरम् ॥ ९४ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, लोहा, ताँवा, अभ्रक, यह प्रत्येक एकएक मासे लेकर जम्भीरी नींबूके रसमें भावना देवे, पश्चात् इसमें बराबर त्रिकुट्टिका चूर्ण मिलाकर चार रत्तीभर खावै और ऊपरसे गरमजल पीलेवै, इससे मन्दाग्नि नष्ट होता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अथ पंचामृतवटी ।

अभ्रकंपारदंताम्रंगन्धकंमरिचान्वितम् ।

समभागमिदंसर्वचांगेरीरसभावितम् ॥ ९५ ॥

मर्दितन्तुरसेभूयोजयन्तीसिन्धुवारयोः ।

मर्दनेनैवकर्तव्यागुंजामरिमितावटी ॥ ९६ ॥

तप्ततोयेनसंयुक्ताश्चतस्रस्तिस्त्रएववा ।

अग्निमान्द्येप्रदातव्यावट्यःपंचविधामताः ॥ ९७ ॥

अर्थ—अभ्रक, पारा, ताँवा, गंधक और कालीमिरच यह सब समान भाग लेवे, पश्चात् इन सबको चांगेरी (छोटीनोनिया) के रसमें भावना देकर खरलकरे, फिर जयन्ती और सम्हालूके रसमें खरलकर एकरत्तीभरकी गोलीबनावे

तीन ३ वा चार ४ गोलीखावे, ऊपरसे गरमपानी पीलेवै, इससे मन्दाग्नि नष्ट होतीहै ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथ बडवानल-चूर्णम् ।

करञ्जफलमज्जाथपथ्यावह्निविडंगकम् ।

कणाशुठीसमंचूर्णसर्वतुल्यासिताभवेत् ॥ ९८ ॥

अग्निदीप्तिकरंकर्षभक्षयेद्रडवानलम् ॥ ९९ ॥

इत्यर्जाधिकारः ।

अर्थ—करंजके फलकी भींग, हरड, चीत, वायविडंग, पीपल और सांठ इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलालेवे, इसबडवानल चूर्णको दो तौलेभर खानेसे अत्यन्त आग्नि दीपन होतीहै ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

इति अर्जाधिकारसमाप्त ।

अथ कृमिचिकित्सा ।

अजीर्णभोजीमधुराम्लनित्योद्विग्नप्रियःपिष्टगुडोपभोक्ता ।

व्यायामवर्जीचदिवाशयानो निरुद्धभुक्संभ्रमतेकृमींश्च ॥ १ ॥

क्षीराणिमांसानिघृतानिचैवदधीनिशाकानिचपर्णवन्ति ।

समासतोऽम्लान्मधुरात्रसांश्चकृमीञ्जिघांसुःपरिवर्जयेत्तु ॥ २ ॥

अरुचिःस्यादबलत्वंपाण्डुत्वंछर्दनंभ्रमः ।

ज्वरातीसारकृच्छूलंकृमिकोपेनजायते ॥ ३ ॥

अपकर्षणमेवादौकृमीणांभेषजंमतम् ।

ततोदोषचयंबुद्धानिदानंपरिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

विडंगपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेनवै ।

तक्रसिद्धायवागूःस्यात्कृमिघ्नाचसुवर्चिका ॥ ५ ॥

विडंगंतंडुलव्योषयुक्तंमण्डंपिबेन्नरः ।

दीपनंकृमिनाशायवह्निचकुरुतेभृशम् ॥ ६ ॥

मुस्ताखुपणौसुरदारुशिग्रु-

काथःसकृष्णाकृमिशक्रकलः ।

मार्गद्वयेनापिचिरप्रवृत्ता-
नृमीन्निहन्यात्कृमिजांश्चरोगान् ॥ ७ ॥

रसेन्द्रेणसमायुक्तोरसोधत्तूरपत्रजः ।

ताम्बूलपत्रजोवापिलेपःकृमिविनाशनः ॥ ८ ॥

अर्थ—अजीर्णमें भोजनकरनेसे, मधुर, अम्ल, द्रव, पिष्टी और गुड़ आदि द्रव्य सदैव सेवनकरनेसे, तथा कसरत आदिको नहीं करनेसे, दिनमें सोनेसे और विरुद्धभोजन करनेसे मनुष्योंको कृमिरोग उत्पन्न होताहै । दूध, मांस, घृत, दही, पत्रशाक, अम्लपदार्थ और मधुरद्रव्य यह सब वस्तु कृमिरोगी त्याग देवे । अरुचि, दुर्बलता, पाण्डुता, वमन, भ्रम, ज्वर, अतीसार, और शूल यह सबलक्षण कृमिके कोपमें होतेहैं । कृमिरोगमें प्रथम अपकर्षण, औषधियोंके द्वाग दोषोंकी गतिको जान निदानको त्यागकर चिकित्सा करनी चाहिये । बायविडंग, पीपलामूल, सैंजिना, कालीमिरच और सज्जीखार इनके चूर्णको तक्रसे बनाई हुई यवागूमें मिलाकर पीवे तो कृमिरोग दूर होय, बायविडंग, सांठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णको मांड़में मिलाकर पीनेसे कृमिरोग दूर होताहै और अग्नि दीपन होतीहै । नागरमोथा, मूसाकानी, देवदारु और सैंजिना इनके काढेमें पीपल और बायविडंगका चूर्ण मिलाकर पीनेसे कृमिरोग और कृमिरोगसे उत्पन्न दुष्ट और रोग दूर होतेहैं । पारेको धतूरेके पत्तोंक रसमें और पानके रसमें खरलकर लेपकरनेसे कृमिरोग दूर होताहै ॥ १-८ ॥

अथ विडंगायतैलम् ।

सविडंगगंधकशिलासिद्धंगोमूत्रजलेनकटु ।

तैलमाजन्मनयतिनाशंलिख्यामहिताश्चयूकाश्च ॥ ९ ॥

अर्थ—बायविडंग, गंधक, मैनाशिल इनके कल्कमें तथा गोमूत्रमें सरसांके तेलको सिद्धकरे, फिर इस तेलके लेपकरनेसे जूँएँ और लीखें दूर होतीहैं ॥ ९ ॥

अथ कृमिहरचूर्णम् ।

पारसीययवानीपीतापर्युषितबारिणाप्रातः ।

गुडपूर्वाकृ.मिजातंकोष्ठगतंपातयत्याशु ॥ १० ॥

क्राथंखर्जूरपत्र जांसक्षौद्रमुषितंनिशि ।

पीतंनिवारयत्या.कृमीन्निरवशेषतः ॥ ११ ॥

लिप्तात्क्षौद्रेणवैडंगचूर्णवा.मिनाशनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—खुरासानी अजवायनको बासी जलमें भिजोकर प्रातःकालमें गुड़ मिलाकर पीनेसे कोष्ठगत कृमिरोग दूर होताहै । खजूरके पत्तोंके बासी काथको रात्रिमें सहतके साथ पीनेसे सर्वप्रकारके कृमिरोग दूर होतेहैं । बायबिडंगके चूर्णको सहतकेसाथ चाटनेसे कृमिरोग दूर होताहै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलात्रिवृतादंतीवचाकम्पिलकस्तथा ।

सिद्धमेभिर्गवामूत्रेसर्पिःकृमिविनाशनम् ॥ १३ ॥

सर्वान्कृमीन्प्रणुदतिचक्रंमुक्तमिवासुरान् ॥ १४ ॥

अर्थ—त्रिफला, निसोत, दंती, वच, कबीला इन सब औषधियोंका कल्क सेरभर, गायका घी चारसेर और गोमूत्र छे सेर लेवे, पीछे घृतको सिद्धकरे, इससे सर्वप्रकारके कृमिरोग दूरहोते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ धूपः ।

लाक्षाभल्लातश्रीवासश्वेतापराजिताशिफा ।

अर्जुनस्यफलंपुष्पंविडंगंसर्जगुग्गुलु ॥ १५ ॥

एभिःकृतेनधूपेनशाम्यन्तिनियतंगृहे ।

भुजंगमूषिकालूताःपलायन्तेगृहात्सदा ॥ १६ ॥

अर्थ—लाख, भिलावा, श्रीवास (जिसके अभावमें लोबान लेतेहैं) सफेदकी यलकी जड, अर्जुनवृक्षकेफल और फूल, वायबिडंग, राल, गूगल इन सबको एकत्रकर धूप बना घरमें रखनेसे—साँप, मृपा, मकड़ी, यह सब भाग-जातेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ कृमिरोगहरणम् ।

शुद्धसूतंचेन्द्रयवमजमोदामनःशिला ।

पलाशबीजतुल्यांशंदेवदाल्याद्रवैर्दिनम् ॥ १७ ॥

मर्दयेद्रक्षयेन्निष्कंमुद्रपर्णीकषायकम् ।

सितायुक्तपिबेच्चानुकृमिपातोभवत्यलम् ॥ १८ ॥

अत्रशुद्धसूतंगंधकेनमूर्च्छितमपियवरंसयोगः ।

अर्थ—शुद्धपारा, इन्द्रजौ, अजमोदा, मैनाशिल, और ढाकके बीज इन सबको समानभाग लेकर देवदालीके रसमें एकादिन खरल करे । इसको चारमासेभर

खावे और ऊपरसे बनसूँगे के काढेमें मिश्री मिलाकर पीलेवे तो कृमिरोग दूर हो ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ कीटभद्ररसः ।

शुद्धसूतंशुद्धगंधमजमोदाविडंगकम् ।

विषमुंडीब्रह्मबीजंक्रमोत्तरगुणंभवेत् ॥ १९ ॥

चूर्णयेन्मधुनालेह्यंनिष्कैकंकृमिजिह्वेत् ।

कीटभद्ररसोनाममुस्तातोयंपिबेदनु ॥ २० ॥

इति कृमिरोगाधिकारः ।

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अजमोदा, वायविडंग, कुचिला, और ढाकके बीज, यह सब एकोत्तर वृद्धिसे अर्थात् पारा एकभाग, गंधक दोभाग, अजमोदा तीनभाग, वायविडंग चारभाग, कुचिला पांचभाग और ढाकके बीज छेभाग लेकर चूर्ण करे, पश्चात् चूर्णमें सहत मिलाकर चार मारो भर चाटे और ऊपरसे नागरमोथेका काथ पीवे तो कृमिरोग दूर होताहै, इसको कीटभद्ररस कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

इति कृमिरोगाधिकारसमाप्त ।

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा ।

साध्यन्तुपाण्ड्वामयिनंसमीक्ष्यस्निग्धघृतंनोद्धर्मधश्चशुद्धम् ।

सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैःप्रयोगैः ॥ १ ॥

विधिःस्निग्धस्तुवातोत्थेतित्तशीतन्तुपैत्तिके ।

श्लेष्मकेकटुरूक्षोष्णाःकार्य्यामिश्रस्तुमिश्रके ॥ २ ॥

द्विशर्करंत्रिवृच्चूर्णपलाद्धपैत्तिकेपिबेत् ।

कफपाण्डुस्तुगोमूत्रयुक्तांस्वित्रांहरितकीम् ॥ ३ ॥

नागरंलौहचूर्णवाकृष्णापथ्यामथाश्मजम् ।

गुग्गुलुंकाथमूत्रेणकफपाण्ड्वामयीपिबेत् ॥ ४ ॥

नागरंलौहचूर्णवाकृष्णापथ्याशिलाजतु ॥ ५ ॥

गग्गुलुनागोमूत्रेणयुक्ताश्चत्वारीयोगाःप्रकीर्तिताः ।

लौहंपुटादिशब्दंतदभावेऽलौहपातिकापिशोधिताग्राह्या ।

एवंसर्वत्रसकलंकफजेपाण्डौदशमूलीजलंपिबेत् ॥ ६ ॥

लोहपात्रेशृतंक्षीरंसप्ताहंपथ्यभोजनम् ।

पिबेत्पाण्ड्वामयीशोषीग्रहणीदोषपीडितः ॥ ७ ॥

शृतंचतुर्गुणजलेन ।

सप्तवारंगवामूत्रेभावितंवाप्ययोरजः ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यैवपयसाथपिबेन्नरः ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रथम साध्यपाण्डुरोगीको विचारकर पीछे धीके द्वारा स्निग्ध करे, फिर वमन और विरेचनद्वारा शुद्ध करे, तदन्तर हरडके चूर्णमें धी और सहत मिलाकर सेवन करावे । वातज पाण्डुरोगमें स्निग्ध क्रिया, पित्तज पाण्डुरोगमें तिक्त और शीतल क्रिया, कफजपाण्डुरोगमें कटु, रुक्ष, उष्णक्रिया और मिश्रितपाण्डुरोगमें मिश्रितक्रिया करे । पित्तजपाण्डुरोगमें दोभाग बूरा और एकभाग निसोतका चूर्ण मिलाकर भक्षण करे, कफज पाण्डुरोगमें हरडको गोमूत्रके द्वारा उवालकर देवे, अथवा सोंठ और लोहेका चूर्ण गोमूत्रके साथ तथा पीपल, हरड, शिलाजीत और गूगुलको गोमूत्रके साथ, और सोंठ, लोहेका चूर्ण, पीपल, हरड, शिलाजीत, गूगुल, इन सबको गोमूत्रके साथ सेवनकरनेसे कफजपाण्डुरोग दूर होताहै । दशमूलका काथ पीनेसे, कफजपाण्डुरोग दूर होताहै । लोहेके वरतनमें चौगुने जलसे युक्त दूधको औटाकर सात दिनपर्यंत पीवे, और हितकारी भोजन करे तो पांडु, शोष, और संग्रहणीरोग दूर होय । लोहेके चूर्णको गोमूत्रमें सात भावना देवे, इसको दूधके साथ सेवन करनेसे पांडुरोग शांत होताहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ फलत्रिकादिकाथः ।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः ।

काथःक्षौद्रयुतोहन्यात्पाण्डुरोगंसकामलम् ॥ ९ ॥

अर्थ—त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता, और नीमकी छाल इनका काथ बना तिसमें सहत मिलाकर पीवे तो पाण्डुरोग और कामला रोग दूर हो ॥ ९ ॥

अथायोमलचूर्णम् ।

अयोमलन्तु सन्तप्तंभूयोगोमूत्रेद्विहृत् ।

मत्सर्पियुतंचूर्णसहभक्तेनयोजयेत् ॥ १० ॥

दीपनम् ॥ शोथपाण्डुमयापहम् ॥ ११ ॥

अयोमलंपुराणलोहमलम् ।

अर्थ—पुराने लोहेको बारंबार आगमें तपाकर बारंबार गोमूत्रमें बुझावे, फिर चूर्णकर मधु और घीमें मिला भातके साथ सेवन करनेसे अग्निदीपन होतीहै, जठराग्नि उत्पन्न होतीहै तथा सूजन और पाण्डुरोग दूर होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ सिन्दूरभूषणरसः ।

शुद्धसूतंसिन्दूरंपलैकैकंविमर्दयेत् ।

वासारसेनयामैकंतैलेकुर्याच्चिष्टितम् ॥ १२ ॥

अपक्वांकारयेन्मूषामुन्नताद्वादशाङ्गुलाम् ।

तन्मध्येगंधकंशुद्धंक्षिपेत्पलचतुष्टयम् ॥ १३ ॥

पूर्वाक्ताश्चक्रियांचक्रेदत्त्वारुद्धापुटेच्छु ।

जीर्णगंधेसमुद्धृत्यचक्रिकांतांविचूर्णयेत् ॥ १४ ॥

चूर्णाद्दशगुणंयोज्यंमृतलोहंचमर्दयेत् ।

लशुनस्यदशांशेनचणमात्रावटीकृता ॥ १५ ॥

वातपाण्डुहरःसिद्धोरसःसिन्दूरभूषणः ।

पिबेच्चानुह्यपामार्गंरुबुकस्यचमूलिकाम् ॥ १६ ॥

तत्रैःपिष्ट्वाचकर्षैकंहन्तिपाण्डुंसकामलम् ॥ १७ ॥

अर्थ—शुद्धपारा चार तोले, सिन्दूर चार तोले इन दोनोंको वासाके रसमें एक मद्गर खरलकर तेलमें पिट्टी बनावे, पश्चात् बारह अंगुलकी कच्ची घडिया बनाकर निमके बीचमें चारपल शुद्धगंधक रक्खे, फिर पूर्वाक्त द्रव्य रक्खे, पश्चात् लघुपुटमें फूंकदेवे, जब गंधककी भस्म होजावे तब उस द्रव्यको निकाल कर चूर्ण करले, फिर इस चूर्णसे दशगुनी लोहेकी भस्म मिलाकर लहसुनके रसमें मर्दन कर चनेकी बराबर गोलीबनाए तो वातजपांडुरोगनाशक सिन्दूरभूषणरस सिद्धहो । इसको खाकर फिर ऊपरसे चिरचिटा और अरंडकी जड़को छौंछमें पीसकर एक तोलेभर पीवे तो कामलासंयुक्तपांडुरोग दूर होवे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ मण्डूरवज्रम् ।

पंचकोलंसमरिचंदेवदारुफलत्रिकम् ।

विडंगमुस्तयुक्ताश्चभागास्त्रिपलसम्मिताः ॥ १८ ॥

यावन्त्येतानिचूर्णानिमण्डूरद्विगुणंततः ।

पक्त्वाचाष्टगुणेमूत्रेचनीभूतेतदुद्धरेत् ॥ १९ ॥

तत्कर्षमात्रावटिकांपिबेत्तत्रेणतक्रभुक् ।

पाण्डुरोगंजयत्येषामन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ २० ॥

अर्शांसिग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापिवा ।

कृमीन्प्लीहानमुदरंगलरोगंचनाशयेत् ॥ २१ ॥

मण्डूरवज्रनामेदरोगानीकप्रणाशनम् ॥ २२ ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सांठ, कालीमिरच, देवदारु, त्रिफला, बायविडंग, और नागरमोथा, यह प्रत्येक बारह बारह तोले लेवे, फिर सबका चूर्ण कर चूर्णसे दुगुना मंडूर (लोहेकामल) मिलावे, तदनन्तर इसको आठ-गुने गोमूत्रमें पकावे, जब पकने २ गाढा होजावे तब उतारकर एक २ तोलेभरकी गोली बनालेवे, एक गोली मटेके साथ खावे और मटेहीको भोजनके साथ खावे तो पांडुरोग, मंदाग्नि, अरुचि, ववासीर, संग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा, उदररोग और गलरोग दूर होवे । यह मंडूरवज्रनामवाला रस रोगोंके समूहोंको दूर करताहै ॥ १८-२२ ॥

अथ पूनर्नवामंडूरः ।

पुनर्नवात्रिवृच्छुण्ठीपिप्पलीमरिचानिच ।

विडंगंदेवकाष्ठश्चित्रकंपुष्कराह्वयम् ॥ २३ ॥

त्रिफलाद्वेहरिद्रेचदन्तीचचविकातथा ।

कुटजस्यफलंतिक्तापिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ २४ ॥

एतानिसमभागानिमंडूरद्विगुणंततः ।

गोमूत्रेऽष्टगुणेपक्त्वास्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥ २५ ॥

पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ २६ ॥

अर्थ—पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, पीपल, कालीमिरच, बायबिडंग, देवदारु, चीता, पोहकरमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, दंती, चव्य, इन्द्रजव, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा यह सब समानभाग और इन सबसे दुगुना मंडूर लेवे, पश्चात् सबको आठगुने गोमूत्रमें औटाकर चिकने बरतनमें भरके रखदेवे । यह रस—पाण्डु, सूजन, उदररोग, आनाह, शूल, बवासीर कृमि और गुल्मको दूर करेहै ॥ २३—२६ ॥

अथ नवायसंलौहम् ।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडंगचित्रकाःसमाः ।

नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णमधुसर्पिषा ॥ २७ ॥

भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगक्षयार्शःकामलापहम् ॥ २८ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, बायबिडंग और चीता यह सब समानभाग लेवे, और नवीन लोहेका चूर्ण आठभाग लेवे, पश्चात् सबको एकत्रकर शहदके और घीके साथ खानेसे पाण्डुरोग, हृदयरोग, क्षय, बवासीर और कामलारोग दूर होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ योगराजलोहम् ।

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्यच ।

भागाश्चित्रकमूलस्यविडङ्गस्यतथैवच ॥ २९ ॥

पंचाशमजतुनोभागास्तथारूप्यमलस्यच ।

माक्षिकस्यचशुद्धस्यलोहस्यरजसस्तथा ॥ ३० ॥

अष्टौभागाःसितायाश्चतस्रंश्लक्ष्णचूर्णितम् ।

माक्षिकेणाप्लुतिस्थाप्यमायमेभाजनेशुभे ॥ ३१ ॥

उदुम्बरसमामात्राततःखादेयथाग्निना ।

दिनेदिनेप्रयोक्तव्यंजीर्णभोज्यंयथेप्सितम् ॥ ३२ ॥

वर्जयित्वाकुलत्थांश्चकाकमाचीकपोतकान् ।

योगराजइतिख्यातोयोगोऽयममृतोपमः ॥ ३३ ॥

रसायनमिदंश्रेष्ठंसार्वरोगहरंपरम् ।

पाण्डुरोगंविषंकासंयक्ष्माणंविषमज्वरम् ॥ ३४ ॥

कुष्ठान्यजरकंमेहंश्वासंहिक्कामरोचकम् ।

विशेषाद्धन्त्यस्मारंकामलांगुदजानिच ॥ ३५ ॥

त्रयोभागामिलित्वारूप्यमलम् ।

रजतनिर्गतशिलाजतु केचिदाहुः ॥

इतिनिश्चलकरः ।

तल्लक्षणंरसायनेबोध्यम् । त्रिविक्रमदेवस्त्वाह ।

रूप्यमलाभावेलौहमलस्यव्यवहारः । तदुक्तं-

सुवर्णमथवारूप्ययोगयुक्तंनसम्भवेत् ।

तत्रलोहेनकार्यं चभिषक्कुर्याद्विचक्षणः ।

इति ॥ रूप्याभावेलौहम् ।

तदातन्मलाभावेतन्मलग्राह्यम् । माक्षिकस्यसुवर्णमाक्षिकस्या

उदुम्बरंकर्पःमधूनान्तुमाषकचतुष्टयंभक्ष्यम् । नापुरुषः ।

अर्थ-तीनभाग त्रिफला, तीनभाग त्रिकुटा, चीतेकी जड़, तीनभाग, तीनभाग बायाविडंग, शिलाजीत, रूपेका मैल, शुद्धसोनामाखी और लोहेका चूर्ण प्रत्येक पांच भाग, और सफेद बूरा आठ भाग, सबको एकत्र पीस बारीक चूर्ण बनावे । पीछे इस चूर्णमें सहत मिलाकर उत्तमलोहके बरतनमें भरके रखदेवे, फिर एकतोलाभर प्रतिदिन अग्निका बलाबलविचारकर भक्षण करे, और जीर्ण होजानेपर यथेष्ट भोजन करे, इसपै कुलथी, मकोय और कबूतरका मांस न खावे, यह योगराज अमृतकी समानहै, रसायन सर्वरोगनाशक, तथा पाण्डुरोग, विष, खाँसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, श्वास, दुचकी, अरुचि, विशेषकरके अपस्मार, कामला और ब्वासीरको दूर करेहै ॥२९-३५॥

अथ मूर्वाद्यंघृतम् ।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णचन्दनपर्पटैः ।

त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥ ३६ ॥

अक्षमात्रेघृतप्रस्थःसिद्धःक्षीरचतुर्गुणः ।

पाण्डुताज्वरविस्फोटश्रोत्रार्शोऽपिपित्तनुत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—पूर्वा (चुनहार), कुटकी, हलदी, जवासा, पीपल, चंदन, पित्तपा-
पडा, त्रायमाणा, कुडेकीछाल, चिरायता, परवल, नागरमोथा और देवदारु यह
सब समान भागलेवे, पश्चात् सबका कल्क बनावे, परंतु कल्क तोलमें सेरभरहो
घृतचारसेर, और दूध १६ सोलह सेर लेवे, फिर घृत सिद्ध करे । यह घृत—
पांडुरोग, ज्वर, विस्फोटक, कर्णबवासीर और रक्तपित्तको दूर करैहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ दार्व्यादिलोहम् ।

दार्वीसत्रिफलाव्योषविडंगान्ययसोरजः ।

मधुसर्पिर्युतंलिह्यात्कामलापांडुरोगवान् ॥ ३८ ॥

सर्वचूर्णसमंलौहंसर्वनवायसादिवत् ॥ ३९ ॥

अर्थ—दारुहलदी, त्रिफला, त्रिकुटा, बायविडंग और लोहेका चूर्ण इन
सबको एकत्रकर चूर्णकरै, पश्चात् सहत और घृत मिलाकर चाटे तो कामला
और पाण्डुरोग दूरहो । इममें सर्वचूर्णकी बराबर लोहेका चूर्ण डाले ॥
॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ धात्रीलोहम् ।

धात्रीलोहरजोव्योषसिताक्षौद्राज्यशर्करा ।

लीढानिवारयत्याशुकामलामुद्धतामपि ॥ ४० ॥

मधुघृतमवलेह्यंदाव्यादिलौहवत् ॥

अर्थ—आमला, त्रिकुटा, शिलाजीत और शर्करा यह प्रत्येक एक एकभाग
और लोहेका चूर्ण छे भाग लेवे, पीछे सबका चूर्णकर सहत और घृत मिलाके
चाटनेमे घोरकामलारोग दूर होतहै ॥ ४० ॥

अथ विडंगादिलौहगुटिका ।

विडंगस्तत्रिफलादेवदारुपट्टपणैः ॥ ४१ ॥

तुल्यमात्रमयश्चूर्णगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ॥ ४२ ॥

तैरक्षमात्रांगुटिकांकृत्वाखादेदिनेदिने ।

कमलापाण्डुरोगार्तःसुखमापद्यतेचिरात् ॥ ४३ ॥

लोहात्सर्वचूर्णादेवगोमूत्रमष्टगुणम् ।

सिद्धेचूर्णप्रक्षेपइतिनिश्चलः ।

दत्त्वाच । कइतित्रिविक्रमः । लोहान्तरवत्कवलम् ।

अर्थ—वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, देवदारु, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलमूल, चव्य, चीता, यह सब समानभाग लेवे और इनसबकी समान लोहेका चूर्णलेवे, पश्चात् सबको मिलाकर, आठगुने गोमूत्रमें पकावे, जब सिद्ध होजाय तो दोदो तोलेभरकी गोली बनालेवे, एकगोली प्रतिदिन खावे । यह गोली कामला और पांडुरोगको दूर करैहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ पंचाननवटी ।

शुद्धसूतंसमंगन्धमृतताम्रश्वगुग्गुलुम् ।

मृतायसश्वगंधश्वमृतताम्राभ्रगुग्गुलुम् ॥ ४४ ॥

जैपालबीजतुल्यांशघृतेनगुटिकांकुरु ।

भक्षयेद्भदराण्डाभांशोथपांडुप्रशान्तये ॥ ४५ ॥

पंचाननावटीख्याताअनुपानश्वपूर्ववत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, गंधक, मृततांबा, गूगुल, मृतलोहा यह सब समानभाग लेवे और सबकी बराबर जमालगोटा लेवे, पश्चात् सबको घीमें खरलकरके गोली बनालेवे । इन गोलियोंको खानेसे सूजन और पांडुरोग दूर होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ लोहामृतम् ।

मुस्तामृताकणायष्टीवह्निशुण्ठीफलत्रयम् ।

विडंगंचसमंचूर्णसर्वांशमृतलोहकम् ॥ ४७ ॥

मधुनाभक्षयेन्निष्कंपाण्डुरोगहरंपरम् ।

इदंलोहामृतंनामस्वयमग्निरसोपिवा ॥ ४८ ॥

अर्थ—नागरमोथा, गिलोय, पीपल, मुलेठी, चीता, सोंठ, त्रिफला और वायविडंग इन सबका चूर्ण समानभाग और सब चूर्णकी बराबर मृतलोहा लेवे, फिर सबको एकत्रकर मधुके साथ चारमासेभर खावे तो पांडुरोग दूर होता है, इसको लोहामृत और स्वयमग्निरस कहते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ पाण्डुरोगहरकाथः ।

कोकिलायाश्चबीजानिगुंडूचीनागरैःसह ।

पयसाक्वथितंरात्रौपाचनंपाण्डुरोगिणाम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—तालमखानेके बीज, गिलोय और सांठ इनको दूधमें औटाकर रात्रिमें पीनेसे पांडुरोग आराम होताहै ॥ ४९ ॥

अथ हंसमंडूरः ।

मण्डूरचूर्णितं श्लक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ।

त्र्यूषणं त्रिफलामुस्तं विडङ्गश्च व्यचित्रकम् ॥ ५० ॥

दार्वीग्रन्थिदेवदारुतुल्यं सर्वविचूर्णयेत् ।

चूर्णमण्डूरतुल्यं च पाककाले विमिश्रयेत् ॥ ५१ ॥

भक्षयेत् कर्पमात्रञ्च जीर्णान्ते तत्र भोजनम् ।

हलीमकं पांडुशोथमुरुस्तम्भञ्च कामलाम् ॥ ५२ ॥

अर्शासिहन्तिशीघ्रञ्च हंसमण्डूरको ह्ययम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—मंडूरको आठगुने गोमूत्रमें पकावे, जब पकते २ गाढा होजाय तब इसमें सांठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायबिडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, पीपलामूल और देवदारु इन सबका चूर्ण समानभाग और सब चूर्ण मंडूरकी समान मिलादेवे, दो तोलेभर खावे और इसके जीर्ण होजाने पर तक्रके साथ भोजनकरे । यह हंसमण्डूर—हलीमक, पाण्डु, सूजन, ऊरुस्तम्भ कामला और बवासीरकी दूर करैहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ कामेश्वररसः ।

मुस्तैलापत्रकाणाञ्च प्रतिसार्द्धं पलं क्षिपेत् ।

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं विषं चैव पलं पलम् ॥ ५४ ॥

नागकेशरकर्पैकमेरण्डस्य पलन्तथा ।

पुरातनगुडेनैव तुल्येनैव विमिश्रयेत् ॥ ५५ ॥

मर्दयेत् त्र्यष्टाङ्गद्रावैर्यामैकं वा घृतान्वितम् ।

गुटिकांश्च पाण्डुशोथं कारयेद्भक्षयेन्निशि ॥ ५६ ॥

शोथपाण्डुहरः सोऽयं रसः कामेश्वरः स्वयम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—नागरमोथा, इलायची और तेजपत्र प्रत्येक छे छे तोले, पीपल, सांठ, मिरच, पीपलामूल, और विष प्रत्येक चार चार तोले, नागकेशर दो तोले और अरंडकी जड़ चार तोले लेवे, सबको एकत्रकर चूर्ण बना सब चूर्णकी

बराबर पुरानागुड़ मिलाकर एकप्रहर धतूरेके रसमें अथवा घृतमें मर्दनकरके बेरकी गुठलीकी बराबर गोली बनालेवे । इस कामेश्वररसको रात्रिमें खानेसे सूजन और पांडुरोग विनष्ट होताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अथ सिद्धमण्डूरः ।

मंडूरस्यपलान्यष्टौगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ।

पुनर्नवात्रिवृद्धोषंविडंगं देवदारुकम् ॥ ५८ ॥

द्वेनिशेषुष्करं वह्निर्दन्तीचव्यंफलत्रिकम् ।

कुटजस्यफलंतिक्तापिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ५९ ॥

विषञ्चप्रतिकर्षस्याच्चूर्णयित्वाविमिश्रयेत् ।

मण्डूरस्यचपाकान्तेअक्षमात्रावटीकृता ॥ ६० ॥

पांडुशोथज्वरानाहशूलार्शःकृमिगुल्मनुत् ।

इत्येवंसिद्धमण्डूरं सर्वरोगविनाशकृत् ॥ ६१ ॥

अर्थ—आठपल मंडूरको आठगुने गोमूत्रमें पकावे जब गाढा होजाय तब पुनर्नवा निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारु, हलदी, दारु-हलदी, पोहकरमूल, चीता, दंती, चव्य, हरड, बहेड़ा, आमला, इंद्रजव, कुटकी, पीपलामूल, नागरमोथा और विष प्रत्येक दोदो तोले लेवै, फिर सबका एकत्र-चूर्णकर मिलादेवे, जब सिद्ध होजाय तो दोदो तोलेभरकी गोली बनालेवे, प्रतिदिन एकगोली खावे यह सिद्धमंडूर—पाण्डु, सूजन, ज्वर, आनाह, शूल, बवासीर, कृमि, गुल्म और सर्वरोगनाशक है ॥ ५८—६१ ॥

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा ।

विण्मूत्रनयनादीनारूक्षकृष्णारुणाभता ।

वातपाण्ड्वामयेऽम्पस्तोदानाहभ्रमादयः ॥ ६२ ॥

इतिवाते ।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रदाहतृष्णाज्वरान्वितः ।

भिन्नविट्कोऽतिपीताभःपित्तपाण्ड्वामयीनरः ॥ ६३ ॥

इतिपित्ते ।

कफप्रसेकःश्वयथुस्तन्द्रालस्यातिगौरवैः ।

पाण्डुरोगीकफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६४ ॥

इतिकफे ।

ज्वरारोचकहृल्लासतृष्णाछर्दिक्मान्वितः ।

पाण्डुरोगीत्रिभिर्दोषैस्त्याज्यःक्षीणोहतेन्द्रियः ॥ ६५ ॥

पाण्डुदन्तनखोयस्तुपाण्डुरोगःसुदुःसहः ।

जायतेकृमिकुष्ठञ्चसातिसारंकफंभ्रमम् ॥ ६६ ॥

शूनाक्षिकुटगंडभूःशूनपात्राभिमेहनः ।

कृमिकोष्ठोतिसार्येतमलंसास्त्रकफान्वितः ॥ ६७ ॥

अर्थ—विष्टा, मूत्र और नेत्र रूखे, काले और लालरंगकेहों, कम्प, पीड़ा, आनाह और भ्रम इत्यादि विकारोंकी उत्पत्तिहो तो वातजपाण्डुरोग जानना । विष्टा, नेत्र और मूत्र यह सब पीलरंगके होजायें, दाह, तृष्णा, ज्वर और भेदहो, तथा शरीर पीतवर्णहो तो पित्तजपाण्डुरोग जानना । कफस्त्राव, सूजन, तन्द्रा, आलस्य, शरीर भारीहो, और चर्म, मूत्र, नेत्र और मुख श्वेतवर्णहो तो कफजपाण्डुरोग जानना । और ज्वर, अरुचि, हृल्लास, तृषा, वमन, ग्लानि, दुर्बलता और इन्द्रियें कमजोर होजावें तो अमाध्य त्रिदोषजपाण्डुरोग जानना । जिस पाण्डुरोगीके नख और दाँत पाण्डुरंगके होजावें, कोठेमें कृमि पड़जायें, कफ और रुधिरसंयुक्त बारंबार पतला, मल उतरे, भ्रमहो, नेत्रोंपे सूजनहो, कपोल और शृकुटी टेढ़ी होजावें, पांव, नाभि, और लिंगपे सूजनहो ऐसी पाण्डुरोगी अमाध्य जानना ॥ ६२-६७ ॥

अथ कालविध्वंसनोरसः ।

शुद्धसूतंहेमतारंताम्रंतुल्यञ्चमर्दयेत् ।

जम्बीरनीरसंयुक्तमातपेमर्दयेद्दिनम् ॥ ६८ ॥

सर्वतुल्यंपुनःसूतंलिप्त्वापिष्टिप्रकल्पयेत् ।

धत्तूरफलमध्यस्थंदोलायंत्रेज्यहंपचेत् ॥ ६९ ॥

धत्तूरच्छद्भैरेवभांडेचूर्णप्रपाचयेत् ॥

आदायबन्धयेद्वस्त्रेद्विष्टिकायंत्रगंपचेत् ॥ ७० ॥

जम्बीरैर्गंधकंपिष्ट्वाअधउद्ध्वेप्रदापयेत् ।
 तुल्यंतुल्यंपुनर्देयंरुद्धालघुपुटेपचेत् ॥ ७१ ॥
 शतधागंधकेजीर्णेतदुद्धृत्यविचूर्णयेत् ।
 लौहभस्मसमांशंचदत्त्वामर्चद्रवैर्दिनम् ॥ ७२ ॥
 कण्टकार्याबृहत्याश्चतथाग्नीनांद्रवैरपि ।
 प्रतिद्रवैर्दिनंमर्द्यपुटेत्पंचभिरौपलैः ॥ ७३ ॥
 एवंनवपुटंदेयंद्रावेद्रावेत्रिधात्रिधा ।
 वह्न्यर्कचिरबिल्वानांद्रवैर्द्वित्रिपुटेपचेत् ॥ ७४ ॥
 अन्धमूषागतंपच्यादादायचूर्णयेत्पुनः ।
 दशांशेनविषंयोज्यंगुंजामात्रंप्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥
 कालविध्वंसनोनामरसःपाण्डामयापहः ॥ ७६ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, सोना, रूपा, ताँवा यह सब समानभाग लेकर खरल करे, फिर धूपमें धरके एकदिन जम्बीरी नींबूके रसमें खरल करे, पश्चात् इन सबकी बराबर पारा मिलाकर पिटी बनालेवे, फिर धतूरेके फलके बीचमें इस पिटीको रख दोलायंत्रमें तीनदिन पकावे, पश्चात् चूर्णकर धतूरेके रसमें खरलकरके भांडमें रख पकावे, फिर वस्त्रमें बाँधकर इष्टिकायंत्रमें पकावे, पीछे जम्बीरी-नींबूके रसमें गंधकको मर्दनकर मूषाके ऊपर और नीचे रख उसके बीचमें उपरोक्तद्रव्यको रखै, तदनन्तर मूषाका मुख बंदकर लघुपुटमें पकावे, जब सौवार गंधक जीर्णहोजावे तब उस मूषामेंसे निकालकर चूर्ण करले, पश्चात् इस चूर्णमें बराबर लोहेकी भस्म मिलाकर कटेरी, कटाई और चीतेके रसमें एक एक दिन खरल करे, फिर पांच उपलोंकी पुटमें पकावे, ऐसी नौपुट देवे, तदनन्तर चीता, आक, करंज, और बेलके पत्तोंके रसमें खरलकर तीन पुट देवे, फिर अंधमूषामें पकावे, पश्चात् मूषामेंसे निकालकर चूर्ण बना लेंवै, चूर्णमें दशांशभाग विष मिला देवे । मात्रा १ एक रत्तीकीहै । यह कालविध्वंसन रस—पाण्डुरोगको नष्ट करैहै ॥ ६८—७६ ॥

अथ त्रिनेत्रालयो रसः ।

टंकणंजारितंस्वर्णशुल्बंशंखंनंतरसम् ।

दिनैकंचार्द्रकद्रवैर्गर्ज्यद्रापुटेपचेत् ॥ ७७ ॥

द्विद्वेद्याख्योरसोनामअसाध्यंश्वयथुंजयेत् ।

शूलगुल्ममथार्शासिनाशयत्याशुदेहिनाम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—भुनाहुवा सुहागा, सोना, ताँबा, शंख और मराहुवा पारा इन सबको समानभाग लेकर एकदिन अदरखके रसमें खरलकर पुटपाक करे तो त्रिनेत्राल्यरस सिद्धहो, यह रस—असाध्य शोथ, शूल, गुल्म और बवासीरको दूर करेहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ ग्रन्थान्तरोक्ता कामलाहलीमकयोश्चिकित्सा ।

निशागौरिकधात्रीभिरंजनंकामलापहम् ।

अपामार्गशमीमूलंपिष्ट्वातक्रेणपाचयेत् ॥ ७९ ॥

कामलांश्वयथुंपांडुकर्पमात्रंनिहन्त्यलम् ।

शिलाजतुसगोमूत्रंमंडूरंवाथमाक्षिकम् ॥ ८० ॥

सुलोहभस्मनिष्कंवासेवयेत्कुम्भकामली ॥ ८१ ॥

अंकोटमूलमर्कमूलंवातंडुलोदकेनपिष्ट्वानस्यंदेयं

कामलानश्यति । घोषफलेनवा । देवदाल्युदकं

रात्रौकार्य्यप्रभातेनस्यंतत्कामलांहरति ।

कुमारीकंदकंपिष्ट्वानस्यंशीतलवारिणा ।

एवंसप्तदिनंकार्य्यकामलांहन्तिदुस्तराम् ॥ ८२ ॥

अर्थ—हलदी, गेरू और आमला इनतीनोंका अंजन बनाकर नेत्रांमं लगानेसे कामला रोग दूर होताहै । चिरचिटेकी जड़ और शर्माकी जड़को तक्रमें पीसकर पीनेमें कामला, सूजन और पांडुरोग नष्ट होताहै, इसकी मात्रा दोतोलेकी है । शिलाजीतको गोमूत्रके साथ, अथवा मंडूरको सहतके साथ वा लोहंके चार मासे भस्मको सेवनकरनेसे कुम्भकामलारोग दूर होताहै । अंकोलकी जड़को अथवा आककी जड़को चावलांके जलमें पीसकर नाश लेनेसे कामलारोग शांत होताहै । देवदालीके रसको रात्रिमें रखकर प्रभातके समय नाश लेनेसे कामलारोग दूर होताहै । घीकुवारको शीतलवारिणां पीसकर सातदिनतक नाश लेनेमें घोरकामला रोग दूर होताहै ॥ ७९—८२ ॥

अथ हरमेखलोक्तकामलारोगापायः ।

विडंगत्रिफलांघ्र्योषंशुद्धलोहमलस्यच ।

पुरातनगुडेनात्रलेहयेदिनपूर्वकम् ॥ ८३ ॥

श्वयथुनाशयेत्क्षिप्रंपांडुरोगंहलामकः ।

मूलसंगृह्यकाश्मय्याःपिष्टातण्डुलवारिणा ॥ ८४ ॥

पानंतेनोदकेनैवकामलांहन्तिसज्वराम् ॥ ८५ ॥

अपामार्गमूलंतक्रेणपानात्कामलांहन्ति ॥

श्वेतापराजितामूलमधुदुग्धेनपिष्टापानात्कामलांहन्ति ।

विच्छातीमूलपूर्वदिक्स्थंशनौनिमंध्यरवौआनीयरक्तसू-
त्रेणशिरसिबंधनाच्छोथकामलांहन्ति । त्रिफलामधुगुडं

आर्द्रकरसेनपानाच्छोथकामलांहन्ति ।

गोरोचनाद्रोणपुष्पेणचक्षुरञ्जनात्तथा

विष्णुकान्तामूलपानात्सप्ताहेनकामलांहन्ति ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा और शुद्ध लोहेका मैल इनको पुगनं गुडमें मिलाकर खानेसे—सूजन, पांडु और हलीमकरोग दूर होता है । कुम्भेरकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे ज्वरयुक्त कामलारोग दूर होता है । चिरचिटेकी जडको तक्रके साथ पीनेसे कामला रोग दूर होता है । सफेदकोयलकी जडको सहत और दूधमें पीसकर पीनेसे कामलारोग नष्ट होता है । पूर्वदिशामें स्थित विच्छाती (बंगभापामें विछाटी) की जडको शनैश्चरके दिन नातआवे और रविवारके दिन जाकर उखाडलावे, फिर लालसूतके द्वारा शिरपै बांधे तो सूजनमयुक्त कामलारोग दूर होजाय । त्रिफला, मधु और गुडको अदरखके रसमें मिला कर सेवनकरनेसे सूजनसहित कामलारोग शांत होता है । गोरोचन और गूमाको पानीमें पीसकर आंखोंमें लगानेसे कामलारोग आराम होता है । अथवा कोयलकी जडको सातदिनपर्यंत पानीके साथ पीनेसे कामलारोग नाश होता है ॥ ८३-८५ ॥

अथ पंचास्यरः ।

मृतसूतार्ककान्ताभ्रतीक्ष्णंतालंसमाक्षिकम् ॥ ८६ ॥

देवदलीद्रवैःपिष्टंदिनैकंतत्समंसमम् ॥ ८७ ॥

पाचयेद्वालुकायंत्रे त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ।

अमृतोत्पलकन्दतिबलाक्षेत्रफलं युतम् ॥ ८८ ॥

पिष्टं यष्ट्यम्भसायामं यामं क्षौद्रसितासमम् ।

रसः पंचास्यनामायं सेवयेत्कुम्भकामली ॥ ८९ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, तांबा, कान्तलोहा, अभ्रक, ईस्पात, हरिताल और सोना-
माखी इन सबको एकदिन देवदालीके रसमें पीसकर तीन दिन वालुकायंत्रमें
पकावे, फिर इसमें गिलोय, कमलकी जड़, खिरौंटी और गूगलका चूर्ण मिला-
कर मुलेठीके रसमें एकप्रहर मर्दनकरे, पीछे समानभाग मिश्री और सहत
मिलालेवे, इस पंचास्यरसको सेवनकरनेसे—कुम्भकामलारोग दूर होता है ॥
॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

इति पांडुरोगाधिकारसमाप्त ।

अथ रक्तपित्तचिकित्सा ।

नोतिक्तमादौ संग्राह्यं बलिनोऽप्यश्नतश्च यत् ।

हृत्पांडुग्रहणीदोषघ्नीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥ १ ॥

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोथानुबन्धिनम् ।

अवश्यमविरेच्यश्चस्तम्भनैः समुपाचरेत् ॥ २ ॥

ऊर्ध्वप्रवृत्तदोषस्य पूर्वलोहितपित्तिनः ।

अक्षीणबलमांसाग्रेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥ ३ ॥

विनाशुण्ठीपडंगेन दद्याच्चार्द्धशृतं जलम् ।

केवलं शृतशीतं वा दद्यात्तोयं पिपासवे ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वगेतर्पणं पूर्वकर्तव्यश्च विरेचनम् ।

प्राग्धोगमने पेयावमनश्च यथाबलम् ॥ ५ ॥

तर्पणं सघृतं क्षौद्रं लाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।

ऊर्ध्वगं रक्तपित्तन्तुपीतं काले व्यपोहति ॥ ६ ॥

जलं खर्जूरमृद्धीकामधुकैः सपरूपकैः ।

शृतं शीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥ ७ ॥

आरग्वधेनधात्र्यावात्रिवृतापथ्ययाथवा ।
 त्रिष्टुप्, योक्तव्यशर्करामाक्षिकोद्भवम् ॥ ८ ॥
 त्रिवृतात्रिफलाश्यामापिप्पलीशर्करामधु ।
 मोदकःसन्निपातोद्धरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ९ ॥
 वमनंमदनोन्मिश्रंमन्थःसक्षौद्रशर्करः ।
 शालियष्टिकनीवारकरदूषप्रशान्तिका ॥ १० ॥
 श्यामाकश्चप्रियंगुश्चभोजनंरक्तपित्तिनाम् ।
 मसूरमुद्गचणकाःसमकुष्ठाढकीफलाः ॥ ११ ॥
 प्रशस्तासूपयूषार्थकल्पितारक्तपित्तिनाम् ।
 शाकंपटोलवेताग्रतण्डुलीयादिकंहितम् ॥ १२ ॥
 मांसंलावकपोतादिशशैणहरिणादिजम् ।
 वृषपत्राणिनिष्पीड्यरसंसमधुशर्करम् ॥ १३ ॥
 पिबेत्तेनशमंयातिरक्तपित्तंसुदारुणम् ।
 शतपर्व्यारसंक्षौद्रंखण्डञ्चैवसमंसमम् ॥ १४ ॥
 आज्येनपयसापीतंरक्तपित्तनिबर्हणम् ॥ १५ ॥
 वासाकषायोत्पलमृत्प्रियंगुलोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि ।
 पीत्वासिताक्षौद्रयुतानिहन्यात्पित्तामृजोवेगमुदीर्णमाशु ॥ १६ ॥
 प्रक्षेपणार्थनीलोत्पलादीनांचूर्णानांमधु-
 शर्करयोश्चमिलित्वा ४ माषकाः ।
 तालीशचूर्णसंयुक्तःपेयःक्षौद्रेणवासकःस्वरसः ।
 कफपित्ततमकश्वासस्वरभेदास्त्रपित्तहरः ।
 अभयामधुसंयुक्तादीपनीपाचनीमता ॥ १७ ॥
 श्लेष्माणंरक्तपित्तंचहन्तिशूलातिसारनुत् ॥ १८ ॥

अर्थ-रक्तपित्तरोगमें बलवान् मनुष्यकोभी प्रथम तिक्तद्रवांका सेवन नहीं
 करावे. कारण यहहै कि तिक्तपदार्थोंके सेवनकरनेसे हृद्रोग, पांडु, संग्रहणी,

घृही, गुल्म और ज्वरादिरोग उत्पन्न होतेहैं । क्षीणमांस, दुर्बल, बालक, वृद्ध और शोथसंयुक्त रक्तपित्तवाले रोगीको कदापि विरेचन (जुल्लाब) नहीं करावे, स्तम्भनक्रियाके द्वारा चिकित्सा करे । बल, मांस और अग्नियुक्त ऊर्ध्वगदोषसंयुक्त रक्तपित्तवाले रोगीको प्रथम लंघन करावे और तृषा लगे तो सोंठके विना अर्द्धशत षडंगजल देवे, अथवा अर्द्धावशिष्ट पकाया हुवा जलदेवे । ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोगमें प्रथम तर्पण और पश्चात् विरेचन कराना चाहिये । अधोगतरक्तपित्तरोगमें प्रथम पेया और पश्चात् वमन कराना चाहिये । खीलोंका चूर्ण, घृत और सहत मिलाकर बनाया हुवा, अथवा पिंडखजूर, मुलैठी, दाख और फालसा इनके काढेमें बूरा डालकर बनाया हुवा तर्पण, ऊर्ध्वगतरक्तपित्तरोगमें देना चाहिये । अमलतास और आमलेके काढेमें बूरा और सहत डालकर अथवा निसोत, और हरडके काढेमें बूरा और सहत मिलाकर तैय्यार किया हुवा विरेचन देना चाहिये । निसोत, त्रिफला, कालीमर्ग और पीपल इनके चूर्णमें बूरा और सहत मिला मोदक बनाकर खानेमें सान्निपातिक ऊर्ध्वगतरक्तपित्त और ज्वर नष्ट होताहै । मंथमें मेनफल, सहत और बूराको मिलाकर मेवन कर्गसे वमन होकर रक्तपित्त दूर होजाताहै । शालिधान (साठीधान्य), नीवार, कोदों, प्रशान्तिका, समा और कंगनी इनसबका भात, मसूर, मूँग, चने, मोठ, अरहर इनकी दाल वा यूप, पगवल, बेंतका अग्रभाग और चालाई आदि शाक, लवा, कन्नूर, खरगोश, हिरन और एणमृगादिका मांस रक्तपित्तरोगमें हितकारीहै । अड्डसेके रसमें बूरा और सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्तरोग शांत होताहै । दूबके रसमें बूरा और सहत डालकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्तपित्तरोग शांत होताहै । दूबके रसमें बूरा और सहत डालकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्तपित्तरोग दूर होताहै । अड्डसेके काढेमें कुमुद, (बट्टला) मोग-टर्कामट्टी, फूलप्रियंगु, लोध, रसोत और कमलकेशरका चूर्ण मिला पश्चात् शर्करा और सहत डालकर पीनेसे रक्तपित्तरोग शमन होताहै । अड्डमंका काढा, तालीसपत्रके चूर्णके साथ और मधुके साथ पीनेसे—कफ, पित्त, तमक श्वास, स्वरभेद और रक्तपित्तरोग आराम होताहै । हरडके चूर्णमें सहत मिलाकर खाना—शपन, पाचन, कफ, रक्तपित्त, शूल और अनिमार निवारकहै ॥

॥ १-१८ ॥

अथैलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोद्वाक्षाःपिप्पल्यर्द्धपलंतथा ।

सितामधुकखर्जूरमृद्रीकाश्चपलोन्मिताः ॥ १९ ॥

संपूर्णः धुनायुक्तांगुटिकांकारयोद्विषक् ।

अक्षमात्राततश्चैकांभक्षयेन्नादिने दिने ॥ २० ॥

कासंश्वासंज्वरंहिकांछर्दिमूच्छामदंभ्रमम् ।

रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरोचकः ॥ २१ ॥

शोषंप्लीहामवातांश्चस्वरभेदंक्षतक्षयम् ।

शोषंप्लीहामवातांश्चस्वरभेदंक्षतक्षयम् ।

गुटिकातर्पणीवृष्यारक्तपित्तञ्चनाशयेत् ॥ २२ ॥

अर्थ—इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, दाख और पीपल यह प्रत्येक दो दो तोले, मिश्री, महुवा, खजूर, और किसमिस यह प्रत्येक चार चार तोले लेंवे, पीछे सबका चूर्णकर सहत मिलाके दो दो तोलेभरकी गोली बनालेवे, एकगोली रोज खानेसे—खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन, मूच्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोष, प्लीहा, आमवात, स्वरभेद, क्षतक्षय और रक्तपित्तरोग विनष्ट होताहै । और यह गोली—तृप्तिकारक और वृष्यहै ॥ १९-२२ ॥

अथ नासादिरुधिरस्तंभनोपायः ।

नासाप्रवृत्तरुधिरंघृतमृष्टंश्छणपिष्टमामलकम् ।

सेतुरिवतोयवेगंनिरुणद्धिमूर्धिलेपेन ॥ २३ ॥

काञ्जिकेनपिष्ट्वामलकमिति ।

नस्यंदः क्षिप्रं ण्पोत्थोरसोदूर्वाभवोथवा ।

आम्रास्थिजःपलाण्डोर्वानासिकासुतरक्तजित् ॥ २४ ॥

मेदूगेतिप्रवृत्तेतुबस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।

शृतंक्षीरंपिबेद्वापिपंचमूल्यातृणाह्वया ॥ २५ ॥

रक्तातिसारिणंकर्मरक्तस्यात्पायुगामिनम् ।

पित्तप्रायेऽधिकंसर्वमेदगेचनियोजयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—घीमें भुनेहुवे आमलेको काँजीमें बारीक पीसकर मस्तकपै लेपकरनेसे नासिकासे रुधिरका निकलना बंद होजाताहै, जैसे पुलसे जलका बेग बंद होजाताहै । अथवा अनारके फूलकारस, वा दूबकारस, अथवा आमलेकी गुठलीका

रस. या प्याजके रसके द्वाग नास लेनेमे नासिकासे रुधिरका गिरना बंद हो-
जाताहै । लिंगसे रुधिर निकलताहै ऐसे रक्तपित्तरोगमें उत्तर वस्तिकर्म
कराना चाहिये । तृण पंचमूलीको दूधमें औटाकर पनिसे अथवा रक्तातिसारोक्त
चिकित्सा करनेसे गुदासे निकलताहुवा रुधिर बंद होजाहै । मेढ्र (लिंग) गत
रक्तपित्तरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करनी कहीहै ॥ २३-२६ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावय्यास्तुमूलानांसंप्रस्थद्वयमतम् ।

तत्समंचभवेत्क्षीरिंघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २७ ॥

जीवकर्पभकोमेदामहामेदास्तथैवच ।

काकोलीक्षीरकाकोलीमृद्धीकामधुकस्तथा ॥ २८ ॥

मुद्गपर्णीमापपर्णीविदारीरक्तचंदनम् ।

शर्करामधुसंयुक्तंसिद्धंविस्वावयेद्विपक् ॥ २९ ॥

रक्तपित्तविकारेषुवातरक्तगदेषुच ।

क्षीणशुक्रेषुदातव्यंवाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३० ॥

अंगदाहंशिरोदाहंज्वरंपित्तसमुद्भवम् ।

योनिशूलंचदाहंचमृत्रकृच्छ्रश्चपैतिकम् ॥ ३१ ॥

एतात्रोगान्निहन्त्याशुच्छिन्नाभ्राणीवमारुतः ।

शतावरीसर्पिरिदं वलवर्णाग्निदीपनम् ॥ ३२ ॥

स्नेहःपादःशृतःकल्कःकल्कवन्मधुशर्करे ।

इतिवाक्यबलात्स्नेहेप्रक्षेप्यंपादिकंभवेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-शतावरीकी जड़का रस ४ सेर, दूध ४ सेर, घी ४ सेर, जीवक, कृप-
भक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दाख, मुलैठी, मुगवन, मपवन,
विदारीकंद और लालचंदन इन सबका कल्क १ सेर सहत और घृत मिलाहुवा
सेरभर लेवे, पश्चात् विधिपूर्वक घृतको सिद्धकरे । इस घृतको रक्तपित्त, वातरक्त,
और शुक्रकी क्षीणतामें देना चाहिये, यह अत्युत्तम वाजीकरण है । तथा
यह घृत अंगदाह, शिरोदाह, पित्तज्वर, योनिशूल, दाह और पित्तोद्भवशू-

त्रकृच्छ्र रोगको दूर करैहै । यह शतावरीघृत बल, वर्ण और अग्निको दीपन करैहै ॥ २७-३३ ॥

अथ बिन्दुसारोक्तोरसः ।

वासादाडिमपुष्पस्यद्वारससमन्वितः ।

अलक्तकरसोपेतःपथ्यारससमन्वितः ॥ ३४ ॥

योजितोनस्यतःक्षिप्रंत्रिदोषमपिदेहिनाम् ।

नासारक्तप्रवृत्तन्तुहन्यादितिकिमद्भुतम् ॥ ३५ ॥

अर्थ-अडूसा, अनारका फूल, दूब, लाख और हरड इन सबके रसको मिलाकर नास लेनेसे त्रिदोषसे उत्पन्न हुवा नासागत रक्तपित्त दूर होताहै ॥ ३४-३५ ॥

अथ बृहद्रासाघृतम् ।

वासकस्वरसेसर्पिःपयसासहपाचयेत् ।

कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचंदनैः ॥ ३६ ॥

उदीच्यमधुकानन्ताशिरीषोशीरपद्मकैः ।

त्रायन्त्युत्पलमूर्वाभिर्मदयन्त्याश्चपल्लवैः ॥ ३७ ॥

सिताक्षौद्रयुतोहन्याद्रक्तपित्तंसुदारुणम् ।

पित्तंकासंचशूलंचस्वरभेदंहलीमकम् ॥ ३८ ॥

रक्तपित्तकफोद्धृतात्रोगानन्यांश्चनाशयेत् ॥ ३९ ॥

स्वरसचतुर्गुणंपयःस्नेहसमम् ।

अर्थ-घृत ४ सेर, अडूसेका रस १६ सेर, दूध ४ सेर, चिरायता, कुंडेकी छाल, नागरमोथा, मुलैठी, चंदन, सुगंधवाला, महुवा, अनन्तमूल, सिरस, खम, पद्माख, त्रायमाणा, कमल, मूर्वा, और मोतियाके पत्ते इन सबका मिलाहुवा कल्क सेरभर, बूरा आधसेर, और सहत आधसेर लेवे, पश्चात् इन सबको मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्धकरे । इस घृतको सेवन करनेसे दारुण रक्तपित्त, पित्त, खाँसी, शूल स्वरभेद, हलीमक, रक्तपित्त और कफसे उत्पन्न हुए आँगी रोग विनष्ट होते हैं ॥ ३६-३९ ॥

अथ कामदेवघृतम् ।

अश्वगंधापलशतंतदर्द्धगोक्षुरस्यच ।

शतावरीविदारीचशालपर्णीबिलातथा ॥ ४० ॥

अश्वत्थस्यचशुंगानिपद्मबीजंपुनर्नवा ।
 काश्मरीफलमेतच्चमाषबीजन्तथैवच ॥ ४१ ॥
 पृथग्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् ।
 चतुर्भागावशेषन्तुकषायमवतारयेत् ॥ ४२ ॥
 मृद्रीकापद्मकंकुष्ठंपिप्पलीरक्तचन्दनम् ।
 बालकंनागपुष्पञ्चशूकशिम्बीफलंतथा ॥ ४३ ॥
 नीलोत्पलंशारिवेद्रेजीवनीयंविशेषतः ।
 पृथक्कर्पसमंचैवशर्करायाःपलद्वयम् ॥ ४४ ॥
 रसस्यपौण्ड्रकेशूणामाढकेतत्रदापयेत् ।
 चतुर्गुणेनपयसाघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ४५ ॥
 रक्तपित्तक्षतक्षीणकामलावातशोणितम् ।
 हलीमकंतथाशोथंवर्णभेदंस्वरक्षयम् ॥ ४६ ॥
 अरोचकंमूत्रकृच्छ्रंपार्श्वशूलंचनाशयेत् ।
 एतद्राज्ञांप्रयोक्तव्यंबह्वन्तःपुरचारिणाम् ॥ ४७ ॥
 स्त्रीणाञ्चैवह्यपत्यानांदुर्बलानांचदेहिनाम् ।
 कृबिानांनष्टशुक्राणांजीर्णानामल्परेतसाम् ॥ ४८ ॥
 श्रेष्ठंबलत्तरंहृद्यंवृष्यंपेयंरसायनम् ।
 ओजस्तेजःकरञ्चैवआयुःप्राणविवर्द्धनम् ॥ ४९ ॥
 संवर्द्धयतिशुक्रञ्चपुरुषंदुर्बलेन्द्रियम् ।
 सर्वरोगविनिर्मुक्तस्तोयसितोयथाद्रुमः ॥ ५० ॥
 कामदेवइतिख्यातःसर्वर्तुषुप्रशस्यते ॥ ५१ ॥
 जीवनीयंजीवनीयदशकम् ।

अर्थ—असगंध १०० पल, गोखरू ५० पल, शतावरं, विदारीकंद, शरिवन,
 खिरैटी, पीपलकी कोपल, कमलगट्टा, पुनर्नवा, कुम्भेगका फल और माषबीज
 यह प्रत्येक ४० तोले भर ले पश्चात् इनसबको ४ द्रोण अर्थात् १२८ सेर जलमें

पकावे जब जलकर चौथाभाग बाकी रहे तब उतार ले, फिर इसमें दाख, पन्नाख, कूठ, पीपल, लालचंदन, सुगंधवाला, नागकेशर, कौछके बीज, नीलोत्पल (जिसके अभावमें “नीलोफर” भरतेहैं) शारिवा (गौरसिर, गौरियावासाऊ ई०सालशापरेला) श्यामलता कालीसर, करियावासाऊ, अनन्तमूल, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुँगवन, मपवन यह प्रत्येक एक २ तोले, बूरा आठ ८ तोले, पुंड्रकईखकारस ८ सेर, दूध ८ सेर डाले, तदनन्तर इन सबमें दो २ सेर घी डाल अच्छेप्रकार घृतको सिद्धकरे । यह घृत—रक्तपित्त, क्षतक्षीण, कामला, वातरक्त, हलीमक, सूजन, वर्णभेद, स्वरक्षय, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और पाश्वशूल (पसलियोंमें दर्द) को नष्ट करेहै । और यह राजाओंके सेवने योग्यहै । तथा बंध्यास्त्री, दुर्बलमनुष्य, नपुंसक, नष्टशुक्रवाले, वृद्ध और अल्पवीर्यवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारिहै, बलकारक, हृदयको हितकारी है वीर्यवर्द्धक, रसायन, ओजजनक, तेजवर्द्धक, आयु और प्राणवर्द्धक, और दुर्बलइन्द्रियोंवाले पुरुषको पुष्टिकारक और सर्वरोगनाशकहै । यह कामदेवघृत—सर्वऋतुओंमें सेवन करना श्रेष्ठहै ॥ ४०—५१ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डः ।

कूष्माण्डकात्पलशतंसुस्विन्नानिष्कुलीकृतम् ।

पचेत्तप्तेघृतप्रस्थेशनैस्ताम्रमयेदृढे ॥ ५२ ॥

यदामधुनिभःपाकस्तदाखण्डशतंतन्यसेत् ।

पिप्पलीशृंगवेराभ्यांद्वेपलेजीरकस्यच ॥ ५३ ॥

त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानांपलार्द्धकम् ।

न्यसेच्चूर्णीकृतंतत्रद्वयसंवट्टयेत्ततः ॥ ५४ ॥

तत्पक्वंस्थापयेद्भाण्डेदत्त्वाक्षौद्रंघृतार्द्धकम् ।

तद्यथाग्निबलंखादेद्रक्तपित्तीक्षतक्षयी ॥ ५५ ॥

कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ।

वृष्यंपुनर्नवकरंबलवर्णप्रसादनम् ॥ ५६ ॥

उरःसन्धानकृद्बल्यंबृंहणंस्वरंशोधनम् ।

अश्विभ्यानिर्मितंसिद्धंकूष्माण्डकरसायनम् ॥ ५७ ॥

खण्डामलकमानानुसारात्कूष्माण्डकद्रवात् ।

पात्रंपाकायदातव्ययावानन्नरसोभवेत् ॥ ५८ ॥

अत्रापिमुद्रयापाकोनिस्त्वचंनिष्कुलीकृतम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—प्रथम पेटेको लेकर उवाल लेवे फिर उसको छीलकर टुकड़े कर लेवे, वह टुकड़े तोलमें १०० पललेवे, पश्चात् उत्तम सांविके बग्ननमें ६४ तोले घृतको डालकर चूलेपै चढादेवे, जब घी खूब गरम होजाय तब उसमें वह पेटेके टुकड़े गेम्देवे, फिर धीरे धीरे पकावे, जब वह पकने २ सहतकी समान होजाय तब उसमें १००फल बूरा मिला देवे, पश्चात् पीपल, मांठ, ओर जीरा यह प्रत्येक आठ तोले, दालचीनी, इलायची, कालीमिर्च, और धनियाँ यह प्रत्येक दो २ तोले लेवे, इन सबका चूर्ण कर मिलादेवे, कगछी चलातागहै, जब भले प्रकारसे पकजावे तब उत्तमपात्रमें करके ३२ तोले सहत मिलादेवे, इसको अग्निका बलाबल विचारकर भक्षणकरे । यह रक्तपित्त, क्षतक्षय, खाँसी, श्वास, तम, वमन, तृषा और ज्वरमें पीडित मनुष्योंको सेवन करना चाहिये । वृष्य, शरीरको फिरसे नवीन करनेवाला, बलकारक, वर्णको प्रमन्न करनेवाला, फटीहुई छातीको जोड़नेवाला पुष्टिकारक, स्वर्गशोधक यह कूष्माण्डरसायन श्रीमान् अश्विनीकुमारोंने निर्माण की है, इसको खण्डकूष्माण्ड कहतेहैं ॥ ५८-५९ ॥

अथ वासाखण्डकूष्माण्डः ।

पञ्चाशच्चपलंस्विन्नंकूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः ।

ग्राह्यंपलशतंखंडंवासाक्राथाढकेपचेत् ॥ ६० ॥

मुस्ताधात्रीशुभाभाङ्गीत्रिसुगन्धैश्चकार्षिकैः ।

ऐलेयंविश्वधन्याकमारिचैश्चर्पलांशिकैः ॥ ६१ ॥

पिप्पलीकुडवञ्चैवमधुनानीप्रदापयेत् ।

कासंश्वासंक्षयंहिकारक्तपित्तंहलीमकम् ॥ ६२ ॥

हृद्रोगमम्लपित्तञ्चपीनसंचव्यपोहति ॥ ६३ ॥

कूष्माण्डरसोऽत्रदेयः ॥

अर्थ—प्रथम पेटेको उवालकर छीललेवे, फिर चकूमे बनाकर टुकड़े करलेवे, ऐसे टुकड़े २०० पल घृत ६४ तोले, बूरा १०० पल, पेटकागम २५६ तोले,

अडूसेका काथ २९६ तोले लेवे, पश्चात् इन सबको विधिपूर्वक मिलाकर पकावे, फिर नागरमोथा, आमला, वंशलोचन, भारंगी, तेजपात, इलायची, दालचीनी, यह प्रत्येक दोदो तोले लेवे, एलुआ, सोंठ, धनियाँ, कालीमिरच यह प्रत्येक चार तोले, पीपल १६ तोले लेवे, फिर इनसबका चूर्णकर मिलादेवे और सहत ३२ तोले मिलादेवे, यह खाँसी, श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, हलीमक, हृदय-रोग, अम्लपित्त, और पीनसरोगको दूर करै है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ मृगजरसः ।

मृतंसूतंसृतंतीक्ष्णंतुल्यवासाद्रवैर्दिनम् ।

मर्दितंमासमात्रन्तुभक्षयेन्मृगजरसम् ॥ ६४ ॥

सर्पाक्षीमधुनालेह्यानुस्याद्रक्तपित्तके ॥ ६५ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म और ईस्पातकी भस्मको समानभाग लेकर अडूसेके रसमें एकदिन खरल करै । एक मासाभर खानेसे रक्तपित्तरोग दूर होताहै और इसके ऊपर सर्पाक्षीकी जड़को सहतके साथ भक्षणकरे, यह अनुपानहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ रक्तपित्तहरोपायाः ।

नीलोत्पलंशिलाक्षौद्रंतुल्यांशंपद्मकेशरम् ।

तण्डुलोदकपानेनरक्तपित्तहरम्भवेत् ॥ ६६ ॥

शृंगाटकस्यमज्जायाःपलैकंशीतवारिणा ।

पीतंवाथगवांक्षीरैरक्तपित्तरुजापहम् ॥ ६७ ॥

नवनीतंसितालाजाद्राक्षयासहभक्षयेत् ।

मुस्तकेनघृतंदद्याद्रक्तपित्तहरंपरम् ॥ ६८ ॥

द्राक्षावासायुतंकाथंपिबेच्चशर्करान्वितम् ।

वासारसंसिताक्षौद्रैर्वासावाशर्करासमा ॥ ६९ ॥

भक्षयेद्रक्तपित्तार्त्तस्तृष्णादाहज्वरंहरेत् ।

धात्रीचूर्णंसितातुल्यंभक्षयेद्रक्तपित्तनुत् ॥ ७० ॥

काकमाचीरसंकाथ्यंक्षीरैश्चतुर्णेनतत् ।

पिबेन्मधुसिताभ्यांचद्रन्द्रोत्थंरक्तपित्तनुत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—नीलोत्पल (फा० नीलोफर), मैनाशिल, कमलकेशर और सहत इन सबको समानभागलेकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे—रक्तपित्तरोग दूर होता है । चारनोले सिंघाडेकी माँगको लेकर शीतलजलके साथ अथवा गायके दूधके साथ पीवे तो—रक्तपित्तरोग नाश होय । नवनीत (माखन), मिश्री, खील और दाख इन सबका एकत्र चूर्णकर खानेसे, अथवा नागरमोथेके चूर्णको घृतके साथ मिलाकर चाटनेसे, तथा दाख और अड्डसेके काथमें बूरा मिलाकर पीनेसे, वा विसोटेके रसमें सहत और मिश्री डालकर पीनेसे, अथवा अड्डसेके रसमें बराबरकी बूरा मिलाकर पीनेसे—रक्तपित्त, तृषा, दाह और ज्वर दूर होता है । आमलेके चूर्णमें बराबरकी मिश्री मिलाकर खानेसे रक्तपित्त नष्ट होता है । सोंठके चूर्णमें सहत मिलाकर चाटनेसे—कफोत्पन्न रक्तपित्तरोग दूर होता है । मकोयके रसको चौगुने दूधमें आटाकर सहत और मिश्री मिलाके पीनेसे दो दोपोंमें उत्पन्नहुआ रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ ६६—७१ ॥

अथ कपर्दकरसः ।

मृतं वामूर्च्छितं सूतं कार्पासपुष्पजैर्द्रवैः ।

मर्दयेद्दिनमेकन्तु तेन पृथ्वा वराटिका ॥ ७२ ॥

निरुध्य चान्धमूपायां भांडेरुद्धापुटे पचेत् ।

उद्धृत्य चूर्णयेच्छृङ्गमरिचैर्द्विगुणैः सह ॥ ७३ ॥

गुञ्जकैकं घृतैर्लेह्यं रक्तपित्तं नियच्छति ।

कपर्दकरसो नाम साध्यं च साधयत्यलम् ॥ ७४ ॥

उदुम्बरफलं पक्वं घृतैः पाच्यं सितायुतम् ।

भक्षयेन्मरिचैर्युक्तमनु स्याद्रक्तपित्तनुत् ॥ ७५ ॥

अर्थ—मृत वा मूर्च्छित पारेको कपामके फूलोंके रसमें एकदिन खगल करके फिर कौड़ीमें भरदेवे, और कौड़ीका मुख बंदकर देवे, पश्चात् अंधमूपामें रख गजपुटमें फूँक देवे, जब अपने आप शीतल होजावे तब निकालकर दुगुनी काली-मिर्चाके साथ पीमलेवे । एक गुंजाभर इसको घीके साथ चाटनेसे—रक्तपित्त रोग दूर होता है । यह कपर्दकरस असाध्यरक्तपित्तरोगको भी साधता है । इसपै पके हुए गुल्लोंको घी और बूगमें पकाकर फिर कालीमिर्चाको चूर्ण मिलाके भक्षण करे, यह अनुपान है ॥ ७२—७५ ॥

अथ माहेश्वरघृतम् ।

वासानिम्बपटोलंचत्रायमाणादुरालभा ।
 धातकीपर्पटंमुस्तमुशीरंकटुरोहिणी ॥ ७६ ॥
 निशादारुनिशातुल्यंतोयैर्दशगुणंपचेत् ।
 पादशेषेहरेत्काथंगोघृतंकाथपादकम् ॥ ७७ ॥
 त्रिफलात्रिकटुनिम्बंचन्दनञ्चपलोन्मितम् ।
 कल्कंतंनिक्षिपेत्तत्रघृतशेषंविपाचयेत् ॥ ७८ ॥
 घृतंमाहेश्वरंनामरक्तपित्तहरंपिबेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—अडूसा, नीम, परवल, त्रायमाणा, जवामा, धायकेफूल, पित्तपापडा, नागरमोथा, खस, कुटकी, हलदी और दारुहलदी यह सब समान भाग लेकर दशगुने पानीमें पकावे, जब पकते २ चौथाभाग शेषरहजाय तब काथसे चौथा भाग गायका घी, त्रिफला, त्रिकुटा, नीम और चंदन इन सबका कल्क चार चार तोले मिलाकर घृतको मिद्धकरे । यह माहेश्वर घृत—रक्तपित्तनाशक है ॥ ७६—७९ ॥

अथ समशर्करलौहम् ।

लोहाच्चतुर्गुणंक्षीरमाज्यंद्विगुणमुत्तमम् ।
 चूर्णपादन्तुवैडंगंदद्यान्मधुसितेसमे ॥ ८० ॥
 ताम्रपात्रेशुभेपक्त्वास्थापयेद्घृतभाजने ।
 माषकादिक्रमेणैवभक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ८१ ॥
 अनुपानंप्रयुंजीतनारिकेलजलादिकम् ।
 रक्तपित्तंजयेत्तीव्रमम्लपित्तंक्षतक्षयम् ॥ ८२ ॥
 पुष्टिदंकान्तिजननमायुष्यंवृष्यमुत्तमम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—एकभाग लोहा, चारभाग दूध, दोभाग घी, लोहेसे चौथा भाग बाय-विडंगका चूरन लेवे, पहिले लोहेकी भस्म, दूध और घृतको ताँबेके बरतनमें पकाकर फिर बायविडंगका चूरन मिलादेवे, शीतल होजाय तब समान भाग सहत और मिश्री मिलाकर घीके बरतनमें भरके चर देवे, क्रमसे माषादि बढ़ाकर विधिपूर्वक सेवन करे । और ऊपरसे नारियलका जल पीवे, यह—तीव्र रक्त-

पित्त, अम्लपित्त, क्षतक्षय, इनको दूरको, पुष्टिको करे, कान्तिजनक, आयुवर्द्धक, और वीर्यवर्द्धक है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ खण्डखाद्यलोहम् ।

शतावरीछिन्नरुहावृषमुण्डतिकाबला ।

तालमूलीचगायत्रीत्रिफलायास्त्वचातथा ॥ ८४ ॥

भाङ्गीपुष्करमूलन्तुपृथक्पंचपलानिच ।

जलेद्रोणेविपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ८५ ॥

दिव्योषविहतस्त्रापिमाक्षिकेणहतस्यवा ।

पलद्वादशकन्देयंरुक्मलोहस्यचूर्णितम् ॥ ८६ ॥

खंडतुल्यंचृतंदेयंपलपोडशिकंबुधैः ।

पचेत्ताम्रमयेपात्रेगुडपाकोयथामतः ॥ ८७ ॥

प्रस्थाद्धमधुनोदेयंशुभाश्मजतुकंत्वचम् ।

शृङ्गीविडंगकृष्णेचशुण्ठ्यजाजीपलंपलम् ॥ ८८ ॥

त्रिफलायान्यकंपत्रंश्चक्षुमरिचकेशरम् ।

चूर्णदत्त्वासुमथितंस्निग्धभाण्डेनिधापयेत् ॥ ८९ ॥

यथाकालंप्रयुंजीतबिडालपदकन्तुतत् ।

गवांशीरानुपानंचसेव्यंमांसरसंपयः ॥ ९० ॥

गुरुवृष्यानुपानानिस्निग्धमांसादिभोजनम् ।

रक्तपित्तंक्षयंकासंपक्तिशूलंविशेषतः ॥ ९१ ॥

वातरक्तंप्रमेहश्चशीतपित्तंमिंस्कृमीन् ।

श्वयथुंपाण्डुरोगश्चकुष्ठंप्लीहोदरंतथा ॥ ९२ ॥

आनाहंरक्तसंस्त्रावमम्लपित्तंनियच्छति ।

चक्षुष्यंबृंहणंवृष्यमांगल्यंप्रीतिवर्द्धनम् ॥ ९३ ॥

आरोग्यपुष्टिदंश्रेष्ठंकामाग्निबलवर्द्धनम् ।

श्रीकरंलावकरंखण्डखाद्यंप्रकीर्तितम् ॥

छागंपारावतंमांसंतिरिःक्रकराःशशाः ॥ ९४ ॥

कुरंगाःकृष्णसाराश्चतेपांमांसानियोजयेत् ।

नारिकेलपयःपानंसुनिषण्णकवास्तुकम् ॥ ९५ ॥

शुष्कमूलकबीजाख्यंपटोलंबृहतीफलम् ।

फलंवात्ताकुपक्वाग्रंखर्जूरंस्वादुदाडिमम् ॥ ९६ ॥

ककारपूर्वकंयच्चमांसञ्चानूपसम्भवम् ।

वर्जनीयंविशेषेणखण्डखाद्यंप्रकुर्वता ॥ ९७ ॥

दिव्यौषधिर्मनःशिलाजीवाख्यंशाकंमारिपम् ।

एतच्चपूर्वयुक्तिप्रयोगादिदानीन्तुत्रिचतुः—

पंचरक्तिकाद्यारभ्यरक्तिवृद्ध्यलोहान्तरवत् ।

अर्थ—शतावर, गिलोय, अट्टसा, गोरखमुंडी, खिरंटी, मुशली, खैर, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल, यह प्रत्येक २० बीस बीस तोले लेकर ३२ सेर जलमें पका जव आठवाँ भाग काढा शेष रहे तब मैनशिलसे अथवा सोनामाखीसे माग-हुआ तीक्ष्णलोहा ४८ तोले खांड ६४ तोले, घृत ६४ तोले लेवे, फिर सबकां मिलाकर तांबेके वासनमें, जिसप्रकार गुडका पाक बनताहै उमीप्रकार इसकां पकावे, शीतलहोनेपर ३२ तोले सहत मिलावे और वंशलोचन, शिलाजीत, दाल-चीनी, काकडांसिंगी, वायविडंग, पीपल, सोंठ, और जीरा प्रत्येक चार चार तोले, त्रिफला, धनियाँ, तेजपात, कालीमिरच और नागकेशर प्रत्येक दो दो तोले लेवे, सबका चूर्णकर मिलादेवे, और चिकने वासनमें भरके रखदेवे, इसकां एक तोलेभर भक्षणकरै, और ऊपरसे गायका दूध पीवे, तथा मांसका ग्म (सोरुआ) दूध, भारिपदार्थ, वृष्यपदार्थ, स्निग्ध पदार्थ, और मांसादिका भोजन करे। यह—रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, पक्तिशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, कृमि, सूजन पांडुरोग, कोढ़, छीहा उदररोग, आनाह, रक्तसंस्त्राव और अम्लपित्तको दूर करैहै । नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक मंगलजनक, प्रीतिवर्धक, आरोग्यदायक, पुष्टिजनक, श्रेष्ठ, कामाग्नि और वलवर्द्धक, लक्ष्मीकारक और लघुताकारकहै । इसको खंडखाद्य कहेंहैं । इसपै वकरा, परेवा तीतर, क्रकर, शशक, कुरंग, और कृष्णसारादि जीवोंका मांस खाना चाहिये और नारियलकादूध, शिरिआरीशाक, बथुआ, सूखी मूलीके बीज, परवल, बृहतीके फल,

बैंगन. पक्के आम, खजूर, मीठा अनार, और जिन शाकोंके आदिमें ककारहै वह सब, और अनूपदेशमें होनेवाले जीवोंका मांस यह सब. खंडखाद्य सेवनकरने-वाला त्याग देवे ॥ ८४-९७ ॥

अथामृताख्यलोहम् ।

अमृतात्रिवृतादंतीश्रावणीखदिरीवृषम् ।
चित्रकोभृंगराजश्चकोकिलाक्षःसपुष्करः ॥ ९८ ॥
पुनर्नवाबलाकाशशिग्रुमोरटदारकाः ।
गवाक्षीवरुणैःकन्दश्चविकातालमूलिका ॥
नागबलाकणामूलंकुष्ठं ब्राह्मणयष्टिका ।
पलोन्मितानिचैतानिजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ९९ ॥
अष्टभागावशेषन्तुकपायमवतारयेत् ।
त्रिफलायास्तथाप्रस्थंजलाष्टगुणपाचितम् ॥ १०० ॥
तस्मादष्टावशेषन्तुकपायंसुपरिष्ठुतम् ।
माक्षिकेणहतस्यापिपुटितस्ययथाविधि ॥ १०१ ॥
अयसश्चूर्णितंपूतंपलपोडशसम्मितम् ।
पलान्यभ्रस्यचत्वारितावन्तिगंधकस्यच ॥ १०२ ॥
द्वेद्वेपलेरसस्यापिखल्लितस्यविधानतः ।
गुडस्यचपलान्यष्टौसितायाव्राथपौत्तिके ॥ १०३ ॥
रक्तपित्ततुखंडेनमत्स्यण्डीवापिकासके ।
गुग्गुलोद्विपलंदत्त्वाप्रस्थमेकन्तुसर्पिषः ॥ १०४ ॥
एवंपाकविधिज्ञस्तुपचेल्लोहंसमाहितः ।

१ दारकोवृद्धदारकः । गवाक्षी गोरक्षककटी नागवृद्धागोरक्षतं इत्या कुष्ठपुष्कराभ्यां काण्ड-
प्रान्थिभेदेनग्रहणम् । अथवाभागद्वयग्रहणमेवम् । माक्षिकस्यहतस्यनिरुध्यमारितस्येत्यर्थः ।
पुटितस्यसामान्यविशेषपुटितस्य । पलान्यभ्रस्येत्यत्रापिपुटितस्येतिसम्बन्धने । तेनप्रथमपरिच्छे-
दोक्तक्रमेणरसायनाधिकारवक्ष्यमाणवृहदमृतसारप्राक्तयोद्वाश्रममभिहिताविधिर्नैव वा चूर्णितपुटि-
तस्येत्यर्थः । तावन्ति गंधकस्येत्यत्रचत्वारि पलानीत्यर्थः ।

शीतेवतार्यमधुनःक्षिपेदष्टपलंभिषक् ॥ १०५ ॥
 माक्षिकस्यविशुद्धस्यद्विपलंरजसःक्षिपेत् ।
 शिलाजतुतथाचूर्णपलार्द्धसम्मितंभिषक् ॥ १०६ ॥
 तथैषांप्रक्षिपेच्चूर्णपलमात्रंपृथक्पृथक् ।
 एपलोहवरःश्रीमान्सर्वव्याधिप्रणाशनः ॥ १०७ ॥
 यत्रयत्रप्रयुज्येततत्तदाशुविनाशयेत् ।
 रक्तपित्तेह्यम्लपित्तेक्षयेकुष्ठेज्वरेऽरुचौ ॥ १०८ ॥
 दुर्नाम्निचोदरेशूलेग्रहण्यामामवातके ।
 वातरक्तेमूत्रकृच्छ्रेप्रमेहेशर्करागदे ॥ १०९ ॥
 अस्योपयोगान्मनुजस्तारुण्यमधिगच्छति ।
 ब्रह्मचर्येणकुर्वीतप्लुतंमाक्षिकसर्पिषा ॥ ११० ॥
 मानकंरक्तिकारभ्ययावदष्टौचमापकान् ।
 संवर्ज्यवैदलंसूपंमांसञ्चानूपसम्भवम् ॥ १११ ॥
 ककारपूर्वकंसर्वयत्नेनपरिवर्जयेत् ।
 अमृताख्योवरोलोहःसर्वत्रैवोपयुज्यते ॥ ११२ ॥
 अनेनसर्वथास्वस्थाजन्तवःसन्तिनान्यथा ॥ ११३ ॥

इतिरक्तपित्ताध्यायः ।

अथ प्रसंगतो गंधकशुद्धिविधिः ।
 गंधकन्तुसमानीयनवनीतामलच्छवि ।
 तत्सर्पिषिविपक्तव्यंयावत्तैलनिभंभवेत् ॥ १ ॥
 वस्त्रेणान्तरितंकृत्वाढालयेत्त्रिफलाम्भसि ।
 एवंगंधाश्मसंशुद्धंतत्तत्कर्मसुयोजयेत् ॥ २ ॥
 अथरसस्येतिपारदरसस्यपलंद्वयं खल्लितस्यमूर्च्छितस्ये-
 त्यर्थः । मूर्च्छनंखल्वशिलादिष्वौषधचूर्णरसंवादत्वा

विमर्द्यनिर्मलीकरणमभिधीयते । तत्रतावत्पारदेसिद्ध-
दोषत्रयनिवारणार्थं त्रिभिर्द्रवैः प्रत्येकं सप्तधामूच्छनं कार्यं
तदुक्तं स हृदये । मलशिखिविषनामानोरसस्य नैसर्गि-
कास्त्रयोदोषाः ।

मूच्छामलेन कुरुते शिखिना दाहं विपेण मरणं हि ।
ग्रहकन्याहरति मलं त्रिफलावह्निश्च चित्रकं च विषम् ॥ ३ ॥
तस्मादेभिर्वारान्संमूच्छयेत्सप्तसत्तैवेति ।
अत्र ग्रहकन्या घृतकुमारी तथा योगरत्नाकरेऽप्युक्तम् ।
इष्टकाराजिकापटुनागारधुमालम्बुपकिण्वगुडाद्रैकैः ॥ ४ ॥
इष्टकादिरयं ख्यातः सूतदोषहरोगणः इति ॥
एतैरित्यथा सम्भवं यथायोगं च मूच्छनं कार्यम् । अत्र
पटुलवणम् । अलम्बुपः कुलाहलः किण्वं सुराबीजम् ।
तच्च उत्तमजात्यादिषु न प्रयोज्यं तस्य च रसस्य मूर्च्छितमात्र-
त्वात्पाकसमाप्तौ प्रवेशः ।

तदुक्तं योगरत्नाकरे ।

मूर्च्छितो यदि सूतः स्यात्क्षिपेत्पाकोत्तरन्तदा-
एतदुक्तमेव प्रथमपरिच्छेदे ।
माक्षिकस्य विशुद्धस्येति स्वरूपतः शोधिततया ज्ञेयम् ।
तदुक्तं योगरत्नाकरे ।

भंगे सुवर्णसंकाशो मनावकृष्णच्छविर्वहिः ।
बृहद्वर्ण इति ख्यातो माक्षिकोऽत्र प्रशस्यते इति ।
उक्तञ्चान्यत्र शोधनमस्य ।

कालमारिपशालिचक्राथे दोलाविधानतः ॥
तदधः पतितं ग्राह्यमेवं शुद्धयति माक्षिकम् ॥

इत्यादिप्रथमपरिच्छेदेप्रोक्तम् । एषांचस्वर्णमाक्षिकशिला-
जतुचूर्णादीनांलोहपाकसमाप्तौविश्राम्यमनावततत्त्व-
दशायांप्रक्षेपः ।

तदुक्तं योगरत्नाकरसमुच्चये ।

अवतार्यथदादव्यापरिघट्यपुनःपुनः ।

यदापाणिसहोभूतोनिक्षिपेदौषधन्तदेति ॥ ५ ॥

तावत्तच्छुतमितिवस्त्रच्छानितमित्यर्थः ।

चित्रकान्तचूर्णानिप्रत्येकंपलमात्राणि ।

चातुर्जातकादीनांप्रत्येकमर्द्धपलसम्मितत्वम् ।

व्यक्तमन्यत् ।

अर्थ—गिलोय, निमोत, दंती, गोरखमुंडा, खैर, अड्डसा, चीता, भांगग, तालमखाना, पोहकरमूल, पुनर्नवा, खिरैटी, काँम, सेंजिना, अंकोलकेफूल, विधारा, इन्द्रायन, वरना, कमलकंद, चव्य, मुसली, गंगेरन, पीपराभूल, कूट, भारंगी, यह प्रत्येक चार चार तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे, जब आठवां भाग अर्थात् ४ सेर शेष रह जाय तब उतारले फिर त्रिफलेको आठगुने जलमें पकावे जब आठवां भाग शेष रहै तब उतारकर पूर्वोक्तमें मिलादेवे, तदनन्तर सोनामाखीसे माराहुवा और अच्छेप्रकारसे पुटित किया लोहेका चूर्ण १६ पल लेवे, अभ्रक १६ तोले, गंधक १६ तोले शुद्धपारा आठ ८ तोले, गुड ८ पल, जो पित्तकी अधिकता हो तो बूरा मिलावे, रक्तपित्तके लिये इसमें खांड मिलावे, खाँसीकेलिये मिश्री, गूगल ८ तोले, घी ६४ तोले इनसबको मिलाकर विधिपूर्वक पाककरे, शीतल होनेपर ३२ तोले सहत, शुद्धसोनामाखीका चूर्ण ८ तोले, शिलाजीत दो २ तोले मिलावे, चीतादि औषधियोंका चूर्ण चार २ तोले और दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशरादिका चूर्ण दो २ तोले मिलावे, तो अमृतारव्य लोह बने । यह सर्वलोहोंमें उत्तम और सर्वरोगनाशकहै । जिम २ रोगपर इसको देवे उसी उसी रोगको दूर करे, रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षय, कुष्ठ, ज्वर, अरुचि, बवासीर, उदररोग, शूल, संग्रहणी, आमवात, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और शर्करारोगको हरैहै, इसको सेवनकरनेसे मनुष्य तरुण होजाताहै । इसको सेवनकरनेवाला ब्रह्मचर्यसे रहै । इसलोहेको घृत और सहतके साथ

मेवनकरे । इसकी एकरत्तीसे लेकर आठमासे पर्यंत परम मात्रा है । इसपै विदल अन्न, दाल, आनूपदेशमें उत्पन्नहोनेवाले जीवोंका मांस तथा ककार जिनके आदिमेंहै ऐसे सबपदार्थ छोड़देवे, यह अमृताख्यलोह सर्वयोगोंमें प्रयोगकरना योग्यहै, इससे मनुष्य रोगहीन होजातेहैं ॥ १-५ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ रोगराजचिकित्सा ।

अनेकरोगानुगतोबहुरोगपुरःसरः ।

दुर्विज्ञेयोदुर्निवारःशोषोव्याधिर्महाबलः ॥ १ ॥

सुशोषणाद्रसादीनांशोषइत्यभिधीयते ।

क्रियाक्षयकरत्वाच्चशयइत्युच्यतेबुधैः ॥ २ ॥

राज्ञश्चन्द्रमसोयस्मादभूदेपकिलामयः ।

तस्मात्तराजयक्ष्मेतिकेचिदाहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥

शुक्रायत्तंवलंपुंसांमलायत्तञ्चजीवनम् ।

तस्माद्यत्नेनसंरक्षेद्यक्षिणोमलंगेत्सी ॥ ४ ॥

नित्यंस्वदेहपूजीभक्तोभैषज्यदेवतागुरुषु ।

छागलमांसप्राशीजीवतियक्ष्मीपगंधृतिकृत् ॥ ५ ॥

बलिनोबहुदोषस्यपंचकर्माणिकारयेत् ।

यक्षिणःक्षीणदोषस्यकृतंतत्स्याद्रिपोपपम् ॥ ६ ॥

दोषाधिकानांमनंशस्यतेसविरेचनम् ।

स्नेहस्वेदोपपन्नानांस्नेहंयत्त्वकर्षणम् ॥ ७ ॥

कर्पणंदौर्बल्यकरंशुद्धकोष्ठस्ययुञ्जीत । विधिवृंहणंदीपनम् ।

शालिपट्टिकगोधूमयवमुद्गादयःशुभाः ।

मद्यानिजांगलाःपक्षिमृगाःशस्ताविशुष्यतः ॥ ८ ॥

शुध्यतांक्षीणमांसानांकल्पितानिविधानवित् ।

दद्यात्क्रव्यादमांसानिवृंहणानिविशेषतः ॥ ९ ॥

छागमांसपयश्छागंछागंसर्पिःसशर्करम् ।

छागोपसेवाशयनं छागमध्ये च यक्ष्मनुत् ॥ १० ॥

सपिप्पलीकंसयवंसकुलत्थंसनागरम् ।

दाडिमामलकोपेतंस्निग्धमाजरसंपिबेत् ॥ ११ ॥

तेनपट्टिनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ।

शतपुष्पाचमधुकंकुष्ठतगरचन्दने ॥ १२ ॥

आलेपनं स्यात्सघृतं तच्च पाश्वसशूलनुत् ॥ १३ ॥

अर्थ—यह शोषरोग अनेक रोगानुगत, बहुत रोगों में श्रेष्ठ, दुर्लभ, महाबलवान् और दुर्निवार अर्थात् असाध्य है, शरीर की रसादिधातुओं को शोषण करे है इस कारण इसको शोष कहते हैं, क्रियाओं को क्षय करने में इसको क्षय कहते हैं, और प्रथम राजा चन्द्रमा के यह उत्पन्न हुआ इस कारण इसको राजयक्ष्मा कहते हैं। बल शुक्र के अधीन और जीवन मल के अधीन है, इस कारण राजयक्ष्मा वाले रोगी के यत्न पूर्वक वीर्य और मल की रक्षा करनी योग्य है। सदैव देह की पूजा करने वाला औषध, देवता और गुरु में भक्ति करने वाला और बकरे के मांस को सेवन करने वाला तथा धैर्य को धारण करने वाला, ऐसा राजयक्ष्मारोगी आरोग्य होता है। बहुत दोषों से युक्त बलवान् राजयक्ष्मा वाले रोगी के पंचकर्म (वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासनवस्ति) कराने चाहिये, परन्तु क्षीण दोष वाले राजयक्ष्मा रोगी के यह पंचकर्म विपकी समान अपकारी होते हैं। दोषों की अधिकता वाले राजयक्ष्मा रोगी को वमन और विरेचन कराना हितकारी है। स्नेह और स्वेद युक्त राजयक्ष्मा रोगी को स्नेह युक्त अर्कपण (अर्द्धावृत्यकारक सेवन कराना चाहिये) शुद्ध कोटि वाले मनुष्य को अग्निप्रदीपक और पुष्टिकारक द्रव्य सेवन करने चाहिये ।

शालि और साठीधान, गेहूँ, जौ, और मूँग आदि अन्न, तथा मदिरा, और जांगल देश के पशुपक्षियों का मांस यह सब राजयक्ष्मा रोगी को हितकारी है। मांसहीन शोषरोगी को मांस को खाने वाले पशुपक्षियों का मांस तथा बृंहण पथ्य देना चाहिये। बकरे का मांस, बकरी का दूध, और बकरी का घी बूरा मिलाकर खाना, तथा बकरे, बकरियों की दहल करनी, और बकरे, बकरियों के बीच में सोने से राजयक्ष्मारोग दूर होता है। पीपल, जव, कुलथी, सांठ, अनार और आमले युक्त बकरी (रा) के मांसरस (सोरुआ) को पीने से—पीनसादि छः प्रकार के रोग दूर होते हैं। सोआ, मुलैठी, कूठ, तगर और चंदन को घृत के साथ पीसकर लेप करने से—पाश्वशूल और स्कन्धशूल नष्ट होता है ॥ १-१३ ॥

अथ त्रयोदशाङ्गकाथः ।

धन्याकपिप्पलीविश्वदशमूलीजलम्पिबेत् ।

पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ॥ १४ ॥

काथस्त्रयोदशांगस्यचातुर्जातकसंयुतः ।

कासज्वरादिशमनोबलपुष्टिविवर्द्धनः ॥ १५ ॥

अर्थ—धनियौ, पीपल, सोंठ और दशमूल इनका काथ बनाकर पीवे तो पार्श्व-शूल, ज्वर, श्वास और पीनसादि रोग नष्ट होतेहैं, और इसत्रयोदशांग काथमें, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात इनका चूर्ण बुककर पीनेमें खांसी और ज्वरादिरोग शांत होतेहैं, तथा बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ काथनयागः ।

दशमूलीबलारास्नापुष्करसुरदारुनागरैःकथितम् ।

पेयंपार्श्वसशिरोरुक्षतकासादिशान्तयेसलिलम् ॥ १६ ॥

अश्वगंधामृताभीरुदशमूलीबलावृषाः ।

पुष्करातिविषेघ्नतिक्षयंक्षीररसाशिनः ॥ १७ ॥

ककुभत्वङ्नागबलावानरीबीजादिचूर्णितंपयसि ।

पक्वंतमधुयुक्तंससितंयक्ष्मादिकासहरम् ॥ १८ ॥

पारावतकपिच्छागंकुरङ्गाणांपृथक्पृथक् ।

मंसचूर्णमजाक्षीरपीतंक्षयहरंपरम् ॥ १९ ॥

दिनकरदीधितिशोधितपाराव्रतमांसमनुदिनंनियतः ।

योलेढिमधुघृतः तंसजयतियक्ष्माणमत्युग्रम् ॥ २० ॥

शर्करामधुसंयुक्तंनवनीतंलिहन्क्षयी ।

क्षीराशीलभतेपुष्टिमंगुल्येचाज्यमाक्षिके ॥ २१ ॥

अर्थ—दशमूल, खिरौटी, रसायन, पोहकरमूल, देवदारु और सोंठ इनका काथ पार्श्वशूल, स्कन्धशूल, शिरोरोग, क्षतकासादिरोगोंको दूर करेहै । असगंध, गिलोय सतावर, दशमूल, खिरौटी, अड्डसा, पोहकरमूल और अतीस इनका काढा पीवे और उपरसे दूध, मांसरस खावे तो क्षयरोग नाशहोवे । अर्जुनवृक्षकी छाल, गंगेरन, और कौंछके बीजोंका चूर्ण, इनको दूधमें पकाकर घृत, मधु और बूरा

मिलाके खानेसे खाँसी, यक्ष्मादिरोग विनष्ट होतेहैं । परेवा, वानर, बकरा, हिरन, इन प्रत्येकके मांसका चूर्ण बलग २ बकरीके दूधमें मिलाकर पीनेसे क्षयरोग नाश होताहै । परेवाके मांसको धूपमें सुखाकर चूर्णबना प्रतिदिन मधु और सहतके साथ खानेसे अत्युग्रराजयक्ष्मारोग दूर होताहै । क्षयरोगी शर्करा और मधुसंयुक्त मक्खनको खावे । दूध, घृत और मधुको खानेसे-राजयक्ष्मा वाले रोगीके पुष्टि बढ़ती है ॥ १६-२१ ॥

अथैलादिचूर्णम् ।

एलात्वङ्मरिचंशुंठीपिप्पलीनागकेशरम् ।

यथोत्तरंभागवृद्ध्याचूर्णन्तुसितयासमम् ॥ २२ ॥

यक्ष्माशोग्रहणीगुल्मरक्तपित्तक्षयापहम् ।

कण्ठरोगारुचिहरंघ्नीहरोगहरंपरम् ॥ २३ ॥

अर्थ-इलायची एकभाग, दालचीनी दोभाग, कालीमिरच तीनभाग, मोंठ चारभाग, पीपल पांचभाग, नागकेशर छेभाग, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करै और चूर्णकी बराबर बूरा मिलावे, पश्चात् इस चूर्णको खानेसे राजयक्ष्मा, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, रक्तपित्त, क्षय, कंठरोग, अरुचि, और घ्नीहारोगको दूर करैहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ सितोपलादिलेहः ।

सितोपलतुगाक्षीरीपिप्पलीबहुलात्वचः ।

अन्त्यादूर्द्ध्वद्विगुणितंलेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ॥ २४ ॥

चूर्णितंप्राशयेद्वापिश्वासकासक्षयापहम् ।

हस्तपादांशदाहेषुज्वरेरक्तेतथोर्द्ध्वगे ॥ २५ ॥

सुप्तजिह्वारोचकिनंमन्दाग्निपार्श्वशूलिनम् ॥ २६ ॥

अर्थ-मिश्री १६ भाग, वंशलोचन ८ भाग, पीपल ४ भाग, छोटीइलायची २ भाग और दालचीनी १ भाग लेवे, सबका चूरन कर सहत और घृतमें मिलाकर चाटनेसे श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ, पांव और कन्धोंकी दाह, ज्वर, ऊर्ध्वगतरक्त, सुप्तजिह्वा, - अरुचि, मंदाग्नि और पार्श्वशूल दूर होता है ॥ २४-२६ ॥

१ बहुला एलाबीजम् ।

अथ लवंगादिचूर्णम् ।

लवंगकंकोलमुशीरचंदननतंसनीलोत्पलजीरकद्वयम् ।

त्रुटिःसकृष्णागुरुभृंगैकेशरंकणासविश्वानैलदंसहाम्बुदम् २७

अहीन्द्रजातीफलवंशलोचनासिताष्टभागंसमश्लक्ष्णचूर्णितम् ।

अगेचकंतर्पणमग्निदीपनंबलप्रदंवृष्यतमंत्रिदोपनुत् ॥ २८ ॥

उरोविबन्धंतमकंगलग्रहंसकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् ।

ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदंप्रमेहगुल्मांश्चनिहन्तिसत्वरम् २९

वातपित्ताधिकेवह्निबलेसर्वचूर्णापेक्षयाशर्करापृगुणा ।

कफाधिकेचाग्निमान्द्येचएकभागापेक्षयापृगुणेति ।

अर्थ-लौंग, शीतलचीनी, खम, चंदन, तगर, नीलाकमल, जीरा, छोटी इलायची, कालीअगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, वालछड, नागर-मोथा, अनन्तमूल, जायफल, वंशलोचन, यह प्रत्येक समान भाग और मिश्री ८ भागलेकर बारीक चूर्णकरे । यह लवंगादि चूर्ण रुचिको करनेवाला अग्निको दीपन करनेवाला, तृप्तिकारक, बलप्रदायक वृष्य, त्रिदोषनाशक, तथा छातीका दर्द, विबन्ध, तमक, गलग्रह, खाँसी, हुचकी, अरुचि, पीनस, गजयक्ष्मा, संग्रहणी, अतिसार, भगन्दर, अर्बुद, प्रमेह और गुल्मरोगको दूर करे ॥ २७-२९ ॥

अथ तालीशाद्योमोदकः ।

तालीशपत्रंमरिचंनागरंपिप्पलीशुभा ।

यथोत्तरंभागवृद्ध्यात्वगेलाचार्द्धभागिका ॥ ३० ॥

पिप्पल्यष्टगुणाचात्रप्रदेयासितशर्करा ।

कासश्वासारुचिहरंतचूर्णदीपनंपरम् ॥ ३१ ॥

हृत्पांडुग्रहणीरोगप्लीहाशोषज्वरापहम् ।

छर्द्यतीसारशूलघ्नमूढवातानुलोमनम् ॥ ३२ ॥

कल्पयेद्गुटिकाञ्चैतच्चूर्णपत्तवासितोपलाम् ।

१ त्रुटिरेलावाजम् । २ भृंगगुडत्वक् । ३ नटदं जटामांसी । ४ सहाम्बुदंसमुस्तकम् ।

५ अहीन्द्रमनन्तमूलम् ।

गुटिकाह्य त्रिसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरास्मृता ॥ ३३ ॥

पैत्तिकेग्राहयन्त्येकेशुभायावंशलोचना ॥

अर्थ—तालीशपत्र ५ भाग, कालीमिरच ४ भाग, सोंठ ३ भाग, पीपल २ भाग, वंशलोचन १ भाग, दालचीनी और इलायची आधा २ भाग, और मिश्री १६ भाग लेवे, पश्चात् सबको एकत्रकर मोदक बनावे. यह लड्डू खाँसी, श्वास, अरुचि हृदयरोग, पांडु, संग्रहणी, घ्नीहा, शोष, ज्वर, वमन, अतीसार, शूल और मूढवातको हरैहै, तथा दीपन है। इन उपरोग औषधियोंका चूर्ण भी यही गुण करता है, जो चूर्ण बनाना हो तो कूट पीसकर बनाले और जो गुटिका (मोदक) बनानी हो तो पाककर बनावे ॥ ३०-३३ ॥

अथ च्यवनप्राशः ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्यःपाटलीबला ।

मुद्गपर्ण्यश्चपिप्पल्यःश्वदंष्ट्राबृहतीद्रयम् ॥ ३४ ॥

शृंगीतामलकीद्राक्षजीवन्तीपुष्करागुरु ।

अभयासामृताऋद्धिजीवकर्षभकौशठी ॥ ३५ ॥

मुस्तंपुनर्नवामेदेसूक्ष्मैलोत्पलचंदनम् ।

विदारीवृषमूलानिकाकोलीकाकनासिका ॥ ३६ ॥

एषांपलोन्मितान्भागान्शतान्यामलकस्यच ।

पंचदद्यात्तदैकध्यंजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वागतरसान्येतान्यौषधान्यथतंतरसम् ।

तच्चांमलकमुद्धृत्यनिष्कुलंतैलसर्पिषोः ॥ ३८ ॥

पलद्वादशकेभृङ्गादत्त्वाचार्ष्णतुलांभिषक् ।

मत्स्यण्डिकायाःपूतायालेहवत्साधुसाधयेत् ॥ ३९ ॥

षट्पलंमधुनश्चात्रसिद्धशीतेप्रदापयेत् ।

चतुष्पलन्तुगोक्षीर्याःपिप्पल्याद्विपलन्तथा ॥ ४० ॥

पलमेकंनिदध्याच्चत्वगेलापत्रकेशरात् ।

इत्ययंच्यवनप्राशःपरमुक्तोरसायनः ॥ ४१ ॥

कासश्वासहरश्चैवविशेषेणोपदिश्यते ।

क्षीणक्षतानांवृद्धानांबालानांचांगवर्द्धनम् ॥ ४२ ॥

स्वरक्षयमुरोरोगंहृद्रोगंवातशोणितम् ।

पिपासामूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चैवापकर्षति ॥ ४३ ॥

अस्यमांत्रांप्रयुजीतयोपरुन्ध्यान्नभोजनम् ।

अस्यप्रयोगाच्च्यवनःसुवृद्धोऽभूत्पुनर्नवः ॥ ४४ ॥

मेधांस्मृतिकान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षबलमिन्द्रियाणाम् ।

स्त्रीषुप्रहर्षपरमाग्निवृद्धिवर्णप्रसादंपरमानुलोम्यम् ॥ ४५ ॥

रसायनस्यास्यनरःप्रयोगाल्लभेतक्षीणोपिकुटीप्रवेशात् ।

ज्वराकृतंपूर्वमपास्यरूपंविभर्तिरूपंनवयौवनस्य ॥ ४६ ॥

सितामत्स्यण्डिकालभेधाज्याश्चमृदुभर्जनम् ।

चतुर्भागजलेप्रायोद्रव्यंगतरसंभवेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ—बेल, रनि, सोनापाठा, पाढल, कुम्भेर, खिरैटी, मुगवन, मषवन, मगि-
वन, पिठवन, पीपल, गोखरू, कटेरी, कटाई, काकडाशिगी, भुईआमला, दाख,
जीवन्ती, पुष्करमूल, अगर, हरड, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, आमिया-
हलदी, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची, कुमुदिनी, चं-
दन, विदागीकंद, अडुसेकी जड़, काकोली और काकनासा (कौआठोडी)
प्रत्येक चार तोले, और उत्तम आमले, ५०० लेये, इन सबको एकद्रोण जलमें
पकावे, जब चौथाभाग शेष रहे तब उतारले, पश्चात् इस काढ़ेमेंमे आमलोंको
अलग निकालकर आमलोंकी गुठली निकाल डाले, और काढ़ेको छानकर रख
देवे, फिर ४८ तोले घी और तेलमें इन आमलोंको भूनकर पीस लेवे, तदनन्तर
५० पल मिश्री पूर्वोक्त काथमें मिला और यह आमले मिलाकर पकावे, जब
लेहकी समान होकर शीतल होजाय, तब २४ तोले सहत मिलादेवे, वंशलो-
चन चारपल, पीपल आठ तोले और दालचीनी, इलायची, नागकेशर, इनतीनों-
का चूर्ण ४ तोले मिलादेवे, और सबको कगळीसे एकमें एक कगड़े । यह च्य-
वनप्राश—परमरसायनहै, खांसी और श्वासको विशेषकरके हंरहे । क्षीणक्षत, वृद्ध
और बालकोंके अंगांको बढ़ावे, तथा स्वरक्षय, छातीका रोग, वातरक्त, पियास

मूत्रदोष और वीर्यदोष दूर करैहै । इस अवलेहको सेवनकरनेसे-वृद्ध च्यवन ऋषि फिरसे तरुण हुये थे । यह च्यवनप्राश अवलेह-मेधा, स्मरणशक्ति, कान्ति, आरोग्यता, आयुकी वृद्धि, इन्द्रियोंका बल, स्त्रीप्रसंगमें अत्यन्त आनन्द, जठराग्निकी वृद्धि, और शरीरकी सुन्दरताको उत्पन्नकरैहै । इसको सेवनकरनेसे वृद्धमनुष्य भी तरुण होजातहै ॥ ३४-४७ ॥

अथ छागलाघघृतम् ।

छागमांसतुलांगृह्यसाधयेदुल्बणेऽम्भसि ।

पादशेषेणतेनैवसर्पिःप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ४८ ॥

ऋद्धिर्द्विष्टिश्चमेदेद्वेजीवकर्षभकौतथा ।

काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैःपृथक्पलोन्मितैः ॥ ४९ ॥

सम्यक्सिद्धेचावतार्य्यःसितेतस्मिन्प्रदापयेत् ।

शर्करायाःपलान्यष्टौमधुनःकुडवंक्षिपेत् ॥ ५० ॥

पलंपलंपिबेत्प्रातर्यक्ष्माणंहन्तिदुर्जयम् ।

क्षतक्षयंचकासांश्चपार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ५१ ॥

स्वरक्षयमुरोगंश्वासंहन्यात्सुदारुणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-१२॥ सेर बकरेके मांसको लेकर बत्तीस ३२ सेर जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रह जाय तब वी ६४ तोले, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महा-मेदा, जीवक ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, इन प्रत्येकका कल्क चार २ तोले मिलाकर विधिपूर्वक पकावे, जब भलेप्रकारसे पकजावे तब उताव लेवे, शीतलहोनेपर, ३२ तोले बूरा १६ तोले सहत मिलादेवे । इस घृतको प्रातःकाल चारतोले पानिसे दुर्जय राजयक्ष्मारोग, क्षतक्षय, खाँसी, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरक्षय, छातीकारोग, और दारुणश्वासको दूरकरैहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ वासावलेहः ।

वासकस्यरसप्रस्थेमानिकासितशर्करा ।

पिप्पलीद्विपलंदद्यात्सर्पिषश्चपचेच्छनैः ॥ ५३ ॥

लेहीभूतेततःपश्चाच्छितेशीरपलाष्टकम् ।

दत्त्वावतारयेद्वैद्योमात्रयालेहमुत्तमम् ॥ ५४ ॥

निहन्तिराजयक्ष्माणंकासंश्वासंचदारुणम् ।

पार्श्वशूलंचहृच्छूलंरक्तपित्तंज्वरन्तथा ॥ ५५ ॥

अर्थ—अड्डसेकारस ६४ तोले, सफेदबूरा ३२ तोले, पीपल ८ आठ तोले घी ८ आठ तोले लेवे, फिर सबको मिलाकर धीरे २ पकावे, जब लेहकी समान होकर शीतल होजाय तब ३२ तोले सहत मिलादेवे । यह लेह—राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयकाशूल, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करै है ॥ ५३—५५ ॥

अथ पंचामृतरसः ।

भस्मसूताभ्रलोहानांशिलाजतुविपंसमम् ।

गुडूचीत्रिफलाक्वाथैःसंस्कृतंगुग्गुलुन्तथा ॥ ५६ ॥

मृतनेपालताम्रश्चसूतस्थानेनियोजयेत् ।

एकीकृत्यनियोज्यंतद्विगुञ्जंराजयक्ष्मनुत् ॥ ५७ ॥

पञ्चामृतरसोह्येषअनुपानंचपूर्ववत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकीभस्म, शिलाजीत, गिलोय और त्रिफलाके क्वाथसे शुद्धकिया गुग्गुलु, नेपाल, ताँबेकी भस्म और विष इन सबको समानभाग लेवे, फिर सबको मिलाकर दोरतीभर खावे । इसमें—राजयक्ष्मा-गोग दूर होताहै । इसको पंचामृतरस कहतेहैं ॥ ५६—५८ ॥

अथ क्षयलक्षणम् ।

संकोचःस्कन्धपाश्वर्यानांस्वरभेदोज्वरोभ्रमः ।

वातजेयक्ष्मणिज्ञेयंलक्षणंगायूररूक्षता ॥ ५९ ॥

ज्वरोदाहोऽतिसारश्चरक्तवान्तिश्रमोमहान् ।

वीर्यस्तम्भोऽरतिश्चापिलक्षणंपैत्तिकेक्षये ॥ ६० ॥

गुरुत्वंशिरसश्छर्दिःकासःकण्ठस्यचारुचिः ।

उर्ध्वश्वासश्चविज्ञेयंलक्षणंकफजेक्षये ॥ ६१ ॥

अर्थ—स्कंध और पसलियोंमें संकोच, स्वरभेद, ज्वर, भ्रम और शरीरमें रूक्षता यह सबलक्षण वातजक्षयमें होतेहैं । ज्वर, दाह, अतीसार, रुधिरकी वमन, अत्यन्त श्रम, वीर्यस्तम्भ, और ग्लानि यह सब लक्षण पैत्तिकक्षयमें होतेहैं ।

मस्तकमें भारीपन, वमन, खाँसी, अरुचि, और ऊर्ध्वश्वास यह सब लक्षण कफक्षयमें जानने ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ रत्नगर्भपोटलीरसः ।

रसंवज्रहेमतारंगंधलोहञ्चताम्रकम् ।

तुल्यांशंमरिचंयोज्यंमुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ ६२ ॥

शंखंचपूर्ववद्भागंसप्ताहंचित्रकद्रवैः ।

मर्दयित्वावचूर्ण्यथतेनपूर्य्यावराटिका ॥ ६३ ॥

टंकणंरविदुग्धेनपिष्ट्वातासांमुखंलिपेत् ।

मृद्राण्डेतानिरुद्धाथमहागजपुटेपचेत् ॥ ६४ ॥

आदायचूर्णयेत्सर्वनिर्गुण्ड्याःसप्तभावनाः ।

संशोष्यचूर्णितंसर्ववस्त्रवद्गर्णदोलया ॥ ६५ ॥

अम्लवर्गविधिक्राथेततःसंशोष्यचूर्णयेत् ।

आर्द्रकस्यद्रवैःसप्तचित्रकस्यैकविंशतिः ॥ ६६ ॥

द्रवैर्भाव्यंततःशोष्यंदेयंगुंजाचतुष्टयम् ।

पिप्पलीदशकैःक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥ ६७ ॥

सघृतैर्दापयेद्वाथक्षयरोगनिवृत्तये ।

महारोगाष्टकेचैवज्वरेचैवातिसारके ॥ ६८ ॥

पोटलीरत्नगर्भोऽयंयोगवाहेषुयोजयेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ—पारा, हीरा, सोना, चांदी, गंधक, लोहा, ताँबा, कालीमिरच, मोती, सोनामाखी, मूँगा, शंख यह सब समानभाग लेकर सातदिन चीतेके रसमें खगल करे, पश्चात् कौडियोंमें भरके आकके दूधसे पिसे हुये सुहागेसे कौडियोंके मुख बंदकरदेवे, फिर कौडियोंको मिट्टीके बरतनमें रखके बरतनका मुख बंदकर गजपुटमें धर फूँक देवे, जब अपने आप शीतल होजाय तब उसमेंसे निकाल चूर्णकर सम्हालूके रसमें सात भावनादेवे, फिर सर्वचूर्णको सुखाकर वस्त्रमें बांध दोलायंत्रके द्वारा अम्लवर्गके काथमें पकाकर सुखावे, फिर चूर्णकर अदरखके रसमें सात भावना देवे, तदनन्तर चीतेके रसमें २१ भावना देवे, पश्चात् इसको सुखाकर चूर्णकरे तो रत्नगर्भपोटलीरस सिद्धहो । इसको चाररत्नीभरलेकर १०

पीपल, १९ काली मिरच, सहत अथवा घीमें मिलाकर चाटे तो—क्षयरोग दूर होवे, और अष्ट महारोग (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और संग्रहणी) का हरैहै । ज्वर और अतीसारादिरोग नष्टहोतेहैं । यह रत्न-गर्भपोटलीरस योगवाही योगोंमें प्रयोगकरना योग्य है ॥ ६२-६९ ॥

अथ मृगाङ्गरसः ।

रसभस्मस्वर्णभस्मनिष्कंनिष्कंप्रकल्पयेत् ।
शंखगंधकमुक्तानांद्रौद्रौनिष्कौतुचूर्णयेत् ॥ ७० ॥
मुक्ताभावेवराटीवारसपादंचटंकणम् ।
वह्मचारनालकाथेनमर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥ ७१ ॥
तद्गोलकंविशोष्याथभाण्डेलवणपूरिते ।
पचेद्यामचतुष्कञ्चमृगाङ्गोयंमहारसः ॥ ७२ ॥
रोगराजनिवृत्त्यर्थंचतुर्गुणामितंघृतैः ।
दातव्यंमरिचैःसार्धंपिप्पलीमधुनापिवा ॥ ७३ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म चारमासेभर, सोनेकी भस्म चारमासेभर, शंख, गंधक, मोती प्रत्येक ८ मासे, अगर मोती न मिले तो कौडियोंकी भस्म लेवे, पारेसे चौथाभाग मुहागा लेवे, फिर इन सबको चीतेके काढेमें और कांजीमें दोप्रहर मर्दनकरे, पश्चात् गोला बनाकर धूपमें सूखा नोनसे भरे हुवे बामनमें रख चाग्रप्रहरपर्यंत पकावे तो मृगाङ्गरस तैय्यारहो । इसकीमात्रा ४ रत्तीकीहै । अनुपान—घृत, कालीमिरचोंका चूर्ण, पीपलका चूर्ण और सहतहै । यह मृगाङ्गरस राजयक्ष्मारोगको दूर करैहै ॥ ७०-७३ ॥

अथ अमृतेश्वरोरसः ।

रसलोहामृतासत्वंमधुसर्पिःसमन्वितम् ।
अमृतेश्वरनामायंपडंगक्षयरोगनुत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—पाग, लोहा और गिलोयका सत्त्व इन तीनोंको घृत और मधुके साथ सेवनकरनेसे राजरोग शान्त होताहै ॥ ७४ ॥

अथ शंखेश्वरोरसः ।

शंखनाभिश्चैकनिष्कंचतुर्निष्कंवराटकम् ।
तुर्यञ्चनीलतुत्थंचसवतुल्यञ्चगंधकम् ॥ ७५ ॥

गंधतुल्यंमृतं नागं नागतुल्यंमृतं रसम् ।

टंकणं रसतुल्यं स्यान्मर्द्यपाच्यं मृगां कवत् ॥ ७६ ॥

राजयक्ष्महरः सोऽयं नाम्नाशंखेश्वरो रसः ।

षड्गुञ्जन्तुकणाक्षौद्रैर्लेह्यं वामरिचं घृतैः ॥ ७७ ॥

अर्थ—शंखकीनाभि चारमासे, कौडीकी भस्म १६ मासे नीलाथोथा १६ मासे, सबकी बराबर गंधक, गंधककी बराबर सीसेकी भस्म, सीसेकी भस्मकी बराबर पारेकी भस्म और पारेकी बराबर सुहागा लेवे, फिर इन सबको मृगां-करसकी तरह खरलकर पकावे तो शंखेश्वररस सिद्ध हो । इसकी मात्रा ६ रत्ती-की है । अनुपान—पीपल, सहत, कालीमिरच और घृत है ॥ ७६—७७ ॥

अथ लोकनाथरसः ।

वराटीतुल्यमण्डूरं चूर्णयित्वा दिनं पचेत् ।

चूर्णयेन्मरिचैस्तुल्यं नागवल्याविभावयेत् ॥ ७८ ॥

तत्पात्रे मधुना लेह्यं सघृतं नवनीतकैः ।

निष्कपादं क्षयं हन्ति यामेयामेच भक्षयेत् ॥ ७९ ॥

लोकनाथोरसो ह्येष मण्डलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ८० ॥

अर्थ—कौडी और मंडूरका समानभाग चूर्ण लेकर एकदिन पकावे, फिर बराबर कालीमिरचोंका चूर्ण मिलाकर पानोंके रसमें भावना देवे । इस रसको एकमासे भर लेकर सहतमें, घृतमें अथवा नवनीतमें मिलाकर ४८ दिन-तक चाटनेसे राजयक्ष्मारोग दूर होता है ॥ ७८—८० ॥

अथ स्वल्पमृगांकरसः ।

रसभस्महेमभस्मतुल्यं गुंजाद्रयं पृथक् ।

पूर्ववदनुपानेन मृगांकोऽयं क्षयापहः ॥ ८१ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, और सोनेकी भस्म समानभाग लेवे । इसको दो २ रत्ती-भर मधु, घृत वा नवनीतके साथ खानेसे क्षयरोग दूर होता है ॥ ८१ ॥

अथ लोहामृतः ।

शिलाजतुर्विडंगानि ह्यभयाहेममाक्षिकम् ।

मृतलोहसमं क्षौद्रैर्निष्कं भुक्तं क्षयापहम् ॥ ८२ ॥

अयं लोहामृतो नाम्नासन्निपातं नियच्छति ॥ ८३ ॥

अर्थ—शिलाजीत, बायविडंग, हरड, सोनामाखी, यह सब समान भाग-
लेवे, और सबकी बराबर लोहेकी भस्म लेवे, पश्चात् सबको मिलाकर चार-
मासे सहतके साथ खानेसे क्षयरोग दूर होताहै. और यह लोहामृतरस सन्नि-
पातको दूर करैहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ हरनेत्ररसः ।

टंकणशुद्धगंधंतुसुवर्णमाक्षिकंपृथक् ।

एकंद्वित्रिचतुःपंचक्रमाच्चशुद्धसूतकम् ॥ ८४ ॥

चांगेर्याश्चद्रवैर्मर्द्यदिनैकंगोलकीकृतम् ।

गंधकंताम्रपर्ण्यथगोलकांशंप्रमर्दयेत् ॥ ८५ ॥

गोलकंलेपयेत्तेनततोवस्त्रेणवेष्टयेत् ।

मृगांकपाचयेत्स्थाल्यांवालुकाभिश्चपूरिते ॥ ८६ ॥

उद्धृत्यचूर्णयेच्छृङ्गंहरनेत्रोरसोत्तमः ।

मृगांकवत्क्षयंहन्तितद्वन्मात्रानुसारतः ॥ ८७ ॥

अर्थ—सुहागा एक भाग, शुद्धगंधक दो भाग, सुवर्ण तीन भाग, सोनामाखी
चार भाग और शुद्ध पारा पांच भाग लेकर चांगेरीके रसमें एक दिन खरल-
कर गोला बनावे, पश्चात् इस गोलेको गंधक और मजीठके रसमें खरलकरे,
तदनन्तर गंधकका गोलेके ऊपर लेपकर गोलेको वस्त्रमें बाँधे, फिर वालुका-
यंत्रमें मृगांकरसकी तरह फूंकदेवे, जब स्वयं शीतल होजाय तब निकालकर
वारीक चूर्णकरे तो हरनेत्ररस सिद्ध हो । यह रस—मृगांकरसकी मात्राके अनु-
सार खानेसे क्षयरोगको दूर करैहै ॥ ८४-८७ ॥

अथ कनकमुन्दरः ।

रसभस्मचतुर्थांशंहेमभस्मप्रकल्पयेत् ।

तालकंरसकंतुल्यंमाक्षिकंगंधकंशिला ॥ ८८ ॥

रसमानानिजीतसूतपादंचटंकणम् ।

दिनैकैकक्रमेणैवतत्सर्वमर्दयेद्दृढम् ॥ ८९ ॥

अर्कशीर्षिण्यं चभृंगवासाचलांगली ।

अगस्तिचित्रकंपाठामर्द्यमेपांद्रवैःपृथक् ॥ ९० ॥

द्विगुंजंभक्षयेन्नित्यमनुपानंमृगांकवत् ।

क्षयंहन्तिमहातीव्ररसःकनकसुन्दरः ॥ ९१ ॥

अर्थ—मृतपारा, हरिताल, खपरिया, शोनामाखी, गंधक, मनशिल यह प्रत्येक एक एक भाग, सोनेकीभस्म चौथाभाग, सुहागा चौथाभाग लेवे, फिर इन सबको एकत्र खरलकर क्रमसे एक एक दिन आककेदूध, जयन्तीके रस, भांगराके रसमें, अडूसेके रसमें, करियारीके रसमें, अगथियाके रसमें, चीतेके रसमें और पादुके रसमें अलग २ खरलकरे । इसको दोग्गी भर खावे, ऊपरसे मृगांकरसकी समान अनुपान करे तो महातीव्र क्षयरोग दूर हो इसको कनकसुंदर कहतेहैं ॥ ८८-९१ ॥

अथ नीलकण्ठरसः ।

विपंक्षुद्राउशीरश्चहरिद्रागोक्षुरंमधु ।

कुटजस्यत्वचंचूर्णसमांशंसर्वचूर्णकम् ॥ ९२ ॥

राजयक्ष्महरंखादेद्रसोऽयंनीलकण्ठकः ॥ ९३ ॥

अर्थ—विष, कटेरी, खस, हलदी, गोखुरू, सहत, और कुडेकी छालका चूर्ण इनसबको समान भाग लेकर विधिपूर्वक मिलावे । यह नीलकण्ठरस—राजयक्ष्मा रोगको दूर करे है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अथ वज्रेश्वररसः ।

कर्षखर्परसत्वस्यसमांशेहेमविद्रुमे ।

निक्षिपेच्चूर्णयेत्तद्वत्षण्णनिष्कंशुद्धगंधकम् ॥ ९४ ॥

अंकोलकंगुलीबीजंतुथंतालंचतुश्चतुः ।

मुक्ताप्रवालचूर्णश्चप्रतिनिष्काष्टकंक्षिपेत् ॥ ९५ ॥

मृतलौहस्यनिष्कौद्रौटकणस्याष्टनिष्ककम् ।

द्रौनिष्कौनीलकटुकीवराटीनांचविंशतिः ॥ ९६ ॥

सितानिष्कद्वयंयोज्यंसर्वखल्वेविमर्दयेत् ।

चांगेर्यम्लेनयामैकंजम्बीरम्लैर्दिनद्वयम् ॥ ९७ ॥

रुद्धापुटाष्टकंदेयंदिनमेकंतुषामिना ।

जम्बीरोत्थद्भवेपिपिष्टापिष्टापुटेपचेत् ॥ ९८ ॥

ततो वनोपलेखेव देयं गजपुटं महत् ।

आ. १५ चूर्णयेच्छुष्कं चूर्णाद्धं शुद्धगंधकम् ॥ ९९ ॥

गंधार्द्धमरिचं चूर्णमेकीकृत्य द्विमाषकम् ।

लेहयेन्मधुना सार्द्धं नागवल्लीदलोत्थितम् ॥ १०० ॥

पथ्याशीप्रतियामे स्यादभुक्ते विषवद्भवेत् ।

रसो वज्रेश्वरः ख्यातः क्षयपर्वतभेदकः ॥ १०१ ॥

अर्थ—खपरियाका सत्व दो तोले, सोना एक तोला, मूंगा एक तोला इन तीनोंको लेकर खरलकरे फिर उसमें २४ मासे भर शुद्धगंधक मिलावे पश्चात् अंकोल, हिंगोटके बीज, नीलाथोथा और हरिताल यह प्रत्येक सोलह २ मासे लेवे, मोती और मूंगेका चूर्ण ३२ बत्तीस २ मासे लेवे, लोहेकी भस्म आठ ८ मासे लेवे, सुहागा, ३२ मासे लेवे, नीलकुटकी आठ ८ मासे भर लेवे, कौडीकी भस्म ८० मासे और मिश्री ८ मासे भरलेवे, पश्चात् इन सबको खरलमें डाल कर खरलकरे, फिर चांगेरीके रसमें एकप्रहर खरलकरे, तदनन्तर जम्भीरीनांवूके रसमें दोदिन खरल करे, फिर पात्रमें बंदकर एकदिनमें भुसकी आगसे आठ पुट देवे और प्रतिपुटमें जम्भीरी नांवूके रसमें पीसलेवे, तदनन्तर वनके अरणे उपलोंकी अग्निके द्वारा महागजपुटमें खरलकर फूँक देवे, जब स्वयं शीतल होजाय तब निकालकर बारीक चूर्ण करले, फिर चूर्णसे आधाभाग शुद्धगंधक और चौथाई भाग कालीमिरचोंका चूर्ण मिलावे, इसको दो उड़दोंकी बराबर लेकर सहत और नागरपानके रसमें मिलाकर चाटनेसे—क्षयरोग नाश होताहै, इसपै पथ्यसे रहै, और विना पथ्य यह रस—विषकी समान अपकार करताहै । यह वज्रेश्वर रस—क्षयरूपी जो पर्वतहैं तिनको भेदनेवालाहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अथ भस्मसूत्ररसः ।

भस्मरुतमजक्षीरैः कणानिष्कैः पलैः सह ।

व्योषगंधकक्षौद्रैर्वाभक्षयेद्भक्षयेत्क्षयम् ॥ १०२ ॥

अर्थ—चार मासे भर पारेकी भस्मको लेकर बकरीके दूधके साथ और पीपलके चूर्णके साथ खानेसे तथा त्रिकुटा, गंधक और सहतके साथ भक्षण करनेसे यह रस क्षयरोगको भक्षण करताहै ॥ १०२ ॥

(अथाग्निरसः ।)

वज्रहाटकसूतानां भस्मैर्द्विषट्कमात् ।

त्रिकण्टकरसैर्भाव्यं दिनान्ते तद्विचूर्णयेत् ॥ १०३ ॥

गुंजामात्रं प्रयोक्तव्यं सज्वरे राजयक्ष्मणि ।

स्तुहीमूलं च जम्बीरद्वयैः स्यादनुपानकम् ॥ १०४ ॥

साध्यासाध्यक्षयं हन्ति ह्यनुपानं मृगां कवत् ।

अयमग्निरसं खादे त्रिनिष्करं राजयक्ष्मनुत् ॥ १०५ ॥

अर्थ—हीरेकी भस्म २ भाग, सोनेकी भस्म ३ भाग, पारेकी भस्म ६ भाग ले वे, पश्चात् इन तीनोंको गोखरूके रसमें एकदिन भावना देवे, दिनके अंतमें इसका चूर्ण करले । इसको एक गुंजाभर खावे तो ज्वरयुक्त राजयक्ष्मा रोग दूर होजाय, और ऊपरसे थूहरका दूध और जम्भीरी नींबूका रस पीवे, यह अनुपान है । इसके ऊपर मृगांकी तरह अनुपान करे तो साध्यासाध्य राजयक्ष्मा दूर होवे । इस अग्निरसको १ तोलाभर खानेसे शीघ्रही राजयक्ष्मा दूर होवे ॥ १०३—१०५ ॥

अथ चन्द्रामृतरसः ।

त्रिकटुत्रिफलाचव्यंधान्यं जरिकसैन्धवाः ।

प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीदुग्धेन गोलयेत् ।

रसगंधकलोहानि प्रत्येकं कार्ष्णिकं क्षिपेत् ॥ १०६ ॥

टंकणस्य पलं दत्त्वा मरिचस्य पलार्द्धतः ॥

नवगुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्विषक् ।

प्रातः काले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वा मृतेश्वरीम् ॥ १०७ ॥

एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसशुताम् ।

नीलोत्पलरसेनापिकुलत्थस्य रसेन वा ॥ १०८ ॥

छागीदुग्धेन मण्डेन कैरवस्य रसेन वा ।

निहन्ति विविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥ १०९ ॥

वातश्लेष्मोत्थितं दुष्टं पित्तश्लेष्मभवं चिरम् ।

वातिकं पौत्तिकं चैव गरदोषसमन्वितम् ॥ ११० ॥

सरक्तमथनीरक्तज्वरश्चास्यः प्रवृत्तम् ।

तृड्दाहभ्रमशूलघ्निरुच्यावह्निप्रदीपनी ॥ १११ ॥

बलवर्णकरीवृष्याहीनगुल्मोदरापहा ।

आनाहकृमिपाण्डुघ्नीजीर्णज्वरविनाशिनी ॥ ११२ ॥

इयंचन्द्रामृतानाम्नाचन्द्रनाथेननिर्मिता ।

वासागुडचिकाभाङ्गीमुस्तकंकण्टकारिका ॥ ११३ ॥

भोजनान्तेप्रभोक्तव्यवाटिकावीर्यवृद्धये ॥ ११४ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, जीरा और सेंधानोन यह प्रत्येक तोले तोले भर लेकर बकरीके दूधमें खरलकरे. फिर पारा, गंधक और लोहा प्रत्येक दोदो तोले सुहागा चार तोले और कालीमिरचाँका चूर्ण दो तोले यह सब पूर्वोक्तमें मिलाकर ९ रत्तीभर गोली बनालेवे । प्रातःकालमें पवित्र होकर अमृतेश्वरी देवीका ध्यानधर एक गोली लालकमलके रसमें अथवा नीलकमलके रसमें, वा कुलथीके रसमें, अथवा बकरीके दूधमें वा माडमें मिलाकर, अथवा कमोदिनीके रसमें मिलाकर रोज खावे । इसमें विविधप्रकारकी खांसी-वानमे उत्पन्न हुई खांसी, पित्तसे उत्पन्न हुई खांसी, वातकफसे उत्पन्न हुई खांसी, पित्तक्षेत्र्णसे उत्पन्न हुई खांसी, विषोद्धव खांसी, रुधिरयुक्त खांसी, सूखी खांसी, ज्वर और श्वासयुक्त खांसी, तृषा, दाह, भ्रम आर शूल दूर होताहै, तथा यह रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, बलकारक, वर्णको सुंदरकरनेवाला, वीर्यवर्द्धक, और छिहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, कृमि, पाण्डु, और जीर्णज्वरको दूर करेहै । यह चन्द्रामृतरस श्रीचन्द्रनाथसिद्धने निम्माण कियाहै । अङ्गमा, गिलोय, भारंगी, नागरमोथा, कटेरी इन सबको मिला गोली बनाकर भोजनके अंतमें खानेसे वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ १०६-११४ ॥

अथ कांचनाभ्ररसः ।

कांचनरससिन्दूरमुक्तिकंलौहमभ्रकम् ।

विद्रुममभयातारंकस्तूरीचमनःशिला ॥ ११५ ॥

प्रत्येकंबिन्दुमात्रंचसर्वमर्द्यप्रयत्नतः ।

वारिणावटिकाकार्याद्विगुंज फलमानतः ॥ ११६ ॥

अनुपानंप्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ।

नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ११७ ॥

क्षयंहंतितथाकासं श्लेष्मपित्तहरंतथा ।

प्रमेहान्विंशतिं चैव दोषत्रयसमुत्थितान् ॥ ११८ ॥

अशीतिवातजान् रोगान्नाशयेत्सद्य एव हि ।

बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिंगजाड्यं करोति च ॥ ११९ ॥

रसोऽयं सुश्रुतप्रोक्तो वाजीकरण उत्तमः ।

काञ्चनस्य समाकान्तिर्मदनस्य समं वपुः ॥ १२० ॥

भक्षयेत्प्रातरुत्थाय रसं तु कांचनाभ्रकम् ॥ १२१ ॥

अर्थ—सोना, पारा, सिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूँगा, हरड, चांदी, कस्तूरी और मैनासिल यह सब समान भागले जलमें खरलकर दोदोरत्तीकी गोली बना लेवे । इसको दोषानुसार अनुपानके साथ देवे । यह गोली—सर्वोपद्रवयुक्त नाना-प्रकारके रोगोंको शांत करैहै, तथा क्षय, खाँसी, कफ, पित्त, बीस २० प्रकारके प्रमेह, त्रिदोषोत्पन्न रोग और ८० प्रकारके वातरोगोंको दूर करैहै, बल और वीर्यकी वृद्धिकरै, लिंगकी जडताको उत्पन्न करै, यह रस श्रीसुश्रुताचार्यने कहा है और उत्तम वाजीकरणहै, यह काञ्चनाभ्ररस कांचनकी समान कांतिको देवे और कामदेवकी समान शरीरको करैहै, इसको प्रातःकाल उठकर भक्षण करना चाहिये ॥ ११९—१२१ ॥

अथ राजमृगांकरसः ।

रसभस्मत्रयोभागाभागैकं हेमभस्मकम् ।

मृतताम्रस्य भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥ १२२ ॥

प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।

वरार्दीं पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टंकणम् ॥ १२३ ॥

पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्धा मृद्राण्डे तं निरोधयेत् ।

श्लक्ष्णं गजपुटे पच्य चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ १२४ ॥

वासाराजमृगांकोयं चतुर्गुजं क्षयापहम् ।

पिप्पलीदशकं क्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥ १२५ ॥

सघृतैर्दीपयेद्वाथ वातश्लेष्मभवेक्षये ॥ १२६ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म तीन भाग, सोनेकी भस्म एकभाग, ताँबेकी भस्म एक भाग, मनशिल दोभाग, गंधक दोभाग, हरिताल दोभाग, इनसबका चूर्णकर कौडियोंमें भरदेवे, और कौडियोंका मुख बकरीके दूधमें पीसेहुवे सुहागेसे बंद कर देवे, फिर कौडियोंको मट्टीके वासनमें रख गजपुटमें फूँकदेवे, जब स्वाँग शीतल होजाय तब बारीक चूर्ण करले, तो राजमृगांकरस सिद्धहो । इसको चाररत्ती भर खानेसे क्षयरोग दूर होताहै, दश पीपलके चूर्णमें सहत मिलाकर अथवा उन्नीस कालीभिरचोंके चूर्णमें घी मिलाकर खावे, यह अनुपान है । और यह वातकफोत्पन्न क्षयरोगका क्षयकरै है ॥ १२२॥ १२३॥ १२४॥ १२५॥ १२६॥

अथ श्लेष्मलक्षणम् ।

स्वरभेदः कफः कण्ठशूलकासश्च छर्दनम् ।

वातश्लेष्मभवे चित्तातव्यश्च चिकित्सकैः ॥ १२७ ॥

स्वरभेदो ज्वरो दाहः शूलं छर्दि ररोचकम् ।

वातपित्ताधिके ज्ञेयो राजरोगे महाबले ॥ १२८ ॥

आलस्यं बहुनिद्रा च स्वरूपदाहो ज्वरो भ्रमः ।

वान्तिः शोणितपित्तोत्थापित्तश्लेष्मभवे क्षये ॥ १२९ ॥

वातपित्तकफोत्थैश्च लक्षणैः संहतो यदा ।

सन्निपातान्वितो ज्ञेयः कष्टसाध्यः स्वयं स्मृतः ॥ १३० ॥

अर्थ—वातकफसे उत्पन्न हुवे क्षयरोगमें स्वरभेद, कफ कण्ठशूल, खाँसी और वमन, यह सब लक्षण होतेहैं, स्वरभेद, ज्वर, दाह, शूल, वमन, और अरुचि यह लक्षण वातपित्तसे उत्पन्न हुवे क्षयरोगमें होतेहैं । आलस्य, बहुनिद्रा, स्वरूप दाह, ज्वर, भ्रम, वमन, और रक्तपित्तमिश्रित वमन यह सब लक्षण हों तो पित्त कफसे उत्पन्न हुआ क्षयरोग जानना । सन्निपातसे उत्पन्न हुवे क्षयरोगमें वात, पित्त और कफ इनतीनों दोषोंके मिले हुये लक्षण होतेहैं, और सन्निपातोद्भव क्षयरोग कष्टसाध्य है ॥ १२७—१३० ॥

अथ शंखगर्भपोटलीरसः ।

शंखनाभिर्गिवाक्षिरैः पेषयेन्निष्कपोडशम् ।

तेन मृषाः कर्ताव्यातन्मध्ये भस्मसूतकम् ॥ १३१ ॥

निष्कार्द्धगंधकं त्रीणि चूर्णीन्त्यविनिक्षिपेत् ।

रुद्धातद्वेष्टयेद्वस्त्रे मृत्तिकां लिपयेद्बहिः ॥ १३२ ॥

शोष्यं गजपुटे पच्यान्मूषया सह चूर्णयेत् ।

गुंजैकमनुपानेन क्षयं हन्ति मृगां कवत् ॥ १३३ ॥

पोटली शंखगर्भो यं योजयेद्वातपित्तजित् ॥ १३४ ॥

अर्थ-शंखकी नाभि ६४ मासे लेकर गायके दूधमें पीसके मूषा बनावे, उस मूषामें २ मासे पारेकी भस्म, और १२ मासे गंधक डाल कपरौटी कर धूपमें सुखा गजपुटमें फूँके देवे, जब अपने आप शीतल होजाय तब उसको निकाल ऊपरकी कपरौटी अलगकर मूषासमेत खरलमें गेरकर पीसलेवे । इसकी मात्रा एकरत्तीकी है, अनुपान मृगांकरसकी समान जानना । यह शंखगर्भपोटलीग-राजयक्ष्मारोग, वात और पित्तको दूरकरै है ॥ १३१-१३४ ॥

अथ बृहत्काश्चनाम्रः ।

कांचनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।

विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रश्च रंगकम् ॥ १३५ ॥

कस्तूरिकालवंगं च जातिकोषैलवालुका ।

प्रत्येकं बिन्दुमात्रं च सर्वमर्घ्यं प्रयत्नतः ॥ १३६ ॥

कन्यानीरेतुसंमर्द्यकेशराजरसेन च ।

अजाक्षीरेण संभाव्य प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥ १३७ ॥

चतुर्गुणप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।

अनुपानं प्रदातव्यं यथादोषानुसारतः ॥ १३८ ॥

नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंहरतम् ।

क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ॥ १३९ ॥

प्रमेहान्विशतिश्चैव दोषत्रयसमुत्थितान् ।

सर्वात्रोगान्निहन्त्या शुभास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४० ॥

अर्थ-सोना, रससिंदूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूँगा, वैक्रान्त, चाँदी, तौव और वंग इन सबकी भस्म, कस्तूरी, लौंग, जायफल और एलुआ यह सब सम न भाग लेकर खरल करे, पश्चात् धीकुवारके रस, कुकुरभांगराके रस और वरीके दूधमें तीन २ दिन खरलकर चारः चार रत्तीकी गोली बना लेवे । इस

दोपानुसार अनुपानके साथ देवे । यह रस—मर्बोपद्रवयुक्त नानाप्रकारके रोगोंको दूर करैहै, तथा क्षय, खाँसी, राजयक्ष्मा, श्वास, बीसप्रकारके प्रमेह, त्रिदोषोद्भवोग, और सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करैहै ॥ १३५—१४० ॥

अथ चन्द्रामृतरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं सूततुल्यं च सैन्धवम् ।

शमीश्वेतादलद्रावैर्मदितं गोलकीकृतम् ॥ १४१ ॥

नागवल्लीदलैर्वैष्ट्यं पाच्यं पाताल्यंत्रके ।

दिनान्ते उर्द्ध्वलग्रं तं ग्राह्यं भक्ष्यं त्रिगुंजकम् ॥ १४२ ॥

पर्णखंडेन संयुक्तं मासैकाद्राजयक्ष्मनुत् ।

रसश्चन्द्रामृतो नाम ह्यनुपानं मृगांकवत् ॥ १४३ ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, शुद्धगंधक २ भाग, सैन्धानोन १ भाग इन तीनोंको छीकुर और सफेदकोयलेके पत्तोंके रसमें खरलकर गोला बनालेवे, फिर इसगोलेको पानोंमें वेष्टितकर पाताल्यंत्रमें एकदिन पकावे, जब अपने आप शीतल होजाय तब ऊपरके पात्रमें लगे हुवे द्रव्यको खुरचलेवे । इसको एक महीने पर्यंत पानके टुकड़ोंपै तीन चोटलीभर लगाकर खानेसे राजयक्ष्मारोग दूर होजाताहै, इसको चंद्रामृतरस कहतेहैं, अनुपान मृगांकरसकी समान जानना १४१—१४३ ॥

अथ महामृगाङ्गरसः ।

शुद्धसूतं स्वर्णभस्मजम्बीरैर्मदयेद्दिनम् ।

तयोर्द्विगुणितं ताप्रं त्रिभिस्तुल्यन्तुगंधकम् ।

टंकणगंधकाद्धिश्च सर्वजम्बीरजैर्द्रवैः ॥ १४४ ॥

मर्दयामचतुर्गोलं वस्त्रे बद्धा विपाचयेत् ।

दोलायंत्रे चारनालेयामादुद्धृत्य शोषयेत् ।

ततो मृन्मयभाण्डान्तर्लवणञ्चांगुलद्वयम् ॥ १४५ ॥

उर्द्ध्वार्धः पृष्ठतः कृत्वा गोलकं वस्त्रवेष्टितम् ।

लवणैः पूरयेद्भाण्डे बन्धयित्वा दिनं पचेत् ॥ १४६ ॥

तुल्यं माग्निसिद्धो हिरसो महामृगाङ्गकः ।

अनेनैव प्रकारेण मृगाङ्गरसोऽप्युत्पद्यते ॥ १४७ ॥

राजरोगनिवृत्त्यर्थं देयं सिताघृतन्तुतैः ।

दशभिर्मरिचैः सार्द्धं पिप्पलीमधुनापिवा ॥ १४८ ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग इन दोनोंको लेकर जम्भीरी-नीबूके रसमें एकदिन खरल करे, पश्चात् ताँबा ४ भाग, गंधक ६ भाग, और सुहागा ३ भाग लेवे, फिर इन तीनोंको पूर्वोक्तमें मिलाकर जम्भीरी नीबूके रसमें चारप्रहर पर्यंत खरलकर गोला बनालेवे, पश्चात् गोलेको वस्त्रमें बांधकर काँजीमें दोलायंत्रके द्वारा दो प्रहर पकावे, तदनन्तर उसमेंसे निकाल कर गोलेको सुखालेवे, पश्चात् मट्टीके वासनमें दो अंगुल ऊंचा लवण स्थापितकर उसके ऊपर कपड़ेमें बाँधे हुये गोलेको रख ऊपर नोन भरदेवे, फिर वासनके मुखको बंदकर चूलेपै चढ़ा क्रमसे मन्द, मध्य, और तीक्ष्ण अग्निके द्वारा एक-दिन पकावे तो, महामृगांकरस सिद्धहो । इसी विधिसे और सर्वप्रकारके मृगांकरस बनेतें हैं । इससे रोगराज (राजयक्ष्मा) नष्टहोताहै, अनुपान—१० मित्र, वूरा, घृत, अथवा पीपल और मधु है ॥ १४४-१४८ ॥

अथ यक्ष्मचिकित्सा ।

विभ्रमं श्लेष्मदिग्धांगमतीसारेण पीडितम् ।

शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ १४९ ॥

ऊर्ध्वश्वासोऽतिशुष्काक्षः कांस्यपात्रहतः स्वरः ।

मधुमेही कृशोऽमल्लोही न बुद्धिबलेन्द्रियः ॥ १५० ॥

व्रणांगः शुक्रमेही च क्षयीयाति यमालयम् ।

अथास्यापि प्रकर्तव्या चिकित्सा जीवितावधि ॥ १५१ ॥

अर्थ—विभ्रमहो, कफसे अंग लिप्त होजायँ, अतीसारकी पीडाहो, अंडकोड और उदरमें सूजनहो ऐसा राजयक्ष्मारोगी असाध्य जानना । ऊर्ध्वश्वासहो, न अत्यन्त सूखजायँ, कांसीके बरतनकी समान स्वरहो, मधुमेहहो, कृशता आज य, दुर्बलताहो, बल, बुद्धि और इन्द्रियोंमें हीनता उत्पन्नहो, शरीरमें व्र होजाय और शुक्रमेहहो, ऐसा क्षयरोगी निश्चय मृत्युको प्राप्त होताहै, कि जबतक यह रोगी जीते रहँ तब तक चिकित्सा करे, असाध्य जानकर छोड़ देवे ॥ १४९-१५१ ॥

अथ प्राणत्राणरसः ।

लोहभस्मपलैकन्तुद्विपलंभृगजद्रवात् ।

पलैकं त्रिफलाकाथं सर्वसम्मर्द्यखर्परे ॥ १५२ ॥

लोहाशं माक्षिकं शुद्धं मर्द्यपूर्वादितद्रवैः ।

रुद्धात्रिभिः पुटे पाच्यं द्रवैर्मर्द्यपुनः पुनः ॥ १५३ ॥

मृतं मृतं मृतं नागं निष्कं निष्कं विमिश्रयेत् ।

शुद्धगंधस्य द्वौ निष्कौ वराटीनां चतुष्टयम् ॥ १५४ ॥

एकीकृत्य पुटे पच्यात्पूर्वेणैव विमिश्रयेत् ।

पूर्वोक्तैश्च द्रवैर्मर्द्यपुटे नैकेन पाचयेत् ॥ १५५ ॥

चूर्णयेन्मरिचैः सप्ततुल्यं कणयोर्दश ।

मेलयेच्च पृथङ् निष्कान् प्राणत्राणाह्वयोरसः ॥ १५६ ॥

भक्षयेन्निष्कपादार्द्धमसाध्यं राजयक्ष्मनुत् ।

शोथोदराशो ग्रहणी पांडुगुल्महरश्च यत् ॥ १५७ ॥

अर्थ—लोहेकी भस्म चार तोले, सोनामाखी ४ तोले, भांगगका रस ८ तोले और त्रिफलाका काढा ४ तोले लेवै, इन सबको कढ़ाईमें डालकर खूब घांटे, पश्चात् पात्रमें रख गजपुटमें तीनवार पकावे और प्रतिपुट पूर्वोक्त रसोंमें मर्दन करता जाय, तदनन्तर पारेकी भस्म ४ मासे, सीसेकी भस्म ४ मासे, शुद्धगंधक ८ मासे और कौडीकी भस्म १६ मासे मिलाकर भांगरेके रस और त्रिफलेके काढेमें खरल कर गजपुटमें ढूँकदेवे, पश्चात् इस रसमें कालीमिरचोंका चूर्ण २८ मासे, तूतिया ४० मासे और सुहागा ४० मासे मिलादेवे । इसकी मात्रा तीनगत्तीकी है । यह अमाध्यराजयक्ष्मा रोगको दूर करेहै तथा सूजन, उदररोग, बवाभीर, संग्रहणी, पांडु और गुल्मरोगको दूर करेहै ॥ १५२-१५७ ॥

अथ हेममृगांकरसः ।

मृतं मृतं मृतं हेमशुद्धगंधकटंकणम् ।

प्रत्येकमर्द्धनिष्कं स्यान्मृतशुल्वं द्विनिष्ककम् ॥ १५८ ॥

शंखनिष्कद्वयं चूर्णं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

पूरयेत्पूर्वचूर्णेनपुटयेच्चमृगांकवत् ॥ १५९ ॥

ततश्चाद्र्दकनिर्यासैःसार्द्धरुद्धापुटेपचेत् ।

आदायचूर्णैश्छक्ष्णंद्वात्रिंशन्मरिचैर्युतम् ॥ १६० ॥

चूर्णाच्चतुर्गुणंगंधमेकीकृत्यविचूर्णयेत् ।

पंचमांशंघृतंलेह्यमसाध्यंराजयक्ष्मनुत् ॥ १६१ ॥

शोथोदराशोग्रहणीज्वरगुल्मांश्चनाशयेत् ।

रसोहेममृगांकोऽयं ह्यनुपानंमृगांकवत् ॥ १६२ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म २ मासे, सोनेकीभस्म २ मासे, शुद्ध गंधक २ मासे सुहागा २ मासे तांबेकीभस्म ८ मासे और शंखका चूर्ण ८ मासे लेवे, फिर इन सबको मिलाकर मृगांकरसकी नाई गजपुटमें पकावे, पश्चात् अदरखके रसमें भावना देकर गजपुटमें फूंक देवे, जब स्वयं शीतल होजाय तब निकालकर बारीक चूर्ण करले, फिर इस चूर्णमें ३२ काली मिरचोंका चूर्ण, चौगुना गंधक मिलादेवे । इसमें पांचभाग घृत मिलाकर चाटनेसे—असाध्य राजयक्ष्मा रोग, सूजन, उदर, बवासीर, संग्रहणी, ज्वर और गुल्मरोगको दूर करताहै । इसमें अनुपान मृगांकरसकी समान जानना ॥ १५८॥ १५९॥ १६०॥ १६१॥ ॥ १६२ ॥

अथ कालान्तकरसः ।

कार्य्यालोहमयीमूपाऊर्द्धतोद्वादशांगुला ।

मर्दितंस्वर्णवाराहीगृहकन्यारसैःसमम् ॥ १६३ ॥

लशुनैर्याममात्रश्चपिण्डंकृतवानिवेशयेत् ।

पूर्वोक्तायाश्चमूपायांसूतपादश्चगंधकम् ॥ १६४ ॥

निर्गुण्डीरससंपिष्टंमूपायांतंविनिक्षिपेत् ।

आच्छाद्यलौहचक्रेणवक्रयंत्रेणजारयेत् ॥ १६५ ॥

एवमष्टपुटेजीर्णसमुद्धृत्यविचूर्णयेत् ।

पंचगुञ्जामितंखादेदनुपानंमृगांकवत् ॥ १६६ ॥

देयःकालान्तकोनाम्नारसोऽयंराजयक्ष्मनुत् ।

अर्थ—बारह अंगुल ऊँची लोहेकी मूपा बनाने, उसमें स्वर्ण और वाराही कन्दको धीकुवार और लसुनके रसमें एक एक प्रहर मर्दन कर गोला बनाने

अर्थ—वृतसे पकाया हुआ लवा, तीतर और खरगोशका मांस, तथा मिरच और जीरेसे संस्कृत किया हुआ पथ्य राजगृक्षमारोगीको हितकारी है । लवण, हींग, तक्र, दाधि, सर्वविदाही द्रव्य, और गृगलका रस यह सब राजयक्ष्मारोगीको अपथ्य है । वक्रीका दूध अथवा दही इनको यथोचित विचारकर सेवन करे । गिलोयके रसमें सहत डाल पीनेसे राजरोगमें उत्पन्न हुआ वमन दूर होता है । खम, तगर, सांठ, शीतलचीनी, चन्दन, लालचन्दन, लौंग, पीपलामूल पीपल, इलायची, नागकेशर, नागरमोथा, आमला, कपूर, वंशलोचन तेजपात, और काली अगर, यह सब समान भाग और मिश्री आठभाग लेंव, सबको एकत्र पीस चूर्ण बनावे । यह चूर्ण रक्तवान्ति और सन्तापको दूर करे—

॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

अथ रास्नादिद्विहम् ।

रास्नाकर्पूरतालीशभेकपर्णीशिलाह्वयैः ।

त्रिकत्रयसमायुक्तैर्लोहोयक्ष्मान्तकोमतः ॥ १७३ ॥

सर्वोपद्रवसंयुक्तमपिशम्भोःसुदुर्जयम् ।

हन्तिकासंस्वराघातंक्षयकासंक्षतक्षयम् ॥ १७४ ॥

बलवर्णाग्निपुष्टीनांवर्द्धनोदोषनाशनः ॥ १७५ ॥

त्रिकत्रयंत्रिकटुत्रिफलाचित्रकमुस्ताविडंगंसर्वचूर्णसमलौहम् ।

अर्थ-रायसन, कपूर, तालीशपत्र, मण्डूकपर्णी, मैन्शिल, त्रिकुटा, त्रिफला, चीता, वायविडंग और नागरमोथा, यह सब समान भाग और सबकी बराबर लोहा मिलवे । इस लोहेको सेवन करनेसे सर्व उपद्रवयुक्त, दुर्जयरोग, खाँसी, स्वराघात, क्षय, कास और क्षतक्षयको क्षय करे है । बल, वर्ण, अग्नि और पुष्टिको बढ़ानेवाला और दोषनाशक है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

अथ विन्ध्यवासियोगलौहम् ।

व्योषंशतावरीत्रीणिफलानिद्वेफलेतथा ।

सर्वमेहहरोयोगःसोऽयंलोहरुजान्वितः ॥ १७६ ॥

एषवक्षःक्षतंहन्तिकण्ठजांविविधारुजाम् ।

राजयक्ष्माणमत्युग्रंबाहुस्तम्भार्दितन्तथा ॥ १७७ ॥

सर्वचूर्णसमलौहम् ।

अर्थ-त्रिकुटा, शतावरी, त्रिफला, जायफल, कायफल, यह सब समानभाग लेवे, और सबकी समान लोहेका चूर्ण मिलवे, । यह लोह-छातीका क्षत, अनेक प्रकारके कंठके रोग, अत्युग्रराजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ और अर्दितरोग विनष्ट करता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

अथ राजरोगहल्लौहम् ।

मधुताप्यविडंगाश्मजतुलोहघृताभयाः ।

घ्नन्तियक्ष्माणमत्युग्रंसेव्यंवानाहिताशिना ॥ १७८ ॥

अत्रमधुघृताभ्यालिहःश्रेष्ठत्वात्सर्वचूर्णसमलौहश्च ।

अर्थ—सहत, सोनामाखी, बायविडंग, शिलाजीत, घृत और हरड़, यह सब समान भाग लेवै और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण मिलावै । इसको सेवनकरनेसे अत्यन्त उग्र राजरोग शान्त होताहै ॥ १७८ ॥

अथ शिलाजत्वादिलौहम् ।

शिलाजतुक्षौद्रविडंगसर्पिल्लहोभिषक्सूतकताप्यभक्षः ।

आपूर्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपंचरात्रेण यथाशशांकः ॥ १७९ ॥

अर्थ—शिलाजीत, बायविडंग, पारा और सोनामाखी, इन सबको समान भाग लेकर चूर्णकर सहत और घृतके साथ चाटनेसे आठ दिनमें राजयक्ष्मा रोग नष्ट होकर शरीर चन्द्रमाकी समान दीप्तिमान् होजाता है ॥ १७९ ॥

अथ महान्भवटिका ।

अम्रकं टितं ताम्रलोहं गंधकपारदम् ।

कुलटाटंकणक्षारं त्रिफलाचपलंपलम् ॥ १८० ॥

गरलञ्च तथा माषचतुष्कंचैव चूर्णितम् ।

दृढपाषाणपात्रे च भूयोभूयः सुचूर्णितम् ॥ १८१ ॥

तत्सर्वं भावयेदेषां सैः प्रत्येकशः पलैः ।

देवराजाशनाख्यस्य केशराजाख्यकस्य च ॥ १८२ ॥

सोमराजस्य भृंगाख्यराजस्य त्रिफलस्य च ।

पारिभद्राग्निमन्थस्य वृद्धदारकतुम्बुरौ ॥ १८३ ॥

मण्डूकपर्णीनिर्गुण्डीपूतिकोन्मत्तकस्य च ।

ग्रीष्मसुन्दरकन्याट् रूपकस्य क्रमेण तु ॥ १८४ ॥

रसश्च ताम्रपर्ण्याश्च दलोत्थैर्भाषितं भिषक् ।

द्रवे किंचित्स्थितं चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ॥ १८५ ॥

ततश्चैव वर्तुल्याच्चतुस्त्रीण्येकरत्तिका ।

ज्वरे चैवातिसारे च कासे श्वासे क्षयज्वरे ॥ १८६ ॥

सन्निपातज्वरे चैव विविधे विषमज्वरे ।

क्षयरोगेषु सर्वेषु क्षीणशुक्लेषु यक्ष्मणि ॥ १८७ ॥

ग्रहण्यांचिरजातायाः तिकायांविशेषतः ।
 शोथेशूलेतथासाध्येस्थविरेचाममारुते ॥ १८८ ॥
 मन्त्रानलेबलेचैवसकलेश्लेष्मजेगदे ।
 पीनसेऽपीनसेचैवपक्वेऽपक्वेचशस्यते ॥ १८९ ॥
 वातश्लेष्मणिवातेचविविधेद्वन्द्वजेतथा ।
 आमदेऽप्राग्तेऽपित्तेशस्तंबलावृतेऽपिवा ॥ १९० ॥
 अष्टधैवोदरेचैवकोष्ठरोगेप्रशस्यते ।
 अजीर्णकर्णरोगेचकृशस्थौल्येऽपिदेहिनि ॥ १९१ ॥
 अयंसर्वगदोच्छेदीरसोहिपरिकीर्तितः ।
 रसायनवरश्रेष्ठंवाजीकरणमुत्तमम् ॥ १९२ ॥
 वृष्यमधुरमाहारंप्रयोगेपरिकल्पयेत् ।
 महाभ्रकमिदंब्रह्मकमनीयकमीरितम् ॥ १९३ ॥
 यइहसकलकालंकल्पकामःकरोति ।
 सर्षपपरिमाणैर्नित्यमभ्यासयोगैः ।
 सखलुविगतरोगेभोगमुक्तोऽग्नियुक्तो
 भवतिपलितहीनःसप्तकल्पान्तजीवी ॥ १९४ ॥

अर्थ—पुटित अभ्रक, ताँबा, लोहा, गंधक, पारा मैनशिल, सुहागा और
 त्रिफला, यह प्रत्येक चार चार तोले और विषका चूर्ण डार मासेभर ले, पीछे
 इन सबको भाँग, कुकुरभांगरा, बापची, भांगरा, त्रिफला, पारिभद्र, अग्निम-
 न्थ, विधारा, तुम्बुरु, मण्डूकपर्णी, निर्गुण्डी, करंज, धनूरा, ग्रीष्मसुन्दर, धी-
 कुआर, अडूसा और मैजीठ इनके चार चार तोले रसमें अलग अलग भावन
 देकर चारतोले कालीमिरचोंका चूर्ण मिलावै, एक, दो, तीन, वा चार चा-
 रत्तीकी गोली बनावै, इन गोलियोंको यथायोग्य मात्राके अनुसार भक्षण करे
 यह गोली—ज्वर, अतिसार, खाँसी, श्वास, ज्वरयुक्तक्षय, सन्निपातज्वर, नाना
 प्रकारके विषमज्वर, सर्वप्रकारके क्षयरोग, क्षीणशुक्र, यक्ष्मारोग, बहुतदिनोंके
 संग्रहणी, प्रसूतिकारोग, सूजन, शूल, पुरानाआमवात रोग, मन्दाग्नि, बलक्षर
 सर्वप्रकारके कफरोग, पीनसरोग, अपीनस, पक्वपीनस, अपक्वपीनस, वातकफ

वात, द्वन्द्वज्वर, आमदोष, पित्तरोग, आठप्रकारके उदररोग, अजीर्ण, कर्ण-
रोग, कृशता और स्थूलताको दूर करैहै । यह रस सर्वरोगनाशक, सर्वरसायनोंमें
श्रेष्ठ, उत्तम वाजीकरणहै । इसके ऊपर वृष्य और मधुर भोजनकरना चाहिये ।
इसको सरसोंकी समान सदा सेवनकरनेसे मनुष्य कल्पपर्यन्त जीते रहतेहैं ।
तथा इसके सेवनसे सफेद बाल काले होजातेहैं ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥
॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥
॥ १९१ ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

अथ चन्दनाद्यं तैलम् ।

चन्दनाम्बुनखंवाप्यंयष्टीशैलेयपद्मकम् ।

मञ्जिष्ठासरलंदारुचव्यैलापूतिकेशरम् ॥ १९५ ॥

पत्रंतैलसुरामांसीकक्रोलंनिताम्बुदम् ।

हरिद्रेशारिवेतिक्तालवंगागुरुकुंकुमम् ॥ १९६ ॥

त्वग्नेणुनलिकाचैभिस्तैलमस्तुचतुर्गुणम् ।

लाक्षारससमंसिद्धंग्रहग्रंवलवर्णकृत् ॥ १९७ ॥

अपस्मारज्वरोन्मादेहृद्याऽलक्ष्मीविनाशनम् ।

आयुष्पुष्टिकरंचैववशीकरणमुत्तमम् ॥ १९८ ॥

अर्थ—चन्दन, सुगन्धवाला, नख, कूट, मुलैठी, शैलेय (भूरिछरीला) पद्माख,
मंजीठ, सरल, देवदारु, इलायची, चव्य, रोहिपतृण, नागकेशर, शिलारस, कपूरक-
चगी, शीतलचीनी, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, हलदी, दारुहलदी, माग्वि, श्यामा-
लता, कुटकी, लौंग, अगर, केशर दालचीनी, रेणुका और नलिका, इन सबका
कल्क सेरभर, तिलकातेल चारसेर, लाखका रस चारसेर और दहीका पानी
सोलहसेर लेवे, पश्चात् सबको विधिपूर्वक मिलाकर तेलको सिद्धकर । यह तेल
ग्रहनाशक, बलकारक, वर्णको सुन्दर करनेवाला, तथा अपस्मार (मृगी) ज्वर,
उन्माद और अलक्ष्मी विनाशकहै, हृदयको हितकारी, आयुवर्द्धक, पुष्टिकारक
और उत्तम वशीकरणहै ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

अथ महच्चन्दनाद्यं तैलम् ।

चन्दनारुतालीशनखमञ्जिष्ठपद्मकाः ।

मुस्तकंचशठीलाक्षाहरिद्रेरक्तचन्दनम् ॥ १९९ ॥

एषांप्रतिपलैश्चूर्णैस्तैलार्द्धपात्रकेपचेत् ।

भार्ङ्गीवासाकण्टकारीवात्यालकगुडूचिका ॥ २०० ॥

एषांपलशतकाथेसमभागेजडीकृते ।

पक्त्वातैलंप्रदातव्यंयक्ष्मरोगविनाशनम् ॥ २०१ ॥

कासघ्नंज्वरदोषघ्नंवलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।

पापाऽलक्ष्मीप्रशमनंग्रहदोषनिवारणम् ॥ २०२ ॥

श्रीमद्गहननाथेननिर्मितंविश्वसम्पदि ॥ २०३ ॥

इतिराजयक्ष्मक्षतक्षीणाध्यायः ।

अर्थ—चन्दन, अगर, तालीशपत्र, नख, मजीठ, पन्नाख, नागरमोथा, कचूर, लाख, हलदी, दारुहलदी, लालचन्दन, यह प्रत्येक चार चार तोले, निलका तेल ९६ तोले लेवे, भारंगी, वाँसा, कटेरी, खिरैदी और गिलोय इनका काथ ४०० चारसौ तोले लेवे, पश्चात् काथमें पूर्वोक्त औषधियें और तेल डालकर पकावे, जब सिद्ध होजाय तो उतारले । यह तेल—राजयक्ष्मारोग, खाँसी, ज्वर, पाप, अलक्ष्मी, और ज्वरको दूर करेहै, बलको बढ़ानेवाला, वर्णको सुन्दर करनेवाला, अग्निवर्द्धक है, यह तेल श्रीमान् गहननाथने संसारके उपकारार्थ निर्माण कियाहै ॥ १९९ ॥ २०० ॥ २०१ ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

इतिराजयक्ष्मक्षतक्षीणाधिकारः समाप्तः ।

कासाच्छ्वासात्क्षयच्छर्दिस्वरभेदादयोगदाः ।

भवन्त्युपेक्षयायस्मात्तस्मात्तत्त्वरयाजयेत् ॥ १ ॥

केवलानिलजंकासंस्नेहैर्वासमुपाचरेत् ।

लेहैर्यूषैस्तथाभ्यंगैःस्नेहसेकावगाहनैः ॥ २ ॥

वस्तिभिरूर्ध्वविड्घातंसपित्तंचोर्ध्वभक्तिकैः ।

घृतैःक्षीरैश्चसकलंजयेत्स्नेहविरेचनम् ॥ ३ ॥

वास्तुकोवायसीशाकंमूलकंसुनिषण्णकम् ।

स्नेहास्तैलादयोभक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ ४ ॥

दध्यारनालाम्लफलप्रसन्नापानमेवच ।

शस्यतेवातकासेषुस्वाद्वम्ललवणानिच ॥ ५ ॥

ग्राम्यान्पुदकैःशालियवगोधूमयष्टिकान् ।

रसैर्माषात्मगुप्तानांयूषैर्वाभोजयेद्धितान् ॥ ६ ॥

कण्टकारिरसेसर्पिर्बुधोयूपसुसंस्कृतम् ।

सगौरामलकःसाम्लःपंचकासान्व्यपोहति ॥ ७ ॥

सगौरामलकःपरिणताम्लकः ।

पंचमूलीकृतःक्वाथःपिप्पलीचूर्णसंयुतः ।

रसार्थमश्नुतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ८ ॥

पंचमूलीस्वरूपा ।

शठीशृंगीकणाभार्ङ्गीगुडवारिदयासकैः ।

सतैर्लैर्वातकासघ्नोलेहोऽयमपराजितः ॥ ९ ॥

गुडतैलाभ्यालेहः ।

चूर्णिताविश्वदुःस्पर्शाशठीद्राक्षासितोपला ।

लिह्यात्कर्कटशृंगचकासेतैलेनवातजे ॥ १० ॥

भार्ङ्गीद्राक्षाशठीशृंगीपिप्पलीविश्वभेषजैः ।

गुडतैलयुतोलेहोहितोमारुतकासिनाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—खाँसी और श्वासके होनेसे क्षय, वमन, स्वरभेदादिरोग, उत्पन्न होतेहैं, इसकारण खाँसी और श्वासरोगकी शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये । केवल वातसे उत्पन्न हुई खाँसीमें स्नेहद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । अवलेह, यूप, अभ्यंग, स्नेह, अवगाहन, वस्ति और उर्ध्वभक्तिके द्वारा मलवद्ध पित्तज खाँसीकी और घृत, क्षीर तथा स्नेहके विरेचनद्वारा सर्वप्रकारकी खाँसीकी चिकित्सा करनी चाहिये । बथुआ, मकोय, मूली, शिरिआरीका शाक, तैलादिस्नेह, दूध, ईखकारस, गुडके पदार्थ, दही, काँजी, अम्ल फल, प्रसन्नामदिरा, स्वादिष्ठ, अम्ल और नमकीन पदार्थ, यह सब वातकी खाँसीमें हितकारीहैं । ग्रामके जीव, अनूपके जीव और जलके जीव, इनमक्का मांस, शालिधानके चावल, जौ, गेहूँ, साठीधानके चावल, उड़द और काँछके यूपके साथ भोजनके पदार्थ सेवन करें । कटेरीका रस और घृतकेद्वारा संस्कृत किया हुआ आमलेका

यूष अम्लरसमें भिजोकर पीनेसे वातज खाँसी दूर होती है । लघुपंचमूलके काथमें पीपलका चूरन डालकर पीनेसे वातज खाँसी नष्ट होती है । कचूर, काकडाशिगी, पीपल, भारंगी, नागरमोथा, और जवासा इनके चूर्णमें गुड़ और तेल मिलाकर बनायाहुआ अवलेह चाटनेसे वातकी खाँसी शान्त होती है । सोंठ, गोखरू, कचूर, दाख, मिश्री और काकडाशिगी, इनका चूर्ण तेलमें मिलाकर चाटनेसे—वातज खाँसी दूर होती है । भारंगी, दाख, काकडाशिगी, कचूर, पीपल, और सोंठ, इनके चूरनमें गुड़ और तेल मिलाकर चाटनेसे वातकी खाँसी नष्ट होती है ॥ १-११ ॥

अथ पित्तकासोपायः ।

पित्तकासेतनुकफेवमनसर्पिषाहितम् ।

तथादमनकाश्मर्यमधुकक्काथजैर्द्रवैः ॥ १२ ॥

यष्ट्याह्वफलकह्वैर्वाविदारीशुरसैर्युतैः ॥ १३ ॥

सर्पिषावमनद्रव्ययुक्तेन ।

द्राक्षामलकखर्जूरपिप्पलीमरिचान्वितम् ।

पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ १४ ॥

खर्जूरपिप्पलीद्राक्षसितालाजाःसर्माशिकाः ।

मधुसर्पिष्युतोलेहःपित्तकासहरःपरः ॥ १५ ॥

अर्थ—किंचित् कफयुक्त पित्तकी खाँसीमें घृत मिलाकर वमन कराना हितकारी है, तथा मैनफल, कुम्भेर, और महुआ इनके काढ़ेमें, अथवा मुलेठीके कल्कमें वा बिदारीकन्द और ईखके रसमें घृत मिलाकर वमन कराना चाहिये । दाख, आमला, खजूर, पीपल और कालीमिरच. इनके चूर्णमें सहत और घी मिलाकर चाटे । खजूर, पीपल, दाख, मिश्री और खिलै, यह सब समानभाग ले सहत और घी मिलाकर चाटनेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ कफकासोपायः ।

लिनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनम् ।

यवात्रैः कटुहृक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्यपाचरेत् ॥ १६ ॥

पिप्पलीक्षारकैर्यूषैः कौलत्थैर्मूलकस्य च ।

लघून्यन्नानि भुञ्जीतरसैर्वा कटुकान्वितैः ॥ १७ ॥

कट्फलं पौष्करं भार्ङ्गी विश्वपिप्पलिसाधितम् ।

पिबेत्काथेकफोद्रेकेकासेश्वासेगलग्रहे ॥ १८ ॥

स्वरसंशृंगवेरस्यमाक्षिकेणसमन्वितम् ।

पाययेच्छ्वासकासघ्नप्रतिश्यायकफापहम् ॥ १९ ॥

पार्श्वशूलज्वरेकासेश्वासेश्लेष्मसमुद्रवे ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ २० ॥

तैलयुक्तञ्चपिप्पल्याः कल्कार्थं ससितोत्पलम् ।

पिबेद्वाकफकासघ्नकुलत्थसलिलाशुतम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जो बलवान् मनुष्यको कफकी खाँसी हो तो वमन करावे, तथा यवान्, कटु, रुक्ष, और कफनाशकद्रव्य सेवन करावे । कफकी खाँसीमें पिप्पलीका क्षार, कुलथीका घृत, मूलीकाघृत, लघु अन्न और मरिचादियुक्त मांसरस हितकारी है । कायफल, पोहकरमूल, भांगी, मोंठ, और पीपल, इनका काढ़ा बनाकर पीनेमें—कफज खाँसी, श्वास और गलग्रहदूर होता है । अदरखके रसमें महत मिलाकर पीनेसे—श्वास, खाँसी प्रतिश्याय और कफका नाश होता है । दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेमें—पार्श्वशूल ज्वर और कफसे उत्पन्न हुआ काम और श्वासरोग नष्ट होता है । पीपलका कल्क, मिश्री और कमल, इनको तेलमें पीसकर खानेमें अथवा कुलथीके काथमें मिलाकर पीनेमें कफकी खाँसी शान्त होती है ॥ १८—२१ ॥

अथ कट्फलादिकाथः ।

कट्फलं च तथा भार्ङ्गी सुस्तं धान्यं वचाभया ।

शृंगीर्पटकं शुण्ठी सुराह्वञ्जले शृतम् ॥ २२ ॥

मधुहिङ्गयुतं पेयं कासे वातकफात्मके ।

कण्ठरोगे मुखेशूलेश्वासहिक्काज्वरेषु च ॥ २३ ॥

अर्थ—कायफल, भांगी, नागरमोथा, धनियाँ, वच. काकड़ाशिगी, पित्त-पापडा, मोंठ, और देवदारु, इनके काढ़ेमें महत और हींग मिलाकर पीनेसे—खाँसी, वातज, कफज, कण्ठरोग, मुखरोग, शूल, श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ सर्वकासोपायः ।

कण्टकारिकृतःक्वाथःसकृष्णःसर्वकासहा ।
 तित्तिडीपत्रजःक्वाथोहिंणुसैन्धवसंयुतः ॥ २४ ॥
 दुष्टकासंजयेदाशुघनवृन्दमिवानिलः ।
 विभीतकंघृताभ्यक्तंगोशकृत्परिवेष्टितम् ॥ २५ ॥
 स्विन्नमग्नौहरेत्कासंध्रुवमास्यविधारितम् ।
 वासकस्वरसःपेयोमधुयुक्तोहिताशिना ॥ २६ ॥
 पित्तश्लेष्मकृतेकासेरक्तपित्तेविशेषतः ।
 कासेचक्षतजेचान्यैर्जीवनीयैश्चबृंहणैः ॥ २७ ॥
 शमनंपित्तकासोक्तैरन्यैश्चमधुरौषधैः ।
 वातानुबन्धेवातघ्नैस्तेनस्वाभ्यंजनेहितम् ॥ २८ ॥
 मंजिष्ठांजनमूर्वाग्निपाठाकृष्णानिशाथुतः ।
 क्षतक्षयजकासघ्नलीढंचमधुनासह ॥ २९ ॥
 मधुकंपिप्पलीद्राक्षालाक्षाशृंगीशतावरी ।
 द्विगुणाचतुगाक्षीरीसितासर्वैश्चतुर्गुणा ॥ ३० ॥
 लिह्यात्तमधुसर्पिर्भ्यांशतकासनिवृत्तये ।
 पिप्पलीपद्मकंलाक्षासुपक्वंबृहतीफलम् ॥ ३१ ॥
 घृतक्षौद्रयुतोलेपःक्षयकासनिबर्हणः ।
 सन्निपातभवोद्द्वेषक्षयकासःसुदारुणः ॥ ३२ ॥
 सन्निपातहितंतस्मात्कार्यमत्रचिकित्सितम् ।
 कुनटीसैन्धवव्योषविडंगामयहिंणुभिः ॥ ३३ ॥
 लेहःसाज्यमधुःकासश्वासहिक्कानिबर्हणः ।
 वचाहरिद्रासिन्धूत्थविभीतककणारजः ॥ ३४ ॥
 पुटेबद्धामुखेक्षितंकासश्वासापहंनिशि ॥ ३५ ॥

अर्थ—कटेरीके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्वप्रकारकी खाँसी दूर होती है । इमलीके पत्तोंके काथमें हींग और सैंधानोनका चूर्ण डालकर पीनेसे दुष्ट खाँसी शीघ्र नष्ट होती है, जैसे पवनसे बादलोंका समूह नष्ट होता है । बहेडेकी घीमें भिजोकर पश्चात् गोबरसे लपेट धूपमें सुखा आगमें पकाकर मुखमें रखनेसे खाँसी दूर होजाती है अड्डेके रसमें सहत डालकर पीवै तो पित्तकफसे उत्पन्न हुई खाँसी और रक्तपित्त रोग दूरहो । काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा महामेदा, जीवन्ती और मुलैठी इन औषधियोंको सेवन करना तथा पित्तजकासनिवारक औषधियोंको सेवन करना और बृंहण तथा मधुरद्रव्योंको सेवनकरना चाहिये । वातकी खाँसीमें वातनाशक द्रव्योंका सेवनकरना और तैलादिका मालिस करना हितकारी है । मजीठ, रसोत, मूर्वा, चीता, पाढ, पीपल और हलदी इनके चूर्णमें सहत मिलाकर चाटनेसे क्षतक्षयज खाँसी दूर होती है । मुलैठी, दाख, पीपल, लाख, काकडाशिगी, और शतावर, यह प्रत्येक एक एक भाग, वंशलोचन बारह भाग और मिश्री सबमे चाँगुनी लेवे, पश्चात् इन सबको बारीक पीस सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे क्षतकी खाँसी दूर होती है । पीपल, पन्नाख, लाख और पका हुआ कटाईका फल, इनके चूर्णमें सहत और घृत मिलाकर चाटै तो क्षयकी खाँसी दूर होवे । सन्निपातसे उत्पन्न हुई क्षयकी खाँसीमें सन्निपातनाशक क्रियाका प्रयोग करना चाहिये । मनशिल, सैंधानोन, त्रिकुटा, बायविडंग, कूठ और हींग इनके चूर्णमें घी और सहत मिलाकर चाटनेसे खाँसी, श्वास और हिकारोग दूर होता है । वच, हलदी, सैंधानोन, बहेडा और पीपल, इन सबका चूर्ण एकत्रकर कपडेकी पोटलीमें बांध रात्रिके विषे मुखमें रखवै तो खाँसी और श्वास दूर होजाय ॥ २४-३५ ॥

अथ मरिचाद्यं चूर्णम् ।

कर्षःकर्षार्द्धमथोपलंपलद्वयंतथार्द्धकर्षश्च ।

मरिचस्यचपिप्पलीनांदाडिमगुडयावशूकानाम् ॥३६॥

सर्वौषधैरसाध्यारेकासावेद्यविवर्जिताः ।

अपिपूयंर्द्धयत्तातिषामिदमौषधंपथ्यम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—कालीमिरच दो तोले, पीपल एक तोला, अनारकी छाल चार तोले, गुड आठतोले, और जवाखार एकतोले लेवे, सबको पीसकर एकत्र चूर्ण करले

जो कासरोग अनेक प्रकारकी औषधियोंके सेवन करनेसे शान्त न हुआ होय तथा जिनको वैद्य असाध्य जानकर छोड़ बैठेहों वह कासरोग इसचूर्णसे निःसन्देह नष्ट होजाताहै और यह चूर्ण राधयुक्त वमनको दूर करैहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

लवंगजातीफलपिप्पलीनां

भागान्प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम् ।

पलार्द्धमेकंमरिचस्यदद्या-

त्पलानिचत्वारिमहौषधस्य ॥ ३८ ॥

सितासमंचूर्णमिदंप्रसह्यरोगानिमानाशुबलान्निहन्त्यात् ।

कासज्वरारोचकमेहगुल्माञ्छासाम्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ३९॥

अर्थ-लौंग, जायफल, और पीपल, यह प्रत्येक एक एक तोला, कालीमिरच दो तोले, सोंठ सोलह तोले और सबकी बराबर मिश्री लेवै, पश्चात् सबको पीसकर बारीक चूर्ण करले। इस चूर्णको सेवन करनेसे-खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मन्दाग्नि और संग्रहणीरोग दूर होतीहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ हरीतक्यादिमोदकः ।

हरीतकीकणाशुण्ठीमरिचंगुडसंयुतम् ।

कासघ्नोमोदकःप्रोक्तस्तृष्णारोचकनाशनः ॥ ४० ॥

अर्थ-हरड, पीपल, सोंठ, कालीमिरच और गुड, इनसबको एकत्रकर मोदक बनाके खानेसे खाँसी, तृषा और अरुचि दूर होतीहै ॥ ४० ॥

अथ हरीतक्यादिगुटिका ।

हरीतकीनागमुस्तचूर्णगुडेनतुल्यंगुटिकाविधेया ।

निवारयत्यास्यविधारितेयंश्वासंप्रवृद्धंप्रबलञ्चकासम् ४१

अर्थ-हरड, सोंठ, नागरमोथा, यह प्रत्येक एकएक भाग और गुड़ तीन भाग लेवै, फिर सबको मिलाकर गोली बनावै। इन गोलियोंको खानेसे बढ़ा-हुआ श्वास और प्रबल खाँसी दूर होतीहै ॥ ४१ ॥

अथ व्योषान्तिकागुटिका ।

तालीशवद्विदीप्यकच विकाम्लवेतसव्योषैः ।

तुल्यैस्त्रिसुगन्धियुतैर्गुडेनगुटिकाप्रकर्तव्या ॥ ४२ ॥

कासश्वासारोचकपीनसयकृतकंठवाङ्निरोधेषु ।

ग्रहणीगुदोद्भवेषुगुटिकाव्योषान्तिकानाम् ॥ ४३ ॥

सर्वचूर्णस्यचतुर्थांशं त्रिसुगंधिचूर्णम् ।

अर्थ—तालीशपत्र, चीता, अजवायन, चव्य, अमलवेत और त्रिकुटा, यह सब समानभागले, और सबसे चौथाई भाग दालचीनी, इलायची और तेजपात लेंवें और सबसे दुगुना गुड लेंवें, पश्चात् सबको मिलाकर गोली बनावें, । यह गोली—खाँसी, श्वास, अरुचि, पीनस, यकृत, कण्ठनिरोध, वाङ्निरोध, संग्रहणी और गुदाके रोगोंको दूर करैहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ कासहरधूमपानविधिः ।

रम्यमाणस्यकासेनमुखश्वासेचशस्यते ।

श्वयथूद्धारकासेषुधूमपानं प्रयोजयेत् ॥ ४४ ॥

मनःशिलालमधुकंमांसीमुस्तैंगुदैःपिबेत् ।

धूमं त्र्यहञ्चतस्यानुसगुडंचपयःपिबेत् ॥ ४५ ॥

एषकासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान् ।

शतैरपिप्रयोगाणांसाधयेदप्रसाधितान् ॥ ४६ ॥

ऐंगुदंपुत्रजीवफलम् ।

मनःशिलालिप्तदलंबदर्याउपशोषितम् ।

सक्षीरधूमपानाच्चमहाकासनिवारणम् ॥ ४७ ॥

क्षीरमनुपानम् ।

अर्कच्छदशिलेतुल्येततोऽर्द्धेनकटुत्रिकम् ।

चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिबेद् धूमञ्च योगवित् ॥ ४८ ॥

भक्षयेदथ ताम्बूलं पिबेद् दुग्धमथाम्बुवा ।

कासाः पंचविधायान्तिनाशमाशुन संशयः ॥ ४९ ॥

मरिचशिलार्कक्षीरैर्कृत्वचमाशु भावितां शुष्काम् ।

कृत्वा विधिना धूमं पिवतः कासाः शमयान्ति ॥ ५० ॥

अर्थ—सुखश्वास, हिचकी, उद्गार और कासरोगमें धूमपान करना हितकारक है । मनशिल, हरताल, मुलैठी, बालछड, नागरमोथा और पतजिया, इनका तीनदिन धूमपान करै, गुड और दूधके साथ भोजन करै तो सर्वप्रकारकी खाँसी और श्वास दूर होताहै । मनशिलको पीस बेरीके पत्तोंपै लेपकर धूपमें सुखा धूमपान करै और ऊपरसे दूध पान करै तो महाकासरोग नष्ट होताहै । आकके पत्ते और मैनशिलको समान भाग लेवे, और इनसे आधाभाग त्रिकुट्टिका चूर्ण लेवे, पीछे सबको मिलाकर चिलममें रख धूमपान करनेसे पाँच प्रकारकी खाँसी दूर होतीहै, इसके ऊपर नागर पान और दूध सेवन करै, अथवा जल पीवै, यह अनुपान है । कालीमिरच, मनशिल और आककी छाल इनको आकके दूधमें भिजो धूपमें सुखावै, फिर चिलममें रख धूमपान करनेसे खाँसी दूर होतीहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ दशमूलघृतम् ।

दशमूलाढकैःप्रस्थंघृतस्याक्षसमैःपचेत् ।

पुष्कराद्वशठीविल्वसुरसाव्योषहिंशुभिः ॥ ५१ ॥

पयोऽनुपानंतत्पेयंकासेवातकफात्मके ।

श्वासरोगेषुसर्वेषुहिक्रायांचप्रशस्यते ॥ ५२ ॥

विल्वस्यमूलम् ।

अर्थ—घृत चारसेर, दशमूलका काथ १६ सोलहसेर और पोहकरमूल, कचूर, बेलकी जड, तुलसी, त्रिकुटा, हींग, इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले लेवे, पश्चात् विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करै । इसके सेवनकरनेसे वात और कफकी खाँसी, सर्वप्रकारके श्वासरोग, और हिकारोग दूर होतेहैं इस घीके ऊपर दूध पीवे, यह अनुपान है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ कालान्तकोरसः ।

हिंशुलंमरिचंव्योषंटेकणंगंधकंसमम् ।

जम्बीररससंयुक्तंमर्दयेद्याममात्रकम् ॥ ५३ ॥

कासंश्वासमतीसारंग्रहणीसान्निपातिकम् ।

अपस्मारामयंमेहमजीर्णचाग्निमान्द्यताम् ॥ ५४ ॥

गुंजामात्रप्रदानेनसर्वनाशयतिक्षणात् ॥ ५५ ॥

अर्थ—सिंग्रफ, कालीमिरच, त्रिकुटा, मुहागा और गंधक, यह सब समान भाग लेकर जम्बीरी नीबूके रसमें एक प्रहर खरल करै । इसकी मात्रा एक रत्तीकीहै । इससे खाँसी, श्वास, अतीसार, संग्रहणी, २॥ त्रिपातिक अपस्माररोग, प्रमेह, अजीर्ण, और मन्दाग्नि, नष्ट होतीहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ चन्द्रामृतरसः ।

त्रिकटुत्रिफलाचव्यधान्यजीरकसैन्धवाः ।

प्रत्येकंतोलकंग्राह्यं छागीदुग्धेन घोलयेत् ॥ ५६ ॥

रसगंधकलोहानि प्रत्येकं कार्षिकं क्षिपेत् ।

टंकणस्य पलंदत्त्वामरिचस्य पलार्द्धतः ॥ ५७ ॥

नवगुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्विषक् ।

प्रातः कालेशु चिर्भूत्वा चिन्तयित्वा मृते श्वरीम् ॥ ५८ ॥

एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसप्लुताम् ।

नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्य रसेन वा ॥ ५९ ॥

छागीदुग्धेन मण्डेन कैरवस्य रसेन वा ।

निहन्ति विविधं कासं वातपित्तसमुद्भवम् ॥ ६० ॥

वातश्लेष्मोत्थितं दुष्टं पित्तश्लेष्मभवं चिरम् ।

वातिकं पैत्तिकं वापि गरदोषसमन्वितम् ॥ ६१ ॥

सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरश्वाससमन्वितम् ।

तृड्दाहभ्रमशूलघ्नीरुच्यम्वह्निप्रदायिनी ॥ ६२ ॥

बलवर्णकरी वृष्याप्लीहगुल्मोदरापहा ।

आनाहकृमिपाण्डुघ्नी जीर्णज्वरविनाशिनी ॥ ६३ ॥

इयं चन्द्रामृतानामचंद्रनाथेन निर्मिता ।

वासागुडूचिकाभाङ्गीः स्तकं कण्टकारिका ।

भोजनान्ते प्रयोक्तव्या वटिका वीर्यवर्द्धिनी ॥ ६४ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, धनियाँ, जीरा और संधानोन, यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर बकरीके दूधमें खरल करै, फिर पारा, गंधक और लोहा,

यह प्रत्येक दो दो तोले, सुहागा चार तोले, और नालीभिरच दो तोले लेंवै, पीछे इन सबको पूर्वोक्तमें मिलावै और खूब मर्दन करै, तदनन्तर नौ नौ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवै, पश्चात् प्रातःकाल पवित्र हो अमृतेश्वरीदेवीका ध्यान धर एक गोली नित्यप्रति लालकमलके रसमें, अथवा नीलकमलके रसमें, वा कुलथीके रसमें, वा बकरीके दूधमें, वा माँडमें अथवा कमोदिनीके रसमें मिलाकर भक्षण करै । यह गोली नानाप्रकारकी खाँसी, वातपित्तकी खाँसी, वातकफकी खाँसी, दुष्टखाँसी पित्तकफकी खाँसी, बहुतदिनोंकी खाँसी, वातकी खाँसी, पित्तकी खाँसी, विषके विकारोंसे उत्पन्न हुई खाँसी, रुधिरयुक्त खाँसी, रुधिररहित खाँसी, ज्वर और श्वाससंयुक्त खाँसी, तृषा, दाह, भ्रम, ह्मीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, कृमि, पाण्डु, और जीर्णज्वरको दूर करैहै, तथा रुचिकारक, अग्निप्रदीप, बलकारक, वर्णको सुन्दर करनेवाली, और वीर्यवर्द्धक है । यह चन्द्रा-मृतरस, श्रीचन्द्रनाथने निर्माण कियाहै । अडूसा, गिलोय, भारंगी, नागरमोथा और कटेरी, इनकी गोली बनाकर, भोजनके अन्तमें खाना चाहिये । इससे वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ५६-६४ ॥

अथ सर्वांगसुन्दररसः ।

रसगंधकतुल्यांशौद्रौभागौटकणस्यच ।

मौक्तिकंविद्रुमशंखंमारणीयाःसमांशतः ॥ ६५ ॥

हेमभस्मार्द्धभागंचसर्वखल्वेविमर्दयेत् ।

निम्बुद्रवस्ययोगेनपिण्डिकांकारयेद्विपक्व ॥ ६६ ॥

पश्चाद्गजपुटंदद्याच्छीतलंचसमुद्धरेत् ।

हेमभस्मसमंतीक्ष्णंतीक्ष्णार्द्धदरदोमतः ॥ ६७ ॥

एकीकृत्यसमस्तानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ।

ततःपूजांप्रकुर्वीतरसस्यदिवसेशुभे ॥ ६८ ॥

सर्वांगसुंदरोह्येषरोगराजनिकृन्तनः ।

वातपित्तज्वरेचोरेसन्निपातेसुदारुणे ॥ ६९ ॥

अर्शस्संग्रहणीसमेहेगुल्मेभगन्दरे ।

निन्तिवातजात्रोगाञ्चैषश्चविशेषतः ॥ ७० ॥

पिप्पलीचूर्णसंयुतं घृतं यत्कमथापि च ।

भक्षयेत्पर्णखंडेन सितया चार्द्रकेण वा ॥ ७१ ॥

गुडूचीसत्त्वसहितं प्रमेहेऽपि विशेषतः ।

ःकरे प्रोक्तः सिद्धयोगे रसोत्तमः ॥ ७२ ॥

राजिका तैलहिं ग्वम्ललवणाढ्यं च वर्जयेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ—पारा और गंधक समान भाग, सुहागा दो भाग, मोती—मूंगा, शंख, इनकी भस्म एकएक भाग और सोनेकी भस्म आधा भाग लेंवै, सबको खरलमें डाल नीबूके रसमें घोटकर गोला बना लेंवै, फिर इस गोलेको गजपुटमें फूंक देंवै, जब शीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करले, पश्चात् इसमें सोनेकी भस्मकी बराबर तीक्ष्णलोहेकी भस्म और लोहेकी भस्मसे आधा भाग सिंगफ मिलवै, फिर सबको पीस बारीक चूर्ण करले । फिर इस रसकी शुभादिनमें पूजाकर पीपलके चूर्णमें मिला, वा घीमें मिला, अथवा पानीमें मिला, या मिश्रीमें मिला, अथवा अदरखके रसमें मिलाकर खावै तो राजरोग, वातपित्तज्वर, दारुण सन्निपातज्वर, ववासीर संग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातके रोग और कफके रोग दूरहों, और इसको गिलोयके सत्त्वके साथ खावै तो सर्वप्रकारके प्रमेह रोग दूर होवें । इस सर्वांगसुन्दर रसपै राई, नैल, हींग, खटाई और लवणके पदार्थ नहीं खाने चाहियें ॥ ६५-७३ ॥

अथ बृहत्कण्टकारीघृतम् ।

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्यारसाढके ।

घृतप्रस्थं बलाव्योपविडंगशठिचित्रकैः ॥ ७४ ॥

सौवर्चलयवक्षारविल्वामलकपुष्करैः ॥

वृश्चीरबृहतीपथ्यायवानीदाडिमस्तथा ॥ ७५ ॥

द्राक्षा पुनर्नवाचव्यादुरालभाम्लवेतसैः ॥

शृंगीतामलकीभाङ्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ७६ ॥

कल्कोऽयं सर्वकासेषु हिक्काश्वासे च शस्यते ।

कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—मूल, पत्र और शाखायुक्त कटेरीके ८ आठसेर रसमें दोसेर घृत, चि-
रैटी, त्रिकुटा, बायबिडंग, कचूर, चीता, कालानोन, जवाखार, बेल, आमला,

पोहकरमूल, विषखपरा, कटाई, हरड, अजवायन, अनार, दाख, पुनर्नवा, चव्य, धमासा, अमलवेत, काकडाशिगी, भुईआमला, भारंगी, रास्ना और गोखरू इनसबका कल्क समान भाग मिलाके विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करै । यह कण्टकारीघृत सर्वप्रकारकी खाँसी, हिक्का, और स्वासरोगमें अत्यन्त हितकारी है, तथा कफव्याधिविनाशकहै ॥ ७४-७७ ॥

अथ व्याघ्रीहरीतकी ।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुर्यांजलद्रोणपरिप्लुताञ्च ।

हरीतकीनाञ्चशतंनिदद्यादथार्द्रपक्वाचरणावशेषम् ॥ ७८ ॥

गुडस्यदत्त्वाशतमेवचाग्रौविपक्वमुत्तार्यततःसुशीते ।

कटुत्रिकञ्चद्विपलप्रमाणंपलानिषट्पुष्परसस्यतत्र ॥ ७९ ॥

क्षिपेच्चतुर्जातपलंयथाग्निप्रयुज्यमानोविधिनावलेहः ।

वातात्मकंपित्तकफोद्भवञ्चद्विदोषकासानपियत्रिदोषम् ८० ॥

यक्ष्माणमेकादशमुग्ररूपंभृगूपदिष्टंहिरसायनंस्यात् ॥ ८१ ॥

अर्थ—कटेरीका पंचांग १२ ॥ साढ़ेबारहसेर, हरड १०० एकसौ, इनको बत्ती-ससेर जलमें औटावै, जब चौथाभाग जल शेष रहै तब १२ ॥ साढ़ेबारह सेर गुड डालकर पकावै, जब अच्छेप्रकार पकजावै तब उतारले, शीतलहोनेपर त्रिकुटेका चूर्ण आठ तोले, सहत चौबीस तोले और चतुर्जातकका चूर्ण चार तोले मिलादेवे । अग्रिका बलावल विचारकर इसको भक्षण करै तो वातज, पित्तज, कफजन्य, द्विदोषज और त्रिदोषज खाँसी, तथा ग्यारहप्रकारके राज्ययक्ष्मारोगको दूर करै है । यह रसायन भृगुजीने प्रकाशित की है ॥ ७८-८१ ॥

अथागस्त्यहरीतकी ।

दशमूलंस्वयंगुप्तांशंखपुष्पींशठींबलाम् ।

हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ८२ ॥

भार्ङ्गीपुष्करमूलंचद्विपलांशंयवाढकम् ।

हरीतकीशतञ्चैकंजलपंचाढकेपचेत् ॥ ८३ ॥

यवैःस्वित्रैःकषायन्तंशुतंतच्चाभयाशतम् ।

पचेद्भटतुलादत्त्वाकुडवञ्चपृथग्घृतात् ॥ ८४ ॥

तैलात्सपिप्पल्लोच्छूर्णसिद्धशीतेचमाक्षिकात् ।

लेह्याद्विचामयेनित्यमतःखादेद्रसायनात् ॥ ८५ ॥

तद्वलीपलितंहन्याद्वर्णाग्निबलवर्द्धनम् ।

पंचकासान्क्षयंश्वासंहिक्कांसविषमज्वरम् ॥ ८६ ॥

हन्यात्तथाग्रहण्यशोहद्रोगारुचिपीनसान् ।

अगस्त्यविहितंधन्यमिदंश्रेष्ठरसायनम् ॥ ८७ ॥

यवहरीतकयोःश्लक्ष्णपोटलींबद्धानिक्षिपेत् । पश्चात्स्विन्न-

हरीतकींघृततैलाभ्यांभर्जयेदितिरसरत्नाकरोक्तम् ॥

अर्थ—दशमूल, कौंछके बीज, शंखपुष्पी, कचूर, खिरौटी, गजपीपल, चिर-
चिटा, पीपरामूल, चीता, भारंगी, और पोहकरमूल, यह प्रत्येक सोले सोले
तोले लेकर ८० सेर जलमें पकावे, फिर आठसेर जौ और एकसौ हरड़, इनको
वारीक कपड़ेकी पोटलीमें बांधकर पूर्वोक्त काथमें डालदेवै, जब २० बीस सेर जल
शेष रहै तब उतारकर काढ़ेको छान लैवै और हरड़ोंको अलग निकालकर उनकी
गुठली निकाल डाले, फिर घी और तेलमें हरड़ोंको भूने, तदनन्तर पूर्वोक्त छने
हुए काथमें १२ ॥ साढ़ेबारह सेर गुड़ उपरोक्त भुनीहुई एकसौ हरड़, सोलह
तोले घी १६ सोलह तोले तेल और सोलह तोले पीपलका चूर्ण मिलाकर पका-
वे, शीतल होनेपर सोलह तोले सहत मिलादेवै । दोहरडें नित्यप्रति खावै तो
वलीपलिरोग, पांचप्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, हिक्का, विषमज्वर, संग्रहणी,
बवासीर, हृदयरोग, अरुचि और पीनमरोग दूर होवै । यह श्रेष्ठरसायन अग-
स्त्यजीने कहीहै ॥ ८२-८ ॥

अथ वातकासं ।

वातान्द्रहच्छंखयोःशूलंमूर्ध्निपाश्वोदरेऽपिच ।

क्षामाननंबलंक्षीणंभिन्नकांस्यस्वरस्तथा ॥ ८८ ॥

अर्थ—हृदय, कनपटी, मस्तक, पसली, और उदर, इनमवमें शूल होवे, मुख
क्षीण और बलहानि होवे, तथा फूटे कौंसीके वासनके शब्दकी समान स्वर होजा-
वे तो वातकी खाँसी जाननी ॥ ८८ ॥

अथ रुद्रपर्पटी ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधद्रवैः पुनः पुनः पचेत् ।
 वातारिचार्द्रकं भृंगीकाकमाच्यद्रिकर्णिका ॥ ८९ ॥
 ।दनैकं मर्हयेत् खल्वेपाचयेत् पर्पटीं यथा ।
 द्वयोः पादं मृतं ताम्रं पिष्ट्वा मृद्वग्निना पचेत् ॥ ९० ॥
 रक्तवर्णं भवेद्यावत्तावद्वर्षाप्रचालयेत् ।
 प्रक्षिपेत् कदलीपत्रेऽथ वास्निग्धपुटे पुनः ॥ ९१ ॥
 अब्दाद्यं तेन योगेन ततश्चोर्द्ध्वं गोमयम् ।
 देयं विचूर्णयेत् पश्चाच्चूर्णपादं विषं क्षिपेत् ॥ ९२ ॥
 रुद्रपर्पटिका ह्येपादेयं गुंजाद्वयं तथा ।
 चूर्णितं कटुनिर्गुण्ड्यामूलं निष्कद्वयं पिबेत् ॥ ९३ ॥
 भृंगराजरसेनैव लिहेद्भामधुना सह ।
 वातकासं निहन्त्या शुरसो वानन्दभैरवः ॥ ९४ ॥

कटुस्त्रिकटुः ।

अर्थ—शुद्धपारा एक भाग, शुद्धगंधक दो भाग, इन दोनोंको अरंड, अदरक, अतीस, मकोय, और कोयल, इनके रसमें एक दिन खरल करै, और पर्पटीकी तरह पकावै, पश्चात् पारे और गंधकसे चौथा भाग तांबेकी भस्म मिलाकर मृदुअग्निसे पकावै, जब पकते पकते लाल होजाय तब उतारकर केलेके पत्तेके नीचे गोबर बिछाय उसपै ढाल देवै और ऊपरसे दूसरे पत्तेसे दबाकर पपड़ीकी तरह बनालेवै, फिर इसका चूर्णकर चूर्णसे चौथा भाग विष मिलालेवे तो रुद्रपर्पटीरस सिद्धहो । मात्रा दो रत्तीकी है । इस औषधिके अन्तमें त्रिकुटा और सम्हालूकी जड़के चूर्णको भांगरेके रसमें अथवा सहतमें मिलाकर सेवन करे । यह रस शी-ग्रही वातकी खाँसीको दूर करै है ॥ ८९-९४ ॥

अथामृतार्णवरसः ।

रास्नाविडंगत्रिफलारसगंधकटुत्रयम् ।

अमृतापन्नकंक्षौद्रं विषतुल्यं सुचूर्णितम् ॥ ९५ ॥

द्विगुंजवातकासारः श्लेष्मदमृताण्वमम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—रास्ना, बायबिडंग, त्रिफला, पारा, गंधक, त्रिकुटा, गिलोय, पद्मास, सहत और विष, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करै । इसको दो रत्तीभर खानेसे—वातकी खाँसी दूर होतीहै । इसको अमृताण्वरस कहतेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथ भूतांकुशरसः ।

शुद्धसूतस्यभागैकंद्विभागंशुद्धगंधकम् ।

भागद्वयमृतंताम्रमरिचंदशभागकम् ॥ ९७ ॥

मृताभ्रस्यचतुर्भागंभागमेकंविषंक्षिपेत् ।

भूतांकुशस्यभागैकंसर्वमम्लेनभावयेत् ॥ ९८ ॥

योयंभूतांकुशोनामयामैकंवातकासजित् ।

अनुपानंलिहेत्क्षौद्रविभीतकफलत्वचम् ॥ ९९ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगंधक दो भाग, ताँबेकी भस्म दो भाग काली-मिरच दश भाग, अभ्रककी भस्म चार भाग, विष एक भाग, और भूतांकुश-रस एक एक भाग लैवै, सबको एक प्रहर नीबूके रसमें भावना देकर एक एक मासेकी गोली बनावै । एक गोली खानेसे वातकी खाँसी दूर होतीहै । अनुपान—बहेडेकी छालको पीस सहतमें मिलाकर चाटै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथ पित्तकासः ।

उरोदाहोरक्तशोषस्तित्तास्यञ्ज्वरंतथा ।

कटुपित्तं वमत्येव पाण्डुत्वं पित्तकासके ॥ १०० ॥

अर्थ—वक्षस्थलमें दाद हो, रुधिर सूख जावै, मुख कडवा हो, ज्वर हो, कटु पित्त वमनमें गिरे और शरीर पाण्डुवर्ण होजाय यह सब लक्षण पित्तकी खाँसीमें होते हैं ॥ १०० ॥

अथ त्रिनेत्ररसः ।

भस्मताम्राभ्रतीक्ष्णानां कासमर्दत्वचोरसैः ।

सालजैर्वेतसाम्लेन दिनमर्द्यसुपिण्डितम् ॥ १०१ ॥

द्विगुंजपित्तकासात्तोभक्षयेच्च त्रिनेत्रकम् ॥ १०२ ॥

अर्थ—ताँबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, इन तीनोंको समान भाग लेकर कसोंदीकी छालके रसमें, सालके रसमें और अमलबैतके रसमें

एक दिन खरलकर गोला बनालेवे, फिर दो रत्तीकी गोलियें करले । एक गोली खानेसे पित्तकी खाँसी दूर होती है, इसको त्रिनेत्ररस कहतेहैं ॥ १०१॥१०२॥

अथ लोकेश्वररससेवनविधिः ।

रसोलोकेश्वरोप्यत्रपिप्पलीमधुनासह ।

देयगुंजाचतुष्कंचसघृतैर्मरिचैःसह ॥ १०३ ॥

कासश्वासाग्निमान्द्यञ्चक्षयकासंचनाशयेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ—चार रत्ती लोकेश्वररसको पीपलके चूर्णके साथ सहत मिलाकर खावै तो अथवा कालीमिरचोंके चूर्णके साथ घी मिलाकर खावै तो—खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, और क्षयकी खाँसी दूर होतीहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

अथ कफकासलक्षणम् ।

शिरोऽग्निःकफपूर्णास्यतारुजिर्गौरवञ्जरः ।

कासेत्सान्द्रकफःकण्ठश्लेष्मकासस्यलक्षणम् ॥ १०५॥

अर्थ—शिरमें पीडा, कफसे मुख भरारहै, अरुचि, शरीर भारी और ज्वरहो बारंबार खाँसी उठे और कण्ठमें गाढा कफ होय, यह लक्षण कफकी खाँसीके जानने ॥ १०५ ॥

अथ काससंहारभैरवः ।

रसगंधकताम्राणांशंखटंकणलौहकम् ।

मरिचंकुष्ठतालीशंजातीफललवङ्गकम् ॥ १०६ ॥

कार्षिकंचूर्णमादायद्रवैरेषांचमर्दयेत् ।

भेकपर्णीकेशराजनिर्गुण्डीकाकमाचिका ॥ १०७ ॥

द्रोणपुष्पीचशालञ्जीग्रीष्मसुन्दरएवच ।

भार्ङ्गीहरीतकीवासाकार्षिकैःपत्रजैरसैः ॥ १०८ ॥

वटिकांकारयेद्वैद्यःपंचगुंजाप्रमाणिकाम् ।

पित्तजंवातजंकासंघ्नंरसैश्चैव ॥ १०९ ॥

श्रीमद्भद्रहृदयेनकाससंहरभैरवः ।

रसोऽयंनिर्मितोयत्नाऽकरक्षणेतेव ॥ ११० ॥

वासां ठीकं टकारोक्ताथेन पाययेद्बुधः ।

कासनाशनवज्रोऽयं रसः सश्वासपाण्डुजित् ॥ १११ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, ताँबा, शंख, सुहागा, लोहा, कालीमिरच, कूठ, ताली-सपत्र, जायफल और लैंग, ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर मंडूकपर्णी, कुकुरभांगरा, सम्हालू, मकोय, द्रोणपुष्पी, शालिचशाक, ग्रीष्मसुन्दरशाक, भारंगी, हरड़, अड्डसा, इन प्रत्येक पत्तोंके दो दो तोले रसमें भावना देकर पांच पांच रत्तीकी गोलियें बनलेंवै । इसको अड्डसा, सोंठ, और कटेरीके काढेमें मिलाकर पीवै तो पित्तज, वातज, द्बन्धज और बहुतदिनोंकी खाँसी, तथा श्वास और पाण्डुरोग दूरहोवै । यह काससंहारभैरवरस श्रीमान् गहननाथने संसारकी रक्षाके अर्थ निर्माण कियाहै ॥ १०६--१११ ॥

अथ त्रिकट्टादिचूर्णम् ।

कटुत्रयं पाठकदेवदारुरास्नाविडंगत्रिफलावृषाणाम् ।

चूर्णं समांशं सितयाविमिश्रं कासं जयेद्विष्णुरिवातिपापम् ॥ ११२ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, पाठ, देवदारु, रास्ना, बायविडंग, त्रिफला और अड्डसा इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण करै और सब चूर्णकी बराबर मिश्री मिलावै, यह खाँसीको दूर करै है ॥ ११२ ॥

अथ रसेन्द्रगुटिका ।

मारीत्रिफलाचूर्णचित्रकस्वरसैः क्रमात् ।

शोधयित्वा पुनराजीगृहधूमहरिद्रया ॥ ११३ ॥

पक्वेष्टकारजश्चैव जलम्बू परसेन च ।

भृंगसर्पसेनापिशोधयित्वा पुनः पुनः ॥ ११४ ॥

प्रक्षालयेत्पुनः पश्चाद्बालयेद्दसने च ।

कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्विष्णुद्रवैः ॥ ११५ ॥

शिलायां खलयेच्चापियावत्पिण्डत्वमागतम् ।

जलकर्णीकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ॥ ११६ ॥

सौगन्धिकपलं शुभ्रं मरिचटंकणम् ।

माक्षिकं च शिखिग्रीवतालकं चाभ्रकन्तथा ॥ ११७ ॥

एतांस्तुमिलितान्कृत्वाभावयेच्चाद्र्कद्रवैः ।

रत्तिहृष्टभाणेनकारयेद्द्वटिकांभिषक् ॥ ११८ ॥

जीर्णान्नोभक्षयेदेकांक्षीरमांसरसाशनः ।

पंचकासंक्षयंश्वासंरक्तपित्तविनाशनम् ॥ ११९ ॥

पाण्डुक्रिमिज्वरहरंकृशानांपुष्टिवर्द्धनम् ।

वाजीकरणनिर्दिष्टमम्लपित्तहरंपरम् ॥ १२० ॥

वह्निषंदीपनंश्रेष्ठमरोचकविनाशनम् ।

नागार्जुनाख्यमुनिनाभाषितंतत्त्ववेदिना ॥ १२१ ॥

अर्थ—धीकुवार और त्रिफलेके चूर्णमें, चीतेके रसमें, राई, घरका धुआँ और हलदीके रसमें, तथा ईटके चूर्णमें, लज्जालुभेदके रसमें और भांगरेके रसमें क्रमसे पारेको अलग अलग शोधकर पानीसे धोकर वस्त्रमें छानले, ऐसा पारा दो तोले लेकर भांगरेके रसमें भावनादेवै, फिर खरलमें घोट गोला बनाके उस गोलेको कर्णमोरट लताके रसमें और मकोयके रसमें भावना दे, चारतोले शुद्धगंधक तथा कालीमिरच, सुहागा, सोनामाखी, तूतिया और हरिताल तथा अभ्रक ये प्रत्येक चार तोले मिलाकर अदरखके रसमें भावना देवै, फिर दोरत्तीकी गोलियें बनालेवै, एकगोली रोज भोजनके जीर्ण होनेपर भक्षण करै। इसके ऊपर दूध और मांसरसका भोजन करै। यह रसेन्द्रगुटिका पांचप्रकारकी खाँसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डुरोग, कृमिरोग, ज्वर, अम्लपित्त, और अरुचिको दूर करैहै, तथा कृशमनुष्योंके पुष्टिको बढ़ानेवाला, वाजीकरण, अग्निप्रदीपक और अति उत्तम है। यह रस—श्रीमान् नागार्जुनऋषिने निर्माण कियाहै॥ ११३--१२१॥

अथबृहद्रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षशुद्धरसेन्द्रस्यगंधकस्य भ्रंष्टच ।

लौहचूर्णस्यताम्रस्यतालकस्यविषस्यच ॥ १२२ ॥

मनःशिलायाःक्षाराणांबीजंधुस्तूरकस्यच ।

मरिचस्यापिसर्वेषांचूर्णतुल्यंप्रदापयेत् ॥ १२३ ॥

जयन्तीचित्रकौमानघण्टाकर्णोऽथमण्डुकी ।

शक्राशनंकेशराजं गापामार्गकस्यच ॥ १२४ ॥

सिन्धुवारस्यचरसैः कर्षमात्रैश्चमर्दयेत् ।

हन्तिपंचविधंकासंश्वासश्चैवसुदारुणम् ॥ १२५ ॥

कफवातमयरोगमन्नाहं विड्बन्धताम् ।

अग्निमान्द्यारुचिश्चैवउदरं पाण्डुकामलाम् ॥ १२६ ॥

रसायनीचवृष्याचबलवर्णप्रदायिनी ।

बृंहणंमधुरंस्निग्धंमत्स्यंमांसञ्चजांगलम् ॥ १२७ ॥

घृतपक्वंसदाभक्ष्यंरूक्षंतीक्ष्णंचवर्जयेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, अभ्रक, लोहेकाचूर्ण. ताँवा, हरिताल, विष, मनशिल, जवाखार, सज्जी, सुहागा, धतूरेके बीज, और कालीमिरचांका चूर्ण यह प्रत्येक दो दो तोले लेकर जयन्ती, चीता, मानकंद, घण्टाकर्ण, ब्रह्ममण्डूकी, भांग, कुकुरभाँग, भांगरा, चिरचिटा और सम्हालू, इन प्रत्येकके दो दो तोले रसमें खरल कर मटरकी बराबर गोली बनालेवें। इनको भक्षणकरनेसे—पाँचप्रकारकी खाँसी, श्वास, कफ, वातरोग, आनाह, विड्बन्ध, मन्दाग्नि, अरुचि, उदररोग, पाण्डुरोग और कामलारोग दूर होताहै। यह गोली—रसायन, वीर्यवर्धक, बलकारक, वर्णको सुन्दर करनेवाली है। इसके ऊपर पुष्टिकारक, मधुर, स्निग्ध, मत्स्य, जांगलदेशके जीवोंका मांस घीमें भुनाहुआ सदैव खाना चाहिये, तथा रूक्ष और तीक्ष्णपदार्थ इसके ऊपर नहीं भक्षण करें ॥ १२२ ॥ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथ विजयभैरवरसः ।

सूतकंगंधकंलौहंविषमभ्रकमेवच ।

विडंगंबिल्वकंमुस्तमेलंअग्रन्थिककेशरम् ॥ १२९ ॥

त्रिकटुत्रिफलंविप्रंशुद्रजैपालबीजकम् ।

एतानिसमभागानिगुडोद्विगुणउच्यते ॥ १३० ॥

तिन्तिडीबीजमानेनप्रातःकालेतुभक्षयेत् ।

श्वासंकासंक्षयरूपंप्रमेहंविषमज्वरम् ॥ १३१ ॥

अजीर्णग्रहणीदोषाञ्छूलंपार्श्वामयास्तथा ।

अपानेहृदयेशूलेवातरोगेगलग्रहे ॥ १३२ ॥

अरुचौचातिसारेचसूतिकाविषनाशनः ।

जयाक्षनिर्मितोद्वेषब्रह्मादित्रिदिवेश्वरैः ॥ १३३ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, लोहा, विष, अभ्रक, बायविडंग बेलगिरी, नागरमोथा, इलायची, पीपरामूल, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला, चीता और शुद्ध जमाल-गोटेके बीज, यह सब समान भाग और सबसे दुगुना गुड़ लेवै, सबको मिलाकर इमलीके चियेकी समान गोलियां बनालेवे, एक गोली रोज प्रभातके समय भक्षण करै तो—श्वास, खाँसी, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, संग्रहणी, शूल, पसलियोंका शूल, अपानशूल, हृदयका शूल, वातरोग, गलग्रह, अरुचि, अतिसार, सूतिका, विष, इनको दूर करैहै यह विजयभैरव रस ब्रह्मादि देवोंने निर्माण कियाहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथ क्षतकासलक्षणम् ।

पर्वभेदोज्वरश्वासतृषावैस्वर्य्यपीडितम् ।

सपूर्वकासतेशुष्कततःष्ठीवित्सशोणितम् ॥ १३४ ॥

पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ १३५ ॥

अर्थ—शरीरकी संधियोंमें हड़फूटनहो, ज्वर, श्वास, तृषा, स्वरभेद इनसे पीडित हो प्रथम सूखा खाँसे, पश्चात् रुधिर थूकै और कबूतरकी समान शब्द कहै तो जानिये क्षतकी खाँसीहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

अथ तालेश्वररसः ।

रसपादंमृतंतारंशिलातालंचतुर्गुणम् ।

वासागोक्षुरसत्त्वाभ्यामर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥ १३६ ॥

द्वियामंबाल्कायन्त्रेस्वेद्यमादायचूर्णयेत् ।

गुंजाद्वयनिहंत्याकूकासंश्वासंक्षतोद्भवम् ॥ १३७ ॥

रसस्तालेश्वरोनाम्नाअनुपानंचकथ्यते ।

वचाकुष्ठहरिद्राभिःसैधवंतंकणंविषम् ॥ १३८ ॥

सपाठालांगलीव्योषंचाक्षंप्रत्येकभागकम् ।

भावितभृंगराजेनदिनैकंतंभक्षयेत् ॥ १३९ ॥

माषंतालेश्वरोनाम्नाहिक्कावैस्वर्यकासजित् ॥ १४० ॥

अर्थ-पारा एक भाग, चांदीकी भस्म, मैनिशिल और हरिताल, इन्हें प्रत्येक चार चार भाग लेकर अड्डसे और गोखरूके सत्त्वमें दो प्रहर खरलकरै, पश्चात् दो प्रहरतक बाहुकार्यन्त्रमें पकावै, जब स्वयं शीतल होजाय तब निकालकर चूर्ण करले, इसको दो गुंजाभर खावै तो-क्षतसे उत्पन्न हुए खांसी और श्वास दूर हो जातेहैं । इसको तालेश्वररस कहतेहैं वच, कूट, हलदी, सैधानोन, मुहागा, विष, पाढ, कलिहारी, त्रिकुटा यह प्रत्येक दो दो तोले लेकर, भांगरेके रसमें एक दिन भावना देकर, अनुपान करै । इसको एकमासेभर रोज खाय तो हिचकी, स्वरभेद और कासरोग दूर हो ॥ १३६-१४० ॥

अथ क्षयकासः ।

गात्रशूलंज्वरोदाहोमोहःश्वासश्चयस्यवै ।

शुष्कंनिष्ठीवयेत्कृच्छ्रात्सपूयंशोणितंचयः ॥ १४१ ॥

इत्येषक्षयजःकासःसाध्योबलवतांक्रचित् ।

क्षीणानादिहनाशायसएकःसाध्यतांत्रजेत् ॥ १४२ ॥

अर्थ-शरीरमें शूल हो, ज्वर, दाह, मोह और श्वास, उत्पन्न हो, अत्यन्त कष्टके साथ सूखा खाँसे, पश्चात् राधयुक्त रुधिर थूकें तो क्षयकी खाँसी जाननी । यह खाँसी-बलवान् मनुष्योंको कुछ कुछ साध्य होतीहै और क्षीण-मनुष्योंके असाध्य जाननी ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथाम्रिरसः ।

शुद्धसूतंद्विभागंधंकुर्याद्यत्नेनकज्जलीम् ।

तयोःसमंतीक्षणचूर्णमर्दयेत्कनकद्रवैः ॥ १४३ ॥

द्वियामान्तेकृतंगोलंताम्रप्रात्रेविनिक्षिपेत् ।

आच्छाद्यैरण्डपत्रेणयामार्द्धेऽप्युष्णताभवेत् ॥ १४४ ॥

धान्यराशौन्यसेत्पश्चाद्वियामान्तेसमुदरेत् ।

संपेष्यगालयेद्बस्त्रेसद्योवारितरंभवेत् ॥ १४५ ॥

त्रिकटुत्रिफलाचैलाजातीफललवंगकम् ।

एषाञ्चपरभागानांसमपूर्वरसोभवेत् ॥ १४६ ॥

सचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यंनिष्कद्वयंद्वयम् ।

अयमग्निरसोनाम्नाक्षयकासनिवृन्तनः ॥ १४७ ॥

इ- वारुणिकामूलभृंगं, ज्ञातलैः सह ।

भक्षयेत्क्षयकासात्तौ निष्कमात्रं प्रशान्तये ॥ १४८ ॥

इति कासाध्यायः ।

अर्थ-शुद्धपारा एकभाग, गंधक दोभाग, इन दोनोंकी कज्जली करै, पश्चात् दोनोंकी समान ईस्पातका चूर्ण मिला धतूरेके रसमें खरल करै, देहहृत्पदं खरलकर गोला बनालेवै, उस गोलेको ताँबेके वासनमें रख ऊपर अरंडके पत्ते ढक चारघडीतक रहनेदेवै, जब गरम होजाय तब दोप्रहरतक धानोंके ढेरमें रख देवै, पश्चात् निकालकर महीन पीस वस्त्रमें छानलेवै वह छनाहुआ ऐसा होजाय कि, पानीमें डालनेसे तिरनेलगै, फिर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, इलायची, जायफल, लोंग, इनसबको समानभागलेकर चूर्णबना मिलादेवै, पश्चात् सहत मिलाके आठमासेभर नित्यप्रति भक्षण करै । यह अग्निरस-क्षयकी खाँसीको दूर करैहै । इसके सेवनके अन्तमें इन्द्रायणकी जड़, दालचीनी और कालेनिल, इनको एकत्रमिलाकर चारमासेभर भक्षण करै ॥ १४३-१४८ ॥

इति कासाधिकारः समाप्तः ।

अथ हिक्काश्वासयोश्चिकित्सामाह ।

हिक्काश्वासात्तयोः पूर्वतिलाक्तः स्वेदइष्यते ।

स्निग्धैर्लवणयोगैश्च ऊर्ध्ववातानुलोमनम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वाधः शोधनं शक्ते दुर्बलेशमनं मतम् ।

प्रस्वापयेद्दिवा यत्नान्नरं हृत्पुंषिष्क् ॥ २ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्विता ।

नागरंगुडसंयुक्तं हिक्काग्रं लावणत्रयम् ॥ ३ ॥

लावणं नस्यम् ।

स्तन्येन माक्षिका विष्टानस्यं वालक्तकं म्बुना ।

योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वाचन्दनान्वितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-हिक्का और श्वाससे पीडित मनुष्यको प्रथम तिलयुक्त द्रव्योंका स्वेद प्रयोग कराना चाहिये और चिकने तथा निमकीनपदार्थोंसे ऊर्ध्ववातको अनुलोमन करना चाहिये । हिक्का और श्वासरोगी जो बलवान् होय तो वमन और विरेचन करावै और जो दुर्बल होय तो शमनऔषधि सेवन करावै । हिक्कारो-

गीको दिनमें शयन करावै । मुलैठीमें सहत मिलाकर अथवा पीपलके चूर्णमें बूरा मिलाकर वा सोंठके चूर्णमें गुड मिलाकर नासलेनेसे हिकारोग शान्त होताहै । मक्खीकी विष्टाको पीसकर नास लेनेसे वा दूधको चन्दनमें मिलाकर नासलेनेसे हिकारोग शान्त होताहै ॥ १-४ ॥

अथ पिप्पल्यादेर्लोहम् ।

पिप्पल्यामलकीद्राक्षाकोलास्थिमधुशर्कराः ।

विडंगपुष्करैर्युक्तोलोहोहन्तिसुदुर्जयाम् ॥ ५ ॥

छर्दितृष्णांतथाहिक्रांतिरात्रेणनसंशयः ॥ ६ ॥

सर्वचूर्णसमंलौहम् ।

अर्थ—पीपल, आमला, दाख, बेरकी मींग, सहत, वृग, बायबिडंग और पोहकरमूल, यह सब समानभाग लेवै और सबकी बगवर लोहेका चूर्ण लेवै । इसको मेवन करनेसे दुर्जयहिकारोग, वमन तृषा, तीन रात्रियोंमें दूर होजा-
तेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ हिक्काशमनोपायाः ।

कूष्माण्डप्रभवंमूलंपीत्वाभक्तस्यवारिणा ।

अजस्रमुत्थिताहिक्राशान्तिर्भवतितत्क्षणात् ॥ ७ ॥

आष्टीलक्ष्मलीकन्दरसखण्डविमिश्रितम् ।

पीत्वाहिक्रांजयत्युग्रांवातपित्तसमुद्रवाम् ॥ ८ ॥

हिक्काश्वासीभजेत्सर्वपानार्थंकफवातनुत् ।

दशमूल्याल्लथैर्वासिद्धंजांगलजैरसैः ॥ ९ ॥

भुंजीतशालिगोधूमयवांत्रंजीर्णमेवच ।

हिक्काश्वासीपिबेदुष्णंदशमूलीकृतंजलम् ॥ १० ॥

वेवदारुशृतंवापिभार्ङ्गीशृतमथापिवा ।

सनागराभयातुल्याकासश्वासौव्यपोहति ॥ ११ ॥

अभयानागरकल्कंपौष्करयावशूकमरिचकल्कंवा ।

तोयेनोष्णेनपिबेच्छासीहिक्रीचतच्छान्त्यै ॥ १२ ॥

गुडंकटुलेलेष्टागिश्रयित्वाऽममंलिहेत् ।

त्रिसप्ताहप्रयोगेणश्वासनिर्मूलतानयेत् ॥ १३ ॥
 कृष्णासैन्धवसं तं चूर्णं स्वरसेनशृंगवेरस्य ।
 योलेदिशयनं गलेस यतिसप्ताहतःश्वासान् ॥ १४ ॥
 कृष्णामलकशुण्ठीनांचूर्णमधुसिताघृतम् ।
 मुहुर्मुहुः प्रोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ १५ ॥
 अतानागरं फलीव्याघ्रपर्णीसुसाधितः ।
 काथः पीतः सकणाचूर्णः कासश्वासाज्यन्त्याशु ॥ १६ ॥
 त्रिवाटरूपदलवारिसमूलशुक्र-
 दण्डोत्पलदलजलंकटुतैलमिश्रम् ।
 भार्ङ्गीगुडादिरपियत्रहतप्रभाव-
 स्तंश्वासमाशुविनिहन्ति महाप्रभावम् ॥ १७ ॥
 बिल्ववासापत्ररसः समूलपत्रशुक्रदण्डोत्पलरसश्च ।

इति कटुतैलेन सह योगः ।

अर्थ—पेटेकी जड़को चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे तत्काल हिकारोग शान्त होता है । केलेके कन्दके रसको खांडके साथ पीनेसे वातपैत्तिक हिकारोग दूर होता है, हिक्का और श्वासरोगी सब पीनेके द्रव्य कफवातनाशक पान करें तथा दशमूल, कुलथी और जांगलदेशोंके जीवोंके मांसका यूष सेवन करें और पुराने चावलोंका भात, गेहूं और जौके अन्नका भोजन करें । गरमागरम दशमूलका काथ, देवदारुका काथ और भारंगीका काथ पीनेसे हिचकी और श्वास नष्ट होता है । सोंठ और हरड़ समानभाग लेकर सेवन करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है । हरड़, सोंठ, दालचीनी, पोहकरमूल, जवाखार और काली-भिरच, इनको गरमजलमें पीसकर सेवन करनेसे श्वास और हिक्का रोग दूर होता है । गुडमें सरसोंका तेल मिलाकर तीन सप्ताहतक सेवन करनेसे श्वासरोग शान्त होता है । सोनेके समय पीपल और सेंधानोनका चूर्ण अदरकके रसके साथ सेवन करें तो एक सप्ताहमें श्वासरोग शान्त हो । पीपल, आमला, और सोंठका चूर्ण, सहत, बूरा और घीके साथ बारंवार सेवन करनेसे हिचकी और श्वासरोग नष्ट होता है । गिलोय, सोंठ, भारंगी, कटेरी, और जलकुम्भी, इनके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण डालके पीनेसे श्वास और खांसी दूर होती है । बेलगिरी,

अद्वसा और मूल तथा पत्रसमेत सफेद दण्डोत्पलका रस सरसोंके तेलके साथ पीनेसे अथवा भारंगीको गुडादिके द्वाग पीनेसे—असाध्य श्वासरोग शान्त होताहै ॥ ७-१७ ॥

अथ शृंग्यादिचूर्णम् ।

शृंगीकटुत्रयफलत्रयकण्टकारी-

भाङ्गीसिपुष्करजटालवणा निपंच ।

चूर्णपिबेदपिशिवेनजलेनहिका-

श्वासोर्द्ध्वातकसनाऽरुचिपीनसेषु ॥ १८ ॥

अर्थ—काकडाशिंगी, त्रिकुटा, त्रिफला कटेरी, भारंगी, पोहकरमूल, पंच-लवण, इनका चूर्ण बना, जलके साथ पीनेसे—हिका, श्वास, ऊर्द्ध्वात खाँसी, अरुचि और पीनमरोग दूर होताहै ॥ १८ ॥

अथ कुलत्थषट्पलंवृत्तम् ।

कुलत्थादशमूलाच्चभाङ्गर्याःप्रस्थंपृथक्पृथक् ।

क्राथयित्वाजलद्रोणेपादशोपेविपाचयेत् ॥ १९ ॥

द्विशीरंसर्पिषःप्रस्थंसक्षारैःपंचकोलकैः ।

पलिकैस्तर्ज्ज्यैस्तैस्त्र्यंश्वश्वासंकासंसपीनसम् ॥ २० ॥

प्लीहक्षिन्नहृण्यशौगुल्मांश्चविपमज्वरान् ।

कुलत्थषट्पलंसर्पिर्बलवर्णाग्निदीपनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—कुलथी, दशमूल, और भारंगी, प्रत्येक चौसठ चौसठ तोले लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उसमें २५६ दोसौ छप्पन तोले दूध, ६४ चौसठ तोले घी, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, चीता, चव्य, सांठ, पीपल और पीपलामूल, यह प्रत्येक चार चार तोले मिलाकर घृतको लिद्ध करे । यह घृत—श्वास, खाँसी, पीनस, प्लीहा, हिचकी, संग्रहणी, बवासीर, गुल्म और विपमज्वरको दूर करे । यह कुल-त्थषट्पल घृत—बल, वर्ण और अग्निको दीपन करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ कुलत्थगुडः ।

कुलत्थोदशमूलञ्चतथैवजिघृष्टिका ।

शतंशतञ्चसंगृह्यजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ २२ ॥

पादावशेषेतस्मिंश्चगुडस्यार्द्धलांक्षिपेत् ।

शीतीभूतेचपक्वेचमधुनोऽष्टौपलानिच ॥ २३ ॥

षट्पलश्चतुगाक्षीय्याःपिप्पल्याश्चपलद्वयम् ।

त्रिसुगन्धिसुगंधंतत्त्वादेः त्रिबलंप्रति ॥ २४ ॥

श्वासंज्वरंज्वरंहेक्कानाशयेत्तमकन्तथा ॥ २५ ॥

काथत्रेजलद्रोणत्रयमेव ।

पिप्पलीमानसान्निध्यात्रिसुगंधिपलद्वयम् ।

अर्थ—कुलथी, दशमूल और भारंगी, यह प्रत्येक ४०० चारसौ तोले लेकर तीन द्रोण पानीमें पकावै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब २०० दोसौ तोले गुड मिलाकर फिर पकावै, शीतल होनेपर ३२ बत्तीस तोले सहत, बंशलोचन २४ चौबीस तोले, पीपल आठ तोले और त्रिसुगन्धिका चूर्ण ८ आठ तोले मिला, इसको अग्निका बलाबल विचार कर खावै तो—श्वास, खांसी, ज्वर, हिचकी और तमकश्वास, दूर होवै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ बृहत्कुलथगुडः ।

चतुष्पलमूलकशुण्ठिकायास्तथैवशुद्धस्यकुलथकस्य ।

तुलांप्रदद्याद्दशमूलकस्यद्रोणेऽम्भसःसर्वमिदंपचेच्च ॥ २६ ॥

पूतेरसेपादचतुर्थशेषेप्रस्थप्रमाणंरसमार्द्रकस्य ।

दत्त्वाहविस्तैलपलाष्टकश्चगुडस्यशुद्धस्यतुलांपचेच्च ॥ २७ ॥

चूर्णैर्युतंजीरकचव्यशृंगीभाङ्गीत्रिसौगन्धिककट्फलैश्च ।

मुस्तायव नीशाठिपुष्करैश्चसव्योषकैर्द्धपलप्रमाणैः ॥ २८ ॥

अर्द्धाक्षिपेन्माक्षिकप्रस्थमात्रापथ्याशनःस्यादुपयोगक ले ।

कफोद्धवायेचविकारजाताःश्वासःसकासोद्दयक्षतश्च ॥ २९ ॥

हृत्पाश्वर्शूलज्वरवान्तितृष्णास्वरक्षयारोचकवह्निसादाः ।

तेनाशमायान्त्युपयोगकाले कुलथसंज्ञस्यगुडस्यशीघ्रम् ३०

अर्थ—पीपरामूल १६ सोलह तोले, सोंठ १६ सोलह तोले, कुलथी १६ सोलह तोले और दशमूल ४०० चारसौ तोले लेवै, इन सबको १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावै, जब चौथा भाग शेष रहै, तब अदरखकारस

चौसठ तोले, घृत बत्तीस तोले, तेल बत्तीस तोले, गुड चारसौ तोले मिलादे, फिर जीरा, चव्य, काकडासिंगी, भारंगी. दालचीनी, इलायची, तेजपात, कायफल, नागरमोथा, अजवायन, कचूर, पोहकरमूल, सोंठ, मिरच, और पीपल यह सब दो दो तोले मिला देवै, पश्चात् चौसठ तोले सहत मिलाकै सेवन करै और ऊपरसे पथ्य भोजन करै । यह कुलत्थगुड-कफ, श्वास, हृदयक्षत, हृदय-शूल, पसलीशूल, ज्वर, वमन, तृष्णा, स्वरक्षय, अरुचि और मन्दाग्नि को दूर करताहै ॥ २६-३० ॥

अथ सूर्यावर्तरसः ।

सूताद्धगंधकंमर्द्ययामैकंकन्यकाद्रवैः ।

द्वयोस्तुल्यंताप्रपत्रंपूर्वकल्केनलेपयेत् ॥ ३१ ॥

दिनैकंहण्डिकायंत्रेपक्वमादायचूर्णयेत् ।

सूर्यावर्तोरसोनामद्विगुंजंश्वासजिद्वजेत् ॥ ३२ ॥

इन्द्रवारुणिकामूलंदेवदारुकटुत्रिकम् ।

शर्करासहितंखादेदूर्ध्वश्वासप्रशान्तये ॥ ३३ ॥

निष्कैकंलेहयेद्वापिक्षौद्रेणकटुरोहिणीम् ।

श्वासश्चारोचकंहन्तिमरिचंदाडिमंगुडम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-पारा दो भाग, गंधक एक भाग. इन दोनोंको घीकुवारके रसमें एक प्रहर खरल करै, फिर दोनोंकी बराबर तांबेके पत्र ले उनपे पूर्वोक्त कल्कका लेप करै, पश्चात् उन पत्रोंको हण्डिकायंत्रमें एक दिन पकावै, शीतल होनेपर चूर्ण करले । इसको दोरत्ती प्रमाण खावै तो श्वास गेग दूर होवै । इन्द्रायणकी जड़, देवदारु, त्रिकुटा, इनके चूर्णमें चूरा मिलाकर खावै तो ऊर्ध्वश्वास दूर होवै । दो तोले कुटकीके चूर्णमें सहत मिलाकर खानेसे अथवा कालीमिरचोंका चूर्ण, अनारदाना और गुड मिलाकर खानेसे-श्वास और अरुचि दूर होतीहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ उदयभास्कररसः ।

धान्याभ्रंमृतकंगंधंश्वेतापामार्गजद्रवैः ।

तुल्यांशंमर्दयेच्चापियन्त्रेपातालकेपचेत् ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वलग्नन्तुसंग्राह्यंसोह्युदयभास्करः ।

श्वासपञ्चविधंहन्तिद्विगुंजमनुपानतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—धान्याभ्रक, वारा और गंधक, इनको समानभाग लेकर सफेद कोयल, और चिरचिटेके रसमें खरलकर प्रातालयन्त्रमें पकावै, फिर ऊपरके पात्रमें उडके लगेहुए द्रव्यको सुखाकर दो रत्ती प्रमाण अनुपानके साथ खावै तो पांच-प्रकारके श्वास दूर होवै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ दाडिमाद्यंचूर्णम् ।

दाडिमं नागरं हिं गुसर्जसैन्धवपौष्कराः ।

रास्नाचात्रसमंचूर्णकर्षघृतेन संपिबेत् ॥ ३७ ॥

कासश्वासहरंचूर्णं दाडिमाद्यं न संशयः ॥ ३८ ॥

अर्थ—अनार, सोंठ, हींग, राल, सैंधानोन, पोहकरमूल, रास्ना इन सबको समानभाग लेकर चूर्णबना दो तोले घीके साथ पीवै तो यह दाडिमाद्यचूर्ण निःसन्देह खाँसी और श्वासको दूर करै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथ विडंगादिचूर्णम् ।

विडंगपिप्पलीचैलात्वचञ्चप्रतिकार्षिकम् ।

त्रिकर्षमरिचस्यापि नागराच्च चतुष्पलम् ॥ ३९ ॥

सर्वतुल्यासितायोज्याकर्षमात्रं च भक्षयेत् ।

कासश्वासज्वरप्लीहापाण्डुरोगक्षयापहम् ॥ ४० ॥

अर्थ—बायविडंग, पीपल, इलायची, दालचीनी, यह प्रत्येक दो दो तोले लेंवै, कालीमिरच छै तोले लेंवै, सोंठ सोलह तोले लेंवै, सबका चूर्णबना फिर सबकी बराबर बूरा लेंवै, सबको मिलाकर दो तोले प्रमाण खावै तो खाँसी, श्वास, ज्वर, प्लीहा, पाण्डुरोग और क्षयरोग दूर होवै ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ गंधकसेवनविधिः ।

गंधकं मरिचं साज्यं पिबेद्वातकफापहम् ।

गंधकं घृतपानेन श्वासयक्ष्मक्षयापहम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—गंधक, कालीमिरच और घी इनको मिलाकर पीवै तो वात और कफ दूर होवै, अथवा केवल गंधकको घृतके साथ पीवै तो श्वास, यक्ष्मा और क्षयरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

अथ मेघडम्बररसः ।

तण्डुलीयद्रवैः पिष्टं तुल्यं च गंधकम् ।

वज्रः क्षातं पच्यद्गुधरेभ सतांष्टले ॥ ४२ ॥

दशमूलकषायेणभावयेत्प्रहरद्वयम् ।

गुंजाद्वयंजयत्याशुहिक्काश्वासज्वरप्रणुत् ॥ ४३ ॥

अनुपानेनदातव्यंरसोऽयंमेघडम्बरः ।

अभयापिप्पलीभाङ्गीपुष्करंकर्कटीशठी ॥ ४५ ॥

शर्कराष्टगुण्डंयोज्यमनुपानंप्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—पारे और गंधकको समानभाग लेकर चौलाईके रसमें पीस वज्रमृपामं रख भूधरयंत्रके द्वारा षूंकदेवै, फिर दोप्रहरपर्यन्त दशमूलके काढेमें भावनादे, पश्चात् इस मेघडम्बर रसको दोगुंजाप्रमाण अनुपानके साथ सेवनकरनेसे—हिचकी, श्वास, और ज्वरको हरैहै । हरड, पीपल, भारंगी, पोहकरमूल, काकड़ाशिंगी और अमियाहलदी, इनका चूर्ण समान भाग ले और आठगुना बूरा लेवे, सबको मिला अनुपान करे ॥ ४२—४६ ॥

अथ हिक्कादिहरोपायः ।

पापाणभेदीमत्स्याक्षीद्रवैःपिष्टन्तुमर्दयेत् ।

तद्गोलंलेपयेद्वाह्येकलकैःपापाणभेदकैः ॥ ४६ ॥

मत्स्याक्ष्याश्चदलंलेप्यंदत्त्वापातालयंत्रके ।

स्वेदयेद्याममात्रंचरसोऽयंयोगवाहकः ॥ ४७ ॥

गुंजाद्वयंप्रदातव्यंहिक्कावैस्वर्यश्वासजित् ।

दशमूलेपिवेच्चानुसकुलत्थैःकपायकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—पापाणभेदको मत्स्याक्षी (मछेड़ी) के रसमें घोटकर गोला बनालेवै, पश्चात् उस गोलेके ऊपरके भागको मत्स्याक्षी और पापाणभेदके कल्कसे लेप कर पातालयंत्रमें एकप्रहरतक पकाकर चूर्णकरले । इसको दो गुंजाभर खानेसे हिक्का, स्वरभेद और श्वास दूर होताहै । इसके ऊपर दशमूल और कुलथीके काढेका अनुपान करे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ चन्द्रिकाबद्धरसः ।

द्राभ्याञ्चरसगंधाभ्यांकज्जलींकारयेद्बुधः ।

निशाभांकारयेन्मूषांकज्जलींतांविनिक्षिपेत् ॥ ४९ ॥

पलैकंरुद्धताम्रस्यपत्रिकांतत्रनिक्षिपेत् ।

सम्यङ्निरुध्यसंशोष्यंक्षिपेत्कुक्कुटकेपुटे ॥ ५० ॥
 स्वांगशीतलमुद्धृत्यधमेट्टंकणसंयुतम् ।
 काचटंकणयोगे नधमेत्तंचाष्टधापुटे ॥ ५१ ॥
 ईषद्वंगसमायोगःसमावर्तिततारकम् ।
 सार्द्धतेनैवभावेननिष्कमद्वेष्ट्योष्ट्रेण ॥ ५२ ॥
 गोजलैर्धाभिन्नंस्वल्गंधकसंयुतम् ।
 मूषिकायांविनिक्षिप्यरुद्धातंप्रधमेत्ततः ॥ ५३ ॥
 द्वित्रिवारंकृतेह्येवंतारंतत्रजीर्यति ।
 जीर्णसुवर्णमानञ्चतत्रनागंनियोजयेत् ॥ ५४ ॥
 तद्गोलंतत्रचादायकटुत्रितयकटुफलैः ।
 चूर्णितैःसहसंयोज्यतुलामात्रंनिषेवितम् ॥ ५५ ॥
 श्वासंकासंक्षयंशूलंप्लीहगुल्माग्निमन्दताम् ।
 वातरोगमशेषञ्चकफरोगमनेकधा ॥ ५६ ॥
 ज्वरंनानाविधंचैवपीडामुदरसम्भवाम् ।
 ग्रहणींश्वयथुञ्चैवअर्शांसिचभगन्दरम् ॥ ५७ ॥
 यकृद्वृद्धितथाप्लीहमेदोवृद्धिञ्चविद्रधिम् ।
 एवमन्या नृहरेद्व्याधींस्तमःसूर्योदयेयथा ॥ ५८ ॥
 तत्तद्गोगहरैर्योगैर्योजनीयःसदारसः ।
 चन्द्रिकाबद्धसूतोऽयंजलदोषनिवारणः ॥ ५९ ॥
 स्वस्थानंनित्यमेवात्रदेहलाघवकारकम् ॥ ६० ॥
 रसगंधकयोःपलमेकंग्राह्यंनिशाभांनिशाकारमूषाम् ।

इति हिकाश्वासाध्यायः ।

अर्थ—पारा और गंधक समानभाग लेकर कज्जली कर, फिर रातमें मूषा बनावै, कज्जलीको मूषामें रख उसके ऊपर चारतोले शुद्ध तांबेके पत्र रक्खै, पश्चात् मूषाको अच्छेप्रकार बंदकर कुक्कुटपुटमें पकावै, शीतल होनेपर बराब-

रका सुहागा मिलाके फिर पकावै, तदनंतर काँच और सुहागा समानभाग मिलाकर आठबार पुटपाक करै, फिर दोतोले वंग और दो तोले चाँदी मिलाके आठबार गोमूत्रमें भावना देवै, फिर कुछ थोडासा गंधक मिलाकर सम्पुटमें रख दो या तीन बार अग्निमें पकावै, इसप्रकार करनेसे चाँदी जीर्ण होजाती है । पश्चात् चाँदीकी बराबर सोनेकी भस्म और सीसेकी भस्म मिलाकर गोला बनालेवै, पश्चात् गोलेमें साँठ, मिरच, पीपल और कायफलका चूर्ण मिलाकर सेवन करै तो श्वास, खाँसी, क्षय, शूल, प्लीहा, गुल्म, मन्दाग्नि, सर्वप्रकारके वातरोग, नानाप्रकारके कफरोग, अनेकप्रकारके ज्वर, उदरकी पीडा, संग्रहणी, सूजन, बवासीर, भगंदर, यकृत, अंडवृद्धि, प्लीहा, मेदवृद्धि, विद्राधिरोग, इत्यादि रोग ऐसे दूर होवैं, जैसे सूर्यसे अंधकार दूर होताहै । यह रस यथारोगोक्त अनुपानके साथ सेवनकरना चाहिये । यह चंद्रिकाबद्धरस—जलदोषविनाशक है, तथा शरीरको हलका करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

इति हिक्राश्वासधिकारः समाप्तः ।

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातेसलवणंतैलंपित्तसर्पिःसमाक्षिकम् ।
 कफेसक्षारकटुकंक्षीरंकवडइष्यते ॥ १ ॥
 गलेतालुनिजिह्वायादन्तमूलेषुचाश्रुतः ।
 तेननिष्कुप्यतेश्लेष्मास्वरश्चास्यप्रसीदति ॥ २ ॥
 पथ्यापिप्पलिसंयुक्तानागरेणगुडेनवा ।
 बदरीपत्रकलंकवाघृतभृष्टंससैन्धवम् ॥ ३ ॥
 स्वरोपघातेकासेचलेहमेनंप्रयोजयेत् ।
 अजमोदांनिशांघात्रीक्षारंवह्निंविचूर्णयेत् ॥ ४ ॥
 मधुसर्पिर्हृत्तंलीङ्गास्वरभेदंव्यपोहति ॥ ५ ॥
 कलितरुफलसिन्धुः कणाचूर्णतन्नेप्लीढमपहरति ।
 स्वरभेदंगोपयसापिबतिवामलकचूर्णम् ॥ ६ ॥
 शर्करामधुमिश्राणिशृतानिमधुरैःसह ।
 पिबेत्पयांसियस्योच्चैर्वदतोहिदितःस्वरः ॥ ७ ॥

अर्थ—वातसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें तेलके साथ नोन पीना चाहिये । पित्तसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें घीके साथ सहत मिलाकर पीवै, कफके स्वरभेदमें जवाखार और त्रिकुट्टिका चूर्ण दूधमें मिलाकर कुल्लेकरै तो गल, तालु, जिह्वा और दन्तमूलका कफ निकलकर स्वर शुद्ध होजाताहै, हरड और पीपलके चूर्णको मिलाकर खावै, अथवा सोंठके चूर्णको गुडमें मिलाकर खावै, वा बेरीके पत्तोंके कल्कको घीमें भूजकर सेंधानोन मिलाकर खावै तो स्वरभेद और खांसी दूर होवै । अजमोदा, हलदी, आमला, जवाखार और चीतेके चूर्णको सहत और घीमें मिलाकर खानेसे स्वरभेदरोग दूर होताहै । वहेडा, सेंधानोन और पीपल इनके चूर्णको छौंछमें मिलाकर पीनेसे स्वरभेदरोग दूर होताहै । गायके दूधमें आमलोंका चूर्ण मिलाके पीनेसे स्वरभेदरोग नष्ट होताहै । मधुर औषधियोंको दूधमें आटाके बूरा और सहत मिलाकर पीनेसे ऊंचेस्वरसे भाषण करनेका स्वरभेद दूर होजाताहै ॥ १-७ ॥

अथ चव्यादिचूर्णम् ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीकं

तालीशबीजकतुगादहनैःसमांशैः ।

चूर्णगुडप्रमृदितं त्रिसुगंधियुक्तं

वैस्वर्यपीनसकफारुचिषुप्रशस्तम् ॥ ८ ॥

अर्थ—चव्य, अमलबंत, त्रिकुटा, इमली, तालीशपत्र, विजोरेकी केशर, वंशलोचन, चीता और त्रिसुगन्धि इनका चूर्ण बना गुड मिलाके सेवन करनेसे स्वरभेद, पीनस, कफ और अरुचि दूर होती है ॥ ८ ॥

अथ भृंगराजाद्यंघृतम् ।

भृंगराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्द्धरसैः ।

सर्पिःसपिप्पलीकंसिद्धंस्वरभेदकासजिन्मधुना ॥ ९ ॥

भृंगराजप्रभृतीनांचतुर्गुणःक्वाथःपिप्पल्याःपादिकःकल्कः ।

अर्थ—भंगरा, पीपल, अडूसा, दशमूल और कसौंदी, इनके रसमें घीको सिद्धकर, पीपलका चूर्ण और सहत मिलाके खानेसे स्वरभेद और खांसी दूर होती है ॥ ९ ॥

अथ पथ्याद्यंघृतम् ।

पथ्यापाठाकणाशुण्ठासैन्धवंमारचंवचा ।

शिशुप्रतिपलंकलकं तद्वित्रिशतं प्लव् ॥ १० ॥

घृताच्चतुर्गुणंक्षीरमाजंसर्पिर्विपाचयेत् ।

घृतशेषंपिबेत्रित्यंवाङ्मेधास्मृतिबुद्धिकृत् ॥ ११ ॥

अर्थ—हरड, पाढ, पीपल, सोंठ, सेंधानोन, कालीमिरच, बच और सेंजिना यह प्रत्येक चार चार तोले ले कल्क बना उसमें १२८ एकसौ अट्ठाईस तोले बकरीका घी और ५१२ पांचसौ बारह तोले दूध मिलाके घीको सिद्ध करे । इस घीको पीनेसे वाणी, मेधा और स्मरणशक्ति बढ़ती है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ अश्वगंधाद्यंघृतम् ।

अश्वगंधाजमोदाचपाठात्रिकटुकत्रिकम् ।

शतपुष्पं ब्रह्मबीजं सेंधवञ्चसमंसमम् ॥ १२ ॥

एतदूर्ध्वचाचैव चूर्णितं मधुसर्पिषा ।

भक्षयेत्कर्षमात्रन्तु जीर्णानि क्षीरभोजनम् ॥ १३ ॥

सहस्रग्रन्थधारी स्यान्मृतो वा वाक्पतिर्भवेत् ॥ १४ ॥

ब्रह्मबीजं पलाशबीजं सर्वचूर्णादूर्ध्वग्राह्यम् ॥

अर्थ—असगंध, अजमोदा, पाढ, त्रिकुटा, त्रिफला, सोया, ढाकके बीज और सेंधानोन, यह प्रत्येक समान भाग लेकर और सबसे आधाभाग बचका चूर्ण लेवे, सबको एकत्रकर घी और सहतमें मिलाकर दो तोले भर खानेसे १००० एक सहस्र ग्रन्थोंका धारण करनेवाला होताहै, पश्चात् मरकर बृहस्पतिके अवतारको धारण करता है, इसके ऊपर दूधका भोजन करना चाहिये ॥ १२—१४ ॥

अथ कल्याणावलेहः ।

सहरिद्रावचाकुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।

अजाजीचाजमोदाचयष्टीमधुकसेन्धवम् ॥ १५ ॥

एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।

तच्चूर्णं सर्पिपालो ज्यप्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ १६ ॥

एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ।

मेघदुन्दुभिनिर्वोषो मत्तको किल निस्वनः ॥ १७ ॥

जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—हलदी, बच, कूट, पीपल, सोंठ, कालाजीरा, अजमोदा, मुलैठी और सेंधानोन, यह सब समानभाग ले एकत्र चूर्णकर घीमें मिला इक्कीस दिन खावै तो अनेकशास्त्रोंको धारणकरनेवाला मनुष्य होजाताहै, यह कल्याणाबलेह-शब्द-को मेघकीसमान और कोकिलकी समान कर देताहै, तथा जडता, गदगदपन और गूंगेपनको दूर करैहै ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ ब्राह्मीवृतम् ।

समूलपत्रमादायब्राह्मीप्रक्षाल्यवारिणा ।

उलूखलेशोदयित्वारसंवस्त्रेणगालयेत् ॥ १९ ॥

रसेचतुर्गुणेतस्मिन्वृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

औषधानितुपेष्ट्याणितानीमानिप्रदापयेत् ॥ २० ॥

हरिद्रामालतीकुष्ठंत्रिवृतासहरीतकी ।

एतेषांपालिकान्भागान्शेषांश्चकार्षिकानिह ॥ २१ ॥

गिष्णुलथविडंगानिसैन्धवंशर्करावचा ।

सर्वमेतत्समालोडयशनैर्मृद्वग्निनापचेत् ॥ २२ ॥

एतत्प्राशितमात्रेणवाग्विशुद्धिश्चजायते ।

अर्द्धमासप्रयोगेणसोमराजवपुर्भवेत् ।

सप्तरात्रप्रयोगेणकिन्नरैःसहगीयते ॥ २३ ॥

मासमेकप्रयोगेणस्मृतमात्रन्तुधारयेत् ॥ २४ ॥

हन्त्यष्टादशकुष्ठानिअर्शांसिविविधानिच ।

पंचगुल्मान्प्रमेहांश्चकासंपंचविधंजयेत् ॥ २५ ॥

वन्ध्यानाञ्चैवनारीणांनराणामल्परेतसाम् ।

वृतंसारस्वतंनामबलवर्णाश्विर्वर्द्धनम् ॥ २६ ॥

इति स्वरभेदाऽध्यायः ।

अर्थ—मूल और पत्तां समेत ब्राह्मीको लेकर पानीसे धो डाले, फिर ओखलीमें कूटकर वस्त्रमें निचोडके रस निकालले, यह रस २५६ दोसौ छप्पन तोले और इसमें चौसठ तोले घी मिलाके पकावै, फिर हलदी, मालती, कूट,

निसोत, हरड, यह प्रत्येक चार २ तोले, पीपल, बा. बिल्व, सैधानोन, बूरा, और वच, यह प्रत्येक दो २ तोले मिलाकर धीरे धीरे मृदु अग्निसे पकावै, शतिल होनेपर उतार लैवै, इस घृतको सेवनकरनेसे शब्द शुद्ध होजाताहै । इसको सातरात्रिपर्यन्त खावै तो किन्नरकी समान शब्द होजावै, इसको पंद्रह-दिन सेवनकरनेसे शरीर चन्द्रमाकी समान निर्मल होजाताहै, और इसको एक महीने सेवनकरनेसे सम्पूर्ण शास्त्रोंको धारणकरनेवाला मनुष्य होजाताहै । तथा यह घी-अठारह प्रकारके कोढ़, अनेक प्रकारकी बवासीर, पांचों प्रकारके गुल्म, सर्वप्रकारके प्रमेह, पांचों प्रकारकी खाँसी, इन सबको दूर करैहै और बंध्या स्त्री तथा अल्पवीर्यवाले पुरुषोंके यह तेल-बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ानेवालाहै ॥ १९-२६ ॥

इति स्वरभेदाध्यायः समाप्तः ।

अथारोचकचिकित्सा ।

बस्तिंसमीरणेपिरेविरेकं वमनं कफे ।

कुर्याद्द्विद्वानुकूलानि हर्षणं च मनोघ्नजे ॥ १ ॥

वान्तो वचाद्विरनिले विधिवत्पिबेत्तु

स्नेहोष्णतोयमदिरान्यतमेव चूर्णम् ।

कृष्णाविडंगयवभस्महरेणुभाङ्गी

रासनैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाः ॥ २ ॥

सर्वत्रमदनफलयोगइति बोद्धव्यः ।

पिबेद्बुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं

लेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ।

निम्बाम्बुछर्दितवतः कफजे च पानं

राजद्रुमाम्बुमधुना सह दीप्यकाढ्यम् ॥ ३ ॥

चूर्णयदुक्तमथवानिलजेतदेव

सर्वैश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेच्च ॥ ४ ॥

पानानि च विचित्राणि भक्ष्याणि विविधानि च ।

कर्पूरादिः गन्धीनि प्रयुजीत यथाविधि ॥ ५ ॥

काढेको पीनेसे कफज अरुचि दूर होती है । अमलतासके रसमें अजमोदाका चूर्ण और सहत मिलाकर खानेसे वातज अरुचि दूर होती है । त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अरुचिरोगमें सब प्रकारकी चिकित्सा करनी चाहिये । विविधविचित्र अन्न-पान तथा कर्पूरादि सुगन्धिद्रव्य अरुचिरोगमें प्रयोग करने चाहियें । कूट, कालानोन, जीरा, बूरा, कालीमिरच, विडनोन, आमला, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, चंदन, और कमल अथवा लोध, तेजवल, हरड, त्रिकुटा और जवाखार या अदरखका रस, अनारका रस, जीरा और खांड, इनचार योगोंका तेलके साथ और सेंधानोनके साथ कुल्हा करनेसे सर्वप्रकारकी अरुचि दूर होजाती है । बालछड और धनियाँ अथवा नागरमोथा और आमला वा दालचीनी, दारुहलदी, और अजवायन या पीपल और चव्य अथवा अजवायन और इमली इन पाचों योगोंमेंसे एक किसी योगका चूर्ण करके मुखमें धारणकरनेसे मुख शुद्ध होकर सर्वप्रकारकी अरुचि नष्ट होजाती है । विड या मंचरनोनको सहत और अनारके रसके साथ अथवा इमली, गुड और जलके साथ दालचीनी, इलायची और कालीमिरचोंका चूर्ण मुखमें धारणकरनेसे सर्वप्रकारकी अरुचि दूर होजाती है ॥ १-१२ ॥

अथारुचिहरागुटिका ।

कारव्यज जीराखंडाक्षवृक्षाम्लदाडिमम् ।

सौवर्चलरुडक्षौद्रं सवांसेचिकनाशनम् ॥ १३ ॥

एभिश्चतुर्माषप्रमितागुटिकाकार्य्या ।

अर्थ—सौंफ, जीरा, कालीमिरच, दाख, इमली, अनार, कालानोन, गुड, और सहत, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर चारमासेकी गोलियाँ बनालेवें, इन गोलियोंके रससे सर्वप्रकारकी अरुचि दूर होजाती है ॥ १३ ॥

अथ यवानीखाण्डवः ।

यवानीतिन्तिडीकञ्चनागरञ्चाम्लवेतसम् ।

।।डिमंबदरंचाम्लंकार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ १४ ॥

धान्यसौवर्चलाजाजीवराद्र्जंचार्द्धकार्षिकम् ।

पिप्पलीनांशतंचैकंद्वेशतेमरिचस्य च ॥ १५ ॥

शर्करायाश्चचत्वारिपलान्येकत्रकारयेत् ।

जिह्वाविशोऽन्तर्द्वं तच्चूर्णभक्तरोचनम् ॥ १६ ॥

कासश्वासहरंग्राहिग्रहण्यशोविकारनुत् ॥ १७ ॥

पिप्पलीमरिचयोरुडकेनमानम् ।

अर्थ—अजवायन, इमली, सोंठ, अमलबेंत, अनार और बेर, यह प्रत्येक दो दो तोले, धनियाँ, कालानोन, जीरा, और दालचीनी यह प्रत्येक चारचार तोले, कालीमिरच २०० दोसौ, पीपल १०० एकसौ, तथा खांड चार पल लेवै, इन सबको एकत्र पीसकर सेवनकरनेसे सर्वप्रकारकी अरुचि दूर होजाती है, तथा यह रागखाण्डव जिह्वाको शुद्ध करनेवाला, हृदयको हितकारी खाये हुएको जीर्ण करनेवाला, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, और बवासीरको दूर करै है, और मलरोधक है ॥ १४-१७ ॥

अथ कलहंसकः ।

अष्टादशशिशुपलानिदशमरिचानिविंशतिश्चपिप्पल्यः ॥

आर्द्रकपलंप्रस्थत्रयमारनालस्य ।

विडलवणसहितमेतत्खजाहतंसरतिगंधाढ्यम् ।

व्यंजनसहस्रधातिज्ञेयंसकलहंसकोनाम ॥ १८ ॥

अर्थ—सैंजिनेके बीजोंका चूर्ण अठारह पल, कालीमिरचोंका चूर्ण दशपल, बीस पिप्पली, अदरखकारस एकपल, कांजी तीन सेर और विडनोन, इन सब द्रव्योंको एकत्र पकाकर त्रिसुगंधिका चूर्ण मिलाके लेवै । इसको अनुपान माफिक खानेसे अरुचि दूर होजातीहै ॥ १८ ॥

अथारुचिहरोपायाः ।

यवशारन्तुकपैकंद्वारविंशद्गुणैर्जलैः ।

पादशेषंहरेत्क्वाथंश्लेष्मघ्नंमुखशुद्धिकृत् ॥ १९ ॥

कणापथ्याप्रियंगुश्चदार्दीतेजोवतीनिशा ।

लोघ्नंचप्रतिकर्षैकंदत्त्वात्रिंशद्गुणैर्जलैः ॥ २० ॥

पादशेषंहरेत्क्वाथंपलैकश्चमधुक्षिपेत् ।

गण्डूपाच्छ्वासकासश्चमुखरोगश्चनाशयेत् ॥ २१ ॥

पक्वदाडिमबीजश्चग्राहयेच्चपलाष्टकम् ।

अजाजीभृष्टचूर्णश्चकर्षांशंसितशर्कराः ॥ २२ ॥

पलक्षौद्रेणसंयुक्तंपीतरुचकरंमुखे ।

शर्करादाडिमकाथद्राक्षाखज्ज्वरमेवा ॥ २३ ॥

केशरंमातुलुंगस्यसैन्धवंमधुनापि वा ।

आस्यवैरस्यशान्त्यर्थंभक्षयेत्कर्षमात्रकम् ॥ २४ ॥

मुस्ताद्राक्षामृताशुंठीकिराततित्तकंजलैः ।

काथयित्वापिबेदुष्णमास्यैरस्यशान्तये ॥ २५ ॥

कणातगरसौराष्ट्रीतुल्यतेजोवतीजले ।

मधुयुक्तंपिबेत्काथवैरस्यंश्लैष्मिकंजयेत् ॥ २६ ॥

कपित्थमज्जत्रिकटुचूर्णक्षौद्रसितायुतम् ।

अरोचकेषुसर्वेषुप्रसन्नधारयेन्मुखे ॥ २७ ॥

इति अरोचकाधिकारः ।

अर्थ—एक तोले जवाखारको बत्तीस तोले जलमें पकावे, जब आठताले जल शेष रहै तब उतारले, यह काथ कफनाशक और मुखशोधक है । पीपल, हरड, फूलभियंगु, दासहलदी, तेजबल, हलदी, और लोध ये प्रत्येक एक एक कर्प लेवे और ३२ कर्प पानीमें काढा करे, चतुर्थीश शेष रहे तब एक पल महत डाल कर गंडूष करे, इससे श्वास, कास और मुखरोग नष्ट होतेहैं, पके अनारके बीजोंको आठपल लेकर उसमें अजवायनका भुना हुआ चूर्ण एक कर्प डाले उमका काढा करके एक पल सहत डालके पीनेसे मुखमें रुचि आतीहै, अनारके काथको खांडके साथ, अथवा दाख और खजूरके काथको वा बिजोरेकी केशरकी मंधानोनेके साथ और सहतके साथ दोतालेभर सेवन करनेसे—मुखकी विरसता दूर होतीहै । नागगमोथा, दाख, हरड, सांठ और चिगायना इनके काढ़ेको गरम गरम पीनेसे मुखकी विरसता दूर होतीहै । पीपल, तगर, मोरठकी मिट्टी और तेजबल, इन सबको समानभाग लेकर काढा करे इसकाढ़ेमें सहत मिलाकर पीवे तो कफसे उत्पन्न हुई मुखकी विरसता दूर होतीहै । कैथाकी मांग, त्रिकुटेका चूर्ण, सहत और मिश्री, इनसबको मिलाके मुखमें धारण करनेसे सर्वप्रकाशकी अरुचि दूर होतीहै ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति अरोचकाधिकारः समाप्तः ।

अथच्छर्दिचिकित्सा ।

आमाशयोत्क्लेशभवादिसर्वाश्छर्द्योमतालंघनमेवतस्मत्
प्राक्कारयेन्मारुतजाविमुच्यसंशोधनंवाकफपित्तहारि १
हन्यात्क्षीरोदकंपीतंछर्दिमनसंभवाम् ।

ससैन्धवंपिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ॥ २ ॥

सुतप्तल्लहयूषंवाससर्पिष्कंससैन्धवम् ।

यवागूंमधुमिश्रांवापंचमूलीकृतांपिबेत् ॥ ३ ॥

पंचमूलीस्वल्पा ।

सोदीच्यंगैरिकंपेयंसेव्यंवातण्डुलाम्बुना ।

चन्दनञ्चमृणालञ्चबालकंनगरंवृषः ॥ ४ ॥

सतण्डुलोदकक्षौद्रःपीतःकल्कोवर्मिजयेत् ।

क्वाथःपर्पटजःपीतःसक्षौद्रश्छर्दिनाशनः ॥ ५ ॥

कषायोभृष्टमुद्रस्यसलाजमधुशर्करः ।

छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नःसंप्रकाशनः ॥ ६ ॥

गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैःकथितंपिबेत् ।

क्षौद्रयुक्तंनिहन्त्याशुच्छर्दिपित्ताम्लसंभवाम् ॥ ७ ॥

कोलामलकमज्जानौमाक्षिकविट्सितामधु ।

सकृष्णातण्डुलोलेहश्छर्दिमाशुनियच्छति ॥ ८ ॥

अश्वत्थवल्कलंशुष्कंदग्ध्वानिर्वापितंजले ।

तज्जलंपानमत्रेणच्छर्दिजयतिदुस्तराम् ॥ ९ ॥

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां

क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् ।

पथ्यामृतामारिचमाक्षिकपिप्पलीनां

लेहास्त्रयःसकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ १० ॥

कृतंगुडूच्याविधिवत्कपायंहिमसंज्ञितम् ।

तिमृष्वपिभवेत्पथ्यंमाक्षिकेणसमायुतम् ॥ ११ ॥

अर्थ—आमाशयके उत्कृष्ट होनेसे छर्द्दि होतीहै, इसकारण बातकी छर्द्दिको छोडके शेष छर्द्दियोंमें प्रथम लघन अथवा करुपित्तनाशन जुलाबदेवै । दूध और जल अथवा घी और सेंधानोनको मिलाकर पीनेसे वातकी वमन शमन होतीहै । भूंग और आमलेके यूषको घृत और सेंधानोनके साथ अथवा स्वल्प-पंचमूलकी बनाई हुई यवागृमें सहत मिलाके पीनेसे सर्वप्रकारकी वमन दूर होतीहै । सुगंधवाला और गेरूको चावलोंके जलके साथ पीनेसे अथवा लाल-चन्दन, कमलकीनाल, सुगंधवाला, सोंठ और अड्डसा चावलोंके जलके साथ पीसकर मधुके साथ या पित्तपापड़ेके काढेको मधुके साथ पीनेसे वमन दूर होतीहै । भुनीहुई भूंगोंके काढेमें खीलें सहत और बूरा मिलाकर पीनेसे—वमन, अतीसार, तृषा, दाह और ज्वर दूर होतीहै । गिलोय, त्रिफला, नीम और पर-वल, इनके काढेमें सहत डालके पीनेसे अम्लपित्तसे उत्पन्न हुआ वमन दूर होजा-ताहै । बेरकी मींग, आमलेंकी मींग, मक्खीकी विष्टा, मिथ्री, सहत, पीपल, और चावल इनमक्खी अवलेह बनाकर चाटनेसे सर्वप्रकारका वमन, दूर होजा-ताहै । पीपलके खारका नितग हुआ जल पीनेमें छर्द्दि नष्ट होजाती है । खीलें, कैथ, सहत, पीपल और कालीमिरच अथवा सहत, हर्द, त्रिकुटा, धनियाँ और जीरा, या हर्द, गिलोय, कालीमिरच, सहत और पीपल, इनका अवलेह बना-कर चाटनेमें—वमन और अरुचि दूर होतीहै । गिलोयके शीतल क्वाथमें मधु डालके पीनेमें सर्वप्रकारका वमन दूर होताहै ॥ १-११ ॥

अथैलादिचूर्णम् ।

एलालवंगगजकेशरकोलमज्जा-

लाजाप्रियंगुवनचन्दनपिप्पलीनाम् ।

चूर्णानिमाक्षिकसितासहितानिलीद्रा

छर्द्दिनिहन्ति पफमारुतपित्तजाञ्च ॥ १२ ॥

अर्थ—इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरकी मींग, खीलें, फूलप्रियंगू, नागरमोथा, चन्दन, और पीपल, इनका चूर्ण बना निममें सहत मिलाकर खावे तो—सर्वप्र-कारकी छर्द्दि दूर होवै ॥ १२ ॥

अथ पंचकायघृतम् ।

चन्दनमधुकंक्षीरपीतरुधिरवान्तिजित् ।

पद्मकंगु-चीनिम्बधन्याकरक्तचन्दनम् ॥ १३ ॥

कल्केकाथेचद्विषःशस्तंछर्दिनिवारणम् ।
 तृष्णारुचिप्रशमनंदाहज्वरनिवारणम् ॥ १४ ॥
 खण्डनारिकेलखण्डकूष्माण्डच्यवनप्राशाद-
 योऽत्रयोज्याः ।

इति छर्द्यधिकारः ।

अर्थ—चन्दन और मुलैठीके चूर्णको दूधमें मिलाकर पीनेसे रक्तवमन, दूर होताहै । पन्नाख, गुडूची (गिलोय), नीम, धनियाँ, लालचन्दन, इनके कल्कमें और काथमें घीको सिद्धकर खानेसे वमन, तृष्णा, अरुचि और दाह-ज्वर दूर होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

नारिकेलखण्ड, खण्डकूष्माण्ड और च्यवनप्राशको सेवनकरनेसे सर्वप्रकारका वमन विनष्ट होजाताहै ॥

इति छर्द्यधिकारः समाप्तः ।

अथ तृष्णाचिकित्सा ।

वान्तिःसर्वाःतृष्णासुक्षयादन्यत्रपूज्यते ।
 विलोडनञ्चसर्वासं प्रयोगैर्विविधैर्हितम् ॥ १ ॥
 वातपित्तहरःकृत्स्नोविधिःप्रायोऽत्रशस्यते ।
 तृष्णायांपवनोत्थायांसगुडं दधिशस्यते ॥ २ ॥
 रसाश्चबृंहणाःसितागुडूच्यारसएववा ।
 लाजोदकमधुयुतंशीतंगुडविमर्दितम् ॥ ३ ॥
 काश्मर्य्याःशर्करायुक्तंपिबेत्तृष्णादितोरसम् ।
 ओदनंरक्तशालीनांशीतमाक्षिकसंयुतम् ॥ ४ ॥
 भोजयेत्तेनशम्येतच्छर्दिस्तृष्णाचिरोत्थिता ।
 ३ । एजम्बूकषायंवापिबेन्माक्षिकसंयुतम् ॥ ५ ॥
 छर्दिसर्वाप्रणुदतितृष्णा चैवापकर्पति ।
 ४ । छर्दिस्तृष्णादाहस्त्रीमद्यभृशकर्पिताः ॥ ६ ॥
 पिबेयुःशीतलंतोयंरक्तपित्तमदात्यये ।

दाडिमस्यतुबीजानिजीरं नागकेशरम् ॥ ७ ॥
 चूर्णसशर्करक्षौद्रोले स्तृष्णान्द्राणाम् ।
 पैत्तेतृपिसिताः कः पक्वोदुम्बरजोरसः ॥ ८ ॥
 तत्काथः ॥ हिमः ॥ द्रच्छारिवादिगणाम्बुवा ।
 वटशुङ्गामयक्षौद्रलाजानीलोत्पलैर्हृदा ॥ ९ ॥
 गुडिकावदनेन्यस्ताक्षिप्रंतृष्णामुदस्यति ।
 स्तकं चन्दनोशीरपद्मकं रक्तचन्दनम् ॥ १० ॥
 एतैः शिरसिलेपेन क्षिप्रंतृष्णामुदस्यति ।
 शुष्कं न्यग्रोधकाष्ठञ्च दग्ध्वानिर्वापयेज्जले ॥ ११ ॥
 तज्जलं पानमात्रेण क्षिप्रंतृष्णां विनश्यति ।
 पुनर्नवाह्वपामार्गमूलकं जीरकद्वयम् ॥ १२ ॥
 तत्रापिष्टं पिबेद्यस्तु मुखशोषप्रशान्तये ।
 खर्जूरं दाडिमं द्राक्षातिन्तिडीकं परूषकम् ॥ १३ ॥
 चित्रकामलकन्तोयैः काथं पादावशोपितम् ।
 संयुक्तं निखिलं चैव तृष्णादाहहरं परम् ॥ १४ ॥
 पलैकं चन्दनं तोयैर्द्वात्रिंशद्गुणितैः पचेत् ।
 अर्द्धशेषं पिबेन्नित्यं दाहतृष्णाज्वरापहम् ॥ १५ ॥
 द्राक्षाखर्जूरकोलानां प्रतिपंचपलं भवेत् ।
 पचेदष्टगुणतोये पादशेषं सुशीतलम् ॥ १६ ॥
 त्वगेलापत्रकं चूर्णं प्रतिनिष्कद्वयं क्षिपेत् ।
 क्षौद्रं पलचत्वारिपानात्तृष्णास्रशोपजित् ॥ १७ ॥
 खर्जूरशीरमृद्वीकापद्मकं पद्मकेसरम् ।
 धात्रीपलकं व्याघ्रीवलायष्टिकचन्दनम् ॥ १८ ॥
 मधूकपुष्पकाश्मर्य्यतोयैश्चैव चतुर्गुणैः ।
 पक्वंपर्युषितं रात्रौ स्थितं भाण्डेन वेदहे ॥ १९ ॥

लाजाचूर्णञ्चतद्युक्तंशर्करामधुसंरतम् ।

तृष्णादाहहरंपानेजातीपुष्पाधिवासितम् ॥ २० ॥

मूच्छादाहभ्रमंहन्ति तृष्ण मर्त्यन्तदारुणाम् ।

तृपितोमोहमायातिमोहात्प्राणंप्रमुञ्चति ॥ २१ ॥

तस्मात्सर्वास्ववस्थामुनक्चिद्धारिवार्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—क्षयजको छोड़कर बाकीके सर्व तृषारोगोंमें वमन करानी चाहिये, तथा वातपित्तनाशक क्रिया तृषारोगोंमें हितकारीहै । वातकी तृषामें गुडके साथ दहीका खाना उत्तमहै । पुष्टिकारक रस, खँड और गिलोयका रस यह तृषारोगमें पीने चाहियें । खीलोंके शीतलजलमें सहत और गुड मिलाकर पीनेसे तृषारोग दूर होतीहै, कुम्भेरके रसमें खँड मिलाकर पीनेसे तृषा दूर होतीहै । लाल धानके चावलोंके भातको सहतके संग खानेसे तृषा और वमन नष्ट होताहै । आम और जामुनके काथमें सहत डालके पीनेसे, तृषा और वमन नष्ट होता है । मूच्छा, वमन, तृषा, दाह, स्त्रीप्रसंग और मद्यपानसे क्षीणहुए मनुष्यको तथा रक्तपित्त और मदात्यय रोगीको शीतलजल पीनेको देना चाहिये । अनारकेबीज, जीरा और नागकेश इनके चूर्णमें बूरा और सहत मिलाकर चाटनेसे तृषारोग नाश होताहै । पकेहुए गुलरकेरसमें अथवा काथमें खँड डालके पीनेसे पित्तकी तृषा दूर होतीहै । सागिवादिगणका काथ शीतलकर पीनेसे पित्तकी तृषा दूर होतीहै । बड़के अंकुर, खील, सहत और नीलोत्पल (जिसके अभावमें फा० में नीलोफर लेतेहैं), इनकी बनाई हुई गोली मुखमें खानेसे तृषा दूर होजाती है । नागरमोथा, चन्दन, खम, पद्माख और लालचन्दन, इनको पीसकर शिरपै लेप करनेसे तृषा दूर होजातीहै । बड़की सूखी हुई लड्डियोंको जलाके क्षार बना उस क्षारको जलमें नितारके पीनेसे तृषा दूर होजातीहै । पुनर्नवा, चिरचिटा, मूली, संकेदजीरा और कालाजीरा इनको समानभाग लेकर मट्टेमें पीस सेवन करनेसे—मुखशोषरोग दूर होताहै । पिण्डखजूर, अनार, दाख, इमली, फालसा, चीता और आमला इनका चतुर्थांश काथ बनाकर पीनेसे—सर्वप्रकारकी तृषा और दाह दूर होतीहै । चारतेलेभर चन्दनको ३२ बत्तीसगुणे जलमें पकावै, जब आधाभाग जलजाय तब उतारकर पीवै तो दाह, तृषा और ज्वर दूर होवै । दाख खजूर और वेर, यह प्रत्येक बीसबीस तोले लेकर आठगुने पानीमें पकावै, जब चौथाभाग शेषरहै तब उतारले, शीतल होनेपर दालचीनी, इलायची, तेजपात, इनका चूर्ण चारचार मासेभर मिलादेवै और सोलह तोले सहत

मिलादेवे, इसको सेवन करनेसे तृषा और रक्तशोष दूर होताहै । खजूर, दाख, खस, पद्माख, नागकेशर, आमला, फालसा, कटेरी, खिरैटी, मुलैठी, चन्दन, महुएके फूल और कुम्भेर इनको चौगुने जलमें पकावे, जब काढा तैय्यार होजाय तब उत्तम नवीन बासनमें करके रात्रिभर धरा रहनेदेवे, फिर दूसरेदिन खीलोंका चूर्ण, बूरा और सहत मिलाके तथा चमेलीके फूलोंकी वासना देकर सेवन करे तो मृच्छा, दाह, भ्रम और अत्यन्त दारुणतृषा दूर होवे । तृषासे पीडित मनुष्योंके मोह उत्पन्न होताहै, और मोहसे प्राण नष्ट होतेहैं, इसकारण संपूर्ण अवस्थाओंमें तृष्णातुर मनुष्योंको जल पीनेको देना चाहिये ॥ १-२२ ॥

इति तृष्णाधिकारःसमाप्तः ।

अथ मृच्छा ।

सेकावगाहौमणयःसहाराःशीताःप्रदेहाव्यजनानिलाश्च ।
शीतानिपानानिचगंधवन्तिसर्वासुमृच्छासुनिवारितानि ॥
कुर्याच्चनासावदनावरोधंक्षीरंपिवेद्राथचमानुषीणाम् ।
मृच्छाप्रशक्तांतुशिरोविरेकैर्जयेदभीक्षणंवमनैश्चतीक्ष्णैः ॥२॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानांयथादोषंयथाबलम् ।
पंचकर्माणिकुर्वीतमृच्छायेषुमदेषुच ॥ ३ ॥
सिद्धानिवर्गेमधुरेपयांसिसदाडिमाजांगलजारसाश्च ।
तथायवालोहितशालयश्चमृच्छासुशस्ताःससर्तीनमुद्राः॥४॥
यथादोषं कपायाणिज्वरघ्नानिप्रयोजयेत् ।
रक्तजायांमृच्छायांहितःशीतक्रियाविधिः ॥ ५ ॥
मद्यजायां वमेन्मद्यंनिद्रांसेवेद्यथासुखम् ।
विषजायांविषघ्नानिभोजनानिप्रयोजयेत् ॥ ६ ॥
कोलमज्जोषणोशीरकेशरंशी तवारंणा ।
पीतंमृच्छाजलेलीढाकृष्णां वामधुरंयुताम् ॥ ७ ॥
महौषधामृताक्षुद्रापोष्करंग्रन्थिघ्नोत्सहम् ।

पिबेत्कणायुतंकाथंमूर्च्छायेषुमदेषुच ॥ ८ ॥

६ द्राकण्टकारी ।

त्रिफलायाःप्रयोगोवाप्रयोगःपयसोऽपिवा ।

रसायनानां कौम्भस्यसर्पिषोवाप्रशस्यते ॥ ९ ॥

कौम्भं दशवर्षस्थितं घृतम् ।

पिबेद्दुरालभाकाथं सघृतं भ्रमशान्तये ।

शतावरीबलामूलद्राक्षासिद्धं पिबेत्पयः ॥ १० ॥

सघृतं भ्रमनाशाय बीजं वाट्यालकस्य वा ।

आभाशतावरीव्योषसौवर्चलरजः पिबेत् ॥ ११ ॥

उष्णाम्बुना भ्रमेकासे श्वासेनेत्ररुजिज्यहम् ॥ १२ ॥

आभावबुलपर्यायः ।

कल्याणघृतादिकमत्रविधातव्यमिति ।

अर्थ—जलका छिडकना, जलमें घुसकर स्नानकरना, मुक्तादिके हारोंका धारणकरना, चन्दनादिका प्रलेपकरना, शीतलपंखेकी पवन और गुलाबादि शीतल और सुगंधित अकोंका पीना, यह सब कर्म मूर्च्छारोगमें करने चाहियें । मुख और नासिकाको बन्दकरनेसे अथवा स्त्रीके दूधको पीनेसे मूर्च्छा दूर होती है । शिरोविरेचन (अत्यन्त तीक्ष्ण नस्य) अथवा तीक्ष्ण वमन करानेसे—मूर्च्छा दूर होती है । स्नेह और स्वेदसे उत्पन्न हुई मूर्च्छा और मदात्ययरोगमें दोषोंका बलावल विचार कर पंचकर्म (वमन, विरेचन, अनुवासनवास्ति, निरूहवास्ति और नस्य), प्रयोग करने चाहिये । मधुरद्रव्योंके साथ सिद्ध क्रिया-हुआ दूध, अनारके रसके साथ जांगलदेशके जीवोंका मांस, तथा जौ, लाल-चावल, मटर और भूंग, यह सब पदार्थ मूर्च्छारोगमें हितकारी हैं । दोषोंको विचारकर ज्वरनाशक कपाय पीनेसे मूर्च्छा रोग दूर होता है । रक्तकी मूर्च्छा में शीतल क्रिया, मद्यज मूर्च्छा में मदिराकी वमन और निद्रा सेवन करनी चाहियें । विषज मूर्च्छारोगमें विषनाशक भोजन सेवनकरने चाहियें । बेरकी मींग, काली-मिरच, खस और नागकेशरका चूर्ण शीतलजलके साथ, अथवा पीपलका चूर्ण सहतके साथ सेवनकरनेसे मूर्च्छा दूर होजाती है । सोंठ, गिलोय, कटेरी, पोहकर-मूल और पीपलामूल इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे—मूर्च्छा

और मदरोग दूर होता है । त्रिफलेके सेवनकरनेसे, दूधको पीनेसे, रसायन पदार्थोंके भक्षणकरनेसे और दश वर्षके पुराने घीको सेवनकरनेसे—मूर्च्छारोग आराम होता है । धमासेका काढ़ा घीके साथ अथवा शतावर, खिरौटी और दाखोंके साथ पकाया हुआ दूध घीके साथ पीनेसे भ्रमरोग नष्ट होजाता है । बबूरकी फली, सतावर, त्रिकुटा और कालानोन इनका चूर्ण गरमजलके साथ पीनेसे तीन दिनमें भ्रम, खाँसी, श्वास और नेत्ररोग दूर होते हैं तथा कल्याणकादि घृतोंको सेवनकरनेसे भी भ्रमरोग दूर होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ मदाविष्टलक्षणम् ।

शक्ताननद्रुताभाषंचलक्षलितचेष्टितम् ।

विद्याद्वातमदाविष्टंरक्तपीतसिताकृतिम् ॥ १३ ॥

सक्रोधपरुषाभाषीसंप्रहारकलिप्रियम् ।

विद्यात्पित्तमदाविष्टंरक्तपीतसिताकृतिम् ॥ १४ ॥

स्वल्पसंबद्धवचनंतंद्रालस्यसमन्वितम् ।

विद्यात्कफमदाविष्टं पाण्डुप्रध्यानतत्परम् ॥ १५ ॥

अर्थ—शक्तमुखहोवे, बहुत शीघ्रबोले, चंचलतासे गमनादि कार्य करे तथा देह लाल, पीली और सफेद रंगकी होय तो वातका मदाविष्ट जानना । क्रोधमहित कठिनवचन बोले, मारनेकी चेष्टा करे, कलह प्यारी लगे, शरीर लाल, पीला और सफेद रंगका हो तो पित्तका मदाविष्ट जानना । बहुत थोड़ाबोले, तन्द्रा और आलस्यसे संयुक्तहो और शरीर पाण्डुवर्ण होजाय तो कफका मदाविष्ट जानना ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ मदमूर्च्छाहरोपायाः ।

वन्यकरीपत्राणाच्छीतलजलपानाल्लवणभक्षणाद्वापि ।

शाम्यतिपूगीफलमदचूर्णरुजाशर्कराकवलात् ॥ १६ ॥

पथ्याक्वाथेनसंसिद्धंसर्पिर्धात्रीरसेनवा ।

सर्पिःकल्याणकंवापिमदमूर्च्छाहरंपिबेत् ॥ १७ ॥

घृत ३२ पल, हरीतकी या आमलोंका रस ६४ पल, पानीय

५२४ पल, शेष १२८ पल ॥ अकल्कमिदंघृतम् ।

अंजनान्यवपीडाश्चधूमःप्रथमनानिच ।
 सूचिभिस्तोदनशस्त्रैर्दाहःपीडान्यथान्तरे ॥ १८ ॥
 अंजनकेशलोम्नाञ्चदन्तैर्दशनमेव च ।
 आत्मगुप्तावर्षश्चहितस्तस्यावरोधने ॥ १९ ॥
 अवपीडानिर्गुण्डीपत्ररसादिभिर्नस्यम् ।
 प्रथमनंत्रिकटुकादिचूर्णस्यनासायांक्षेपः ॥ २० ॥
 शस्त्रैःपीडेतियोजना ।
 प्रबुद्धसंज्ञमल्पैस्तुल्युभिस्तमुपाचरेत् ।
 विस्मापनैःसंस्मरणैःप्रियैःश्रुतिभिरेवच ॥ २१ ॥
 पटुभिर्गीतवादित्रैःशब्दैश्चित्रैश्चदर्शनैः ।
 विरेकवान्त्यसृक्स्त्रावैर्व्यायामामोदवर्षणैः ॥ २२ ॥
 प्रातर्गुण्डार्द्रकंखादेत्तथामधुलिहन्निशि ।
 मूच्छोन्मादमदंकासंसताहात्पथ्यभुञ्जेत् ॥ २२ ॥

अर्थ—वनकागोवर (अरने उपले) सूँवनेसे वा शीतलजलको पीनेसे अथवा लवणको भक्षणकरनेसे सुपारीका मद दूर होताहै । खाँडका कवल मुखमें धारणकरनेसे चूनादिकी वेदना दूर होतीहै । हरडोंके काथमें अथवा आमलोंके काथमें पकाएहुए घृतको या कल्याणघृतको पीनेसे मद और मूच्छा दूर होतीहै । नेत्रोंमें अंजन लगानेसे, अवपीडन करनेसे, धूम्रपान करनेसे, प्रथमन करनेसे, सुइयोंको चुभानेसे, शस्त्रोंसे तोदनकरनेसे, लोहेकी शलाकासे, दग्धकरनेसे, बाल और रुआँको उखाडनेसे, दाँतोसे काटनेसे, काँछकी फलीको देहपै घिसनेसे और शस्त्रादिकसे डरानेसे मूच्छारोगीको चेत होताहै । नास निर्गुण्डीके पत्तोंके रसका लेना चाहिये, और प्रथमन अर्थात् नाकमें त्रिकुटेका चूर्ण डालना चाहिये । चेतहुए मूच्छा रोगीकी लघु-अल्पक्रिया, आश्चर्यकी वार्त्ता, स्मरण, प्रिय कार्य, प्रियश्रवण, सुंदर गीत, वाद्यादिके शब्द, विचित्रदर्शन, विरेचन, वमन, रक्तमोक्षण, व्यायाम, आमोद और वर्षणके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये । प्रातःकाल अदरखमें गुड मिलाके खाँवै और रात्रिमें अदरखको सहतके साथ घाँटे तो सातदिनमें मूच्छा उन्माद, मद और खाँसी दूर होवै, इसपै पथ्य-भोजन करै ॥ १६-२३ ॥

अथ पुनर्नवाद्यंघृतम् ।

पयः पुनर्नवाकाथेयष्टिकल्कप्रसाधितम् ।

घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पुनर्नवाके काथमें मुलैठीका कल्क और दूध मिलाके घीको पकावै यह घी—पुष्टिकारक और मद्यपानजनित ओजोहीनताको दूर करेहै ॥ २४ ॥

अथ मूर्च्छाहरनस्यम् ।

मुस्तकं सैन्धवं चैव बृहतीफलमेव च ।

यष्टीमधुसमायुक्तं नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ २५ ॥

इति मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्राधिकारः ।

अर्थ—नागरमोथा, सेंधानोन, बडीकटेरीका फल, और मुलैठी, इनके चूर्णका नास लेनेसे तन्द्रा दूर होतीहै ॥ २५ ॥

इति मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्राधिकारः समाप्तः ।

अथ दाहचिकित्सा ।

यत्पित्तज्वरदाहोक्तं दाहेतत्सर्वमिष्यते ।

शतधौतघृताभ्यक्तं लिह्याद्वायवसक्तुभिः ॥ १ ॥

कोलामलकयुक्तैर्वाधान्याम्लैरपि त्रिभिः ।

छादयेत्तस्य सर्वाङ्गान्मांसान् तद्द्रव्याससा ॥ २ ॥

लामज्जेनाथ हृत्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ।

चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपजीविते ॥ ३ ॥

स्वप्यादाहार्दितोऽभोजकदलीदलसम्भवे ।

परिसेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेचने ॥ ४ ॥

शस्यतेशिशिरंतोयंतृष्णादाहोपशान्तये ।

क्षीरैः क्षीरैश्च सुशीतैश्च चन्दनान्वितैः ॥ ५ ॥

अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ।

फलिनीलाध्रसेव्याम् हृत्पत्रं कुटत्रटम् ॥ ६ ॥

कालीयकरसोपेतं दाहेशस्तं प्रलेपनम् ।

सेव्याम्बूशीरवालाचहेमनागेश्वरचूर्णः ॥ ७ ॥

धातुक्षयोत्थेकुर्वीतक्षिप्तांसादिद्विह्वलः ॥ ८ ॥

चन्दनचूर्णकैवर्तमुस्तकम् ।

अर्थ—जो औषधि पित्तज्वरमें कहीहै वह सब दाहरोगमें हितकारी हैं । सो-
वार धुलेहुए घीको शरीरमें मलनेसे, जौके सतुओंके खानेसे, बेर और आम-
लोंके साथ काँजीको पीनेसे, काँजीमें भिजोए हुए वस्त्रको सब शरीरमें ढकनेसे,
लामज्जकतृण और काँजी तथा चन्दनके लेप करनेसे, चन्दनके जलमें ताड़के
पंखेको भिजोकर पवन करनेसे, कमलके पत्तोंकी शय्यापै शयन करनेसे, अथवा
केलेके पत्तोंपै शयन करनेसे, शीतल जलसे परिसेक और अवगाहन तथा, पंखे-
को भिजोकर पवन करनेसे दाह और तृषा शान्त होतीहै । चन्दनसंयुक्त शीतल
दूध, क्षीर कषाय और अन्यान्य शीतलप्रयोगोंके द्वारा अंतर्दाह दूर होती है ।
फूलप्रियंगु, लोध, खस, सुगंधबाला, नागकेशर और कैवर्ती मोथा, इन सब
द्रव्योंको दारुहलदिके रसमें पीसकर प्रलेप करनेसे दाह दूर होता है । धातुक्षय
जनित दाहरोगमें दूध और मांसादि पुष्टिकारक खाद्यद्रव्य देने चाहियें ॥ १ ॥
॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कुशाद्यंतैलघृतञ्च ।

कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकाद्येनसाधितम् ।

तैलघृतवादाहग्रंवातपित्तविनाशनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—कुशादि पंचतृण, लघुपंचमूल, इनके काढ़ेंमें जीवकादि अष्टवर्गका कल्क
मिला घृत वा तेलको सिद्ध करके सेवन करनेसे, दाह और वातपित्त दूर
होते हैं ॥ ९ ॥

अथ महत्कल्याणकघृतम् ।

चतुर्गुणेशतावर्यारसेक्षीरंचतुर्गुणम् ।

सर्पिःप्रस्थंबलाजाजीमंजिष्ठापीवरीनिशा ॥ १० ॥

काकोल्यौमधुःपुष्पकान्तिद्विह्वलः ।

एषामष्टपलैःकल्कैःपचेत्कल्याणकंमहत् ॥ ११ ॥

हृणीयंविशेषेणपुष्टिकारमतम् ।

अर्दितकण्ठशूलश्चनेत्ररागंसुखरुणम् ॥ १२ ॥

दाहोन्मादमपस्म रंवातरुग्वातशोणितम् ।
 उदावर्तगुल्मरोगंहृद्गुजंमूत्रकृच्छ्रकम् ॥ १३ ॥
 मूत्रबद्धोपदंशंचग्रहणीमतिदुस्तराः ।
 गुदाङ्कुरमन्दमग्निश्वासरुग्विषमज्वरौ ॥ १४ ॥
 हलीमकंतथाशूलरक्तपित्तस्वरक्षयम् ।
 कासश्चैवस्वरंभिन्नछर्दिंतृष्णांप्रमेहकम् ॥ १५ ॥
 स्त्रीणारुजंजयेच्छीघ्रंक्षयरोगंसकामलम् ।
 एकजंद्बजं चैवतथैवसान्निपातिकम् ॥ १६ ॥
 सर्वरोगांघृत्तुः हत्कल्याणकंघृतम् ॥ १७ ॥

इति दाहाधिकारः ।

अर्थ—सतावरका रस २५६ दोसौ छप्पन तोले, गायका दूध २५६ दोसौ छप्पन तोले, घी ६४ चौंसठ तोले, खिरटी, जीरा, मजीठ, असगंध, हलदी, काकोली, क्षीरकाकाला, मलठी, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि और देवदारु, इन सबका कल्क ३२ वत्तीस तोले लेंव. सबको विधिपूर्वक मिलाकर घृतको सिद्ध कर, यह महत्कल्याण घृत—बृंहण, पुष्टिकारक, तथा अर्दितरोग, कर्णशूल, दारुणनेत्ररोग, दाह, उन्माद, अपस्मार, वातरोग, वातरक्त, उदावर्त, गुल्म-राग, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रबंध, उपदंश, असाध्यसंग्रहणी, गुदाङ्कुर मन्दाग्नि, श्वासरोग, विषमज्वर, हलीमक, शूल, रक्तपित्त, स्वरक्षय, खाँसी, स्वरभेद, वमन, तृषा, प्रमेह, स्त्रीरोग, क्षयरोग, कामला, ऐकाहिकज्वर. द्वन्द्वज्वर और सन्निपातज्वरको दूर करै है ॥ १०-१७ ॥

इति दाहाधिकारःसमाप्तः ।

अथोन्मादचिकित्सा ।

उन्मादेवातजेपूर्वस्नेहपानंविरेचनम् ।
 दद्यादावृतवातेतुसस्नेहभूर्ध्वशोधनम् ॥ १ ॥
 पेटिकेरेचनंशस्तं वमनंतु ततोत्तरे ।
 स्निग्धस्वित्रेयथादोषं वस्तिनस्यंचयोजयेत् ॥ २ ॥
 रूद्धस्याचारविभ्रंशेतीक्ष्णंलावणमंजनम् ।

ताडनं मनोबुद्धिस्मृतिसंवेजनंहितम् ॥ ३ ॥

तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम् ।

विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ४ ॥

सान्त्वनमाश्वासनम् ।

सर्पैरदन्तैर्दन्तैश्च गजैर्व्याघ्रैस्तथारिभिः ।

त्रासयेद्वाजपुरुषैः शस्त्रहस्तैर्वधोद्यतैः ॥ ५ ॥

प्रदेहोच्छादनाभ्यंगधूमपानञ्च सर्पिषः ।

प्रयोक्तव्यं मनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥ ६ ॥

प्रयोज्यं सर्पपतैलं नस्याभ्यंजनयोस्तथा ।

बद्धं सर्पपतैलात्कुत्तानञ्चातपेन्यसेत् ॥ ७ ॥

सिद्धार्थको वचाहिङ्गुकरंजौ देवदारुच ।

मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक् कटुत्रिकम् ॥ ८ ॥

सर्मांशानि निप्रियंगुश्च शिरिषो रजनी द्वयम् ।

वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमंजनम् ॥ ९ ॥

स्यमालेखनं चैव स्नानं हर्तनं तथा ।

अपस्मारविषोन्मादहृद्यालक्ष्मीज्वरापहः ॥ १० ॥

भूतेभ्यश्च भयं हस्तिराजान् शस्यते ।

सर्पिरेतैश्च सिद्धं वासगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ११ ॥

अर्थ—वातके उन्मादरोगमें प्रथम स्नेहपान और विरेचन तथा वातसमन्वित उन्मादरोगमें सस्नेह शिरोविरेचन करना चाहिये । पित्तज उन्मादरोगमें विरेचन और कफज उन्मादरोगमें वमन कराना चाहिये । स्नेह और स्वेदयुक्त मनुष्यको बलाबलका विचार कर वस्तिकर्म और नस्यप्रदान करना चाहिये । आचारभ्रष्टमनुष्यको तीक्ष्ण नस्य, अंजन और ताडनके द्वारा—मन, बुद्धि और स्मृति उत्पन्न करानी चाहिये । तर्जन (झिडकना) त्रासन (धमकाना) दान, सान्त्वन (प्रियवचनोंसे शान्त करना) हर्षण, भय, आश्रय, आश्चर्य और विस्मृतिके द्वारा उन्माद रोगीके मनको प्रकृतिमें प्राप्त करना चाहिये । सर्प,

विनादाँतोंके अथवा दाँतोंके भयंकर जीव, हाथी, व्याघ्र, शत्रु, शस्त्रको हाथमें धारण किये और बधकरनेको तैयार ऐसे राजाके पुरुषोंसे उन्मादरोगीको भयभीत करावै, इनसे चित्त स्थिर होजाताहै ! उत्तम प्रलेप, श्रेष्ठ आच्छादन, अभ्यंग, धूमपान और घृतपानके द्वारा मन, बुद्धि, स्मृति और संज्ञा यह उत्पन्न होतेहैं । ससोंके तेलका नास देनेसे और ससोंके तेलको शरीरमें मर्दनकरनेसे उन्माद रोग दूर होताहै । उन्माद रोगीको सरसोंके तेलमें भिजोकर फिर सूर्यकी धूपमें पेर फैलाकर सीधा सुलादेवै, इससे उन्मादरोग आराम होताहै । सफेद सरसों, बच, हांग, करंज, देवदारु, मैजीठ, त्रिफला, सफेदकोयल, कट-भीकी छाल, त्रिकुटा, फूलप्रियंगु सिरस, हलदी और दारुहलदी, यह सब समान लेकर बकरीके मूत्रमें पीसके पीनेसे, या आंखोंमें अंजन लगानेसे अथवा नाकमें सूंघनेसे वा लेप करनेसे या उबटन करनेसे अथवा जलमें मिलाकर स्नान करनेसे—अपस्मार, विष, उन्माद, अलक्ष्मी और ज्वर दूर होताहै । यह प्रयोग भूतके भयको दूर करताहै और राजद्वारमें श्रेष्ठहै । अथवा गोमूत्र और उक्तद्रव्योंके कल्कमें घृतको सिद्धकर सेवनकरनेसे उन्माद और अपस्मारादि-रोग नष्ट होजातेहैं ॥ १-११ ॥

अथ त्र्यूषणाद्यावर्तिः ।

त्र्यूषणंहिगुलवणंवचाकटुकरोहिणी ।

शिरीषनक्तमालानांबीजंश्वेताश्चसर्पपाः ॥ १२ ॥

गोमूत्रपिष्टैरेतैस्तुवर्तिनेत्रांजनेहिता ।

चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादंचनियच्छति ॥ १३ ॥

उन्मादेसमधुःपेयोरसोवात्रालजाखजः ॥ १४ ॥

केवलोऽपि ।

अर्थ—त्रिकुटा, हांग, मेंधानोन, बच, कुटकी, मिर्साके बीज, करंजके बीज, सफेद कोयल, और सरसों, इन सबको गोमूत्रमें पीस बत्ती बना कर आंखोंमें लगानेसे चौथियाज्वर, अपस्मार, और उन्मादरोग दूर होताहै अथवा ताडकी शाखाओंके रसमें सहत मिलाकर पीनेमें या केवल ताडकी शाखाओंकाही रस पीनेसे, उन्माद रोग दूर होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथोन्मादहरोपायाः ।

ब्राह्मीकूष्माण्डीफलपद्मग्रन्थाशंखपुष्पिकाःस्वरसाः ।

उन्मादहरादृष्टाः पृथगेतेकुष्ठमधुमिश्राः ॥ १५ ॥

कृष्माण्डलस्यमज्जा ।

दशमूलान्बुसघृतंयुक्तंमांसरसेनवा ।

ससिद्धार्थकचूर्णवापुराणंचैककंघृतम् ॥ १६ ॥

पानाभ्यंजननस्येषुहितमुन्मादिनांसदा ।

उग्रगंधपुराणंस्यादशवर्षस्थितंघृतम् ॥ १७ ॥

लाक्षारसनिभंशीतंप्रपुराणमतःपरम् ॥ १८ ॥

अर्थ—ब्राह्मी, पेठेकी मींग, वच और शंखपुष्पी इनके रसोंमें कूठका चूर्ण और सहत मिलाके अलग अलग सेवन करै तो उन्माद रोग दूर होवै । घृतयुक्त दशमूलका काथ वा, मांसरसके साथ सफेद सरसोंका चूर्ण अथवा केवल पुराने घीको पानेसे, नास लेनेसे और मालिस करनेसे उन्मादरोग दूर होजाताहै । उग्रगंधयुक्त, दशवर्षका रक्खा हुआ, लाखके रंगकी समान ऐसे घीको पुराना घी कहतेहैं और इससे अधिक पुरानेको प्रपुराण घी कहतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ हिंवाद्यंघृतम् ।

हिंगुसौवर्चलंव्योषैर्द्विपलांशैर्वृताढकम् ।

चतुर्गुणेगवामूत्रेसिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ १९ ॥

अर्थ—हींग, कालानोन, त्रिकुटा, यह प्रत्येक आठ आठ तोले लैवै, गोमूत्र ३२ बत्तीस सेर लैवै, इनमें आठसेर घृतको डालके सिद्ध करै, यह घृत उन्माद-रोगनाशकहै ॥ १९ ॥

अथ स्वल्पचैतसंघृतम् ।

पंचमूल्यावकाश्मर्य्यौरास्नैरण्डत्रिवृद्धला ।

मूर्वाशत वरीचेतिकार्थैर्द्विपलिकैरिमैः ॥ २० ॥

कल्याणस्थचाङ्गेनतद्घृतंचैतसंस्मृतम् ।

सर्वचेतोविकाराणांशमनंपरममतम् ॥ २१ ॥

अकाश्मर्योगम्भारीमूलरहितदशमूलम् ।

एषांकाथःकल्याणतस्यकल्कः ।

अर्थ—कुम्भेररहितदशमूल, रास्ना, अरंड, निसोथ, खिरैटी, मूर्वा और शता-
वर, प्रत्येकका आठ आठ तोले काथ लें, और कल्याणघृतमें कहीहुई औषधि
ले कल्क बना काथमें मिलाके चित्तके विकारोंको दूर करदेवै ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ महापैशाचिकंघृतम् ।

जटिलापूतनाकेशीचारटीमर्कटीवचा ।

त्रायमाणजयावीराचोरकंकटुरोहिणी ॥ २२ ॥

कायस्थाशूकरीच्छत्रासातिच्छत्रापलंकषा ।

महापुरुषदन्ताचवयस्थालांगलीद्वयम् ॥ २३ ॥

कटम्भरावृश्चिकालीस्थिराचैवचतैर्घृतम् ।

सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ २४ ॥

महापैशाचिकं नामघृतमेतद्यथामृतम् ।

मेधास्मृतिबुद्धिकरंबालानांचांगवर्द्धनम् ॥ २५ ॥

जटिलाजटामांसीपूतनाहरीतकीकेशीभूकेशः चारटी-
कुम्भाडुर्ब्रह्मीरामकर्कटीशूकशिम्बीजयाजयन्तीवीराक्षी-
रकाकोलीपृश्निपर्णी वा चोरकश्चोरेहलीः कायस्थासि-
न्धुवारःशूकरीवाराहीकन्दः तदभावेचर्मकारत्वक्छत्रा-
मधुरिकैवनतुजीरकंमिसीतिजत्रुकर्णात् अतिच्छत्राशत
पुष्पापलङ्कपागुगुलुः महापुरुषदन्ताशतावरीवयस्था
ब्राह्मीगुडूचीवा लांगलीद्वयं रास्नाद्वयमेकातत्रगन्धरास्ना-
तदभावेभागद्वयम् । कटम्भराभद्राणिकाकटभीवावृश्चि-
कालीविच्छाती । स्थिराशालपर्णीघृतप्रस्थेकल्कार्थप्रत्ये-
कमेषारक्तित्रयोपेतपणमापाधिककर्षणकः कर्षणमा० ६
रक्तिकाः ३ जलघृताच्चतुर्गुणम् । महापैशाचिकमिति मह-
च्छब्दः पूजावचनः चल्पस्याभावात् ॥

अर्थ—बालछड़, हरड, भूकेशी, ब्राह्मी, कौंछ, बच, खिरैटी, जयंती, क्षीरका-
कोली, चोरपुष्पी, कुटकी, सम्हालू, वाराहीकन्द, सौंफ, सोया, गुगुल, शतावर-

गिलोय, रास्ना, गंधरास्ना, मालकांगनी, विछाटी और शालपर्णी, यह प्रत्येक दो तोले ६ मासे ३ रत्तीभर लेवे, इन सबका कल्क बना उसमें २५६ दोसौ छप्पन तोले जल और ६४ चौंसठ तोले घृत विधिपूर्वक मिलाके घृतको सिद्ध करे । यह घृत—चातुर्थिक ज्वर उन्माद, ग्रहदोष और अपस्मारको दूर करेहै । तथा मेधा, स्मृति, बुद्धि और बालकोंके अंगको बढ़ानेवाला है ॥ २२-२५ ॥

अथ शिवाघृतम् ।

शिवायास्तुसुपुत्रायाः पलंपंचाशतन्तथा ।

पञ्चदशमादायपंचमूलयुगात्पृथक् ॥ २६ ॥

कुट्टित्वा तुष्षष्टिप्रस्थैरेवाम्भसांपृथक् ।

पत्तवापादावशिष्टेनतेनक्वाथोदकेनच ॥ २७ ॥

क्षीरस्याष्टभिराज्यस्यशरावाणाञ्चतुष्टयम् ।

यष्टीमधुकमंजिष्ठाकुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ २८ ॥

विभीतकशिवाधात्रीत्रिवृत्तगरपादिकैः ।

विडंगदाडिमंदेवदारुदन्तीहरेणुकैः ॥ २९ ॥

तालीशकेशरंश्यामाविशालाशालपर्णिभिः ।

प्रियंगुमालतीपुष्पकाकोलीयुगलोत्पलैः ॥ ३० ॥

हरिद्रागलानन्ताहरिवालुकबालकैः ।

पृश्निपर्णीसमैरेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ३१ ॥

रिद्धोदग्धुतं त्र्योदग्धुतं गदतः शृणु ।

वासुरग्रहैर्ग्रस्तेमानुषेराक्षसैः क्षते ॥ ३२ ॥

गंधर्वघर्हितैश्चैवपितृग्रहनिपीडिते ।

भूतैरप्यभिभूतेचपिशाचैश्चपरिप्लुते ॥ ३३ ॥

भुजंगमगृहीतेचतथाजांगलभक्षिते ।

ऋक्षैरपिपरिक्षिप्तेभयैरप्यर्दितेभृशम् ॥ ३४ ॥

शस्यतेसर्ववातेचसर्वं लेप्रशस्यते ।

शोषेवक्षःक्षते वृषसेश्वासेमेदेमदात्यये ॥ ३५ ॥

मेहेमूत्रग्रहेचैवज्वरेचैतत्प्रशस्यते ।

वृष्यंबलकरंहृद्यंवन्ध्यानामपिपुत्रदम् ॥ ३६ ॥

श्रीविन्ध्यवासिपादेननिर्मितंवृतमुत्तमम् ॥

शिवाघृतमिदं नाम्नाशिवायोन्मादेन ॥ ३७ ॥

अत्र शृगालीमांसंप्रशस्यते ।

पलपंचसंख्ययादशमूल ५० पलकाथद्वयम् ।

अर्थ—गायका वी चारसेर, दूध आठसेर, काथके लिये शृगालीका मांस ५० पल, जल ६४ चौंसठ सेर, शेष १६ रक्खे । दशमूलकी सब औषधी ५० पल, जल ६४ चौंसठसेर, शेष १६ सोलह सेर रहने दें । कल्कके लिये मुलेठी, मजीठ, कूठ, चन्दन, पद्मास, हरड़, आमला, निसोत, तगर, वायविडंग, अनार, देवदारु, दन्ती, रेणुका, तालीशपत्र, नागकेशर, सागिवा, इन्द्रायण, शालिपर्णी, फूलप्रियंगु, मलतीकेफूल, काकोली, क्षीरकाकोली, कमल, नीलेकमल, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, एलुआ, सुगंधवाला और पिठवन, यह प्रत्येक औषधि दो दो तोले लें । इस घृतको भलेप्रकारसे सिद्धकर सेवनकरनेसे देव, असुर, गक्षस, गंधर्व, पितर, पिशाच, नाग और यक्षादिका उन्माद दूर होता है । तथा सर्वप्रकारके वातरोग, सर्व प्रकारके शूल, शोष, वक्षःक्षत, खाँसी, मेदगोग, मदात्यय, प्रमेह, मूत्रग्रह और ज्वर दूर होवें । और यह घी वीर्य तथा बलको बढ़ावें, हृद्यको हितकारी और बन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र देवें हैं । यह शिवाघृत उन्मादगोगियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २६—३७ ॥

अथ स्कंदग्रहादिहरधूपः ।

निंबपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्षपैः ।

डाकिन्यादिहरोधूपोभूतोन्मादविनाशनः ॥ ३८ ॥

कार्पासास्थिमयूरपुच्छबृहतीनिर्माल्यपिंडीतकैः ।

दुग्धाशिवातथाहिविष्टावचाकेशाहिनिर्मोककैः ।

गोशृंगद्विपदन्तहिंगुमरिचैस्तुल्यैस्तुधूपःकृतः

स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशोज्वरघ्नःस्मृतः ३९॥

अर्थ—नीमकेपत्ते, वच, हींग, साँपकी केंचुली और सरसों, इनकी धूप बनाकर देनेसे डाकिनी आदिग्रह और भूतोन्माद दूर होवै है। विनौले, मोरकी पूँछ, कटाई, निर्मलीफल, मैनफल, दुद्धी, हरड़, साँपकी विष्ठा, केश, वच, साँपकीकेंचुली, गायकेसींग, हाथीकेदाँत और कालीमिरच. इन सबको समान भाग लेकर धूप बनाकर देनेसे—स्कन्दग्रह, उन्माद, पिशाच बाधा, राक्षसप्रवेश, देवता-प्रवेश और ज्वर दूर होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ भूतांकुशरसः ।

सूतायस्तारताम्रश्चमुक्ताचैवसमंसमम् ।

सूतपादंतथावज्रंतालंगंधमनःशिला ॥ ४० ॥

तुत्थंशिलांजनंसीसमब्धिफेनंरसाञ्जनम् ।

पंचानांलवणानांचप्रतिभागंरसोन्मितम् ॥ ४१ ॥

चित्रकंमूलकंचैववज्रीदुग्धेनमर्दयेत् ।

दिनान्तेगोलकंकृत्वारुद्धागजपुटेपचेत् ॥ ४२ ॥

भूतांकुशरसोनामततो गुंजाद्वयंलिहेत् ।

आर्द्रकस्यरसेनैवभूतोन्मादसमीरजित् ॥ ४३ ॥

पिप्पल्याक्तंपिबेच्चानुदशमूलकपायकम् ।

स्वेदयेत्कटुतुम्बीनारसेशीतञ्चगोलयेत् ॥ ४४ ॥

माहिषञ्चघृतंक्षीरंभक्षेच्चततःपरम् ।

सघृतंक्वथितंक्षीरंशुष्कशाकंविवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

अभ्यंगंकटुतैलेनगुर्वन्नंभोजनेहितम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—पारा एकतोला, लोहा एक तोला, चाँदी एक तोला, मोती एक तोला, हीरा ३ मासे, हरिताल तीनमासे, गंधक तीनमासे, मैनशिल तीनमासे, नीलाथोथा तीनमासे, सुरमा तीनमासे, सीसा तीन मासे, समुद्रफेन तीन मासे, रसौत तीनमासे, और पांचों नोन पारेके समान लेवे, इन सबको चीतेके रसमें, मूलीके रसमें और थूहरके दूधमें खरल करै, रात्रिमें गोला बनाके गजपुटमें रखकर फूंक देवै तो भूतांकुशरस तैयार होता है। इसको दो रत्तीभर अदरखके साथ खानेसे भूतोन्माद और वात दूर होती है। इसके ऊपर दशमूलके काढेमें पीपलका चूर्ण डालके पीवै, और कड़वी तोम्बीके द्वारा

स्वेदन करै तो सर्वप्रकारके शीतलपदार्थ त्याग देवै, भैंसका घी और दूध सेवन करै । घृतयुक्त पकाया हुआ दूध और सूखेशाक त्याग देवै । और सदैव कड़वे तैलका मालिश एवं भारी अन्नोका भोजन करै ॥ ४०-४६ ॥

अथ चण्डभैरवरसः ।

हेमपादंमृतंमृतनिष्कंखल्वेविमर्दयेत् ।

शोभाजनंविषंतुल्यंमर्द्यञ्चत्रिशूलीद्रवैः ॥ ४७ ॥

देवदाल्याद्रवैश्चाहितद्रोलंपाचयेदिनम् ।

गंधकोत्थेनतैलेनततउद्धृत्यचूर्णयेत् ॥ ४८ ॥

मासैकंभक्षयेन्नित्यंपिवेद्ब्राह्मीघृतंह्यनु ।

सर्वभूतग्रहंहन्तिरसोऽयंचण्डभैरवः ॥ ४९ ॥

अर्थ—सोनेकी भस्म एक भाग, पारेकी भस्म चौथा भाग, सैजिना और विष, यह प्रत्येक एक एक भाग लेकर गोखुराओंके रसमें और देवदालीके रसमें खरल करै, फिर गोला बना एक दिन पकावै, तदनन्तर गंधकके तेलमें मिलाकर एकमास पर्यन्त सेवनकरै तो सर्वप्रकारके भूतग्रह दूर होवैं । इसके ऊपर ब्राह्मीघृतका अनुपान करै ॥ ४७-४९ ॥

अथ नरसिंहमन्त्रः ।

नारसिंहस्यमंत्रेणसकृदुच्चारितैर्हरेत् ।

डाकिनीग्रहभूतादितमःसूर्योदयेयथा ॥ ५० ॥

ओंनमोनरसिंहायहिरण्यकशिपोर्वक्षःस्थलविदारणायत्रि-
भुवनव्यापकायभूतायप्रतिसारणायडाकिनीकुलोन्मूल-
नायसमस्तदोषान् हरहरविसरविसरबलबलकम्पकम्पम-
थहुंहुंहुं फट्फट्चट्चट्एहिणहिरुद्राज्ञापयतिस्वाहा ॥

सर्षपानिम्बपत्राणिभूर्जपत्रंवचाघृतम् ।

धूपोवाजिनखैर्युक्तःसर्वग्रहनिवारणम् ॥ ५१ ॥

इत्युन्मादाध्यायः ।

अर्थ—ओं नमो नरसिंहाय—ज्ञापयति स्वाहा । इस मंत्रको एकबार पढ़े तो डाकिनी, ग्रह और भूतादिजनित उन्माद दूर होवै है । जैसे सूर्योदयसे अन्ध-

कार दूर होवैहै ॥ ५० ॥ सरसों, नीमकेपत्ते, भोजपत्र, वच, घृत, और घोडेके नख, इनसबकी धूपबनाकर देनेसे सर्वप्रकारके ग्रह दूर होतेहैं ॥ ५१ ॥

इत्युन्मादाध्यायः ।

अथापस्मारचिकित्सा ।

चिकित्स्योद्वपस्मारीचचिरकालीमहागदः ।
तस्माद्रसायनैरेनंप्रायशःसमुपाचरेत् ॥ १ ॥
वातिकंबस्तिभिःप्रायःपित्तंप्रायोविरेचनैः ।
श्लैष्मिकंवमनैःप्रायोद्वपस्मारमुपाचरेत् ॥ २ ॥
सर्वतःपरिशुद्धस्यसम्यगाश्वासितस्यच ।
अपस्मारविमोक्षार्थयोगान्तसंशमनाच्छृणु ॥ ३ ॥
पिप्पलीवृश्चिकालीचकुष्ठञ्चलवणानिच ।
प्रदद्याच्चूर्णितंनस्यमेतत्प्रशमनंपरम् ॥ ४ ॥
भूतोन्मादोत्थितश्चात्रयोज्यंनस्याञ्जनादिकम् ।
मनोह्वातार्क्षजश्चैवसकृत्पारावतस्त्वं च ॥ ५ ॥
अञ्जनंहन्त्यपस्मारमुन्मादंचविशेषतः ।
तार्क्षजंरसांजनम् ।
यष्टीहिंगुवचावक्रशिरीषलशुनामयैः ॥ ६ ॥
अजाघृतैरपस्मारेसोन्मादेचांजनंहितम् ।
वक्रंतगरपादिका ।
पुष्योद्धृतंशुनःपित्तमपस्मारघ्नमंजनम् ॥ ७ ॥
तदेवसर्पिषायुक्तंधूपनंपरमंमतम् ।
नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटादिः ८ कजैः ॥ ८ ॥
तुण्डैःपक्षैःपुरीषैश्चधूपनंकारयेद्भिषक् ।
कीटोवृश्चिकः ।

यःखादेत्क्षीरभक्ताशीमाक्षिकेणवरारजः ॥ ९ ॥

अपस्मारंमहाघोरंसचिरोत्थंजयेद्ध्रुवम् ।

वरात्रिफला ।

कूष्माण्डकफलोत्थेनरसेनपरिशोधितम् ॥ १० ॥

अपस्मारविनाशाययष्टिमधुपिबेड्यहम् ।

प्रयोज्यंतैललशुनंपयसाऽथशतावरी ॥ ११ ॥

ब्राह्मीरसश्चमधुनासर्वापस्मारनाशनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—अपस्माररोग चिरकाली और महारोगोंमें गिनाजाताहै, इस कारण रसायनप्रयोगसे इनकी चिकित्सा करनी चाहिये । विशेष करके वातज अपस्माररोगकी वस्तिकर्मसे, पित्तज अस्मारकी विरेचनसे और कफज अस्माररोगकी वमनके द्वारा चिकित्सा करनी उचितहै । अब भलेप्रकारसे शुद्ध किये और भलेप्रकारसे आश्वासित किये अपस्माररोगको हरनेवाले प्रयोग कहे जातेहैं । पीपल, वृश्चिकाली, कूठ, और पांचों नोन, इनमवको पीसकर नास देनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै । भूतोन्मादमें कहेहुए नस्य और अंजन, इसरोगमें प्रयोग करने चाहियें । मैनशिल, रसोत और परेवाकी विष्टाका अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे अपस्मार और उन्मादरोग नाश होताहै । मुलैठी, हींग, वच, तगर, सिरसके बीज और कूठ, इनको पीसकर बकरीके घीमें मिला नेत्रोंमें लगानेसे अपस्मार और उन्मादरोग दूर होताहै । पुष्यनक्षत्रमें कुत्तेके पित्तको लेकर आखोंमें आजनेसे तथा घृत मिलाके धूपदेनेसे उन्मादरोग आगम होताहै । नकुल, उलूक, बिलाव, गीध, बिच्छू, साँप और काककी चांच अथवा मुख, पक्ष और विष्टा, इनकी धूपदेनेसे—अपस्माररोग दूर होताहै । त्रिफलेके चूर्णको सहतमें मिलाकरखावै और दूधके साथ भोजन करे तो महाघोर और बहुत पुराना अपस्मार दूर होजावे । पेटके रसमें शुद्ध की हुई मुलैठीके चूरनको मिलाकर खानेसे, तीनदिनमें अपस्मारराग आगम होजाताहै । लहसुनको तेलमें मिलाकर खावै, या शतावरको दूधमें मिलाकर मेवन करे अथवा ब्राह्मीके रसको सहत मिलाकर चाटै तो सर्वप्रकारके अपस्माररोगदूर होजावें ॥ १-१२ ॥

अथ स्वल्पपंचगव्यघृतम् ।

गोशकृद्द्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैःसमैर्घृतम् ।

सिद्धंचातुर्थिकोन्मादसर्वापस्मारनाशनम् ॥ १३ ॥

अर्थ—गोबरका रस, खट्टा दही, दूध, गोमूत्र और घी, इन सबको समान भाग लेकर घृतको सिद्ध करै, इस घृतको सेवनकरनेसे चातुर्थिक ज्वर, उन्माद और सर्वप्रकारके अपस्माररोग दूर होतेहैं ॥ १३ ॥

अथ बृहत्पञ्चगव्यघृतम् ।

द्वेपंचमूल्यौत्रिफलरजन्यौकुटजत्वचः ।

सप्तपर्णमपामार्गनीलनीकटुरोहिणी ॥ १४ ॥

शम्याकफलगुमूलञ्चपौष्करंसदुरालभम् ।

द्विपलाशंजलद्रोणेपक्त्वापादावशेषितम् ॥ १५ ॥

भार्ङ्गीपाठात्रिकटुकत्रिवृतानिचूर्णानिच ।

श्रेयसीमागधीमूर्वादन्तीभूनिम्बचित्रकौ ॥ १६ ॥

द्वेशारिवेरोहिषञ्चभूतिकोमदयन्तिकाम् ।

क्षिपेत्पिष्टाक्षमानानितैःप्रस्थंसर्पिषःपचेत् ॥ १७ ॥

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्चतत्समैः ।

पंचगव्यमितिल्यातंमहत्तदमृतोपमम् ॥ १८ ॥

अपस्मारेज्वरेकासेश्वयथाबुदरेषुच ।

गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषुकामलायांहलीमके ॥ १९ ॥

अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नंचातुर्थिकनिवारणम् ॥ २० ॥

श्रेयसीगजपिप्पलीरोहिषंगंधतृणभेदः ।

भूतिकंगंधतृणंरोहिषाभावेभागद्वयंग्राह्यम् ॥

अर्थ—गायका घी चारसेर, गोमूत्र चारसेर, गायका दूध चारसेर, गोबरकारस ४ चारसेर, गायका दही चारसेरलेवै, दशमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, कुङ्कीछाल, सतवनकी छाल, चिरचिटा, नील, कुटकी, अमलतास, कटूमर, पोहकरमूल और जवासा यह प्रत्येक दोदो पल लेकर सबका कल्कबना चौसठसेर जलमें पकावै, शेष १६ सोलहसेर जल रहनेदेवै और कल्कके लिये भारंगी, पाठ, त्रिकुटा, निसोत, गजपीपल, पीपल, चुरनहार, दन्ती, चिरायता, चीता, अनंतमूल, गौरीसर, रोहिषतृण—गंधतृण, और भैरवफल, यह प्रत्येक वस्तु दोदो तोले लेवै, पश्चात् विधिपूर्वक घृत सिद्धकरै, इसको पंचगव्यघृत कहतेहैं ! यह पंचग-

व्यवृत्त—अपस्मार, ज्वर, खाँसी, सूजन, उदररोग, गुल्म, बवासीर पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, अलक्ष्मी, ग्रहदोष, राक्षसबाधा और चातुर्थिकज्वरको दूर करैहै ॥ १४—२० ॥

अथ महाचैतसंघृतः ।

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डोदशमूलीशतावरी ॥ २१ ॥

रास्नामागधिकाशिशुक्काथ्यद्विपलिकंभवेत् ॥ २२ ॥

विदारीमधुकंमेदेद्रेकाकोल्यौशिवातथा ।

एभिःखर्जूरमृद्धीकाभीरुयुआतगोक्षुरैः ॥ २३ ॥

चैतसस्यघृतस्यापिपक्तव्यंसर्पिरुत्तमम् ।

महाचैतससंज्ञन्तुसर्वापस्मारनाशनम् ॥ २४ ॥

गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् ।

पापालक्ष्मीर्जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ॥ २५ ॥

श्वासकासहरचैवशुक्रार्त्तवविशोधनम् ।

नित्यंयुआतकाभावेतालमस्तकमिष्यते ॥ २६ ॥

शणादिशिशुपर्यन्तंकाथःघृतमानंकाथविधिः

विदार्यादिभिः ।

कल्याणकस्याष्टाविंशतिभिः सहकल्कः ।

शणस्यबीजम् ।

अर्थ—गायका घी चारसेर, सनके बीज, निसोत, अरण्ड, दशमूल, सतावर, रायसन और मैजिना यह प्रत्येक दोदो पल लेकर १६ सोलह सेर जलमें पकावे, शेष चारसेर जल रहने देवे, और कल्कके लिये विदारीकन्द, मुल्लैठी, मेदा, महा-मेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, हरड, खजूर, दाख, सतावर, ताडका, मस्तक, गोखरू और चैतसघृतमें कहीहुई सर्व औषधियोंका कल्क एक सेर लेवे, पश्चात् घृतको सिद्ध करे । इसको महाचैतसघृत कहतेहैं । यह घृत—सर्वप्रकारके मृगी-रोग, विषविकार, उन्माद, प्रतिश्याय, तृतीयकज्वर, चातुर्थिकज्वर, पाप, अल-क्ष्मी, सर्व प्रकारके ग्रह, श्वास और खाँसीको दूर करैहै । तथा शुक्र और आर्त्त-वको शुद्ध करैहै ॥ २१—२६ ॥

अथ ब्रह्मीधृतम् ।

ब्रह्मीयासवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेव च ।

पुराणमैध्यमुन्मादग्रहापस्मारन शनम् ॥ २७ ॥

ब्रह्मीरसश्चतुर्गुणः पुराणघृतमत्रयोज्यम् ।

अर्थ—पुराना घी चारसेर, ब्रह्मीका रस सोलह सेर, और कल्कके लिये ब्रह्मी, जवासा, कूठ और शंखपुष्पी, यह समान भागले, सब तौलमें सेरभर लैवै, फिर घृतको सिद्धकर सेवनकरनेसे—उन्माद, ग्रहदोष और अपस्माररोग दूर होता है ॥ २७ ॥

अथ प्रचण्डभैरवरसः ।

पार्वतीकाशीशसूतंदरदोमधुपुष्पकम् ।

गुडूचीशाल्मलीधान्यभूनिम्बामरतुम्बुरुम् ॥ २८ ॥

तिलमुद्रपटोलानांद्राक्षाकूष्माण्डभस्मानि ।

वटिकाकन्यकाभस्मबलाद्रयनियोजितम् ॥ २९ ॥

सर्वमेतत्समाहृत्यगव्याज्येगुटिकाशुभा ।

उन्मादपवनच्छर्दिमपस्मारंविशेषतः ॥ ३० ॥

कासंश्वासंक्षयंहिक्कांदुर्नामश्चप्रमेहकम् ।

पित्तज्वरारुचिश्चैवतिमिरंचक्षुरामयम् ॥ ३१ ॥

गलरोगेषुसर्वेषुकर्णस्तब्धहरेद्ध्युवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—गंधक, कसीस, पारा, सिंग्रफ, महुएके फूल, गिलोय, सेमल, धनियाँ, चिरायता, देवदारु, तुम्बुरु, तिल, मूँग, परवल, दाख, पेठेकी भस्म, धीकुवारकी भस्म, खिरैटी और गँगेरन, इन सबका चूर्ण बनाकर गायके घीमें मिलाके गोली बना लैवै । इनको सेवनकरनेसे उन्माद, वात, वमन, अपस्मार, खाँसी, श्वास, क्षय, हिचकी, बवासीर, प्रमेह, पित्तज्वर अरुचि, तिमिररोग, नेत्ररोग, सर्वप्रकारके गलरोग और कर्णस्तब्धरोगको दूर करैहै ॥ २८—३२ ॥

अथ भूतभैरवः ।

मृतसूतार्कलौहश्चतालंगंधमनःशिला ।

स्रोतोऽञ्जनंचतुल्यांशंनरमूत्रेणमर्दयेत् ॥ ३३ ॥

तद्गोलं द्विगुणं गंधलोहपात्रे क्षणं पचेत् ।

पंचगुजामितं खादेदपस्मारहरं घृतैः ॥ ३४ ॥

हिंसुसौर्ध्वलं त्र्यूषणं रमूत्रेण सर्पिषा ।

कर्षमात्रं पिबेच्चानुरसोऽयं भूतभैरवः ॥ ३५ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, तांबा, लोहा, हरिताल, गन्धक, मैन्शिल, और सुरमा यह सब समान भाग लेकर मनुष्यके मूत्रमें खरलकर गोला बनाले, फिर इस गोलेमें दुगुना गंधक मिलाकर लोहेके पात्रमें क्षणभर पकावै । इसको ५ पांच रत्तीभर सेवन करे, ऊपरसे हांग, कालानोन और त्रिकुटेका चूर्ण मनुष्यके मूत्रमें मिलाकर घीके साथ अनुपान करे । यह भूतभैरवरस—सर्वप्रकारके अपस्माररोगोंको दूर करे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथेन्द्रब्रह्मवटी ।

मृतं सूताभ्रं सतीक्ष्णं तारताप्यविषं समम् ।

पद्मकेसरसंयुक्तं दिनैकं मर्दयेद्भवैः ॥ ३६ ॥

स्नुग्वह्निविजयैरण्डवचानिष्पावशूरणैः ।

निर्गुण्ड्याश्च द्रवैर्मर्द्यतद्गोलं पाचयेत्पुनः ॥ ३७ ॥

कर्णिकासर्षपोत्थेन तैलेन गंधसंयुतम् ।

ततः पक्त्वा समुद्धृत्य चणमात्रावटीकृता ॥ ३८ ॥

इन्द्रब्रह्मवटीनाम भक्षयेद्दार्द्रकद्रवैः ।

दशमूलकपायश्च कणायुक्तं पिबेदनु ॥ ३९ ॥

अपस्मारं निहन्त्या शुयथा सूर्योदये तमः ॥ ४० ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहा, चाँदी, सोनामाखी और विष, यह सब समान भाग ले कमलकी केशर मिला थूहर, चीता, भाँग, अरण्ड, वच, निष्पाव, जिमीकन्द, और निर्गुण्डाके रसमें खरल कर गोला बना लेवै, फिर उस गोलेको पकावै, पकती समय मूपाकर्णी, सरसोंका तेल, और गंधक मिला देवै । जब पकजावै तब निकालकर चनेकी समान बटी बना लेवै । इस इन्द्रब्रह्मवटीको अदरकके रसके साथ भक्षण करे । ऊपरसे दशमूलके काढ़में पीपलका चूर्ण डालकर पीवै । जैसे सूर्योदयसे अंधकार दूर होताहै तैसेही इसके सेवन करनेसे अपस्माररोग दूर होताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथापस्मारनाशनधूपः ।

मानुषास्थिवसाहिगुलशुनंसर्पकंचुकम् ।

गोधूमंसर्पिषापिङ्गाधूपोऽपस्मारनाशनः ॥ ४१ ॥

इति अपस्माराध्यायः ।

अर्थ—मनुष्यकी हड्डी, चर्वी, हाँग, लहसुन, सांपकी केंचुली, और गेहूँ वीके साथ पीसकर धूपदेनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ ४१ ॥

इति अपस्माराध्यायः समाप्तः ।

अथ वातव्याधिचिकित्सा ।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः ।

अभ्यंगस्नेहबस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ १ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जपानाभ्यंजनबस्तयः ।

स्वेदःस्निग्धोनिवातंचस्थानंप्रावरणानिच ॥ २ ॥

बृंहणंयच्चतत्सर्वप्रशस्तंवातरोगिणाम् ।

निरामंकेवलंवातमादौस्नेहैरुपाचरेत् ॥ ३ ॥

यूपैर्ग्राम्यांबुजानूपैरसैर्वास्नेहसंस्कृतैः ।

कृशरापायसश्चात्रैः सुस्विन्नंस्वेदयेत्ततः ॥ ४ ॥

अभ्यक्तंस्नेहसंयुक्तैः स्वेदनैः शाल्वनादिभिः ।

स्नेहाक्तंस्विन्नमङ्गन्तुवक्रंसर्वमथापिवा ॥ ५ ॥

यथेष्टमानमशितुंशक्यते शुष्कदारुयत् ।

स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्ति रुक्स्तम्भः सुग्रहादयः ॥ ६ ॥

स्नेहोमुष्णातिसंशुष्कान्धातून्पुष्टिबलप्रदः ।

अतः पुनः पुनः स्नेहैः स्वेदैश्चाप्युपपादयेत् ॥ ७ ॥

अतोपशान्तोमृदुभिः सस्नेहैस्तं विरेचयेत् ।

पयसैरण्डतैलंवापाययेद्दोषशोधनम् ॥ ८ ॥

पटे लफलकयूषोवृष्योवातहरोलघु ।

वत्सालादृष्टादृष्टः परंवातविकारनुत् ॥ ९ ॥

उभयत्रैवयूषार्थमुद्गान्वाकुलत्थान्क्षिपेत् ।

वात्स्यालकयूषस्तुमाषकलायाव्यःप्रायः ।

प्रचरतिघृतेपरिभज्यसैधवमनुरूपम् ।

देयमेवमन्यत्रापियूषरसादौ ।

बलायाःपंचमूलस्यदशमूलस्यवारसे ॥ १० ॥

अजाशीर्षाम्बुजानूपकव्यादपिशितैःपृथक् ॥ ११ ॥

साधयित्वारसान्निग्धान्दध्यम्लस्नेहसंस्कृतान् ।

भोजयेद्वातरोगार्त्ततैलाक्तलवणैर्युतान् ॥ १२ ॥

अम्बुजाःकूर्मादयः । आनूपा वराहादयः ।

कव्यादादीनां व्याघ्रश्येनगृध्रादीनाम् ।

पंचमूलीबलासिद्धंक्षीरंवातामयेहितम् ॥ १३ ॥

कोलंकुलत्थःसुरदारुरास्त्रामापातसीतैलफलानिकुष्ठम् ।

वचाशताह्वयवचूर्णमम्लमुष्णानिवातामयिनांप्रदेहाः १४

तैलफलानिसर्षपादीनिअम्लंकांजिकंपेषणार्थम् ।

अनुपवेशवारोष्णप्रदेहोवातनाशनः ॥ १५ ॥

निरस्थिपिशितंपिष्टंस्विन्नंघृतगुडान्वितम् ।

कृष्णामरिचसंयुक्तंवेशवारइतिस्मृतः ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वादिष्ठ, खट्टे, नमकीन, और स्निग्धभोजनकरनेसे, तैलादिका मालिश करनेसे, और स्नेह वस्तिकर्म करानेसे वातरोग ज्ञान्त होता है । घृत, तैल, वसा, और मज्जाकापान, अभ्यंजन, वस्तिप्रयोग, स्निग्ध, स्वेद, निर्वातस्थान, प्रावरण, (कनात तम्बू) और जितने पुष्टिकाक द्रव्यहैं, सब वातरोगोंमें हितकारीहैं । केवल निरामवात (आमरहित वात) रोगमें प्रथम स्नेहके द्वारा चिकित्सा करे, तथा ग्राम्य, जलज और अनूपदेशके जीवोंके मांसका यूप बनाकर पीवे, तथा घृतादिकसे मांसको सिद्धकर सेवन करे, और कृशरा (खिचडी) पायस (खीर) और लाल चावलोंके भातके द्वारा तथा स्नेहसंयुक्त मनुष्यको शाल्व नादि स्वेदके द्वारा बारंबार स्वेददेवे, इससे रोगी यथेष्ट भोजन

करसक्ताहै, तथा स्तम्भ और पीडा दूर होती है स्नेह और स्वेद यह दोनों सूखीहुई धातुओंको पोषणकर बल और पुष्टिको देवै है । इसकारण वातादि रोगोंमें बारंबार तैलादिको मलकर स्वेदप्रदान करै । और जो इससे वातरोग शान्त न होय तो स्नेहादिका जुलाव देकर वातरोगको शान्त करै । अरंडीके तेलको दूधके साथ पीनेसे दस्त होकर कोठा शुद्ध हो जाता है । परबलके फलोंका यूप बनाकर सेवन करनेसे वीर्यकी वृद्धि होतीहै, और वात-विकार विनाश होताहै । और यह यूप हलकाहै, वा खिरैटीका यूप बनाकर पीनेसे वातविकार दूर होताहै, उपरोक्त दोनों यूपोंमें भूंग और कुलथी डालै, प्रायः खिरैटीके यूपमें उडद और मटर डालते हैं, और यूषादिको घृतमें भून कुछेक सैधानोंन मिलाकर पीना चाहिये । बकरीके मस्तकका मांस, कच्छ-पादि जीवोंका मांस, वराहादि पशुओंका मांस, व्याघ्रादि पशुओंका मांस, तथा गृध्रादि पक्षियोंके मांसका यूप, तेल, लवण और खट्टे दहीके साथ पकाकर पीनेसे वातरोग शान्त होताहै । दूधमें पंचमूल और खिरैटीको पकाकर पीनेसे वातरोग शमन होताहै । बेर, कुलथी, देवदारु, रास्ना, उडद, अलसी, सरसों, कूठ, वच, सौंफ और जौका चूर्ण इन सबको कांजीमें पीसकर लेपकरनेसे वात-रोग शान्त होताहै । शूकरादिके अस्थिहीन मांसको पीसै, फिर तिसमें घृत, गुड, पीपलका चूर्ण और कालीमिरचोंका चूर्ण मिला वेशवार बना गरम करके लेपकरनेसे वातरोग शान्त होताहै ॥ १-१६ ॥

अथ वातरोग कथनम् ।

वातरोगाश्मरीकुष्ठमहोदरभगन्दराः ।

अर्शासिग्रहणीदुष्टामहारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥

आध्मानस्तम्भरौक्ष्यस्फुटनविमथनक्षो-

भकम्पंप्रतोदाः कण्ठोर्द्धसारमादोभ्रमक-

विलपनं स्रंसशूलप्रभेदाः ॥ पारुष्यं क-

र्णनादः केशपरिणतिभ्रंशदृष्टिप्रमोहा-

विस्पन्दोद्धट्टनानिष्ठवनमशयनं ताडनं पीडनञ्च ॥ १८ ॥

नामोन्नामौ विषादौ भ्रमघरिसदनं जृम्भणं

रोमहर्षो विक्षेपाक्षेपशोषग्रहणिशुषि-

रताछेदनंवेष्टनंच ॥ वर्णःश्यामोऽरुणोवा
तृडापिचमहतीस्वापविश्लेषसङ्गा
विद्यात्कर्माण्यमूनिप्रकुपितमरुतःस्यात्कपायोरसश्च १९
कटिविकटियकृत्क्लोमपार्श्वान्निपृष्ठे
जठरवृषणवक्षःकुक्षिस्कन्धांसकेषु ।
प्रसरतिगुरुशूलंरात्रिनिद्राविपर्यय-
स्त्वितिपवनविकारालक्षणैर्लक्षणीयाः ॥ २० ॥

अर्थ—वातरोग, पथरी, कोढ़, उदर, भगन्दर, बवासीर और संग्रहणी यह सब महारोग कहे जाते हैं । वातके कुपितहोनेसे आध्मान, स्तम्भ, रौक्ष्य स्फुटन, विमथन, क्षोभ, कम्प, प्रतोद, कंठके ऊर्ध्वभागमें श्रम, विलाप, संसन, शूल, पारुष्य, कर्णनाद, केशपक्वता, भ्रंशदृष्टि, मोह, स्पन्दन, उद्धटन, ग्लानि, अनिद्रा, ताडन, पीडन, और विक्षेपादि विकारोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ पतंत्रकानेवारणोपायः ।

चित्रकेन्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः ।
महाव्याधिप्रशमनोयोगःषड्धरणःस्मृतः ॥ २१ ॥
हरीतकीवचारास्नासैन्धवंसाम्लवेतसम् ।
घृतमात्रासमायुक्तमपतंत्रकनाशनम् ॥ २२ ॥

अर्थ—चीता, इन्द्रजौ, पाठ, कुटकी, अतीस, और हरड, इन सबको एकत्रकर सेवनकरै तो सर्वप्रकारकी वातव्याधि दूर होतीहै । इसको षड्-धरण योग कहतेहैं । हरड, वच, गायमन, सेंधानांन, और अमलबेंत, इन सबको पीस चीके साथ सेवनकरनेसे अपतंत्रक वातरोग शान्त होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ बिभीतकादिचूर्णम् ।

बिभीतकविषामुस्तंशुण्ठीभार्ङ्गीअपिप्पलीम् ।
तत्त्वाचूर्णानिमद्येनपीतान्युष्णोदकेनवा ॥ २३ ॥
नाशप्लित्तिष्टणक्षिप्रंहिकाश्वासापतंत्रकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—बहेडा, अतीस, नागरमोथा, सोंठ, भारंगी और पीपल, इनका चूर्ण बनाकर मदिरा अथवा गरमजलके साथ सेवन करनेसे—हिक्का, श्वास और अपतन्त्रकवातरोग विनष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ धनुस्तम्भपक्षाघातोपायकथनम् ।

तैलद्रोण्यान्तुशमनंधनुस्तम्भेपरंहितम् ।

पत्रोत्थाम्बुपरस्तैलद्रोण्यःस्युरवगाहने ॥ २५ ॥

पत्रोत्थाम्बुप्रसारण्यश्वगन्धादीनांपत्ररसः ।

पक्षाघातिनमक्षीणंस्निग्धस्विन्नंविरेचनम् ॥ २६ ॥

बस्तिभिर्योजयेत्पित्तद्वन्द्वंफोद्रेके विरेचयेत् ।

माषात्मगुप्तकैरण्डवाट्यालकशृतंजलम् ॥ २७ ॥

हिंगुसैन्धवसंयुक्तंपक्षाघातनिवारणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पसरन और असगन्ध आदिके पत्तोंका रस, दूध और तैलसे भरीहुई द्रोणीमें डूबनेसे धनुस्तम्भरोग शान्त होता है । अक्षीण, स्निग्ध, स्विन्न, पक्षाघात रोगीके पित्तकफकी अधिकता होय तो बस्तिद्वारा विरेचन देवे । उडद, कौंछ, अरण्ड और खिरंटीका काथ बना तिसमें, हींग और सैन्धानोनका चूर्ण डालके पीनेसे पक्षाघातरोग दूर होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ माषबलादिः ।

माषबलाशूकशिम्बीकतृणरास्नाश्वगन्धोरुवृकाणाम् ।

काथोनश्यतिपीतोवासर्वलवणान्वितःकोष्णः ॥ २९ ॥

अपहरतिपक्ष्वातंमन्यास्तम्भंसकलकर्णनादरुजाम् ।

दुर्जयमर्दितवातंसप्ताहाज्जयतिचावश्यम् ॥ ३० ॥

अर्थ—उडद, खिरंटी, कौंछ, गंधतृण, रास्ना, असगन्ध और अरंड, इनका काथ बना । हींग और सैन्धानोन मिला, नासिकाके द्वारा पान करनेसे पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, खाँसी, कर्णनाद और दुर्जय अर्दित वातरोग सात दिनमें दूर होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ रास्नाशुगुलुः ।

रास्नाशुगुलुपलंचैककर्षान्पंचगुगुलोः ।

सर्पिषावटिकांत्वाखादेद्धान्तचगृध्रसीम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—चार तोले रास्ना और पांचतोले गूगुल, इन दोनोंको घीमें मिलाकर गोली बना खानेसे—गृध्रसी वातरोग दूर होताहै ॥ ३१ ॥

अथ कटिशूल—झिझिनिवातशमनम् ।

दशमूलीकषायेणपिबेद्वानगराम्भसा ।

कटीशूलेषुसर्वेषुतैलमेरण्डसंभवम् ॥ ३२ ॥

दशमूलस्यनिर्यूहोहिंगुपुष्करसंयुतः ।

शमयेत्परिपीतस्तुवातंझिझिनिसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—अंडीके तेलको दशमूलके काथके साथ अथवा सोंठके काथके साथ पीनेसे कटिशूल दूर होताहै । दशमूलके काढ़ेमें हींग और पोहकरमूलका चूर्ण डालकर पीनेसे—झिनझिन वात शमन होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ स्वल्परसोनपिण्डः ।

पलमर्द्धपलंवापिरसोनस्यसुकुट्टितम् ।

हिंगुजीरकसिन्धूतैःसौवर्चलकटुत्रयैः ॥ ३४ ॥

चूर्णितैर्मापिकोन्मानैरवचूर्ण्यविलोडितम् ।

यथाग्निभक्षितंप्रातारुबुक्ताथानुपानतः ॥ ३५ ॥

दिनेदिनेप्रयोक्तव्यंमासमेकंनिरन्तरम् ।

वातरोगान्निहन्त्याशुचार्दितंसापतानकम् ॥ ३६ ॥

एकाङ्गरोगिणेचैवतथासर्वाङ्गरोगिणे ।

उरुस्तम्भेचगृध्रस्यांकृमिदोषेविशेषतः ॥ ३७ ॥

कटिपृष्ठामयंहन्यादुदरञ्चविशेषतः ॥ ३८ ॥

वाशब्देनसार्द्धपलमित्यर्थः ।

अर्थ—कुटाहुआ लहसुन चार या दो तोले, हींग, जीरा, मेंधानोन, कालानोन, और त्रिकुटा, इन प्रत्येकका चूर्ण एकएक मासा लेंव, सबको अच्छेप्रकार मिला अग्निका बलावल विचारकर सेवनकर और उपरसे अण्डका काढ़ा पीवे, इसप्रकार प्रतिदिन पीवे तो एक महीनेमें—वातरोग, अर्द्धितवात, अपक्तानक, एकाङ्गवात, सर्वाङ्गवात, उरुस्तम्भ, गृध्रसीवात, कृमिगोग, कटिरोग, और पृष्ठरोग, दूर होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथ त्रयोदशांगगुग्गुलुः ।

आहाश्वगन्धाहवुषागुडूचीशतावरीगोक्षुरवृद्धदारकम् ।
 रास्नाशताह्वासशठीयवानीसनागराश्चेतिसमैश्चचूर्णम् ३९ ॥
 तुल्यं भवेत्कौशिकमत्रमध्ये देयं तथा सर्पिरथार्द्धभागम् ।
 अर्द्धाक्षमात्रं त्वथ तत्प्रयोगात्कृतानुपानं सुरयाथ यूषैः ॥ ४० ॥
 मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि ।
 कटिग्रहे गृध्रसिबाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुनिपादयुग्मे ॥ ४१ ॥
 सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते मज्जास्थिते स्नायुगते च कुष्ठे ।
 रोगाञ्जयेदान्त्रकफानुविद्वान्वाते रितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥
 भग्नास्थिविद्धेषु च खंजवाते त्रयोदशांगं प्रवदन्ति धीराः ॥ ४३ ॥

अर्थ—आहा (एकप्रकारका वणिक्द्रव्य) असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, सतावर, विधारा, सौंफ, कचूर, अजवायन, और सोंठ, यह सब समान भाग, गुग्गुलु सबकी बराबर और सबसे आधा भाग घी मिलावे, पश्चात् इसका एक तोला भर सुरा, यूप, मदिरा, किंचित् गरमजल, गरम दूध और मांसरस, इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ सेवन करनेसे कटिग्रह, गृध्रसी, बाहुग्रह, पृष्ठग्रह, जानुग्रह, सन्धिवात, अस्थिवात, मज्जाश्रितवात, स्नायुगतवात, कुष्ठ, कफरोग, वातविकार, हृद्ग्रह, योनिदोष, अस्थिभग्न, विद्ध, और खंजवात दूर होता है । इसको त्रयोदशांगगुग्गुलु कहते हैं ॥ ३९-४३ ॥

अथ छागलाद्यघृतम् ।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृंगखुरादिकम् ।
 पंचमूलीद्वयञ्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४४ ॥
 तेन पादावशेषेण घृतं प्रस्थं विपाचयेत् ।
 जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरं चैव शतावरीम् ॥ ४५ ॥
 छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
 अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्ये मूत्राग्निमने ॥ ४६ ॥
 जडगद्गदपंगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ।
 अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ४७ ॥

अर्थ—चर्म, सींग और खुर आदिसे हीन बकरीके ५० पचास पल मांसको ३२ सेर जलमें पकावै जब आठसेर शेष रहै तब उतारले फिर पचास पल दश-मूलको ३२ बत्तीस सेर जलमें पकावै, जब चौथा भाग अर्थात् आठसेर जल बाकी रहै तब उतारले, और दूध चारसेर, सतावरका रस ४ चारसेर, गायका घी चारसेर, तथा कल्कके लिये जीवनीयदशक और मुलैठी, यह सब ६ सेर लेवै, पश्चात् विधिपूर्वक घृतको बनावै, इस घृतको सेवनकरनेसे—सर्वप्रकारके वातरोग, अर्दितवात, कर्णशूल, वधिरता, गूंगापन, मिनमिन वात, जड़ता, गद्ग-दवात, पंगुला वात, खंजवात, गृध्रसीवात, कुब्जक वात, अपतानक वात और अपतंत्र वातरोग दूर होताहै, इसको छागलाघघृत कहतेहैं ॥ ४४—४७ ॥

अथ बृहद्वलतैलम् ।

लामूलकपायस्यदशमूलीकृतस्यच ।

यवकोलकुलत्थानांक्राथस्यपयसस्तथा ॥ ४८ ॥

अष्टावष्टौशुभाभागास्तैलादेकस्तदेकतः ।

कल्कीकृत्यपचेद्धीमान्काकोल्यादिससैन्धवम् ॥ ४९ ॥

तथागुरुसर्जरसंसरलंदेवदारुच ।

मंजिष्ठाचन्दनकुष्ठमेलातगरपादिकम् ॥ ५० ॥

मांसीशैलेयकंपत्रंतगरंशारिवांवचाम् ।

शतावरीमश्वगंधांशतपुष्पांपुनर्नवाम् ॥ ५१ ॥

तत्सिद्धंस्थापयेत्कुम्भेसुवर्णादौसुरक्षिते ।

राजार्हणमिदंतैलंसर्ववातविकारनुत् ॥ ५२ ॥

सूतिकारोगशमनंगर्भदंशुक्रवर्द्धनम् ।

गुल्माग्निमन्दहिक्कार्तिः । संकासान्त्रवृद्धिनुत् ॥ ५३ ॥

ऽग्नेर्मर्मगतेग्रन्थेसर्वथैवोपयोजयेत् ।

ऽप्यप्यधार्तःपुरुषोऽप्येष्टस्थिरयोवनः ॥ ५४ ॥

यवकोलकुलत्थानांक्राथः ।

बलादीनां तैलाष्टभागापेक्षया द्वात्रिंशद्गुणोद्वहः ।
 बलाकाथोऽष्टगुणः । दशमूलकाथोऽष्टगुणः ।
 यवादीनां काथोऽष्टगुणः । दुग्धमष्टगुणम् ।
 काकोल्याद्यष्टवर्गः ।

अर्थ—तिलका तेल आठसेर, खिरैंटीका काथ आठसेर, दशमूलका काथ आठसेर, जौ, बेर और कुलथीका काथ आठसेर, दूध आठसेर और कल्कके लिये काकोल्यादि द्रव्य, सैधानोन, अगर, राल, धूप सरल, देवदारु, मँजीठ, लालचन्दन, कूट, इलायची, बालछड़, तगर, भूरि, छरीला, तेजपात, तगरपुष्प, अनन्तमूल, बच, सतावर, असगंध, सौंफ और पुनर्नवा यह प्रत्येक समान भाग और सब दोसेर लेवै, सबको मिला अच्छेप्रकारसे सिद्धकर सुवर्णादिके कुम्भमें भरके रखदेवै । यह बृहद्भलातेल राजाओंके सेवन करने योग्य है । यह तेल—सर्वप्रकारके वातविकार, सूतिकारोग, गुल्म, मन्दाग्नि, हिकारोग, श्वास, खाँसी, अन्त्रवृद्धि, भग्नरोग और मर्मगत ग्रन्थि इन रोगोंको दूर करैहै । गर्भजनक, वीर्यवर्द्धक, और वृद्धपुरुषोंको फिर यौवनयुक्त करदेताहै ॥ ४८—५४ ॥

अथ विष्णुतैलम् ।

शालपर्णीपृश्निपर्णीबलागोक्षुरतण्डुला ।
 एरण्डस्य च मूलानि बृहत्पयोः पूतिकस्य च ॥ ५५ ॥
 शतावरीसहचरं पचेदेतैः पलोन्मितैः ।
 तैलप्रस्थं पयोदत्त्वा गव्यं वाजं चतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥
 वातार्त्तनिरनागाश्वाः पीत्वा स्युर्निश्चयं दृढाः ।
 हृत्पार्श्वशूलवातेषु गलगंडादितेक्षये ॥ ५७ ॥
 सशर्कराशमरीपाण्डुकामलार्द्धावभेदके ।
 क्षीणेन्द्रियेऽन्त्रवृद्धौ च जरया जरिरेहितम् ॥ ५८ ॥
 स्त्रीणामश्वतरीणां तु गर्भस्थितिकरं परम् ।
 एतद्गङ्गवरं तैलं विष्णुना परिकल्पितम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—तिलका तेल चारसेर, गाय या बकरीका दूध १६ सोलहसेर और कल्कके लिये शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरैंटी, गोखरू, गंगेरन, डरंडकीजड़, बडी

अथबृहच्छागलाद्यंघृतम् ।

अस्यौषधस्यसिद्धस्यशृणुवीर्यमतःपरम् ॥ ६८ ॥

देवदेवंनमस्कृत्यसंपूज्यगणनायकम् ।
 पिवेत्पाणितलंतत्रवारिवीक्ष्यानुपानकम् ॥ ६९ ॥
 सर्ववातविकारेषुअपस्मारेविशेषतः ।
 सोन्मादेपक्षघातेचआध्मानेकोष्ठविड्ग्रहे ॥ ७० ॥
 कर्णरोगेशिरोरोगेबाधिर्येसापतन्त्रके ।
 भूतोन्मादेचगृध्रस्यांसोद्गारेचाम्लपित्तजे ॥ ७१ ॥
 पार्श्वशूलेतथाशूलेबाह्यायामार्दितेतथा ।
 क्रोष्ठुशीर्षेतथाखंजेकुब्जेगद्गदमिन्मिने ॥ ७२ ॥
 अपतानेऽन्तरायामेरक्तपित्तेतथोर्द्ध्वगे ।
 आनाहेऽशौविकारेषुचातुर्थिकज्वरेषुच ॥ ७३ ॥
 हनुग्रहेतथाशोषेक्षीणेचैवापबाहुके ।
 दण्डापतानके भग्नेदाहेचाक्षेपकेतथा ॥ ७४ ॥
 जीर्णज्वरेविषेकुष्ठेशोफस्तम्भेमदात्यये ।
 आढ्यवातेऽग्निमांघ्रेचवातरक्तगदेषुच ॥ ७५ ॥
 एकाङ्गरोगिणेचैवतथासर्वांगरोगिणे ।
 हस्तकम्पेशिरःकम्पेजिह्वास्तम्भेजडेगदे ॥ ७६ ॥
 क्षीणेन्द्रियेनष्टशुक्रेशुक्रानिःसरणेतथा ।
 स्त्रीणांवातहतेरक्तेप्रदरेसर्वसम्भवे ॥ ७७ ॥
 योनिमध्यगतेवातेयोतिशूलेचशस्यते ।
 क्षीणगर्भेनष्टगर्भेमूढगर्भोवशेषतः ॥ ७८ ॥
 अर्द्धावभेदकेचैवतिमिरेवातपंगुके ।
 नक्तान्ध्येचाश्रुपातेचपटोलेचाक्षिस्पन्दने ॥ ७९ ॥
 एकाङ्गस्पन्दनेचैवतथासर्वाङ्गस्पन्दने ।
 नगादिपतितेवातेस्त्रीणामप्राप्तिहेतुके ॥ ८० ॥

आभिचारिकदोषेचधनसन्तापहेतुके ।
 येवातसम्भवारोग येचान्येपित्तसम्भवाः ॥ ८१ ॥
 शिरोमध्यगतायेचक्ष्ण्व्यापश्चेषुसंस्थिताः ।
 कुशिवस्तिगतायेचयेचान्येहृदिसंस्थिताः ॥ ८२ ॥
 मातृग्रहाभिभूतेनशिशुर्यश्चविशुष्यति ।
 प्रक्षीणबलमांसश्चनवर्त्मगहनेगतिः ॥ ८३ ॥
 स्तन्यंशुष्यति तिस्रस्याश्चयावत्स्तन्यंनविंदति ।
 घृतेनानेनसिद्धयन्तिवज्रमुक्तिरिवासुरान् ॥ ८४ ॥
 रसायनंवह्निबलप्रदञ्चवपुःप्रकर्षविदधातिरूपम् ।
 गजेंद्रतुल्येनसमानतेजाश्चिरायुपंपुत्रशतंकरोति ॥ ८५ ॥
 स्त्रीणांशतंगच्छतिसातिरेकंनयातितृप्तिसबलःसमाङ्गः ।
 अपुत्रिणीपुत्रशतंकरोतिशतायुवत्सामृतपुत्रवत्यः ॥ ८६ ॥
 महद्घृतंनामतुच्छागलाद्यंविनिर्मितंवायुनिपूदनञ्च ।
 शिवंशुभंरोगभयापहञ्चकारहारीतमुनिर्वरिष्ठः ॥ ८७ ॥

अर्थ—न अत्यंत बालकहो, न तत्काल व्याई हुई हो, न वृद्धहो और न रोगिणी हो, मध्यम अवस्थावाली, तरुण और कृष्णवर्ण हो ऐसी बकरी वृष्य होतीहै । ऐसी बकरीका मांस १०० एकसौ पल, दशमूल एकसौ पल, असगंध एकसौ पल और खिरैटी एकसौ पल लेंवै, प्रत्येक को ५१२ पल जलमें पकावे जब १२८ एकसौ अट्ठाईस पल जल शेष रहै तब उतारले, इसप्रकार सबका चतुर्थांश काथ बनावै, फिर सब काथोंको एकत्र कर्गलेंवै, पश्चात् इसमें १२८ एकसौ अट्ठाईस पल गायका घी और एकसौ अट्ठाईस पल सतावरका रस मिलाके तांबेके वासनमें मन्दमन्द अग्निसे पकावै, और पकते समय जीबन्ती महुआ, दाख, काकोली, नीलकमल, नागमोथा, चन्दन, रमायन, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, सारिवा, अनन्तमूल, मेदा, महामेदा, कूट, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहलदी, फूलप्रियंगु, त्रिफला, तगर, तालीसपत्र, पञ्चाख, इलायची, तेजपात, सतावर, नागकेशर, चमेलीके फूल, धनियाँ, मँजीठ, अनार, देवदारु, एलुआ, रेणुका, बायबिडंग और जीरा, यह प्रत्येक चार चार तोले लेकर

कल्क बना छोड़ दें। जब पककर घृत शीतल होजाय तब वस्त्रमें छानकर ६४ तोले बूरा मिलाके चिकने वासनमें भरकर रखदेवै, फिर देवाधिदेव गणेशजीको नमस्कार और पूजाकर प्रतिदिन एक तोलाभर पीवै, और इसके ऊपर रोगानुसार अनुपान करै तो यह घृत सर्वप्रकारके वातविकार, अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठरोग, विडग्रह, कर्णरोग, शिरोरोग, वधिरता, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गुध्रसीवात, अम्लपित्तोद्भव उद्गाररोग, पार्श्वशूल, शूल, बाह्यायाम, अर्दितरोग, क्रोष्टृशीर्ष, वात, खंजवात, कुब्जवात गद्ववात, मिन्मिन्, अपतानक, भंतरायामवात, अधोगतवायु, रक्तपित्त, आनाह, अर्शरोग, चातुर्थिकज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीणता, अपबाहुकुरोग, दण्डापतानकवात, भग्नरोग, दाह, आक्षेपकवात, जीर्णज्वर, विषविकार, कोढ़, शेफस्तम्भ (लिंगरोगविशेष) मदात्यय, आढ्यवात, मन्दाग्नि, वातरुक्तरोग, एकांगवात, सर्वांगवात, हस्तकम्प, शिरःकम्प, जिह्वास्तम्भ, जड़ता, इन्द्रियोंकी क्षीणता, वीर्यकी क्षीणता, शुक्रनिःसरण, स्त्रियोंके शरीरमें वातसे होताहुआ रुधिरविकार, सर्वप्रकारके प्रदररोग, योनिगतवात, योनिशूल, क्षीणगर्भ, नष्टगर्भ, मूढगर्भ, अर्द्धाविभेदक मस्तकुरोग, तिमिररोग, पंगुवात, रतौंधी, अश्रुपात रोग, पटलगतनेत्ररोग, नेत्रस्पन्दनरोग, एकांगस्पन्दन, सर्वांगस्पन्दन, वृक्षके ऊपरसे पतित होनेसे उत्पन्न हुआ वात, स्त्रियोंकी प्राप्तिके अभावसे उत्पन्न हुआ वात, आभिचारिक दोष, धनके सन्तापसे उत्पन्न हुआ वात, सर्वप्रकारके वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग सर्वप्रकारके पित्तसे उत्पन्न होनेवाले रोग, सर्व प्रकारके शिरोरोग, जंघाके रोग, पसलियोंके रोग कुक्षिरोग, बस्तिरोग, हृदयरोग, मातृग्रहादिसे बालकका सूखजाना बल और मांसकी क्षीणता, मार्गचलनेकी शक्तिका न होना, स्तनोंसे दूधका न बहना और स्तनोंमें दूधका उत्पन्न नहीं होना, यह सब रोग दूर होजावैं । जैसे वज्रसे राक्षस दूर होवै । यह घृत—परमोत्तम रसायन, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक, शरीरको सुन्दरकरनेवाला, गजेन्द्रकी समान तेजवान् और चिरायुष १०० सौ पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला, इसको सेवनकरनेवाला मनुष्य सौ स्त्रियोंके साथभी रमण करै तो भी तृप्त नहीं होता, अपुत्रा स्त्रियोंके सैकड़ों पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला, जिसके पुत्र नहीं जीते हों और जिसकी अवस्था सौ १०० वर्षकी होय, उनको भी यह घृत—पुत्रवती करदेताहै, इसको बृहत् छागलाघ घृत कहते हैं ॥ ६०—८७ ॥

अथ नारायणतैलः ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रकः ।

प्रसारण्यश्वगंधाचबृहतीकण्टकारिका ॥ ८८ ॥

बलाचातिबलाचैवश्वदंष्ट्रासपुनर्नवा ।

एषां दशपलान्भागान्श्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८९ ॥

पादशेषं परिस्त्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।

शतपुष्पादेवदारुमांसीशैलेयकंवचा ॥ ९० ॥

चन्दनंतगरंकुष्ठमेलापर्णीचतुष्टयम् ।

रास्नातुरगगंधाचसैन्धवं सपुनर्नवम् ॥ ९१ ॥

एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ।

शतावरिरसंचैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ९२ ॥

आजंवायदिवागव्यं क्षीरंदद्याच्चतुर्गुणम् ।

पानेबस्तौ तथाभ्यंगे भोज्ये चैव प्रयोजितम् ॥ ९३ ॥

अश्वोवावातसंभग्नोगजोवायदिवानरः ।

पंगुलः पीठसर्पी च तैलेनानेन सिध्यति ॥ ९४ ॥

अधोभागे च ये वाताः शिरो मध्यगताश्च ये ।

मन्यास्तम्भे हनुस्तम्भे दन्त रोगे गलग्रहे ॥ ९५ ॥

यस्य शुध्यति चैकांगं गतिर्यस्य च विह्वला ।

क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्राज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥ ९६ ॥

बधिरालल्लजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च ।

अल्प्रजाचयानारीयाचगर्भनविन्दति ॥ ९७ ॥

वाताक्तौ वृषणौ ये पामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ।

एतत्तैलवरंतेषां नाम्नानारायणः स्मृतः ॥ ९८ ॥

अर्थ—बेलगिरी, अरणी, शोनापाठा, पाटल, पारिभद्र, पसरन, असगंध, कटाई, कटेरी, खिरैटी, कंधा. गोखरू और पुनर्नवा, यह प्रत्येक चालीस चालीस तोले

लेकर चार द्रोण जलमें पकावै, जब एक द्रोण जल शेषरहै तब आठसेर तेल, सौंफ, देवदारु, बालछड भूरिछरीला, बच, लालचन्दन, तगर, कूठ, इलायची, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, रायसन, असगंध, सेंधानोन और पुनर्नवा, यह प्रत्येक पिसेहुए आठ आठ तोले, सतावरका रस आठ सेर और बकरी या गायका दूध ३२ सेर मिलाके पकावै । इसको पीनेसे, इसके द्वारा वस्तिकर्म करनेसे, मालिश करनेसे और खानेसे वातसे पीडित अश्व, हाथी और मनुष्य रोगसे विमुक्त होजाताहै । इसको सेवनकरनेवाले पशु और पीठसे चलनेवाले मनुष्य भी आरोग्य होजातेहैं । तथा अधोभागगत वायु, शिरोगतवायु, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह, एकांगशोष, मार्गमें गमन करनेकी शक्ति का न होना, इन सबको दूर करैहै । जिन मनुष्योंकी इन्द्रियें क्षीणहोगई-हैं, जो वीर्यक्षीणहैं और जो ज्वरसे क्षीण होगये हैं, वधिरतारोगवाले, जिह्वा-रोगवाले, जो मन्दबुद्धिवालेहैं उन मनुष्योंको, तथा जिन स्त्रियोंकी सन्तान नहीं जीती, और जिनके गर्भ नहीं रहता उन स्त्रियोंको वातसे पीडित, अंडकोशरो-गवाले मनुष्य और अंत्रवृद्धि रोगवाले मनुष्योंको यह नारायणनामवाला तैल-परम श्रेष्ठहै ॥ ८८-९८ ॥

अथ बृहद्विष्णुतैलम् ।

जलधराश्वगंधाजाजीवकर्षभकौशठी ।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवन्तीमधुयष्टिका ॥ ९९ ॥

मधुरिकादेवदारुपद्मकाष्ठचशैलजम् ।

मांसीएलात्वचंकुष्ठंवचाशैलजचन्दनम् ॥ १०० ॥

मंजिष्ठाभृगनाभिश्चश्वेतचन्दनकुंकुमम् ।

पद्मिनीकुंदकोटिश्चग्रंथिकञ्चनखीतथा ॥ १०१ ॥

एतेषांपलिकैर्भागैस्तैलञ्चापिसहाढकम् ।

शतावरीरससमंदुग्धञ्चापिसमम्भवेत् ॥ १०२ ॥

एतत्संभृत्यसम्भाव्यशनैर्मृद्वग्निनापचेत् ।

विष्णुतैलवरंश्रेष्ठंसर्ववातविकारनुत् ॥ १०३ ॥

ऊर्ध्ववातेतथावातेह्यंगविग्रहएवच ।

शिरोमध्यगतेव तेमन्यास्तम्भेशिरोग्रहे ॥ १०४ ॥

यस्यशुध्यतिवैकाङ्गगतिर्यस् चविह्वला ।

येवातप्रभवारोगायेचान्येपित्तसम्भवाः ॥ १०५ ॥

सर्वास्तान्नाशयत्याशुतमःसूर्योदयेयथा ॥ १०६ ॥

अर्थ—नागरमोथा, असगंध, जीरा, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीर-काकोली, जीवन्ती, मुलैठी, सौंफ, देवदारु, पन्नाख, भूरिछरीला, बालछड़, इला-यची, दालचीनी, कूठ, वच, शिलारस, लालचन्दन, मँजीठ, कस्तूरी, सफेदचंदन, केसर, कमलिनी, कुन्दुरु, (वं कुन्दुरु खोटी) गठिवन और नखी यह प्रत्येक चार चार तोले लेकर कल्क बनावे, फिर दोसौ छप्पन तोले सतावरका रस और दोसौ छप्पनतोले गायका दूध लेवे, इन सबको और उपरोक्त औषधियोंके कल्कको विधिपूर्वक मिलाके धीरे धीरे मन्दमन्द आगसे पकावे, जब सिद्ध होजाय तब उत्तम वासनमें भरके रखदेवे । यह बृहद्विष्णुतेल—अत्यंत श्रेष्ठ, तथा सर्वप्रकारके वातविकार ऊर्ध्ववात, अधोवात, व्यंग, विडग्रह, शिरोगतवात, मन्यास्तम्भ, शिरोग्रह, एक अंगका सूखजाना, मार्गचलतेसमय अत्यन्त दुःख होना, सर्वप्रकारके वातरोग और सर्वप्रकारके पित्तरोग इन सबको यह तेल दूर करे हे, जैसे सूर्योदय अंधकारको दूर करे ॥ ९९-१०६ ॥

अथ श्रीनारायणतैलम् ।

विल्वाश्वगंधाबृहतीश्वदंप्रास्योनाकवाट्यालकपारिभद्रम् ।

क्षुद्राकठिल्लातिबलाग्रिमन्थमूलानिचैपांशरणीयुतानाम् ॥

मूलंविदध्यादथपाटलीनांसपादप्रस्थंविधिनोद्धृतानाम् ।

द्रोणैरपामष्टभिरेवपक्त्वापादावशेषेणरसेनतेन ॥ १०८ ॥

तैलाढकाभ्यांसममेवदुग्धमाजंविदध्यादथवापिगव्यम् ।

एकत्रसम्यग्विपचेत्सुबुद्धिर्दद्याद्रसश्चैवशतावरीणाम् १०९ ॥

तैलेनतुल्यंपुनरेवतत्ररास्नाश्वगंधामिसिदारुकुष्ठम् ।

पर्णीचतुष्कागुरुकेशराणिसिन्धूत्थमांसीरजनीद्वयंच ११० ॥

शैलेयकंचन्दनपुष्कराणि एलासयष्टीतगराव्दपत्रम् ।

भृंगाष्टवर्गान् वचापलाशंवृश्चीरस्थौणेयकचोरकाख्यम् १११

एतैःसप्तभिर्द्विपलैश्चैवसर्वविधिनापिपक्वम् ।

नारायणं नाम महच्चैलंकपूरकाश्मीरमृगाण्डजानाम् ११२॥
 दद्यात्सुगन्धाय वदन्तिकेचित्प्रस्वेददौर्गन्ध्यनिवारणाय ।
 चूर्णीकृतानां द्विपलप्रमाणं सर्वैः प्रकारैर्विधिवत्प्रयोज्यम् ११३॥
 आश्वेतपुंसां पवनार्दितानां चैकाङ्गशोषार्दितवेपनानाम् ।
 येपंगवः पीठविसर्पिणश्च बाधिर्यशुक्रक्षयपीडिताश्च ॥ ११४॥
 मन्याहनुस्तम्भशिरोगदार्तायुक्ता मयान्ते बलवर्णयुक्ताः ।
 संसेव्यतैलं सहसा भवन्ति वन्ध्या च नारीलभते सुपुत्रम् ११५॥
 देवोपमं सर्वगुणोपपन्नं सुमेधसं श्रीविजयान्वितं च ।
 शाखागते कोष्ठगते च वाते वृद्धौ विधेयं पवनां त्रजायाम् ॥ ११६॥
 जिह्वानिले दन्तगते च शूले वातापहं तैलवरं प्रदिष्टम् ।
 उन्मादकुब्जज्वरकर्षितानां नातः परं तैलवरं प्रदिष्टम् ॥ ११७॥
 वातामये वैद्यवरेण योज्यमायुः प्रकर्षप्रमदाप्रियत्वम् ।
 प्राप्नोति लक्ष्मीं विजयश्च नित्यं रक्षांसि दुष्टानि निहन्ति नूनम् ॥
 तैलोपसेवी जरया विमुक्तो जीणज्वरी चाशुभरेणुरेव ।
 देवासुरेयुद्धवरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभग्नानसुरैः सुरास्तु ११९॥
 नारायणेनापि सुबृंहणार्थं स्वनामतैलं विहितं तु तेषाम् ॥ १२०॥

अर्थ—बेलगिरी, असगंध, कटाई, गोखरू, सोनापाठा. खिरंटी, पारिभद्र.
 कटेरी, पुनर्नवा, कंधी, अरणी, परस और पाडल यह प्रत्येक अस्सी अस्सी
 तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावै, जब दो द्रोण जल शेष रहजाय तब
 उतारकर छानलेवै, पश्चात् इस काढ़ेमें ५१२ पांचसौ बारह तोले गाय या
 बकरीका दूध और ५१२ पांचसौ बारह तोले शतावरका रस, तथा रास्ना.
 असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूठ माषपर्णी, मुद्रपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी,
 अमर, नागकेशर, सैधानोन, बालछड, हलदी, दारुहलदी, भूरिछरीला, लाल-
 चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मुलैठी, तगर, नागरमोथा, तेजपात, दालचीनी
 काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि,
 सुगन्धबाला, बच, कंचूर, विषखपरा, थुनेर, और चोरक (ने, भटेउर), यह
 प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले लेकर सबको पसिके मिलादेवै, फिर तेलको

विधिपूर्वक पकावै । इस तैलको महानारायण तैल कहतेहैं । पश्चात् कितनेक वैद्य इसमें कचूर, कस्तूरी और केशर, यह प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले सुगन्धिके लिये, और कितनेक वैद्य प्रस्वेद और दुर्गन्ध दूर करनेके लिये डालतेहैं । यह महानारायण तैल—वातरोग, एकांगशोष, अर्दितरोग और कम्पादि रोगोंको दूर करैहै । तथा पंगुरोगी, जो मनुष्य पीठसे खिचड़तेहैं, बधिरतारोगवाले, जो मनुष्य वीर्यके क्षयसे पीडितहैं, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ और शिररोगी मनुष्योंको यह नारायण तैल परम हितकारीहै, और बल तथा वर्णको बढ़ानेवालाहै । इस तैलको सेवनकरनेसे बंध्यास्त्री भी देवोंकी समान सुन्दर सर्वगुणसम्पन्न, महाबुद्धिमान्, और विजय लक्ष्मीको पानेवाला पुत्र उत्पन्न करतीहै यह तैल—शाखागतवात, कोष्ठगतवात, वातवृद्धि, जिह्वागतवात, दन्तगत शूल और वातरोगको दूर करैहै । उन्माद, कुब्जवात और ज्वरसे व्याकुल मनुष्योंको यह तैल—महा उपकारीहै । इसको वैद्य सर्वप्रकारके वातरोगोंमें देवें । जो इस तैलको सदैव सेवनकरतेहैं, उनके लक्ष्मी और विजयकी प्राप्ति होतीहै, राक्षस दृग्मे ही भाग जातेहैं, वृद्धता नहीं आती और जीर्णज्वर शीघ्रही नष्ट होजाताहै । पूर्वकालमें देवता और राक्षसोंका परस्पर युद्ध हुआ था, उसमय राक्षसोंने देवताओंकी हड्डी, स्नायु और संधि आदि तोड़डाली, तब श्रीनारायणने देवताओंको पुष्टिके अर्थ निजनामसे प्रसिद्ध 'नागयणने' तैल निर्माण कियाहै ॥ १०७—१२० ॥

अथ माषतैलम् ।

माषकाथेबलाकाथेरास्नायादशमूलजे ।

यवकोलकुलत्थानांछागमांसंभवेत्पृथक् ॥ १२१ ॥

प्रस्थेचतिलतैलस्यक्षीरंदत्त्वाचतुर्गुणम् ।

रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताद्वैरण्डमुस्तकैः ॥ १२२ ॥

जीवनीयबलाव्योषैःपचेदक्षसमैर्भिषक् ॥

बाधिर्यैर्कर्णशूलेचकर्णनादेचदारुणे ॥ १२३ ॥

विपूच्यामर्दितेकुब्जेगृध्रस्यामपतानके ।

बस्त्यभ्यंजनपानेषुलावणेऽप्रयोजयेत् ॥ १२४ ॥

माषतैलमिदंश्रेष्ठमूर्द्धजन्तुगदापहः ।

क्वाथःप्रस्थाःषडेवात्रविभक्तयन्तेनकीर्तिताः ॥ १२५ ॥

यथा माषपल १६ जलशराव १६ शेषशराव ४ एवंसर्वत्र ॥

अर्थ—तिलका तेल चारसेर, उडदोंका क्वाथ चारसेर, खिरैंटीका क्वाथ चारसेर, रास्नाका क्वाथ चारसेर, दशमूलका क्वाथ चारसेर जौका क्वाथ चारसेर, बेरका क्वाथ चारसेर, कुलथीका क्वाथ चारसेर, और बकरेके मांसका क्वाथ चारसेर लेवै, दूध सोलहसेर, कल्कके लिये रास्ना, कौंछ, सैंधानोन, सौंफ, अरंड, नागरमोथा, जीवनीयदशक, खिरैंटी, और त्रिकुटा, यह प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेवै. सबको विधिपूर्वक मिला तैलको सिद्ध करै । इसतैलको सेवनकरनेसे—बधिरता, कर्णशूल, दारुणकर्णनाद, विषूचिका, अर्दितवात, कुब्जकवात, गृध्रसीवात, और अपतानकवात रोग दूर होताहै । इसको वस्ति-कर्म, अभ्यंजन पान और नस्य, इन सब कर्मोंसे योजना चाहिये । यह माष-तैल अत्यन्त श्रेष्ठहै, ऊर्ध्वजन्तुरोगोंको दूर करैहै ॥ १२१-१२५ ॥

अथ बृहन्महामाषतैलम् ।

माषस्यार्द्धाढकंदत्त्वातुलार्द्धदशमूलतः ।

पलानिच्छागमांसस्यत्रिशद्गोणेऽम्भसःपचेत् ॥ १२६ ॥

पूतेशीतेकषायेचचतुर्थांशावशेषिते ।

प्रस्थञ्चतिलतैलस्यगुणेदत्त्वाचतुर्गुणम् ॥ १२७ ॥

आत्मगुप्तरुबूकश्चशताह्वालवणत्रयम् ।

जीवनीयानिमंजिष्ठाचव्यचित्रककदफलम् ॥ १२८ ॥

सव्योषंपिप्पली-गुल्लंशाला-प्लवङ्गकसैन्धवम् ।

देवदाव्यामृताकुष्ठंवाजिगंधावचाशठी ॥ १२९ ॥

एतैरक्षसमैःकल्कैःसाधयेन्मृदुनाग्निना ।

पक्षाघातार्दितेवातेचार्दितेहनुसंग्रहे ॥ १३० ॥

कर्णमन्याशिरःशूलेतिमिरेचत्रिदोषजे ।

पाणिपादशिरोग्रीवाभ्रमणेमंदचक्रमे ॥ १३१ ॥

कल यस्वजं पंगुल्ये गृध्रस्यामपबाहुके ।

पानेबस्तौ तथाभ्यंगनस्यकर्णाक्षिपूरणैः ॥ १३२ ॥

तैलमेतत्प्रशंसन्तिसर्ववातरुजापहम् ॥ १३३ ॥

अर्थ—तिलका तेल दोसर, दूध आठसर, काथके लिये उडद चारसर, दशमूल सवाछेसर, और बकरेका मांस तीसपल लेंवै, सबको एक द्रोण अर्थात् ३२ वत्तीससर जलमें पकावै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उतारकर शीतल होनेपर छान लेंवै; फिर कल्कके लिये कौंछ, अरंड, सोंफ, सेंधानोन, कालानोन, विरियासंचरनोन जीवनीयदशक, मँजीठ, चव्य, चीता, कायफल, त्रिकुटा, पीपगमूल, रास्ना, मुलैठी, सेंधानोन, देवदारु, गिलोय, कूठ, अमगंध, वच, और कचूर यह प्रत्येक दो दो तोले लेंवै, सबको मिला यथाविधिसे तेलको पकावै, यह ब्रह्मपतैल—पक्षाघात, अर्द्धितवात, हनुग्रहवात, कर्णशूल, मन्याशूल, शिरःशूल, त्रिदोषज तिमिररोग, हस्त, पाद, शिर और ग्रीवाका घूमना, मंदचक्रम, कलापखंज, पंगुरोग, गृध्रसीवात, अपवाहुक इत्यादि रोगोंको दूर करैहै । यह—पान, वास्तिकर्म, अभ्यंग, नस्य और नेत्रोंमें भग्नेसे सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करैहै ॥ १३२—१३३ ॥

अथ त्रिकत्रयाद्यलौहम् ।

त्रिकत्रयसमायुक्तजीवनीययुतन्त्वयः ।

हन्त्यपस्मारमुन्मादंवातव्याधिसुदुर्जयम् ॥ १३४ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, चीता, वायबिडंग और जीवनीयदशक इन सबको समान भाग लेकर सबका चूर्ण बना और सब चूर्णकी समान लोहेका चूर्ण मिला लेंवै । इसको सेवन करनेसे बवासीर, उन्माद और दुर्जयवातव्याधि दूर होतीहै ॥ १३४ ॥

अथ लक्ष्मीविलासतैलम् ।

जिह्वाचोस्त्र्येवदशशबरव्याघ्रीवचाचेलक-

सहगन्धपत्रकशठीपथ्याक्षधात्रीवनैः ।

एतैःशोधितसंस्कृतैःपलयुगैराख्यातयासंख्यया

तैलप्रस्थमवस्थितैःस्थिरमतिःकल्कैःपचेद्दान्विकः ॥

मांसीःरादमनचम्पकसुन्दरीत्वक्-

ग्रन्थ्यम्बुरुड्मरुबकैर्द्विपलैःसपृक्कैः ।

श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिसीनं
 प्रत्येकतः पलमुत्तार्य पुनः पचेच्च ॥ १३६ ॥
 एलालवंगचलचन्दनजातियूथी-
 कक्कोलकागुरुलताघुमृणैः पलाद्धैः ।
 कस्तूरिकाक्षसहितानलदीप्तियुक्तैः
 पक्षीष्टमन्दशिखिणैव महासुगन्धम् ॥ १३७ ॥
 पंचद्विकेन चाद्धेन मदात्कपूरमिष्यते ।
 कर्पूरमदयोर्बद्धं पत्रकल्कादिहेष्यते ॥ १३८ ॥
 पंचपत्राम्बुना त्राद्योद्वितीयोगंधवारिणा ।
 तृतीयोऽपि च तेनैव पाको वाधूपिताम्बुना ॥ १३९ ॥

चेलकंगुवाकस्यत्वक् ।

अर्थ-मंजीठ, चोरक, सुगंधद्रव्य, देवदारु, सवरलोध, कटेरी, वच, सुपा-
 रीके पेंडकी छाल, दालचीनी, तेजपात, गंधपत्रक (वं. पचापाता), कचूर, हरड,
 बहेडा, आमला और नागरमोथा यह प्रत्येक दो दो पलके कल्क बना दोसरे
 तेलमें मिला बिल्वादि पंचपल्लवोंके जलके द्वारा पकावै, फिर बालछड, कपूर-
 कचरी, दौना, चम्पा, फूलप्रियंगु, दालचीनी, गठिवन, सुगंधवाला, कूठ, मरु-
 आ और असवरग यह प्रत्येक दो दो पल, तथा श्रीवास (गंधविरोजा) कुंदरू,
 नखी, नलिका और सौंफ, यह प्रत्येक एक एक पल लेवै । इन सबका कल्क
 बना दूसरीबार गंधोदकके द्वारा पकावै, तदनन्तर इलायची, लौंग, शिलाशर,
 चन्दन, चमेलीके फूल, जुहीके फूल, शीतलचीनी, अगर, लताकस्तूरी और
 केशर, यह प्रत्येक दो दो तोल, कस्तूरी एक तोल और कपूर छः मासे, इन
 सबका कल्क बना तीसरी बार गंधद्रव्यादिके द्वारा गंधोदकके साथ पाक करै ।
 यह महासुगंधि लक्ष्मीविलासतैल-सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करैहै ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

अथ महाप्रसारिणी तैलम् ।

शतत्रयंप्रसारण्याद्वेचपीतसहाचरात् ।
 अश्वगंडैरण्डबलावरारोस्नापुनर्नवा ॥ १४० ॥
 केतकीदशमूलञ्चपृथक्त्वक्पारिभद्रतः ।

प्रत्येष्टेष्टास्तुलातुलार्द्धदेवः । रुतः ॥ १४१ ॥
 तुलार्द्धशिरीषस्यैवलाक्षायाः पंचविंशतिः ।
 पलानिलोधाच्चतथासर्वमेकत्रसाधयेत् ॥ १४२ ॥
 जलपंचाढकशतेसपादेतत्रशेषयेत् ।
 द्रोणद्वयंकांजिकञ्चषड्विंशत्याढकोन्मितः ॥ १४३ ॥
 क्षीरदध्नोः पृथक्प्रस्थान्दशमस्त्वाढकंतथा ।
 इक्षोरसाढकेचैवछागमांसतुलात्रये ॥ १४४ ॥
 जलपंचचत्वारिंशत्प्रस्थेप्रस्थेतुशेषयेत् ।
 सप्तदशरसप्रस्थामंजिष्ठाक्वाथएवच ॥ १४५ ॥
 कुडवोनाढकोन्मानेद्रवैरेभिस्तुसाधयेत् ।
 सुशुद्धतिलतैलस्यद्रोणंप्रस्थेनसंयुतम् ॥ १४६ ॥
 आद्यएभिर्द्रवैः पाकेकल्कोभल्लातकंकणा ।
 नागरंमरिचंचैवप्रत्येकंपट्पलोन्मितम् ॥ १४७ ॥
 पथ्याक्षधात्र्यः सरलंशताह्वाकर्कोटीवचा ।
 चोरपुष्पीशठीमुस्तद्वयंपद्मश्चसोत्पलः ॥ १४८ ॥
 पिप्पलीमूलमंजिष्ठासाश्वगंधापुनर्नवा ।
 दशमूलंसमुदितंचक्रमदौरसाजनम् ॥ १४९ ॥
 गंधतृणंहरिद्राचजीवनीयगणस्तथा ।
 एपांद्रिपलिकैर्भागैराद्यपाकोविधीयते ॥ १५० ॥
 देवपुष्पीबोलपत्रंशलकीरसशैलजे ।
 प्रियंगूशीरमधुरीमांसीदारुबलाचलाः ॥ १५१ ॥
 श्रीवासोनलिकाखोटिः सूक्ष्मैलाकुन्दुरुर्मुरा ।
 नखीत्रयञ्चत्वक्पत्रीपयस्यापूतिचम्पकम् ॥ १५२ ॥
 दमनरेणुकापृक्कामरुवञ्चपलत्रयम् ।
 प्रत्येकंगंधतोयेनद्वितीयः पाकइष्यते १५३ ॥

गंधोदकन्तुत्वक्पत्रीपद्मकोशीरमुस्तकम् ।

प्रत्येकंसबलामूलपलानिपञ्चविंशतिः ॥ १५४ ॥

कुर्यादूर्ध्वभागोऽत्रजलप्रस्थन्तुपञ्चविंशतिः ।

अर्द्धावशिष्टःकर्त्तव्यःपाकोगंधाम्बुकर्मणि ॥ १५५ ॥

गंधाम्बुचन्दनाम्बुभ्यातृतीयःपाकइष्यते ।

कल्कोऽत्रकेशरंकुष्ठंत्वक्कालीयककुंकुमम् ॥ १५६ ॥

भद्राश्रियंग्रन्थिपर्णलताकस्तूरिकातथा ।

लवंगागुरुकक्कोलजातीकोषफलानिच ॥ १५७ ॥

एलालवंगवल्लीचप्रत्येकंत्रिपलोन्मितम् ।

कस्तूरीषट्पलंचन्द्रात्पलंसार्द्धञ्चगृह्यते ॥ १५८ ॥

वेधार्थञ्चपुनश्चन्द्रमदौदेयौतथोन्मितौ ।

महाप्रसारिणीसेयंराजयोग्याप्रकीर्तिता ॥ १५९ ॥

गुणान्प्रसारणीनांतुवहत्येषाबलोत्तमान् ॥ १६० ॥

सपादंपंचाढकशतंपञ्चविंशत्यधिकंपंचशतान्याढकानिभवन्ति
तेषुचद्रोणद्वयंस्थाप्यम् ।

तत्रप्रतिशतमेकविंशतिराढकानिशरावाश्चषट्किंचिन्न्यू-

नसप्तपलान्विता एतेन किंचिन्न्यूनसप्तपला धिकत्वाच्च-

त्वारिंशदुत्तरशरावशतत्रयं भवति । स्थाप्यश्चकिं-

चिदधिकसार्द्धपलान्विताःप्रतिशतंदेयं जलशरावः३४२

किंचिदूनपल २७ शेष ५ पल १ किंचिदधिककर्ष ३

समुदायेनदेयजलस्य चतुःशताधिकाष्टसप्तशरावाः

८४००स्थाप्यश्चाष्टाविंशत्यधिकशरावशतं १२८ किंवा

समुदायेन षोडशशरावपरिमितकलशेन पञ्चविंशत्यु-

त्तरकलशपञ्चशतानि ।

स्थाप्याष्टाकलशाः ।

कांजिकस्याढक नि षड्विंशतिर्यद्यपि तथापि कांजिक-
द्रोणमात्रेण व्यवहरन्ति वृद्धाः । कांजिकंशुक्तं ग्राह्यमत
एवोक्तंचक्रेणकांजिकमानतोद्रोणःशुक्तेनैवाविधीयते ।
शुक्तन्तुपरग्रन्थेप्रस्थंतण्डुलतोयतइत्यादिनाग्रहण्या-
मुक्तम् । चक्रमतं नरन्यथा तथाहि—

अत्रशुक्तिद्विधिमण्डप्रस्थःपंचाढकोन्मितम् ।

कांजिकंकुडवोदधोगुडप्रस्थेऽम्लमूलकात् ॥ १६१ ॥

पलान्यष्टौशोधितार्द्रात्पलषोडशकंतथा ।

कणामरिचसिन्धूत्थहरिद्राजीरकंपृथक् ॥ १६२ ॥

द्विपलम्भावितेभाण्डेघृतमष्टदिनस्थितम् ।

सिद्धंभवतितच्छुक्तंयदावतार्य्यगृह्यते ॥ १६३ ॥

तदादेयंचतुर्जातंपृथक्कर्षत्रयोन्मितम् ॥ १६४ ॥

अत्रमण्डस्यभक्तमण्डस्यप्रस्थम् ।

अम्लमूलकंकांजिकमूलकंशोधितार्द्रात् निस्त्वगार्द्रात्
क्षीरदध्राप्रत्येकंप्रस्थादशेतिभेदः । छागमांसपल ३००
जलांश १८० शेषांश ६८ मंजिष्ठापल ६० जलांश ६०
शेष १५ गांधिकव्यवहारंसिध्यति तैलांश ६४ उपक्ष-
यार्थमपरतैलांश ४ कल्के भल्लातकस्या सहद्वेतस्यस्थाने
रक्तचन्दनमेव वदन्ति वृद्धाः । अक्षं विभीतकं पद्मोत्प-
लयोः पुष्पं दशमूलस्य मिलित्वा पलत्रयं चक्रमर्दण्ड-
गजाबीजं कल्कद्रव्यं तप्तोदकप्रक्षालितं श्लक्ष्णचूर्णितं
सुपिष्टं दत्त्वा क्वाथादि सर्वत्र वैवाद्यःपाकः सचाति-
मृदुःकर्णादिष्यात्तैलाकोऽस्त्येव यतः । द्वितीयपाके
देवपुष्पी देवहुलीति प्रसिद्धा बोलो गंधरसः पत्रं-
वाटीयगं पत्रकं शल्लकीरसः कुन्दुरु यदुक्तं शब्दार्णवे ।

कुन्दुरु भाग्यद्वयं नरुक्तत्वात् वाला वालकं सुगन्धित्वा-
 त् चलः सिद्धकं श्रीवासो नवनीतखोटिः नखी त्रयमश्व-
 ररबदरपत्रोत्पल गजकर्णारुख्य नखीमध्याज्या दुष्पत्रा
 तेजोवती पूतिः खाटसी गंधोदके बलायूषं बलानिकरः
 दुष्पत्रादीनां प्रतिपल २५ तोला उत्पलं १२ तोला ४
 जलशराव १०० शेषांश ५० तृतीयपाके गंधोदकं पूर्ववत् ।
 चन्दनोदकार्थं श्वेतचंदनपल ५३७ कर्प २ क्षोदयित्वा
 जलशराव १०० शेषांश ५० किंवा उक्तार्द्धमानेन कृत-
 गंधोदक २५ अन्येतु सुपविष्टेन सुवृष्टेन वा गंधोदक एवा-
 र्द्धमानचन्दने गोलितमर्द्धावशिष्टगंधोदकमानं गृह्णन्ति ।
 इत्थं व्यवहारोऽपिकल्के भद्रश्रियंसितचन्दनं जाड्या-
 दोषः फलञ्चलवंगस्यैव छल्ली चन्द्रः कर्पूरः वेधार्थं मदः
 कस्तूरी सिद्धतैलस्य किंचित्तैलेन कस्तूरीं पिष्ट्वा पात्रस्थ
 सिद्धतैले मिश्रयित्वा च्छाद्य स्थाप्यमितिवेधशब्दार्थः ।

अर्थ—पसरन तीनसौ पल, पीलेफूलकी कटसैरया दोसौ पल, असगंध, अरंड, खिरंटी, सतावर, रहसन, पुनर्नवा, केतकी, दशमूल और फरहदकी छाल यह प्रत्येक सौ पल, देवदारु पचास पल, सिरसकी छाल पचासपल, लाख पचीसपल और लोध पचीसपल, इन सबको एकत्रकर ५२५ आढ़क ५ जलमें पकावै, जब दो द्रोण जल शेष रहै तब उतारकर छानलेवै । कांजी एकद्रोण, दूध, दही, प्रत्येक दशप्रस्थ, दहीका तोर १ एक आढ़क, ईखका रस एक आढ़क, बकरे-का मांस ३०० तीनसौपल, पाकके लिये जल ८५ पचासी सेर, शेषजल १७ सतरह सेर, मैजीठ ५० पचासपल, जल साठ सेर, शेष पन्द्रहसेर, तिलका तेल एकद्रोण एक प्रस्थ, कल्कके लिये मिलावै, पीपल, सोंठ और वालीभिरच प्रत्येक छे छे पल, हरड़, बहेडा, आमला, धूपसरल, सौंफ, काकडाशिंगी, बच, शंखपुष्पी, कचूर, मोथा, नागरमोथा, कमल, कुसुद, पीपरामूल, मैजीठ, असगंध, पुनर्नवा, दशमूल, चकवड, रसौत, सुगंधतृण, हलदी और जीवनीयगणकी सम्पूर्ण औषधि, प्रत्येक दोदोपल लेवै, सबको विधिपूर्वक मिलाके

प्रथम पाक करै । तत्पश्चात् लौंग, गंधबोल, तेजपात, शलकीकागोंद, भूरि-छरीला, फूलप्रियंगु, खस, सौंफ, बालछड, देवदारु, खिर्रैटी, सिलारस, सरलका गोंद, नलिका, कुँदुरु, छोटी इलायची, लोबान, कपूरकचरी, तीनोंप्रकारकी नखी, दालचीनी, गंगापत्री, काकोली, खट्टाशमुष्क, चंपा, दवना, रेणुका, असवरग और मरुआ यह प्रत्येक तीन तीन पल लेंवै, इन सबका कल्क और गंधोदकके द्वारा तेलका दूसरा पाक करै । गंधोदक बनानेकी यह विधिहै कि—दालचीनी, गंगापत्री, तेजपात, खस, नागरमोथा और खिर्रैटीकी जड, प्रत्येक २५ पचीस पल कमल १२ बारहपल, जल १०० सौ शराव ले, अर्द्धावशेष काथ बनावै, इसको गन्धजल कहतेहैं । इसगन्धजलके द्वारा उपर लिखाहुआ दूसरा पाक करै । पश्चात् इसी गंधोदक और चन्दनोदकके द्वारा नीचे लिखे तृतीयकल्कका पाक करै । अब चन्दनोदक बनानेकी विधि कहतेहैं, कुटाहुआ चन्दन ५० पचास पल, जल पचीस मेर ले, अर्द्धावशेष अथवा चतुर्थांश काढा करै, तथा चन्दनको जलमें घिसलेंवै । इसको चन्दनोदक, चन्दनाम्बु, चन्दनजल कहतेहैं । उपरोक्त गंधोदक और चन्दनोदकके द्वारा नागकेशर, कूठ, दालचीनी, पीलाचन्दन, केशर, चन्दन, गठिवन, लताकस्तूरी, लौंग, अगर, शीतलचीनी, जायफल, जावित्री, इलायची, और लौंगकी बेल प्रत्येक तीन तीन पल, कस्तूरी छे पल, कपूर डेढ पल, इनके कल्कके साथ तृतीय पाक करै । जब तेल सिद्ध होजाय तब १॥ डेढ तोले कस्तूरी और १॥ डेढ तोले कपूर पीसकर तेलमें मिलादेवै । यह महाप्रसारिणी तैल—राजाओंके सेवने योग्यहै, तथा अन्यप्रसारिणी तैलोंकी अपेक्षा यह तैल अधिक गुणवालाहै । अब शुक्त बनानेकी विधि कहतेहैं । भातका मांड दो सेर, कांजी ४० चालीस मेर, दही एकमेर, गुड़ १ एकसेर कांजिकमूलक (कांजीके नीचेकी जमी हुई गाद) आठपल, अदरक १६ मोलहपल, पीपल, कालीमिर्च, मेंधानोन, हलदी और जीरा, यह प्रत्येक दो २ पल लेकर सबको एकत्र धीके चिकने वासनमें आठदिन तक रक्खा रहनेदे, फिर इसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण छे छे तोले मिलादेवै, इसको शुक्त कहतेहैं । यह शुक्तनामवाली कांजी इस महाप्रसारिणी तैलमें डाली जाती है, इसकागण इसको यहाँपर लिख दियाहै ॥ १४०—१६४ ॥

अथ वातकुलान्तकंतैलम् ।

मूलश्वैवाश्वगन्धायागृहीत्वाखण्डशःशतम् ।

पंचाशत्पलमानन्तुजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ १६५ ॥

पादशेषेहरेत्काथंकाथांशंतिलतैलकम् ।

तेलाच्चतुर्गुणंक्षीरंगव्यंवामाहिषन्तथा ॥ १६६ ॥

शतपुष्पाकणाचेलाकुष्ठञ्चकण्टकारिक ।

शुण्ठीयष्टीदेवदारुशालपर्णीपुनर्नवा ॥ १६७ ॥

मंजिष्ठापत्रकंरास्नावचापुष्करमूलकम् ।

यवानीभूतिद्वंसांसानिर्गुणदीप्यन्त्याबला ॥ १६८ ॥

वह्निगोक्षुरकश्चैवमृणालंबहुपुत्रिका ।

प्रतिकर्षमिदंयोज्यंसर्वमेकत्रपाचयेत् ॥ १६९ ॥

तैलशेषंसमुद्धृत्यसिद्धंवातकुलान्तकम् ।

अभ्यंगेयोजयेत्पानेनस्यकर्मणिसर्वदा ॥ १७० ॥

भग्नानांखञ्जपंगूनांशान्तिमाप्नोतिन न्यथा ॥ १७१ ॥

अर्थ-तिलकातेल दोमेर, गाय या भैंसका दूध आठसेर, काथके लिये अस-
गंधकी जडके टुकड़े पचास पल, जल ३२ बत्तीससेर, शेष आठसेर और
कल्कके लिये साँफ, पीपल, इलायची, कूठ, कटेरी, सोंठ, मुलैठी, देवदारु,
सालपर्णी, पुनर्नवा, तेजपात, मँजीठ, रहसन, वच, पोहकरमूल, अजवायन,
सुगन्धतृण, बालछड, सम्हाल, सूर्यमुखी, खिरंटी, चीता, गोखरू, खस और
सतावर, यह प्रत्येक दोदो तोले लें। सबको विधिपूर्वक मिलाके तेलको
सिद्ध करें। यह वातकुलान्तक तैल अभ्यंग, पान और नस्यकर्ममें सदैव प्रयोग
करें तो भग्नरोग, खंजरोग, और पंगुरोग दूरहोवें ॥ १६५-१७१ ॥

अथ गंधराजतैलम् ।

तिलतैलाढकेक्षित्वातक्रंतत्परिमाणकः ।

वचाचतुष्पलंदत्त्वाशुक्ततच्चचतुर्गुणम् ॥ १७२ ॥

त्रिफलायाःपलान्यष्टौमंजिष्ठयास्तथैवच ।

पुनरष्टपलान्यस्त अर्द्धदधानिधापयेत् ॥ १७३ ॥

गलेचशठीपत्रशरण्यम् ददारुणः ।
 पलान्यष्टौविनिक्षेप्यघृतस्यतुपलद्वयम् ॥ १७४ ॥
 आद्येपाकेपचेदित्थंतैलयावच्चतुर्गुणम् ।
 गालयित्वापरंकुर्यात्तत्रपाकत्रयंबुधः ॥ १७५ ॥
 चण्ड चलमरुच्छत्रात्वक्पत्रीचोलशैलजम् ।
 विषाणवीरणग्रन्थिदेवताकुसुमानिच ॥ १७६ ॥
 प्रत्येकमेषांचत्वारिपलान्यादायगान्धकः ।
 पाकंद्वितीयंतैलस्यकारयेत्क्रमयोगतः ॥ १७७ ॥
 स्पृक्कामांसीमुरावालंलवंगच्छलिकामला ।
 नगुरुकाष्ठखोटीचचम्पकुन्दुप्रियङ्गवः ॥ १७८ ॥
 एषांखट्वासिकायाश्चप्रत्येकञ्चपलद्वयम् ।
 आदायकारयेत्पाकंतृतीयंगंधकोविदः ॥ १७९ ॥
 फणिलावलताकोलफलैलागुरुसिंहकैः ।
 त्वक्कोषार्कैर्द्रिपलिकैरितिपाकचतुर्थकः ॥ १८० ॥
 वेधपलयुगेनेन्दोर्मदस्यत्वष्टभिःपलैः ।
 गन्धराजाह्वयंतैलमिदंनृपमनोहरम् ॥ १८१ ॥

अर्थ—तिलोंका तेल एक आढक, तक्र एक आढक, वच चारपल, शुक्तना-
 मवाली काँजी १६ सोलह पल, त्रिफला आठपल, आधाभुना हुआ मैजीठ
 आठपल और सुपारीके वृक्षकी छाल, कट्फर, तेजपात, पसरन, नागरमोथा,
 और चीता, यह प्रत्येक आठपल, तथा घृत आठ तोले लेवे, सबको विधिपूर्-
 वक मिलाके प्रथम पाक करे, फिर वस्त्रमें छानकर चोरक, सुगंधद्रव्य, दाल-
 चीनी, मरुआ, सोंफ, गंगापत्री, बोल, भूरिछरीला, कूठ, खस, पीपलामूल
 और लौंग, यह प्रत्येक चारपल मिलाके दूसरा पाक करे, फिर वस्त्रमें छानकर
 स्पृक्का (असवर्ग) बालछड, कपूरकचरी, सुगंधवाला, लौंगकीछाल, भुई-
 आमला, अगर, लोवान, चम्पाकी कली, कुंदुरु, फलप्रियंगु और खट्वाशमुष्क
 यह प्रत्येक दोपल, मिलाके तृतीय पाक करे, फिर इसको वस्त्रमें छानकर सफेद-
 चंदन, लौंग, लता, कस्तूरी, शीतलचीनी, जायफल, इलायची, अगर, शिला-

रस, दालचीनी, जावित्री और केशर, यह प्रत्येक आठ आठ तोले मिलाके चौथावार पकावै, फिर इसमें २ पल कपूर और आठ पल कस्तूरी मिलालेवै । यह गंधराजतैल सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करैहै ॥ १७२-१८१ ॥

अथ पंचपल्लवतोयेनगंधद्रव्यशोधनम् ।

पंचपल्लवतोयेनगंधानांक्षालनंतथा ।

शोषणंचापिसंस्कारोविशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥ १८२ ॥

आम्रजम्बुकिपित्थानांबीजपूरकबिल्वयोः ।

गंधकर्मणि सर्वत्रपत्राणिपञ्चपल्लवम् ॥ १८३ ॥

अर्थ—पंचपल्लवके जलसे सर्वगंधद्रव्य धोकर धूपमें सुखाने चाहिये । आम, जामन, कैथा, विजोरा और बेल इन पांच वृक्षोंके पत्तोंको पंचपल्लव कहतेहैं ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

अथ नखीकर्कटशुद्धिः ।

चण्डीगोमयतोयेनयदिवातिन्तिडीजलैः ।

नखंसंक्राथयेदेभिरभावेमृज्जलेनतु ॥ १८४ ॥

पुनरुद्धत्यप्रक्षाल्यभर्जयित्वानिषेचयेत् ।

गुडपथ्याम्बुनाह्येवंशुध्यतेनात्रसंशयः ॥ १८५ ॥

सम्मर्द्यचन्दनाद्यैस्तुवासयेत्कुसुमैःशुभैः ॥ १८६ ॥

चण्डीमहिषीमृत्तिकाकृष्णाग्राह्याकुसुमैर्जातीमल्लिका
वकादिभिः । अधिवासनञ्चशरावसंपुटेकृत्वा एवं सर्वे-
षामेवशुद्धानामधिवासनंज्ञेयम् ।

अर्थ—भैंसके गोवरका रस अथवा इमलीके जलमें या काली मिट्टीके काथमें नखद्रव्यको औटावै, फिर गंधोदकसे धो घीमें भून गुड मिलाकर हरडोंके जलमें भिजोवै फिर धूपमें सुखाकर चंदनादिसे मर्दनकर चमेली, मोतिया, आदिके फूलोंसे सुवासित करलेवै तो नखद्रव्य शुद्ध होताहै ॥ १८४-१८६ ॥

अथ वचाहरिद्राशुद्धिः ।

गोमूत्रेचालम्बुषकेपक्त्वापंचदलोदके ।

पुनःसुरभितोयेन स्विन्नमात्पशोषितम् ॥ १८७ ॥

गुडाम्बुनासिच्यमानंभर्जयेच्छण्येत्ततः ॥ १८८ ॥

अर्थ—वच और हलदीको गोमूत्र और गोरखमुंडीके काथमें तथा पंचपल्लवके काथमें पका गंधकोदकमें भिजोके धूपमें सुखावै, फिर गुड़के सरवतमें भिजोकर सुखादेवै, तदनंतर अग्निमें भूनकर चूर्ण करले तो वच और हलदी शुद्ध होजातीहै ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

अथ मुस्तकशुद्धिः ।

मुस्तकंचमनावक्षुण्णंकांजिकेत्रिदिनोषितम् ।

पंचपल्लवतोयेनस्विन्नमातपशोषितम् ॥ १८९ ॥

गुडाम्बुनासिच्यमानंभर्जयेच्चूर्णयेत्ततः ।

आजसौभांजनजलैर्भावयेच्चेतिशुध्यति ॥ १९० ॥

अजस्यजलंमूत्रम् ।

अर्थ—नागरमोथेको कूट तीन दिन तक काँजीमें भिजो रखै, फिर पंचपल्लवके जलमें पकाकर सुखालेवे फिर गुड़के सरवतमें भिजोकर भूनके चूर्ण करले पश्चात् वकरीके मूत्र और सेंजिनेके रसकी भावना देवे तो नागरमोथा शुद्ध होजाताहै ॥ १८९ ॥ १९० ॥

अथ शैलजशुद्धिः ।

कांजिककथितंशैलभृष्टापथ्यागुडांबुना ।

सिंचेदेवंततःपुष्पैर्विविधैरधिवासयेत् ॥ १९१ ॥

कांजिकेविपच्यपंचपल्लवतोयेनक्षालनमित्युपदेशः ।

अर्थ—प्रथम भूरिछरीलेको कांजीमें पकाकर पंचपल्लवके जलमें धोलेवे फिर अग्निमें भूनकर हरड और गुड़के जलमें भिजोके अनेकप्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे सुवासितकरले तो भूरिछरीला शुद्ध होजाताहै ॥ १९१ ॥

अथ खट्वासीशुद्धिः ।

यथालाभमपामार्गस्नुह्यादिकीरलेपितम् ।

बाष्पस्वेदेनसंस्वेद्यपूतिनिर्लोमतांनयेत् ॥ १९२ ॥

गोलापाकंपचेत्पश्चात्पंचपल्लववारिणि ।

खलःसाह्मिवोत्पीडयततोनिःस्नेहतांनयेत् ॥ १९३ ॥

आजसौभांजनजलैर्भावयेच्चपुनःपुनः ।

शिशुमूलेचकेतक्याःपुष्पपत्रपुटेचतम् ॥ १९४ ॥

पचेदेवंविशुद्धःसन्मृगनाभिसमोभवेत् ॥ १९५ ॥

अर्थ—चिरचिटा और थूहरके दूधसे खट्टाशीको लपेटकर वाफसे स्वेदन करे तो यह दुर्गन्धरहित और रोमशून्य होजावे, फिर पंचपल्लवके जलमें दोलायंत्र-केद्वारा पकाकर निचोडलैवे तो खट्टाशी स्नेहरहित होजाय । पश्चात् बकरीके मूत्र और सैजिनेके रसमें बारंबार भावना देकर सैजिनेकी जड़, केतकीके फूल, तथा पत्रोंसे पुट बना उसमें खट्टाशीको रख पकावे, इसप्रकार करनेसे खट्टाशी शुद्ध होकर कस्तूरीकी समान होजातीहै ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

अथ सिंहकादिभावनम् ।

सिंहकंमधुनाभाव्यंकुंकुमञ्चापिसर्पिषा ।

कुंकुमेनागुरुप्राज्ञैर्गोमूत्रेग्रन्थिपर्णकम् ॥ १९६ ॥

मधूदकेनमधुरीपत्रकंतण्डुलाम्बुना ।

भाव्यमिति सर्वत्रयोज्यम् ।

कुष्ठपंचदलोत्स्विन्नमौर्वीकुन्दुरुधूपितम् ॥ १९७ ॥

वासितंकुसुमैरेभिःशुद्धिमायातिनिर्मलाम् ।

ध्यामकश्चूर्णितःशुद्धिशर्कराजलसेचितम् ॥ १९८ ॥

घृतगुग्गुलुधूपेनयातिचन्दनवासितः ।

ध्यामकोगंधतृणम् ।

कुन्दुरुश्चूर्णितोऽत्यर्थंकुंकुमेनविमर्दितः ॥ १९९ ॥

धूपितेगुडसर्जाभ्यांवासितःशुध्यतेतराम् ।

रेणुकोभावितोऽत्यर्थंमधुनातक्रभावितः ॥ २०० ॥

आतपेशोषितःपुष्पवासितःशुद्धितामियात् ।

सर्वेषांगंधवस्तूनांपंचपल्लववारिणा ॥ २०१ ॥

गंधाम्बुनाचकर्तव्यंक्षालनरौद्रशोषणम् ।

ततोऽगुग्गुलु तोयेनसिक्ताः तृत्तयातुभर्जयेत् ॥ २०२ ॥

कुष्ठादिकन्तुनभर्जनीयम् । यदुक्तम् ।

रुग्ग्रन्थिलघुनिर्यासपत्रपुष्पफलेषु च ।

चन्दनेन च कर्तव्यं भर्जनं गंधकोविदैः ॥ २०३ ॥

अर्थ—शिलारस सहतमें भिजोनेसे शुद्ध होजाताहै । केशर घृतमें, अगर केशरमें, गठिवन गोमूत्रमें, सौंफ, मधूदकमें और तेजपात चाबलोंके पानीमें भिजोनेसे शुद्ध होता है । कूटको पंचपल्लवके जलमें पकाके मूर्वा और कुन्दुरुकी धूप देवै, फिर सुगंधित पुष्पोंसे सुवासित करै तो कूट शुद्ध होजाताहै । गंधतृणोंका प्रथम चूर्णकर फिर खांडके शरवतमें भिजोके घृतयुक्त गूगलकी धूपदेवै, पश्चात् चंदनादिकसे सुवासित करले तो गंधतृण शुद्ध होजातेहैं । कुन्दुरुका अत्यन्त वारीक चूर्णकरके केशरके साथ पीसै, फिर गुड और रालकी धूप देकर पुष्पोंसे सुवासित करले तो कुन्दुरु शुद्ध होजाताहै । रेणुकाको सहत और तक्रमें भावना देकर सुखालेवै फिर पुष्पोंसे सुवासित करनेसे रेणुका शुद्ध होजातीहै । सर्वप्रकारके गंधद्रव्योंको पंचपल्लवोदक और गंधोदकसे धोकर धूपमें सुखालेवे फिर गूगलके काथमें भिजोकर भूनलेवे, परन्तु कुष्ठादि गंध द्रव्योंको न भूने, कूट, गठिवन, अगर, सर्वप्रकारके गोंद, पत्र, पुष्प और फल इन सबको चन्दनके साथ भृत्ना चाहिये ॥ १९६-२०३ ॥

अथ गंधद्रव्यसुवासनविधिः ।

केतकीयूथिकाजातिश्चम्पकश्चातिमुक्तकः ।

कदम्बोमल्लिकानागः पुन्नागः कुटजस्तथा ॥ २०४ ॥

पाटलाकरुणामौर्वीपुष्पैरेभिः समाचरेत् ।

वासनं दवसं भिन्नैस्तथान्यैरपिशोभनैः ॥ २०५ ॥

शोधिताशोधितं द्रव्यं न कुर्यादेकभाजने ।

असाधुसंगतः साधुरप्यसाधुर्यतो भवेत् ॥ २०६ ॥

पीतः किंचिल्लघुरतिशयं केतकीतुल्यगंधः ।

स्निग्धो गन्धो मिसिमिसिकरो भस्मभावं न याति ॥

प्राप्तिकः कटुरः क्षारगंधानुविद्धम् ।

शुद्धः सम्यक्मदइति महीपालयोग्यो मनोज्ञः ॥ २०७ ॥

करस्थतो ये निक्षिप्ता कस्तूरीचेन्मुहूर्ततः ।

रक्तपित्तजलंकुर्यात् । त्रिमांसातदाभवेत् ॥ २०८ ॥

पक्वात्कपूर्वरतः प्राग्गुणवत्तरम् ।

अत्रापिस्याद्यदक्षुद्रं स्फटिकाभंतदुत्तमम् ॥ २०९ ॥

आप्यमाणं यच्चापिकरेरेखाकरं भवेत् ।

अत्राप्यपक्वे ।

पक्वञ्च सदलं स्निग्धं हरितद्युतिचोत्तमम् ॥ २१० ॥

भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः ।

चन्दनं गुरु गंधाढ्यं रक्तसारं विदुर्बुधाः ॥ २११ ॥

मध्यमं पीतसारं स्यादधमं पाण्डुरच्छवि ।

विशेषेण गुणस्तत्र ग्रन्थिकोटरसंगताः ॥ २१२ ॥

आकृष्णमुत्तमं मूलं रक्तच्छायञ्च मध्यमम् ।

आरक्तं मध्यमं विद्धि रक्तचंदनकन्त्रिधा ॥ २१३ ॥

काकतुण्डच्छविस्निग्धं गुरुचागुरुशस्यते ।

मध्यं तिक्तिरपक्षाभं हेयं शालमलिकाष्ठवत् ॥ २१४ ॥

रक्तस्निग्धं सुगंधं च सरलं सम्मतं सताम् ।

स्निग्धं सुगन्धिलघुचदेवदारुप्रशस्यते ॥ २१५ ॥

खट्वासीधूपजः श्रेष्ठो वचलो मांसलश्च यः ।

मृगशृंगोपमं कुष्ठं कीटदोषोज्झितं मतम् ॥ २१६ ॥

किंचित्पीतामुराशस्तामांसीपिंगजटाकृतिः ।

शैलजः शुकपिच्छाभोजलाग्निभ्यामदूषितः ॥ २१७ ॥

वेणुकोऽद्भुतल्योऽत्र श्रेष्ठः स्थूलस्तु निन्दितः ।

मुस्तं शस्तमनूपोत्थं निशास्थूलाऽरुणान्तरा ॥ २१८ ॥

जार्त्तफलं सशब्दं च गुग्गुस्निग्धं प्रशस्यते ।

एलाकक्कोलबीजाभाग्राह्यालोकोऽत्र वागतिः ॥ २१९ ॥

एलासूक्ष्मबीजश्रेष्ठेत्यर्थः ।

कक्कोलाभाचकर्पूरश्वेताश्रेष्ठाशुटिर्मता ।

कक्कोलकंगुरुस्निग्धंसूक्ष्माद्रव्यस्थितंशुभम् ॥ २२० ॥

गुडत्वक्सुरसाभद्रासुहृदाकीटवर्जिता ।

ग्रन्थिकापाण्डवः किंचित्कनिष्ठामध्यमंमतः ॥ २२१ ॥

उत्तमः कृष्णवर्णोयः स्थूलोऽतीवसनिन्दितः ।

शस्ताप्रियंगूर्वापाण्डुशामाकीटैरदृषिता ॥ २२२ ॥

मलकोष्ठोज्झितंशस्तंसर्ज्जश्रीवासकुन्दुरु ।

सिंहकस्तुस्वच्छपिङ्गः शस्तोमधुनिभोऽधमः ॥ २२३ ॥

भूकेशः सूक्ष्ममूलोऽत्रशस्यतेसरसोनवः ।

कीटाम्रितोयैरक्लिष्टंसरसंपत्रकंशुभम् ॥ २२४ ॥

नीर्धमूलं दृढंस्निग्धंपुराणंद्रवसंयुतम् ।

देशेसाधारणेजातमुशीरंभद्रकम्भवेत् ॥ २२५ ॥

अर्थ—केतकी, जुही, चमेली, चम्पा, अतिमुक्तक, कदम्ब, मल्लिका, नागके-
शर, पुन्नाग, कुड़ा, पादल, करुणी और मौर्वी, इनके फूलोंमें तथा अन्यान्य
सुगंधित पुष्पोंमें गंधद्रव्यको सुवासित करना चाहिये । शोधित और अशोधित
दोनों द्रव्योंको कदापि एक वासनमें न रखे कारण, यह है कि—दुर्जनकी संग-
तिसे सज्जन भी दुर्जन होजाते हैं । (कस्तूरीपरीक्षा,) कुछेक पीतवर्ण हो, तोलमें
अत्यन्त हलकीहो, जिसमें केतकीके फूलोंके समान गंध आतीहो, स्निग्ध, अत्य-
न्त सुगंधयुक्त, अग्रिमें डालनेसे भस्मभावको न प्राप्त होवै और मिसिमिसि ऐसा
शब्द करै, स्वादमें किंचित्कडवी और चरपरीहो और अल्पक्षारगंधयुक्तभी
हो ऐसी कस्तूरी उत्तम और राजाओंके योग्य होतीहै । हाथमें जलको
स्थापन कर उसमें कस्तूरीको डालदेवे, एकमुहूर्तमें वह जल लाल पीले
रंगका होजाय तो उसको कृत्रिम कस्तूरी जाननी । पक्क कर्पूरसे अपक्क कर्पूर
अधिक गुणवाला है, और कच्चे कर्पूरमें भी जो अशुद्ध, स्फटिककी कान्ति-
समान निर्मल और जिसके लगनेसे हाथमें रेखा पड़जाय वह कपूर अत्युत्तम
होताहै । दलयुक्त, स्निग्ध, हरितमणिकी समान प्रकाशमान और अल्पतोडने-
सेभी जिसमें कण गिरने लगें ऐसा पक्क कपूर उत्तम होताहै, सफेदचंदन—भारी,
अत्यंतगंधयुक्त और लाल गूदेवाला उत्तम होताहै, पीले गूदेका मध्यम और
पाण्डु वर्णका अधम होताहै । विशेष करके ग्रन्थि और कोटरसंयुक्त सफेद चन्द-

न उत्तम होता है । लालचन्दन तीन प्रकारका है, तहाँ जिसका मूल किंचित् कृष्णवर्ण हो ऐसा उत्तम होता है, जिसका रक्तवर्ण हो वह मध्यम, और जिसका मूल अल्प रक्तवर्ण हो उसको अधम जानना । अगर कौबेकी तुण्डकी समान रंग-वाली स्निग्ध और भारी उत्तम होती है, तीतर पक्षीके परोंकी समान रंगवाली मध्यम, और सेमलकी समान रंगवाली अधम होती है । सरल काष्ठ स्निग्ध सुगंधित और रक्तवर्ण हो तो उत्तम होता है । देवदारु—स्निग्ध, सुगंधित और हलका उत्तम होता है । खट्वास मुष्क—धूपज और शब्दयुक्त तथा मांसल श्रेष्ठ होता है । कूठ मृगके शींगके समान और कीटदोष वर्जित उत्तम होता है । किंचित् पीली कपूरकचरी उत्तम होती है । बालछड पिंगवर्ण और जटाकी समान आकृतिवाला उत्तम होता है । जो तोतेकी पूंछकी समान हो, जल और अग्निसे न बिगड़ा हो ऐसा भूरिछरीला उत्तम होता है । रेणुका—मूँगकी समान उत्तम होती है और स्थूल निन्दित होती है । नागरमोथा—अनूपदेशमें उत्पन्न होनेवाला उत्तम होता है, हलदी मोटी और भीतरसे लाल उत्तम होती है, जायफल शब्द-युक्त भारी और चिकना उत्तम होता है । इलायची—कंकोलकी समान सूक्ष्म बीजोंवाली उत्तम होती है, छोटी इलायची कंकोलकी समान प्रभावाली कपूरकी समान धवल और छोटेबीजोंकी उत्तम होती है, शीतलचीनी—भारी, चिकनी और सूक्ष्मअग्रभागवाली उत्तम होती है । उत्तम रसवाली दृढ और कीड़े आदिने न खाई हो, ऐसी दालचीनी उत्तम होती है, पाण्डुवर्ण और छोटा पीपलामूल, मध्यम होता है, कालेरंगका पीपरामूल उत्तम होता है और अत्यन्त मोटा पीपरा-मूल अधम होता है । फूलप्रियंगु—पाण्डुवर्ण, श्यामवर्ण और कीड़े आदिका न खाया उत्तम होता है । राल, श्रीवास और कुन्दुरु यह कीट आदिसे न बिगड़े हुए उत्तम होते हैं । शिलारस स्वच्छ और पिंगलवर्णका उत्तम होता है, और सहतकी समान कान्तिवाला अधम होता है, सूक्ष्मजडवाला, उत्तमरसयुक्त और नवीन उत्तम होता है, तेजपात—कीड़े, अग्नि और जलसे न बिगड़ा हुआ और सरस उत्तम होता है, खस—बड़ी जड़वाली, दृढ, स्निग्ध, पुरानी, रससंयुक्त, और साधारण देशमें उत्पन्न होनेवाली उत्तम होती है ॥ २०४—२२५ ॥

ग्राह्याप्रशोष्यसम्यक्चम्पककलिकाप्रदीपकलिकैव ।
कीटादिदोषविरहितमभिनवमितिकेशरंग्राह्यम् ॥ २२६ ॥
अत्र ग्राह्यापसरगापिग्रन्थिलापपेष्टे ।
अन्तःशुद्धिद्वारा त्रेणवचाबाह्यत्वमुज्झति ॥ २२७ ॥

असारमध्यसबलानिष्कीटानलिकामता ।

गजकर्णश्चखुरकोबद्धत्पलपत्रकौ ॥ २२८ ॥

वराहकर्णःपंचैतेनख स्त्याज्या इहान्तिमाः ।

नामानुरूपात्सात्रते ।

लाक्षाचनूतनाग्राह्यामृत्तिकादिविवर्जिता ॥ २२९ ॥

कुसुम्भनूतनंस्पृक्कामव्यापन्नानवाविदुः ।

चौरपुष्पीनवांश्यामामामनन्तिमनीषिणः ॥

मध्यपाकोगुडःश्रेष्ठोनिर्मलःकाष्ठवर्जितः ॥ २३० ॥

हरीतकीचिह्नंरसायनाऽध्यायेऽस्ति ।

भाद्रक्यांकीर्तितंयेषांविरुद्धत्वंनकीर्तितम् ॥ २३१ ॥

तेषांतद्विपरीतत्वाद्विरुद्धमपिलक्षयेत् ।

गतेषामपरेषाञ्चनवातप्रभवोगुणः ॥ २३२ ॥

मांसीपत्रंरादारुकेशरंकुष्ठरेणुकम् ।

एलाप्रियंगुकाश्मीरंमिथोमित्रगणोमतः ॥ २३३ ॥

परमागुरुपत्राञ्चौराब्दश्चेतचंदनम् ।

नखीग्रन्थिकचारस्पृग्देवःष्पीतुमध्यमः ॥ २३४ ॥

स्पृक्स्पृक्का ।

श्रीवासतैलेमदन्दचन्द्रामिसिद्धिपद्मगङ्गातिप्रकीर्तितः ।

भागक्रमात्तैलविधौविधेयोभवेदमीपांसकलोर्द्धपादिकः २३५ ॥

सुगन्धितैलपाकार्थंलानांगंधयोजनम् ॥ २३६ ॥

अर्थ—चम्पाकीकली—दीपककी कलिकाकी समान दीप्तवान् लेनी चाहिये, नागकेशर कीटादि दोषसे रहित और नवीन उत्तम होतीहै, वच—अत्यन्त उग्र, रागयुक्त, और बहुत गाँठवाली उत्तम होतीहै, जो सारहीन हो, जिसका मध्य-भाग बलवान्हो, और जो निष्कीट हो ऐसी नलिका उत्तम होतीहै, हस्तिकर्ण अश्वखुर, बेरीकेपत्र उत्पलपत्र और वराहकर्णके सदृश, ऐसे पाँचप्रकारके नख होतेहैं, इनमें वराहकर्णकी समान नख त्यागना चाहिये, लाख नवीन और मृत्ति-

कादिसे रहित उत्तम होती है, कुसुमके फूल नवीनही उत्तम होते हैं और अस-
वरगभी नवीनही उत्तम होता है, चोरपुष्पी नूतन और श्यामवर्ण उत्तम होती है,
गुड मध्यमरीतिसे पकाया हुआ निर्मल और तृणआदिसे रहित उत्तम होता है,
हरडके लक्षण रसायनाध्यायमें लिखे हैं । जिन द्रव्योंको श्रेष्ठ कहा है उनमें विरु-
द्धता नहीं कही है और उनमें विपरीतगुणयुक्त होनेके कारण उनको विरुद्धभी
कहा है । इन द्रव्योंमें तथा अन्यान्य द्रव्योंमें वातजनित गुण नहीं है । जटामासी
(बालछड), तेजपात, कपूरकचरी, देवदारु, नागकेशर, कूठ, रेणुका, इला-
यची, फूडप्रियंगु और केशर, इन सब मिले हुए द्रव्योंको मित्रगण कहते
हैं । गंधशठी (कपूरकचरी), अगर, तेजपात, सुगंधवाला, चोरद्रव्य नागरमोथा
सफेदचंदन, नखीद्रव्य, गठिवन, चोरक (चोरपुष्पी), असवरग और लोंग
इन सबको मध्यमगण कहते हैं । श्रीवास, शिलारस, कस्तूरी, कुंडुरू, कपूर, और
सौंफ, इनको पटुर्ग [शत्रुवर्ग] कहते हैं । इनकी मात्रा तेलके बनानेमें क्रमसे
उत्तरोत्तर चौथाई भाग क्रम लेनी चाहिये और सुगंधित तेल बनानेमें सुगंध-
वाला आदि सुगंधित औषधि डालनी चाहिये ॥ २२६ ॥ २२७ ॥ २२८ ॥
॥ २२९ ॥ २३० ॥ २३१ ॥ २३२ ॥ २३३ ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

अथ स्वच्छन्दभैरवरसः ।

शुद्धसूतमृतलोहंताप्यगंधकतालकम् ।

पथ्याग्निमंथनिर्गुण्डीत्र्यूषणंटकणविषम् ॥ २३७ ॥

तुल्यांशमर्दयेत्खल्वेदिनंनिर्गुण्डिकाद्रवेः ।

शुण्ठीद्रावैर्दिनैकन्तुद्विगुंजांवटकीकृताम् ॥ २३८ ॥

भक्षयेत्सर्वशूलार्तोनाम्नास्वच्छन्दभैरवः ॥ २३९ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, लोहेकीभस्म, सोनामाखी, गंधक, हरिताल, हरड, अरणी,
निर्गुण्डी, त्रिकुटा, सुहागा और विष इन सबको समानभाग लेकर एकदिन
सम्हालूके रसमें खरल करे, फिर एकदिन सोंठके रसमें खरल करे, पश्चात् दो
गुंजाभरकी गोली बनावै तो स्वच्छन्दभैरवरस सिद्ध हो, यह स्वच्छन्दभैरवरस सर्व-
प्रकारके शूलोंको दूर करे ॥ २३७ ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अथ षडंगगुग्गुलुः ।

अमृतादेवफणश्चशुण्ठीवातारितलकः ।

गुग्गुलुं सर्वतुल्यां शोणित्वये च सदा दृढम् ॥ २४० ॥

कर्षां शोखादये चापि ख्यातं षडङ्ग-गुग्गुलुम् ॥ २४१ ॥

अर्थ—गिलोय, देवदारु, सोंठ, एरण्डका तेल, यह सब समानभाग लेवै और सबकी बराबर गुग्गुलु लेवै, सबको कूट पीसके एक तोलेभर प्रतिदिन खावै तो सर्वप्रकारके वातशूल दूर होवै, इसको षडंगगुग्गुलु कहतेहैं और कोई वैद्य इसको स्वच्छन्दभैरवरसका अनुपान कहतेहैं ॥ २४० ॥ २४१ ॥

अथ त्र्यूषणादिगुटिका ।

त्र्यूषणं पिप्पली मूलं चित्रकं रजनी द्वयम् ।

अजमोदाय वानीचपथ्या तुल्या सुवर्चलैः ॥ २४२ ॥

सैन्धवं वाकुची बीजं यवक्षारं विडं वचा ।

प्रत्येकञ्च त्रिमापन्तु सर्वतुल्यं च गुग्गुलुम् ॥ २४३ ॥

अम्लवेतसकर्षैकं किञ्चिदाढ्येन कुट्टयेत् ।

गुटिका च हितावाते सामे संध्यस्थिमज्जगे ॥ २४४ ॥

दृढं करोति भग्नं च जठरानलदीपनी ॥ २४५ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, पीपरा मूल, चीता, हलदी, दारुहलदी, अजमोदा, अजवायन, हरड़, कालानोन, संधानोन. वाकुचीके बीज, जवाखार, विरिया, मंचल्लोन और वच यह प्रत्येक तीन तीन मासे और सबकी बराबर गुग्गुलु लेवै और अमलवंत दो तोले लेवै, फिर सबको एकत्र पीसके गोली बनालेवै, यह गोली वातरोग, आमवात, संधिगतवात, अस्थिगत वात, मज्जागत वात, इन सब वातविकारोंको दूर करैहै, दूटेहाडोंको जोड़देवै, और अग्निको दीपन करैहै ॥ २४२ ॥ ॥ २४३ ॥ २४४ ॥ २४५ ॥

अथ वातारिरसः ।

क्रमोत्तरगुणं शुद्धं रसं गंधं फलत्रिकम् ।

चित्रकं गुग्गुलुं पञ्चमर्द्यमेरण्डतैलकैः ॥ २४६ ॥

पुन्नागवृहतीयुग्मदेवदारुसुचूर्णितम् ।

एतत्पूर्वोषधिसमं मर्दयेद्याममात्रकम् ॥ २४७ ॥

कर्षखादेत्पिबेत्क्वाथं गरैरण्डमूलकैः ।
 संमर्धैरण्डतैलेनपृष्ठेस्वेदश्चकारयेत् ॥ २४८ ॥
 विरेचनं भवेत्तेनस्निग्धमुष्णश्चभोजनम् ।
 रसोवातारिनामायंसर्ववातहरःपरः ॥ २४९ ॥

अर्थ—पारा एकभाग, गंधक दोभाग, त्रिफला तीनभाग, चीता चारभाग, गुग्गुल पाँचभाग लेंवै, सबको अरंडके तेलमें एक प्रहरतक मर्दनकरै, फिर इसमें पुन्नागके पुष्प, कटाई, कटेरी और देवदारुका चूर्ण मिलाके एकप्रहर खरल करै तो वातारिनामकरस सिद्धहो, इसको एक तोलाभर खावे और ऊपरसे सोंठ और अरण्डकी जड़का काथ पीवै तथा रोगीके शरीरमें अंडीके तेलका मालिश करवै और पृष्ठभागमें स्वेदप्रदान करै, इसप्रकार करनेसे जुलाव होजाताहै । चिकने और गरम भोजनकरै, यह वातारिनामक रस सर्वप्रकारके वातविकारोंको दूर करैहै ॥ २४६-२४९ ॥

अथ वडवानलरसः ।

सूतवज्रार्ककान्तानांभस्ममाक्षिकहाटकम् ।
 तालनीलांजनंतुत्थमहिफेनसमांशिकम् ॥ २५० ॥
 पंचानांलवणानांचभागैश्चैकंविमर्दयेत् ।
 वज्रीक्षीरैर्दिनैकन्तुरुद्धातंभूधरेपचेत् ॥ २५१ ॥
 माषैकंचार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्बडवानलम् ।
 पिप्पलीमूलजंक्वाथंपिप्पल्यासहपाचयेत् ॥ २५२ ॥
 धनुर्वातंदण्डवातंशृंखलावातकंजयेत् ॥ २५३ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, हीरेकीभस्म ताँबेकीभस्म, कान्तलोहेकी भस्म सोनामाखीकी भस्म, सोनेकी भस्म, हरिताल, नीलामुर्मा, नीलाथोथा, रक्तपुष्पेष्ट और पांचानोन प्रत्येक एकएक भागलेंवै, सबको एकत्र कर धूहरके दूधमें एकदिन खरल करै, फिर भूधरयंत्रमें फूँकदेवै तो वडवानल रस सिद्धहो, इसको एकमासेभर, अदरकके साथ खावै और ऊपरसे पीपलके साथ पीपलामूलका काथ पान करै तो धनुर्वात, दण्डवात और शृंखलादि वातविकार दूर होवै ॥ २५० ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

अथ स्वच्छन्दनायकरसः ।

मृतंमृतंतीक्ष्णकान्तंतालंमाक्षिकगंधकम् ।
तुल्यांशंमर्दयेद्भावैर्विदार्यर्द्धरससन्धैः ॥ २५४ ॥
भृंग्युत्थैःकाकमाच्युत्थैर्गिरिकर्णीद्रवैर्दिनम् ।
संमर्द्यभांडंगरुद्धापचेन्मन्दाग्निनादिनम् ॥ २५५ ॥
व्योषाग्निगंधकविषैःसरण्याभयाटङ्कणैः ।
समांशैश्चूर्णितंमिश्रेस्तुल्यांशंपूर्वपातितम् ॥ २५६ ॥
त्रिदिनंऽर्द्धयेद्भावैर्मुण्डीनिर्गुण्डिभृंगजैः ।
अष्टगुंजामितंखादेद्रसःस्वच्छन्दनायकः ॥ २५७ ॥
सर्ववातहरःख्यातोह्यनुपानमिदंपिबेत् ।
लशुनंसैन्धवंतैलंकर्षमात्रंसुखावहम् ॥ २५८ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, तीक्ष्णलोहा, कान्तलोहा, हरिताल, सोनामाखी और गंधक प्रत्येक समान भागलेवै सबको एकत्रकर विदारीकन्द, अदरख, अतीस, मकोय और विष्णुकान्ता (कोयल) इन प्रत्येकके रसमें एकएकदिन खरल कर गोलाबनालेवै, उस गोलेको हाँडीमें रखके मृदु अग्निसे एकदिन पकावै, फिर त्रिकुटा, चीता, गंधक, विष, प्रसारिणी, हरड और सुहागा समानभाग ले, सबका चूर्णकर उक्तगोलेमें मिलादेवै, फिर इसको गोरखमुण्डी, सम्हालू और भांगरेके रसमें तीनदिन खरल करै तो स्वच्छन्दनायक नामवाला रस सिद्ध हो, इसको आठ चौटलीभर खावै और ऊपरसे लहशुन, सेंधानोन और तिलोंका तेल मिलाकर दो तोलेभर पीवै तो सर्वप्रकारके वातरोग दूर होंवें ॥ २५४-२५८ ॥

अथ त्रिगुणाख्योरसः ।

गंधकाष्टमुणंसृतंशुद्धंमृद्वग्निनाक्षणम् ।
पक्त्वावतार्यसंचूर्ण्यचूर्णतुल्याऽष्टाष्टकम् ॥ २५९ ॥
सप्तगुंजामितंखादेद्द्वैतयेच्चदिनेदिने ।
रुंजैकैकंक्रमेणैवयावत्स्यादेकविंशतिः ॥ २६० ॥
क्षीराज्यशर्कराभिश्चशाल्यन्नपथ्यं माचरत् ।

कम्पवातप्रशान्त्यर्थनिर्वातेनिवसेत्सदा ॥ २६१ ॥

द्विगुणाख्योरसोनामत्रिपक्षात्कम्पवातजित् ॥ २६२ ॥

अर्थ—गंधक एकभाग, और शुद्धपारा आठ भाग, दोनोंको क्षणभर मृदु अग्निसे पकावै, फिर उतारकर चूर्ण करले और इस चूर्णमें बराबर हरड-काचूर्ण मिलावे, इसको पहिलेदिन सातरत्तीभर खावै पश्चात् क्रमसे रोज रोज एकरत्ती बढ़ाके खावै, ऐसे इक्कीस रत्तीतक खावै, इसपै दूध, घी, बूरा और शालिधानोंका भात सेवन करै । और कम्पवातको शान्तकरनेके लिये रोगी निरंतर निर्वातस्थानमें रहै, यह त्रिगुणाख्यनामवालारस तीनपक्षमें कम्पवातको दूर करैहै ॥ २५९ ॥ २६० ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

अथ वातगजांकुशः ।

मृताभ्रंतीक्ष्णताम्रञ्चसूततालकगंधकम् ।

भार्ङ्गीशुण्ठीबलाधान्यंकट्फलंचाभयाविपम् ॥ २६३ ॥

मर्द्यञ्चपलाद्रावैर्निष्कैकंभक्षयेद्वटीम् ।

वातश्लेष्माहराह्येषागुरुवातगजांकुशः ॥ २६४ ॥

अर्थ—अभ्रककीभस्म, लोहेकीभस्म, ताँबेकीभस्म, पारेकीभस्म, शुद्धहरिताल, शुद्धगंधक, भारंगी, सोंठ, खिरैंटी, धनियाँ, कायफल, हरड और विप इन सबको समान भागले पीपलके काथमें खरल करके दोदो मासेभरकी गोली बना-लेवै, इन गोलियोंको सेवनकरनेसे—वातकफरोग और अत्यन्त बढ़ा हुआ वात-रोग दूर होताहै, इसको वातगजांकुश रस कहतेहैं ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

अथ विजयभैरवतैलम् ।

रसगंधशिलातालचूर्णसंमर्द्यकांजिकैः ।

लिस्वावस्त्रेकृतावर्तिस्तैलाक्ताज्वालयेच्चताम् ॥ २६५ ॥

तद्भुतंग्राहयेत्तैलमधःपात्रेघृतेसति ।

तत्तैलैर्लेपयेद्वात्रं नागवल्लयातुभक्षयेत् ॥ २६६ ॥

बाहुकम्पंशिरःकम्पमेकाङ्गं जानुकम्पनम् ।

नाशयेद्भक्षणाच्छेपारैर्लंविजयभैरवम् ॥ २६७ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, मैनसिल और हरिताल इनसबका चूर्ण करके कांजीमें खरल करै, फिर इसको बख्खपै लपेटकर बत्ती बनालेवै, उन बत्तियोंको तेलमें

भिजोके अग्निसे जलावै, उनके जलनेसे जो तेल नीचेको गिरै उसको एक बा-
सनमें लेलेवै, इसतेलको शरीरसे मलै, अथवा नागरपानपै लगाकर भक्षण करै तो
बाहुकम्प, शिरःकम्प, एकाङ्गकम्प और जानुकम्प दूर होवै, इसको विजयभैरव
तेल कहतेहैं ॥ २६५ ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

अथ सर्वाङ्गकम्पारिरसः ।

मृतंसूतंसूतंताम्रमर्दयेत्कटुकद्रवैः ।

एकविंशतिवारंचशोष्यपेष्यंपुनःपुनः ॥ २६८ ॥

चणमात्रावटीभक्ष्यारसःसर्वाङ्गकम्पजित् ॥ २६९ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म और ताँवेकी भस्म दोनोंको त्रिकुटेके रसमें खरल करै,
पश्चात् खरल करके सुखा देवै, फिर खरल करै, इसप्रकार इक्कीसबार खरल
कर चनेकी बराबर गोली बनाके खानेसे सर्वाङ्गकम्परोग दूर होताहै, इसको स-
र्वाङ्गकम्पारिरस कहतेहैं ॥ २६८ ॥ २६९ ॥

अथ अर्द्धाङ्गवातारिरसः ।

सूतस्यचपलात्पञ्चपलैकमृतताम्रकम् ।

जम्बीराणांद्रवैःपिष्टंसूततुल्यञ्चगन्धकम् ॥ २७० ॥

नागवल्लीदलैःपिष्टंस्थित्वामूपां विलेपयेत् ।

रुद्धालघुपुटेपच्यात्त्र्यूपणेनसमन्वितम् ॥ २७१ ॥

अर्द्धाङ्गकम्पवातार्तोभक्षयेच्चद्विगुञ्जकम् ॥ २७२ ॥

अर्थ—पारा बीस तोले और ताँवेकी भस्म चार तोले, इन दोनोंको जम्बीरी
नीबुओंके रसमें पीसै, फिर इसमें पारेकी बराबर गन्धक मिलाकर पानोंके रसमें
पीसै, पश्चात् मूषामें रख मूषाका मुख बंदकर लघुपुटमें फूंक देवै । फिर इसरसमें
त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर इसको दो रत्तीभर भक्षण करै तो अर्द्धाङ्गकम्पवात दूर
होवै ॥ २७० ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

अथ पित्तयुतवातलक्षणम् ।

हसन्तापमूर्च्छाःसुर्वातेपित्तसमन्विते ॥ २७३ ॥

अर्थ—पित्तमयुक्त वातरोगमें दाह, सन्ताप और मूर्च्छा उत्पन्न होतीहै ॥ २७३ ॥

अथ वातापेत्तारिरसः ।

मृतंसूतंसूतंताम्रशिलातालं विपोषणम् ।

अधुनागबलापथ्यात्रिकण्ठञ्चविदारिका ॥ २७४ ॥

एरण्डमर्दयेत्तुल्यं द्रवैश्चाग्निं ननैः ।

निष्कमात्रावर्टी खादेद्रातपित्तहरा भवेत् ॥ २७५ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, तांवेकीभस्म, मैन्शिल, हरिताल, विष, कालीमिरच, कूठ, गंगोरन, हरड, गोखरू, विदारीकन्द और अरण्डकी जड़ इन सबको समान भागलेकर चीते और पुनर्नवेके रसमें खरल करके चारचार मासेकी गोली बनालेवै, एकगोली प्रतिदिन खानेसे वातपित्त रोग दूर होवै । इसको वातापित्त-रिरस कहतेहैं ॥ २७४ ॥ २७५ ॥

अथ सामान्यतोवातहरणानि ।

स्निग्धोष्णस्थिरवृष्यबल्यलवणस्वाद्वम्लतैलातप-

स्नानाभ्यंजनमत्स्यमांसमदिरासंवाहनोन्मर्दनैः ।

स्नेहस्वेदनिरूहणस्यशमनस्नेहोपनाहादिक-

पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्तिनयेत् ॥ २७६ ॥

इति वातरोगाध्यायः ।

अर्थ—स्निग्ध, उष्ण, स्थिर, वृष्य, बलकारक, नमकीन, खटे और मधुर-द्रव्य, तेल, धूप, स्नान, अभ्यंजन, मत्स्यमांस, मदिरा, संवाहन, उन्मर्दन, स्नेहस्वेद, निरूहण, नस्य, स्नेह और उपनाहादि, पान, आहार और विहार, यह सब वातरोगको शान्त रनेवालेहैं ॥ २७६ ॥

इति वातरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ वातरक्तचिकित्सा ।

बाह्यलेपाभ्यंगसेकोपानाहैर्वातशोणितम् ।

विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ १ ॥

द्रयोर्मुञ्चेदसृक्शृगसूच्यलाबुजलौकसा ।

देशादेशं ब्रजेत्स्राव्यंसिराभिः च्छलेन वा ॥ २ ॥

अंगम्लानौनचस्राव्यंरूक्षेवातोद्भवेतुयत् ।

पुराणायवगोधूमशालयोभोजनेमताः ॥ ३ ॥

मुद्गादियूषः सघृतो मांसं प्रातुदवैष्किरम् ।

शाकं वास्तुक्वेत्राग्रमुनिषण्णादिकं हितम् ॥ ४ ॥

शस्तावातकफेकोष्णालेपाद्याःपैक्तिकेहिमाः ।

दशमूलीशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिःस्पृष्टः ॥ ५ ॥

परिसेकोऽनिलप्रायेतद्वतकोष्णेनसर्पिषा ।

क्षीरपरिसेकइतियोजनानतुपेयम् । शूलंव्यथा ।

लेपोवरुणशिमुभ्यांशूलंहन्तिसकांजिकः ॥ ६ ॥

गोधूमचूर्णछगलीपयश्चसच्छागदुग्धोरुबुबीजकल्कः ।

लेपेविधेयंशतधौतसर्पिःसेकेपयश्चाविकमेवशस्तम् ॥ ७ ॥

अगस्तिपुष्पचूर्णेनमाहिपंजनयेत्पयः ।

तदुत्थनवनीताक्तोदेहजंस्फुटनंजयेत् ॥ ८ ॥

माहिपंनवनीतश्चखलिगोमूत्रसैन्धवम् ।

क्षीरश्चाग्नौप्रताप्याद्गमुद्वर्त्यस्फुटनंजयेत् ॥ ९ ॥

लेपःपिष्टास्तिलास्तद्वद्द्रष्टाःपयसिनिर्वृताः ।

दुग्धेनपिष्टाहिततोभृष्टादुग्धेनिर्वापिताः ॥ १० ॥

अमृतानागरधान्यककर्पत्रितयेनपाचनंसिद्धम् ।

जयतिसरक्तंवातंसामंकुष्ठान्यशेषाणि ॥ ११ ॥

इति ऋत्येकंकर्पात्कर्पत्रितयम् ।

अर्थ—वाह्यवातरक्तमें लेप, अभ्यङ्ग, जलका सेवन और उपनाह स्वेद करावे और गम्भीरवातरक्तमें विरेचन, निरूहवस्ति और स्नेहपान करावे । शींग, सुई, तोंबी और जांकसे दोनों प्रकारके वातरक्तरोगमें रक्तमोक्षण करावे, एकही जगह रक्तमोक्षण न करावे, किन्तु शरीरकी सर्व शिराओंके प्रदेशमें जगह जगह रक्तस्राव करावे । जिसके अंगमें ग्लानि हो, जिसका शरीर रूखाहो, और जिनके वातसे वातरक्त उत्पन्न हुआ हो, उनको वातरक्तरोगमें रक्तमोक्षण नहीं कराना चाहिये । पुराने जी, गेहूँ, और शालिधानोंका भोजन, मुद्गादिका यूप, प्रतुद और विष्किर पक्षियोंका घृतसे भूना हुआ मांस, बथुआ, बेतका अग्रभाग और शिरीआरी आदिका शाक, यह सब वातरक्तरोगमें हितकारीहैं । वातश्लेष्मिक वातरक्तरोगमें किंचित् उष्ण प्रलेपादि हितकारीहैं और पैक्तिक वातरक्तरोगमें शीतल लेपादिक हितकारीहैं । गायके

दूधमें दशमूलको पका शीतलकर पीनेसे तत्काल शूल दूर होताहै, किंचित् गर-
मधीमें दूध मिलाके सींचनेसे शूल दूर होताहै (यहां शूलशब्दका अर्थ वातर-
क्तकी पीडाकाहै) वरना और सैजिनेकी छालको काँजीमें पीसकर लेपकरनेसे
वातरक्तकी वेदना दूर होतीहै । गेहूँके चूनेको बकरीके दूधमें मिलाके अथवा
अरंडके बीजोंको बकरीके दूधमें पीसके, वा सौवार धुले हुए घीके लेप करनेसे,
भेडके द्वारा सेक करनेसे वातरोग आराम होताहै । भैंसके दूधमें अगस्त्येका
चूर्ण डालके दही जमा देवै, फिर उसहीमेंसे माखन निकालकर लेप करनेसे देह-
स्फुटन दूर होताहै । अथवा भैंसका माखन, खल, गोमूत्र, सेंधानोन और दूध
इन सबको मिलाकर आगपै गरम करके शरीरपै उद्घर्तन करनेसे देहस्फुटन दूर
होताहै । भुने हुए तिलोंको दूधमें पीसकर फिर दूधहीमें मिलाके लेप करनेसे,
अथवा गिलोय, सोंठ और धनियाँ प्रत्येक एक एक तोले लेकर पाचन बनाके
पीनेसे वातरक्त, आमवात और सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ १ ॥ २ ॥
॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ वातशोणितोपायः ।

गुडूच्याःस्वरसंकलंकचूर्णवाक्काथमेववा ।

प्रभूतकालमासेव्यमुच्यतेवातशोणितात् ॥ १२ ॥

अर्थ—गिलोयका स्वरस कल्क, चूर्ण, अथवा काथ कुछेक दिवस सेवन कर-
नेसे वातरक्तरोग दूर होताहै ॥ १२ ॥

अथ वातरक्तहरोपायः ।

पीतःसगुग्गुलुःकाथोगुडूच्यावातरक्तजित् ॥ १३ ॥

अर्थ—गिलोयके काढ़ेमें गुग्गुलु मिलाके पीनेसे वातरक्तरोग दूर होताहै ॥ १३ ॥

अथामवातहरोपायः ।

घृतेनवातंसगुडाविबन्धंपित्तंसिताढ्यामधुनाकफञ्च ।

वातासमुग्रंरुबुतैलमिश्राशुंक्वामवातंशमयेद्गुडूची ॥ १४ ॥

अर्थ—गिलोय घीके साथ, वातको, गुडके साथ विबन्धको, खँडके साथ
पित्तको मधुके साथ कफको, अंडीके तेलके साथ और वातरक्तको, सोंठके साथ
सेवन करनेसे आमवात रोगको दूर करै है ॥ १४ ॥

अथ सर्वांगवातहरोपायः ।

वासागुडूचीचतुरङ्गुलानामेरण्डतैलेनपिवेत्कषायम् ।

क्रमेण सर्वांगजमध्यशेषं जयेदमृगवातभवं विकारम् ॥ १५ ॥

चतुरंगुलं शोणालुमूलम् ।

अर्थ—वासा, गिलोय और श्योनाककी जड़ इनका काथ बना अंडीके तेलके साथ पीनेसे सर्वांगवातरक्त दूर होता है ॥ १५ ॥

अथ वातरक्तहरोपायः ।

तिस्रोथवापंचगुडेन पथ्यादग्ध्वापिबेच्छिन्नरुहाकषायम् ।

तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुसंभिन्नमपि ह्यवन्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तीन या पांच छोटी हरडोंको गुडके साथ खाकर ऊपरसे गिलोयका काथ पीनेसे जानुतक स्फुटित वातरक्तरोग दूर होता है ॥ १६ ॥

अथ वातरक्तहरः कल्कः ।

रुबुबीजामृताकल्को वातासंहन्ति सेवितः ॥ १७ ॥

अर्थ—अरण्डके बीज और गिलोयका कल्क सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है ॥ १७ ॥

अथ सघृतगुडसेवनगुणाः ।

कफवातास्रवीसर्पकण्डूजित्सगुडं घृतम् ॥ १८ ॥

अर्थ—गुड और घृतको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कफ वातरक्त, वीसर्प और कण्डूरोग दूर होता है ॥ १८ ॥

अथ पटोलादिकाथः ।

पटोलकटुगभीरुत्रिफलाप्लवङ्गसहितम् ।

काथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदा हंवातशोणितम् ॥ १९ ॥

अर्थ—पटोल, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गिलोय इनका काथ बनाकर पीनेसे दाहयुक्त वातरक्तरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

अथ वातरक्तहरः कल्कः ।

कटुगुडप्लवङ्गद्विशुण्ठीकल्कः समाक्षिकः ।

गोमूत्रपीतो जयति सकफं वातशोणितम् ॥ २० ॥

अर्थ—कुटकी, गिलोय, मुलैठी और सोंठ इनको सहतमें पीसकर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफयुक्त वातरक्त दूर होता है ॥ २० ॥

अथ वातरक्तहरः कषायः ।

धात्रास्तहरिद्राणकषायं वाकफाधिके ॥ २१ ॥

अर्थ—आमला, नागरमोथा और हलदीका काथ बनाकर पीनेसे कफाधिक वातरक्त दूर होता है ॥ २१ ॥

अथ कफाधिकवातरक्तहरोपायः ।

कोकिलंक्षामृताकाथेपिबेत्कृष्णांकफाधिके ।

पथ्यभोजीत्रिसप्ताहान्मुच्येद्वेदाशोणितात् ॥ २२ ॥

अर्थ—तालमखाना और गिलोयके काढेमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे इक्कीस दिनोंमें कफाधिक्य वातरक्तरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

अथ नवकार्षिककाथः ।

त्रिफलानिबमंजिष्ठावचाकटुकरोहिणी ।

वत्सादनीदारुनिशाकषायोनवकार्षिकः ॥ २३ ॥

वातरक्तं तथाकुष्ठंपामानंरक्तमण्डलम् ।

कुष्ठंकपालिकाकुष्ठंपानादेवापकर्षति ॥ २४ ॥

प्रत्येकंकर्षकम् । प० रक्तिकामाषेणकर्षोऽग्राह्यः ।

अर्थ—त्रिफला, नीम, मैजीठ, वच, कुटकी, गिलोय, दारुहलदी, प्रत्येक एक एक कर्ष ले काथ बनाके पीनेसे वातरक्त, कोढ़, पामा, रक्तमण्डलकुष्ठ और पालिकाकुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ शतावरीगुडूचीघृते ।

शतावरीरसेकल्केगुडूच्याःकाथकल्कयोः ।

तुल्यंक्षीरंघृतंसिद्धंवातासृक्कुष्ठजित्परम् ॥ २५ ॥

अर्थ—गायका घी चारसेर, गायका दूध चारसेर, सतावरका रस वा गिलोयका काथ चारसेर, और कल्कके लिये सतावर, गिलोय एकसेर लेंवै । विधि—पूर्वक दोनो घृतोंको सिद्ध करै । इस सतावरी घृत अथवा गुडूची घृतको पीनेसे वातरक्त और कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

अथामृतायघृतम् ।

अमृतायष्टिकाश्मर्यद्राक्षाब्दारग्वधामरैः ।

गोक्षुरिक्षुरवृश्चूरिवृद्धदारबलावृषैः ॥ २६ ॥

सस्नैरण्डवरातिक्ताभीरुः०ठीकणोत्पलैः ।

धात्रीरससमंसर्पिःसाधितंत्रिणेजल ॥ २७ ॥

गम्भीरोत्तानवातासंत्रिकजंधोरुर्जांरुजम् ।

हन्त्युग्रक्रोष्टृशीर्षचरुग्दाहंसानिलंज्वरम् ॥ २८ ॥

मेदोदावर्तब्रध्नादीनिदमायुर्बलप्रदम् ।

अमरं देवदारु इक्षुरः कोकिलाक्षमूलम् ।

वृश्चैरः श्वेतपुनर्नवा । व्यक्तमन्यत् ॥

अर्थ—गायका घी चारसेर, आमलोंका रस चारसेर, जल बारह सेर और कल्कके लिये गिलोय, मुलैठी, कुम्भेर, दाख, नागरमोथा, अमलतास, देवदारु, गोखुरु, तालमखाना, सोंठ, विधारा, खिरंटी, अड्डसा, रास्ना, अरण्ड, त्रिफला, कुटकी, सतावर, सोंठ, पीपल और कमल, यह सब एकसेर लेवे, फिर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करै । इस घृतको सेवन करनेसे—गम्भीर और उत्तानवातरक्त, त्रिक और जंधाकी वेदना, अत्यन्त उग्र क्रोष्टृशीर्षवात, रुग्दाह, सन्निपात, वातज्वर, मेदरोग, उदावर्त और ब्रध्नादि रोग दूर होते हैं, तथा बल और आयु बढ़ती है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ गुडूच्यादितैलत्रयम् ।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यातैलद्राक्षारसेनवा ॥ २९ ॥

सिद्धंमधुककाश्मर्यरसैर्वावातरक्तजित् ॥ ३० ॥

गुडूचीक्वाथदुग्धाभ्यामितिचक्रेपाठान्तरम् ।

अर्थ—गिलोयके क्वाथ अथवा कल्कमें तेलको पकाकर, या दाखके रसमें तेलको पकाकर अथवा महुआ और कुम्भेरके रसमें पकाकर सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ खुड्कापद्मकतैलम् ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम् ।

स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचंदनैः ॥ ३१ ॥

खुड्कापद्मकमिदंतैलंवातासदाहनुत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—तिलोंका तेल एकसेर, कल्कके लिये राल, मंजीठ, सतावर, काकोली और लालचंदन एकसेर और पद्माख, खस, मुलैठी और हलदीका क्वाथ सोलह सेर लेवे, सबको विधिपूर्वक मिलाके तेलको सिद्ध करै । इसको खुड्कापद्मक तैल कहते हैं । इसको सेवन करनेसे वातरक्त और दाह दूर होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ गुडूचीतैलम् ।

तुलांपचेजलद्रोणेगुडूच्याःपादशेषितम् ॥ ३३ ॥

क्षीरद्रोणन्तुताभ्याञ्चपचेत्तैलाढकंशनैः ॥ ३४ ॥

कल्कैर्मधुकमंजिष्ठाजीवनीयगणस्तथा ।

कुष्ठैलागुरुमृद्रीकामांसीव्याघ्र-खंडांसी ॥ ३५ ॥

हरेणुंश्रावणीव्योषंशताह्वाशृंगिशारिवे ।

त्वक्पत्रार्जुनविक्रान्तास्थिरातामलकीतथा ॥ ३६ ॥

नतंहीबेरकेशरंपद्मकोत्पलचन्दनम् ।

सिद्धंकर्षसमैर्भागैःपानाभ्यामनुवासनैः ॥ ३७ ॥

सेव्यंवातस्रजोहन्तिसर्वधात्वन्तराश्रयाः ।

स्वेदकण्डूजायासशिरःकंपामयार्दितः ॥ ३८ ॥

हन्याद्रणकृतान्दोषान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—तिलोंकातेल आठसेर, कल्कके लिये मुलैठी, मँजीठ, जीवनीयगणकी सम्पूर्ण औषधि, कूट, इलायची, अगर, दाख, बालछड, व्याघ्रनखी, नखी, रेणुका, गोरखमुण्डी, त्रिकुटा, सोंठ, काकडांशिगी, शारिवा, दालचीनी, तेजपात, अर्जुन, मूषाकानी, सालपर्णी, भुईआमला, तगर, नागकेशर, सुगंधबाला, पद्माख, कमल और चंदन, प्रत्येक दो दो तोले लेवै, गायका दूधवत्तीस सेर और काथके लिये गिलोय साढेबारह सेर, शेष सोलहसेर । सबको एकत्र कर तेलको सिद्ध करै । इसको पान, मालिश और अनुवासनके द्वारा व्यवहार करनेसे—सर्वधातुओंमें स्थित वातरक्त-पसीना, खुजली, पीडा, दोषप्रकारका आयास, शिरःकम्प, उर्दितधात और व्रण आदिसे उत्पन्न हुए बिकार दूर होतेहैं, यह गुडूचीतैल अत्यन्त उत्तम है ॥ ३३-३९ ॥

अथ शतावरीतैलम् ।

शतपत्तवाशताव्याजलद्रोणावशेषितम् ।

स्त्रिाव्यविपचेत्तैलंक्षीरं-त्वाचतुर्गुणम् ॥ ४० ॥

कल्कैर्णालशालूकविषर्कजल्कमालती ।

पुष्पेर्हीबेरमधुकशारिवापद्मकेशरैः ॥ ४१ ॥

मेदापुनर्नवाद्राक्षामंजिष्ठाबृहतीद्वयम् ।
 गंधकस्यचमूलानिमूलंसहचरस्यच ॥ ४२ ॥
 अश्वगंधाचविल्वञ्चश्वदंष्ट्रात्रिकटुस्तथा ।
 लिङ्गस्थमूलमेतेषांयस्मिंस्तैलेविनिक्षिपेत् ॥ ४३ ॥
 शतपुष्पादेवदारुमांसीशैलेयकंबले ।
 चंदनंतगरं कृष्णमेलाचांशुमतीवचा ॥ ४४ ॥
 वृद्धदारककाकोलीमेदामधुकमुत्पलम् ।
 सर्वमेतत्समंकृत्वा दृढैरक्षसमन्वितैः ॥ ४५ ॥
 पानेबस्तौतथाभ्यंगेनस्येचैवप्रदापयेत् ।
 अंगशूलंशिरःशूलंमेहदण्डापतानकम् ॥ ४६ ॥
 वातरक्तंसदाहश्चवातपित्तादिकंमदम् ।
 शोथपाण्ड्यामयप्लीहकामलागरगृध्रसी ॥ ४७ ॥
 योनिशूलंत्वसृग्दोषमाध्मानेविनिहन्तिच ।
 क्षीणशुक्रौजसांपुंसांशस्तंवन्ध्याशुभप्रदम् ॥ ४८ ॥
 शतावरीतैलमिदंकृष्णात्रेयेणपूजितम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—तिलोकातेल सोलहसेर, गायका दूध चौंसठ सेर काथके लिये शता-
 वर साढेबारहसेर, जल चौंसठसेर, शोष सोलह सेर रखै । मृणाल (कमलकी
 डंडी) शालूक (भसींडे) कमलकी केशर, गाल्मीदि, फूल, सुगंधवाला,
 मुलैठी, सारिवा, कमल, नागकेशर, मेदा, पुनर्नवा, दाख, मैजीठ, कटाई,
 कटेरी, उरण्डीकीजड, कटसरीयाकी जड, असगंध, बेल, गोखुरू और त्रिकुटा,
 प्रत्येकका काथ दो दो तोले लेंवै और कल्कके लिये सौंफ, देवदारु, बालछड,
 भूरिछरीला, खिरैटी, गंगेरन, लालचंदन, कूठ, इलायची, पिठवन, बच, विधा-
 रा, काकोली, मेदा, महुएके फूल और कुमुद प्रत्येक दोदो तोले लेंवै, सबको मिला-
 कर तेल सिद्ध करै । इसको पान, वस्तिकर्म, अभ्यंग और नस्यकर्मके द्वारा प्रयोग
 करनेसे—अंगशूल, शिरःशूल, प्रमेह, दंडापतानक, वातरक्त, दाह, वातपित्तादिक
 मद, सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, कामला, विषदोष, गृध्रसीवात, योनिशूल, रुधि-
 रविकार और आध्मानरोग दूर होतहैं । यह तेल क्षीणशुक्र और क्षीण ओज-

बाले मनुष्योंको परमहितकारीहै और बन्ध्या स्त्रियोंको कल्याणप्रदायकहै । यह सतावरीतिल श्रीकृष्ण और आत्रेयकरके पूजितहै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथ कामलकावटिका ।

अंकोटमूलं त्रिफलाकुण्डलीमरिचं निशा ।

सप्तच्छदाकुटीकुष्ठं प्रत्येकं कार्ष्णिकं भवेत् ॥ ५० ॥

विडंगमुस्तकं काचं तालकं टंकणं त्रिवृत् ।

रसगंधकलोहानां प्रत्येकार्द्धं पलं क्षिपेत् ॥ ५१ ॥

गुग्गुलुं त्रिपलं दत्त्वा घृतेन परिपेषितम् ।

वटी कामलकानामगहनानन्दभाषिता ॥ ५२ ॥

चतुर्माषावटीखाद्यागोमूत्रेण जडीकृता ।

वातरक्तं निहन्त्या शुनानां दोषसमुद्भवम् ॥ ५३ ॥

कुष्ठं नानाविधं हन्ति नानादोषसमुद्भवम् ।

दद्रुकण्डूविचर्चञ्च व्रणार्शोगंडमालिका ॥ ५४ ॥

भगंदरोपदंशश्च विद्रधिगर्दभाषुदे ।

श्लीपदं शोथशूलानिकासश्वासमरोचकम् ॥ ५५ ॥

प्लीहगुल्मोदराष्टीलामेहमेदोगलामयान् ।

जीर्णज्वरमानाहश्च पांडूादि त्रितयं जयेत् ॥ ५६ ॥

संग्रहग्रहर्णादुष्ठांबलवर्णाग्निवर्द्धनीम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—अंकोटकी जड़, त्रिफला, गिलोय, कालीमिरच, हलदी, सतोना, कपूरकचरी और कूठ यह प्रत्येक औषधि एक एक तोले, बायविडंग नागरमोथा, कांच, हरिताल, सुहागा, निसोत, पारा, गंधक और लोहा यह प्रत्येक दो दो तोले और गुग्गुलु चौबीस तोले लेंवै, सब द्रव्योंको एकत्र धीके साथ पीस कर गोमूत्रमें चार चार मासेकी गोली बनालेंवै, यह कामलकानामवाली वटी गहनानन्दने कहीहै । प्रतिदिन एकगोलीखानेसे—शीघ्रही अनेकप्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुवा वातरक्त, नानाप्रकारके कोढ़ और दाह, कण्डू, विचर्चिका, व्रण, बवासीर गंडमाला, भगंदर, उपदंश, विद्रधि, जालगर्दभकरोग, अर्बुद, श्लीपद, सूजन,

शूल, खँसी, श्वास, अरुचे, ड़ीहा, गुल्मरोग, उदररोग, आष्ठीला, प्रमेह, मेद-
रोग, गलरोग, जीर्णज्वर, आनाह, पाण्ड्वादिरोग और दुष्ट संग्रहणीरोग दूर हो-
ताहै, तथा बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥
॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अथ पिण्डतैलम् ।

मधूच्छिष्टंसमंजिष्टंससर्जरसशारिवम् ।

पिण्डतैलतदभ्यंगाद्रातरक्तरुजापहम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—मोम, मँजीठ, राल और सारिवा, इनका तेल सिद्धकर मालिश करनेसे
वातरक्तरोग दूर होताहै ॥ ५८ ॥

अथ शारिवाद्यंतैलम् ।

शारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाऽम्बुना ।

गुडूचाक्वाथदुग्धचकर्मरङ्गरसेनच ॥ ५९ ॥

पचेतैलञ्चतिलजन्दत्तैतानिभिषग्वरः ।

काकोल्यौजीरकंमेदेशताह्वाक्षीरिणीयुतैः ॥ ६० ॥

जिङ्गीसिक्थामृतानन्तासर्जसैन्धवचन्दनैः ।

षड्गुंजाधिकचतुर्मासंकर्षद्वितयसंयुतम् ॥ ६१ ॥

हन्तिवातास्रजंघोरंस्फुटितंगलितन्तथा ।

चर्मदलञ्चपामानंत्वग्दोषञ्चविपादिकाम् ॥ ६२ ॥

कुष्ठान्यशांसिवीसर्पव्रणशोथभगन्दरान् ।

नसोऽस्तिवातरक्तस्यविकारोयनहन्तिच ॥ ६३ ॥

अर्थ—तिलका तेल चारसेर, सारिवा, नीम, कुम्हडा और पोईकी क्षारका
जल चारसेर, गिलोयका काथ चारसेर, गायका दूध चारसेर, कमरखोंका रस
चारसेर और कल्कके लिये मँजीठ, मोम, जीरा, मेदा, महामेदा, खिरनी,
काकोली, क्षीरकाकोली, गिलोय, सारिवा, राल, सैधानोन और लालचन्दन,
यह प्रत्येक तीन कर्ष चार मामे और छे रत्ती लेंव । सबको विधिपूर्वक
तेलको सिद्ध करै । यह तेल-वातरक्त, घोर स्फुटित और गलितरोग, चर्म-
दलकुष्ठ, पामारोग, त्वचाके विकार, विपादिका, सर्वप्रकारके कुष्ठ, बवासीर,
वीसर्प, व्रण, सूजन और भगन्दररोगको दूर करैहै, ऐसा कोई भी वातरक्त

विकार नहीं है जिसको यह शिखादितैल दूर नहीं करसक्ता ॥ ५९ ॥ ६० ॥
॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ वातरक्तान्तकोरसः ।

लोहंफलत्रिकंचैवशाणमानंसमाहरेत् ।

षट्शाणंबाकुचीबीजंयत्नतः परिकल्पयेत् ॥ ६४ ॥

त्रिवृच्चित्रकमूलश्चशाणंशाणंसमाहरेत् ।

शुण्ठीशाणत्रयंदद्याच्छाणैकंपिप्पलीतथा ॥ ६५ ॥

तोलद्वयंगुडूच्याश्चतथापौनर्नवंदलम् ।

तथावासकवल्कश्चमुस्तंशाणद्वयंतथा ॥ ६६ ॥

शाणद्वयंघोषावतीफलंदद्याद्रिषग्वरः ।

पिष्टैकत्रजलंदत्त्वाशुष्कंभक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ६७ ॥

मासमेकंप्रयोगेणप्रातःकालेदिनेदिने ।

मधुनालेहपिष्टश्चवातरक्तंविनाशयेत् ॥ ६८ ॥

गम्भीरिद्वन्द्वजंचैवत्रिदोषजमथापिवा ।

नाशयेन्नात्रसंदेहःसर्वकुष्ठंतथैवच ॥ ६९ ॥

वातरक्तान्तकोनामप्रयोगोमुनिसम्मतः ॥ ७० ॥

अर्थ—लोहा और त्रिफला प्रत्येक चारमासे, बाकुचीके बीज तीन तोले, निसोथ, चीता, प्रत्येक चार चार मासे, सोंठ बारहमासे, पीपल चारमासे, गिलोय, पुनर्नवा और अडूसेकी छाल प्रत्येक दो दो तोले, नागरमोथा एक-तोला और कडवी तोरइयोंके बीज एक तोलाभर लेंवै, सबको एकत्रकर पानी डालके पीसलेंवै, फिर इसके सूखजानेपर इसमें सहत मिलाके प्रति-दिन प्रातःकाल चाटै, इसप्रकार एकमास चाटनेसे वातरक्त, गम्भीर द्वन्द्वज और त्रिदोषवातरक्त तथा सर्वप्रकारके कोढ़ दूर होतेहैं, इसको वातरक्तान्तक रस कहतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ कैशोरकगुग्गुलुः ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्यगुग्गुलोःप्रस्थम् ।

प्रस्थद्वयंगुडूच्यादिफलैःपृथगपिप्रस्थम् ॥ ७१ ॥

पक्काशताढकजलेशेषितमर्द्धपचेत्पश्चात् ।
 दत्त्वापिण्डितगुग्गुलु मस्मिन्गुडवत्साधितेशीते ॥ ७२ ॥
 त्रिफलात्रिकटुविडंगपृथक्पलार्द्धगुडूच्याश्च ।
 कर्षकर्षत्रिवृतादन्त्योःसंचूर्ण्यनिक्षिपेत्तदनु ॥ ७३ ॥
 जलः षणाद्यनुपानंभेषजमुपयुज्ययंत्रणाहीनः ।
 वातासंहन्त्यखिलंमृतशुष्कंस्फुटितमागतंजानु ॥ ७४ ॥
 व्रणकासगुल्मश्वयथूदररोगपाण्डुप्रमेहांश्च ।
 मंदाग्नित्वविवन्धंप्रमेहविट्कांश्चनाशयत्याशु ॥ ७५ ॥
 सततंनिपेयमाणःकालवशाद्धन्तिगदान् ।
 अभिभूयजरादोषंयातिचकैशोरकरूपम् ॥ ७६ ॥

किशोरस्तरुणस्तस्यरूपम् ।

अर्थ—उत्तमर्भेसागुगुलु एकप्रस्थ, गिलोय दो प्रस्थ, और त्रिफला एकप्रस्थ लेकर एकसौ आढक जलमें पकावै, जब जल पचाम आढक शेष रहै तब उतारकर छानलेवे, फिर इसमें उक्त औटिहुण गुगुलुको छोडकर गुडकी समान पकावै, पश्चात् शीतल होनेपर त्रिकुटा, त्रिफला और बायविडंग, इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, गिलोय, निसोथ और दन्ती, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोले मिला देवे । इसको उष्णजजके साथ सेवल करे तो सर्वप्रकारके वातग्त, मृत, शुष्क, स्फुटित और जानुतक आयाहुवा वातग्त, व्रण, खाँसी, गुल्म, सूजन, उदररोग, पाण्डुरोग, प्रमेह, मन्दाग्नि, विवन्ध, प्रमेहपिडिका, यह सब दूर होवे । इसको निरंतर सेवन करनेसे यह कैशोरगुगुलु जरादोषको दूर करके मनुष्यको किशोरअवस्थावाले मनुष्योंकी समान रूपवान् करदेताहै ॥ ७२—७६ ॥

अथ अमृतागुगुलुः ।

प्रस्थंगुडूच्याःप्रस्थार्द्धप्रत्येकंत्रिफलापुरम् ।
 पक्काद्रोणेऽम्भसःशिष्टेपाकाद्धनेततःक्षिपेत् ॥ ७७ ॥
 कोष्णेदन्त्यमृताव्योषविडंगत्रिफलारजः ।
 प्रत्येकमर्द्धपलिकंत्रिवृच्चूर्णश्चकार्षिकम् ॥ ७८ ॥

वाताश्लेकुष्ठमेहार्शः ऊरुस्तम्भभगन्दरान् ।

आमवातंत्रणशोथममृतागुग्गुलजयेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—गिलोय दोसेर, त्रिफला और गूगुल प्रत्येक सेर सेर भर लें, सबको एकद्वीप जलमें औटावे जब आधाभाग जल शेष रहे तब उतार लें, पश्चात् इसको छानकर दूसरीबार पकावे, गाढा होजानेपर किंचित् उष्णमें दन्ती, गिलोय त्रिकुटा, बायविडंग और त्रिफला प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले ले, और निसोथका चूर्ण एक तोला मिलादेवे । इसको अमृतागुग्गुल कहते हैं । यह वातरक्त, कोढ़, प्रमेह, ऊरुस्तम्भ, भगंदर, आमवात, व्रण और सूजनका हर है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ योगसारामृतः ।

शतावरीनागबलावृद्धदारकमुञ्चटा ।

पुनर्नवामृताकृष्णावाजिगंधात्रिकण्टकम् ॥ ८० ॥

पृथक्दशपलान्येषां भक्षणचूर्णानि कारयेत् ।

सर्पिष्प्रस्थमाढकार्द्धशौद्रं चूर्णार्द्धशर्करा ॥ ८१ ॥

पृथक्त्रिजातकपलंदत्त्वामर्द्यचभक्षितम् ।

वातामृक्क्षयकुष्ठामृक्पित्तमन्यांस्तथागदान् ॥ ८२ ॥

हत्वाकरोतिपुरुषं वलीपलितवर्जितम् ।

योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनः ॥ ८३ ॥

उञ्चटारक्ताग्राह्याश्रेष्ठत्वान्मिलितचूर्णार्द्धसमाशर्करा ।

अर्थ—शतावर, गंगेरन, विधारा, सफेद चाँदलीकी जड़, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगंध और गोखरू प्रत्येक चालीस चालीस तोले लेकर सबका बारीक चूर्ण करले । घृत दोसेर, सहत चारसेर और सब चूर्णसे आधी मिथी, दालचीनी, इलायची और तेजपात, प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले लें, सबको एकत्र कर खूब मर्दन करें । इसको भक्षणकरनेसे वातरक्त, क्षय, कोढ़, रक्तपित्त तथा अन्यान्यरोग दूर होते हैं, तथा मनुष्य वलीपलितरहित होजाते हैं । यह योगसारामृत—लक्ष्मी और कान्तिको बढ़ानेवाला है ॥ ८०—८३ ॥

अथ स्वायंभुवोगुगुलुः ।

अलम्बुपालोहचूर्णमयोर्द्धपलेपृथक् ॥
 पलत्रयंचताप्यस्यवाकुच्याश्चपलत्रयम् ॥ ८४ ॥
 शिलाजतुतयोस्तुल्यंपलानिदशगुगुलोः ॥
 सर्वाण्येतानिसंचूर्ण्यगुटिकांकारयेद्विपक् ॥ ८५ ॥
 शाणंकर्पाद्धकर्पवाततःखादेत्प्रयत्नतः ॥
 वातरक्तानिकुष्ठानिश्चित्राणिविविधानिच ॥ ८६ ॥
 भगन्दरान्दुष्टव्रणान्ग्रहणीश्चव्रणन्तथा ॥
 वस्तिजान्गुदजान्दोषान्पाण्डुतामुदराणिच ॥ ८७ ॥
 शोथश्लीपदमानाहंयक्ष्माणश्चविशेषतः ॥
 नाडीव्रणान्निहन्त्याशुअंत्रवृद्धिञ्चविद्रधीन् ॥ ८८ ॥
 वृष्योवलयश्चकेश्यश्चमेधाग्निबलवर्द्धनः ।
 आयुर्वर्णकरस्त्वच्यःपुत्रसौभाग्यदस्तथा ॥ ८९ ॥
 भग्नसंधानकृत्प्रोक्तोगृध्रदृष्टिकरःपरः ।
 जालपादेनविख्यातोनाम्नास्वायंभुवोभुवि ॥ ९० ॥

अर्थ—गोरखमुंडी और लोहका चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले, मोनामाखी और बाकुचीके बीज तीन तीन पल, शिलाजीत छे पल, और गुगुल दश पल लेवे, सबको एकत्र पीमकर गोली बनालेवे । इसको चागमासे अथवा एक तोला वा दो तोलेभर यत्नपूर्वक भक्षण करें तो वातरक्त, काढ़, श्वित्रकोढ़, नानाप्रकारके कोढ़, भगन्दर, दृष्टव्रण, संग्रहणी, व्रण, वस्तिरोग, गुदरोग, पाण्डुता, उदररोग सूजन, श्लीपद, आनाह, राजयक्ष्मा, नाडीव्रण, अन्त्रवृद्धि और विद्रधिरोग दूर होताहै । यह स्वायम्भुव गुगुल वीर्यवर्द्धक, बलकारक, केशोंको हितकारी, मेधा, अग्नि और बलको बढ़ानेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, वर्णको सुन्दरकरनेवाला, त्वचाको हितकारी, पुत्र और सौभाग्यताको देनेवाला, भग्नसन्धानकारक, गृध्रकी समान दृष्टि करनेवाला, यह स्वायम्भुव नामवाला गुगुल, पृथ्वीपर जालपादमुनिने प्रकाशित कियाहै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अथ काकोल्यादिघृतम् ।

काकोलियुग्ममधुकंसशिवाचधात्री

जीवन्तिमेदुगल वपिपृश्निपण्यौ ।

द्राक्षासपद्मकतुगाचकुलीरशृंगी

द्रौजीरकावपिसमस्तचतुष्पलाधिकम् ॥ ९१ ॥

यष्टिविचूर्ण्यविपचेच्चशनैर्घटेऽपां

प्रस्थंमृतस्यचतथास्वरसंगुडूच्याः ॥ ९२ ॥

घृतस्यपादंपुरमेवदत्त्वापुनः पचेद्द्वैद्यवरोविधिज्ञः ॥

कृत्वाविरेकं वमनञ्चपश्चाद्यथानुपानंसुदिनेप्रयुज्यात् ९३

व तरक्तंमहाघोरंद्रन्द्रजंसर्वजन्तथा ।

आमवातञ्चवातञ्चनाशयेन्नात्रसंशयः ।

काकोल्यादिघृतं ह्येतद्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ९४ ॥

वृष्यंरसायनंमेध्यंवातरक्तान्तकंविदुः ।

वातरक्तगजेन्द्रायकेसरीमुनिनिर्मितः ॥ ९५ ॥

अर्थ—काकोली, क्षारकाकोली, मुलैठी, हरड, आमला, जीवन्ती, मेदा, महा-
मेदा, पृश्निपर्णी, दाख, पन्नाख, काकडाशिर्गी, सफेदजीरा और कालाजीरा
प्रत्येक चार चार पल लेकर सबका बारीक चूर्ण करले, पश्चात् इसचूर्णको ब-
त्तीस सेर जलमें पकावै, फिर छानकर दूसरी बार पकावै, जब पकते पकते गाढ़ा
पड़जावै तब दो सेर गिलोयका रस, दोंसेर घी और आधासेर गूगुल डालकर
आलौडनकरै । तदनंतर विरेचन और वमन कराकर शुभदिनमें यथानुपानके
साथ इस काकोल्यादि घृतको देवै । यह काकोल्यादिघृत—महाघोरवातरक्त,
द्रन्द्रज, सर्वज आमवात और वातको दूर करैहै । यह काकोल्यादिघृत—बल,
वर्ण और अग्निको बढ़ानेवालाहै, वीर्यवर्द्धक, रसायन, मेधाजनक और वातर-
क्तका अंतकारकहै । यह वातरक्तरूपी गजेन्द्रके लिये सिंहस्वरूपहै ॥ ९१ ॥
॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ वातरक्तान्तकोरसः ।

गंधकंपारदंलौहंघनतालंमनःशिला ।

शिलाजतुपरंशुद्धंसमाप्रांवेष्टवर्णयेत् ॥ ९६ ॥

विडंगं त्रिफलाव्योषमब्धिफेनं पुनर्नवा ।
 देवदारुं चित्रकञ्च दार्वीश्वेतापराजिता ॥ ९७ ॥
 चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
 त्रिफलाभृंगराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ९८ ॥
 भावनाखलु दातव्या ततः संचूर्ण्य भक्षयेत् ।
 मधुना माषमात्रञ्च प्रातः काले दिने दिने ॥ ९९ ॥
 कृत्वाऽनुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचंसमम् ।
 शाणमात्रं घृतैः कुर्यात्सर्ववातविकारनुत् ॥ १०० ॥
 वातरक्तं महाघोरं गंभीरं सर्वजं जयेत्
 सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्यलम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—गंधक, पारा, लोहा, अभ्रक, हरिताल, मैनाशिल, समानभाग लेकर सबका चूर्ण अलग अलग करके पश्चात् एकत्र कर लेव, फिर शुद्ध शिलाजीत, बायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा, समुद्रफेन, पुनर्नवा, देवदारु, चीता, दारुहलदी और सफेदकोयल, इन सबको समान भाग ले, सबका अलग अलग चूर्णकर पश्चात् सबको एकत्र कर त्रिफला और भांगरके रसकी तीन तीन भावना देव, फिर चूरनकर सहतके साथ एक मासे भर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे और ऊपरसे नीमके पत्र, फूल और छालको घीमें पीसकर चारमासे भर भक्षण करे तो सर्वप्रकारके वातविकार, वातरक्त, महाघोरवातरक्त, गम्भीरवातरक्त, सर्वजवातरक्त, सर्वोपद्रवसंयुक्त वातरक्त और माध्य तथा असाध्य वातरक्त दूर होवै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १०१ ॥

अथ वज्रगुगुलुः ।

त्रिकटुत्रिफलादन्तीचित्रकं त्रिवृताशठी ।
 विडंगमुस्तकं रात्रिबाकुचीन्द्रयवं वचा ॥ १०२ ॥
 अंकोठमूलं कुष्ठञ्च राजवृक्षस्य मूलकम् ।
 एतेषां पलिकं ग्राह्यं तत्समं गुगुलुंगुरु ॥ १०३ ॥
 भल्लातकतैलं द्विपलं गोघृतेन जडीकृतम् ।
 तत्र ताम्ररितालं द्वयोः कुर्यात्पलद्वयम् ॥ १०४ ॥

सर्वमेकीकृतं यत्नात्पेषयित्वा सुपिण्डकम् ।

घृतभाण्डेतु संस्थाप्य खादेन्मासचतुष्टयम् ॥ १०५ ॥

गुग्गुलुर्वध्रनामायंगहनानन्दभाषितः ।

देशकालवयो वह्निदृष्ट्वा वातुटिवर्द्धनम् ॥ १०६ ॥

वातरक्तं निहन्त्या शुनाना दोषसमुद्भवम् ।

श्लीपदं शोथशूलानि मेहमेदोगलामयान् ॥ १०७ ॥

प्रीहगुल्मोदराष्टीलाकासश्वासमरोचकम् ।

जीर्णज्वरश्च सानाहं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १०८ ॥

संग्रहग्रहणीं दुष्टापाण्ड्वादि त्रितयं जयेत् ॥ १०९ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चीता, निसोथ, कचूर, बायबिडंग, नागरमोथा, हलदी, वापची, इन्द्रजौ, वच, अंकोटकी, जड़, कूठ, अमलतासकी जड़, यह प्रत्येक चार चार तोले, और सबकी समान गूगुल भिलावेका तेल दो पल, गायका घी दोपल लेवे, सबको एकत्र कर यत्नपूर्वक पीसके गोला बनालेवे, इसको घीके चिकने वासनमें स्थापनकर देशकाल, अवस्था और अग्निका बलावल देखकर प्रतिदिन चार चार मासे खावे । यह वज्रगुग्गुलु श्रीमान् गहनानन्दने भाषण किया है । यह गूगुल नानाप्रकारके दोषोंमें उत्पन्न हुआ वातरक्तरोग, श्लीपद रोग, सूजन, शूल, प्रमेह, मेदरोग, गलरोग, श्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्टीला, खांसी, श्वास, अरुचि, जीर्णज्वर, आनाह, दुष्टसंग्रहणी और पाण्ड्वादि तीनों रोगोंको दूर करेहै, तथा बल, वर्ण और अग्निको बढ़ावे है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

अथ त्रिनेत्रारसः ।

गरुत्मान्दरदस्तीक्ष्णं स्वर्णाह्वावंगशक्तिका ।

शुल्बश्च गगनं फेनं रुधिरश्च त्रिनेत्रकम् ॥ ११० ॥

पातालनृपतिश्चैव वह्निमूलश्च रामठम् ।

त्रिकटुत्रिफलाशिमुचाजमोदायवानिका ॥ १११ ॥

पिप्पलीमूलभार्ङ्गीचलशुनं जीरकद्वयम् ।

आर्द्रकस्यरसेनैव गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ११२ ॥

मन्दानलामवातघ्नश्लेष्माणश्चजलोदरम् ।

अशीतिर्वातजात्रोगान्प्रमेहांश्चैवविंशतिम् ॥ ११३ ॥

प्राणाक्षिकर्णजिह्वानांगदश्चैवत्रिदोषजम् ।

गलिताङ्गवातरक्तंसर्वमेतद्रचपोहति ॥ ११४ ॥

अर्थ—सोनामाखी, मिश्रक, लोहा, स्वर्णक्षीरी, वंग, गंधक, तांबा, अभ्रक, समुद्रफेन, गेरू, सोना, सीमा, चीत्तीकीजड़, हांग, त्रिकुटा, त्रिफला, सैजिना, अजमोद, अजवायन, पीपगमूल, भांगी, लहसुन, जींग और कालाजींग, इन सबको अदरकके रसमें खरलकरके गोली बनालेंगे । इन गोलियोंको सेवनकरनेसे—मन्दाग्रि, आमवात, कफ, जलोदर, अस्सीप्रकारके वातरोग, वीसप्रकारके प्रमेह रोग त्रिदोषज नामिका नेत्र कर्ण और जिह्वा रोग, गलिनांग और वातरुक्तरोग दूर होता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

अथ लांगलाद्यलौहम् ।

विमर्शयत्नतःपच्याद्गुटिकाकोलसम्मिता ।

लाङ्गल्यामूलमुद्धृत्यत्रिफलात्रिकटुकामृता ॥ ११५ ॥

द्राक्षागुग्गुलुभिस्तुल्यंलोहचूर्णंनियोजयेत् ।

मातुलुंगरसेनैवत्रिफलायारसेनच ॥ ११६ ॥

भक्षयेन्मधुनासार्द्धशृणुकुर्वन्तियत्फलम् ।

पादस्फोटमहाघोरंमर्वगात्रस्यस्फोटनम् ॥ ११७ ॥

तत्सर्वनाशयत्याशुसाध्यासाध्यश्चशोणितम् ११८ ॥

अर्थ—कलिहारीकी जड़, त्रिफला, त्रिकुटा, गिलोय, दाख, गुग्गुलु, यह सब समान भाग और सबकी बराबर लोहिका चूर्ण लेंगे, सब एकत्रकर विजारे नीबूके और त्रिफलेके रसमें खरल करके बरगी बराबर गोली बनालेंगे । इन गो-लियोंको सहनके साथ सेवन करें, इसमें महाघोर पादस्फोट, मर्वशरीरस्फोटन और साध्यासाध्य वातरुक्तरोग दूर होता है ॥ ११५—११८ ॥

अथ गुडच्याद्यलौहम् ।

गुडूचीसारसंयुक्तंत्रिकत्रयममन्वितम् ।

वातरक्तंनिहन्त्याशुसर्वरोगहरोपिसन् ॥ ११९ ॥

सर्वचूर्णंमल्लोहचूर्णग्राह्यम् ।

इतिवातरक्ताध्यायः॥

अर्थ—गिलोयका सार, त्रिफला, त्रिकुटा, नागरमोथा, चीता, बायबिडंग यह सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण लेंवै, सबको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे वातरक्तादि संपूर्ण रोग दूर होतेहैं ॥ ११९ ॥

इति वातरक्ताधिकारः समाप्तः ।

अथोरुस्तम्भचिकित्सा ।

ऊ.स्तम्भेविधिःकार्योवातकोपीकफापहः ।

युक्तयाजित्वाकफंरूक्षैःपश्चाद्वातंजयेद्विषक् ॥ १ ॥

अर्थ—ऊरुस्तम्भरोगमें वातको कुपित करनेवाली और कफनाशकविधि करनी चाहिये । प्रथम रूक्ष क्रियाओंके द्वारा यत्नपूर्वक कफको जीतकर पश्चात् वातको जीतै ॥ १ ॥

अथोरुस्तम्भोपायाः ।

पुराणशालिश्यामाकयवकोद्रवमोदनम् ।

३ घृतैर्जालैर्मसैस्तथाचालवणैर्हितम् ॥ २ ॥

वास्तुकंवायसीनिम्बवेत्राग्रकुलकादिभिः ।

शुष्कमूलकयूषेणपटोलस्यरसेनवा ॥ ३ ॥

कफक्षयार्थव्यायामेष्वेनंशक्येपुयोजयेत् ।

स्थानान्याकामयेत्प्रातःप्रतिस्रोतो नदीन्तरेत् ॥ ४ ॥

लिम्पेदूरुग्रहंमूत्रकरञ्जफलसर्पपैः ।

क्षौद्रसर्षपवलमीकमृत्तिकागजपिप्पलीः ॥ ५ ॥

त्वक्पत्रफलमूलानिकरञ्जात्सर्षपस्तथा ।

प्रलेपोद्वर्तनं पिष्ट्वा मूत्रेणोरुग्रहापहम् ॥ ६ ॥

शिलाजतुगुग्गुलंवापिप्पलींवाथनागरम् ।

ऊरुस्तम्भेपिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेनवा ॥ ७ ॥

भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवा ।

पंचमूलीद्वयोन्मिश्राऊरुस्तम्भनिर्बहणाः ॥ ८ ॥

काथेन ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंभल्लातकाथएववा ।

कल्कोवासमधुर्देयऊरुस्तम्भविनाशनः ॥ ९ ॥

दारुचव्याग्निपथ्यानांकल्कंचमधुनालिहेत् ।

त्रिफलाचव्यकटुकंग्रन्थिकंमधुनालिहेत् ॥ १० ॥

लिह्याद्वात्रिफलाचूर्णक्षौद्रेणकटुकायुतम् ।

सुखाम्बुनापिवेद्वापिचूर्णषड्धरणंनरः ॥ ११ ॥

कटुकेनत्रिकटुकेनयुतंकिंवाकटुकंकटुकी ॥

इति षड्धरणं वातोक्तमत्र ।

अर्थ—पुराने शालिवान, समा, जव और कांदोंका भात, घृत और लवणरहित जांगलदेशके जीवोंका मांस, बथुआ, मकाय, नीम, बेतकी कांपल, परवल, और सूखीमूलीका गृष, तथा परवलका रस भोजनार्थ दें। कफको दूर करनेके लिये बलवान् रोगीको व्यायाम, पथभ्रमण कर्गव, और प्रातःकाल प्रवाहवाली नदियोंमें तिरावें। करंजके फल और सरसोंका गोमूत्रमें पीसकर, अथवा सहत सरसों, बांबीकी माटी, और गजपीपलको गोमूत्रमें पीसकर अथवा करंजकी छाल, पत्र, फल, मूल और सरसोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप तथा उबटन करनेसे ऊरुग्रहरोग दूर होताहै। शिलाजीत और गृगल वा पीपल अथवा सांठका गोमूत्रके या दशमूलके काथके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होताहै। पीपल, पीपगमूल और भिलावका काढ़ा या कल्क सहतके साथ, देवदारु, चव्य, चीता और हरड़ अथवा त्रिफला, चव्य, त्रिकुटा और पीपलामूलका चूर्ण अथवा त्रिफलेका चूर्ण और कुटकी सहतके साथ, किंवा वातोक्त षड्धरणयोग किंचित् गरमजलके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर होताहै ॥ १-११ ॥

अथ कुष्ठार्घतैलम् ।

कुष्ठंश्रीवेष्टकोदीच्यंसरलंदारुकेशरम् ।

अजगंधाश्वगंधाचतैलन्तैःसार्पपंपचेत् ॥ १२ ॥

सक्षौद्रमात्रय तस्यऊरुस्तम्भादितःपिवेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—कूठ, श्रीवेष्ट, सुगंधवाला, धूपमरु, देवदारु, नागकेशर, वनतुलसी और असगंध इनके काथ अथवा कल्कमें सरसोंका तेल पकावें, इसतेलको सहतके साथ सेवन करें तो ऊरुस्तम्भरोग दूर होवें ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथोरुस्तम्भहरतैलम् ।

द्रिपलिकं ग्रन्थिकं विश्वं समं दध्यष्टकद्वारम् ।

कटुतैलं पचेत्प्रस्थं गृध्रस्य रुग्रहापहम् ॥ १४ ॥

द्रिपलं प्रत्येकम् ।

अष्टकद्वारमष्टगुणं सस्नेहं दधिघृततक्रकम् ॥

इति अष्टकद्वारतैलम् ।

सैन्धवादि तैलमत्र योज्यम् ।

इति ऊरुस्तम्भाध्यायः ।

अर्थ—पीपरामूल आठ तोले, सोंठ आठ तोले, दहीका तोड बत्तीस तोले, सरसांका तेल दोसेर, अष्टकद्वार दोसेर लेंवै, सबको मिलाके तेलको पकावै । इस तेलको भेवन करनेसे गृध्रसीवात, और ऊरुस्तम्भ रोग दूर होता है, यहाँ सैन्धवादि तैल योजना चाहिये ॥ १४ ॥

इति ऊरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

अथ आमवातचिकित्सा ।

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटुनिच ।

विरेचनं स्नेहपानं वान्तयश्च आममारुते ।

रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुका पुटकैस्तथा ॥ १ ॥

अर्थ—लंघन करना, पसीना निकलवाना, चरपरे, कडवे और दीपन पदार्थोंका भक्षण करना, विरेचन, स्नेहपान, वस्ति और वालुकी पीटलीके द्वाग रूक्ष पसीना देना, यह सब उपचार आमवातरोगमें कराने चाहिये ॥ १ ॥

अथ आमवातहरोपायः ।

कार्पासास्थिकुलत्थकातिलयवैरण्डमूलातसी

वर्षाभूषणबीजकांजिकयुतैरेतत्कृतेर्वापृथक् ।

स्वेदः स्यादति कूर्परोदरशिरः स्फिक् पाणिपादांगुली

गुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते साम्याः समीरारुजः ॥ २ ॥

अर्थ—बिनोले, कुलथी, तिल, जी, अरंडकीजड, अलसी, पुनर्नवा और सनके बीज, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर अथवा एक एकको अलग अलग कूटकर काँजीमें भिजोके पीटली बनालेवै, उन पीटलियोंसे कुहिनी, उदर, शिर, कूल, हाथ, पांव, अंगुली, स्कन्ध और कमरको सेंके तो आमवात दूर होवै ॥ २ ॥

गोजलंपिष्ठाहिंसाकेबुकशिशुभिरत्रनाङ्गयुतैः ।

लेपःसामसमीरेविहितःसहवेदनेशोथे ॥ ३ ॥

कोष्णकृत्वालेपःसवेदनेशोथे ।

अर्थ—मकोय, केडूआ, सेंजिनेकी जड़ और बाँबीकी मट्टी, यह सब समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीस गरम करके प्रलेप करें तो वेदना और मृजनयुक्त आमवात रोग दूरहोवे ॥ ३ ॥

अथामवातोपायः ।

पटोलंगोक्षुरचैववरुणंकारवेल्लकम् ।

यवकोद्रवशाल्यादिप्रपुराणंसतित्तकम् ॥ ४ ॥

लावादीनांतथामांसंतक्रेणमस्तुनाहितम् ।

कुलत्थयूपसूपैश्चरूक्षमन्नंप्रदापयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—परवल, गोखरू, बरना, कोरला, जौ, कोदों, पुरानेशालिधान, और पित्तपापडा, लावादिपक्षियोंका मांस, तक्र, दहीका पानी, कुलथीका यूप और दालके साथ रूक्ष अन्न आमवात रोगमें देवे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथामवातकटिशूलहरःकाथः ।

शुण्ठीगोक्षुरकःकाथःप्रातःप्रातर्निषेवितः ।

सामेवातेकटीशूलेपाचनोरुक्प्रणाशनः ॥ ६ ॥

अर्थ—सोंठ और गोखरुवाँका काथ प्रातःकाल सेवन करें तो आमवात और कटिशूल दूरहोवे, यह पाचन है ॥ ६ ॥

अथ रास्नासतकम् ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ।

काथंपिबेन्नागरचूर्णमिश्रंजंचोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ ७ ॥

अर्थ—रायसन, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरू, अरण्डकी जड़ और पुनर्नवा, इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तां जंत्रा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक और पार्श्वशूल दूर होवे ॥ ७ ॥

अथ रास्नापंचकम् ।

रास्नागुडूचीमेरण्डदेवदारुमहौषधम् ।

पिबेत्सर्वाङ्गकेवातेसामेसंध्यस्थिमज्जगे ॥ ८ ॥
भेदार्थमेरण्डतैलंप्रक्षिपन्तिवृद्धाः ॥

अर्थ—रायसन, गिलोय, अरंडकी जड़, देवदारु, और सोंठ, इनके काढ़ेमें अण्डीका तेल मिलाकर पीनेमें सर्वाङ्गगत, सन्धिगत, अस्थिगत और मज्जागत आमवातरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

अथ रास्नादशमूलादिक्वाथः ।

दशमूलामृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः ।
क्वाथोरुबूकतैलेनसामंहन्त्यनिलंगुरुम् ॥ ९ ॥

अर्थ—दशमूल, गिलोय, अरण्ड, रास्ना, सोंठ और देवदारु, इनके काढ़ेमें अण्डीका तेल मिलाकर पान करनेसे निःसन्देह आमवातरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

अथामवातहरैरण्डतैलम् ।

आमवातगजेन्द्रस्यशरीरवनचारिणः ।
एकएवनिहन्त्याशुएरण्डस्नेहकेसरी ॥ १० ॥

अर्थ—मनुष्योंके शरीररूपी वनमें विचरता हुआ जो आमवातरूपी गजेन्द्र है उसको मारनेके लिये केवल एकही अरण्डका तेल सिंहस्वरूप है ॥ १० ॥

अथामवातोपायः ।

आमवातेकणायुक्तंदशमूलीजलंपिबेत् ॥ ११ ॥
 अर्थ—अथवा दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे, आमवातरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

अथामवातहराग्निदीपनोपायः ।

खादेद्वाह्यभयाविश्वगुडूचीनागरेणवा ।
शतपुष्पाविडंगानिसैन्धवंमरिचंसमम् ॥
चूर्णमुष्णाम्नापीतमामघ्नंवह्निदीपनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हरड़, सोंठ, और गिलोयके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे अथवा सौंफ, बायविडंग, सैधानोन और कालीमिरच इन सबको समानले, वारीक चूर्णकर किंचित् गरमजलके साथ पीनेसे आमवातरोग दूर होता है, तथा अग्नि दीपन होती है ॥ १२ ॥

अथ वैश्वानरचूर्णम् ।

मणिमन्थस्यभागौद्वौयवान्यास्तद्वदेवतु ।

भागास्त्रयोऽजमोदायानागराद्भागपंचकम् ॥ १३ ॥

दशद्वौचहरीतक्याःश्लक्ष्णचूर्णीकृताःशुभाः ।

मस्त्वारनालतक्रेणसर्पिपोष्णोदकेनवा ॥ १४ ॥

पीतंजयत्यामवातंगुल्महृद्वस्तिजान्गदान् ।

प्लीहानग्रन्थिशूलादीनशास्यानाहमेवच ॥ १५ ॥

विबन्धंजाठरात्रोगांस्तथावैदुष्टपादजान् ।

वातानुलोमनमिदंचूर्णवैश्वानरंस्मृतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सैधानोन दो तोले, अजवायन दो तोले, अजमोदा तीन तोले, सोंठ पाँच तोले और हरड बारहतोले लें, सबको एकत्र पीस वारीक चूर्ण करले, इस चूर्णको दहीका तोड, काँजी, तक्र, घी और गरमजल इनमेंसे किसीएक अनुपानके साथ पीनेसे—आमवात, गुल्म, हृदयरोग, बस्तिरोग, प्लीहा, ग्रन्थिरोग-शूल, अर्श, आनाह, विबन्ध, उदररोग, और पावोंके रोग दूर होते हैं, और यह वैश्वानर चूर्ण वातानुलोमक है ॥ १३-१६ ॥

अथालम्बुषाद्यंचूर्णम् ।

अलम्बुषांगोश्वुरकंगुडूचीवृद्धदारकम् ।

पिप्पलीत्रिवृतांमुस्तांवरुणंसपुनर्नवम् ॥ १७ ॥

त्रिफलांनागरश्चैवश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ।

मस्त्वारनालतक्रेणपयोमांसरसेनवा ॥

आमवातंनिहंत्याशुश्वयथुंसन्धिजस्थितम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अलम्बुषा (एक प्रकारका लज्जालु), गोण्डरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोथ, नागरमांथा, वर्गना, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ, इन सबका वारीक चूर्ण कर दहीका पानी, तक्र, दूध और मांसरस इनमेंसे किसी एकके साथ सेवनकरनेसे—आमवात और मंथिज शोथ दूर होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंयवानींकारवींतथा ।

विडंगान्यजमोदाश्चजीरकंसुरदारुच ॥ १९ ॥

चव्यैलांसैधवरास्नांतथागोक्षुरधान्यकम् ।

त्रिफलामुस्तकंव्योपंतवगुशीरयवाग्रजम् ॥ २० ॥

तालीशपत्रंपत्रञ्चक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ।

यावन्त्येतानिचूर्णानितावन्मात्रन्तुगुग्गुलुम् ॥ २१ ॥

समर्द्यसर्पिषागाढंस्निग्धेभाण्डेनिधापयेत् ।

ततोमात्रांप्रयुञ्जीतयथेष्टाहारवानपि ॥ २२ ॥

योगराजइतिख्यातोयोगोऽयममृतोपमः ।

आमवाताब्जवातादीन्कृमिकुष्ठव्रणानपि ॥ २३ ॥

प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्मानिविनाशयेत् ।

अग्निंचकुरुतेदीप्तंतेजोवृद्धिबलंतथा ॥

वातरोगाञ्जयत्येषसन्धिमज्जागतानपि ॥ २४ ॥

अर्थ—चीता, पीपरा मूल, अजवायन, साँफ, बायविडंग, अजमोदा, जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधानोन, गायसन, गोखरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, दालचीनी, खस, जवाखार, तालीशपत्र और तेजपात। यह सब समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें, और सबचूर्णकी बराबर गुग्गुलु, डालै, पश्चात् इसको घृतमें मर्दन कर चिकने वासनमें भरके रखदेवें यह संसारमें अमृतकी समान योग, “ योगराजगुग्गुलु ” इसनामसे प्रसिद्ध है। इसको उचित मात्रानुसार खावें और यथेष्ट भोजन करें। यह योगराज—आमवात, आढ्यवातादिरोग, कृमि, कुष्ठ, व्रण, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह और बवासीरको दूर करे। अग्निको दीपनकरे, तेज और बलको बढ़ावें, तथा सन्धि और मज्जागत वातरोगोंको हर्गहे ॥ १९-२४ ॥

अथ वातारिगुग्गुलुः ।

वातारितैलसंयुक्तं गुग्गुलुं पारिपेययेत् ।

गंधकं त्रिफलाचूर्णैः सुश्लक्ष्णैर्मिश्रयेत्ततः ॥ २५ ॥

भक्षयेत्प्रत्यहं प्रातरुष्णतोयाऽनुपानतः ।

अमवातंकटीशूलं गृध्रसीं खञ्जपं गुताम् ॥ २६ ॥

वातरक्तंशोथञ्चसदाहंकोष्ठुशीर्षकम् ।

शमयेच्छतशोष्टमपिवैद्यविवर्जितम् ॥ २७ ॥

अर्थ—अंडीके तेलके साथ गृगुलको पीस लेंवै, पश्चात् इसमें गन्धक और त्रिफलेका चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल गरम जलके अनुपानसे भक्षण करै तो आमवात, कटिशूल, गृध्रसीवात, खंज और पंगुता, शोथयुक्त और दाहयुक्त वातरक्त, तथा कोष्ठुशीर्षक रोग आंग वैद्यवर्जित सैंकड़ों रोग दूर होवैं ॥ २५-२७ ॥

अथ सिंहनादगुग्गुलुः ।

पलत्रयंकषायस्यत्रिफलायाःसचूर्णितम् ।

सौगन्धिकपलंचैकंकौशिकस्यपलन्तथा ॥ २८ ॥

कुडवंचित्रतैलस्यसर्वमादाययत्नतः ।

पाचयेत्पाकविद्वैद्यःपात्रेलौहमयेदृढे ॥ २९ ॥

हन्तिवातंतथापित्तंश्लेष्माणंखंजपंगुताम् ।

श्वासंसुदुर्जयंहन्तिकासंपंचविधंतथा ॥ ३० ॥

कुष्ठानिवातरक्तंचगुल्मशूलोदराणिच ।

आमवातंजयेदेतदपिवैद्यविवर्जितः ॥ ३१ ॥

एतदभ्यासयोगेनवलीपलितनाशनः ।

सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालियष्टिकम् ॥ ३२ ॥

सिंहनादइतिख्यातोगोगवारणदर्पहा ।

वह्नेर्वृद्धिकरंपुंसांभापितोदण्डपाणिना ॥ ३३ ॥

चित्रतैलमेरण्डतैलं तस्यकुडवोक्तद्वैगुण्यः ।

अन्यथातैलबहुत्वात्पाकःबहुविज्ञेयःस्यात् ॥

अर्थ—त्रिफलेका काथ तीन पल, गंधकका चूर्ण एक पल, गृगुल एक पल, और अंडीका तेल एक सेर लेंवै पश्चात् सबको मिलाकर पाकक्रियाका जानने-वाला वैद्य उत्तम लोहेके दृढ पात्रमें पकावै । इसको सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ, खंज और पंगुता, दुर्जय श्वास, पाँच प्रकारकी खाँसी, कौट, वातरक्त, गुल्म,

शूल, उदररोग, और वैद्य करके वर्जित भी आमवातरोग दूर होवै । इसके अभ्यासके योगसे मनुष्य बली (शरीरमें बलोंका पड़ना), पलित (बिना समयही वालोंका धवल होजाना) रहित होजातेहैं । घी, तेल, और रसों युक्त शालि और साँठी धानोंका भात खावै । यह सिंहनादगुग्गुल रोगरूप हाथियोंके दर्पको भंजन करनेवाला है । और मनुष्योंकी जठराग्निको बढ़ानेवाला है । यह महादेवने भाषण कियाहै ॥ २८-३३ ॥

अथ व्याधिश क्षुल्लगुग्गुलुः ।

त्रिफलायाः पलान्यष्टौ प्रत्येकं बीजवर्जितम् ।
 गुग्गुलोर्द्विपलं चात्र निक्षिपेत्तं सुकुट्टितम् ॥ ३४ ॥
 सर्वसंक्षुद्यत्नेन सार्द्धाढकजले पचेत् ।
 एकरात्रौ स्थितं चैतत्पक्त्वा पादावशोपितम् ॥ ३५ ॥
 द्विपलं कटुतैलस्य मिलित्वैकत्र पाचयेत् ।
 त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगामलकानि च ॥ ३६ ॥
 गुडूच्यग्नित्रिवृद्धन्ती च व्यशूरणमानकम् ।
 अष्टाष्टौ मापकाने तान् प्रत्येकान्तु सुवूर्णितम् ॥ ३७ ॥
 सहस्रार्द्धपलं देयं कालकं विधिशोधितम् ।
 रसगन्धककर्पाद्धं प्रत्येकं कज्जलीकृतम् ॥ ३८ ॥
 सम्यक्सिद्धं तु विज्ञाय स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिपेत् ।
 ततो माषद्वयं जग्ध्वा प्राप्तरुष्णोदकं पिबेत् ॥ ३९ ॥
 प्रथमं कुरुते वह्निं शरीरं स्थिरयौवनम् ।
 धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलन्तथा ॥ ४० ॥
 अश्मरीमूत्रकृच्छ्रश्च दुर्नामं स भगन्दरम् ।
 आमवातं शिरोवातमम्लपित्तं निहन्ति च ॥ ४१ ॥
 कामलापाण्डुतांश्चासंप्रमेहं गुदनिर्गमम् ।
 घृहीतानंश्लीपदंश्चासंक्रमसंपंचविधन्तथा ॥ ४२ ॥
 शमयत्युदराण्यष्टौ शूलान्यष्टौ विशेषतः ।

भग्नास्थिविद्धवातेषुसक्थिग्रहविमोक्षये ॥ ४३ ॥

हन्यादेवंविधान्व्याधीनामवातंविशेषतः ।

ग्रन्थिवातंतथाकुष्ठंविषमज्वरमेवच ॥ ४४ ॥

मेदःकफामयंवातंव्याधिवारणदर्पहा ।

व्याधिशार्दूलविख्यातोयोगोऽयममृतोपमः ॥ ४५ ॥

अर्थ—गुठलीरहित हरड़, बहेडा और आमला, प्रत्येक आठ आठ पल और कुटा हुआ गुग्गुलु आठ तोले गेरे, सबको यत्नपूर्वक कूटकर बागहसेर जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे, तब एक रान रख दूसरेदिन आठ तोले कड़ुवातेल मिला चूर्णैपै चढाके इसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, आमला, गिलोय, चीना, निमोन, दन्ती, चव्य, जमीकन्द और मानकन्द, इन प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ मासे, जमालगोटकी अन्तर्जिह्वा दो तोले, पारे और गंधककी कज्जली एक तोले मिलादे, जब भले प्रकारसे मिद्ध होजाय तब चिकने वासनमें भरके रख देंवे, पश्चात् इसको प्रतिदिन प्रातःकाल दो मासे भर खावे और ऊपरसे गरम जल पीवे । यह अग्निको दीपन करे, शरीरको स्थित यौवनयुक्त करे, धातुओंको बढ़ावे, आयुको बढ़ावे और अत्यन्तबलकी वृद्धि करे । तथा पथरीरोग, सूत्रकृच्छ्र, ववामीर, भगन्दर, आमवात, शिरोवात, अम्लीपित्त, कामला, पाण्डुरोग, श्वास, प्रमेह, गुदनिर्गम, प्लीहा, श्लीपद, श्वास, पांचप्रकारकी खाँसी, आठ प्रकारके उदर रोग, आठप्रकारके शूल, भग्नस्थि, विद्धवात, सक्थिग्रह, विशेषकरके आमवात, ग्रन्थिवात, कोढ़, विषमज्वर, मेदरोग और कफरोगको दूर करे । यह वातरोगरूपी हाथीके मदके दूर करनेके लिये व्याधिशार्दूल है, यह अमृतकी समान योग व्याधिशार्दूल गुग्गुलु नामसे विख्यात है ॥ ३४-४५ ॥

अथ त्रिफलागुग्गुलुः ।

त्रिफलामुस्तकंव्योषंविडंगंपुष्करं वचा ।

चित्रकंमधुकंचैवपलांशंश्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ४६ ॥

अयश्चूर्णपलान्यष्टौगुग्गुलुस्तावदेवच ।

आलोढ्यमधुनापेतंपलद्वादशकेनच ॥ ४७ ॥

प्रातर्विभज्यभुंजानोजीर्णेतस्मिन्नयेद्विजः ।

आमवातंतथागुल्मंश्वयथुंविषमज्वरम् ।

जीर्णानुसम्भवंशूलपाण्डुरोगंहलीमकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, बायबिडंग, पोहकरमूल, बच, चीता, और महुआ प्रत्येकका चूर्ण चारचार तोले, लोहेका चूर्ण बत्तीस तोले, और गुग्गुलु ३२ बत्तीस तोले लेंवै, पश्चात् इसमें बारहपल सहत मिलाकर नित्यप्रति प्रातःकाल सेवन करै तो जीर्ण आमवातरोग, गुल्म, सूजन, विषमज्वर, बहुत दिनोंका शूल, पाण्डुरोग और हलीमक रोग दूर होवै ॥ ४८-४८ ॥

अथ वृद्धदारकादिलौहम् ।

वृद्धदारत्रिवृद्धन्तीकरिकर्णाग्निमानकैः ।

त्रिकत्रययुतोलोहआमवातान्तकोमतः ।

सर्वानेतान्गदान्हन्तिदन्तिनःकेसरीयथा ॥ ४९ ॥

अर्थ—विधारा, निसोत, दन्ती, हस्तिकर्ण (पलाश), चीता, मानकन्द, त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिमद, यह सब समानभाग और सबकी समान लोहा लेंवै, सबको एकत्र कर चूर्ण बनाकर भक्षण करै तो आमवातरोग, दूर होवै । जिस-मकार सिंह हाथियोंको मारदेवै है उसीप्रकार यह लोह आमवातादि संपूर्णरोगोंको विध्वंस करदेवै ॥ ४९ ॥

अथ योगरत्नाकरस्थपंचाननरसः ।

जारितं पुटितं लौहं चूर्णं पंचपलन्ततः ।

गुग्गुलोः पलपंचाथ लौहार्द्धमृतमभ्रकम् ॥ ५० ॥

शुद्धसूतमभ्रसमंगन्धकञ्चतथामतम् ।

त्रिगुणामसयश्चूर्णादभ्रान्ता त्रिफलं नयेत् ॥ ५१ ॥

दत्त्वा त्रिगुणानीयमष्टभागावशेषयेत् ।

तेन चाष्टावशेषेण पचेच्छोहाभ्रगुग्गुलुम् ॥ ५२ ॥

घृततुल्यं शतावरीरसं दत्त्वा तथा शुभम् ।

प्रस्थं प्रस्थञ्च दुग्धस्य शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ ५३ ॥

लौहमय्यापचेद्द्व्यापात्रे चायसि मृन्मये ।

ततः पाकविधिज्ञस्तु पाकसिद्धे विनिक्षिपेत् ॥ ५४ ॥

रसकज्जलिकांकृत्वादत्त्वाचापिविशुद्धयेत् ।
 विडंगनागरंधान्यंगुडचीसत्त्वजीरकान् ॥ ५५ ॥
 पंचकोलं त्रिवृद्धन्ती त्रिफलैलाचमुस्तकम् ।
 सुचूर्णितंच प्रत्येकं चूर्णमर्द्धं प्लव्ण्वा ॥ ५६ ॥
 उत्तार्यस्थापयेद्भाण्डे सिद्धे चापि सुरञ्जितम् ।
 घृतेन मधुना पश्चान्मर्दयित्वा नुपानतः ॥ ५७ ॥
 भक्षयेच्छुद्धदेहस्तु शुभेऽहनि विपृच्छय च ।
 आमवातमहाव्याधिविनाशाय महौषधम् ॥ ५८ ॥
 सन्धिवातं कर्णशूलं कुक्षिशूलं सुदारुणम् ।
 जंघापदांगुलीशूलं गृध्रसीमग्रिमान्द्व्यताम् ॥ ५९ ॥
 गुल्मं शोथं कामलाञ्च पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ।
 आमवातगजेन्द्रस्य केसरीमुनिनिर्मितः ॥ ६० ॥

अर्थ—जारित और पुटित लोहेका चूर्ण पांचपल, शुद्ध गूगुल पांच पल, अभ्रकककी भस्म ढाईपल काथके लिये त्रिफला प्रत्येक बारहपल पांच तोले लेकर छः सौ तोले जलमें पकावे, जब आठवाँभाग जल शेष रहे तब उतारले, पश्चात् उस अष्टावशेष काढ़ेंमें लोहेका चूर्ण, गूगुल और अभ्रक तथा घृत, दूध और शतावरका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ डालके उत्तम लोहेके पात्रमें अथवा मट्टीके पात्रमें धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे और लोहेकी कगड़ीसे चलाता जावे । जब पाक सिद्ध होजाय तब किंचित् गरममें गंधक और पारेकी कज्जली पांच पल, वायविडंग, भोंट, धनियाँ, गिलोयका मत्स्य, जीरा पंचकोल, निमोथ दन्ती, त्रिफला, इलायची, और नागरमोथा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिला देवे । फिर इसको उतागरक चिकने वामनमें भरके रख देंवे, पश्चात् इसको घृत और सहतमें मर्दनकर पवित्र हो शुभ दिनमें अनुपानके साथ सेवन करे । यह आमवातमहाव्याधिको दूर करनेके लिये, महौषध है तथा सन्धिवात, कर्णशूल, कुक्षिशूल, जंघाओंकी पीडा, पदांगुली शूल, गृध्रसीवात, अग्रिकी मंदता, गुल्म, सूजन, कामला और दुःसह पाण्डुरोगको दूर करे । यह पंचाननगम आमवातरूपी गजगजे लिये सिंह है ॥ ५०-६० ॥

अथ रत्नार्णवस्यबृहत्सिंहनादगुग्गुलुः ।

पिट्टितांगुग्गुलुमानीकटुतैलपलाष्टके ।
 प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ ६१ ॥
 पादशेषं च पूतं च पुनरग्रावधिश्रपेत् ।
 त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगामलकालिकम् ॥ ६२ ॥
 गुडूच्यग्नित्रिवृदन्तीचव्यंसुरणमानकम् ।
 पारदगंधकंचैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ ६३ ॥
 सहस्रकालकफलंसिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत् ।
 ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ ६४ ॥
 अग्निश्च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् ।
 धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलवृद्धिं करन्तथा ॥ ६५ ॥
 आमवातं शिरोवातं सन्धिवातं भगन्दरम् ।
 जानुजं वा श्रितं वातं सकटीग्रहमेव च ॥ ६६ ॥
 अश्मरीमूत्रकृच्छ्रश्च भग्नश्चतिमिरोदरम् ।
 अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ ६७ ॥
 कासं पंचविधं श्वासं क्षयश्च विषमज्वरम् ।
 ग्रीहानं स्त्रीपदं गुल्मं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ६८ ॥
 शोथान्त्रवृद्धिं शूलानि गुदजानि विनाशयेत् ।
 मेदः कफामसंजातव्याधिवारणदर्पहा ॥
 सिंहनादइति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ६९ ॥

अर्थ—गूगुल आठपल, सरसोंका तेल आठपल, और त्रिफला प्रत्येक २ दो-
 सेर लेकर डेढ़ द्रोण जलमें पकावै, जब जल चौथा भाग शेष रहै तब उतार
 लवै, पश्चात् वस्त्रमें छानकर फिर चूल्हेपै चढादेवै और इसमें त्रिकुटा, त्रिफला,
 नागरमोथा, बायविडंग, आमला, गिलोय, चीता, निसोत, दन्ती, चव्य, ज-
 मीकन्द, मानकन्द, पारा और गंधक प्रत्येक दो दो तोले, तथा शुद्ध किये हुए
 जमालगोटेकी अन्तर्जिह्वा १००० सबका चूर्णकर मिला देवै। इसको दो मासे भर

खावै और ऊपरसे उष्ण जल पीवे । इससे जठराग्नि बडवानलकी समान दीपन होतीहै, धातु, आयु और बलकी वृद्धि होतीहै, तथा आमवात, शिरोवात, सन्धिवात, भगन्दर, जानु और जंवाश्रितवात, कटीग्रह, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कोढ़, प्रमेह, गुदनिर्गम, पांचप्रकारकी खाँसी, श्वास, क्षय, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामलारोग, सूजन, अंत्रवृद्धि, शूल और बवासीर नष्ट होती है । यह मेद, कफ और आमसे उत्पन्न हुए रोगरूपी हस्तियोंके मदको दूर करनेके लिये सिंहनाद है । यह योग अमृतकी समान है ॥ ६१-६९ ॥

अथ हृदयनितम्बजशूलहरोपायः ।

दग्धमनिर्गतधूपंमृगशृंगोघृतेनसहपीतम् ।

हृदयनितम्बजशूलंहरतिशिखीदारुनिवहमिव ॥ ७० ॥

अर्थ—हिरनके सींगकी भस्म गायक घीके साथ पीनेसे हृदयशूल और नितम्बशूल दूर होताहै । अब हिरनके सींगकी भस्म बनानेकी विधि कहतेंहें (प्रथम हिरनके सींगको छीलकर पीस लें, फिर उस पिस हुए हिरनके सींगको एक नवीन मट्टीकी हांडीमें रखकर हांडीके मुखपर शगव ढँकके गीली मिट्टीसे बंद कर दें और नीचे आग्नि जला दें, जब जलकर भस्म होजाय तब ग्रहण कर लें) ॥ ७० ॥

अथामवातिनांवर्जनीययोगाः ।

अभिष्यन्दकरायेचयेचान्येगुरुपिच्छिलाः ।

वर्जनीयाःप्रयत्नेनआमवातार्दितैर्नरैः ॥ ७१ ॥

अर्थ—अभिष्यन्दकारी, भागी, और पिच्छिल द्रव्य आमवात रोगमें त्यागने चाहिये ॥ ७१ ॥

अथ परग्रन्थस्थरसोनपिण्डः ।

पलशतंरसोनस्यतिलस्यकुडवन्तथा ।

हिंशुत्रिकटुकंक्षारौद्रौपञ्चलवणानिच ॥ ७२ ॥

शतपुष्पातथाकुष्ठंपिप्पलीमूलचित्रकौ ।

अजमोदायवानीचधान्यकञ्चैवबुद्धिमान् ॥ ७३ ॥

प्रत्येकन्तुपलञ्चैषांश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ।

घृतभाण्डेतथ चैतत्स्थापयेद्दिनषोडश ॥ ७४ ॥

प्रक्षिप्यतैलमानीञ्चप्रस्थाद्धकांजिकस्यच ।

खादेत्कर्षप्रमाणञ्चतोयंमद्यंपिबेदनु ॥ ७५ ॥

आमवातेतथावातेसर्वाङ्गकांसंश्रये ।

अपस्मारेऽनलेमन्देकासेश्वासेज्वरेषुच ।

सोन्मादेवातभग्रेचशूलेजन्तुषुशस्यते ॥ ७६ ॥

क्षारौयवक्षारसर्जिकाक्षारौयवान्याभागद्वयंके-

चिदजमोदांफोफान्धीमेवगृह्णन्तिमानीपलाष्टकम् ।

रसोनञ्चतिलंनिस्तुषंकृत्वामिश्रयित्वास्निग्धे

भाण्डेकृत्वाशुधान्यराशौस्थापयेत् ।

कर्पकपर्पाद्धंवाखादित्वातप्तजलानुपानम् ।

रसोनपिण्डाद्युपयोगजातेदाहेविदध्याद्वपुषःप्रलेपनम् ।

धनूरपत्रंस्वरसेनपिष्टंनगेश्वरंचूर्णनवनीतयुक्तम् ॥ ७७ ॥

अर्थ-लहशुन १०० एक सौ पल, तिल आधसेर, हींग, त्रिकुटा, जवाखार, सज्जी, पाचोन्नोत, सोंफ, कूठ, पीपरामूल, चीता, अजवायन, अजमोदा और धनियाँ यह प्रत्येक एक एक पल लेकर सबका बारीक चूर्ण कर घीके चिकने वासनमें भर तिसमें बत्तीस तोले तेल और बत्तीस तोले कांजी मिलाके रख देवै, १६ सोलह दिन बीत जानेपर इसमेंसे एक तोला या दो तोले नित्य खावै और ऊपरसे गरम जल या मदिरा पीवै । इससे आमवात, वात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, मंदाग्नि, खाँसी, श्वास, ज्वर, उन्माद, वातभग्न और शूल दूर होवै ॥ ७२-७७ ॥

अथ बृहद्रसोनपिण्डः ।

रसोनस्यशतंक्षुण्णंतदद्धनिस्तुषात्तिलात् ।

पात्रेगव्यस्यतक्रस्यपिष्टैर्द्रव्यैःसमंक्षिपेत् ॥ ७८ ॥

त्रिकटुधान्यकंचव्यंचित्रकंगजपिप्पलीम् ।

अजमोदांत्वगेलाञ्चग्रन्थिकञ्चपलांशिकम् ॥ ७९ ॥

शर्करायः पलान्यष्टौपंचाजाज्याः पलानिच ।
 कृष्णाजाज्याश्चत्वारिमधुकस्यगुडस्यच ॥ ८० ॥
 आर्द्रकस्यचत्वारिसर्पिषोष्टौपलानिच ।
 तिलतैलस्यतावन्तिशुक्तस्यापिचविंशतिः ॥ ८१ ॥
 सिद्धार्थकस्यचत्वारिराजिकायास्तथैवच ।
 कर्षप्रमाणंदातव्यंहिंगुलवणपंचकम् ॥ ८२ ॥
 एकीकृत्यदृढेभाण्डेधान्यमध्येनिधापयेत् ।
 द्वादशाहात्समुद्धृत्यप्रातःखादेवथाबलम् ॥ ८३ ॥
 सुरासौवीरकंसीधुमधुचानुपिवेन्नरः ।
 जीर्णैयथेप्सितंभोज्यंदधिपिष्टविवर्जितम् ॥ ८४ ॥
 आमवातार्दितार्द्धाङ्गसर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान् ।
 मासात्सर्वगदान्हन्तिवातपित्तकफोद्भवान् ॥ ८५ ॥
 प्रमेहोदरकुष्ठार्शःशोथगुल्मक्षयज्वरान् ।
 अग्निसंधानकृद्वृष्यदृष्ट्यायुर्बलवर्णदम् ॥ ८६ ॥

पात्रंशरावः ।

मधुकस्यगुडस्येत्यत्रमधुनःकुडवन्तथेतिपाठान्तरंतेना-
 पिव्यवहारःशुक्ताभावेकाजिकम् ।

अर्थ—लहशुनका कल्क सीपल, तुपग्रहित अर्थात् धुले हुए तिल पचास पल, त्रिकुटा, धनियाँ, चव्य, चीना, गजपीपल, अजमोदा, दालचीनी, इलायची और पीपलामूल प्रत्येक चार चार तोले, बृग आठ पल, जीग २० तोले, मूलेठी सोलह तोले, गुड सोलह तोले, अदरक सोलह तोले, गायका घी बत्तीस तोले, तिलका तेल बत्तीस तोले, काँजी अस्सी तोले, सफेद मगसों सोलह तोले, राई सोलह तोले, हींग दो तोले, और पाँचानोन प्रत्येक दो दो तोले लेंवै, सबका चूर्णकर एक पात्रमें गायका मट्टा भर उसमें यह चूर्णडाल पात्रका मुख बन्द करके धानोंके ढेरमें बाग्ह दिन तक गाड़ देंवै, पश्चात् निकालकर शक्त्यनुसार प्रातःकाल खावे और ऊपरसे सुरा, काँजी, शीधुनाम-

वाली मदिरा और सहत इनमेंसे किसी एकका अनुपान करै । और जीर्ण होजाने पर यथेष्ट भोजन करै । और दही तथा पिटी छोड देवै । यह आमवात, अर्द्धांगवात, सर्वांगवात, एकांगवात, वातपित्त और कफसे उत्पन्न हुए रोग, प्रमेह, उदररोग कोड, बवासीर, सूजन, क्षय और ज्वर इन सब रोगोंको एक महीनेमें दूर करदेताहै । भग्नसंधानकारक वीर्यवर्द्धक तथा दृष्टि, आयु, बल और वर्णको बढानेवाला है ॥ ७८-८६ ॥

अथ बृहत्सैन्धवाद्यंतैलम् ।

सैन्धवंत्रिफलारास्त्रापिप्पलीगजपिप्पली ।

स्वर्जिकामरिचंकुष्ठंशुण्ठीसौवर्चलंविडम् ॥ ८७ ॥

यवान्यौपुष्कराजार्जुमधुकंशतपुष्पिकाम् ।

पलार्द्धिकैःपचेदेतैःप्रस्थमेरण्डतैलतः ॥ ८८ ॥

प्रस्थाम्बुशतपुष्पायाःप्रत्येकमस्तुकांजिके ।

दत्त्वाद्विगुणितेपानेतत्रसम्यक्प्रयोजितम् ॥ ८९ ॥

आमवातहरंश्रेष्ठंसर्ववातघ्नमग्निदम् ।

कटीजानूरुसन्धिस्थेपार्श्वहृद्भक्षणाक्षये ।

शस्तंवातान्त्रवृद्धौचसैन्धवाद्यमिदंमहत ॥ ९० ॥

अर्थ—अंडीका तेल दोसेर, सौंफका अर्क दोसेर, दहीका तोड चारसेर, कांजी चारसेर, और कल्कके लिये सैंधानोन, त्रिफला, रायसन, पीपल, गजपीपल, सजी, काली मिरच, सांठ, कालानोन, विडनोन, अजमोदा, पोहकरमूल, जीरा, मुलैठी और सौंफ, प्रत्येक दो दो तोले कूठ और अजवायन चार चार तोले लेवै । सबको विधिपूर्वक मिलाकर सिद्ध करै । इसको पीनेसे आमवात तथा सर्वप्रकारका वात दूर होजाताहै, अग्निदीपन होता है तथा कटी, जानु, ऊरु सन्धि, पार्श्व और वंक्षणमें स्थित हुआ वात दूर होजाताहै । यह बृहत्सैन्धवाद्यंतैल वातान्त्रवृद्धि रोगोंका अत्यन्त हितकारीहै ॥ ८७-९० ॥

अथान्यबृहत्सैन्धवाद्यंतैलम् ।

सैन्धवंश्रेयसीरास्त्राशतपुष्पायवानिका ।

स्वर्जिकामरिचंकुष्ठंशुण्ठीसौवर्चलंविडम् ॥ ९१ ॥

अजमोदाजरणंपौष्करंमधुकंकणा ।
 एतान्यर्द्धपलांशानिश्लक्ष्णंपिष्ट्वाप्रदापयेत् ॥ ९२ ॥
 प्रस्थमेरण्डतैलस्यप्रस्थाम्बुशतपुष्पजम् ।
 काञ्जिकंद्विगुणंदत्त्वामस्तुचद्विगुणन्तथा ॥ ९३ ॥
 सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरंपरम् ।
 पानाभ्यंजनवस्तौचकुरुतेऽग्निबलंभृशम् ॥ ९४ ॥
 वातार्तेवङ्कणेशस्तंकटीजानूरुसन्धिजे ।
 शूलहृत्पार्श्वजेवृद्धौकृच्छ्रेऽश्मरीप्रपीडिते ॥ ९५ ॥
 बाह्यायामार्दितेवातेत्वन्त्रवृद्धिनिपीडिते ।
 अन्यांश्चानिलजात्रोगान्नाशयत्याशुदेहिनाम् ॥ ९६ ॥

इति आमवाताध्यायः ।

अर्थ—सैंधानोन, हरड, रायसन, साँफ, अजवायन, सज्जी, कार्लामिरच, कूठ, साँठ, कालानोन विरियासंचरनोन, वच, अजमोदा, जीरा, पोहकरमूल, मुँलेठी और पीपल, यह प्रत्येक दो दो तोले लेकर सबको बागीक पीसलेवे, फिर दोसेर अंडीका तेल, दोसेर साँफका काथ, चागसेर दहीका पानी लेवे, सबको मिलाकर सिद्ध करें । इस तेलको पान, अभ्यंजन और वस्तिकर्म में प्रयोग करें । यह तेल आमवातनाशक और अग्निवर्द्धक है तथा वंक्षण, कटि, जानु, संधि, हृदय और पसली, इनका शूल, मृत्रकृच्छ्र, पथरी, बाह्यायामवात, अन्त्रवृद्धि और अन्यान्य वातरोगोंको दूर करेहै ॥ ९१-९६ ॥

इति आमवानाधिकारः समाप्तः ।

अथ शूलाचिकित्सा ।

वमनंलंघनंस्वेदःपाचनंफलवर्तयः ।
 क्षारचूर्णानिगुटिकाःशस्यन्तेशूलशान्तये ॥ १ ॥
 पुंसःशूलाभिपन्नस्यस्वेदएवसुखावहः ।
 पायसैः कृशरैःपिष्टैःस्निग्धैर्वापिसितोत्करैः ॥ २ ॥

अर्थ—वमन, लंघन, स्वेद, पाचन, फलवर्ती, क्षार, चूर्ण और गुटिका यह सब शूलरोगमें शान्तिके लिये प्रयोग करें । शूलरोगयुक्त मनुष्यको स्वेदही

सुखकारक है, तथा खीर, खिचड़ी, पिटी, स्निग्ध और खाँडयुक्त द्रव्य शूलरोगमें हितकारी है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शूलहरोपायः ।

शूलेतुवातिकेऽभ्यङ्गस्वेदमर्दनवस्तयः ।

स्निग्धोष्णमनुपानञ्चस्नेहमुपनाहनम् ॥ ३ ॥

बिल्वमूलतिलैरण्डकांजिकैर्वाथवातिलैः ।

गुटिकांभ्रामयेदुष्णांवातशूलविनाशिनीम् ॥ ४ ॥

नाभिलेपाजयेच्छूलंमदनःकांजिकान्वितः ।

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ ५ ॥

सहिगुलवणक्वाथःसद्योवातरुजापहः ।

तुम्बुरूप्यभयाहिं गुण्णकरंलवणत्रयम् ॥ ६ ॥

पिबेद्यवाम्बुनावातगुल्मशूलापतन्त्रकी ।

यवानीहिंशुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ॥ ७ ॥

सुरामण्डेनपातव्यावातशूलनिषूदनाः ।

विश्वमेरण्डजंमूलंक्वाथयित्वाजलंपिबेत् ॥ ८ ॥

हिंशुसौवर्चलोपेतंसद्यःशूलनिवारणम् ।

विश्वैरण्डयवक्वाथःसद्यःशूलनिवारणः ॥ ९ ॥

अर्थ—वातजन्यशूलरोगमें अभ्यंग, स्वेद, मर्दन, वस्ति, स्निग्ध और उष्ण अनुपान तथा स्नेहयुक्त उपनाहस्वेद हितकारक है । बेलकी जड़, तिल, अरंडकी जड़, इनको कांजीमें पीसकर गोली बना अथवा तिलोंकी गोली बना गरम कर स्वेद देवै तो वातजशूल दूर होवै । भैरफलको कांजीमें पीसकर नाभिपै लेप करनेसे वातशूल नष्ट होताहै । खिचड़ी, पुनर्नवा, अण्डकी जड़, बृहती, कटेरी और गोखरू इनके काढ़ेमें हींग और सेंधानोनको डालकर पीनेसे वातजनितशूल रोग दूर होताहै । धनियाँ, हरड़, हींग, पोहकगमूल, कालानोन सेंधानोन और बीरियासंचरनोन इनका क्वाथ बना जबकि जलके साथ पीनेसे वातजनितगुल्म, शूल और अपतन्त्रक वातरोग दूर होताहै । अजवायन, हींग, सेंधानोन, जवारवार, काला नोन और हरड़ इनका चूर्ण

सुराके मंडके साथ पीनेसे वातजशूल नष्ट होता है । सोंठ और अरण्डकी जड़के काथमें हींग और कालानोन डालकर पीनेसे अथवा सोंठ, अरण्ड और जौका काथ पीनेसे तत्काल शूल दूर होता है ॥ ३-९ ॥

अथ पित्तशूलहरोपायः ।

गुडःशाल्मिर्वाक्षीरसर्पिष्पानंविरेचनम् ।

जाङ्गलानिचमंसानिभेषजंपित्तशूलिनाम् ॥ १० ॥

अर्थ—गुड, शालिधान, जौ, दूध, बी. और जाङ्गलदेशके जीवोंका मांस इनका भक्षण करना, और विरेचन—यह पित्तशूलरोगवालोंकी औषधि है ॥ १० ॥

अथ दाहशूलहरोपायः ।

प्रातर्वरीरसःपीतःसक्षौद्रोदाहशूलहा ॥ ११ ॥

अर्थ—प्रातःकाल शतावरका रस सहतके साथ पीनेसे दाहयुक्तशूलरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

अथ पित्तशूलहरोपायः ।

बृहत्यौगोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुबालिका ।

पीताःपित्तभवंशूलंसद्योहन्तिमुदारुणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—बृहती, कटेरी, गोखरू, अरंडकीजड़, कुश, काश और इक्षुबालिका (एक प्रकारकी ईख, जो कि ईखकी समान होती है, जिसको बंगदेशमें आनाखु और खागडा कहते हैं), इनका काथ पीनेसे तत्काल दारुणपित्तजशूल दूर होता है ॥ १२ ॥

अथ दाहशूलहरोपायः ।

त्रिफलानिम्बयष्ट्याह्वकटुकार्गवधैःस्मृतम् ।

पाययेन्मधुमिश्रं वा दाहशूलोपशान्तये ॥ १३ ॥

अर्थ—त्रिफला, नीम, मुलैठी, कुटकी और अमलतास इनके कांठमें सहत मिलाके पीनेसे दाह और शूल शान्त होता है ॥ १३ ॥

अथ कफशूलहरोपायः ।

कफशूलेबस्तिनस्यलंघनंकटुरूक्षकम् ।

पंचमूलकृतापेयादीपनंकफशूलनुत् ॥ १४ ॥

अर्द्धशृतेनकल्केनवा ।

अर्थ—कफजशूल रोगमें बस्ति, नस्य,लघन, कटु, और रुक्षद्रव्य हितकारक-
है । पंचमूलके अर्द्धावशिष्ट काथके अथवा कल्कके साथ बनाई हुई पेया पीनेसे
जठराग्नि दीपन होतीहै और कफजशूल दूर होताहै ॥ १४ ॥

अथान्यकफशूलहरोपायः ।

लवणत्रयसंयुक्तपंचकोलंसरामठम् ।

सुखोष्णेनाम्बुनापेयंकफशूलनिवारणम् ॥ १५ ॥

अर्थ—सैंधानोन, कालानोन, बिरियासंचरनोन, पंचकोल और हींग इनका
वारीक चूर्ण कर सुखोष्णजलके साथ पीनेसे कफजशूल दूर होताहै ॥ १५ ॥

अथ शूलहरोपायः ।

बिल्वमूलमथैरण्डंचित्रकंविश्वभेषजम् ।

हिंगुसैन्धवसंयुक्तंसद्यःशूलनिवारणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—बेलकीजड, अरण्डकीजड, चीता और सोंठ, इनके काथमें सैंधानोन
और हींग डालकर पीनेसे तत्काल शूल नष्ट होताहै ॥ १६ ॥

अथ पार्श्वहृद्वस्तिशूलहरोपायः ।

मातुलङ्गरसोवापिशिशु फ्राथस्तथापरः ।

सक्षारोमधुनापीतःपार्श्वहृद्वस्तिशूलनुत् ॥ १७ ॥

अर्थ—विजोरेके रसमें अथवा मंजिनेके काथमें जवाखार और सहत डालके
पीनेसे पार्श्व, हृदय और वस्तिशूल आराम होताहै ॥ १७ ॥

अथ शूलहरचूर्णम् ।

दीप्यकंसैन्धवंपथ्यानागरञ्चचतुःसमम् ।

चूर्णशूलंजयत्याशुमन्दस्याग्नेश्चदीपनम् ॥ १८ ॥

इदं चूर्णं तप्तजलेन पेयम् ।

अर्थ—अजमोदा, सैंधानोन, हरड और सोंठ, सब समान भागले चूर्णकर गरम
जलके साथ पीनेसे शूल निर्मूल होजाताहै और अग्निप्रदीपन होतीहै ॥ १८ ॥

अथ बृहद्विश्वादिचूर्णम् ।

विश्वोरुवृकदशमूलयवाम्भसातु

द्विक्षारहिंगुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।

चूर्णपिवेद्धृदयपार्श्वकटीग्रहाम-

पक्काशयांसभृशरुग्ज्वरगुःशूलौ ॥ १९ ॥

अत्रचूर्णपिशीचतुर्द्वयः ।

अर्थ-सांठ, अण्डकीजड, दशमूल और जो इनके चौगुने काथमें जवाखार, सज्जी, हींग, सेंधानोन, कालानोन, विगियासंचरनोन और पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेमें हृदय, पार्श्व, कटि और आमशूल, पक्काशय और स्कन्ध-देशकी वेदना, ज्वर, गुल्म और शूल दूर होतेहैं ॥ १९ ॥

अथ सन्निपातशूलहरोपायः ।

विदारीदाडिमरसःसव्योषलवणान्वितः ।

क्षौद्रयुक्तोजयत्याशुशूलंदोषत्रयोद्भवम् ॥ २० ॥

अर्थ-विदारीकन्द और अनारके रसमें त्रिकुटा, सेंधानोनका चूर्ण डालके सहतकेसाथ पीनेमें सांनिपातिक शूल दूर होताहै ॥ २० ॥

अथैरण्डसप्तकम् ।

एरण्डबिल्वबृहतीद्रयमातुलंग-

पाषाणभिद्रिकण्टकमूलकृतःकषायः ॥

सक्षारहिङ्गुलवणोरुबुतैलमिश्रः

श्रोण्यंसमेद्धृदयामयहृत्सपेयः ॥ २१ ॥

अर्थ-अरण्डकीजड, बेल, कटेरी, कटाई, विजोरा, पाषाणभेद और गोखुरू इनके काढ़में हींग, सेंधानोन, जवाखार और अण्डकी तेल मिलाकर पानकरनेमें कटी, संधि, मेढ़ और हृदयशूल दूर होताहै ॥ २१ ॥

अथ सर्वशूलहरोपायः ।

तुम्बुहृण्यभयाहिङ्गुपौष्करंलवणत्रयम् ।

यवानीचयवक्षारोविडंगानिसमानिच ॥ २२ ॥

त्रिशृत्रिगुणितंचूर्णपिवेदुष्णेनवारिणा ।

आनाहमुदराण्यष्टौविद्रधिङ्गुल्ममेवच ॥ २३ ॥

निहन्ति सर्वइतितुम्बुर्वाद्यचूर्णशूलानितुम्बुर्वाद्योऽतिविशुद्धः ॥

अर्थ—तुम्बुरु, हरड, हींग, पोहकरमूल, कालानोन, सैंधानोन विरियासंचर-
नोन, अजवायन और बायविडंग यह सब समान भाग और निसोत तीन भाग
लेवै, सबका बारीक चूर्ण कर गरमजलके साथ पीवै तो आनाह, आठप्रकारके
उदररोग, विद्रधि, गुल्म और सर्वप्रकारके शूल दूर होवें ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ सर्वेश्वरचूर्णम् ।

शुद्धलोहमलाच्चूर्णषट्पलंपंचकार्षिकम् ।

हरीतक्याःकठिन्याश्वरसगंधकयोःपृथक् ॥ २४ ॥

अर्द्धकर्षततःकर्षचित्रकंनागरंकणा ।

सूक्ष्मैलातेजपत्रंचवाद्यालंभद्रमुस्तकम् ॥ २५ ॥

यवानीधान्यकंधूपंविभीतक्यामलक्यपि ।

विडंगंशंखनाभिञ्चअर्जुनाशनयोस्त्वचः ॥ २६ ॥

अपामार्गभवंमूलंसर्वमेकीकृतंशुभम् ।

पीठोपरिपदंन्यस्यप्रस्तयेघृतभाजने ॥ २७ ॥

भुक्तोपरिचतच्चूर्णकर्षकर्षार्द्धमाचरेत् ।

तप्तोदकानुपानञ्चताम्बूलंभक्षयेत्ततः ॥ २८ ॥

ततोभूमौपदंदत्त्वाभूमेःकिंचिद्यथासुखम् ।

प्रत्यहंभक्षयेद्भक्त्यावह्निसंदीपनंपरम् ॥ २९ ॥

शूलमष्टविधंहन्तिविशेषात्परिणामजम् ।

अन्नद्रवकृतंशूलंगुल्मशूलञ्चनाशयेत् ॥ ३० ॥

कटीपार्श्वभवंशूलंयकृत्प्लीहकृतञ्चयत् ।

शूलानामपिसर्वेषामौषधंनास्तितत्परम् ॥ ३१ ॥

कामल पाण्डुरोगघ्नंहलीमकविनाशनम् ।

मानवानांकृपाहेतोर्देवदेवेननिर्मितम् ॥

चित्रकाद्यमिञ्चूर्णंसर्वशूलान्तकंमतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, शम्बूकके मुखका चूर्ण, जवारखार, कामरुदेशकी
सेलखडी (असगंध और लालसेलखडी) इन्द्रजव, और सतोनाका खार

प्रत्येकसमान, गोमूत्र और कलमी शाकके रससे शुद्ध किया हुआ मण्डूर सब औषधियोंसे दुगुना लेकर सबका एकत्र चूर्ण करले और पात्र भरके रखदेवै । इसको सर्वेश्वरचूर्ण कहतेहैं, इसको भोजनके पूर्व, मध्य और अन्तमें भक्षण करें । अनुपान—शुष्कपत्र जल और गायका अधऔटा हुआ गरमागरम दूध है । इसको सेवनकरनेसे मनुष्य बहुतदिनोंके पुराने, महादुस्तर और असाध्य शूलस छूटजातेहैं, इसको भोजनके पश्चात् कर्प या अर्द्धकर्पप्रमाण गरम जलके साथ खावै । तदनन्तर पान खाय और कुछ देर पृथ्वीमें पांवधर सुखपूर्वक बैठे इसप्रकार प्रतिदिन खावे । इससे आठप्रकारके शूल, विशेषकरके परिणामशूल, अन्नद्रवकृतशूल, गुल्मशूल, कटी और पार्श्वोद्भवशूल, यकृत और स्त्रीहासे उत्पन्न हुआ शूल, कामला, पाण्डुरोग और हलीमक रोगको दूर करताहै । यह शूलरोगकी एकही औषधिहै । यह चित्रकाचचूर्ण देवादिदेव शिवजीने मनुष्योंके हितके लिये निर्माण कियाहै ॥ २४-३२ ॥

अथ चित्रकाचचूर्णम् ।

त्रिकटुत्रिफलाचूर्णचूर्णशम्बूकजाननम् ।

यवक्षारंतथारक्तकटिनीकामरूपिणी ॥ ३३ ॥

शक्रचूर्णसमधिकंक्षारंदानदलोद्भवम् ।

यावन्त्येतानिचूर्णानिमण्डूरद्विगुणन्ततः ॥ ३४ ॥

मण्डूरद्विगुणंकार्यगोमूत्रेःसप्तचैवहि ।

कलम्बीस्वरसैःशुद्धंशोधयेत्सुविचक्षणः ॥ ३५ ॥

एकीकृत्यप्रयत्नेनचूर्णसर्वेश्वराह्वयम् ।

प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैवभोजनस्यप्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥

मात्रयाचानुपानञ्चशुष्कपत्रजलेपयः ।

गव्यमर्द्धशृतंकृत्वाशूलादन्तकमन्वितात् ॥ ३७ ॥

चिरजात्सर्वतार्थीमान्दुस्तरान्मुच्यतेनरः ।

पक्तिशूलात्तथैवान्नद्रवशूलाच्चसर्वशः ॥ ३८ ॥

मुच्यतेमानवोयादृग्विष्णुमाराधनेभवात् ।

स्त्रीहगुल्मोदरादांश्चमन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ३९ ॥

कासंपंचविधंचापिऊरुस्तम्भामवातकैः ।

हन्यादेवप्रयोगोऽयमश्विभ्यानिर्मितःपुरा ॥ ४० ॥

अर्थ—शुद्ध लोहेके मलका चूर्ण छे पल, हरड़ और सेलखडी प्रत्येक दश तोले, शुद्धपारा एक तोला, शुद्ध गंधक एक तोला चीता दो तोले, सोंठ दो तोले, पीपल दो तोले, छोटी इलायची दो तोले, तेजपात दो तोले, खिरंटी दो तोले, नागरमोथा दो तोले, अजवायन दो तोले, धनियाँ दो तोले, राल दो तोले, आमला दो तोले, वायविडंग दो तोले, शंखनाभि दो तोले, अर्जुनवृक्षकी छाल दो तोले, असनवृक्षकी छाल दो तोले, और चिरचिरेकी जड़ दो तोले लेकर सबका बारीक चूर्णकर घीके चिकने वासनमें रखकर प्रति दिन खानेसे पक्तिशूल और अन्नद्रवकृतशूलसे मनुष्य इसप्रकार निर्मुक्त होजातेहैं जैसे विष्णुभगवान्के आराधनसे इस अमाग्निसंसारसे निर्मुक्त होजातेहैं । तथा घृहीहा, गुल्म, उदररोग, मन्दाग्नि, अरुचि, पाँचप्रकारकी खाँसी, ऊरुस्तम्भ और आमवात रोग दूर होजाना है । यह योग पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ३३-४० ॥

अथ शंखचूर्णम् ।

शंखचूर्णसलवणंसहिगुव्योषसंयुतम् ।

उष्णोदकेनतत्पीतंशूलंहन्तित्रिदोषजम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—शंख, संधानोन, हींग और त्रिकुटा इनका चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल आगम होताहै ॥ ४१ ॥

अथ त्रिफलामण्डूरम् ।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरंत्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।

विलिहन्मधुसर्पिभ्यांशूलंहन्तित्रिदोषजम् ॥ ४२ ॥

सर्वचूर्णसमंमण्डूरंग्राह्यंप्रधानत्वात् ।

अर्थ—त्रिफला प्रत्येक एक भाग और गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ मण्डूर तीन भाग लेंवै, सबका एकत्र चूर्ण बनाकर सहत और घीके साथ चाटनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होताहै ॥ ४२ ॥

अथ बीजपूराधनुतम् ।

बीजपूरकभेरण्डंरास्नांगोद्वरकंबलाम् ।

पृथक्पंचलान्भागान्यवप्रस्थसमात्तान् ॥ ४३ ॥

वारिद्रोणेनसंसाध्ययावत्पादावशेषितम् ।
घृतप्रस्थंपचेत्तेनकल्कंदत्त्वाक्षसम्मितम् ॥ ४४ ॥
तुम्बुरूण्यभयाव्योषहिंगुसौवर्चलंविडम् ।
सैन्धवंयावशूकञ्चस्वर्जिकामम्लवेतसम् ॥ ४५ ॥
पुष्करंदाडिमंचैववृक्षाम्लंजीरकद्वयम् ।
मस्तुप्रस्थद्वयंसिद्धंततोमृद्गग्निनापचेत् ॥ ४६ ॥
पानमेतत्प्रशंसन्तिशूलंहन्यात्रिदोषजम् ।
वातशूलंयकृच्छूलंगुल्मप्लीहापहंपरम् ॥ ४७ ॥
हृच्छूलंपार्श्वशूलञ्चअंगशूलञ्चयद्रवेत् ।
बलवर्णकरंहृद्यमग्निसंदीपनंपरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—गायका घी दोमेर, दहीका तोड चारमेर, काथके लिये बिजौग नीबू, अरण्ड, रास्ना, गोरुखू, और खिरौटी ५ पल, जी दोमेर, पाकके लिये जल ३२ वत्तीस सेर, शेष आठमेर रखे, कल्कके लिये तुम्बुरु हड, त्रिकुटा, हांग, कालानोन. विरियामंचगनोन, संधानोन, जवाखार, सजी, अम्लबंत, पोहकर-मूल, अनार, विषाविल, जीग और कालाजीग, प्रत्येक समान और सब बीस तोले लेंवे । सबको यथाविधिमे मिलाकर मन्दाग्निमे पकावें । जब मिद्ध हो-जाय तब उतारकर उत्तमपात्रमें भरके रख दें । इसको पीनेमे—त्रिदोषशूल, वातशूल, यकृच्छूल, गुल्म, प्लीहा, हृदयशूल, पार्श्वशूल और अंगशूल, नाश होताहै । यह—बल, वर्ण, इनको करनेवाला, हृदयको हितकारी, और अग्निको दीपनकरनेवाला है ॥ ४३-४८ ॥

अथ रास्नाद्यघृतनैलञ्च ।

रास्नाश्वगन्धाकपिकच्छुभ्रमिकृष्माण्डगोकण्टकशालपर्णी ।
छिन्नारुहैरण्डबलाशताह्वपुनर्नवानांविधिनोद्धृतानाम् ॥
प्रत्येकशःपंचपलगृहीत्वापचेद्वट्टेऽपांकृतपादशेषे ॥ ४९ ॥
शतावरीसंपूतंदत्त्वात्रपलपोडशम् ।
घृतप्रस्थंविपक्तव्यनैलमेरण्डमेववा ॥ ५० ॥
दत्त्वाष्टवर्गकल्कञ्चगुग्गुलोर्वालाष्टकम् ।

सिद्धं घृतं च तैलं वा दद्याद्वा तगदातुरे ॥ ५१ ॥

एकजं द्वन्द्वजं चैव सर्वगञ्च विशेषतः ।

आमवातगदं हन्ति घृतमेतदनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं कटिशूलञ्च नाशयेत् ॥

पादमन्याभिसन्धीनां शूलं हन्ति न संशयः ॥ ५३ ॥

अर्थ—गायकाधी अथवा अरंडका तेल दोसेर, शतावरका रस दो सेर, काथके लिये रास्ना, असगंध, काँछ, विदारीकन्द, गोखरू, शालिपणी, गिलोय, अरण्ड खिरैटी, सौंफ और पुनर्नवा प्रत्येक पांच पल, जल ३२ बत्तीस सेर, शेष आठ-सेर रक्खै, और कल्कके लिये (काकोली, क्षीरकाकोली मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋपभक) या गूगुल एकसेर लेवे । सबको मिलाकर घृत अथवा तेल सिद्ध करें । इस घृत या तेलको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके वातरोग और आमवात रोगको दूर करेहै । तथा पार्श्वशूल हृदयशूल, कटिशूल, पाद मन्या और संधियोंके शूलको हरैहै ॥ ४९-५३ ॥

अथाग्निमुखरसः ।

मृतः सूताभ्रकंचाम्लवेतसंताम्रगंधकम् ।

विपंफलत्रयंतुल्यंचूर्णमर्द्यदिनावधि ॥ ५४ ॥

विषमुण्डतिकावासाविजयारक्तशालिनी ।

बृहतीचमहाराष्ट्रीधत्तूरपद्मपत्रकम् ॥ ५५ ॥

अन्तमत्यमृताजम्बुर्गव्यं नीलोत्पलद्रवैः ।

समांशंपंचलवणंदत्त्वाद्रकरसेनच ॥ ५६ ॥

दिनंपेष्यंततः कुर्याद्वटिकांचणमात्रिकाम् ।

प्रातर्मध्याह्नरात्रौ च भक्षयेद्वटिकात्रयम् ॥ ५७ ॥

मांसेक्षुपिष्टगुर्वन्नगोपयश्चपिबेच्छनैः ।

भक्षयेद्वातशूलार्तः सोऽयमग्निरसोत्तमम् ॥ ५८ ॥

हरीतकीप्रतिविषाहिं गुसौवर्चलंवचा ।

कलिंगेन्द्रयवातुल्यंपाययेदुष्णवारिणा ॥

कर्पैकमनुपानंस्याद्वातशूलहरंपरम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, अमलबंत, ताँबेकी भस्म, शुद्ध गंधक शुद्ध तेलिया और त्रिफला, यह सब समान भाग लेकर एक एक दिन विपतु-ण्डिका, वासा, भांग, रक्तशालिनी, बृहती, जलपीपल, धतूरा, कमलके पत्र, शालिपर्णी, गिलोय, जामन, गोबर और नीलोत्पलके रसमें खरल करे । फिर इसमें समान भाग पंचलवण मिलाकर एक दिन अदरखके रसमें खरल करे । पश्चात् चनेकी बराबर गोलियां बनालेवै । एक गोली प्रातःकाल, एक गोली दुपहरको और एक गोली रात्रिको भक्षण करे, इसप्रकार प्रतिदिन तीन गोली खावै । अनुपान—हरड, अतीस, हींग, कालानोन, बच, कुडकीछाल और इन्द्रजवका चूर्ण दो तोला गरम जलके साथ । इसपर मांस, ईख, पिट्टी भागी अन्न और गायका दूध पीवै । यह अग्निमुखरस वातशूलको दूर करे ॥ ५४-५९ ॥

अथोदयभास्कररसः ।

भस्मसूतसमंचाभ्रंशिलागंधकतालकम् ।

हिङ्गुकुण्डमुस्तश्चतुल्यंचूर्णविभावयेत् ॥ ६० ॥

सुह्युन्मत्तस्यनिर्गुण्डीमहाराष्ट्रीद्रवैःपुनः ।

प्रतिद्रवैर्दिनंभाव्यंशुष्कंतद्गोलकंकुरु ॥ ६१ ॥

वस्त्रेबद्धाभृदालेप्यंशुष्कन्तुसंपुटेपचेत् ।

चतुर्यामाद्धमात्रेषुतमादायविचूर्णयेत् ॥ ६२ ॥

गुंजापृष्ठतशुण्ठीभ्यांलेह्यश्चोदयभास्करः ।

वातशूलप्रशान्त्यर्थंतिलक्षारंसकुष्ठकम् ॥

मधुनालेहयेच्चानुजल्लंकाकतुण्डजम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, मेनशिल, गंधक, हरिनाल, हींग, मुरदासिंह, नागरमोथा, यह सब समानभाग लेकर थूदर, धतूरा, सम्हाल और जलपीपलके रसमें एक एक दिन खरल कर गोला बना सुखादेवै, पश्चात् इस गोलेको वस्त्रमें बांध मट्टीका लेपकर ४॥ माडेचार प्रहर तक पुटपाक करे । शीतल होने पर चूर्ण करलेवै । आठ गुंजाभर इस उदयभास्कर रसको मांठके चूर्णके तथा सहतके साथ चाटे तो वातशूल दूर होवै । अनुपान तिलोंका खार और कूठका चूर्ण या कौआठोडीका जल अथवा सहतके साथ है ६०-६३॥

अथ भूदारोरसः ।

शुद्धसूतसमंगंधद्रोमनःशिला ।

सैन्धवंमाक्षिकंतालंधतूरंहिंगुभूरणम् ॥ ६४ ॥

महाराष्ट्रचर्कनिर्गुण्डीवासैरण्डद्रवैर्दिनम् ।

मर्द्यरुद्धापुटेपच्यात्कुक्कुटाख्येसमुद्धरेत् ॥ ६५ ॥

अष्टगुंजालिहेत्क्षौद्रैर्भूदारोवातशूलजित् ।

हिंगुसौवर्चलंशुंठीमक्षमुष्णाम्बुनाप्यनु ॥ ६६ ॥

अर्थ—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, ताँवेकी भस्म, लोहेकी भस्म मैनफल, सेंधानोन, सोनामाखी, हरिताल, धतूरा, हींग और जमीकन्द, यह सब समान भाग लेकर जलपीपल, निर्गुण्डी, वासा और अरण्डके रसमें एक एक दिन खरलकर कुक्कुटपुटमें पकावै । आठ घुंघुची भर इस भूदाररसको सहतके साथ चाटै तो वातशूल दूर होय, अनुपान—हींग, कालानोन और सांठका चूर्ण दो तोले भर गरम जलके साथ पीवै ॥ ६४—६६ ॥

अथ शिलाबद्धरसः ।

मृतसूतस्यभागैकंभागैकांशोधितांशिलाम् ।

दिग्जलद्रोमैर्द्रवैर्मर्द्यरुद्धाधमेष्टु ॥ ६७ ॥

शिलबद्धोरसोनामगुंजैकंपित्तशूलजित् ।

एकंहिंगुशतंपथ्यात्रिशुंठीद्विसुवर्चला ॥

एतच्चूर्णञ्चकर्षैकमनुस्याच्छूलशान्तये ॥ ६८ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म एकभाग, शुद्धमैनशिल एकभाग लेकर दोनोंको जम्बीरी नीबूकेरसमें एकदिन खरलकर लघुपुटमेंरखके फूँकदेवै । इस शिलाबद्धरसको एकगुंजाभर खानेसे पित्तशूल दूर होताहै । अनुपान एकभाग हींग, सौभाग हरड़, तीनभाग सांठ और दो भाग कालानोन इनका चूर्ण बनाकर दो तोले खावै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ शूलसिंहरसः ।

विषकर्षवचाकर्षत्रिकटुत्रिफलाचषट् ।

भाङ्गीमुस्ताविडंगानांप्रतिकर्षञ्चूर्णयेत् ॥ ६९ ॥

गुडेनसर्वतुल्येनगुटिकाचणमात्रिका ।

शूलसिंहप्रयोगोऽयंकफशूलहरंभवेत् ॥ ७० ॥

एरण्डतैलगुण्ठीभ्यांहिंगुसौवर्चलान्वितम् ॥

उष्णोष्णकैःपिवेच्चानुरसोवानन्दभैरवः ॥ ७१ ॥

अर्थ—विष, वच, सांठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, भारंगी, ना-
गरमोथा और बायविडंग प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर सबका चूर्ण करले और
सब चूर्णकी बराबर गुड मिलाकर चनेकी समान गोली बना लेंगे । यह शूल-
सिंहरस कफशूलको नष्ट करेहै । अनुपान—हींग और कालेनोनको अंडीके तेल
और सांठके साथ या गरम जलके साथ पान करें ॥ ६९-७१ ॥

अथ सर्वांगसुन्दररसः ।

शुद्धसूतमृतताम्रंशिलामाक्षिकतालकम् ।

चूर्णयेत्त्वणंपंचएतदशकतुल्यकम् ॥ ७२ ॥

सूततुल्यवत्सनाभंचूर्ण्यभाव्यंदिनावधि ।

विषमुष्ट्याजयन्त्यावाविजयारक्तशाकिनी ॥ ७३ ॥

शोभाजनंमहाराष्ट्रीद्रवैर्धुस्त्रजैस्तथा ।

रुद्धातुसंपुटेपच्यात्समुद्धृत्यविचूर्णयेत् ॥ ७४ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरोनामरसोगुंजाचतुष्टयम् ।

भक्षयेद्धिंगुगुण्ठीभ्यांकफशूलश्चगुल्मनुत् ॥ ७५ ॥

व्योपंसौवर्चलंहिंगुकरअत्रीजसंयुतम् ।

पिबेदुष्णामृदाद्यनुकफशूलहरंपरम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—शुद्ध पारा, ताँबेकी भस्म, मैनशिल, मोनामाखी, हरिताल, पांचांनोन
और वत्सनाभविष सब समान भाग लेकर चूर्ण बना कुचिला, जयन्ती, भाँग
रक्तशाकिनी, सेंजिना, जलपीपल और धतूरेके रसकी प्रतिदिन भावना देकर पुट-
पाक करें, फिर शीतल होजानेपर तोड़कर चूर्ण करले तो सर्वांगसुन्दररस सिद्धहो
यह सर्वांगसुन्दररस हींग और सांठके साथ खानेमें—कफ शूल और गुल्मको दूर
करेहै । मात्रा चार रत्तीकी है, अनुपान—त्रिकुटा, कालानान, हींग और करंजके
बीजोंका चूर्ण गरम जलके साथ पान करें ॥ ७२-७६ ॥

अथ शूलवज्रिणीवटिका ।

रसगंधकलौहानांपलार्द्धेनसमन्वितम् ।
 टंकणरामठं शुंठीत्रिकटुत्रिफलाशठी ॥ ७७ ॥
 त्वगेलापत्रतालीशंजातीफललवंगकम् ।
 यवानीजीरकंधान्यंप्रत्येकंतोलकंशुभम् ॥ ७८ ॥
 मापैकावटिकाकार्याछागीदुग्धप्रपेषिता ।
 गणेशयोगिनीशम्भुहरिसूर्यान्प्रपूज्यच ॥ ७९ ॥
 शीतनीरानुपानेनच्छागीदुग्धेनवापुनः ।
 एकैकाभक्षिताचेयंवटिकाशूलवज्रिणी ॥ ८० ॥
 शूलमष्टविधंहन्तिष्ठीहगुल्मोदरंज्वरम् ।
 अष्टीलानाहमेहांश्चमूत्ररोगंहलीमकम् ॥ ८१ ॥
 अम्लपित्तामवातंचकामलांपाण्डुरोगकम् ।
 शोथंमलग्रहंवृद्धिंश्लीपदञ्चभगन्दरम् ॥ ८२ ॥
 कासंश्वासंत्रणंकुष्ठंमिहिकामरोचकम् ।
 अर्शांसिग्रहणींदुष्टांसर्वातीसारनाशनम् ॥ ८३ ॥
 विपूचीकण्डुमन्दाग्निपिपासांपीनसंगदम् ।
 एकजंद्रन्द्रजंवापिदोषत्रयसमुद्भवम् ॥ ८४ ॥
 बुद्धिकान्तिप्रदानित्यंसेविताचचिरायुषी ।
 गुरुणाचन्द्रनाथेनमह्यामेषाप्रकीर्तिता ॥
 संसारलोकरक्षार्थंविचिन्त्यपरिनिर्मिता ॥ ८५ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले, सुहागा, हांग, सांठ, त्रिकुटा, त्रिफला, कचूर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीशपत्र, जायफल, जीरा, लौंग, अजवायन, धनियाँ प्रत्येक एक एक तोला लेंवै, सबको बकरीके दूधमें पीसकर एक एक मासेकी गोली बनालेवै । इसको शूलवज्रिणीवटिका कहतेहैं । गणेश, योगेश्वरी, शंकर, हरि और -सूर्यदेवका पूजनकर प्रतिदिन एक गोली शीतलजलके अथवा बकरीके दूधके साथ खावै । यह शूलवज्रिणीवटिका—आठ-

प्रकारके शूल, स्त्रीहा, गुल्म, उदररोग, ज्वर, आष्ठीला, आनाह, प्रमेह, मूत्ररोग, हलीमक, अम्लपित्त, आमवात, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, गलग्रह, वृद्धिरोग, स्त्रीपद, भगन्दर, कास, श्वास, व्रण, कोढ़, कृमि, हिक्का, अरुचि, अर्श, दुष्टसंग्रहणी, सर्वप्रकारके अतिसार, विषूचिका, कण्डू, मंदाग्नि, पिपासा, पीनस, एक दोपसे उत्पन्न हुए, दो दोपसे उत्पन्न हुए और तीन दोपसे उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करै है । बुद्धि और कान्तिको बढ़ानेवाली है । इसको नित्यसेवनकरनेसे मनुष्य दीर्घायु होतेहैं । यह शूलवज्रिणी वटिका संसारके मनुष्योंकी रक्षाके लिये श्रीमान् गुरु चन्द्रनाथजीने विचारकर निर्माण की है ॥ ७७-८५ ॥

अथाग्निमुखोरसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधरसार्द्धमृतताम्रकम् ।

दिनैकं शाकजैर्द्राविर्मर्द्यञ्चक्षीरिणीद्रवैः ॥ ८६ ॥

रुद्धालुघुपुटेचैवपच्यादग्निमुखोरसः ।

यवानिन्द्रियवापाठाबिल्वशुण्ठीरसांजनम् ॥

चूर्णशूलहरंचानुपिवेदुष्णाम्बुनासह ॥ ८७ ॥

अर्थ—शुद्धपाग दो भाग, शुद्धगंधक दो भाग, ताँवेकी भस्म एक भाग लेंवे, इन सबको एकत्रकर एक दिन शाकवृक्षके रसमें और एक दिन खिरनीके रसमें खरल करे, पश्चात् लघुपुटमें फूँक देवे तो अग्निमुख रस मिद्ध हो । इसको भक्षण कर ऊपरसे अजवायन, इन्द्रजा, पादू, बेल, सांठ और रसांतका चूर्ण गरमजलके साथ पीवे तो शूल दूर होवे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथ शूलरोगहरंचूर्णम् ।

मृतताम्रपलैकन्तुचिंचाक्षारपलाष्टकम् ।

हिंगुहरीतकीव्योषकरंजबीजचोरकम् ॥ ८८ ॥

प्रत्येकंपलमात्रन्तुचूर्णकोष्णोदकेपिबेत् ।

कर्पेकंशूलशान्त्यर्थसर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—ताँवेकी भस्म एकपल, इमलीका खार आठ पल, हींग एकपल, हरड एकपल, सांठ एकपल, पीपल एकपल, मिर्च एकपल करंजके बीज एकपल, चोरक एकपल लेंवे, सबका चूर्ण कर एककर्पप्रमाण गरमजलके साथ पीनेसे सर्वोपद्रवसंयुक्तशूलरोग शान्त होताहै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथ शूलकेसरीरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम् ।

द्वयोस्तुल्यं शुल्बपत्रसंपुटे तं निरोधयेत् ॥ ९० ॥

ऊर्ध्वाधोलोणं दत्त्वा सद्भाण्डे धारयेद्विषक् ।

रुद्धा गजपुटे पच्यात्स्वाङ्गशैत्यं समुद्धरेत् ॥ ९१ ॥

संपुटं चूर्णयेच्छृङ्खणं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ।

भक्षयित्वा नुपानं च हिंशुशुण्ठीचजीरकम् ॥ ९२ ॥

वचामरिचचूर्णञ्च कर्षमुष्णाम्बुना पिबेत् ।

असाध्यनाशयेच्छूलं रसोऽयं शूलकेसरी ॥ ९३ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एक भाग और शुद्धगंधक दो भाग लेकर दोनोंको एकत्र खरल करे, फिर तीन भाग तौवा लेकर तिसका सम्पुट बनाय उस सम्पुटमें पूर्वोक्त खरल किये हुए पारे और गन्धकको रखके ढकदेवे, फिर इसको नोनसे भरी हुई हांडीमें गाढ़ हाँडीका मुख बन्द कर गजपुटमें धरके फूँक देवे । स्वांग-शीतल होनेपर उसको बाहर निकालकर सम्पुटको वारिक पीसके चूर्ण बना लेवे तो शूलकेसरीरस सिद्ध हो । इसको दो रत्तीभर पानपे रखके खावे और ऊपरसे हींग, साँठ, जीरा, वच और कालीमिरचका चूर्ण एक कर्षप्रमाण गरम जलके साथ पान करे । यह शूलकेसरीरस असाध्य शूलको भी दूर करे है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अथ शूलगजकेसरीरसः ।

तोलकाश्चतुरःसूतादष्टौ गंधाश्मनस्तथा ।

समादाय ततः कार्यपलं ताम्रस्य संपुटम् ॥ ९४ ॥

एकस्मिन्नथ पात्रे द्रौकृत्वा गंधकपारदौ ।

अनेन ताम्रपात्रेण पिधातव्यं दृढं ततः ॥ ९५ ॥

क्षित्वा स्थाल्यां लवणं ततः क्षित्वा रसं पुटेत् ।

तस्योपरि पुटं क्षित्वा रुद्धा स्थाल्यामथापि च ॥ ९६ ॥

निरुध्यातिप्रयत्नेन देद्रजपुटेन च ।

स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा संपुटं परिचूर्ण्य च ॥ ९७ ॥

निहत्यष्टविधं शूलं गुल्मप्लीहाद्वन्द्वम् ।

मन्दाग्निग्रहणीपाण्डुकामलाश्वहलीमकम् ॥ ९८ ॥

श्लेष्मवातोत्थरोगांश्च ज्वरानपितथाविधान् ।

हरीतक्यनुपानेन दातव्योऽयं भिषग्वरैः ॥

पथ्यदोषानुसारेण शास्त्रप्रोक्तं प्रदापयेत् ॥ ९९ ॥

अर्थ—पारा, चार तोले, गन्धक आठ तोले लेकर दोनोंकी कज्जली करै, फिर आठ तोले तांबा लेकर तिसका सम्पुट बना उस सम्पुटमें उपरोक्त कज्जली रख दूसरे पात्रसे आच्छादित करके नोनकी भरी हुई हांडीमें स्थापन करै, और उस हांडीका मुख बन्द करदेवै, पश्चात् गजपुटमें फूँकदेवै, फिर स्वांगशीतल हो जानेपर सम्पुटको पीसकर चूर्ण करलेवै, तो शूलगजकेसरी रस सिद्ध हो । इसको हगडके साथ सेवन करनेसे, आठ प्रकारके शूल, गुल्म, प्लीहा, यकृत, मन्दाग्नि, संग्रहणी, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, कफवातोत्पन्नरोग और सर्वप्रकारके ज्वर दूर होते हैं । पथ्य—दोषानुसार करावै ॥ ९४—९९ ॥

अथ गौडारसः ।

शुद्धं सूतं मृतं तीक्ष्णं पंचमं भागसम्मितम् ॥

चूर्णं तयोर्भावयित्वा शतावर्या रसेन च ॥ १०० ॥

धात्र्या गुडूच्यास्त्रिदिनं खल्वे मर्द्य पुनः पुनः ।

गुंजाचतुष्टयं खादेदघृतेन मधुनापयः ॥ १०१ ॥

अनुपानं पिबेत्प्राज्ञः सर्वशूलनिवारणम् ।

वातरोगान्पित्तरोगान्कफरोगान्सुदुस्तरान् ॥ १०२ ॥

त्वग्दोषदेहकाश्च द्वाहमुग्रं निवारयेत् ।

गौडारसः समुद्दिष्टो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १०३ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एक भाग और लोहेकी भस्म पांच भाग, दोनोंको शतावरीके रसमें, आमलेके रसमें और गिलोयके रसमें क्रमसे एक एक दिन भावना देकर खरल करे । इसको चारगुंजाभर खावै और ऊपरसे घी, सहन तथा दूध पीवै तो यह 'गौडारस' सर्वप्रकारके शूल, सर्वप्रकारके वातरोग, पित्तरोग, कफरोग, त्वचाके विकार, शरीरकी कृशता और उग्रदाहको दूर करे । तथा बल, वर्ण और अग्निको बढ़ावै है ॥ १००—१०३ ॥

अथ षण्मुखोरसः ।

सूतंगंधसमं शुद्धं सूतांशं मृतताम्रकम् ।

सौवर्चलञ्च सूतांशं जम्बीरैर्दिनसप्तकम् ॥ १०४ ॥

मर्दयेदातपेतीक्ष्णं रुद्धालधुपुटे त्रयम् ।

दत्त्वादाय तु तच्चूर्णं समं त्रिकटुकं पचेत् ॥ १०५ ॥

पण्मुखोऽयं रसो नाम त्रिगुञ्जेनामशूलजित् ।

एरण्डतैलषट्भागं लशुनस्य दशाष्टकम् ॥ १०६ ॥

एकं हिंशु त्रिसिन्धूत्थं सर्वमेकत्र कारयेत् ।

त्रिनिष्कं भक्षयेच्चानु आमशूलप्रशान्तये ॥ १०७ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, ताँबेकी भस्म और सजी, यह सब समान भाग लेकर सात दिन तक जम्बीरी नीबूके रसके द्वारा तेज धूपमें खरल करे, पश्चात् सूखजानेपर लघुपुट देवै इसप्रकार तीनपुट देवै, फिर इसमें बराबरका त्रिकुटुका चूर्ण मिला लेवै । इसको पण्मुखरस कहते हैं । इसको तीन रत्ती प्रमाण खानेसे सर्वप्रकारके आमशूल दूर होते हैं । अनुपात—अण्डीका तेल छे भाग, लहशुन १८ अठारह भाग, हींग एक भाग और सिन्धवनोन तीन भाग एकत्र मिलाकर बारह मासे प्रमाण भक्षण करे ॥ १०४—१०७ ॥

अथ त्रिकत्रयाद्यतैलम् ।

त्रिकत्रयसमायुक्तं तालमूलीशतावरी ।

लोहोनिहन्ति शूलानि दारुणान्ययसोरजः ॥ १०८ ॥

अर्थ—हरड, वहेडा, आमला, साँठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, बायाविडंग, चीता, मुसली, शतावर, यह सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवै । सबको एकत्र पीसके चूर्ण करले । यह त्रिकत्रयाद्य लौह सर्वप्रकारके शूलोंको निर्मूल करे ॥ १०८ ॥

अथ शर्करालौहम् ।

त्रिफलायास्तथा धान्याश्चूर्णवाकललौहजम् ।

शर्करासंयुक्तं सर्वशूलेषु लेहयेत् ॥ १०९ ॥

पुनरुक्तत्वाद्धान्याभागद्वयग्राह्यम् ।

सर्वचूर्णसंयुक्तं लौहम् ।

अर्थ—हरड एक भाग, बहेडा एक भाग, आमला दो भाग और कालेलो-
हेका चूर्ण चार भाग लेवें, सबको एकत्र पीसके चूर्ण बनाले, फिर इस चूर्णमें
बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करें तो सर्वप्रकारके शूल दूर होंवें ॥ १०९ ॥

अथ चतुःसमं लौहम् ।

अभ्रंताम्रंरसंलौहंप्रत्येकंसंस्कृतंपलम् ।

रत्नमेतत्समाकृत्यगृहीयात्कुशलोभिपक् ॥ ११० ॥

आज्येपलद्वादशकेदुग्धेऽपिघृतसंक्षये ।

पक्त्वातत्रक्षिपेच्चूर्णं सुपूतंघनवाससा ॥ १११ ॥

विडंगत्रिफलावाह्नित्रिकटूनान्तथैवच ।

पिष्ट्वापलोन्मितानेतान्यथासंमिश्रितान्नयेत् ॥ ११२ ॥

ततःपिष्टेषुभाण्डेषुस्थापयेच्चविचक्षणः ।

आत्मनःशोभनेचाह्निपूजयित्वापरंगुरुम् ॥ ११३ ॥

घृतेनमधुनामर्द्यंभक्षयेन्माषकोन्मितान् ।

अष्टौमापान्क्रमेणैववर्द्धयेच्चसमाहितः ॥ ११४ ॥

अनुपानञ्चदुग्धेननारिकेलोदकेनवा ।

जीर्णेलोहितशाल्यत्रंमुद्गमांसरसादयः ॥ ११५ ॥

रसायनविरुद्धानिचान्यान्यपिनकारयेत् ।

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्चआमवातंकटीग्रहम् ॥ ११६ ॥

गुल्मशूलंशिरःशूलंयकृत्प्लीहौविशेषतः ।

अग्निमान्द्यंक्षयंकुष्ठंकासंश्वासंविचर्चिकाम् ।

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रञ्चयोगेनानेननाशयेत् ॥ ११७ ॥

अर्थ—अभ्रककीभस्म, ताँबेकीभस्म, पारेकीभस्म, लोहेकीभस्म, और शुद्ध
गंधक प्रत्येक एक एक पल लेकर बारहपल घी और दूधके साथ पकावें, फिर
इसको गाढ़ेवस्त्रमें छानकर इसमें चार चार ताँले वायविडंग, हरड, बहेडा,
आमला, चीता, साँठ, मिरच और पीपलका चूर्ण मिलादें। फिर इसको खूब
चलाकर चिकने वासनमें भरके रखेंदेवें पश्चात् शुभदिनमें अपने परम गुरुका
पूजनकर घृत और सहतके साथ मिलाके खावें। पहिले दिन एक मासे प्रमाण

खावै, दूसरे दिन दो मासे खाय, इसप्रकार प्रतिदिन एक एक मासा बढ़ाके आठ मासे तक खावै। ऊपरसे दूध और नारियलका जल पीवै। इस औषधिके जीर्ण होनेपर लाल शालिधानोंका भात, मूँग, और मांसरस खावै। इसपै रसायन विरुद्धद्रव्य कदापि भक्षण नहीं करै। यह हृदयशूल, पार्श्वशूल, आम-वात, कटीग्रह, गुल्म, शूल, शिरःशूल, यकृत, ह्रीहा, मन्दाग्न, क्षय, कोढ़, खाँसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी और मूत्रकृच्छादि रोगोंको दूर करैहै ११०-११७॥

अथ शूलिनोवर्जनीयानि ।

व्यायाममैथुनमद्यलवणंकटुवैदलम् ।

वेगरोधंशुचक्रोधवर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ ११८ ॥

इति शूलाध्यायः ।

अर्थ-व्यायाम, मैथुन, मद्य, लवण, कटुरसवाले द्रव्य, विदल अन्न, मल-मूत्रादिकोंके वेगका धारण, शोक और क्रोध यह सब शूलरोगी त्याग देवै ११८॥

इति शूलाध्यायः ।

अथ परिणामशूलचिकित्सा ।

वमनंतिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्रशस्यते ।

बस्तयश्चहिताःशूलेपरिणामेसमुद्भवे ॥ १ ॥

अर्थ-तिक्त और मधुरद्रव्योंके द्वारा वमन तथा विरेचन और वस्तिप्रयोग, यह सब परिणामशूलमें हितकारी हैं ॥ १॥

अथ परिणामशूलहरमोदकः ।

विडंगव्योषदन्त्यग्नित्रिवृच्चूर्णगुडैःकृतम् ।

मोदकःसर्वजंपक्तिशूलहंत्यग्निदीपनम् ॥ २ ॥

अर्थ-बायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल, दन्ती, चीता और निसोत, सब समान भाग ले चूर्णकर गुडमें मिलाके लड्डू बनालेवै। गरमजलके साथ खानेसे यह मोदक सर्वप्रकारके पक्तिशूलोंको हरैहै। तथा अग्निको दीपन करै है ॥ २॥

अथ परिणामशूलहरोपायः ।

नागरतिलगुडकल्कं वसासंसाध्ययः मानद्यात् ।

उग्रं परिणतिशूलंतस्याभ्युपैतिसप्तरात्रेण ॥ ३ ॥

अर्थ—सोंठ, तिल और गुड़ इनका कल्क दूधमें पकाकर सेवन करनेसे सात रात्रियोंके भीतर परिणामशूल दूर होताहै ॥ ३ ॥

अथापर उपायः ।

शम्बूकजंभस्मपीतंजलेनोष्णेनवारिणा ।

पक्तिजंविनिहंत्याशुशूलंविष्णुरिवासुरान् ॥ ४ ॥

अर्थ—बोंबेकी भस्म गरम जलके साथ पीनेसे परिणामशूल दूर होताहै ॥ ४ ॥

अथान्य उपायः ।

रसोनपत्रस्वरसःपीतोमधुनापिदुस्तरंशूलम् ।

परिणामजंनिहन्यात्पित्तप्रबलंत्रिरात्रेण ॥ ५ ॥

अर्थ—लहसुनके पत्तोंके रसमें सहत मिलाकर पीनेसे पित्तप्रबल परिणाम-शूल तीन दिनमें दूर होताहै ॥ ५ ॥

अथ पिप्पलीघृतम् ।

पिप्पलीकाथकल्काभ्यांसिद्धंसर्पिःसमाक्षिकम् ।

पक्तिशूलंप्रवृद्धञ्चहन्तिक्षीरानुपानतः ॥ ६ ॥

शीतेमधुपानादिकम् ।

अर्थ—गायका वी एक सेर ५१, पीपलका काथ चार सेर ५४, और कल्कके लिये पीपल पावभर ५। सबको मिलाकर घृत मिद्ध करें । पश्चात् इस घृतको सहतके साथ सेवन करें और ऊपरसे दूधका पान करें तो अत्यन्त बढाहुआ परिणामशूल नष्ट होवै ॥ ६ ॥

अथ नारिकेलखंडम् ।

कुडवंनारिकेलस्यश्लक्ष्णंटपदिपेपितम् ।

शुद्धखंडस्यकुडवंसर्वमेतच्चतुर्गुणे ॥ ७ ॥

आलोअनारिकेलस्यजलेमृद्रग्निनापचेत् ।

धन्याकंपिप्पलीमुस्तंचातुर्जातंसुवृणितम् ॥ ८ ॥

शाणप्रमाणंतद्वाह्यंशीतीभूतेश्विपेद्बुधः ।

नारिकेलस्यखण्डोऽयंपुंसोनिद्राबलप्रदः ॥ ९ ॥

अम्लपित्तंक्षयंश्नाप्संशूलञ्चपरिणामजम् ।

नाशयेद्रक्तपित्तञ्चशुष्कं दार्वनलोयथा ॥

पलेसर्पिषिभृष्टञ्चशस्यं चादौ मधुप्रभम् ॥ १० ॥

अर्थ—सिलमें पीसकर घीमें भुनी हुई नारियलकी गिरी एकसेर, बूरा एकसेर दोनोंको चौगुने नारियलके जलमें मन्द मन्द अग्निसे पचावै, जब पक्कर शीतल हो जाय तब इसमें धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येकका चार चार मासे चूर्ण डालदेवै और करछीसे एकमएक करदेवै । यह नारिकेलखण्ड—मनुष्योंको निद्रा और बलको देनेवाला है । तथा अम्लपित्त, क्षय, श्वास, परिणामशूल, और रक्तपित्तको दूर करै है ॥ ७-१० ॥

अथ बृहन्नारिकेलखण्डम् ।

नारिकेलखण्डान्यष्टौ शर्कराप्रस्थमेव च ।

तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिष्पंचपलानि च ॥ ११ ॥

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थाद्धक्षीरमेव च ।

सर्वमेकीकृतं पात्रेशनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १२ ॥

तुगात्रिकटुकं मुस्तं चातुर्जातकधान्यकम् ।

द्विकणाकर्षयुग्मन्तु जीरकं च पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥

श्लक्ष्णचूर्णानि निक्षिप्य स्थापयेत्स्निग्धभाजने ।

खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टादारसे विनः ॥ १४ ॥

सर्वदोषोद्भवं शूलमामवातं विनाशयेत् ।

परिणामभवं शूलमम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ १५ ॥

बलपुष्टिकरं चैव वाजीकरणमुत्तमम् ।

रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं हृद्दिहृद्गनाशनम् ॥ १६ ॥

अग्निसन्नीपनकरं सर्वरोगनिपूदनम् ।

धन्वन्तरिकृतं ह्येतन्नारिकेलमिदं महत् ॥ १७ ॥

अर्थ—नारियलकी गिरी एक सेर ५१, बूरा दोसेर ५२, नारिकेलको जल आठ सेर ५८, घी बीस तोले २०, सोंठका चूर्ण आध सेर ५॥, गायका दूध एक सेर ५१ लेवै, सबको एक पात्रमें करके धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावै, पकते

पक्ते जब गाढ़ा होजाय तब बंशलोचन, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, धनियाँ, पीपल, गजपीपल और जीरा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले डाल देवै और करछीसे चलाकर एकम-एक कर देवै, फिर चूल्हेपैसे उतारकर चिकने वासनमें भरके रखदेवे । फिर इसमेंसे प्रतिदिन चारमासे खावे और यथेष्ट भोजन करै । यह बृहन्नारिकेल-खण्ड—सर्वदोषोत्पन्नशूल, आमवात परिणामशूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त, वमन और हृदयरोगको दूर करै है, बल और पुष्टिको करै है, उत्तम वाजीकरण है, और अग्निको दीपन करै है, तथा मर्वप्रकारके रोगोंको दूर करै है, यह बृहन्नारिकेलखण्ड श्रीमान् धन्वन्तरिजीने निर्माण किया है ॥ ११-१७ ॥

अथ खण्डामलकी ।

स्विन्नपीठितकूष्माण्डानुलार्द्धभृष्टमाज्यता ।

प्रस्थाद्धैखण्डतुल्यन्तुपचेदामलकीरसात् ॥ १८ ॥

प्रस्थेसुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयेत् ।

दर्वीपाकंगतेतस्मिंश्चूर्णीकृत्यविनिक्षिपेत् ॥ १९ ॥

द्वेद्वेपलेकणाजाजीशुण्ठीनामरिचस्यच ।

पलंतालीशधन्याकंचातुर्जातकमुस्तकम् ॥ २० ॥

एतत्प्रमाणंप्रत्येकंप्रस्थाद्धैमाक्षिकस्यच ।

पक्तिशूलं प्रहृष्टयेत्तदोपत्रयकृतञ्चयत् ॥ २१ ॥

छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्चश्वासकासमरोचकम् ।

हृच्छूलंरक्तपित्तंचपृष्ठशूलञ्चनाशयेत् ॥ २२ ॥

रसायनमिदंश्रेष्ठंखण्डामलकसंज्ञितम् ॥ २३ ॥

अर्थ—प्रथम पेटेको उसेकर निचोडलवै, ऐसा पेटा घामें भुनाहुआ ५० पचा-सपल, आमलोंका रस ६४ चौंसठ तोले, पेटेका रस चौंसठ तोले सबको मिला-कर पकावे और करछीसे चलाता जाय, जब गाढ़ा होजाय तब इसमें पीपल, जीरा, सोंठ और कालीमिरचका चूर्ण दो दो पल, तालीशपत्र, धनियाँ, दाल-चीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, और नागरमोथा प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल और सहत बत्तीस तोले मिला देवै । इसको सेवन करनेसे त्रिदोषोद्भव

परिणामशूल, अम्लपित्त, छर्दि, मृच्छा, श्वास, खाँसी, अरुचि, हृदयशूल, रक्तपित्त और पृष्ठशूलको यह खण्डामलकनामवाली उत्तम रसायन दूर करैहै ॥ १८-२३ ॥

अथ समुद्राद्यचूर्णम् ।

सामुद्रसैन्धवंक्षारौरुचकरोमकंविडम् ।

दन्तीलौहरजःकिट्टंत्रिवृच्छूरणकंसमम् ॥ २४ ॥

दधिगोमूत्रपयसामन्दपावकपाचितम् ।

तद्यथाग्निबलंचूर्णपिबेदुष्णेनवारिणा ॥ २५ ॥

जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतमांसादिघृतसाधितम् ।

नाभिशूलंयकृच्छूलंघ्नीहगुल्मकृतञ्चयत् ॥ २६ ॥

विद्रध्यष्ठीलिकांहन्तिकफवातोद्भवंतथा ।

शूलानामपिसर्वेषामौषधंनास्तितत्समम् ॥

परिणामसमुत्थस्यविशेषेणान्तकृन्मतम् ॥ २७ ॥

अर्थ-समुद्रनोन, सैन्धानोन, जवाखार, सज्जी, कालालोन, साँभर, विरिया, संचरनोन, दन्ती, लोहेकी भस्म, मण्डूर, निसोत, जमीकन्द, दही, गोमूत्र और दूध मिलाकर मन्दमन्द अग्निसे पकावै । इस चूर्णको शक्त्यनुसार गरमजलके साथ सेवन करै । इसके जीर्णहोनेपर घृतसे सिद्ध कियेहुए मांसादिक भोजन करै । यह समुद्राद्यचूर्ण-नाभिशूल, यकृतशूल, घ्नीहाशूल, गुल्मशूल, विद्रधि, अष्ठीलिका, कफ और वातसे उत्पन्न हुआ शूल, इन सबको हरैहै, इसकी समान शूलनाशक और दूसरी औषधि नहीं है, और परिणामशूल हो तो विशेषकरके विध्वंस करैहै । और कोई कोई वैद्य इसमें घृत मिलाकर समुद्राद्यघृत बनातेहैं ॥ २४-२७ ॥

अथ तारामण्डूरम् ।

विडंगंचित्रकंचव्यंत्रिफलात्र्यूषणानिच ।

नवभागानिचैतानिलौहकिट्टसमानिच ॥ २८ ॥

गोमूत्रंद्विगुणंदत्त्वामूत्रांद्भिकगुडान्वितम् ।

शनैर्मृद्वग्निनापक्त्वासुसिद्धं पिडतांगतम् ॥ २९ ॥

स्निग्धेभाण्डेविनिक्षिप्यभक्षयेत्कोलमात्रया ।
 प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैवभोजनस्यप्रयोजितः ॥ ३० ॥
 योगोऽयंशमयत्याशुपक्तिशूलसुदारुणम् ।
 कामलापाण्डुरोगञ्चशोथमन्दाग्नितामपि ॥ ३१ ॥
 अर्शासिग्रहणीदोषंकृमिगुल्मोदराणिच ।
 नाशयेदम्लपित्तञ्चस्थौल्यंचैवापकर्षति ॥ ३२ ॥
 वर्जयेच्छुष्कशाकानिविदाह्यम्लगुरूणिच ।
 पक्तिशूलान्तकोह्येपगुडोमण्डूरसंज्ञकः ॥
 शूलार्तानांकृपाहेतोस्तारयापरिकीर्तितः ॥ ३३ ॥

अर्थ—वायविडंग, चीता, चव्य, हरड, बहेडा, आमला, सांठ, मिर्च, पीपल, यह सब समानभाग, सबकी समानमण्डूरका चूर्ण, और सबसे दुगना गोमूत्र, गोमूत्रसे आधा गुड लें, सबको एकत्र कर धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब सिद्ध होकर पिण्डसा होजाय तब एक चिकने वासनमें भरके रखदेवे । यह औषधि एक तोलाप्रमाण भोजनके पूर्व, मध्य और अन्तमें खानेसे दारुण परिणामशूल, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त और स्थूलताको दूर करेहै । इसपर शुष्कशाक, दाहकारक द्रव्य, अम्लद्रव्य और भारीपदार्थ त्यागने चाहिये । यह मण्डूरसंज्ञक गुड—विशेषकरके परिणामशूलनाशकहै । शूलरोगवाले मनुष्योंपर कृपाकरके यह मण्डूर तागने प्रकट कियाहै ॥ २८—३३ ॥

अथ बृहच्छतावरीमंडूरम् ।

ततांबराम्बुसिक्तस्यमण्डूरस्यपलाष्टकम् ।
 अष्टौवरीरसादुग्धाद्भ्रोधार्त्रीरसादपि ॥ ३४ ॥
 सर्पिश्चतुष्पलंपक्वाचतुःशाणंरजःपृथक् ।
 क्षिपेन्मुस्तकणाजार्जीवान्यपथ्याद्विजातकम् ॥
 त्रिदोषपक्तिशूलाम्लपित्तरोचकवातनुत् ॥ ३५ ॥
 वराम्बुत्रिफलाक्राथः ।

अर्थ-त्रिफलाके कायमें शुद्धमण्डूर आठपल, सतावरका रस ८ आठपल, दूध आठपल, आमलोंका रस आठपल और घी चारपल डालके पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय तब नागरमोथा, पीपल, जीरा, धनियाँ, हरड, दाल-चीनी और इलायची प्रत्येकका चूर्ण चार चार मासे डालकर करछीसे चलादेवै। यह बृहच्छतावरी मण्डूर-सान्निपातिक पक्तिशूल, अम्लपित्त, अरुचि और वातको दूर करैहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ शतावरीमण्डूरम् ।

शतावरीरसाहुग्धाद्भ्रोमण्डूरचूर्णकात् ।

पृथक्पृथक्पलान्यष्टौघृतात्पलचतुष्टयम् ॥

पक्वाद्याद्रातपित्तोत्थंपक्तिशूलंजयेद्भ्रुवम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-शतावरका रस, दूध, दही और मण्डूरका चूर्ण प्रत्येक आठ आठ पल, घृत चारपल सबको मिलाकर पकावे । यह शतावरीमण्डूर-त्रिदोषजनित परिणामशूल दूर करैहै ॥ ३६ ॥

अथ शर्करामण्डूरम् ।

शतावरीरसप्रस्थेप्रस्थेचसुरभीजले ।

अजायाःपयसःप्रस्थेप्रस्थेधात्रीरसस्यच ॥ ३७ ॥

लोहकिट्टपलान्यष्टौशर्करापलषोडश ।

दत्त्वाचाष्टपलंसर्पिःपचेन्मृद्वग्निनाभिषक् ॥ ३८ ॥

सिद्धशीतेघनीभूतेचूर्णानीमानिदापयेत् ।

त्रिफलाव्योषयवानीपिप्पलीगजपिप्पली ॥ ३९ ॥

द्विजीरकघनानाञ्चश्लक्ष्णान्यक्षसमानिच ।

मधुनस्त्रिपलञ्चात्रसिद्धंशीतेप्रदापयेत् ॥ ४० ॥

भक्षयेच्चत्वनापेक्षीभक्तस्यादौविचक्षणः ।

शूलंसर्वोद्भवंहन्तिपक्तिशूलंविशेषतः ॥ ४१ ॥

रक्तपित्ताद्गन्दाहःसाम्लपित्तंविमन्तथा ।

हृच्छूलंपार्श्वशूलञ्चकुक्षिबस्तिगुदोद्भवम् ॥ ४२ ॥

कासंश्वासंतथाशोषंग्रहणीदोषनाशनम् ।

यकृतप्लीहोदरंगुल्मंराजयक्ष्मज्वरापहम् ॥ ४३ ॥

विष्टम्भनामदौर्बल्यमग्निमान्द्यंतथैवच ।

दुर्नामपाण्डुरोगंचकामलाञ्चहलीमकम् ॥ ४४ ॥

सर्वाश्चनाशयत्याशुभास्करस्तिमिरंयथा ॥

दुग्धेनिर्वापणंकार्यमण्डूरंवागवांजले ।

सप्तवाराष्टवारंवारुद्धानिर्मलतां व्रजेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ—सतावरका रस, गोमूत्र, वकरीका दूध और आमलोंका रस प्रत्येक दो दो सेर, लोहेकी किट्ट एकसेर, बूरा दो सेर और घी एक सेर लेंवै, सबको मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे, जब पककर गाढ़ा होजाय तब उतार लेंवै, पश्चात् शीतल होनेपर इसमें हरड, बहेडा, आमला, सांठ, मिरच, पीपल, अज-वायन, पीपल, गजपीपल, जीरा, कालाजीरा और नागर्मोथा प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले और सहत वारह तोले मिलादेवै । इसको भोजनकी आदिमें भक्षण करनेसे सर्वप्रकारके शूल, विशेषकरके पक्तिशूल, रक्तपित्त, अंगदाह, अम्लपित्त, वमन, हृदयशूल, पाश्वशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, गुदशूल, खाँसी, स्वास, शोष, संग्रहणी, यकृत, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, राजयक्ष्मा, ज्वर, विष्टम्भ, आम, दुर्बलता, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, इन सब रोगोंको यह शर्करामण्डूर दूर करै । लोहकिट्ट आठवार अथवा सात बार दूधमें, या गो-मूत्रमें बुझाकर पुटनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ३७-४५ ॥

अथ रसमण्डूरम् ।

कुडवंपथ्याचूर्णद्विपलंगन्धाश्वलेत्त्रिद्विद्विञ्च ।

शुद्धरसस्यार्द्धपलंभृगस्यकेशराजस्य ॥ ४६ ॥

प्रस्थोन्मितञ्चदत्त्वापात्रेलौहेचदण्डसंगृह्यम् ।

शुद्धंघृतमधुयुक्तमृदितंस्थाप्यंचभाजनेस्निग्धे ॥ ४७ ॥

उपयुक्तमेतदचिरान्निहन्तिकफपित्तजात्रोगान् ।

शूलंतथाम्लपित्तंग्रहणीमपिकामलामुग्राम् ॥ ४८ ॥

भृगुराजः, शराजयोः प्रत्येकं रसप्रस्थम् ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण सोलह तोले, गंधक और मण्डूर प्रत्येक दो दो पल, शुद्ध पारा दो तोले, भांगरेका रस और कुकुरभांगरेका रस प्रत्येक दो दो सेर, इन सबको लोहेके पात्रमें एकत्र कर लोहेके दण्डसे घोटै, जब घोटते घोटते सूख जाय तब इसमें घी और सहत मिलाकर खूब मर्दन करै, पश्चात् इसको चिकने-वासनमें भरकर रखदेवै । यह रसमण्डूर कफपित्तसे उत्पन्नहुए रोगोंको, शूलको अम्लपित्तको, संग्रहणीको और उग्रकामला रोगको दूर करै ॥ ४६-४८ ॥

अथ त्रिनेत्राख्योरसः ।

टंकणंहरिणशृंगंस्वर्णशुद्धंमृतरंसः ।

आर्द्रकस्यद्रवैश्चाह्निमर्द्यरुद्धापुटेपचेत् ॥ ४९ ॥

त्रिनेत्राख्यरसोनाममाषैकंमधुसर्पिषा ।

सैन्धवंजीरकंहिंगुमध्वाज्याभ्यांलिहेदनु ॥

पक्तिशूलहरंख्यातोमासमात्रान्नसंशयः ॥ ५० ॥

अर्थ—सुहागा, हरिणका सींग, शुद्ध सोना और पारेकी भस्म, सबको समान भागलेकर अदरकके रसमें एक दिन खरल कर मिट्टीके शरावसम्पुटमें रख कपरोटीकर पुटपाक करै, शीतल होनेपर निकालकर चूर्ण करले, इसको त्रिनेत्राख्यरस कहतेहैं । यह रस एक मासे प्रमाण घृत और सहतके साथ सेवन करै । और ऊपरसे सेंधानोन, जीरा, हींग, इनका चूर्ण सहत और घृतमें मिलाकर खावे तो यह त्रिनेत्राख्यरस परिणामशूलको एक महीनेमें दूर करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथामृतमण्डूरम् ।

मण्डूरस्यपलान्यष्टौशतावर्यारसन्तथा ।

क्षीराज्यदधिप्रत्येकंपिष्ट्वाचतुष्पलंपिबेत् ॥ ५१ ॥

यावत्पित्तंतदुत्तार्यनिष्कैकंभोजयेत्सदा ।

प्रातःसन्ध्यांसदाखादेत्पक्तिशूलप्रशान्तये ॥

वातजंपित्तजंमिश्रममृताख्योहिमृत्युजित् ॥ ५२ ॥

अर्थ—मण्डूर आठ पल, सतावरका रस आठ पल, दूध, घी और दही प्रत्येक चारचार पल लेकर एकत्र पीस लेवै । इसको प्रतिदिन प्रातःकाल और संध्या-समय आठ मासे भर खावे तो परिणामशूल दूर होवे तथा वातज पक्तिशूल

और पित्तज पक्तिशूल भी दूर होता है । यह अमृतमण्डूर मृत्युको भी दूरकरता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ पथ्याद्यंलौहम् ।

पथ्यालोहरजःशुण्ठीतच्चूर्णमधुसर्पिषा ।

परिणामोद्भवंशूलंसद्योहन्तित्रिदोषजम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण, लोहेका चूर्ण और सांठका चूर्ण प्रत्येक समानभाग लेकर सहत और घीके साथ सेवनकरनेसे कफज, पित्तज, और वातज परिणामशूल दूर होते हैं ॥ ५३ ॥

अथ कृष्णाद्यंलौहम् ।

कृष्णामयालोहचूर्णलेहयेन्मधुसर्पिषा ।

परिणामोद्भवंशूलंसद्योहन्तित्रिदोषजम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—पीपल, हरड, और लोहेका चूर्ण प्रत्येक समानभाग लेकर सहत और घीके साथ सेवनकरनेसे तत्काल त्रिदोषजनित परिणामशूल दूर होता है ॥ ५४ ॥

अथ बृहत्त्रिफलाद्यंलौहम् ।

व्याढकंत्रिफलायाश्चचतुर्गुणजलेपचेत् ।

पादावशिष्टंविज्ञायकपायमवतारयेत् ॥ ५५ ॥

सुतप्तंनिर्वपेत्प्राज्ञोगुडूच्यार्द्धशतन्तथा ।

सर्पिषःषोडशपलंतच्चूर्णैःसहयोजयेत् ॥ ५६ ॥

गुडूचीकन्दकदलीतालमूलीयवासकम् ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंचर्विकाजीरकद्वयम् ॥ ५७ ॥

त्वगेलाऽरुष्करोव्योषद्विक्षारलवणत्रयम् ।

विडंगंटंकणक्षारौयवानीद्रिपलिकांशिकान् ॥ ५८ ॥

लोहंपचेत्तदैकध्वंयावत्सान्द्रत्वमागतम् ।

भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यायथासानुश्चभोजनम् ॥ ५९ ॥

वातजंपित्तजंशूलंकफजंद्वन्द्वजंतथा ।

परिणामसमुत्थञ्चसन्निपातसःश्लेष्मम् ॥ ६० ॥

अष्टादशविधंकुष्ठपाण्डुरोगंभगन्दरम् ।

मन्दाग्निगुदजश्चैवजयेदेतन्नसंशयः ॥ ६१ ॥

सुतप्तंजारणपुटनादिशोधितम् ।

अर्थ—सोलह सेर त्रिफलाको चौगुने जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहै तब उतारकर छान लैवै, फिर इस काढेमें सवाछेसेर कान्तलोहेका चूर्ण, सवाछेसेर गिलोयका रस, दोसेर घी, तथा गिलोय, केलाकन्द, मुसली, अडूसा, चीता, पीपरामूल, चव्य, कालाजीरा, सफेदजीरा, दालचीनी, इलायची, भिलावा, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जी, कालानोन, सैंधानोन, विरिया-संचरनोन, बायविडंग, मुहागा और अजवायन प्रत्येक आठ आठ तोले वारीक-चूर्ण मिलाकर पकावे, जबतक यह खूब गाढ़ा न होय तबतक पकावे । इस त्रिफलाद्यलोहको सहत और घीके साथ सेवन करै । इससे वातजशूल, पित्तजशूल कफजशूल, द्वन्द्वजशूल, परिणामशूल, सान्निपातिकशूल, अठारह प्रकारके कोढ़, पाण्डुरोग, भगन्दर, मन्दाग्नि और बवासीर दूर होतीहै ॥ ५५-६१ ॥

अथ धात्रीलोहम् ।

धात्रीचूर्णस्याष्टपलानिचत्वारिलौहचूर्णस्य ।

यष्टीमधुकरजश्चद्विपलंदद्यात्पट्टघृष्टम् ॥ ६२ ॥

अमृताक्राथेनैतद्भाव्यंचूर्णन्तुसप्ताहम् ।

चण्डातपेसुशुष्कंभूयःपिष्ट्वानवेघटेस्थाप्यम् ॥ ६३ ॥

मधुघृतमधुनासंयुक्तंभक्तादौमध्यतोऽन्तेन ।

त्रीनपिवारान्खादेत्पथ्यंदोषानुबन्धने ॥ ६४ ॥

भक्तादौनाशयतिव्याधीन्पित्तानिलोद्धृतान् ।

मध्येऽह्मोविष्टम्भंजयतिचनृणांविदह्यतेनानुम् ॥ ६५ ॥

पानानुकृतान्दोषान्भुक्तान्तेशीततोजयति ।

एवंजीर्यतिचानुशूलंनृणांसुकष्टमपिहन्ति ॥ ६६ ॥

हरतिचसहसायुक्तोयोगश्चायंजरत्पित्तम् ।

चक्षुष्यःपलितघ्नःकफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्भोगान् ॥

प्रसादयत्यपिरक्तंपाण्डुत्वंकामलांजयति ॥ ६७ ॥

अर्थ—आमलोंका चूर्ण आठ पल, लोहेका चूर्ण चारपल, सुलैठीका चूर्ण दो पल, सबको मिलाकर सात दिन तक गिलोयके रसकी भावना देवै, पश्चात् तेज धूपमें सुखाकर बारीक पीसके एक नवीन घडेमें भरके रखदेवै । इसको सहत और घीमें मिलाकर भोजनके आदि मध्य और अन्तमें इसप्रकार तीन बार खावै और पथ्यसे रहै । यह भोजनके पूर्वमें भक्षण किया हुआ पित्त और वातसे उत्पन्न हुए रोगोंको विध्वंस करैहै । भोजनके मध्यमें भक्षण किया हुआ विष्टम्भको दूर करैहै, और भोजनके अन्तमें भक्षण किया हुआ पानसे उत्पन्नहुए विकारोंको हरताहै । यह जीर्ण होनेपर अत्यन्त कष्टयुक्त शूलको नष्ट करै है । यह योग—पित्तनाशक, नेत्रोंको हितकारी, विना समय वालोंके श्वेत होजानेको हरै है, तथा कफपित्तसे उत्पन्न हुवे रोग, रुधिरविकार, पाण्डुता और कामलारोगको दूर करैहै ॥ ६२—६७ ॥

अथ समस्तशूलहरोपायः ।

शुण्ठीशमीवारिपुनर्नवानांजलंसशम्बूकजभस्मपीतम् ।

सैरंडतैलजयतिप्रसह्यशूलंसमस्तंपुरुषस्यसिद्धम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—सांठ, शमी, सुगन्धवाला और पुनर्नवा, इनके काथमें घांघेकी भस्म और अण्डीका तेल डालकर पीनेसे सर्वप्रकारके शूल दूर होते हैं ॥ ६८ ॥

अथ हिंग्वाचवटकः ।

हिंगुसौवर्चलंपाठाद्वौक्षारौलवणत्रयम् ।

चूर्णीकृतंविधातव्यंवटकंलशुनेरसे ॥ ६९ ॥

हृच्छूलेपार्श्वशूलेचमन्यास्तम्भेचदारुणे ।

प्रयोज्यंकुक्षिशूलेचभिषजासिद्धिमिच्छता ॥ ७० ॥

अर्थ—हींग, कालानोन, पाट्ट, सज्जी, जवाखार, सेंधानोन, संचग्नोन, और विगियामंचरनोन, इन सबको पीस लहशुनके रसमें भिजो वड़े बनालेवे । इन बड़ोंके सेवनकरनेसे—हृदयशूल, पार्श्वशूल, मन्यास्तम्भ और कुक्षिशूल दूर होता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ त्रिफलामोदकः ।

फलतिक्ताव्योपगुडशर्करात्रिवृताद्धिकाः ।

मोदकंभक्षयेच्चानुपिवेत्कोष्णजलंपुनः ॥

पार्श्वशूलेऽरुचौकासेज्वरेचानिलसम्भवे ॥ ७१ ॥

इति पक्तिशूलाऽध्यायः ।

अर्थ—हरड़, बहेडा, आमला, कुटकी, सोंठ, मिरच और पीपल, इनका चूर्ण समानभाग, शर्करा और निसोतका चूर्ण सबसे आधाभाग, तथा गुड सबसे दुगुना डालकर मोदक बनाके भक्षण करें और ऊपरसे गरमजल पीवे तो पार्श्व-शूल, अरुचि, खौसी, और वातज्वर दूर होता है ॥ ७१ ॥

इति परिणामशूलाऽध्यायः ।

अथान्नद्रवजरात्पित्तचिकित्सा ।

जीर्णेजीर्यत्यजीर्णेवायच्छूलमुपजायते ।

पथ्यापथ्यप्रयोगेणभोजनाभोजनेनच ॥ १ ॥

नशमंयातिनियमाद्योऽन्नद्रवउदाहृतः ।

अन्नद्रवाख्यशूलेषुतावन्नस्वास्थ्यमश्नुते ॥ २ ॥

यावत्कटुकपीताम्लमन्नंनच्छर्दयेद्रवम् ।

जातमात्रेजरत्पित्तेशूलमाशुविनाशयेत् ॥ ३ ॥

पित्तार्तवमनंकृत्वाकफार्तश्चविरेचनम् ।

अन्नद्रवेचतत्कार्यंजरत्पित्तेयदीरितम् ॥

आमपक्वाशयेशुद्धेगच्छेदन्नद्रवःशमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—भोजनके पचजानेपर, या पचनेके समय अथवा अजीर्णमें जो शूल उत्पन्न होवे, वह शूल पथ्यापथ्यप्रयोगसे, वा भोजन करनेसे अथवा भोजन करनेके नियमसे शान्त होवे, उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं। अन्नद्रवशूलमें जबतक चरपरे, पीले, खट्टे, अन्नद्रवको वमन नहीं करें, तबतक चैन नहीं पड़ता है ॥ जर-त्पित्तशूल उत्पन्न होतेही मनुष्यको मारदेता है, इस कारण पित्तसे पीडितमनुष्यको वमन करावे, और कफसे पीडित जरत्पित्तशूलवालेको विरेचन करावे, जो चिकित्सा जरत्पित्तमें कही है वही अन्नद्रवशूलमें करे और जो यत्न अन्नद्रवमें कहा है वह जरत्पित्तमें करे जब रोगीका आमाशय और पक्वाशय शुद्ध होजाता है तब अन्नद्रव शूल शांत होता है ॥ १-४ ॥

अथ मूत्रकृच्छाश्मरीहरोपायः ।

माण्डेर्नीसरुचकांसुस्विन्नावह्निपाचिकाम् ।

तादृशींसर्पिषाखादेदृष्ट्वा वनिपीडितः ॥ ५ ॥

लिह्याद्धात्रीफलचूर्णमयश्चूर्णसमायुतम् ।
 यष्टीचूर्णेनवायुक्तंलिह्यात्क्षौद्रेणतद्गदे ॥ ६ ॥
 श्यामाकतण्डुलैःसिद्धंसिद्धंतण्डुलकोद्रवैः ।
 प्रियंगुतण्डुलैःसिद्धंपायसंशर्करान्वितम् ॥ ७ ॥
 गौडिकंसूरणंकन्दंकूष्माण्डश्चापिभक्षयेत् ।
 कलाययवसक्तून्वासक्तून्वालाजसंभवान् ॥ ८ ॥
 कुलत्थसक्तुमथवाऽथवादुग्धसरेणतु ।
 चणकानामथोसक्तून्कोद्रवस्यौदनंयथा ॥ ९ ॥
 गोधूममण्डकंतत्रसर्पिपागुडसंयुतम् ।
 ससितंशीतदुग्धेनसूदितंवाहितंचयत् ॥ १० ॥
 पटोलपत्रयूपेणखादेत्कणिकसक्तुकान् ।
 भृष्टान्वाचणकान्खादेद्गुजावान्वापिपिष्टितान् ॥ ११ ॥
 कलायान्वानिराहारस्तृषितःक्षीरपोभवेत् ॥
 कलाययवगोधूमश्यामाकाःककुभस्यच ॥ १२ ॥
 एर्वारुबीजतोयेनपिबेद्रालवणाकृतम् ॥
 शर्करेश्चुरसंक्षीरद्राक्षारसमथापिवा ।
 सर्वथोपप्रयुज्जीतमूत्रकृच्छ्राश्मरीभिदाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—अन्नद्रवसे पीडित मनुष्योंको लवणयुक्त भलेप्रकार अग्निसे पकाई-
 हुई घीके साथ खानी चाहियें । आमलोंका चूर्ण और लोहेका चूर्ण
 दोनोंको सहतमें मिलाकर चाटनेसे, अथवा मुलेठीके चूर्णमें सहत मिलाकर
 चाटनेसे अन्नद्रवशूल दूर होताहै । समेके चावलोंकी, या कांदोंके चावलोंकी
 अथवा कंगनीके चावलोंकी बनाई हुई खीर वृग मिलाकर भक्षण करना अन्न-
 द्रवशूलवाले रोगियोंको हितकारीहै । ईख, सूरणकन्द, पेठा, मटर, जौके सत्तू
 खीलोंके सत्तू, कुलथीके सत्तू और चनेके सत्तू, कुदईका भात इनको दधि और
 दूधके सरके साथ सेवन करना चाहिये । गेहूँके मण्डूकको घृत और गुड तथा
 वृगामिलेहुए ठंडे दूधमें मलके या आटाकर खावे । कणिक (सूजी) के सत्तू
 अथवा भुनेहुए चनेके सत्तू या मटरके सत्तू परवलके यूपके साथ भोजन कर,

और ऊपरसे दूध पीवे । मटर, जौ, गेहूं, समा और अर्जुनवृक्षकी छाल इनको ककडीके बीजोंके जल और लवणके साथ पीनेसे अथवा मिश्री, ईखका रस और दूध वा दाखोंका रस पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग दूर होता- है ॥ ५-१३ ॥

अथान्नद्रवशूलहरोपायः ।

अन्नद्रवोदुश्चिकित्स्योदुर्विज्ञेयोमहागदः ।

तस्मात्तस्यप्रशमनेपरंयत्नंसमाचरेत् ॥ १४ ॥

अन्नद्रवेजरत्पित्तेवह्निर्मन्दोभवेद्यतः ।

तस्मात्तत्रानुपानानिमात्राहीनानिकारयेत् ॥ १५ ॥

कलाययवगोधूमश्यामाकाःकोरदूषकाः ।

राजमाषाःस्थूलमाषाःस्थूलस्थाःकंगुशालयः ॥ १६ ॥

भोजनार्थेप्रशस्ताश्चपुराणाःसप्रियङ्गवः ।

दधिलुप्तसरंक्षीरंगव्यमाजंसमाहिषम् ॥ १७ ॥

घृतंपुराणंशाकार्थेवास्तुकोनिम्बपल्लावाः ।

कर्कोटकारवेल्लानांपत्राणिस्वरसस्यच ॥ १८ ॥

यानिकानिप्रयोज्यानिकासमर्ददलानिच ।

वर्हिणोहरिणामत्स्यारोहिताःसकपिञ्जलाः ॥

भृतीकृताःशस्ततरारसार्त्तेचोपपादिताः ॥ १९ ॥

अर्थ—अन्नद्रवशूल महाअसाध्य, दुर्विज्ञेय (जाननेमें नहीं आवै) और महारोगहै, इसकारण इसको शीघ्रही बड़े यत्नोंसे शान्त करै । जरत्पित्त और अन्नद्रवशूलरोगमें अत्यन्त अग्नि मन्द होजातीहै । इसकारण इसरोगमें सकल अन्न और पान अल्प देनेचाहियें । मटर, जौ, गेहूं, समा, कोदों, लोविया, उडद, कंगनी, शालि, और प्रियंगु (चोवा) यह सब पुराने अन्न अन्नद्रवशूलरोगमें भोजनके लिये हितकारीहैं । दधिमिश्रित दूध, गायका घी, भैंसका घी पुराना घी, बथुआ, नीमके पत्ते, ककोडे, करेले, इनके पत्ते और स्वरस, तथा कसौंदीकेपत्ते, इन सबका शाक, मयूर, हिरण, रोहितमछली और कपिञ्जल पक्षीके मांसका रस, अन्नद्रवशूलरोगमें हितकारीहै ॥ १४-१९ ॥

अथ गुडमण्डूरम् ।

गुडामलकपथ्यानांचूर्णप्रत्येकशःपलम् ।

त्रिपलंलोहकिट्टस्यतत्सर्वमधुसर्पिषा ॥ २० ॥

ऽपालोऽततःखादेदक्षमात्रप्रमाणतः ॥

आद्यमध्यावसानेषुभोजनस्यनिहन्ति तत् ॥ २१ ॥

अन्नद्रवंजरत्पित्तमम्लपित्तंसुदारुणम् ।

परिणामसमुत्थस्यशूलसंवत्सरोत्थितम् ॥ २२ ॥

अर्थ—गुड चार तोले, आमलोंका चूर्ण चार तोले, हगडका चूर्ण चार तोले, मण्डूरकी भस्म बारह तोले लैवै, सबको सहत और धीमें मिलाकर दो तोले प्रमाण भोजनके पूर्व, मध्य और अन्तमें भक्षण करे । इससे अन्नद्रवशूल, जरत्पित्त, दारुण अम्लपित्त, और एक वर्षका परिणाम शूल दूर होता है ॥ २०-२२ ॥

अथ विद्याधराभ्रकम् ।

विडंगमुस्तत्रिफलागुडूचीदन्तीत्रिवृद्धह्निकटुत्रिकाणि ।

प्रत्येकमेषांपिचुभागचूर्णपलानिचत्वार्ययसोमलस्य ॥ २३ ॥

गोमूत्रशुद्धस्यपुरातनस्ययद्वायसस्तानिशिवाटिकायाः ।

कृष्णाभ्रकाच्चूर्णपलंविशुद्धंनिश्चन्द्रकाच्छृङ्गमतीवसूतात् २२

पादोनकर्षस्वरसेनखल्वशिलातलेमन्यमुनीदलस्य ।

समर्द्ययत्नादतिशुद्धगन्धपाषाणचूर्णेनविचूर्णितेन ॥ २५ ॥

युक्त्याततःपूर्वरजांसिदत्त्वासर्पिमधुभ्यामवमृद्ययत्नात् ।

संस्थापयेत्स्निग्धघटेविशुद्धेततःप्रयोज्योऽस्यरसायनस्य ॥ २६ ॥

प्राङ्माषकोद्रावथमाषकौवागव्यञ्चपथ्यंशिशिरंजलंवा ।

पिवेदरंयोगवरःप्रभूतकालप्रनष्टानलदीपकःस्यात् ॥ २७ ॥

योगोपिहन्त्यम्लपित्तंलं तथापिचात्रद्रवसंज्ञकञ्च ।

यक्ष्माम्लपित्तंप्रहृष्टंजीर्णज्वरंलोहितपित्तकुष्ठे ॥

नसन्ति तेयान्ननिहन्तिरोगान्यागोत्तमःसम्यग्पास्यमानः २८॥

अर्थ—वायुबिडंग, नागरमोथा, त्रिफला, गिलोय, दन्ती, निसोत, चीता, और त्रिकुटा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, गोमूत्रमें भावनादेकर सिद्ध किया हुआ लोहमल या लोहपत्रिका चारपल निश्चंद्रकृष्णाभ्रकका चूर्ण चार तोले, और शुद्धपारा डेढ तोले लेकर सबको अगस्तियाके पत्तोंके रसमें खरल करै ॥ पश्चात् सूखजानेपर इसमें १॥ डेढतोले शुद्धगंधकका चूर्ण मिलादेवै, फिर सहत और घर्षमें घोटकर एक चिकने वासनमें भरकर रखदेवै । अग्निका बलाबल विचारकर एकमासा या दोमासे गायके दूध या शीतल जलके साथ सेवन करै । इससे मन्दाग्नि, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, दुष्टसंग्रहणी, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और कुष्ठरोग दूर होताहै ॥ २३-२८ ॥

अथ लौहगुटिका ।

लौहस्यरजसोभागस्त्रिफलायास्तथात्रयः ।

गुडस्याष्टौतथाभागागुडान्मूत्रंचतुर्गुणम् ॥ २९ ॥

एतत्सर्वन्तुविपचेद्गुडपाकविधानवित् ।

लिहेच्चतयथाशक्तिशूलंचान्नद्रवंजयेत् ॥ ३० ॥

लौहस्यैकभागः ।

अर्थ—लोहेकाचूर्ण एकभाग, त्रिफला तीनभाग गुड आठभाग और गोमूत्र बत्तीसभाग, सबको एकत्रकर गुडपाककी विधिसे पकावै इसको यथाशक्त्यनुसार सेवनकरै तो अन्नद्रवशूल, दूरहोवे ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ कलायगुटिका ।

कलायचूर्णभागौद्वौलौहचूर्णस्यचापरः ।

कारवेष्टपलाशानारसेनैवविमर्दयेत् ॥ ३१ ॥

कर्षमात्रांततश्चैकांभक्षयेद्गुटिकांनरः ।

मण्डानुपानात्साहन्तिजरत्पित्तंसुदुर्जयम् ॥ ३२ ॥

अत्रकलायोवर्तुलकलायः ।

लौहस्यैकभागः माषकादिक्रमेणभक्षणीयम् ।

इति अन्नद्रवजरात्पित्ताऽध्यायः ।

अर्थ—मटरकाचूर्ण दो तोले, लोहेकाचूर्ण एक तोला, दोनोंको करेलेके पन्नांके रसमें खरलकर दो दो तोलेकी गोली बनालेवै, एक गोली प्रतिदिन खावे और ऊपरसे माँड पीवे। इससे दुर्जय जरत्पित्तरोग दूर होताहै॥ ३१-३२॥

इति अन्नद्रव्यजरत्पित्ताधिकारः ।

अथोदावर्तचिकित्सा ।

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् ।

अन्यैश्चसृष्टानिलविद्धिवाद्यात्तथाप्रसन्नागुडसीधुपायी ।

प्रसन्नासुरामण्डःगुडकृत्सीधुगुडसीधु ।

आस्थापनंमारुतजस्विन्नस्यपरिशस्यते ॥

पुरीषजेतुकर्तव्योविधिरानाहिकस्तुयः ॥ २ ॥

आनाहिकोविधिः ।

अर्थ—निसोत, थूहरकेपत्ते, तिलादिकाशाक, तथा ग्राम्यजलचर और अनूपदेशके जीवांके मांसका रस, यवान्न, सुगामण्ड, और गुडमे बनाई हुई मीधु तथा अन्यान्य वायुनिःसारक द्रव्य उदावर्तरोगमें हितकारी हैं। वात-ज उदावर्तमें स्निग्ध और स्विन्नमनुष्योंके लिये आस्थापन (निरूहवस्ति) और पुरीषज उदावर्तमें आनाहिकविधि (फलवर्त्यादि) कर्णी चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अथोदावर्त्तादिहरोपायः ।

क्षारवैतरणौवस्तीयुज्यात्तत्रचिकित्सकः ।

सर्पिस्तैलरजःकाथंकलकेनान्यतमेनच ।

उदावर्त्तोदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ ३ ॥

अर्थ—क्षार, वैतरणनिरूहवस्ति अनुवामनवस्ति, घृत, तेल, चूर्ण, काथ, कल्क और अन्यान्यरोगोंके द्वारा उदावर्त, आनाह, विषदोष और गुल्मरोग नष्ट होताहै ॥ ३ ॥

अथ विड्विबन्धहरोपायः ।

त्रिवृत्कृष्णाहरीतकयोद्विचतुष्पंचभागिकाः ।

गुटिकागुडतुल्यास्तुविड्विबन्धगदापहाः ॥ ४ ॥

अर्थ—निसोत दो भाग, पीपल चार भाग और हरड पांच भाग तथा सबकी समान गुड लेवै, सबको मिला गोली बनाकर खानेसे विड्विबन्धरोग दूर होताहै ॥ ४ ॥

अथ नाराचचूर्णम् ।

खण्डपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णः ।

प्राग्भोजनेचसमधुरितान्मोदकं लिहन्प्राज्ञः ॥ ५ ॥

एतद्गाढपुरीषेपित्तेचविनियोज्यम् ।

स्वादुर्नृपयोग्योऽयंचूर्णनाराचकोनाम्ना ॥ ६ ॥

अर्थ—खांड एक पल, निसोतका चूर्ण एक कर्ष, पीपलका चूर्ण एक कर्ष, इन सबको सहतमें मिलाकर भोजनके पहिले भक्षण करे तो गाढपुरीष, पित्त और कफ दूर होवै । यह नाराचचूर्ण राजाओंके सेवने योग्य है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ गुडाष्टकम् ।

सव्योपंपिप्पलीमूलं त्रिवृदन्तीसचित्रकम् ।

तच्चूर्णगुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ७ ॥

एतद्गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥

प्लीहादावर्तं गुल्मघ्नं शोथपाण्डुज्वरापहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पीपल, कालीमिरच, सोंठ, पीपलामूल, निसोत, दन्ती और चीतिकी जड़, इन सबका चूर्ण समानभाग और सबकी समान गुड मिलाकर प्रातःकाल सेवन करे । यह गुडाष्टक—बल, वर्ण और अग्निको बढ़ानेवालाहै, तथा प्लीहा उदावर्त, गुल्म, सूजन, पाण्डु और ज्वरको दूर करैहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथोदावर्तरोगोपायः ।

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूतैः पक्त्वावर्तिसुवर्जिताम् ।

घृतयुक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥ ९ ॥

अर्थ—हींग चारमासे, सहत आठ तोले, सेंधानोन चारमासे, इन सबको एकत्र कर गुड़पाकविधिसे पकाके बत्ती बनालेवै, इन बत्तियोंको घीसे चुपडकर गुदामें चढानेसे दस्त होकर उदावर्त रोग दूर होजायगा ॥ ९ ॥

अथानाहहरण्टिका ।

त्रिवृद्धरीतकीश्यामास्तुहीक्षीरेणभावयेत् ।

वटिकामृतपीतास्ताःश्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः ॥ १० ॥

श्यामाश्याममूलैवत्रिवृत् ।

अर्थ—कालानिसोत, और हरड दोनो बराबर लेकर चूर्ण बनाले, पश्चात् थूहरके दूधकी भावना देकर गोली बना दूधकेसाथ सेवनकरनेसे आनाहरोग दूर होताहै ॥ १० ॥

अथ स्थिरादिघृतम् ।

स्थिरादिवर्गस्यपुनर्नवायाःशम्याकपूतीककरञ्जयोश्च ।

सिद्धःकषायेद्विपलांशिकानांप्रस्थोघृतात्स्यात्प्रातिबद्धवाते११

अर्थ—गायका घी दोसेर, जल आठसेर, और स्थिरादिवर्ग, पुनर्नवा श्योनाक, पूतिकरञ्ज, तथा हडर, करंज, प्रत्येक आठ आठ तोले, पाकके लिये जल बत्तीससेर और शेष आठ सेर रखे । यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें । यह घृत वातकी बद्धताको दूर करैहै ॥ ११ ॥

अथ शुष्कमूलकाद्यघृतम् ।

मूलकंशुष्कमार्द्रश्चवर्षाभूमूलपञ्चकम् ।

आरेवतपलञ्चापिपिष्ट्वातेनपचेद्घृतम् ॥

तत्पीयमानंशमयेदुदावर्तमशेषतः ॥ १२ ॥

पंचमूलंस्वल्पमिदम् । आर्द्रमूर्आर्द्रकम् ।

अर्थ—गायका घी एकसेर, जल चारसेर, तथा कल्कके लिये सूखी मूली, अदरक, पुनर्नवा, स्वल्पपंचमूल, और अमलतासका गूदा, प्रत्येक दो दो तोले लें । यथाविधिसे घृतको पकावे । इस घृतको पीनेसे उदावर्त रोग दूर होताहै ॥ १२ ॥

अथ नाराचयोगः ।

त्रिवृत्खण्डंचपलिकंकर्पकृष्णारजोमधु ।

विष्टम्भेकफपित्तेचनाराचाख्यंनृपोचितम् ॥ १३ ॥

कंर्पकृष्णार्द्रवामधुनालिह्यात् ।

इति आनाहोदावर्त्ताऽध्यायः ।

अर्थ—निसोतका चूर्ण चार तोले, खाँड चार तोले, पीपलका चूर्ण दो तोले
लेवै पश्चात् सबको मिलाकर सहतके साथ चाटनेसे—कफ और पित्तजनित
विष्टम्भरोग दूर होताहै । यह नाराचयोग राजाओंके सेवन करने योग्यहै ॥१३॥

इतिआनाहोदावर्त्ताधिकार ।

अथ गुल्मचिकित्सा ।

लंघनंदीपनंस्निग्धमुष्णवातानुलोमनम् ।

बृंहणंयद्भवेत्सर्वतद्धितंसर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥

अर्थ—लंघन, दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वातानुलोमक और सर्व प्रकारके पुष्टिका-
रक द्रव्य गुल्मरोगवालोंको हितकारीहैं ॥ १ ॥

स्निग्धस्यभिषजास्वेदःकर्तव्योगुल्मशान्तये ।

स्रोतसामार्दवंकृत्वाजित्वामारुतमुल्बणम् ॥ २ ॥

अर्थ—गुल्मरोगीको प्रथम स्निग्ध करके पश्चात् स्वेद देवै । कारण यह है
कि, स्वेद, स्निग्धमनुष्योंके स्रोतोंमें मृदुता उत्पन्न करके कुपित वायुको शा-
न्तकर विबन्धादिकोंको नष्ट कर गुल्मरोगको दूर करदेताहै ॥ २ ॥

अथ पिण्डमांसादिपिण्डः ।

स्निग्धस्यस्वेदनंकुर्यात्कुम्भीपिण्डेष्टकादिभिः ।

शाल्वणाद्युपनाहञ्चसुखोष्णंगुल्मशान्तये ॥

भित्त्वाविबन्धंस्निग्धस्यस्वेदोगुल्ममपोहति ॥ ३ ॥

अर्थ—गुल्मरोगीको स्निग्धकरके कुम्भ मांसपिण्ड और इष्टकादि द्वारा
शाल्वणकेसाथ उपनाह स्वेददेनेसे गुल्मरोग दूर होताहै ॥ वातनाशक काथसे
कुम्भीको परिपूर्ण कर पृथ्वीमें खोदकर गाडदेवै और उसके ऊपर शय्याको
कराय स्वेददेनेसे गुल्मरोग शान्त होताहै ॥ ३ ॥

अथ वातगुल्महरोपायः ।

मातुलुंगरसोहिंशुदाडिमंविडसैन्धवम् ।

सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—विजौरेका रस, हींग अनार, बिडनोन और सैन्धानोन, सबको एकत्र
कर सुरामण्डके साथ पीनेसे वातगुल्मरोग दूर होताहै ॥ ४ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंशुत्रिकटुकं पाठाहपुषामभयाशठीम् ।
 अजमोदाश्चगन्धेचतिन्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ ५ ॥
 दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीचित्रकं वचाम् ।
 द्रौक्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ६ ॥
 चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनव्ययम् ।
 प्रागुक्तमथवापेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ७ ॥
 पार्श्वहृद्भस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
 आनाहमूत्रकृच्छ्रे च शूले च गुदयोनिजे ॥ ८ ॥
 ग्रहण्यशौं विकारेषु प्लीहापाण्ड्वामयेऽरुचौ ।
 उरोविबन्धे हिक्कायां कासेश्वासे गलग्रहे ॥ ९ ॥
 भावितं मातुलुंगस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
 बहुशो गुटिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिके ॥ १० ॥

अर्थ—हींग, सांठ, मिरच, पीपल, पांढ, हाऊवेर, हरड़, कचूर, अजमोदा, असगंध, इमली, अमलबंत, अनार, पोहकरमूल, धनियाँ, जीरा, चीता, बच, सज्जी, जवाखार, सैधानोन, कालानोन और चव्य, इन सबका बारीक चूर्ण बना बिजोरे नींबूके रसकी भावना देकर गोली बना लेंगे । इसको पूर्वोक्त अनुपान, अथवा मदिरा, या उष्णोदकके साथ पान करनेसे—पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, वातकफात्मक गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, योनिशूल, संग्रहणी, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, उरोरोग, विबन्ध, हिक्का, खाँसी, श्वास और गलग्रह, यह सब रोग दूर होते हैं ॥ ५-१० ॥

अथ गुल्मोदरादिनाशकचूर्णम् ।

पूतिकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि-
 व्योषश्चसंस्तरचितं लवणोपधानम् ।
 दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तु युतं प्रयोज्यं
 गुल्मोदरश्च यथुपाण्डुगदोद्भवे ॥ ११ ॥

पूतिकोनाटकंरंजस्तस्यमूलंगजचिर्भटंगोरक्षकर्कटी ।

लवणसैन्धवंतच्चपूतिकमत्रापिसमम् ।

इति सर्वमन्तर्धूमेनदाग्धव्यम् ।

अर्थ—दुर्गन्धित करञ्जकी जड़, तेजपात, बड़ी इन्द्रायनकी जड़, चव्य, लाल-चीता, सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधानोन इन सबको दग्ध करके चूर्णबनालें। इस चूर्णको दहीके पानीके साथ सेवन करनेसे गुल्म, उदररोग, सूजन और पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ११ ॥

अथ कांकायनगुटिका ।

शार्ठांषुष्करमूलञ्चदन्तीचित्रकमाढकीम् ।

शृंगवेरंवचाञ्चैवपलिकानिसमाहरेत् ॥ १२ ॥

त्रिवृतायाःपलञ्चैकंकुर्यात्रीणिचहिंगुलः ।

यवक्षारपलेद्वेचद्वेपलेचाम्लवेतसात् ॥ १३ ॥

यवान्यजाजीमरिचंधान्यकंचेतिकार्षिकम् ।

उपकुंच्यजमेदाभ्यांपृथगर्द्धपलंभवेत् ॥ १४ ॥

मातुलुंगरसेनैतद्गुटिकांकारयेद्विषक् ।

तासामेकांपिबेद्देवातिस्रोवाथसुखाम्बुना ॥ १५ ॥

अम्लैर्द्रव्यैश्चयूषैश्चघृतेनपयसाथवा ।

एषाकांकायनेनोक्तागुटिकागुल्मनाशिनी ॥ १६ ॥

अशोहृद्गोगशमनीकृमीणाञ्चविनाशिनी ।

गोमूत्रयुक्ताशमयेत्कफगुल्मचिरोत्थितम् ॥ १७ ॥

क्षीरेणपित्तगुल्मन्तुमद्यैरम्लैश्चवातिकम् ।

एषागुल्मसमूत्रैश्चनियच्छेत्सान्निपातिकम् ॥

रक्तगुल्मन्तुनारीणामुष्ट्रीक्षीरेणपाययेत् ॥ १८ ॥

उपकुंचिकाञ्चजिरी ।

अर्थ—कचूर, पोहकरमूल, दन्ती, चीता, अड़हर, अदरक और बच प्रत्येक चार चार तोले, निसोत चार तोले, सिंगफ बारह तोले, जवाखार आठ तोले

अम्लवेत आठ, तोले, अजवायन, जीरा, कालीमिरच और धनियों प्रत्येक एक एक तोला, कालाजीरा और अजमोदा प्रत्येक दोदो तोले लेवै, सबका बारीक चूर्णकर बिजोरेके रसमें गोली बनालेवै । एक गोली या दो गोली अथवा तीन गोली, उष्णोदक, अम्लद्रव्य, मूंग आदिकेयूष, घी अथवा दूधके साथ सेवन करै । यह कांकायनमुनिप्रोक्त कांकायनगुटिका-गुल्म, ववासीर, हृदयरोग, कृमि आदिरोगोंको दूर करै है । यह गोली गोमूत्रके साथ बहुत दिनोंके कफगुल्मको, दूधकेसाथ पित्तगुल्मको, मदिराके साथ वातगुल्मको, त्रिफलेकेरस और गोमूत्रकेसाथ सान्निपातिक गुल्मको, तथा ऊंटनीके दूधकेसाथ पीवे तो स्त्रियोंके स्तनगुल्मको यह कांकायनगुटिका दूर करतीहै ॥ १२-१८ ॥

अथ हृषुषादिघृतम् ।

हृषुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ।

साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृतम् ॥ १९ ॥

सकोलमूलकरसंसक्षीरंदधिदाडिमम् ।

तत्परंवातगुल्मघ्नंशूलानाहविबन्धनुत् ॥ २० ॥

योन्यशोग्रहणीरोगश्वासकासारुचिज्वरान् ।

पार्श्वहृद्गतिशूलश्चघृतमेतद्वचपोहति ।

कोलस्यमूलकक्वाथस्तथाद्रस्यरसस्तथा ॥ २१ ॥

दाडिमबीजस्वरसःक्वाथोवास्वरसाभावे ।

पंचद्रवाणिप्रत्येकंस्नेहसमानिचतथा ॥

अर्थ-गायका घी एकसेर, बेरीका क्वाथ एकसेर, मूलीका क्वाथ एकसेर, दूध एकसेर दही एकसेर, अनारका रस एकसेर और कल्कके लिये हाऊबेर, सोंठ, पीपल, कालीमिरच, बड़ी इलायची, चव्य, चीता, सेंधानोन जीरा, पीपलामूल और अजवायन प्रत्येक एक एक तोले यथाविधिसे घृतको सिद्धकर सेवन करनेसे वातगुल्म, शूल, आनाह, विबन्ध, योनिरोग, ववासीर, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पार्श्वशूल, हृदयशूल वस्तिशूल, इन सब रोगोंको यह हृषुषादि-घृत दूर करैहै ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ द्राक्षाद्यंघृतम् ।

द्राक्षामृकखर्जूरंविदारींसशतावरीम् ।

परूषकाणित्रिफलांसाद्योत्पलसंमितान् ॥ २२ ॥

जलाढकेपादशेखरामलकस्यच ।

घृतमिक्षुरसंक्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ २३ ॥

साधयेच्चघृतंसिद्धंशर्कराक्षौद्रपादिकम् ॥

प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ २४ ॥

अर्थ—उत्तम गायका घी दो सेर, आमलोंकारस दो सेर, ईखका रस दो सेर, गायका दूध दो सेर, काथके लिये दाख, मुलैठी, खजूर, विदारीकन्द, शतावर, फालसा, हरड, आमला और बहेडा, प्रत्येक चार चार तोले, पाकके लिये जल आठ सेर, शेष दो सेर, और कल्कके लिये कुटी हुई हरड आधसेर, यथाविधिसे घृतको सिद्धकर पावभर बूरा और पावभर सहत मिलालेवै । यह घृत-पित्तगुल्म और सर्व पित्तके विकारोंको दूर करैहै ॥ २२-२४ ॥

अथ भाङ्गीषदपलघृतम् ।

षड्भिःपलैर्मगधजाफलमूलचव्य-

विश्वौषधज्वलनयावककल्कपक्वम् ।

प्रस्थंघृतस्यदशमूलरूक्कभाङ्गी-

काथेनवापयसिदध्निचषट्पलाख्यम् ॥ २५ ॥

गुल्मोदरारुचिभगंदरवह्निसाद-

कासज्वरक्षयशिरोग्रहणीविकारान् ।

सद्यःशमनयतियेचकफानिलोत्थाः ।

भाङ्गर्याख्यषट्पलघृतं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २६ ॥

मगधजापिप्पलीतस्याःफलमूलञ्च ।

ज्वलनश्चित्रकमूलंयावकोयवक्षारः ।

काथश्चतुर्गुणःपयःस्नेहसमंदध्निचतुर्गुणम् ।

किंवाकाथदध्नीप्रत्येकंद्विगुणे ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, चीता और जवाखार यह प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर कल्क बनावे, इन औषधियोंके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको दशमूलके काथ, अण्डके काथ और भारङ्गीके काथमें तथा दूध और दहीमें पकावे जब पकते पकते घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारलेवे,

यह षट्पल घृत—गुल्म, उदररोग, अरुचि, भगंदर, मंदाग्नि, खांसी, ज्वर, क्षय, शिरोरोग, संग्रहणी और कफवातोद्भवरोगोंको तत्काल नष्ट करैहै ॥ २५—२६ ॥

अथ दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिःपंचचाभया ।

दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच ।

तेनाष्टभागशेषेणपचेदन्तीसमंगुडम् ॥ २७ ॥

तच्चोभयाःत्रिष्टुप्पातैलाच्चापिचतुष्पलम् ।

पलमेकंकणाशुण्ठयोःसिद्धेलेहेऽथशीतले ।

क्षौद्रतैलसमंदद्याच्चातुर्जातपलन्तथा ॥ २८ ॥

ततोलेहपलंलीङ्गजग्ध्वाचैकांदरीतकीम् ।

सुखंविरिच्यतेस्निग्धादोषप्रस्थमनामयः ॥ २९ ॥

प्लीहश्वयथुगुल्माशोहत्पाण्डुग्रहणीगदाः ।

शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ ३० ॥

अर्थ—पोटलीमें बँधी हुई हरड पचीसपल, दन्तीकी जड पचीस पल और चीतेकी जड पचीसपल लेकर बत्तीस सेर जलमें पकावे जब चार सेर जल शेष रहै तब उतारकर छानलेवे और पोटलीको खोलकर हरडोंको निकाललेवे, पश्चात् इस काढ़ेमें पचीसपल गुड, पचीसपल काढ़ेमें निकाली हुई हरड, सोलह तोले निसोतका चूर्ण, सोलह तोले तेल, पीपल और सोंठ चार तोले डालकर अवलेह सिद्ध करै, जब शीतल होजाय तब सहत सोलह तोले और चातुर्जातक (दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात) का चूर्ण चार तोले मिलादेवे । पश्चात् अवलेहको चार तोले भर और एक हरड सेवन करै । इससे कोठा स्निग्ध होकर सुखपूर्वक दस्त हानेलगतेहैं । तथा प्लीहा, सूजन, गुल्म, बवासीर, हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, उत्क्लेश, विषमज्वर, कुष्ठ और अरोचक रोग दूर होताहै ॥ २७—३० ॥

अथ लौहगुग्गुलुः ।

स्नुहीत्वक्खादिरंकाष्ठंकोष्ठोदुम्बरजंफलम् ।

वल्कलञ्चपृथक्पंचपलमष्टगुणेजले ॥ ३१ ॥

पक्वापादावशेषेणलौहपंचपलंपचेत् ।

पिण्डीभावेद्रवेकिंचिदवशिष्टे तु निक्षिपेत् ॥ ३२ ॥

शोभाञ्जनकमूलस्य कल्केनावृत्य पाचितम् ।

करीषाग्नौ समुद्धृत्य हरितालं पलद्वयम् ॥ ३३ ॥

चूर्णितद्विपलं तच्च गुग्गुलोर्ध्वतपिटितम् ।

एकीकृत्य पचेद्भूयो यावच्छेहत्वमागतम् ॥ ३४ ॥

गुल्मेऽपेक्षये स्थूलये शोथे शूलैश्च पाकजे ।

पाण्डुरोगे प्रमेहे च वतरोगे तथैव च ॥

सिद्धमेतत्प्रयुञ्जीत वलीपलितनाशनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—थूहरकीछाल, खैरकी लकड़ी, गूलरकी छाल और फल, प्रत्येक पांच पांच पल लेकर आठगुने जलमें पकावै जब जल चौथाई भाग शेष रहे तब उतारकर वस्त्रमें छानलेवै, पश्चात् इस काढ़ेमें पांच पल लोहेका चूर्ण डालकर पकावै जब कुछ कुछ गाढ़ा होजाय तब सैजनेकी जड़का कल्क अन्नेउपलोंकी अप्रिसे पुटपाक किया हुवा आठ तोले, हरिताल आठ तोले और घीसे पिसा हुआ गूगुल आठ तोले सबको मिलाकर लेहवत् पकावै । इसको सेवन करनेसे—गुल्म, कोढ़, क्षय, स्थूलता, सृजन, शूल, पकाहुआ शूल, पाण्डुरोग, प्रमेह, वातरोग और वलीपलितरोग दूर होता है ॥ ३१-३५ ॥

अथ रक्तगुल्महरोपायः ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे ।

स्निग्धस्विन्नशरीराय दद्यात्स्निग्धविरेचनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—रक्त (आर्तव) जनित गुल्मरोगमें गर्भकालको छोड़कर अर्थात् ग्यारह मासके भीतर भी गर्भ प्रसूत न होय तो निश्चय रक्तगुल्म जानकर स्त्रियोंको स्निग्ध और स्विन्न करके विरेचनके लिये स्नेहयुक्त जुष्टाव देवै ॥ ३६ ॥

अथ नानाविधगुल्मोपायः ।

कम्पिप्लस्य रजःश्रेष्ठं ससितं मधुरेचनम् ॥

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभाङ्गीकणोद्भवः ॥ ३७ ॥

कल्कः पीते हरेद्गुल्मं तिलकाथेन रक्तजम् ।

तिलकाथोगुडव्योषहिङ्गुभाङ्गीयुतोभवेत् ॥ ३८ ॥

पानंरक्तभवेगुल्मेनष्टेषुष्पेचयोषिताम् ॥

सक्षारत्र्यूषणंमद्यंप्रपिबेदस्तगुल्मिनी ॥ ३९ ॥

पलाशक्षारतोयेनसिद्धंसर्पिःपिबेच्चसा ।

नप्रभिद्येतयद्येवंदद्याद्योनिविशोधनम् ।

क्षारेणयुक्तंफलकंस्तुहीक्षीरेणवापुनः ॥ ४० ॥

क्षारेणपलाशस्यफलकंतिलपिण्डकम् ।

सूक्ष्मवस्त्रंभ्रक्षयित्वावर्त्तिकृत्वायोनौ धारयेत् ।

किण्वंसगुडक्षारंदद्याद्योनिविशोधनम् ।

रुधिरेतिप्रवृत्तेतुरक्तपित्तहरीक्रिया ॥ ४१ ॥

क्षारोघण्टापाटल्यादिः ।

उष्णैरुष्णवीर्यैः ।

किण्वंसुराबीजंजलेनवर्त्तिः ।

अर्थ—कबीलेका चूर्ण, मिश्री और सहत मिलाकर सेवनकरनेसे रक्तगुल्म-
वाली स्त्रियोंके उत्तम रीतिसे दस्तहोतेहैं । सोया, करंजकी छाल, देवदारु,
भारंगी और पीपलको तिलोंके काथमें पीसकर सेवनकरनेसे आर्त्तवजनित
गुल्मरोग शान्त होताहै । गुड़, पीपल कालीमिरच, सांठ, हांग और भारंगीको
तिलोंके काथमें पीसकर पीनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म रोग नष्ट होताहै और नष्टपुष्प
फिरसे उदित होजाताहै । खार और त्रिकुटेका चूर्ण मद्यकेसाथ पानकरनेसे रक्त-
गुल्म आराम होताहै । घण्टापाटल आदिकेक्षारके जलसे और दाकके क्षारके
जलसे बनायाहुआ घी पीनेसेभी आर्त्तवजनित गुल्मरोग दूर होताहै । आर्त्तव-
जनित गुल्मरोगमें उष्ण औषधियोंके द्वारा जुल्लाव देना अत्यंत हितकारी है । जो
जुल्लाव न देवे तो योनिको शुद्धकरनेवाली औषधि प्रयोग करे, पलाशका क्षार
अथवा थूहरका और दूध तिलोंके एकत्र पीसके पिण्ड बनालेवै, उस पिण्डको बा-
रीक बस्त्रपै लेपकर बत्ती बना योनिमें धारणकरनेसे दूषितरक्त निकलकर योनि
शुद्ध होजातीहै । सुराबीज, गुड़ और क्षार इनको मिलाकर जलके साथ बत्ती

बना योनिमें धारण करनेसे योनि शुद्ध होजाती है । जो योनि के द्वारा अधिक रक्तस्राव होय तो रक्तपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ ३७-४१ ॥

अथ भल्लातकघृतम् ।

भल्लातकान्कल्ककषायपक्वसर्पिःपिबेच्छर्करयाविमिश्रम् ॥
तद्रक्तगुल्मं विनिहन्ति पीतं बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥ ४२ ॥

सिद्धशीतेशर्कराप्रक्षेप्या ।

कफगुल्मेशर्करास्थाने मध्वादिकम् ।

अर्थ—गायका घी एकसेर, भिलावेका काथ चारसेर और कल्क के लिये कुटा हुआ भिलावा पावभर, सबको मिलाकर घृत सिद्ध करें । इस घृतमें बूरा मिलाकर पीनेसे रक्तगुल्म और सहत मिलाकर पीनेसे—कफगुल्म रोग नाश होता है

अथ शिखिवाडवरसः ।

मारितं सूतताम्राभ्रं गंधकं माक्षिकं समम् ।

मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम् ॥ ४३ ॥

त्रिगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन वा ।

वातगुल्महरः ख्यातोरसोऽयं शिखिवाडवः ॥ ४४ ॥

हिं गुसौवर्चलं त्र्यूपसिन्धुदाडिमदीप्यकैः ।

प्रतिचूर्णकर्ममात्रं प्रस्थं घृतं दधि ॥ ४५ ॥

पाच्यं घृतावशेषं तं कर्षार्द्धमनुपानतः ।

वातगुल्मश्च शूलश्च आनाहश्च विनाशयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, ताँवेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, गंधक, सोनामाखी और जवाखार, इन सबको एकत्र कर एकदिन चीतेके रसमें खरल करें । इसको प्रतिदिन तीन रत्तीभर पानमें रखके खावे तो यह शिखिवाडवरस वातगुल्मको निश्चय नष्ट करदेवै । हींग, कालानोन, सोंठ, पीपल, मालीभिरच, सैधानोन, अनार और अजवायन, प्रत्येकका चूर्ण दो तोले, घृत दोसेर, दही दोसेर, इन सबको एकत्रकर यथाविधिसे पकावे, जब केवल घृतही शेष रहै तब उतारलेवै । इसको एक तोलाभर शिखिवाडवरसके ऊपरसे पीवे तो वातगुल्म, शूल और आनाह रोग दूर होवै ॥ ४३-४६ ॥

अथोड्डामररसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधसूतांशमृतताम्रकम् ।
 पंचांशंशाकवृक्षस्यद्रवैर्मर्द्यदिनद्वयम् ॥ ४७ ॥
 सर्पाक्ष्योऽथद्रवैश्चाहिरुद्धालघुपुटेपचेत् ।
 पंचधाभूधरेवाथचूर्णजैपालतुल्यकम् ॥ ४८ ॥
 त्रिगुंजंभक्षयेच्चाज्यैःपित्तगुल्मप्रशान्तये ।
 द्राक्षाहरीतकीकाथमनुपानंप्रकल्पयेत् ॥
 रसउड्डामरोनामपित्तगुल्मंनियच्छति ॥ ४९ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एक भाग, शुद्धगंधक एकभाग और ताँबेकी भस्म चौथाई भाग, इन सबको पांचभाग शाकवृक्षके रसमें दो दिन और सर्पाक्षीके रसमें एक दिन खरल करे, फिर सम्पुटमें रख पांच लघुपुट देवे, अथवा पांचवार भूधरयंत्रमें पकावे । पश्चात् शीतल होनेपर पीसके चूर्ण करले और चूर्णकी बराबर शुद्ध जमालगोटा मिलादेवे । इसको तीन गुंजाप्रमाण घीके साथ खावे और ऊपर दाख और हरडोंके काथका अनुपान करे तो यह उड्डामरनामवाला रस पित्तगुल्मको नष्ट करे ॥ ४७-४९ ॥

अथ नाराचरसः ।

ताम्रसूतंसमंगंधजैपालत्रिफलासमम् ।
 त्रिकटुकंपेषयेत्क्षौद्रैर्निष्कंगुल्महरंलिहेत् ॥
 उष्णोदकंपिबेच्चानुनामचोयंमहारसः ॥ ५० ॥

अर्थ—ताँबा, पारा, गंधक जमालगोटा, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन सबको समान भाग लेकर सहतमें पीसलेवे, इसको चारमासेभर भक्षण करे और ऊपरसे गरमजल पीवे तो यह नाराचरस-गुल्मरोगको निश्चय दूर करदेताहै ॥ ५० ॥

अथ विद्याधररसः ।

गंधकंतालकंताप्यमृतताम्रमनःशिला ।
 शुद्धसूतंचतुल्यांशमर्दयेद्भावयेदिनम् ॥ ५१ ॥
 पिप्पल्यास्तुकपायेणवज्रीक्षीरेणभावयेत् ।

निष्काद्धंभक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मं प्लीहं विनाशयेत् ॥

रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रञ्च पिबेदनु ॥ ५२ ॥

अर्थ—शुद्ध गंधक, शुद्ध हरिताल, शुद्ध सोनामाखी, तौबेकी भस्म, मैन्-
शिल और शुद्ध पारा यह सब समान भाग लेकर पीपलके काढ़ेमें और थूहरके
दूधमें भावना देकर एक दिन खरल करै । इसको दो मासे भर सहतके साथ
खावे और ऊपरसे गोमूत्र पीवे तो यह विद्याधरनावाला रस गुल्म और प्लीहादि
रोगोंको दूर करै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ गुल्मोदरादिहरचूर्णम् ।

मृतं मृतं मृतं ताम्रं ताप्यं कांचनीं मर्दयेत् ।

अर्कवर्षीरसेनैव दिनान्ते वटकीकृतम् ॥ ५३ ॥

गुजैकं गुडसंयुक्तं तथा गंधसुवर्चलम् ।

निष्कैकं गुल्मशांत्यर्थं रसः कांचनमोहनः ॥ ५४ ॥

विशालाकटुकामुस्तं कुष्ठमिन्द्रियवंसमम् ।

चूर्णयेद्देवदारुञ्च कर्षैकं मधुना लिहेत् ॥

गुल्मोदरज्वरस्तापमनुपानं निहन्त्यलम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, तौबेकीभस्म, सोनामाखी, हलदी, गंधक और काला-
नोन, इन सबको एकत्रकर आकके दूधमें एकदिन खरलकर रात्रिमें एक एक
गुंजाभरकी गोली बनालेवै । चारमासे भर इसको गुड़के साथ भक्षण करै ।
और ऊपरसे इन्द्रायण, कुटकी, नागरमोथा, कूठ, इन्द्रजौ और देवदारु इनका
चूर्ण सहतमें मिलाकर दो तोले भर खावे तो गुल्म, उदररोग, ज्वर और दाह
दूर होवै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ नाराचरसगुणः ।

पित्तश्लेष्मोत्थिते गुल्मे देयो नाराचकोरसः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पित्तश्लेष्मसे उत्पन्न हुए गुल्मरोगमें नाराचरस देना चाहिये ॥ ५६ ॥

अथ रक्तप्रदररोगहरोपायः ॥

पारदं शिखितुत्थञ्च जैपीलं गंधकं समम् ।

आरग्वधफलं कृष्णावज्रीदुग्धेन मर्दयेत् ॥ ५७ ॥

धात्रीफलरसैःखात्स्त्रीणांरक्तदरंहरेत् ॥

चिंचाफलरसंचाशुपथ्यंदध्योदनंहितम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—पारा, नीलाथोथा, जमालगोटा, गंधक, अमलतास और पीपल इन-सबको एकत्रकर थूहरके दूधमें खरलकरै, फिर इसको आमलोंके रसमें मिला-कर खानेसे स्त्रियोंका रक्तप्रदरोग दूर होताहै इसके ऊपर इमलीका रस और दहीके साथ भातका भक्षण करना पथ्य है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथान्योपायः ।

रक्तदरंहरेत्सैवकठिनलेपनेनतु ॥ ५९ ॥

अर्थ—खडियामिट्टीका पेटपरलेप करनेसे भी रक्तप्रदरोग दूर होताहै ॥ ५९ ॥

अथ रुधिरस्त्राविप्रदरचिकित्सा ।

रुधिरेतुप्रवृत्तेऽपिरक्तपित्तहरीक्रिया ।

कार्यावातरुजार्तानांसर्ववातहरीक्रिया ॥ ६० ॥

अर्थ—रक्तस्त्राव अधिक होय तो रक्तपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । और स्त्रियोंके उदरमें वातजनित वेदना होय तो सर्ववातनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ ६० ॥

अथ धात्रीषट्पलकंवृतम् ।

• धात्रीफलानांस्वरसैःषट्पलंविपचेद्वृतम् ।

शर्करासैन्धवोपेतंतद्धितंसर्वगुल्मिनाम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—आमलोंके रसमें चौबीस तोले घृतको पकावे, फिर इसमें मिश्री और सेंधानोन मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके गुल्म रोग दूर होतेहैं ॥ ६१ ॥

अथ सशूलगुल्महरवचादिचूर्णम् ।

वचाहरीतकीहिंसैन्धवंसाम्लवेतसम् ।

यवक्ष रंयवानीञ्चपिबेदुष्णाम्बुनाभृशम् ॥ ६२ ॥

एतद्विगुल्मनिचयंसशूलसपरिग्रहम् ।

मिनरि सप्तरात्रेणवहेर्वृद्धिङ्करोतिच ॥ ६३ ॥

अर्थ—वच, हरड, हींग, सेंधानोन, अमलबंत, जवाखार और अजवायन इन सबको समान भागले चूर्णकर गरम जलके साथ पीनेसे—शूलसहित गुल्मरोग सात दिनमें दूर होजाताहै और अग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ हिंवाद्यंचूर्णम् ।

हिंगुत्रिकटुकवचाजमोदाधन्याजगन्धादाडिमतिन्तिडी-
कपाठाचित्रकचव्यसैन्धवविडसौवर्चलयवाक्षारस्वर्जि-
काः । पिप्पलीमूलाम्लवेतसशठीपुष्करहपुषाजाजी-
पथ्याःसंचूर्ण्यमातुलुङ्गाम्लेनबहुशःपरिभाव्याक्षमात्रागु-
टिकाःकारयेत् । ततःप्रातरेकैकांभक्षयेत् । एषखलुयो-
गोगुल्मश्वासकासचोरकहृद्रोगपार्श्वोदरवस्तिशूलानाह-
मूत्रकृच्छ्रार्शःप्लीहापाण्डुरोगान्हन्ति । दूलीप्रतिदूल्या-
श्चात्थमुपयुज्यते ।

अर्थ—हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, अजमोदा, धनियाँ, तिलवन, अनार, इमली, पाद, चीता, चव्य, सैन्धानोन, विरियासंचरनोन, कालानोन, जवाखार, सज्जीखार, पीपलामूल, अमलवेंत, कचूर, पोहकरमूल, हाऊबेर, जीरा और हरड़ इन सबको एकत्र पीस चूर्णकर विजौरे नीबूके रसकी बारबार भावना देकर दोदो तोले भरकी गोली बनालेवै । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खावै । इससे गुल्म, श्वास, खांसी, अरुचि, हृदयरोग, पार्श्वशूल, उदररोग, वस्तिशूल, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, बवासीर, प्लीहा और पाण्डुरोग दूर होजाताहै ॥ •

अथ कहाराद्यंघृतम् ।

कहारमुत्पलंपन्नकुमुदंमधुयष्टिका ।

पक्वाम्बुनाथतत्क्राथेजीवनीयोपकल्कितम् ॥ ६४ ॥

घृतंपक्वनवंपीतंरक्तपित्तासगुल्मनुत् ।

दाहतृष्णाज्वरच्छर्दियोनिदोषहरंपरम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—गायका घी दोसेर, कल्कके लिये जीवनीयदशक आध सेर और काथके लिये सफेदकमल, नीलोत्पल, कमल, कुमोदिनी और मुलेठी दोसेर, जल ब-
चीस सेर, शेष आठ सेर रखवै । सबको मिलाकर यथाविधिसे-घृतको सिद्ध
करै । इस घृतके पीनेसे-रक्तपित्त, रक्तगुल्म, दाह, तृषा, ज्वर, वमन और यो-
निके विकार दूर होतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ गुल्मिनोऽपथ्यम् ।

वल्लूरंमूलकंमत्स्याञ्छुष्कशाकानिवैदलम् ।

नखादेच्चानुपंगुल्मीमधुराणिफलानिच ॥ ६६ ॥

इति गुल्मरोगाऽध्यायः ।

अर्थ—शुष्कमांस, मूली, मछली, शुष्कशाक, वैदल अन्न अनूपदेशके जीवोंका मांस, और मधुफल यह सब गुल्मरोगवाले मनुष्योंको कदापि भक्षण करने नहीं चाहियें ॥ ६६ ॥

इति गुल्मरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ हृद्रोगचिकित्सा ।

हृद्रोगिणंस्नेहयित्वावमयेद्रेचयेत्तथा ।

सुचिरोत्थंलंघयेच्चहृद्रोगंवातिकंविना ॥ १ ॥

पिप्पल्येलावचार्हिगुयवक्षारोऽथसैधवम् ।

सौवर्चलमथोशुण्ठीचाजमोदावचूर्णितम् ॥ २ ॥

फलधान्याम्बुकौलत्थंदधिमद्यासवादिभिः ।

पाययेच्छुद्धदेहश्चस्नेहेनान्यतमेनवा ॥ ३ ॥

अर्थ—हृदयरोगीको स्निग्धकरके वमन और विरेचन करावे, और वातिक हृदयरोगको छोड़कर बाकीके बहुत पुराने सर्वप्रकारके हृदयरोगोंमें लंघन कराने चाहियें । पीपल, इलायची, हांग, जवाखार, संधानोन, कालानोन, सांठ और अजमोदा इन सबका एकत्र चूर्णकर त्रिफलेके काढेके साथ, काँजीके साथ, कुलथीके यूषके साथ, दधि, मर्दिग, आसव अथवा अन्य किसी-स्नेहके साथ वमन विरेचनादिकें द्वारा शुद्धदेहवाले हृदयरोगीको पान करावे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ हृद्रोगहरोपायः ।

शीतप्रदेहाःपरिसेचनानितथाविरेकोहृदिपित्तदुष्टे ।

द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैःस्याच्छुद्धेचपित्तेह्यनुपानकंस्यात् ४

अर्जुनस्यत्वचासिद्धंक्षीरंयोज्यंचपैत्तिके ।

सितयापंचमूल्याचबलयामधुकेनवा ॥ ५ ॥

घृतेनदुग्धेनगुडाम्भसावापिबन्तिचूर्णंकुम्भस्यतोये ।

हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तहृत्वाभवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ६ ॥

अर्थ—पैत्तिक हृदयरोगमें शीतललेप, जलका सींचना, और विरेचन यह उपचार करै। वमन, विरेचन आदिसे शुद्ध किये हुए हृदयरोगीको दाख, मिश्री, सहत और फालसा इनको एकत्रकर खानेको देवै। अर्जुनकी छाल, अथवा पंचमूल या मुलैठी, अथवा खिरैटीके साथ दूधको औटाकर मिश्री मिलाके पीनेसे पित्तज हृदयरोग दूर होताहै। घी, दूध, या गुड़के शरबतके साथ अर्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको पीनेसे हृद्रोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तरोग दूर होताहै और मनुष्य दीर्घजीवी होजातेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ हृद्रोगहरचूर्णम् ।

वचानिम्बकषायाभ्यांवान्तंहृदिकफोत्थिते ॥ ७ ॥

गोधूमककुम्भचूर्णंछागपयोगुडसर्पिषापक्वम् ।

मधुशर्करयाविमिश्रंशमयतिहृद्रोगमुद्धतपुंसाम् ॥ ८ ॥

दशमूलीकषायास्तुसयवक्षारसैन्धवम् ।

कासंश्वासंचहृद्रोगंगुल्मशूलञ्चनाशयेत् ॥ ९ ॥

हिंगूयगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।

पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यंयवाम्भसाशूलहृदामयघ्नम् १० ॥

अर्थ—कफज हृदयरोगमें वच और नीमके काथके द्वारा वमन करावे। गेहूँ और कोहका चूर्ण बकरीके दूधमें गुड़ और घृत डालके पकावे, फिर इसमें सहत और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे प्रबल हृदयरोग दूर होताहै। दशमूलके काढ़ेमें जवाखार और सैंधानोन मिलाकर पीनेसे—खाँसी, श्वास, हृदयरोग, गुल्म और शूलरोग, दूर होताहै। हींग, वच, विरियासंचरनोन, सोंठ, पीपल, कूठ, हरड़, चीता, जवाखार, कालानोन और पोहकरमूल इनका चूर्ण जौके काढ़ेके साथ पीनेसे—शूल और हृदयरोग दूर होताहै ॥ ७—१० ॥

अथ वल्लभघृतम् ।

मुख्यंशतार्द्धञ्चरीतकीनारौवर्चलस्यापिलक्ष्णम् ।

पकंधृतं वल्ल-केतिनाम्ना हृद्रोगशूलोदरमारुतघ्नः ॥११॥

मुख्यप्रशस्तम् ।

अर्थ—हरड़ पचास, कालानोन आठ तोले, इनके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे हृदयरोग, शूल, उदररोग और वातको यह वल्लभघृत दूर करै है ॥११॥

अथ पाठाद्यंचूर्णम् ।

पाठावचाशठीक्षारपथ्याग्निव्योषदाडिमम् ।

महार्द्रकश्चत्रिफलाकुष्ठयासाम्लवेतसम् ॥ १२ ॥

मातुलुंगस्यमूलश्चचूर्णमुष्णाम्बुनापिबेत् ।

मद्येनवाजयेद्गुल्मंहृद्रोगंशूलमाशुतत् ॥ १३ ॥

अर्थ—पाद, बच, कचूर, जवाखार, हरड़, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, अनार, महार्द्रक (इमली), हरड़, बहेडा, आमला, कूठ, जवासा, अमलबेत और विजोरेकी जड़, इनका एकत्र चूर्णकर गरमजलके अथवा मदिराके साथ पीनेसे गुल्म, हृदयरोग और शूलका नाश होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ श्वदंष्ट्राद्यंघृतम् ।

श्वदंष्ट्रोशीरमंजिष्ठाबलाकाश्मर्यकट्फल्गुम् ।

दर्भमूलंपृश्निपर्णीपलाशर्षभकौस्थिरा ॥ १४ ॥

पलिकान्साधयेत्तेषां रसेक्षीरचतुर्गुणे ।

कल्कैः स्वगुत्तर्षभकौजीवन्तीजीवकैः समैः ॥ १५ ॥

शतावर्याद्विमृद्नीकाशर्कराश्रावणीविसैः ।

प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ १६ ॥

मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शः कासश्वासक्षयापहः ।

बल्यः स्त्रीमद्यभावाध्वक्षीणानां बलमासदः ॥ १७ ॥

श्रावणीमुण्डी विसंमृणालम् ।

अर्थ—गायका घी दोसेर, दूध आठ सेर, काथके लिये गोखुर, खस, भँजीठ, खिरंटी, कुम्भेर, श्योनाक, कुशकीजड़, पृश्निपर्णी, डाक, ऋषभक और शालिपर्णी, यह प्रत्येक चार चार तोले, पाकके वास्ते जल सोलह सेर, शेष चार सेर और कल्कके लिये कौंछ, ऋषभक, जीवन्ती, जीवक, सतावर, दाख,

किसमिस, मिश्री, गोरखमुण्डी और कमलकी नाल प्रत्येक दोदो तोले लेंवै, सबको मिलाकर यथाविधिसे घृत सिद्धकरै । इस घृतको सेवन करनेसे वातपै-
त्तिक हृदयरोग, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह बवासीर, खाँसी, श्वास और क्षयरों-
गका क्षय होताहै । अत्यन्त बलकी वृद्धि होतीहै । यह घृत-मैथुन, मद्यपान,
भारबहन (बोझढोना या बोझ लादना) और पथभ्रमण (मार्ग चलना) के
द्वारा क्षीण मनुष्योंके बल और मांसको बढ़ाताहै ॥ १४-१७ ॥

अथ बलाद्यघृतम् ।

घृतंबलानागबलार्जुनाम्बुसिद्धंसयष्टीमधुकल्कपादम् ।

हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक्शमयत्युदीर्णम् १८॥

अम्बु काथः ।

अर्थ-गायका वी एकसेर, खिरैटी, गंगेरन और अर्जुनका काढा चार सेर,
और मुलैठीका कल्क पावभर, लेंवै, सबको मिलाकर घृतको सिद्ध करै । यह
घृत-हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त, खाँसी, वातरक्त, इनको दूर करैहै ॥ १८॥

अथार्जुनघृतम् ।

पार्थस्यकल्कस्वरसेनसिद्धंशस्तंघृतंसर्वहृदामयेषु १९॥

स्वरसाभावे काथः ।

अर्थ-अर्जुनके कल्क और स्वरससे सिद्धकियाहुआ वी सर्वप्रकारके हृ-
यरोगोंमें देना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ पंचसाररसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधधात्रीफलद्रवैर्दिनम् ।

यष्टीखज्जूरद्राक्षाणांकाथेनमर्दयेद्दिनम् ॥ २० ॥

पंचसाररसोनामभक्षयेन्मापमात्रकम् ।

धात्रीचूर्णंशिलाज्जुपित्तहृद्रोगजिह्वेत ॥ २१ ॥

अर्थ-पारा और गंधक समानभाग लेकर आमलोंके रसमें एकदिन खरल
करै. फिर मुलैठी, खजूर और दाखोंके काढेमें एकदिन खरल करै तो पंचसा-
रनामवाला रस सिद्ध हो । इसको एक मासाभर खावे और ऊपरसे आमलोंका
चूर्ण मिश्री मिलाकर भक्षण करै । इससे पित्तज हृदयरोग दूर होताहै ॥ २०॥ २१॥

अथ हृदयार्णवरसः ।

शुद्धसूतसमंगंधमृतताम्रद्रयोःसमम् ।

मर्दयेत्रिफलाद्रावैःकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ २२ ॥

चणमात्रांवटीखादेद्रसोऽयंहृदयार्णवः ।

काकमाचीफलंशुष्कंत्रिफलाफलसंयुतम् ॥ २३ ॥

द्वात्रिंशच्चपलंतोयंकाथमष्टावशेषकम् ।

अनुपानंपिबेच्छान्त्यैहद्रोगेचकफोत्थिते ॥ २४ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एकभाग, शुद्धगंधक एकभाग, ताँबेकी भस्म दोभाग, इनको एकदिन त्रिफलेके काथमें और एकदिन मकोयके रसमें खरल करके चनेकी वरावर गोली बनालेवै । एक गोली प्रतिदिन खावे और ऊपरसे मकोयके सूखेपत्ते और त्रिफलेको बत्तीस पल जलमें अष्टावशेष काढ़ा कर पीवे तो कफज हृदयरोग दूर होवे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ हृद्रोगहरोपायः ।

चतुर्विंशतिपलंक्षीरंगवामथपषेच्छनैः ।

द्विरष्टपलकंयावत्तावत्कुर्यात्सुशीतलम् ॥ २५ ॥

कर्पेकंपिप्पलीचूर्णंक्षिप्वापेयंहितंपरम् ।

सर्वदोषोत्थहृद्रोगंज्वरंश्वासंक्षयंजयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—चीवीमपल गायके दूधको मन्दाग्निसे धीरे धीरे पकावे, जब आधा दूध आटाकर शेष रहे तब उतारकर शीतल करले, फिर इसमें दो तोले पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो सर्वप्रकारके हृदयरोग, ज्वर, श्वास और क्षयरोग दूर होवें ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथोरुस्तम्भादिहरोपायः ।

निष्कत्रयंशुद्धभूतनिष्कद्वादशगंधकम् ।

गुंजाबीजश्चपण्णिकंनिम्बबीजंजयातथा ॥ २७ ॥

प्रत्येकंनिष्कमात्रन्तुसमंजैपालबीजकम् ।

जयाजंबीरिधत्तुरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ २८ ॥

मर्द्यसर्वरसंकुर्याद् घृतैर्गुंजाद्वयलिहेत् ।

गुंजाभद्रसोनामहिं गुसैनधवसंयुतम् ॥

शमयत्येव किंचित्रमूरुस्तम्भादिदुःसहम् ॥ २९ ॥

अर्थ—शुद्धपारा बारहमासे, शुद्धगंधक अड़तालीस मासे, चोंटली चौबीसमासे, नीमके बीज चारमासे, भाँग चारमासे, जमालगोटा चारमासे, इन सबको एक-त्र कर जयन्ती, जम्भीरी नीबू, धतूरा और मकोयके रसमें एक एक दिन खरल करै। इसको दो गुंजाभर घृत, हींग और सैंधेनोनके साथ सेवन करनेसे—ऊरु-स्तम्भादिरोग दूर होतेहैं ॥ २७-२९ ॥

अथ हृदयरोगेलेपः ।

अर्कक्षीरेण सिन्धूत्थं लेपो वक्षसि दापयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ—आकके दूधमें सैंधानोन पीसकर वक्षःस्थलमें लेप करनेसे हृदयरोग दूर होताहै ॥ ३० ॥

अथ गुंजाभद्ररसः ।

पद्मकेशरकंद्राक्षानिम्बबीजं जया तथा ।

तुल्यं चतुर्गुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥

क्षीरशेषं पचेत्सर्वसक्षौद्रं पाययेद्भिषक् ।

उदराणि क्षतं वक्षो हृद्रोगं रक्तपित्तनुत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कमलकी केशर, दास, नीमके बीज और जयन्ती यह सब समानभाग. इससे चौगुना दूध और दूधसे चौगुना जल मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पचावै, जब दूध बाकी रहै तब उतारकर छानलेवै, पश्चात् इसमें सहत मिलाकर पीनेसे उदररोग, क्षत, वक्षरोग, हृदयरोग और रक्तपित्त रोग दूर होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ पुष्करजचूर्णोपश्लोः ।

चूर्णपुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् ।

हृच्छूलश्वासकासघ्नं क्षयहिकानिवारणम् ॥ ३३ ॥

इति हृद्रोगाऽध्यायः ।

अर्थ—पोहकरमूलके चूर्णमें सहत मिलाकर चाटनेसे हृदयशूल, श्वास, खाँसी, क्षय और हिकाररोग दूर होताहै ॥ ३३ ॥

इति हृद्रोगाधिकारः समाप्तः ।

अथोरोग्रहाधिग्रहविहिता ।

अत्यभिस्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात् ॥ १ ॥

स्वासंमांसयकृत्प्लीहोःसद्योवृद्धियदागतम् ॥ १ ॥

उरोग्रहंतदाकुक्षौकुरुतःकफमारुतौ ।

संस्तम्भंसज्वरंघोरंरूक्षंस्पर्शासहंगुरुम् ॥ २ ॥

आध्मानारुचिहृच्छोथवातविण्मूत्ररोधिता ।

तंत्रारोधकशूलानितत्रलिंगानिनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—अत्यन्तः अभिष्यन्दि पदार्थ, भारी अन्न और सूखे तथा दुर्गन्धित मांसको भक्षण करनेसे—मांसरुधिरके संयोगसे यकृत और प्लीहा जिससमय वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, उसीसमय कफ और वात कुक्षिमें जाकर उरोग्रहरोगको उत्पन्न करतेहैं । स्तम्भ, ज्वर, रूक्षता, स्पर्शको न सहमके, गुरुता, आध्मान, अरुचि, हृदयमें सूजन अधोवायुका अवरोध, मलमूत्रकारोध, तन्द्रा और शूल यह सब लक्षण उरोग्रहरोगमें उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथोरोग्रहरोगहरोपायः ।

अत्राशुस्वेदनंकुर्यादहनंरक्तमोक्षणम् ।

तीक्ष्णैर्निरूहणैर्वैकंक्रमालंघनमादरात् ॥ ४ ॥

पुत्रजीवकशिग्रुत्वकसूर्यवर्त्तदलोद्भवाः ।

रसाणकैकशःकोष्णाद्विशोवारामठान्विताः ॥ ५ ॥

सपंचलवणाःपेयास्त्रिवृद्धडसकल्किताः ।

तन्निवृत्तंयथाशास्त्रंमूत्रतैलसुरासवैः ॥ ६ ॥

चव्याम्लवेतसक्षारान्सरामठसचित्रकान् ।

पिबेत्तैलारनालाभ्यामुरोग्रहनिवृत्तये ॥ ७ ॥

यथातुरस्यात्रकृतस्यकर्मव्याधेर्विगोधोनभवेन्मनागपि ।

यथाबलंवीक्ष्यचशुद्धविग्रहंतथाविधंपथ्यमपिप्रयोजयेत्

इति उरोग्रहनिदानचिकित्साधिकारः ।

अर्थ—इस उरोग्रह रोगके उत्पन्न होनेही म्वेद, लोहादिकी शलाकाके ड्राग दहन, रक्तमोक्षण, तीक्ष्णद्रव्योंके ड्राग वास्तिकर्म और लंघन यह क्रमसे उप-

चार करै । पतजिया, सैजिनेकी छाल, हुलहुलके पत्ते इनमें एकके या दोके रसको गरम कर हींग और पांचों नोन मिलाकर पीनेसे उरोग्रहरोग शान्त होताहै, अथवा निसोत और गुड एकत्र कर गोमूत्र, तेल, सुरा या आसवके साथ पीसकर सेवन करनेसे—वा चव्य, अम्लबंत, जवाखार, हींग और चीता समानभाग लेकर तेल और कांजीके साथ पान करनेसे—उरोग्रह दूर होताहै । उरोग्रहरोगीको बलके अनुसार वमन विरेचनादिके द्वारा शुद्धकर रोगके अविरोधी पथ्य देवै ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति उरोग्रहाधिकारः समाप्तः ।

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

स्वेदाभ्यंजनसेकादिनिरूहोत्तरवस्तयः ।

स्थिराद्यैर्मारुतघ्नैश्चकाथाद्यावातकृच्छ्रणाम् ॥ १ ॥

अर्थ—स्वेद, अभ्यंग, सेकादि, निरूहवस्ति, उत्तरवस्ति और वातनाशक शालिपर्णीआदिका काथ, वातज मूत्रकृच्छ्ररोगवाले मनुष्योंको हितकारीहैं ॥ १ ॥

अथ मूत्ररोधहरोपायः ।

तैलकुचकमूलंपिष्टाव्युपितेनवारिणातस्य ।

स्वरसोनिपीतमात्रःशमयतिमूत्रस्यसंरोधम् ॥ २ ॥

अर्थ—तैलकुचक (कन्दूरी) की जड़को वासी जलमें पीसकरके उसके स्वरसको पीनेसे मूत्ररोध दूर होताहै ॥ २ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रहरोपायः ।

अश्वगंधामृताशुण्ठीधात्रीगोशुरजंजलम् ।

वातजंमूत्रकृच्छ्रश्चशूलश्चाशुविनाशयेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—असगंध, गिलोय, सांठ, आमला और गोखरुवांका काथ पीनेसे वातज मूत्रकृच्छ्र और शूल दूर होताहै ॥ ३ ॥

अथान्योपायः ।

एरण्डतैलसिंधूत्थरुबुक्काथंसवातिके ॥ ४ ॥

अर्थ—अरंडके काथमें अंडीका तेल और सेंधानोन डालकर पीनेसे वातज मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ४ ॥

अथापरोऽपि ।

एवार्बुबीजकल्गेवाकांजिकेनच सैन्धवः ॥ ५ ॥

अर्थ—ककडीके बीजोंको कांजीमें पीस सैन्धानोन डालकर पीनेसे वातज मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ॥ ५ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्ररोगोपचारकथनम् ।

सेकावगाहाःशिशिरप्रदेहाःस्नेहोविधिर्वस्तिपयोविकाराः ।

द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्युतैश्चकृच्छ्रेषुपित्तप्रभवेष्कार्या ॥ ६ ॥

अर्थ—सेक, अवगाहन, शीतललेप, स्नेह, बस्तिकर्म, दूधके विकार (माखन मट्टा इत्यादि) और दाखोंका रस, विदारीकन्दका रस और ईखका रस यह सब उपचार पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें करने चाहियें ॥ ६ ॥

अथ तृणपंचमूलम् ।

कुशःकाशःशरोदर्भइक्षुश्चेतितृणाह्वयम् ।

पित्तकृच्छ्रहरंपंचमूलंबस्तिविशोधनम् ॥

एतत्पीतंपयःसिद्धमेद्रगंहन्तिशोणितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—कुश, काश, डाभ, रामसर, और ईख, इन पाँचोंकी जड़को तृणपंचमूल कहतेहैं । यह—पित्तके मूत्रकृच्छ्रको दूर करेहै और बस्तिको शुद्ध करेहै । इसी पंचमूलको दूधमें आँटाकर पीनेसे लिंगसे रुधिरका निकलना बन्द होजाताहै ॥ ७ ॥

अथशतावर्यादिकाथः ।

शतावरीकासकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालूककशेरुकाणाम् ।

काथं सुशीतंमधुशर्कराभ्यांपिबअयेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ८ ॥

अर्थ—शतावर, कास, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, भैंसीडे और कशेरू, इनका काथ करै, जब ठंडा होजाय तब उसमें सहत और मिश्री मिलाकर पीवे तो पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ॥ ८ ॥

अथ हरीतक्यादिकाथः ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपापाणजिद्वित्वयव सकानाम् ।

काथंपिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तंकृच्छ्रेसदाहसरुजेविवन्धे ९ ॥

पाषाणजित्कुलत्थम् ।

अर्थ—हरड़, गोरुखू, अमलतास, कुलथी, बेल और जवासा, इनके काढ़ेमें सहत डालकर पीनेसे दाह और पीड़ायुक्त मूत्रकृच्छ्ररोग, दूर होताहै ॥ ९ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रहराणि ।

यवान्नक्षारतीक्ष्णोष्णतैलाज्यंतित्तकैःशृतम् ।

मूत्रेणसुरयावापिकदलीस्वरसेनवा ॥ १० ॥

कफपित्तविनाशायश्लक्ष्णं पिष्ट्वात्रुटिंपिबेत् ।

त्रुटिं सूक्ष्मैलाम् ।

शुण्ठीगोक्षुरतोयंवाकफकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ११ ॥

यवक्षारंप्रक्षिपन्तिबृद्धाः ।

बृहतीधावनीपाठायघ्नीमधुकलिंगकाः ।

पाचनीयोबृहत्यादिकृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ १२ ॥

धावनी पृश्निपर्णी ।

गुडेनमिश्रितंक्षीरंकदुष्णंकामतःपिबेत् ।

मूत्रकृच्छ्रेषुसर्वेषुशर्करावातरोगनुत् ॥ १३ ॥

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः ।

निघ्नन्तिपीतामधुनाश्मरीञ्च संप्राप्तमृत्योरपिमूत्रकृच्छ्रम् १४

आसन्नमृत्योरित्यर्थः ।

शिलातुल्यायवक्षारःसर्वकृच्छ्रनिवारणः ।

कण्टकारीरसोवापिसक्षौद्रःकृच्छ्रनाशनः ॥ १५ ॥

अर्थ—यवान्न, खार तीक्ष्णपदार्थ, उष्णद्रव्य, तेल, घृत और कडुवे पदार्थ इनको औटाकर, अथवा गोमूत्र या मदिरा वा केलेके रससे छोटी इलायचीको बारीक पीसकर पीनेसे कफ और पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै । सोंठ और गोरुखूओंके काथमें जवाखार डालकर पीनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै । बृहती, पृश्निपर्णी (किसीके मतसे कटेरी), पाद, मुलैठी और इन्द्रजौ इनका काढ़ा पीनेसे त्रिदोषजन्य मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै । इसको बृहत्यादिपाचन कहतेहैं । किंचित्गरमदूधमें गुड़ मिलाकर पीवे तो सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र, शर्करा, मेह

और वातरोग दूर होवै । गोखरू, अमलतास, डाभकी जड, कांसकी जड, जवा-
सा, पाषाणभेद और हरड़, इनके काथमें सहत मिलाकर पीनेसे असाध्यमूत्रकृ-
च्छ और पथरीरोग दूर होताहै । मैनशिल और जवाखारको बराबर भाग
मिलाकर सेवन करनेसे—सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होतेहैं । कटेरीके रसमें सहत
मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होताहै ॥ १०—१५ ॥

अथ सरक्तमूत्रकृच्छ्रविचारः ।

सरक्तेमूत्रकृच्छ्रेतुपैत्तिकंविधिमाचरेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—रक्तज मूत्रकृच्छ्रमें पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रोक्त विधि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

अथ शतावरीघृतंक्षीरञ्च ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकेषुसिद्धम् ।

सर्पिःपयोवासितयाविमिश्रंकृच्छ्रेषुपित्तप्रभवेषुकुर्यात् १७॥

अर्थ—शतावर, काश, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईखकी जड और आम-
ला इनके कल्कसे घृत या दूधको सिद्धकर मिश्री मिलाकर सेवनकरनेसे—पित्त-
जन्य मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होताहै ॥ १७ ॥

अथ त्रिकण्टकादिघृतम् ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेनसिद्धम् ।

सर्पिर्गुडाद्धाशयुतंप्रदेयंकृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ १८॥

अर्थ—गोखरू, अरण्ड, कुशादि, पंचमूल, मतावर, पेठा और ईख इनके स्वरस-
में घृतको सिद्ध करे, इस घृतसे आधाभाग गुड मिलाकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र
अश्मरी और मूत्राघात रोग दूर होवें । जो त्रिकण्टकादि औषधियोंका स्वरस
न मिले तो काथ लेना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ सुकुमारयमकरसायनम् ।

पुनर्नवामूलतुलादशमूलंशतावरी ।

बलातुरगगंधाचतृणमूलंत्रिकण्टकम् ॥ १९ ॥

विदारिगन्धानागाह्वगुडूच्यतिबलातथा ।

पृथग्दशपलान्भागानपांद्रोणेविपाचयेत् ॥ २० ॥

तेनपादावशेषेणघृतस्याद्धाढकंपचेत् ।

मधुकंशृंगवेरञ्चद्राक्षासैन्धवपिप्पली ॥ २१ ॥

द्विपलीनांपृथग्दद्याद्यवान्याःकुडवंतथा ।

त्रिंशद्गुडपलान्यत्रतैलमेरण्डकस्य च ॥ २२ ॥

प्रस्थंदत्त्वासमालोडयसम्यङ्मृद्वग्निनापचेत् ।

एतदीश्वरपुत्राणांप्राग्भोजनमनिन्दितम् ॥ २३ ॥

राक्षसजलमानानांबहुस्त्रीपतयश्चये ।

मूत्रकृच्छ्रेकटिस्तम्भेतथागाढपुरीषिणाम् ॥ २४ ॥

मेढ्रवंक्षणशूलेचयोनिशूलेनशस्यते ।

यथोक्तानाञ्चगुल्माणांवातशोणितिकाश्चये ॥

बल्यंरसायनंशीतंसुकुमारकुमारकम् ॥ २५ ॥

दशमूलस्यमिलित्वादशपलानि ।

एवंतृणपंचमूलस्य ।

द्रोणेजलद्रोणद्वयम् ।

द्रव्यतुलात्वंयस्यविद्यमानत्वात् ।

द्विपलीनांप्रत्येकंद्विपलप्रमाणम् ।

घृतस्यप्रस्थद्वयम् ।

घृततैलान्येकीकृत्यपाकः ।

अर्थ—गायका घी चारसेर, गुड तीसपल, अरण्डकातेल दो सेर काथकेलिये पुनर्नवेकी जड साढेवारहसेर, दशमूल, सतावर, खिरंटी, असगन्ध, तृणपंचमूल, गोखुरू, विदारीकन्द, नागकेशर, गिलोय और कंची प्रत्येक दशदशपल, जल चौसठसेर शेष सोलहसेर, कल्कके लिये महुवा, अदरक, दाख, संधानोन और पीपल प्रत्येक दोदो पल और अजवायन आधसेरलेवै, सबको विधिपूर्वक मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावै । यह राजा तथा राजाओंके समान और बहुत स्त्रीवाले मनुष्योंको सेवन करना चाहिये । मूत्रकृच्छ्र, कटिस्तम्भ, गाढपुरीष, मेढ्र, वंक्षणशूल, योनिशूल, गुल्म और वातरक्तको दूरकरैहै । बलकारक रसायन और शीतल है ॥ १९-२५ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रहरलौहम् ।

अयोरजःश्लक्ष्णचूर्णमधुनासहयोजितम् ।

मूत्रकृच्छ्रंनिहन्त्येतात्रिमिलोहैर्नसंशयः ॥ २६ ॥

अर्थ—तीनभाग लोहेके चूर्णमें एकभाग सहत मिलाकर सेवनकरनेसे निःसन्देह मूत्रकृच्छ्र रोग दूरहोताहै ॥ २६ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रान्तकोरसः ।

शतावरीरसैःपिष्ट्वामृतसूतञ्चताम्रकम् ।

शिखितुत्थंचतुल्यांशंदिनैकमर्दयेद्वटम् ॥ २७ ॥

तद्गोलंसार्षपेतेलेपाच्यंयामञ्चचूर्णयेत् ।

मूत्रकृच्छ्रात्मकःक्षौद्रैर्लिहेन्गुंजाचतुष्टयम् ॥ २८ ॥

भक्षयेन्नात्रसन्देहोमूत्रकृच्छ्रंनिहन्त्यलम् ।

तुलसीतिलपिण्याकंबिल्वमूलंतुषाम्बुना ॥

कर्पैकमनुपानेनसुरयावासुवर्चलैः ॥ २९ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, तांबेकीभस्म और शुद्ध नीलाथोथा, इनको समान-भाग लेकर एक दिन सतावरके रसमें खरल करें, पश्चात् इसका गाला बनाकर सरसांके तेलमें एक प्रहर तक पकावे, शीतल होनेपर चूर्ण करलेवे तो मूत्रकृच्छ्रान्तकनामवाला रस तैयार हो । इसको सहतमें मिलाकर चार रत्तीभर खावे तो निश्चय मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होवे । इसके ऊपर तुलसी, तिलोंकी खल और वेलकी जड़ इनको तुषाम्बुनामक कांजीमें मिलाकर एक कर्प प्रमाण पीवं अथवा सुरा में संधानोन डालकर पान करें ॥ २७-२९ ॥

अथ लघुलोकेश्वररसः ।

रसभस्मैकभागश्चचत्वारःशुद्धगंधकाः ।

पिष्ट्वावराटिकापूर्य्यारसपादेनटङ्कणम् ॥ ३० ॥

क्षीरपिष्टेनरुद्धास्यंभाण्डेरुद्धापुटेपचेत् ।

स्वांगशैत्यंविचूर्ण्याथलघुलोकेश्वररसः ॥ ३१ ॥

चतुर्गुजाघृतैर्देयंमरीचैःसहबुद्धिमान् ।

धात्रीमूलफलैःकल्कमजाक्षीरेणपाययेत् ॥

शर्कराभावितंवातुपीत्वाकृच्छ्रहरःपरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म एकभाग, शुद्ध गंधक चारभाग दोनोको एकत्र खरलकर कौडीमेंभर पारेसे चौथाई भाग सुहागा लेकर दूधमें पीसके कौडीके मुखको बंद कर कौडीको भांडमें रख भांडका मुख बंदकर पुट देवै, स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करले इसको लघुलोकेश्वर रस कहतेहैं । इसको चार रत्तीभर घी और कालीमिरचोंके साथ सेवन करै, पश्चात् आमलेकी जड़ और आमलोंको बकरीके दूधके अथवा बूराके साथ सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होवै ॥ ३०—३२ ॥

यष्टीगोक्षुरकंपथ्याविदारीचकसेरुकम् ।

कषायंससिताक्षौद्रंरसभस्मयुतंपिबेत् ।

मूत्रकृच्छ्रंहरत्याशुसप्ताहात्पित्तसंभवम् ॥ ३३ ॥

इति मूत्रकृच्छ्ररोगाध्यायः ।

अर्थ—मुलैठी, गोखुरू, हरड, विदारीकन्द और कशेरू इनके काढेमें मिश्री, सहत और पारेकी भस्म मिलाकर पीनेसे सातदिनमें पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होताहै ॥ ३३ ॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

मूत्राघातान्यथादोषंमूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।

वस्तिमुत्तरवस्तिश्चदद्यात्स्निग्धंविरेचनम् ॥ १ ॥

जलेनखदिरीबीजंमूत्राघाताश्मरीहरम् ।

मूलंरुद्रजटायाम्भुतक्रपीतंतदर्थकृत् ॥ २ ॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रंससैन्धवम् ।

धान्याम्बुयुक्तंपीत्वाचमूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ ३ ॥

तोयेनत्रिफलाकल्कःपातव्यःसैन्धवान्वितः ।

स्वरसःकण्टकार्याश्चकेवलोमधुनापिवा ॥ ४ ॥

गोधावत्यामूलंकथितंघृततैलगोरसैर्मिश्रम् ॥

पीतंनिरुक्तरिचाद्दिनत्तिमूत्रस्यसंघातम् ॥ ५ ॥

अर्थ—मूत्राघातरोगको दोषोंके अनुसार मूत्रकृच्छ्रनाशक औषधादिसे नष्ट करै । इसमें बस्ति, उत्तरबस्ति, कौर स्निग्ध विरेचन देवै । लुईमुईके बीजोंको जलमें पीसकर पीनेसे मूत्राघात और पथरीरोग दूर होताहै । शंकरजटाकी जड़को मटेके साथ पीनेसे भी मूत्राघात और पथरीरोग दूर होताहै, दो तोले ककड़ोंके बीजोंका कल्क कर सेंधानोन मिला कौंजीके साथ पीनेसे मूत्राघातरोग दूर होताहै । त्रिफलेको जलमें पीसकर सेंधानोन डालकर सेवनकरनेसे मूत्राघातरोग दूर होताहै । अथवा केवल कटेरीके रसमें सहत मिलाकर पीनेसे मूत्राघातरोग दूर होताहै । बटपत्रीकी जड़के काथमें घृत, तेल और गायकां दूध मिलाकर पीनेसे निःसन्देह बहुत शीघ्र मूत्राघातरोग दूर होजाताहै ॥ १-५ ॥

अथ चित्रकाद्यवृतम् ।

चित्रकंशारिवाचैवबलाकालानुशारिवा ।

द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथाचित्रानतम्भवेत् ॥ ६ ॥

तथैवमधुकंदद्यादद्यादामलकानिच ।

घृताढकंपचेदेतैःकल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ७ ॥

क्षीरद्रोणेजलद्रोणेतत्सिद्धमवतारयेत् ।

शीतंपरिस्रुतञ्चैवशर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ८ ॥

तुगाक्षीर्याश्चतत्सिद्धमतिमान्प्रतिमिश्रयेत् ।

ततोमितंपिबेत्कालेयथादोषंयथाबलम् ॥ ९ ॥

वातरेताःपित्तरेताःश्लेष्मरेताश्चयोभवेत् ।

रक्तरेताग्रन्थिरेताःपिबेदिच्छिन्नरोगिताम् ॥ १० ॥

जीवनीयञ्चवृष्यञ्चसर्पिरेतन्महागुणम् ।

प्रजाहितञ्चधन्यञ्चसर्वरोगापहंशिवम् ॥ ११ ॥

सर्वैरेतत्प्रयुज्जानंस्त्रीगर्भलभतेऽचिरात् ।

अमृद्दोषाञ्जयेच्चापियोनिदोषांश्चसंहतान् ॥

मूत्रदोषेषुसर्वेषुकुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥ १२ ॥

इति मूत्राघाताध्यायः ।

अर्थ—गायका घी आठसेर, दूध बत्तीस सेर, जल बत्तीस सेर और कल्कके लिये चीता, अनन्तमूल, खिरौंटी, हारसिंगार, दाख, पीपल, इन्द्रायन, मूषा-कर्णी, तगर, मुलैठी और आमला, प्रत्येक दो दो तोले लेंवै । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें जब सिद्ध होकर शीतल होजाय तब दो सेर मिश्री और दोसेर वंशलोचन मिला देंवै । दोष और बलको विचार कर इसका सेवन करें । यह घृत—वातसे, पित्तसे कफसे और रुधिरसे बिगड़ेहुए वीर्य तथा ग्रन्थियुक्तवीर्यके विकारोंको विनष्ट करैहै । जीवन, वीर्यवर्द्धक, महागुणवान् सन्तानको बढ़ानेवाला, धन्य, और सर्वरोगनाशक है । इसको सेवनकरनेसे स्त्री गर्भको धारण करतीहै, तथा रुधिरके विकार, योनिदोष और सर्व प्रकारके मूत्रके विकारोंको दूर करैहै ॥ ६-१२ ॥

इति मूत्रावाताऽधिकारः ।

अथ अश्मरीचिकित्सा ।

अश्मरीदारुणाव्याधिस्त्ववघातेनतंजयेत् ।

भिन्द्यात्प्रवृद्धंप्राग्रूपेमूत्रकृच्छ्रक्रमोमतः ॥ १ ॥

क्रमःस्नेहाभ्यङ्गादिः ।

अर्थ—अश्मरीरोग अत्यंत भयानक है । जब तक यह नवीन है तबतक अवघा-तसे नष्ट करें । जब बढजावे तब अस्त्रादिद्वारा भेदे । और इसके पूर्वरूपमें मूत्रकृच्छ्रोक्त स्नेहाभ्यंगादि उपचार करें ॥ १ ॥

अथ वातजन्याश्मरीलक्षणम् ।

विशीर्णधारंमूत्रस्यगंधंकृच्छ्रंज्वरोऽरुचिः ।

नातिपीतोभवेद्वातेसकृदल्पञ्चमूत्रति ॥ २ ॥

अर्थ—वातजन्यपथरीरोगमें अत्यन्त कष्टसेफटी धारवाला, दुर्गन्धयुक्त मूत्र उतरे, ज्वर, अरुचि और किंचित् पीतवर्ण बहुत थोडा मूत्र आवे, ॥ २ ॥

अथ वाताश्मरीरोगोपायः ।

वरुणस्यत्वचंशुण्ठीगोक्षुरंकाथयेज्जले ।

गुडक्षारयुतंपीत्वाचिरवाताश्मरींजयेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—वरुणकी छाल, सांठ और गोखरू, इनके काथमें गुड और जवाखार डालकर पीनेसे बहुतदिनोंकी वाताश्मरी दूर होतीहै ॥ ३ ॥

अथ शुंठ्यादिकाथः ।

शुण्ठ्यग्रिमन्थपाषाणशिशुवरुणगोक्षुरैः ।

सपथ्यारग्वधैःकाथःसर्हिगुक्षारसैन्धवः ॥

कृच्छ्राश्मरीकटीकोष्ठमेद्रवातापहोऽग्निदः ॥ ४ ॥

पाषाणः कुलत्थः ।

अर्थ—सोंठ, अग्णी, कुलथी, सेंजिना, बरना, गोखरू, हरड और अमलता-सके काढेमें हींग, सेंधानोन और जवाखार डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी, कटी, कोढ़ और मेद्रवात दूर होनाहै, तथा अग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ४ ॥

अथाश्मरीभेदनचूर्णम् ।

वरुणत्वक्कषायन्तुपीतश्चगुडसंयुतम् ।

अश्मरीपातयत्याशुवस्तिशूलश्चनाशयेत् ॥ ५ ॥

त्रिकण्टकस्यबीजानांचूर्णमाक्षिकसंयुतम् ।

अविक्षीरेणसप्ताहंपेयमश्मरिभेदनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—बरनाकी छालके काढेमें गुड भिलाकर पीनेसे पथरी पतित होजातीहै और वस्तिशूल नष्ट होताहै । गोखरुआंका चूर्ण सहतमें मिलाकर भेड़के दूधके साथ पीनेसे सातदिनमें पथरीरोग दूर होजाताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

मूत्ररोधेतुकर्पूरचूर्णलिंगेप्रवेशयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—मूत्ररोध होय तो कर्पूरका चूर्ण लिंगमें प्रवेश करे ॥ ७ ॥

स्त्रीणामपिप्रसंगेनशोणितंयस्यसिच्यते ।

मैथुनोपरमश्वास्यं वृंहणीयोहितोविधिः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसके अत्यन्त स्त्रीप्रसंगसे लिंगके द्वारा रुधिर गिरने लगे, उनके लिये मैथुनकी निवृत्ति और वृंहणीयविधि विशेष हितकारीहै ॥ ८ ॥

अथ वरुणाद्यं घृतम् ।

वरुणस्यतुलांक्षुण्णांजलद्रोणेविपाचयेत् ।

पादशोपंपारिस्ताव्यघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ९ ॥

वरुणंकदलीबिल्वंतृणजंपंचमूलकम् ।

अमृताचाश्मजंपथ्याबीजश्चत्रः पोद्भवम् ॥ १० ॥

शतपर्वातिलक्षारंपलाशक्षारमेवच ।

यूथिकायाश्चमूलानिकार्षिकाणिसमावपेत् ॥ ११ ॥

अस्यमात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाग्न्यपेक्षया ।

जीर्णेचास्मिन्पिबेत्पूर्वगुडंजीर्णन्तुमस्तुना ॥

अश्मरींशर्कराञ्चैवमूत्रकृच्छ्रश्चनाशयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—साढेबारह सेर बरनाकी छालको कूटकर बत्तीस सेर जलमें औटावै जब आठसेर जल शेष रहैतब उतारकर छानलैवै, पश्चात् इसमें दोसेर गायका घी, बरनाकी छाल, केला, तृणपंचमूल, बेल, गिलोय, शिलाजीत, हरड़, खीरेके बीज, दूब, तिलोंका खार, ढाकका खार और जुहीकी जड़ प्रत्येक दो दो तोले डालकर पकावे । देश, काल और अग्निका बलाबल विचारकर इसका सेवनकरै । इसके जीर्ण होनेपर पुराना गुड दहीके तोडके साथ खावे । यह घृत—पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्ररोगको दूर करै है ॥ १-१२ ॥

अथ शरादिपंचमूल्यादिघृतम् ।

शरादिपंचमूल्यावाकषायेणपचेद् घृतम् ।

प्रस्थंगोक्षुरकल्केनसिद्धमद्यात्सशर्करम् ॥

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नरेतोमार्गरुजापहम् ॥ १३ ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, शरादिपंचमूलका काथ आठसेर और गोखुरुओंका कल्क आधासेर, सबको मिलाकर घृतको सिद्धकरै । शीतल होनेपर अनुमानमाफिक मिश्री मिलादेवे । इसको सेवन करनेसे—पथरीरोग, मूत्रकृच्छ्र और मेदरोग दूर होताहै ॥ १३ ॥

अथ पाषाणवज्रकोरसः ।

शुद्धसूतं द्विधागंधं द्रवैः श्वेतपुनर्नवैः ।

मर्दयित्वादिनं खल्वेरुद्धातं भूधरेपचेत् ॥ १४ ॥

दिनान्ते तत्समुद्धृत्य चूर्णयेदतिचिक्कणम् ।

पाषाणभेदसंयुक्तं चूर्णं तुल्यं द्विम षकम् ॥ १५ ॥

भक्षणादश्मरीं हन्ति रसः पाषाणवज्रकः ।

गोपालकर्कटीमूलकाथमधुयुतंपिबेत् ॥

गोकण्टकशुभाभद्रमूलकाथपिबेन्निशि ॥ १६ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एकभाग, गंधक दोभाग, दोनोको सफेद पुनर्नवाके रसमें एक दिन खरल करके भृधरयंत्रमें पकावे, शीतल होनेपर वारीक चूर्ण करले, फिर इसमें पाषाणभेदका चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन दो मासे खावे । यह पाषाणभेद-रस—शीघ्रही पथरीरोगको दूर करेताह । इसके ऊपर गोपालककडीका काथ सहित मिलाकर पीवे, रात्रिमें गोमुरु, वंशलोचन और नागरमोथकी जड़का काथ पान करे ॥ १४-१६ ॥

अथ त्रिविक्रमरसः ।

ताम्रभस्ममजाक्षीरैःपाच्यंतुल्यैःकृतेद्रवे ।

तत्ताम्रशुद्धसूतञ्चगंधकञ्चसमंसमम् ॥ १७ ॥

निर्गुण्डचुत्थैर्द्रवैर्मर्द्यादिनंतद्रोलमुद्धरेत् ॥

दिनैकंवालुकायन्त्रेपाच्यंयोज्यंद्भिगुंजकम् ॥ १८ ॥

बीजपूरस्यमूलञ्चपिद्वातंचानुपाययेत् ।

रसस्त्रिविक्रमोनाममासैकमश्मरीप्रणुत् ॥ १९ ॥

अर्थ—बकरीके दूधमें ताँबेकी भस्म पकावे, यह ताँबेकी भस्म, शुद्ध पारा और गंधक तीनों समान भागले एकदिन निर्गुण्डकी रसमें खरल कर गोला बना दिनभर वालुकायंत्रमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करले, इसको दो रत्नीभर खावे और ऊपरमें विजोरेकी जड़का जलमें पीसकर पीवे तो एक महीनेमें यह त्रिविक्रम नामवाला रस पथरीको दूर करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ पाषाणभेदरसः ।

शुद्धसूतंदिवागंधंशिखितुत्थंरसोपमम् ।

श्वेतापुनर्नवावासागिरिकर्णगिसोद्भवेः ॥ २० ॥

प्रतिद्रवैरुयहंमर्द्यशुष्कंतचारुसंषुटे ।

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रेदिनैकं तंविचूर्णयेत् ॥ २१ ॥

रसःपाषाणभिन्नामद्भिगुंजोद्वयश्मरीहरः ।

कुलत्थक्काथसंपीतमनुपानंप्रशस्यते ॥

सघृतंगोक्षुरक्काथंरात्रौतैलेनलेहयेत् ॥ २२ ॥

इत्यश्मरीरोगाऽध्यायः ।

अर्थ—शुद्धपारा एकभाग, गंधक दोभाग, नीलाथोथा एकभाग, तीनोंको एकत्र कर सफेद पुनर्नवा, अडूसा और अपगजिताके रसमें एकएक दिन खरलकर सुखावे । फिर संपुटमें रख एकदिन दोलायंत्रमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करले । इसको दो रत्तीभर भक्षण करें, और ऊपरसे कुलथीका काथ पीवे और रात्रिमें गोखरूके काढेमें तेल और घी मिलाकर पीवे तो यह पाषाणभित्त रस—बहुत शीघ्र पथरीरोगको दूर करदेताहै ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

इति पथरीरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

यैर्हेतुभिर्येप्रभवन्तिमेहास्तेषुप्रमेहेषुनतेनिषेव्याः ।

हेतोरसेवाविहितायथैवजातस्यरोगस्यभवेच्चिकित्सा ॥

अर्थ—जिन आहारविहागादिमें मेहरोग उत्पन्न होता है, वह संपूर्ण आहार विहा-
रादि मेहरोगवाले रोगीको अवश्य २ त्याग करने चाहियें । कारण यह है कि रोगोत्पादक हेतुओंका त्याग कर्नाही रोगकी एक प्रकारकी चिकित्सा है ॥ १ ॥

अथ प्रमेहरोगेपथ्यानि ।

श्यामाककोद्रवोदालगोधूमचणकाढकी ।

कुलत्थाश्चहिताभोज्येपुगणामेहिनांसदा ॥ २ ॥

रूक्षमुद्रर्चनंगाढंव्यायामंनिशिजागरम् ।

यच्चान्यच्छेप्सपित्तघ्नंबाह्यमान्तरिकंहितम् ॥ ३ ॥

अर्थ—समा, कोढ़ों, वनकोढ़ों, मेह, चने, अरहर और कुलथी, यह सब पुराने अन्न प्रमेहरोगवालोंको मदेव हितकारी हैं । रूक्षद्रव्य, गाढा उबटन, कसरत, रात्रियोंमें जागना और अन्यान्य बाह्य तथा आन्तरिक कफ और पित्तनाशक क्रिया प्रमेहरोगमें विशेष हितकारी है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ शुक्रमेहहरोपायः ।

दूर्वाकसेरूपूतीककुम्भीकपृवशैवलम् ।

जलेनक्वथितंपीतंशुक्रमेहहरंपरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—दूर्वा, कनेरु, दुर्गन्ध करंज, जलकुम्भी, केवटी, मोथा और सिवार इनके काढ़ेमें सहन मिलाकर पीनेसे—शुक्रमेह दूर होताहै ॥ ४ ॥

अथान्योपायः ।

क्षौद्रेणामलकंखादेच्छुक्रमेहहरंपरम् ॥ ५ ॥

अर्थ—आमलोंके चूर्णको सहतके साथ खानेसे शुक्रमेह नष्ट होताहै ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहकषायः ।

त्रिफलारग्वधद्राक्षकपायोमधुसंयुतः ।

पीतोऽग्निहन्तिफेनाख्यंप्रमेहंनियतंतृणाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—त्रिफला अमलताम, और द्राख, इनके काढ़ेमें सहन मिलाकर पीनेसे फेनाख्य मेह शान्त होताहै ॥ ६ ॥

अथ हरीतक्यादिकषायः ।

हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राःपाठाविडंगार्जुनधन्वनश्च ।

उभेहरिद्रितगरंविडंगकदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ ७ ॥

दार्वीविडंगःखदिगेधवश्चसुगह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि ।

दार्व्यग्निमन्थेत्रिफलासपाठापाठाचमूर्वाचतथाश्वदंष्ट्रा ॥ ८ ॥

यवान्युशीराण्यभयागुडूचीजम्बाभयाचित्रकसप्तपर्णाः ।

पादैः कषायाः कफमेहिनां च सदोपादिश्यामधुसंप्रयुक्ताः ॥ ९ ॥

अर्थ—हरड, कायफल, नागरमोथा और लोध, इनका काथ बनाकर पीनेसे उदकप्रमेह नष्ट होताहै । पाद, वार्यविडंग, अर्जुनकी छाल और धन्वनवृक्षकी छाल, इनका काढ़ा पीनेसे इक्षुमेह दूर होताहै । हल्दी, दारुहल्दी, तगर और वायविडंगका काथ पान करनेसे सान्द्रप्रमेह दूर होताहै । कदम्ब, माल, अर्जुन और अजवायनका काढ़ा पीनेसे सुगमेह नष्ट होताहै । दारुहल्दी, वायविडंग, खेर और धववृक्षकी छालका काथ पीनेसे विषमेह नष्ट होता है । देवदारु, कूट, अगर और चन्दनका काथ पान करनेसे शुक्रमेह विनष्ट होताहै । दारुहल्दी, अग्नी, त्रिफला और पाठका काढ़ा पीनेसे मिकतामेह दूर होताहै । पाद, मूर्वा और गोखरुका काथ पानकरनेसे शीतमेह नष्ट होताहै । अजवायन, खम, हरड और गिल्लोयका काढ़ा पीनेसे शनःप्रमेह दूर होताहै ।

और जामुन, हरड, चीता तथा सतवनकी छालका काढ़ा पीनेसे लालाप्रमेह दूर होता है । उदकादिमेहनाशक इन दशों काढ़ोंमें मधुप्रक्षेप और सहत मिलाना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मेहहरोपायः ।

अश्वत्थाच्चतुरङ्गुलान्यग्रोधादेःफलत्रयात् ।

• सजिङ्गीरक्तसाराच्चक्राथाःपंचसमाशिकाः ॥ १० ॥

नीलहारिद्रशुक्राख्यक्षारमंजिष्ठाकाह्वयान् ।

मेहान्हन्युःक्रमादेते सक्षौद्रो रक्तमेहजित् ॥ ११ ॥

न्यग्रोधादिपंच ।

जिङ्गी मंजिष्ठा । रक्तसागो रक्तचन्दनः ।

आसामेकोयोगः ।

सक्षौद्र इत्यादि रक्तमेहक्राथः ।

क्राथःखर्जूरकाश्मर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ॥ १२ ॥

खर्जूरकाश्मर्ययोः फलम् । तिन्दुकः तिन्दुकस्यफलमज्जा ॥

अर्थ—पीपलकी छालका काथ पान करनेसे नीलमेह नष्ट होता है । अमलतासका काथ पीनेसे हारिद्रमेह दूर होता है । वटादिपंचवृक्षका काथ पान करनेसे शुक्रमेह नष्ट होता है । त्रिफलाका काथ पान करनेसे क्षारमेह नष्ट होता है । मंजीठ और लालचंदनका काथ पान करनेसे मंजिष्ठमेह दूर होता है और पीपल, अमलतास, वटादिपंचवृक्ष, त्रिफला, मंजीठ और लालचंदन, इन सबका काढ़ा पीनेसे रक्तमेह नष्ट होता है । इन सब काढ़ोंमें सहत डालना चाहिये । खजूर, कुम्भेर, तेंदुकी मज्जा और गिलोयका काढ़ा पीनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह विनष्ट होते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ पित्तप्रमेहहरकषायाः ।

लोभ्राज्जुनोशीरकुचन्दनानामरिष्टसेव्यामलकाभयानाम् ।

धात्र्यर्जुनारिष्टकवत्सकानानीलोत्पलैलातिविपार्जुनानाम् ॥

चत्वारण्येविहिताःकषायाःपित्तप्रमेहमधुसंप्रयुक्ताः ॥ १३ ॥

अर्थ—लोव, अर्जुन, खन और लालचंदन इनके काढ़ोंमें या नीमकी छाल-खस, आमला और हरड, इनके काढ़ोंमें अथवा आमला, अर्जुनकी छाल, नीम-

कीछाल और कुड़ेकीछाल इनके काढ़में या नीलोत्पल, इलायची, अतीस और अर्जुनकी छाल इनके काढ़में मदन मिलाकर पानिसे पित्तप्रमेह दूर होताहै ॥ १३ ॥

असाध्येऽपियापनार्थयोगायथा ।

छिन्नावह्निकपायेणपाठाकुटजरामठम् ।

तिक्ताकुष्ठंचसंचूर्ण्यसर्पिर्मेहीपिवेत्रः ॥ १४ ॥

पाठादीनांप्रक्षेपः ।

कुटजस्यत्वक् ।

कदरखदिरपूगकाथंशौद्राह्वयेपिवेत् ॥ १५ ॥

कदरो विटखदिरः । पूगस्यफलम् ।

अग्निमन्थकपायन्तुवमामेहेप्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

पाठाशिरीषदुःस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकम् ।

कपित्थानांभिषक्काथंहस्तिमेहेप्रयोजयेत् ॥ १७ ॥

तिन्दुककपित्थयोःफलम् ।

अर्थ—गिलोय और चीनेके काथमें पाठ, कुडा, हांग, कुटकी और कूटका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्पिर्मेह दूर होताहै । दुर्गंधखर, खर और सुपागीका काढा पीनेसे शौद्रमेह दूर होताहै । अग्नीका काथ पान करनेसे वमामेह विनष्ट होताहै । पाठ, मिर्गन, जवामा, चुन्नदार, डाक, तेंदू और कैथका काथ पान करनेसे हस्तिमेह नष्ट होताहै ॥ १४-१७ ॥

सिद्धानितैलानिघृतानिचैवयोज्यानिमेहेष्वनिलात्मकेषु ।

मेदःकफश्चैवकपाययोगैःस्नेहैश्चवायुःशममेतितेपाम् ॥ १८ ॥

अर्थ—वातज प्रमेहमें मिल्ड तैल और घृत सेवन करने चाहिये । मेह और कफ कपाययोगोंके द्वारा और वायु स्नेहके द्वारा शमन होताहै ॥ १८ ॥

अथ कफपित्तजमेहोपायः ।

गुंडारोचनिकामत्तपर्णशालविभीतकात् ।

रोहीतकात्कपित्थाच्चपुष्पाणिकुटजादपि ॥ १९ ॥

चूर्णानिमधुनालिह्यात्प्रमेहेकफपित्तजे ।

कार्षिकाणिपिवेत्पिष्ट्वारसेनामलकस्यवा ॥ २० ॥

त्रिफलामुस्तकंदारुहरिद्रादेवदारुच ।

तत्काथंमधुसंयुक्तं पिबेत्सर्वप्रमेहजित् ॥ २१ ॥

सर्वमेहहरोधात्र्यारसः शौद्रनिशायुतः ।

कपायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवाकृतः ॥ २२ ॥

अत्रशौद्रहरिद्राप्रक्षेपोनास्ति ।

गोधावतीजटायाः काथो घृतदुग्धतैलसंस्निग्धः ।

दुर्जयमेहान्हन्यात्प्रातः पीतो न सन्देहः ॥ २३ ॥

पलत्रिकंदारुनिशां विशालां मुस्तञ्च निष्काथ्य निशांशकल्कम् ।

पिबेत्कपायं मधुसंयुतं च सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥ २४ ॥

अंशशब्दोऽर्थाभिधायी निशाया अंशश्चतुर्थ-

भागः कल्कोयमित्यर्थः ।

अंशश्चतुर्थो भागः ।

कटंकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः ।

सिद्धः कपायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥ २५ ॥

मधुना त्रिफलाचूर्णमथवा श्मजतृद्भवम् ।

लोहंजम्ब्वभयोत्थंवालिह्यान्मेहनिवृत्तये ॥ २६ ॥

अर्थ—कवीला, सतवन, साल, बहेडा, गंहेडा, कैथा और कुडेके फूलोंका चूर्ण दो तोले सहतके साथ अथवा आमलोंके रसके साथ पीनेसे कफपैत्तिक प्रमेह विनष्ट होता है । हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, दारुहलदी और देवदारु इनके काढ़ेमें सहत डालकर पीनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होजाते हैं । त्रिफला, देवदारु और नागरमोथका काथ पान करनेसे भी सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होजाते हैं । हंसपदी लताकी जड़के काथमें घृत, तैल और दूध मिलाकर प्रातःकाल पीनेमें असाध्य प्रमेहभी दूर होजाता है । त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायन और नागरमोथा इनके काढ़ेमें चतुर्थांश हलदीका चूर्ण और किंचित् सहत डालकर पीनेसे सर्वप्रकारके प्रमेहरोग नष्टहोजाते हैं । दारुहलदी, सुलैटी, त्रिफला और चीता इनका काढ़ा पीनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होता है ।

त्रिफलेका चूर्ण अथवा शिलाजीतका चूर्ण या लोह, जामुन और हरडका चूर्ण सहित मिलाकर चाटनेसे सर्वप्रकारके प्रमेहरोग दूर होजातेहैं ॥ १९-२६ ॥

अथ न्यग्रोधाद्यचूर्णम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारगवधाऽसनम् ।

आम्रजम्बूकपित्थञ्चपियालंककुम्भधवम् ॥ २७ ॥

मधुकमधुकोलोध्रंवरुणंपारिभद्रकम् ।

पटोलमेषशृंगीचदन्तीचित्रकमाढकी ॥ २८ ॥

करञ्जत्रिफलाशत्रुभल्लातकफलानिच ।

एतानिसमभागानिश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ॥ २९ ॥

न्यग्रोधाद्यमिदंचूर्णमधुनासहलेहयेत् ।

फलत्रयरसञ्चानुपिवेन्मृत्रंविशुद्ध्यति ॥ ३० ॥

एतेनविंशतिर्महामृत्रकृच्छ्राणियानिच ।

प्रशमंयान्तियोगेनपीडकानचजायते ॥

न्यग्रोधाद्यमिदंचूर्णमधुनासहलेहयेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—वड, गूलर, पीपल, उषांताक, अमलनास, असन, आम, जामुन, कैथ, चिगंजी, कोह, धौ, महुआ, मुलैठी, लोध, वरुना, फरहद, पटोल, मंदाशिंगी, दन्ती, चीता, अग्रह, करञ्ज, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्र जी और भिलावा, इनसबको समान भाग लेकर बारीक चूर्णकरले, इसको न्यग्रोधादिचूर्ण कहतेहैं । इसमें वगवगका सहित मिलाकर सेवन करें और उपरसे त्रिफलेका साथ पीये तो मृत्र शुद्ध हो, बीस प्रकारके यमह और मृत्रकृच्छ्रांग दूर हों, इसको सेवन करनेसे प्रमेहजनित पिडका उत्पन्न नहीं होतेहैं । यहाँ आम और जामुनकी गुठली लेनी चाहिये ॥ २७-३१ ॥

अथ त्रिकण्टकाद्यघृततैलंच ।

त्रिकण्टकाश्मर्यकसोमवल्केर्भल्लातकैःसातिविपैःसलोध्रेः ।

वचापटोलार्जुननिम्बुमुस्तैर्हर्गद्रयापद्मकदीप्यकैश्च ॥ ३२ ॥

मंजिष्टपाठागुरुचन्दनैश्चमंत्रैःसमस्तैःकफघातजेषु ।

मेहेषुतैलविपचेदघृतंचपेत्तेषुमिश्रंविपुलक्षणेपु ॥ ३३ ॥

अर्थ—गायका वी अथवा तिलका तेल प्रत्येक अथवा दोनों मिले हुए दोसेर, गोखरू, कुम्भेर, सफेदखैर, भिलावा, अतीस, लोध, वच, पटोल, अर्जुन, नीम, नागरमोथा, हलदी, पद्माख, अजवायन, मजीठ, पाद, अगर और लालचन्दन सब औषधियोंका कल्क आधामेर लैवै । यह तेल या घृत अथवा वी और तेल दोनों कल्कमें मिलाकर सिद्ध करै । इसको सेवनकरनेसे पैत्तिकमेह और मान्निपात्तिकमेह नष्ट होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ दाडिमाद्यंघृतम् ।

दाडिमस्यचबीजानिकृमिघ्नस्यचतण्डुलाः ।

रजनीचविकाजाजीनागरत्रिफलाकणा ॥ ३४ ॥

त्रिकण्टकस्यबीजानियवानीधान्यकन्तथा ।

वृक्षाम्लंबदरंचैवसिन्धूद्रवसमायुतैः ॥ ३५ ॥

अम्लवेतसकंद्राक्षायष्टीमधुकपाकलैः ।

दावीत्वचंशिलाधातुनीलोत्पलरसांजनैः ॥ ३६ ॥

एतैःकल्कैरक्षमात्रैर्घृतप्रस्थविपाचयेत् ।

भोज्येपानेप्रदातव्यंसर्वर्तुषुचमात्रया ॥ ३७ ॥

प्रमेहान्विशतिश्चैवमूत्राघातांस्तथाश्मरीम् ।

कृच्छ्रान्सुदारुणांश्चैवहन्यादेतन्नसंशयः ॥ ३८ ॥

विबन्धानाहशूलग्रं कामलाज्वरनाशनम् ।

दाडिमाद्यंघृतन्नामअश्विभ्यानिर्मितंपुरा ॥ ३९ ॥

शिलाधातुःशिलाजतुतच्चशोधितंग्राह्यम् ।

अर्थ—अनारदाना, वायविडंग, हलदी, चव्य, जीरा, हरड़, सांठ बहेड़ा, आमला, पीपल, गोखरूओंके बीज, अजवायन, धनियाँ, विषाविल, बेर, संधानोन, अमलबेत, दाख, मुलैठी, कूठ, दारुहलदी, दालचीनी, शुद्धशिलाजीत, नीले कमल और रसौत प्रत्येकका एक तोला कल्क लेकर चौंसठ तोले घृतको पकावै । इसको सर्वऋतुओंमें भोजन और पानमें मात्रासे सेवनकरनेसे वीसप्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, आनाह, शूल, कामला, और ज्वर दूर होताहै । यह दाडिमाद्य घृत श्रीमान् अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ३४-३९ ॥

अथ धान्वन्तरवृत्तम् ।

दशमूलकरंजोद्वौदेवदारुहरीतकी ।
 वर्षाभूर्वरुणोदन्तीचित्रकंसपुनर्नवम् ॥ ४० ॥
 सुधानीपकदम्बाश्चविल्वंभल्लातकानिच ।
 शठीपुष्करमूलञ्चपिप्पलीमूलमेवच ॥ ४१ ॥
 पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयार्मणेपचेत् ।
 यवकोलकुलत्थानांप्रस्थंप्रस्थंचदापयेत् ॥ ४२ ॥
 तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।
 निचूलंत्रिकलाभार्ङ्गीरोहिपंगजपिप्पली ॥ ४३ ॥
 शृंगवेरंविडंगानिवचाकंपिल्लकंतथा ।
 गर्भेणानेनसिद्धंस्यात्पाययेच्चयथावलम् ॥ ४४ ॥
 एतद्धान्वन्तरंतामविख्यातंसर्पिरुत्तमम् ।
 गुल्मकुष्ठप्रमेहांश्चश्वयश्रुंवातशोणितम् ॥ ४५ ॥
 घ्नीहोदरंतथाशार्सिविद्रधिपिडिकाश्चयाः ।
 अपस्मारंतथोन्मादंसर्पिर्गैत्रियच्छति ॥ ४६ ॥

अर्थ—गायका बी चारमेर, काथके लिये दशमूल, लालफलकी करंज, सफेद फलकी करंज, देवदारु, हरड, लालपुनर्नवा, वरुणा, दन्ती, चीता सफेदपुनर्नवा, शृङ्ग, कदम्ब, यडीकदम्ब, बेल, बिल्वार्वा, कचूर, पांढकरमूल और पीपलामूल, प्रत्येक औषधि दशदशपल और जौ, वेर तथा कुलथी प्रत्येक सौंठे सौंठे पल पाकके लिये, जल २१० दोस्रो दश मेर, शेष ५२ वावन मेर चारपल और कल्कके लिये हिजलकी जड़, त्रिकला, भारंगी, मुगंधतृण, गजपीपल, अदरक, वायविडंग, वच और कवीला यह सब औषधि चारमेर लेव । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृत मिद्ध कर । अग्रिका बलावल विचारकर इसका सेवन करे, यह उत्तम घृत धान्वन्तर नामसे विख्यातह । इसके सेवनसे गुल्म, कोष्ठ, प्रमेह, सूजन, वातरक्त, घ्नीहा, उदरगंग, ववासीर, विद्रधि, पिडिका, अपस्मार और उन्मादरोग दूर होताह ॥ ४०-४६ ॥

अथ बृहद्भ्रान्वन्तरं वृतम् ।

दन्तीचित्रकमूलानामष्टावष्टौपलानिच ।

अभयाविंशतिर्देयापट्पलं देवदारुच ॥ ४७ ॥

कदम्बनीपवरुणसम्पाकाप्रपुनर्नवाः ।

चिरबिल्वञ्चसर्वेषांपट्पलानिपृथक्पृथक् ॥ ४८ ॥

द्वेपंचमूल्यौसंकूटचपृथगाढकसम्मिते ।

पक्त्वाचतुर्गुणेतोयेपादशेषेघृताढकम् ॥ ४९ ॥

विपचेत्पंचलवणैःपंचकोलैश्चकार्पिकैः ।

बृहद्भ्रान्वन्तरमिदंघृतंविंशतिमेहनुत् ॥ ५० ॥

गुल्मश्वयथुकुष्ठार्शःश्वासहिकोदरापहम् ।

आग्नेयंबृंहणंचैवहन्तिनानाव्यथानृणाम् ॥

रसायनमिदंसर्पिःश्रेष्ठं ब्रह्माभिपूजितम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—वृत आठ सेर, काथके लिये दन्तीकी जड़ आठ पल, चीतकी जड़ आठपल, हगड बीसपल, देवदारु छे पल, कदम्ब, बड़ा कदम्ब, वरनाकीछाल, आमकी छाल, पुनर्नवा और करंजुआ प्रत्येक छे छे पल, स्वल्पपंचमूल और बृहत्पंचमूल प्रत्येक आठ सेर जल सब औषधियोंमें दूगुना शेष चतुर्थांश और कल्कके लिये पंचलवण और पंचकोल प्रत्येकदो दो तोले, सबको मिलाकर यथा-विधिसे घृतको सिद्ध करें। इसको सेवन करनेसे बीसप्रकारके प्रमेह, गुल्म, सूजन, कोढ़, ववासीर, श्वास, हिचकी, उदररोग और अनेकप्रकारके रोग दूर होतें। यह बृहद्भ्रान्वन्तर वृत अग्निको दीपनकरनेवाला, पुष्टिकारक और श्रेष्ठ रसायन है और ब्रह्माकरके पूजित है ॥ ४७-५१ ॥

अथ शिलाजतुलेहः ।

शिलाजतुपलान्यष्टौसितायाश्चपलाष्टकम् ।

बृहत्यास्तुफलंमूलंशृङ्गी धात्रीकणातुगा ॥ ५२ ॥

पृथगेषांपलञ्चातुर्जातस्यमिलितंतुगा ।

संचूर्ण्यमिलितंकृत्वा निहन्तिमधुनालिहन् ॥ ५३ ॥

प्रमेहशुकदोषामृक्श्वासकासक्षयाश्मरीम् ।

मूत्राघाताग्निमान्ध्यामगुल्मप्लीहाग्निमारुतम् ॥

जीर्णज्वरारुचिहरोलेहएपशिलाजतोः ॥ ५४ ॥

शिलाजतुशिवागुटिकान्यायेनशोधितभावितं ग्राह्यम् ॥

अर्थ—शुद्धशिलाजीत आठपल, सफेद दूग आठपल, बृहतीकीजड और फल काकडाशिगी, आमला, पीपल और वंशलोचन प्रत्येक एक एक पल, दाल-चीनी एकतोला. इलायची एकतोला. नागकेशर एक तोला, तेजपात एकतोला इन सबका बारीक चूर्ण कर महतमें मिलाकर चाटे तो प्रमेह. शुक्रदोष. रक्तदोष. खांसी. श्वास. क्षय. पथरी, मूत्राघात. मंदाग्नि. आम. गुल्म, प्लीहा. अग्नि. वात. जीर्णज्वर और अरुचि दूर होवे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ दशमूलवृत्तम् ।

दशमूलीशठीदन्तीदेवदारुपुनर्नवा ।

मूलं सुहृर्कयोः पथ्याभूकन्दश्च सपुष्करम् ।

कमञ्जवारुणं मूलं पिप्पली च ममं समम् ॥ ५५ ॥

प्रतिदशपलं योज्यं कुलत्थवदशीयवाः ।

प्रत्येकं पौडशपलं सर्वमेकत्र पाचयेत् ।

तेषामष्टगुणेतोयेपादशेषं समाहरेत् ॥ ५६ ॥

वस्त्रपूतं कपायन्तं पुनः पाच्यमिमेः सह ।

चव्यं द्विपिप्पली भार्जी वित्रात्रिवृद्धिङ्गकम् ।

लोथ्रकं म्पिह्लकं शुण्ठी प्रत्येकं पलसम्मितम् ॥ ५७ ॥

चूर्णितं योजयेत्तत्र घृतप्रस्थयुतं पचेत् ।

घृतावशेषमुत्तार्य कर्पमात्रं प्रयोजयेत् ।

प्रमेहोषद्रवाणाञ्च शमनं पवनं हितम् ॥ ५८ ॥

पिडिकाव्रणगण्डानां सर्वोषद्रवशान्तिकृत ।

स्वभावितं सारसारैर्विचन्द्रांशुशोधितम् ॥ ५९ ॥

पानीयशालिभुंजानोजांगलानां रसैः शुभैः ।

सर्वानितिहरेन्मेहान्सर्वोपद्रवकंजयेत् ॥ ६० ॥
 अस्यपत्रिकादशमूलादिद्वाविंशद्रव्याणामिलि-
 त्वा३५पलपाकार्थपानीय२८१६पल, शेष१०४पल ।
 कल्कार्थचव्यादिशुण्ठीनामिलित्वाचूर्ण१०पल ॥

अर्थ—दशमूल, कचूर, दन्ती, देवदारु, पुनर्नवा, शृङ्गकीजड, आककी जड़, हगड, जंगलीजमीकन्द, पोहकरमूल, करंज, वरनाकी जड़ और पीपल, प्रत्येक दश दशपल, कुलथी, बेर और जौ प्रत्येक सोलह सोलह पल लेकर सबमे आठ-गुने जलमें पकावे जब चौथाभाग जल शेष रहे तब उतारकर बस्त्रमें छान लेवे. पश्चात् इसमें चव्य, पीपल, गजपीपल, भांगी, बच, निमोत, वायविडंग, लोध, कवीला और सांठ प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल और गायका घी दो भेग मिलाकर पकावे । जब केवल घृत शेष रहे तब उतारले । दो तोले भर प्रतिदिन इसको खावे । यह घृत प्रमेहके उपद्रवोंको शान्त करे, वानरोगमें हितकारी. तथा पिडिका, व्रण और गलगंडादिके मव उपद्रवोंको शमन करे है । इस घृतको चालोंके जलके और जांगलदेशके जीवोंके मांससके साथ सेवन करे । यह घृत सर्वोपद्रवमयुक्त सर्वप्रकारके प्रमेहोंको दूर करेहै, ॥ ५०-६० ॥

अथ सर्वमेहोपायः ।

जयन्तीलाजयावाथमधुनासर्वमेहजित् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जयन्ती और खिलोंके चूर्णको महतमें मिलाकर चाटनेसे प्रमेह गेग दूर होजातेहैं ॥ ६१ ॥

अथ विडंगादिलौहम् ।

विडंगत्रिफलामुस्तैःपिप्पल्यानागरेणच ।

जीवकाद्यायुतोहन्तिप्रमेहानतिदारुणान् ॥

लोहोमूत्रविकारांश्चसर्वानिवनसंशयः ॥ ६२ ॥

सर्वचूर्णसमलौहचूर्णग्राह्यम् ।

अर्थ—बायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, पीपल, सांठ और जीवनीयदशक यह सब औषधि समानभाग लेकर चूर्ण करले और मव चूर्णकी बराबर लोहेका चूर्ण मिलालेवे । यह विडंगादिलौह—अत्यन्त दारुण प्रमेहोंको और मूत्रविकारोंको दूर करेहै ॥ ६२ ॥

अथ श्वदंष्ट्रादिलौहः ।

श्वदंष्ट्रात्रिफलामुस्तगुडूचीफलपुपलवान् ।
 दर्भकुशश्चमंजिष्टारोहिषस्यचपलवान् ॥ ६३ ॥
 बलापुनर्नवाश्यामाशारिवेदेवदारुच ।
 पिप्पलीनागरश्चैवविडंगमरिचानिच ॥ ६४ ॥
 पाठाकम्पिलकंभार्ङ्गीद्विहरिद्रेनिदिग्धिकाम् ।
 एरण्डमूलदन्तीचचित्रकंकटुरोहिणीम् ॥ ६५ ॥
 एतानिसमभागानिश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ।
 द्विगुणंसर्वचूर्णेभ्योलौहचूर्णप्रदापयेत् ॥ ६६ ॥
 मापकत्रितयंतस्माच्चतुष्टयमथापिवा ।
 पिबेदुष्णेनतोयेनमद्येनापिचमद्यपः ॥ ६७ ॥
 मेहशूलोदरंप्पीहशोथार्शःपाण्डुरोगनुत ।
 गोमूत्रपित्तेरतैश्चवटिकास्तद्गदापहाः ॥ ६८ ॥

फलपुष्पकाकोडुम्बरीतस्याःपलवः ।

अर्थ—गोरुख. त्रिफला, नागर्मोथा, गिलोय. कट्टमरकेपत्तं. दाभ, कुशा, मंजीष्ट. सुगंधगेहिपत्रुणोंके पत्तं. खिर्गडी. पुनर्नवा. निमोन, कालीसर, गोगीसर. देवदारु, पीपल. सोंठ. वायविडंग, कालीमिरच. पाठ. कवीला, भारंगी. हलदी, दारुहलदी, कंठरी. अरण्डकीजड़, दन्ती. चीना और कुटकी. इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके सब चूर्णमें दूगुना लोहेका चूर्ण मिला लें। यह तीन मासे या चार मासेभर गरम जलके साथ अथवा मदिगापीनवाला मदिगके साथ सेवन करें। इसमें प्रमेह, शूल, उदररोग, प्लीहा, मूत्रन, बवासीर और पाण्डुरोग यह सब दूर हो जातेहैं और इस चूर्णको गोमूत्रमें गोली बनाकर खानेमें उपरान्त गुणोंको करेंगे ॥ ६३-६८ ॥

अथ चन्द्रप्रभाशुटिका ।

कृमिरिपुदहनव्योषत्रिफलाऽमरदारुचव्यभृनिम्बम् ।
 मागधीमूलमुस्तंसशटिवचंमाक्षिकंचैव ॥

लवणक्षारनिशायुकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषाः ॥ ६९ ॥
 कर्षाशिकान्येवसमानिकुर्यात्पलाष्टकं चाश्मजतोर्विदध्यात् ।
 निष्पत्रशुद्धस्यपुंरस्यविद्रान्पलद्वयं लौहजस्तथैव ॥ ७० ॥
 सिताचतुष्कंपलमत्रवांश्यानि कुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम् ॥
 चन्द्रप्रभेयंगुटिकाप्रयोज्या अर्शासिनिर्णाशयतेपडेव ॥ ७१ ॥
 भगन्दरंपाण्डुचकामलाञ्चनिर्णष्टवह्नेः कुरुतेचदीप्तिम् ।
 हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगतेर्मर्मगतेव्रणेच ७२ ॥
 ग्रन्थ्यर्बुदेविद्राधिराजयक्ष्मणोर्मैहे भगाख्येप्रबलेप्रयोज्यः ।
 शुक्रक्षयेचाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामथेच ॥ ७३ ॥
 भक्तस्यपूर्वसततंप्रयोज्यातक्रानुपानाप्यथमस्तुपाना ।

१-किंचित् दशमूलकाथे चतुर्गुणे उष्णे पत्रादिरहितनिस्वरगुग्गुलुं प्रक्षिप्याद्योदय
 यस्त्रुतं विधाय प्रचण्डातपे विशोष्य पिष्टितगुग्गुलाः पलद्वयं प्राप्यम् । तथा नागाजुनोक्तकामृ-
 तसारलौहोक्तजारणपुटनादिशोषितयथाव्याधिप्रत्यनीकद्रव्यविशेषपुष्टिकान्तवत्रादिलौहचूर्ण-
 स्य पलद्वयम् । तथा शिलाजतुनस्त्रिफलादशमूल्यानि काथे उष्णे प्रक्षिप्य केतयोष्णजल एव
 वा प्रक्षिप्य प्रचण्डातप तापितास्याद्धीभूतसंरं गृहीत्वा शोषितस्याष्टपलान्यादाय रसायनाधि-
 कारोक्तशिवागुटिकोक्तक्रमेण त्रिफलादशमूलगुग्गुलीकायादिभिर्भाव्य शिलाजतुसमैः प्रचण्डा-
 तपशोषणं तथा तथैवोक्तकाकोल्याद्यष्टाविंशतिद्रव्ययथोक्तकाथाद्धीभावितस्य च तथा विशेषतः
 सालसारादिगणकाथेन चरकोक्तमहाकापायजीवनीयादिद्रव्यगणमध्ये यथाव्याधिप्रत्यनीकगणका-
 थेन च तथा वाग्भटोक्तयादोपभेदोक्तभावनद्रव्यकाथैश्च भावनं कर्तव्यम् । तदनु लोहचूर्ण-
 गुग्गुलुभ्यां शिलाजतु मिश्रयित्वा पुनः शिवागुटिकोक्तकाकोल्याद्यष्टाविंशतिद्रव्यकाथेन विशेष-
 ततः । सालसारादिगणकाथादिभिश्च मिलित्वा भावनां विधाय त्रिद्विगचित्रकाथोपधचूर्णानि
 संयोज्य धान्यपटोलकाथाष्टपर्श्वमृशिल्यादिमुषिष्ठा न्यायाशुष्काः कार्याः । किञ्च सिताचतुष्क-
 मिति पलचतुष्टयमित्यर्थः ॥ निकुम्भो दन्ता कुम्भस्त्रिभूता एतयोर्मिलित्वा पलमेकं पाठानन्द-
 र्शनात् त्रिषुगन्धेन मिलित्वा पलमेकम् । वांशी वंशलोचना ।

किञ्च शिलाजतुभावनार्थं शिल्याजतुसमं गृहीत्वा चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशिष्टं
 कृत्वा तेन भावनमित्येकः पक्षः । वाग्भटमतेन काथ्यद्रव्यं शिलाजतु सममेव गृहीत्वाष्टगुणं
 जलं दत्त्वाष्टभागावशेषं कृत्वा तेन भावनमित्युक्त्यर्थैव व्यपहारः ॥

आजरसोजाङ्गलजोरसोवापयोथवाशीतजलानुपानम् ॥

बलेननागस्तुरगोजवेनदृष्ट्यासुपर्णःश्रवणैर्वराहः ॥ ७४ ॥

शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौप्रमेहांश्चैवविंशतिः ।

वलीपलितनिर्मुक्तोवृद्धोऽपितरुणायते ॥ ७५ ॥

नपानभोज्यंपरिहार्यमस्तिनशीतवातातपमैथुनेच ।

शम्भुंसमभ्यर्च्यकृतप्रणामात्प्राप्तागुटीचन्द्रमसःप्रसादात् ७६

अत्रवचाद्यागेनपाठस्तन्त्रान्तरविरुद्धः ।

माशिकंस्वर्णमाशिकम् ।

पाठान्तरेताप्यमित्युक्तेः । युगशब्दस्यत्रिष्वेवसम्बन्धः ।

तेनसैन्धवसोवर्चलेयवक्षारमर्जिकाक्षारौ ।

हरिद्रादारुहरिद्रेयाद्ये ।

अर्थ—वाय्याड्डंग, चीता, मोंठ, मिर्च, पीपल, द्रुव, बहेडा, आमला, देवदारु, चव्य, पीपगमूल, चिगायता, नागरमोथा, कचूर, वच, मोनामाखी, कालानोन, मंधानोन, जवाखार, मजीखार, हलदी, दारुहलदी, धनियाँ, जल, पीपल और अनीस प्रत्येक दो दो तोले, शुद्ध शिलाजीत बत्तीस तोले, शुद्ध गृगुल आठ तोले, लोहंका चूर्ण आठ तोले, मिश्री सोलह तोले, वंशलोचन चार तोले, निमोन और दन्ता चार तोले और मिलेहुए त्रिसुगंध (दालचीनी, इलायची, तेजपात,) चार तोले, इनमक्को एकत्र कर यथाविधिमे गोली बनाले यह चंद्रप्रभा नामवाली गोली—छ प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, पाण्डुरोग, कामला, मन्दाग्नि, पित्त, कफमे उत्पन्न हुए रोग, नाडीव्रण, मर्मगतव्रण, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि, राजयक्ष्मा, प्रमेह, शुक्रक्षय, पथरी, सूत्रकृच्छ्र, शुक्रप्रवाह और उदरगदि रोगोंको दूर करेहै । इन गोलियोंको भोजनमे पहिले खावे और तब या दहीका पानी अथवा बकरेके मांसका रस या जांगलदेशके जीवोंके मांसके रस, किंवा दूध या शीतलजलका अनुपान करे । इन गोलियोंको सेवनकरनेमे मनुष्य बलमें हाथीकी समान, वेगमें घोड़ेकी समान, दृष्टिमें गरुडकी समान और श्रवणमें बगहकी समान होजातेहैं । तथा आठप्रकारके शुक्रदोष, बीस प्रकारके प्रमेह और वलीपलितरोगोंमे मुक्त होजातेहैं और वृद्धमनुष्यभी इसके प्रभावसे तरुणताको

प्राप्त होते हैं । भोजन और पानका परहेज नहीं है और शीत, वात, आतप और मेथुनका भी परहेज नहीं है ॥ ६९-७६ ॥

अथ लोहरसोपयोगः ।

लौहोरसायनोऽप्यत्रपाण्डुभ्यः श्रेष्ठ उच्यते ।

व्यायामजातमखिलं भजन्मेहान्व्यपोहति ॥ ७७ ॥

पादत्रच्छत्ररहितो भैक्षाशीषु निवद्यतः ।

योजनानां शतं गच्छेदधिकं वानिरन्तरम् ॥

मेहाञ्जैतुं वने चापि नीवारामलकाशनः ॥ ७८ ॥

अर्थ—लोहरसायन पाण्डुरोगकी अपेक्षा इस प्रमेह रोगमें विशेष उपकारी है। अधिकतर कसरत करनेसे प्रमेहरोग विनष्ट होता है। प्रमेहरोगी पादुका (जूते) और छत्रहीन होके भिक्षा मांगे तथा मुनियोंकी समान आचरण करे, निरंतर शतयोजन अथवा अधिक गमन करे, और वनमें जाकर नीवारधान और आमलोंका भोजन करे ॥ ७७-७८ ॥

अथ प्रमेहोत्पत्तिनिदानम् ।

नवान्नदधिमद्याम्बुगुडक्षीरनिपेवणात् ।

दूषयन्ति मलमैदः शुक्रमज्जावसारसाः ॥ ७९ ॥

विंशतिमेहाः प्रजायन्ते दशसाध्याः कफोत्थिताः ।

पित्तोत्थिताश्च पञ्चाप्याह्यसाध्यामारुतोत्तराः ॥ ८० ॥

आस्यस्वादुस्तृषादाहोदन्तानां मलसंचयः ।

देहचिकणतापीतादाहश्च पाणिपादयोः ॥ ८१ ॥

प्रभूता विलमूलत्वं मेहलक्षणमग्रजम् ।

उदकेक्षुरसं सान्द्रं सुरासिकताशुक्रजम् ॥ ८२ ॥

पीतं पिष्टकलालाख्यं बहुमूत्रततः परम् ।

क्षारं हरितरक्तञ्च मांजिष्टं स्याच्चतुर्दश ॥ ८३ ॥

नीलकालं वसामज्जाक्षौद्रं विद्यादशोत्तरम् ।

हन्ति मेहं विंशतमं याते वर्णेऽलक्षयात् ॥ ८४ ॥

अर्थ—नवीन अन्न, दही, मादिरा, जल, गुड़ और दूध इन द्रव्योंको अधिकतर सेवनकरनेसे शरीरमें स्थित मल, मेद, शुक्र, मज्जा, वसा और रस दूषित होकर बीसप्रकारके प्रमेहोंको उत्पन्न करतेहैं, उनमें कफसे उत्पन्नहुए दश प्रमेह साध्य हैं, पित्तसे उत्पन्नहुए छे प्रमेह याप्य हैं और वातसे उत्पन्नहुए चार प्रमेह असाध्य हैं । मुखमें मधुरता, तृषा, दाह, दाँतोंमें मेल इकट्ठाहोना, शरीरमें चिकनापन और पीलापन, हाथ और पैरोंमें दाह, मूत्रकी अधिकता और अनिर्मलता यह सब प्रमेहके पूर्वके लक्षणहैं । उदकमेह, इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, सिकतामेह, शुक्रमेह, पीतमेह, पिष्टमेह, लालामेह, बहुमूत्रमेह, क्षामेह, हर्गितमेह, रक्तमेह, मांजिष्ठमेह, नीलमेह, कालमेह, वसामेह, मज्जामेह, क्षौद्रमेह और हस्तिमेह इस प्रकार यह बीस प्रमेह रोग वर्ण और बलके ध्य होनेसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ७९.—८४ ॥

अथोदकमेहः ।

स्वच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।

मेहं ह्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—स्वच्छ, बहुतसफेद, शीतल, गन्धरहित, जलकी समान और किञ्चित् गाढ़ा और पिच्छिल मूत्र इसको उदकमेह कहतेहैं ॥ ८५ ॥

अथोदकमेहोपायः ।

मेहिनो बलिनः कुर्यादादौ वमनरेचने ॥ ८६ ॥

अर्थ—बलवान्मेह रोगीको प्रथम वमन और विरचन करवै ॥ ८६ ॥

अथ मेघबन्धरसः ।

भस्मसूतं मृतं कान्तं तीक्ष्णं भस्मशिलाजतु ।

शुद्धं ताप्यं शिलाव्योषं त्रिफलां कोलबीजकम् ॥ ८७ ॥

कपित्थं रजनीचूर्णं तुल्यं भाव्यन्तु भृंगिणा ।

विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा ॥ ८८ ॥

निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेघबन्धोरसो महान् ।

महानिम्बस्य बीजानि षण्णिष्कं पेपितानि च ॥ ८९ ॥

पलं तण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ।

एकीत्यपि वेद्यानुहन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥ ९० ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, कान्तलोहेकी भस्म, तीक्ष्णलोहेकी भस्म, शिलाजीत, शुद्ध सोनामाखी, मनशिल, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेडा, आमला, अंकोलके बीज और कैथा तथा हलदी, यह सब समान भागले एकत्र चूर्णकर भांगके रसमें बीसवार भावना देवे, पश्चात् इसमें सहत मिलाकर आधातोला नित्य खावे, और ऊपरसे तीन तोले बकायनके बीज चार तोले चावलके जलमें पीसकर एकतोला घृत मिलाकर अनुपान करे तो यह मेघबन्धरम बहुतदिनोंके प्रमेहगे-गको दूर करे ॥ ८७-९० ॥

अथेक्षुमेहः ।

इक्षोरससमरूपमधुरं चक्षुमेहकम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—ईखके रसकी समान रंगवाला और स्वादमें मीठा मूत्र उतरे, इसको इक्षुमेह कहतेहैं ॥ ९१ ॥

अथेक्षुमेहोपायः ।

गंधकं गुडसंयुक्तं कर्पुमुक्त्वा प्रमेहजित् ॥ ९२ ॥

अर्थ—गुडगंधकको गुडमें मिलाकर एकतोलेभर प्रतिदिन खाय तो प्रमेहरोग दूर होवे ॥ ९२ ॥

अथ वंगेश्वरोगसः

वंगभस्ममृतं मृतं तुल्यं शौद्रैर्विमर्दयेत् ।

द्विगुं जले हयेन्नित्यं हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥

गुंजामूलं पिबेच्चानुक्षीरैरेव प्रशाम्यति ॥ ९३ ॥

अर्थ—वंगकी भस्म, पारेकी भस्म, दोनों समानभाग लेकर बराबरके महतमें मर्दन करके नित्य गुंजाभर सेवन करे और ऊपरसे चोंटलीकी जड़को दूधमें पीसकर पीवे तो बहुत दिनोंका प्रमेहरोग दूर होवे ॥ ९३ ॥

अथ सान्द्रमेहः ।

सान्द्रं भवेत्पथुपितं सान्द्रमेहं तदुच्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ—मूत्रको रातमें रखदेवे जो वह मूत्र दूसरे दिन गाढ़ होजावे तो सान्द्र-प्रमेह जानना ॥ ९४ ॥

अथ सुरामेहोपायः ।

पंचवक्त्रसोऽप्यत्र देयं पुंजाद्रयं हितम् ।

चित्रकं त्रिफलाकाथं सुशीतञ्च मधुशुतम् ॥ ९५ ॥

अनुपानंप्रदातव्यंसुरामेहप्रशान्तये ।

दावीमुस्तादेवदारुत्रिफलाकृथितेजले ॥

योजयेदनुपानेनमेघबन्धरसोऽपि वा ॥ ९६ ॥

वर्थ—यहां पंचवक्रग दोगुंजाप्रमाण भक्षणकै और ऊपरमे चीता, हरड, आमला और बहेडा इनका काढा बना शीतलकर सहन मिलाकर पीवे तो सुरा-
मेह दूर होवे । अथवा मेघबन्धर भक्षण कर और ऊपरमे दारुहलदी, नागर-
मोथा, देवदारु, हरड, आमला और बहेडा इनका काढा पीवे तो—सुराप्रमेह
नष्ट होवे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथ सुरामेहः ।

सुरामेहीसुरातुल्यमुपर्यच्छमधोवनम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—जिमका मूत्र सुराकीसमान ऊपर तो स्वच्छ और नीचे गाढ़ा होय तो
उसको सुरामेह जानना ॥ ९७ ॥

अथ मृगमालारसः ।

मार्कण्ड्योत्रपुपंशीर्षिसुद्वयंमृगशृङ्गकम् ।

कार्पासबीजंमज्जाचतुल्यमङ्गोलबीजकम् ॥ ९८ ॥

पेपयेन्महिषीतकैर्दिनेकंवटकीकृतम् ।

मासद्वयंसदाखादेन्मृगमालाप्रमेहजित् ॥

अक्षपाठाभयादावीकपायमनुपाययेत् ॥ ९९ ॥

अर्थ—सुई खखमा, मीसा, अगर, हिरनके मांसकी भस्म, चिनीलोंकी
मांस, और अंकोलके बीज यह सब समान भागलेकर एक दिन भस्मके तक्रमें
पीसकर दोदोमामेकी गोली बनालेवे, एक गोली प्रतिदिन खावे और ऊपरमे
बहेडा, पाठ, हरड और दारुहलदीका काढा पीवे । यह मृगमाला रस प्रमेहको
दूर करे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथोत्कटप्रमेहोपायः ।

त्रिनिष्कंकेतकीमूलंघृद्धाजलेनपाययेत् ।

जयंत्यावाजयायुक्तंमेहंहन्तिमुत्कटम् ॥ १०० ॥

अर्थ—१० मास केतकीका जड़को जलमें पीसकर जयन्ति या अर्गुणके साथ
मेघनकरनेमे—उत्कट प्रमेहरोग नष्ट होनाह ॥ १०० ॥

अथ सिकतामेहः ।

मृत्साण्डनसिकतामेहीसिकतारूपिणोमलान् ॥ १०१ ॥

अर्थ—जिस प्रमेहमें छोटे छोटे बालू रेतकीसमान कण मृते. उसको सिकता-
मेह कहतेहैं ॥ १०१ ॥

अथ नागेन्द्रगुटिका ।

मृतनागस्यभागैकं भागैकेन शुभाभया ।

दार्वाकोलफलं धात्रीमुष्कबीजं पलं पलम् ॥ १०२ ॥

कनकस्य फलं चैव पिष्ट्वा तद्गुटिकाकृता ।

नागेन्द्रगुटिकाख्याता तत्रैः पीत्वातिमेहजित् ॥ १०३ ॥

निशामृताद्विनिष्कञ्चमधुना लेहयेदनु ।

देवविद्यावटीचात्र अनुपानञ्च योजयेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ—सीसेकी भस्म, वंशलोचन, हगड, दारुहलदी, बेर, आमला, मोखांक
बीज और कनक धतूरेके फल प्रत्येक एक एक पल लेकर जलसे पीसकर
गोली बनाले. इन गोलियोंको तक्रके साथ खावे, पश्चात् हलदी और गिलो-
यको सहतमें मिलाकर आठ मासे चाटे. अथवा इसीप्रकार अनुपानके साथ देव-
विद्यावटी सेवनकरे, इससे प्रमेह रोग दूर होताहै ॥ १०२-१०४ ॥

अथ शुक्रमेहः ।

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ १०५ ॥

अर्थ—शुक्कीममान अथवा शुक्रामला मृत उत्तरे. उसको शुक्रमेह कह-
तेहैं ॥ १०५ ॥

अथ मेहद्विरदसिंहरसः ।

पारदाभ्रकयोर्भस्म मृतलौहाष्टमंसमम् ।

टंकणञ्चैव मध्वाज्यं प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ १०६ ॥

चण्डालीराक्षसीपुष्पैर्दिनमर्द्यनिरुध्य च ।

मूषायामन्तरेपकं दिनैकं तञ्च चूर्णयेत् ॥ १०७ ॥

मेहद्विरदसिंहोऽयं रसः शौद्रैर्द्विमाषकम् ।

लिहेचानुपिबेत्तकैर्निष्कैकटंकणंसदा ॥

पंचवक्रगसोऽप्यत्रदेयंशुक्रप्रमेहजित् ॥ १०८ ॥

अर्थ—पार और अभ्रककी भस्म प्रत्येक एक एक तोला, लोहेकी भस्म आठ तोले, मुद्गागेकी खीलें, सहत और घृत प्रत्येक एक एक तोला, इन सबको एकत्र कर शिवालिंगी और चोरक गंधद्रव्यके फूलोंके रसमें एक दिन खरल करके मृषामें रख मुख बंदकर दिनभर पकावे, जब शीतल हो जाय तब चूर्ण करले, तो मेहद्विगदसिहनामक रस तैयार हो । इसको सहतके साथ दो मासे खावे, पश्चात् चार मासे मुद्गागेकी खीलोंका चूर्ण तक्रके साथ पीवे । इस औषधिको मेवनकरनेमें अथवा पंचवक्रगसको मेवन करनेमें शुक्रमेह दूर होताहै ॥ १०८-१०८ ॥

अथ शीतमेहः ।

शीतमेहीसुबहुशोमधुरश्चातिशीतलम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—वाग्वार मधुर और अत्यन्त शीतलमृत्र उतरे, उसको शीतमेह कहतेहैं ॥ १०९ ॥

अथ नित्यारोग्येश्वरो रसः ।

स्रतंमृताभ्रवंगभ्यांतुल्यभागंप्रकल्पयेत् ।

महानिम्बोत्थबीजस्यचूर्णंयोज्यंत्रिभिःसमम् ॥ ११० ॥

मधुनालेहयेन्मापलालामेहस्यशान्तये ।

सक्षौद्रजनीवात्रलिह्यान्निष्कत्रयंसदा ॥

असाध्यनाशयेन्मेहंनित्यारोग्येश्वरोग्मः ॥ १११ ॥

अर्थ—पारा, अभ्रककीभस्म और वंग यह तीनों समानभाग और वकायनके बीजोंका चूर्ण तीनोंकी बराबर लेवे, सबको मिलाकर सहतके साथ प्रतिदिन एक मासे भक्षण करे तो लालामेह दूर होवे । यहां १॥ डेढ़ तोला हल्दीके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटे । यह नित्यारोग्येश्वर रस असाध्यप्रमेहकोभी नष्ट करदेताहै, ॥ ११० ॥ १११ ॥

अथ मेहहरोपायः ।

पाठार्जुनविडंगानांकपायंसंयुतम् ।

अनुपानं प्रयुंजीतमेहं हन्ति चिरन्तकम् ॥

गुंजामूलं पिबेत्क्षरैरनुपानं प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

अर्थ—पाद, अर्जुनकी छाल और वायविडंग इनके काढ़में सहत डालकर पीनेसे अथवा चोंटलीकी जड़को दूधमें पीसकर पीनेसे बहुत दिनोंका प्रमेहरोग नष्ट होता है ॥ ११२ ॥

अथ शनैर्मेहः ।

शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ ११३ ॥

अर्थ—धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा मूत्र, उसका शनैर्मेह कहते हैं ॥ ११३ ॥

अथ लालामेहः ।

लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ ११४ ॥

अर्थ—लागके समान तन्तुयुक्त और पिच्छिल मूत्र उत्पन्न, उसका लालामेह कहते हैं ॥ ११४ ॥

अथ शनैर्मेहलालामेहोपायः ।

प्रमेहगजसिंहोऽत्र देयस्तदनुपानकम् ।

पंचवक्त्रसोऽप्यत्र महानिम्बस्य बीजकम् ॥

अनुपानं प्रदातव्यं तस्य मेहस्य शान्तये ॥ ११५ ॥

अर्थ—प्रमेहद्विगजसिंहस अनुपानके साथ, अथवा पंचवक्त्र रस वकायनके बीजांके अनुपानके साथ मेषन करनेसे शनैर्मेह और लालामेह नष्ट होता है ॥ ११५ ॥

अथ पिष्टमेहः ।

संहृष्टरोमा विष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ ११६ ॥

अर्थ—पिसे चावलके पानीकी समान सफेद और बहुत मूत्र तथा मूत्रनेके समय रोमाँच हो आवे, उसका पिष्टप्रमेह जानना ॥ ११६ ॥

अथ मेहोपायः ।

वंगभस्म मृतं सूतं तुल्यं क्षौद्रैर्विमर्दयेत् ।

द्विगुंजले हयेन्नित्यं हन्ति मेहं चिरन्तनम् ॥ ११७ ॥

अर्थ—वंगकी भस्म और पागेकी भस्म दोनों समान भाग लेकर सहतमें मर्दन कर दो गुंजाप्रमाण प्रतिदिन सेवन करे तो बहुत दिनोंका प्रमेह दूर होवे ॥ ११७ ॥

अथ बहुमूत्रजमेहः ।

शोषस्तापोऽङ्गकाश्यं बहुमूत्रं तृषाभ्रमः ।

अस्वास्थ्यं सर्वग त्रेषु मेहोऽयं बहुमूत्रजः ॥ ११८ ॥

अर्थ—शोष, ताप, अङ्गकृशता, बहुमूत्र, प्यास, भ्रम और सर्वशरीरमें पीड़ा होय, उसको बहुमूत्र प्रमेह कहतेहैं ॥ ११८ ॥

अथ तारकेश्वरग्नः ।

मृतं सूतं मृतं वङ्गं मृतलौहाभ्रकंसमम् ।

मर्दयेन्मधुना चाह्निरसोऽयं तारकेश्वरः ॥ ११९ ॥

माषमेकं लिहेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रं प्रणाशयेत् ।

उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रतः ॥

संलेह्यं मधुना सार्द्धं मनुपानं सुखावहम् ॥ १२० ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, वङ्गकीभस्म, लोहेकीभस्म, अभ्रककीभस्म यह सब समानभाग लेकर एकदिन सहतके साथ खरल कर तो तारकेश्वर ग्न सिद्ध हो, इसको एक मासेभर सहतके साथ खानेमें बहुमूत्ररोग दूर होताहै । इसके ऊपर पके गुलरोंका चूर्ण दो तोले सहतके साथ खावे ॥ ११९ ॥ १२० ॥

अथ प्रमेहोपायः ।

पञ्चवक्त्ररसोऽप्यत्र देयं गुंजाद्वयं हितम् ।

महानिम्बस्य बीजानि पणिष्कं पेपितानि च ॥ १२१ ॥

पलं तण्डुलतोयेन निष्कद्वयधृतेन च ।

एकीकृत्य पिबेन्नित्यं मनुपानं प्रमेहजित् ॥ १२२ ॥

अर्थ—दोगुंजा पञ्चवक्त्ररसको सेवन कर पश्चात् वक्रायनके बीज तीन तोले, चावलोंका जल चार तोले, धृत एकताला इन सबको मिलाकर पान कर तो प्रमेह रोग दूर होवे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अथ क्षाग्मेहः ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ १२३ ॥

अर्थ—खारी जलकी समान गन्धवर्ण रस और स्पर्शहो, उसको क्षाग्मेह कहतेहैं ॥ १२३ ॥

अथ चन्द्रप्रभावटी ।

मृतमृतश्चकाशीशमेलाजातीफलंजटा ।

मधुकंमधुयष्टीचधात्रीदाडिमशर्करा ॥ १२४ ॥

कर्पूरंखादिरंसारंशताह्वाकण्टकारिक ।

अम्लवेतसतुल्यांशंदिनैकंलांगलीद्रवैः ॥ १२५ ॥

भावयेन्मेषीदुग्धैश्चनागवल्ल्यादिनांदिनम् ।

वटिकाबदराकारानाम्नाचंद्रप्रभावटी ॥ १२६ ॥

भक्षयेत्तीव्रमेहतोमेहान्हन्तिमुदुस्तरान् ।

धात्रीपटोलपत्राणां कषायंवाघृतान्वितम् ॥

सक्षौद्रंपाययेच्चानुसर्वमेहप्रशान्तये ॥ १२७ ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, कसीस, इलायची, जायफल, वालछड, महुआ, मुलेठी, आमला, अनार, मिश्री, कपूर, खैरसार, सोया, कटेरी और अमलवेंत यह समान भागलेकर एक दिन कलिहारिके रसमें, एक दिन भैंसके दूधमें और एकदिन पानोंके रसमें भावना देकर बेरकी बराबर गोली बनालेवै । इसको चंद्रप्रभावटी कहतेहैं, यह दुस्तरप्रमेहरोगको दूर करेहै । इसके ऊपर आमला और पटोलपत्र इनका काथ महत और घृतके साथ पीवे तो सर्वप्रकारके प्रमेह रोग दूर होंवें ॥ १२४-१२७ ॥

अथ हारिद्रमेहः ।

हारिद्रमेहीकटुकंहरिद्रासन्निभंदहत ॥ १२८ ॥

अर्थ—कटुरसान्वित, हलदीकी समान रंगवाला और दाहयुक्त मूत्रे, उसको हारिद्रमेह कहतेहैं ॥ १२८ ॥

अथ हारिद्रमेहोपायः ।

मृतंमृतंमृतंवंगमर्जुनस्यत्वचंसिता ।

तुल्यांशंमर्दयेत्त्वल्वेशाल्मलीमूलं द्रवैः ॥ १२९ ॥

दिनान्तेवटिकाकषायमात्राप्रशान्तये ।

द्रवैःशाल्मलिःलानविदविद्यावटीतथा ॥ १३० ॥

अर्थ—पारेकीभस्म, वंगकीभस्म, अर्जुनकी छाल और मिश्री इनको समान भागलेकर सेमरकी जड़के रसमें एकदिन खरलकर सायंकाल एक मासेकी गोली बनालें, एक गोली प्रतिदिन खावे अथवा सेमलके जड़के रसके साथ वेदविद्यावटी सेवन करे तो हारिद्रमेह नष्ट होताहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥

अथ रक्तमेहः ।

विस्त्रमुष्णंसलवणंरक्ताभंरक्तमेवच ॥ १३१ ॥

अर्थ—दुर्गन्धयुक्त, गरम, नमकीन और रुथिरकीसमान लालमूत्र उतरे, उसको रक्तमेह कहतेहैं ॥ १३१ ॥

अथ रक्तमेहोपायः ।

वीरकाष्ठकपायश्चबोलयुक्तंपिबेदनु ।

वासायामूलकंकाथंसघृतंपाययेन्निशि ॥ १३२ ॥

विद्यावागीश्वरोऽप्यत्रतद्रव्यञ्चानुपाययेत् ।

रक्तमेहप्रशान्त्यर्थयोज्यंवामृतवज्रकम् ॥ १३३ ॥

द्विकर्पमूषलीमूलंचूर्णक्षौद्रसितायुतम् ।

कर्पंकलेहयेच्चानुरक्तमेहप्रशान्तये ॥ १३४ ॥

अर्थ—अर्जुनकी छालके काटेको बोलके साथ पीवे, अथवा अड्डमेकी जड़का काथ रात्रिमें पीके साथ पीकर विद्यावागीश्वरसको सेवनकरे या हीरेकी भस्मको सेवन करे किंवा दो तोले मुसलीके चूर्णको सहतके और चीनीके साथ सेवनकरनेसे रक्तमेह नष्ट होताहै ॥ १३२—१३४ ॥

अथ मांजिष्ठामेहः ।

विस्त्रमांजिष्ठमेहेनमंजिष्ठासलिलोपमम् ॥ १३५ ॥

अर्थ—दुर्गन्धित और मैजीठके काथके समान मूत्र उतरे, उसको मांजिष्ठमेह कहतेहैं ॥ १३५ ॥

अथ मांजिष्ठमेहोपायः ।

मंजिष्ठाचन्दनंकर्पःकाथश्चाप्यनुपाययेत् ।

मृगमालारसोऽप्यत्रदेयं गुंजाद्रयंहितम् ॥ १३६ ॥

अर्थ—दो रत्तीभर मृगमाला रसको भक्षण कर पश्चात् मैजीठ और लालचन्दनके काथका पान करे तो मांजिष्ठप्रमेह दूर होवे ॥ १३६ ॥

अथ नीलमेहः ।

नीलमेहेननीलाभंकालमेहमयोनिभम् ॥ १३७ ॥

अर्थ—नीलामूत्र उतरे, उसको नीलमेह कहतेहैं । लोहेकी रंगकी समान मूत्र उतर, उसको कालमेह कहतेहैं ॥ १३७ ॥

अथ हरिशंकररसः ।

मृतसूताभ्रकंतुल्यंधात्रीफलनिजैर्द्रवैः ।

सप्ताहंभावयेत्खल्वेयोगोऽयंहरिशंकरः ॥ १३८ ॥

माषमेकंवटीखादेन्नीलकालप्रशान्तये ।

महानिम्बस्यबीजानिपूर्ववत्तण्डुलोदकैः ॥ १३९ ॥

सघृतंपाययेच्चानुअसाध्यंसाधयेत्क्षणात् ।

अनेनैवानुपानेनपंचवक्त्ररसोहितः ॥ १४० ॥

अर्थ—पारेकी भस्म और ताँबेकी भस्म समानभाग ले सातदिन आमलोंके रसमें खरलकर भावना देवे, इसको हरिशंकर रस कहतेहैं । इसकी एक एक मासेकी गोली बनाकर एकगोली प्रतिदिन खावे तो नीलमेह और कालमेह नष्ट होंगे । और इस हरिशंकर रसपर वकायनके बीज चावलोंके जलमें पीसकर घी-केसाथ अनुपान करें । इसी अनुपानके साथ पंचवक्त्ररसका सेवनकरना हितकारी है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

अथ वसामेहः ।

वसामेहीवसामिश्रंवसाभंमूत्रयेन्मुहुः ॥ १४१ ॥

अर्थ—चर्बीयुक्त और चर्बीके रंगकी समान वाग्वाग् मूत्र, उसको वसामेह कहतेहैं ॥ १४१ ॥

अथ मेहकुलान्तकरसः ।

मृतवंगमृतंतुल्यंमृताभ्रसूतकात्रिधा ।

लशुनंसर्वतुल्यांशनिष्कमेकंविक्षूर्णयेत् ॥ १४२ ॥

बदराभांवटीकुर्यान्नामामेहकुलान्तकः ।

लशुनंछागमूत्रेणवसामेहीचपाययेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म एकभाग, वंगकी भस्म एकभाग, अभ्रककी भस्म दो भाग, लहसुन छ भाग इन सबको एकत्र पीसकर वेरकी बराबर गोली बना लें, इसको मेहकुलान्तक रस कहतेहैं । इस रसको सेवन करनेके पश्चात् लहसुनको बकराके मूत्रमें पीसकर पीवे, इससे वसामेह नष्ट होताहै ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

अथ वसामेहोपायः ।

पंचवक्त्ररसोऽप्यत्रमहानिम्बस्यबीजकम् ।

तण्डुलोदकपानेनसघृतैर्महजिद्रवेत् ॥ १४४ ॥

अर्थ—पंचवक्त्ररसको सेवन करे पश्चात् बकायनके बीजोंको चावलोंके जलमें पीसकर घृत मिलाकर सेवन करे तो वसामेह नष्ट होवे ॥ १४४ ॥

अथ मज्जमेहः ।

मज्जाभंमज्जमिश्रं वामज्जमेहीमुहुर्मुहुः ॥ १४५ ॥

अर्थ—मज्जाकी समान अथवा मज्जामिश्रित मूत्र बारंबार उतरें उसको मज्जामेह कहतेहैं ॥ १४५ ॥

वसामेहिचिकित्सायातांचिकित्सांप्रयोजयेत् ॥ १४६ ॥

अर्थ—जो चिकित्सा वसामेहमें कहीहै वही चिकित्सा मज्जामेहमें करनी ॥ १४६ ॥

अथ क्षौद्रमेहः ।

कपायंमधुरंरूक्षंक्षौद्रवत्क्षौद्रमेहकम् ॥ १४७ ॥

अर्थ—कपेला, मीठा, रूखा और सहतकी समान मूत्र उगको क्षौद्रमेह कहतेहैं ॥ १४७ ॥

अथ क्षौद्रमेहोपायः ।

मृतंसूतंमृतंवंगमर्जुनस्यत्वचंसिता ।

तुल्यांशमर्दयेत्स्वल्वेशाल्मल्यामूलजैर्द्रवैः ॥ १४८ ॥

दिनान्तेवटिकाकार्यामासमात्रप्रमेहहा ।

एषा इन्द्रवटीनाम्नामधुमेहप्रशान्तये ॥ १४९ ॥

त्रुटिशाल्मलिमूलानांमधुनाचानुपाययेत् ।

प्रमेहगजसिंहोऽत्रदेयोवानन्दभैरवः ॥

अनेनैवानुपानेनवेदविद्यावटीह्यपि ॥ १५० ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, वंगकी भस्म, अर्जुनकीछाल और मिश्री यह सबसमान-
भाग लेकर एकदिन सेमलकी जड़के रसमें खरल करके एकएक मासेकी गोली
बनालेवै, इसको इन्द्रवटी कहतेहैं, प्रतिदिन एक गोली खावे और
ऊपरसे सेमलकी जड़ और छोटी इलायची सहतके साथ पीसकर
सेवन करे तो क्षौद्रमेह (मधुमेह) दूर होवे । प्रमेह गजार्सिहरस, आनन्दभैरव-
रस अथवा वेदविद्यावटी, उक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे भी मधुमेह नष्ट
होताहै ॥ १४८—१५० ॥

अथ हस्तिमेहः ।

हस्तीमत्तइवाजस्रमृत्रवेगविवर्जितम् ।

खलसीकंविदग्धञ्चहस्तिमेहस्यलक्षणम् ॥ १५१ ॥

अर्थ—मत्तहाथीकी समान पुनः पुनः वेगरहित, तारसंयुक्त और रुक्लकके
मृते, उसको हस्तिमेह कहतेहैं ॥ १५१ ॥

अथ हरगौरीसृष्टिरसः ।

शुद्धमूतंचतुर्भागंसूताद्धमृतताम्रकम् ।

गंधकञ्चद्वयोस्तुल्यंमस्तुनामर्दयेदिनम् ॥ १५२ ॥

गोलकंबद्धयेद्रस्त्रेवालुकायंत्रगंपचेत् ।

मन्दाग्निनापचेत्तावद्यावत्तप्ताश्चवालुकाः ॥ १५३ ॥

स्पष्टंनशक्यतेतापमथोद्धृत्यविचूर्णयेत् ।

धात्रीफलरसेभाव्यसप्तधागोक्षुरस्यच ॥ १५४ ॥

श्लक्ष्णचूर्णिततःकृत्वाविंशद्भागान्प्रकल्पयेत् ।

भागैकंपूर्वजंचूर्णंसर्वक्षीरेणगोलयेत् ॥ १५५ ॥

निष्कट्टयंवटींकुर्याद्विघृतमध्येविपाचयेत् ।

स्वांगशीतलतांखादेत्प्रत्यहंपाचितांघृतैः ॥ १५६ ॥

महिषीक्षीरकर्षैकमनुपानञ्चसर्वदा ।

हरगौरीसृष्टिरसः सर्वमेहकुलान्तकः ॥

दुग्धौदनघृतपथ्यंशाकंचिचाफलम्भवेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ—शुद्धपारा चार भाग, तौबेकी भस्म दो भाग, गंधक छे भाग इनको दहाके तोड़में एकदिन खरलकर गोलाबना वस्त्रमें बाँध मन्द मन्द अग्निसे बालु-कायंत्रमें पकावै, जबतक बालुका अत्यंत गरम और हाथ नहीं धरा जाय ऐसी न हो जावे तबतक पकावे, फिर निकाल कर चूर्ण करले, फिर इसको आमलोंके और गोखुरुओंके रसमें सातबार भावना देकर बारीक चूर्ण करले, पश्चात् इसके बीस भाग करले । एक भागको दूधमें मिलाकर गोला बना लेवै, उस गोलेकी आठ आठ मासेकी गोली बनाकर घीमें पकावे, जब स्वयं शीतल होजाय तब एक गोली प्रतिदिन खावे, अनुपान दो तोले भैंसका दूध । यह हर-गौरी सृष्टिरस सर्वप्रकारके प्रमेहरोगोंको दूर करेहै । दुग्धान्न, घृत, शाक और इमली इसपर पथ्य है ॥ १५२-१५७ ॥

अथ प्रमेहहरतैलम् ।

निशागोक्षुरकारिष्टसोमवल्कलजांगुलैः ।

लोध्रपद्मसमंजिष्ठाचंदनागुरुदीप्यकैः ॥

पटोलमुस्तभल्लार्थुक्तंतैलविपाचयेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ—तेल एकसेर, जल चार सेर और कल्कके लिये हल्दी, गांखुरु, नीम, भफेदखैर, कड़वी तोरई, लोध्र, पद्माख, मजीठ, लालचन्दन अगर, अजवायन, पटोल, नागर्मोथा और भिलावा यह सब पावभर लेकर यथाविधिमें तेलको मिद्धकर शरीरमें मर्दन करनेसे—वातज, कफज और पित्तज प्रमेह दूर होतेहैं । पग्नु त्रिदोषज अर्थात् सान्निपातिक प्रमेहके दूर करनेके लिये तेल एकसेर लेवै, घृत और तेल मिले हुए एकसेर अर्थात् घृत आधासेर, तेल आधासेर, डालकर पकावे, इसको यमक कहतेहैं ॥ १५८ ॥

अथ कफप्रमेहोपद्रवाणि ।

अविपाकोरुचिश्छर्दिनिद्राकासःसपीनसः ।

उपद्रवाःप्रजायन्तेमेहिनांकफजन्मनाम् ॥ १५९ ॥

अर्थ—अन्नका परिपाक न होना, अरुचि, वमन, निद्रा, खासी और पीनस यह सब उपद्रव कफजप्रमेहरोगमें उत्पन्न होतेहैं ॥ १५९ ॥

अथ पित्तप्रमेहोपद्रवाणि ।

वस्तिमेहनयोस्तोदोमुष्कावदरणंज्वरः ।

दाहतृष्णाम्लिकामूर्च्छाविड्भेदःपित्तजन्मनाम् १६० ॥

अर्थ-वस्ति और लिंगमें पीडा होवे, अण्डकोषोंका पककर फटजाना, ज्वर, दाह, तृषा, खट्टी डकार, मृच्छा और मलभेद, यह उपद्रव पित्तज प्रमेहमें होतेहैं ॥ १६० ॥

अथ वातप्रमेहोपद्रवाणि ।

वातजानामुदावर्तघर्महृद्रहलोलता ।

शूलमुन्निद्रताशोषःकासःश्वासश्चजायते ॥ १६१ ॥

अर्थ-उदावर्त, घर्म, हृद्रयमें पीडा, लोलता, शूल, निद्रानाज, ओष, खाँसी और श्वास यह उपद्रव वातजप्रमेहमें होतेहैं ॥ १६१ ॥

अथ प्रमेहिमृत्युचिह्नानि ।

यथोक्तोपद्रवारिष्टमतिप्रसृतमेवच ।

पिडकापीडितंगाढप्रमेहोहन्तिमानवम् ॥ १६२ ॥

अर्थ-ऊपर कहे हुए अविपाकादि सर्व उपद्रव हों और अत्यन्त शुक्ल-विन तथा पिडिकाओंमें अधिकतर पीडितहो, ऐसा प्रमेहरोगी निश्चय मरणको प्राप्त होता है ॥ १६२ ॥

अथ दशमूलघृतम् ।

उपद्रवाणांशान्त्यर्थघृतमत्रैवकथ्यते ।

दशमूलीशटीदन्तीदेवदारुपुनर्नवा ॥ १६३ ॥

मूलंस्तुह्यर्कयोःपथ्याभूकदम्बश्चपुष्करम् ।

करञ्जवारुणंमूलंपिप्पलीचसमंसमम् ॥ १६४ ॥

प्रतिदशपलंयोज्यंकुलत्थबदरीयवाः ।

इत्येवंपोडशपलंसर्वमेकत्रपाचयेत् ॥ १६५ ॥

अष्टत्रिंशद्गुणेतोयेपादशोषसमाहरेत् ।

वस्त्रपूतःकषायःसपुनःपाच्यइमैःसह ॥ १६६ ॥

चव्यंद्विपिप्पलीभार्ङ्गीवचात्रिवृद्धिडङ्गकम् ।

लोभ्रंपिण्याकशुण्ठीचप्रत्येकंपलमात्रकम् ॥ १६७ ॥

वृणितंयोजयेदत्रघृतप्रस्थयुतंपचेत् ।

घृतावशेषमुत्तार्यकर्षमात्रंप्रयोजयेत् ॥ १६८ ॥

प्रमेहोपद्रवाणाञ्चशमनं परमंहितम् ।

पिडिकाव्रणकासञ्चसर्वोपद्रवशान्तिकृत् ॥ १६९ ॥

अर्थ—अब पूर्वोक्त उपद्रवोंके शान्त करनेके लिये यहां घृत कहते हैं । गायका घी दोसेर, काथके लिये दशमूल, कचूर, दन्ती, देवदारु, पुनर्नवा, थूहरकी जड़, आककी जड़, हरड, भूमिकदम्ब, पोहकमूल, कर्जमूल, वरनाकी जड़ और पीपल दश दश पल, कुलथी, वेर, जौ, यह प्रत्येक सोलह सोलह पल, जल सबमे अडतालीस गुना, शेष चतुर्थांश और कल्कके लिये पीपल, गजपीपल, चव्य, भारंगी, वच, निमोत, वायविडंग, लोध, तिलोंकी खल और सोंठ, प्रत्येक चार चार तोले । सबको मिला यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे, यह घृत प्रमेहजनित पिडिका, व्रण और कासादि सम्पूर्ण उपद्रवोंको शान्त करे ॥ १६३—१६९ ॥

अथान्योपायः ।

सुभावितंसारजलैलाहिपिष्ट्वाशिलोद्भवाः ।

शालिघृतैश्चभुञ्जानःशालिजांगलजैरसैः ॥ १७० ॥

अर्थ—सारजलमें छोटी इलायची और शिलाजीतको पीसकर सेवन करे, और घृत तथा जांगलदेशके जीवोंके मांसगमके साथ शालिधानोंके भातका भोजन करे ॥ १७० ॥

अथ शुक्रमातृकावटिका ।

गोक्षुरबीजं त्रिफलापत्रमेला रसांजनम् ।

धन्याकञ्चविकाजीरं तालीशं टङ्कदाडिमौ ॥ १७१ ॥

प्रत्येकार्द्धपलं दत्त्वा गुग्गुलोः कार्ष्णिकन्तथा ।

रसाभ्रलौहगंधानां प्रत्येकञ्चपलं क्षिपेत् ॥ १७२ ॥

सर्वमेकीकृतं वैद्यो दण्डयन्त्रे विमर्दयेत् ।

घृतभाण्डेतु संस्थाप्य मासमेकन्तु स्वादयेत् ॥ १७३ ॥

दाडिमस्वरसेनैव च्छागीदुग्धेन वाम्भसा ।

चन्द्रनाथेन गदिता वटिका शुक्रमातृका ॥ १७४ ॥

विंशन्मेहान्निहन्त्या शुक्लपित्तसमुद्भवान् ।

द्वन्द्वजान्सन्निपातोत्थान्मूत्रकृच्छ्राश्मरीगदान् ॥

बल-अग्निजननीज्वरदोषनिषूदनी ॥ १७५ ॥

अर्थ—गोखरूके बीज, त्रिफला, तेजपात, छोटीइलायची, रसात, धनियाँ, चव्य, जीरा, तालीशपत्र, मुहागा और अनार प्रत्येक दो दो तोले, गूगुल एकतोला, पारा, अभ्रक, लोहा और गंधक, प्रत्येक चार चार तोले. सबको एकत्र पीसकर घृतके वासनमें रख दें। इसको प्रतिदिन एकमासे भर बकरीके दूधके साथ अथवा अनारके रसके साथ या जलके साथ सेवन करे। यह शुक्रमातृकावटिका श्रीचंद्रनाथने कहीहैं। यह—तीसप्रकारके प्रमेह, वातपित्तोद्भव प्रमेह द्वन्द्वज सन्निपातोद्भव प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और पथगीको दूर करेहैं। यह वटिका—बल, वर्ण और अग्निको बढ़ानेवाली है तथा ज्वरको दूर करे है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

अथ सोमेश्वररसः ।

शालार्जुनकलोध्राणांकदम्बागुरुचन्दनम् ।

अग्निमन्थनिशाद्वन्द्वंधात्रीदाडिमगोक्षुरम् ॥ १७६ ॥

जम्बूदीरणमूलश्रभागमेषांपलार्द्धकम् ।

रसगंधकधन्याभ्रमेलापत्रचपद्मकम् ॥ १७७ ॥

लौहंरसांजनपाठाविडंगं टङ्कजीरके ।

प्रत्येकंपलिकं भागंपलार्द्धं गुग्गुलोरोपि ॥ १७८ ॥

घृतेन वटिकाकृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् ।

गहनानन्दनाथेन रसोयत्नेन निर्मितः ॥ १७९ ॥

सोमेश्वरो महातेजा वातमेहं निहन्त्यलम् ।

एकजं द्वन्द्वजं चोग्रं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ १८० ॥

मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां श्वहलीमकम् ।

भगंदरोदरार्शांसि विविधाः पीडका व्रणम् ॥ १८१ ॥

विस्फोटार्बुदकण्डूश्च स्तपित्ताम्लपित्तके ।

यत्तु ह्यहोदरं रक्तलांशं कासविद्रधीन् ॥ १८२ ॥

लघुपाणिज्जलदोषहृद्युण्यनाशनः ।

छागीदुग्धापानेननारिकेलजलेनवा ॥ १८३ ॥

शीतेनपाकतैलेनयवयूषादियोगतः ।

कुर्याद्युत्तयापवित्रोऽपियुत्तयावात्रुटिवर्द्धनम् ॥ १८४ ॥

अर्थ—सालकी छाल, अर्जुनकी छाल, लोध, कदम्ब, अगर, चन्दन, अरणी, हलदी, दारुहलदी, आमला, अनार, गोखरू, जामुन और खस प्रत्येक दो दो तोले, पारा, गन्धक, धान्याभ्रक, इलायची, तेजपात, पन्नाख, लोहा, रसौत, पाद, बायबिडंग, मुहागा और जीरा प्रत्येक चार चार तोले, गूगुल दो तोले, सबको भलेप्रकारसे पीसकर घीमें मिलाके सोलह सोलह रत्तीकी गोली बनालेवै, यह सोमेश्वररस श्रीमान् गहनानन्दनाथने बड़े यत्नोंसे निर्माण कियाहै । यह सोमेश्वररस महातेजस्वीहै, तथा वातजप्रमेह, एकदोषोंसे उत्पन्न हुआ मेह, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ मेह, तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुवा मेह, उपद्रवयुक्त, बहुतदिनोंका मेह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उदररोग, बवासीर, अनेकप्रकारकी पिडिका, व्रण, विस्फोटक, अर्बुद, कण्डू, रक्तपित्त, अम्लपित्त, यकृत, ग्रीहोदर, गुल्म, शूल, अर्श, खाँसी और विद्रधिरोगको दूर करेहै । बल, वर्ण और अग्निको बढ़ानेवाला और ग्रहबाधाको हरनेवाला है । अनुपान—बकरीका दूध. अथवा नारियलका जल या शीतल सिद्धतैल वा जौ आदिका यूप-है ॥ १७६—१८४ ॥

अथ मेहमुद्गरवटिका ।

रसांजनंविडंदारुबिल्वगोक्षुरदाडिमाः ।

भूनिम्बपिप्पलीमूलंत्रिकण्टत्रिफलात्रिवृत् ॥ १८५ ॥

प्रत्येकंतोलकंदेयलोहचूर्णन्तुतत्समम् ।

पलैकंगुग्गुलुदत्त्वाघृतेनवटिकांकुरु ॥ १८६ ॥

म पैकानिर्मिताचेयंमेहमुद्गरसंज्ञिनी ।

श्रीमद्गहननाथेनलोकनिस्तारकारिणा ॥ १८७ ॥

अपानंप्रकर्तव्यंछागीदुग्धंजलञ्चवा ।

विंशन्मेहंनिहन्त्याशुमूत्रकृच्छ्रंहलीमकम् ॥ १८८ ॥

अश्मरीकामलापाण्डुमूत्र घातमराचकम् ।

षडर्शासित्रणकुष्ठभगन्दरारंका ॥

सुखिनेयदिकर्तव्यात्रिसुगन्धिसमन्विताः ॥ १८९ ॥

गोक्षुरंगोक्षुरबीजः ।

अर्थ—रसौत, बिडनोन, देवदारु, बेल, गोखरू, अनार, बकायन, पीपराभूल बड़ीकाटेरी, अग्निदौन, जवासा, हरड़, बहेड़ा, आमला और निसोत प्रत्येक एक एक तोला, सबकी बराबर लोहेका चूर्ण और गूगुल चार तोले लें, सबको एकत्र पीसकर घृतके योगसे एकएक मासेकी गोली बनावे, इसको मेहमुद्गरवटिका कहतेहैं । यह गहनानन्द वैद्यने लोगोंको आरोग्यकरनेके लिये रचीहै । एकगोली प्रतिदिन बकरीके दूधके या जलके साथ खावे । यह गोली—बीसप्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, पथरी, कामला, पाण्डुरोग, मुत्राघात, अरोचक, छे प्रकारकी बवासीर, व्रण, कुष्ठ, भगन्दर और मसूरिका रोगको दूर करैहै । और जो यह सुखीमनुष्यके लिये बनावै तो इसमें दालचीनी इलायची और तेजपातका चूर्ण डालदेवे ॥ १८९-१८९ ॥

अथ प्रमेहपिडिका तैलम् ।

कणामधुकुष्ठैलारेणुकारजनीद्वयैः ।

समंगाशारिवालोध्रघातकीभिर्विपाचितम् ।

शोधनरोपणंतैलपिडिकायांप्रशस्यते ॥ १९० ॥

कणाभिःकल्कः । जलं चतुर्गुणम् ।

अर्थ—पीपल, मुलैठी, कूठ, इलायची, रेणुका, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, अनन्तमूल, लोध और धायके फूल, इनके कल्कसे सिद्ध किया हुआ तैल—शोधन, रोपण और प्रमेहजनित पिडिकाओंको दूर करैहै ॥ १९० ॥

अथ सर्वप्रमेहहरचूर्णम् ।

त्रिफलामुस्तकंदारुहरिद्रादेवदारुच ।

तत्क्वाथंमतिमान्मेहान्बहुपत्ररजंजयेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ—त्रिफला, नागरमोथा, दारुहलदी, देवदारु, इनके काढेमें अब्रकका चूर्ण डालकर पीनेसे बीसप्रकारके प्रमेह दूर होतेहैं ॥ १९१ ॥

अथ रुद्रासनकायः ।

लोध्रमूर्वाशठीबिल्वभार्ङ्गीकुष्ठविडंगकम् ।

प्रियंग्वतिविषावह्निभूनिम्बकटुरोहिणी ॥ १९२ ॥

चातुर्जातकयुग्मश्चकन्दुकंचेन्द्रवारुणी ।

यवानीपुष्करं पाठाग्रन्थिचव्यंफलत्रयम् ॥ १९३ ॥

कर्पसममम्लकरसेकाथेपादावशेषिते ।

सुशीतलेविनिक्षिप्यतस्मिन्प्रस्थद्वयंमधु ॥ १९४ ॥

पक्षैकरक्षयेद्रूमौसिद्धंरुद्रासनंभवेत् ।

प्रमेहार्शांसिकुष्ठानिपाण्डुत्वंग्रहणीकृमीन् ॥ १९५ ॥

अर्थ—लोध्र, मूर्वा, कचूर, बेल, भारंगी, कूट, वायविडंग, फूलप्रियंगु, अतीम, चीना, चिगयता, कुटकी, चातुर्जात (इलायची, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी) दो भाग, कन्द इन्द्रायन, अजवायन, पोहकर्मूल, पाद, पीपगमूल, चव्य, हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक दो दो तोले, आठसेर नींबू या इमलीके रसमें पकावे जब दो सेर जल शेष रहे तब उतागले शीतल होनेपर चोम-ठनोले सहत मिलादेवे । फिर इसको पन्द्रह दिनतक पृथ्वीमें गाड़ देवे तो रुद्रासन सिद्ध हो, यह रुद्रासन—प्रमेह, बवासीर, कोढ़, पाण्डुरोग, मंत्रग्रहणी और कृमिगोगको दूर करेहै ॥ १९२—१९५ ॥

जातःप्रमेहीमधुमेहिनोवानस्राध्यरोगःसहिवीजदोषात् ।

येचापिकेचित्कुलजाविकाराभवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान्

अर्थ—मधुमेहवाले मनुष्यमें उत्पन्न हुआ जो प्रमेहवान् मनुष्य उसका प्रमेह, वीजके दोषके कारण साध्य नहीं है और जो जिमके कुलमें परंपरासे विकार चलेआतेह वहभी साध्य नहीं है ॥ १९६ ॥

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारकशास्त्रिणामयैश्वर्यकृते रसरत्नाकरे रसचन्द्रिकामापायां

प्रमेहचिकित्सा नामरुद्रादशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ स्थौल्यचिकित्सा ।

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
 हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ १ ॥
 व्यायामयुक्तोऽजीर्णाशीयवगोधूमभोजनः ।
 सन्तर्पणकृतैर्दोषैः स्थौल्ययुक्तो विमुच्यते ॥ २ ॥
 प्रशस्तश्च प्रियङ्गुश्च श्यामाकयवकायवाः ।
 चूर्णकाकोद्रवायुक्तैः कुलत्थैश्च तथा हितैः ॥ ३ ॥
 आढकीनाञ्च बीजानि पटोलामलकैः सह ।
 भोजनान्ते प्रशस्यन्ते पानानुष्णमधूदकम् ॥ ४ ॥
 अरिष्टांश्चानुपानार्थमेदोमांसकफापहान् ।
 अतिस्थौल्यविनाशाय प्रविभज्य प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥
 अस्वप्नञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनामि च ।
 स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तं क्रमेणातिविवर्द्धयेत् ॥ ६ ॥
 प्रातरध्युषितं वारिसेवितं स्थौल्यनाशनम् ।
 उष्णमन्नस्य मण्डं वापि बन्कृशतनुर्भवेत् ॥ ७ ॥

केचित्क्षारत्वेन कर्षणत्वात् कौपंजलमाहुः ॥

अर्थ—परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्गचलना, मधुपान, रात्रिमें जागना, जौ और समेकाभोजन यह सब स्थूलताको अवश्य दूर करेहै । कसरत करनेवाला और अजीर्णमें भोजन करनेवाला मनुष्य जौ और गेहूँका भोजनकरे तो सन्तर्पण दोषसे उत्पन्न हुई स्थूलता नष्ट होजावे । कंगनी, समा, यवक, यव, चूर्णक और कोदौ इन सब धान्योंका अन्न पटोल, आमला, कुलथी और अरहरके यूषके साथ भोजनकरे, भोजनके अंतमें किंचित् गग्गजलके साथ सहतको पीवे ॥ १-७ ॥

अथ व्योषाग्निगुग्गुलुः ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडंगगुग्गुलुं समम् ।

खादेत्सर्वाज्येद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ ८ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग और गुग्गुलु इन सबको समानभागतेकर सेवन करनेसे मेद, कफ, वात और आमवातजनित दूरी दूर होतेहैं ॥ ८ ॥

अथ त्रिफलाद्यंघ्रनम् ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।

निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ ९ ॥

गुडूचीन्द्रमुराकृष्णाकुष्ठसर्पपनागैः ।

तैलमेभिः समैःपक्वसुरसादिरसाप्लुतम् ॥ १० ॥

पानाभ्यंजनगंडूपनस्यवस्तिषुयोजितम् ।

स्थूलतालस्यकण्ठादीज्येत्कफकृतान्गदान् ॥ ११ ॥

अर्थ—तिलका तेल चांगसेर, काथके वास्ते सुग्मागणकी औषधि चौंसठपल, जल ५१२ पल, शेष बत्तीमपल रखे और कलकके लिये हरड़, बहेड़ा, आमला, अतीम, निमोत, चीता, अडूसा, नीम, अमलताम, वच, सतवन, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, इन्द्रजौ, कपूरकचरी, पीपल, कूठ, सर्गों और सोंठ यह सब एकसेर, सबको मिलाकर यथाविधिसे तेलको मिद्धकरे । इस तेलका पान, अभ्यंजन, गंडूप, नस्य और वस्तिमें व्यवहार करनेसे स्थूलता, आलस्य, कण्ठ, आदिके रोग और कफकृत रोग दूर होतेहैं ॥ ९-११ ॥

अथ दुर्गन्धहरोद्वर्तनम् ।

चिंचापत्रस्वरसंप्रक्षितकल्कादियोजितंजयति ।

दुग्धहरिद्रोद्वर्तनमचिगदेहस्यदौर्गन्ध्यम् ॥ १२ ॥

तिन्तिडीपत्रस्वरसेप्रथमतःकल्कादिप्रक्षणंकृत्वा ।

पिष्ट्वादुग्धहरिद्रोद्वर्तनम् ।

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रचूतत्वचोदाडिमवलकलञ्च ।

एषोऽङ्गरागःकथितोऽङ्गनानांजम्बवाःकपायश्चनगाधिपानाम्

अर्थ—इमलीके पत्तोंके रसमें कल्कादि भ्रक्षणपूर्वक पीसके दूध और हरि-
द्राके द्वारा उद्धर्तन करनेसे बहुत दिनोंकी देहकी दुर्गन्ध दूर होती है हरड़, लोव,
नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनका उबटन और जामुनका
काय स्त्रियोंको और राजाओंको प्रशस्त है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ वाडवाग्निरसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधताम्रतालंसमंसमम् ।

अर्कक्षीरैर्दिनमर्धक्षौद्रैर्लह्याद्विगुंजकम् ॥ १४ ॥

पलंक्षौद्रं पलंतोयमनुपानं पिबेत्सदा ।

वाडवाग्निरसो नाम स्थौल्यश्चापि नियच्छति ॥ १५ ॥

अर्थ—शुद्धपारा. गंधक, ताँवा और हरिताल, इन सबको समानभाग लेकर
एक दिन आकके दूधमें खरलकर सहतमें मिला दो रत्तीभर भक्षण करें, उपरसे
चारतोले सहत और चारतोले जलका अनुपान करें । यह वाडवाग्निरस स्थूल-
ताको दूर करे है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ लोहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूलीचत्रिफलाखदिरंवृषम् ।

त्रिवृतालम्बुषाचैव निर्गुण्डीचित्रकंस्तुही ॥ १६ ॥

एषां दशपलान्भागान्स्तोयं पंचाढके पचेत् ।

पादशेषं ततः कृत्वा कपायमवतारयेत् ॥ १७ ॥

पलद्वादशकंदेयं तीक्ष्णलोहं सूक्ष्मं चूर्णितम् ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम् ॥ १८ ॥

पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारयेत् ।

प्रस्थार्द्धमाक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ १९ ॥

एलात्वचः पलार्द्धं च विडंगानि पलत्रिकम् ।

मरिचं चांजनं कृष्णाद्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ २० ॥

पलद्वयन्तु काशीशं श्लक्ष्णचूर्णं कृतं बुधैः ।

चूर्णं कृत्वा सुमथितं स्निग्धभांडे निधापयेत् ॥ २१ ॥

ततःसंशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ।
 अनुपानंपिवेत्क्षीरंजांगलानांरसंतथा ॥ २२ ॥
 वातश्लेष्महरंश्रेष्ठंकुम्भमेहोदरापहम् ।
 कामलापाण्डुरोगञ्चश्वयथुंसभगन्दरम् ॥ २३ ॥
 मूर्च्छाप्रोक्तं विषोन्मादगराणिविविधानिच ।
 स्थूलानांकर्षणंश्रेष्ठंमेदुरेपरमौषधम् ॥ २४ ॥
 कर्षणंदिग्दोषकुक्षिपातालसन्निभम् ।
 बल्यंरसायनंमेध्यंवाजीकरणमुत्तमम् ॥ २५ ॥
 श्रीकरंबुद्धिजननंवलीपलितनाशनम् ।
 नाश्रीयात्कदलीकन्दंकांजिकंकरमर्दकम् ॥
 करीरंकारबिल्वञ्चषट्ककराणिवर्जयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—गूगुल, मुसली, हरड, बहेड़ा, आमला, खैर, अड़सा, निसोत, गोर-
 खमुण्डी, सम्हाल, चीता और थूहर, यह प्रत्येक दश दश पल लेकर पाँच
 आदक जलमें पकावे, जब जल सवा आदक शेष रहै तब उतारकर छान लेवे,
 पश्चात् इसमें बारह पल लोहेका चूर्ण सोलह पल पुराना घी और आठ पल
 बूरा मिलाकर ताँबेके बासनमें पकावे, शीतल होनेपर उतारले । फिर इसमें
 सोलह तोले सहत आठ तोले शिलाजीत, दो तोले दालचीनी, दो तोले इला-
 यची, बारह तोले बायडिङ्ग, काली मिरच, रसाँत, पीपल और त्रिफला,
 प्रत्येक दो दो पल और दो पल कसीस, इन सबका चूर्ण मिलाकर करछीसे
 एकमएक करले, फिर इसको चिकने बासनमें भरके रखदेवे । पश्चात् वमन
 विरेचनादिके द्वारा शुद्ध होकर इसमेंसे दो तोले खावे, ऊपरसे दूध और जांगल-
 देशीय जीवोंके मांसके रसका अनुपान करे । यह वातश्लेष्म, कुष्ठ, प्रमेह, उदर-
 रोग, कामला, पाण्डुरोग, मूजन, भगन्दर, मूर्च्छा, मोह, विषोन्माद, अनेक
 प्रकारके विषविकार, स्थूलता, इनको दूर करे है और मेदरोगकी परम औषधि
 है । बलकारक, रसायन, मेधाजनक, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीको बढ़ानेवाली
 और वलीपलितनाशक है ! इस लोह रसायनके ऊपर केला, कन्द, कांजी,
 करोंदा, करील, करेला यह छे ककार छोड़ देवे ॥ १६-२६ ॥

अथ विडंगादिलौहम् ।

विडंगनागरक्षारकाललौहस्यो मधु ।

यवामलकचूर्णञ्चप्रयोगःस्थौल्यनाशनः ॥ २७ ॥

काललौहवज्रादिजारितपुटितसर्वेषां समभागमिति नि-
श्चलकरः । लौहस्य महावीर्यत्वेन प्राधान्यान्मिलितसर्व
चूर्णसमत्वं युक्तमिति त्रिविक्रमदेवः । मधुनावलेहः ।

अर्थ—वायविडंग, सांठ, जवावार, जौ और आमला, यह सब समान भाग
और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे, सबको एकत्र पीसकर सहतके साथ
सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ २७ ॥

अथ त्र्यशनादिलौहम् ।

त्र्यशनात्रिफलाचव्यं-तुल्यं नमभ्रकम् ।

वागुजीलौहचूर्णञ्चभक्षयेन्मधुसर्पिषा ॥ २८ ॥

परंस्थौल्यहरं वलवर्णविवर्द्धनम् ।

श्रेष्ठं रसायनं मेहं हृष्टं यन्त्रणां विना ॥ २९ ॥

चतुर्लवणं कण्डकं चाविना सर्वचूर्णसमम् ।

लौहं न वायसादिवत्क्रिया ।

अर्थ—सांठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, सेंधानोन,
कालानोन, विडनोन, समुद्रनोन अभ्रक, वापची, यह सब समान भाग और
सबकी बराबर लोहेका चूर्ण, इन सबको एकत्र पीसकर सहत और घीके साथ
सेवन करे । यह स्थौल्यताको दूर करे है, अग्निको बढ़ानेवाला, बलवर्णवर्द्धक, श्रेष्ठ
रसायन; तथा मेह और पीडारहित कुष्ठको हरे है ॥ २८॥२९ ॥

अथ त्रिकत्रयाद्यलौहम् ।

त्रिकत्रयत्रिवृद्धन्तीशशीभल्लातकानिच ।

लौहं स्थौल्यं निहन्त्या महावारिवाम्बुदम् ॥ ३० ॥

त्रिकत्रयं वातं शशीकर्पूरम् ॥

इति रौल्यादिकारः ॥

अर्थ—हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, वायवि-
विडंग, चीता, निसोत, दन्ती, कचूर और भिलावा, यह सब समानभाग,
और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे, सबको एकत्र पीसकर सेवनकरनेसे
स्थूलता दूरहोतीहै ॥ ३० ॥

इति स्थौल्याधिकारः ॥

अथोदरचिकित्सा ।

सर्वमेवोदरप्रायोदोषसंहतिजंमतम् ।

अतोवातादिशमनीक्रियासर्वाप्रशस्यते ॥ १ ॥

वह्निमन्दत्वमायातिकुक्षौदोषप्रपूरिते ।

अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्मन्दाग्नौमलसंचयात् ॥ २ ॥

रुद्धास्वेदाम्बुवाहीनिजनयत्युदरंनृणाम् ।

आध्मानमामताव्यञ्जगतिरल्पाकृशाङ्गता ॥ ३ ॥

शोथःसदनमंगानांदाहस्तन्द्राविवर्णता ।

संगोविड्वातपद्म्याश्चश्वयथुश्चाशुलक्षणम् ॥ ४ ॥

इति पूर्वरूपम् ।

अर्थ—सर्वप्रकारके उदररोग दोषोंके मंचय होनेसे होतेहैं, इसकारण इसमें
वातादि त्रिदोषोंको शान्तकरनेवाली चिकित्साकरै । वातादि दोष कोखमें
पृथित होजानेसे अग्नि मंद होती है, वह मंदाग्नि अजीर्णसे, मलिन अन्न भक्षण
करनेसे और मलसंचयमे, स्वेदवह अम्बुवह स्रोतोंको रोक करके उदररोगको
उत्पन्न करतीहै । आध्मान, आमता, अल्पगति, कृशाङ्गता, शोथ, अवमन्नता,
दाह, तन्द्रा, विवर्णता, मलगोध, अधोवायुका रोध और पैरोंमें सूजन, यह
सब उदररोगके पूर्व लक्षण हैं ॥ १-४ ॥

अथोदररोगहरतक्रयोगाः ।

वातोदरीपिबेत्तक्रंपिप्पलीलवणान्वितम् ।

शर्करामरिचोपेतंस्वादुपित्तोदरीपिबेत् ॥ ५ ॥

यवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तंकफोदरी ।

पिबेन्मधुयुतंतं म्लानातिपेलवम् ॥ ६ ॥

मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।
 युक्तं ह्रीहोदरीजातंसव्योषन्तूदकोदरी ॥ ७ ॥
 वृद्धोदरीतुहपुषादीप्यकाजाजिसैन्धवैः ।
 पिबेच्छिद्रोदरीतक्रंपिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
 त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं त्रैदोषिकोदरी ॥ ८ ॥

नातितनु ।

अर्थ—वातोदररोगी पीपलका चूर्ण और सेंधानोन मिलाकर तक्र पीवे ।
 पित्तोदररोगी शर्करा और कालीमिरचोंका चूर्ण डालकर तक्र पान करे । कफो-
 दररोगी अजवायन, सेंधानोन, जीरा और त्रिकुटेका चूर्ण तथा सहत मिलाकर
 खट्टा तक्र पीवे । ह्रीहोदररोगी सहत, तेल, बच, सोंठ, सोंफ, कूठ और सेंधानोन
 मिलाकर तक्रपान करे । जलोदररोगी त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर तक्र पीवे ।
 बद्धोदर रोगी हाऊबेर, अजवायन, जीरा और सेंधानोनका चूर्ण डालकर तक्र
 पीवे । छिद्रोदररोगी पीपलका चूर्ण और सहतके साथ तक्र पीवे । और सन्निपातो-
 दररोगी त्रिकुटा, जवाखार और सेंधानोन डालकर तक्रपान करे ॥ ५-८ ॥

अथ सामुद्रादिचूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानिश्कारं यवानीमजमोदकञ्च ।
 सपिप्पलीचित्रकशृंगवेरंहिगुंविडं चेति समानिकुर्यात् ॥ ९ ॥
 एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुंजीत पूर्वकवलं प्रशस्तम् ।
 वातोदरीगुल्ममजीर्णयुक्तं वायुप्रकोपं ग्रहणीञ्च दुष्टाम् ॥
 अर्शासिद्धुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरांश्चैव निहन्ति सद्यः १० ॥

अर्थ—सामुद्रनोन, कालानोन, सेंधानोन, जवाखार, अजवायन, अजमोदा,
 पीपल, चीता, अदरख, हींग और विडनोन, यह सब औषधि समानभाग लेकर
 चूर्ण करले, इस चूर्णको घीमें मिलाकर भोजनके पहिले ग्रासमें भक्षण करे ।
 इससे वातोदर, गुल्म, अजीर्णादि नानाप्रकारके रोग, वायुप्रकोप, दुष्टसंग्रहणी,
 दुष्टबवासीर, पाण्डुरोग और भगंदर रोग दूर होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ पित्तोद्भवे विशेषः ।

पित्तोद्भवे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ।
 अथ वानिर्बलं क्षीरबस्तिशुद्धं विरेचयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—पित्तोदर रोगी जो बलवान् होय तो प्रथम जुलाव देवे और जो निर्बल होय तो क्षीरबस्तिके द्वारा दस्त करावै ॥ ११ ॥

अथ नासयणचूर्णम् ।

यवानीहपुषाधान्यत्रिफलासोपकुंचिका ।

कारवीपिप्पलीमूलमजगंधाशठीवचा ॥ १२ ॥

शताह्वाजीरकंव्योषंस्वर्णक्षीरीचचित्रका ।

द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुष्ठंलवणपंचकम् ॥ १३ ॥

विडंगंचसमांशानिदन्त्याभागत्रयंतथा ।

त्रिवृद्विशालेद्रिगुणेसातलास्याञ्चतुर्गुणा ॥ १४ ॥

एतन्नारायणाख्यंचूर्णंरोगगणापहम् ।

नैनत्प्राप्यातिवर्तन्तेरोगाविष्णुमिवासुराः ॥ १५ ॥

तक्रेणौदरिभिःपेयोगुल्मिभिर्बदराम्बुना ।

आनद्धवातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया ॥ १६ ॥

दधिमण्डेनविट्संगेदाडिमाम्बुभिरर्शसिः ।

परिकर्त्तेचवृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ १७ ॥

भगंदरेपाण्डुरोगेश्वासेकासेगलग्रहे ।

हृद्रोगेग्रहणीरोगेकुष्ठेमन्देऽनलेज्वरे ॥ १८ ॥

दंष्ट्राविपेमूलविपेसागरेकृत्रिमेविपे ।

तथार्हस्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेचनम् ॥ १९ ॥

अर्थ—अजवायन, हाऊवर, धनियाँ, त्रिफला, कलौजी, कालाजीरा, पीपरा-मूल, वनतुलसी, कचूर, वच, सोया, जीरा, मोंट, मिर्च, पीपल, सत्यानाशी कटेरी, चीता, जवाखार, सज्जी, पोहकमूल, कूट, पाँचानोन और बायविडंग सब समानभाग, दन्ती तीन भाग निसान दो भाग इन्द्रायन दो भाग और सातला चारभाग इन सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करले । यह नागाय-णनामवाला चूर्ण सर्व रोगोंको नष्ट करेह । इसको तक्रके साथ सेवन करनेसे उदररोग, बेरके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे—गुल्मरोग, सुराके साथ सेवनकर-नेसे—आनद्धवात, प्रसन्नानामवाली मदिगके साथ पीनेसे—वातरोग, दधिमण्डके

साथ सेवन करनेसे—मलबद्धता, अनारके रसके साथ सेवन करनेसे—बवासीर, विषांघिल नीबूके रसके साथ सेवन करनेसे—परिकर्तिका (उदरमें कतरनीसे काटनेकी समान पीडा) और प्रथम स्निग्ध कोष्ठ करके गरम जलके साथ सेवन करनेसे अजीर्ण, भगन्दर, पाण्डुरोग, श्वास, खाँसी, गलग्रह, हृदयरोग, संग्रहणी, कोढ़, मन्दाग्नि, ज्वर, जंगमविष, स्थावर विष और कृत्रिम विष, यह सब रोग दस्त होकर दूर होजातेहैं ॥ १२-१९ ॥

अथोदरादिरोगहरकाथः ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्वाभयाकषायः ।

सर्वाङ्गशोथोदरकासशूलश्वासान्वितपाण्डुगदंनिहन्ति २० ॥

अर्थ—पुनर्नवा, नीम, पटोल, सांठ, कुटकी, गिलोय, देवदारु और हरड इनका काथ पीनेसे—सर्वाङ्गशोथ, उदररोग, खाँसी, शूल, श्वास और पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ २० ॥

अथ बिन्दुघृतम् ।

अर्कक्षीरंपलेद्वेचसुहीक्षीरंपलानिषट् ।

पथ्याकम्पिल्लकंश्यामाशम्याकगिरिकर्णिका ॥ २१ ॥

नीलिनीत्रिवृतादन्तीशंखिनीचित्रकन्तथा ।

एतेषांपलिकैर्भगैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २२ ॥

अथास्यमलिनेकोष्ठेबिन्दुमात्रंप्रदापयेत् ।

यावतोऽस्यपिबेद्विन्दूंस्तावद्वेगान्विरिच्यते ॥ २३ ॥

गुल्मकुष्ठमुदावर्तश्वथुञ्जभगन्दरम् ।

शमयेदुदराण्यष्टौवृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

एतद्विन्दुघृतन्नामयेनात्यक्तोविरिच्यते ॥ २४ ॥

जलं चतुर्गुणम् ।

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, जल आठ सेर और कल्कके लिये आकका दूध दोपल, थूहरका दूध छे पल, हरड, कवीला, अनन्तमूल, अमलतास, कोयल, नील, निसोत, दन्ती, शंखपुष्पी और चीता, प्रत्येक चार चार तोले । यथा-विधिसे घृतको पकाकर जितने इसके बिन्दु पान करै उतने ही दस्त होंगे यह

गुल्म, कोढ, उदावर्त्त, सूजन, भगन्दर और आठ प्रकारके उदररोगोंका नाश करैहै, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षांको नाश करैहै ॥ २१-२४ ॥

अथ नाराचघृतम् ।

लोध्रचित्रकचव्यानिविडंगं त्रिफलात्रिवृत् ।
शंखिन्यतिविषाव्योषमजमोदानिशाद्वयम् ॥ २५ ॥
दन्तीचकार्षिकं सर्वगोमूत्रस्य पलाष्टकम् ।
चतुष्पलं सुहीक्षीरं राजवृक्षफलं तथा ॥ २६ ॥
एतैश्चतुर्गुणेतोये घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
उदरं चामवातश्च प्लीहा गुल्मभगन्दरान् ॥ २७ ॥
निहन्त्यचिरयोगेन गृध्रसीस्तम्भमूरुजम् ।
बृहन्नाराचकन्नामघृतमेतद्वथामृतम् ॥ २८ ॥

अर्थ-गायका घी दोसेर, गोमूत्र एकसेर थूहरका दूध मोलह तोले, लोध्र, चीता, चव्य, वायविडंग, हर्ड, आमला, बहेडा, निसोत, शंखपुष्पी, अतीस, सांठ, मिरच, पीपल, अजमोदा, हलदी, दारुहलदी और दन्ती इनका काथ आठसेर, यथाविधिसे इस घृतको पकाकर सेवन करनेसे उदररोग आमवात, प्लीहा, गुल्म, भगन्दर, गृध्रसी और उरुस्तम्भरोग दूर होताहै । यह बृहन्नाराच नामवाला घृत अमृतकी समान है ॥ २५-२८ ॥

अथ बृहदग्निमुखचूर्णम् ।

स्वर्जिंक्षारं यवक्षारमल्लातंगजपिप्पली ।
अजमोदावचामुस्तादेवदारुविडंगकम् ॥ २९ ॥
पाठादारुनिशाहिं गुधात्रीदाडिमपुष्करम् ।
वृद्धदारुत्रिवृच्चिञ्चयवानीजीरकद्वयम् ॥ ३० ॥
कर्पूरो नागरं भार्ङ्गीमारिचं चाम्लवेतसम् ।
मण्डूरमभयाशुण्ठीचातुर्जातकरंजकम् ॥ ३१ ॥
आरग्वधंतथापंचलवणानिविचूर्णयेत् ।
शिशुब्रध्नत्वचक्षारं वारुणीपत्रचिंचिका ॥ ३२ ॥

तिलकाण्डकोकिलाक्षःक्षारश्चैवापमार्गजम् ।
 तुल्यांशमातुलुंगाम्लैर्भावनान्नयभावितम् ॥ ३३ ॥
 मुस्ताक्राथैस्त्रिधाभाव्यमार्द्रकोत्थद्रवैस्त्रिधा ।
 बृहदग्निमुखोन्माकैर्षेकमुदरापहम् ॥ ३४ ॥
 गोमूत्रैर्वासुरापानैरारनालैरथापिवा ।
 असाध्योदरसाध्यश्चगुल्महन्तित्रिदोषजम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—सजी, जवाखार, भिलावा, गजपीपल, अजमोदा, वच, नागरमोथा, देवदारु, वायविडंग, पाठ, दारुहलदी, हींग, आमला, अनार, पोहकरमूल, विधारा, निसोत, इमली, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, कपूर, सोंठ, भारंगी, कालीमिरच, अमलवन्त, मंड़र, हरड़, सोंठ, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, करंज, अमलतास, पाचोनोन, सेंजिनेकी छाल और जड, इन्द्रायणके पत्ते, इमली, तिलकांड, तालमखाना और चिरचिटा इन छहों औषधियोंका खार, यह सब समान भाग लेकर वारीक चूर्ण पीस विजोरे नीबूके रसकी तीन भावना देवे, फिर नागरमोथेके काढेकी तीन भावना देवे, पश्चात् अदरखके रसकी तीन भावना देवे तो बृहदग्निमुख नामवाला चूर्ण तैयार हो । मात्रा दो तोलेकी है । सुपान—गोमूत्र या सुग अथवा कांजी है, यह साध्यासाध्य उदररोग और त्रिदोषज गुल्मरोगको नष्ट करे ॥ ३३-३५ ॥

अथ त्रैलोक्यसुन्दररसः ।

शुद्धमूतद्विधागंधमृताभ्रैर्नैवध्वंविपम् ।
 कृष्णजीरंविडंगश्चगुडूचीसत्त्वमेवच ॥ ३६ ॥
 वचाचैवयवक्षारंप्रत्येकस्याद्रसार्द्रकम् ।
 निर्गुण्डिकाद्रवैश्चाद्विबीजपूररसैर्दिनम् ॥ ३७ ॥
 मर्दयेच्छोषयेत्सोऽयंरसस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
 गुंजाद्वयंवृतेलेह्यंवातोदरकुलान्तकम् ॥ ३८ ॥
 पलैकंचित्रकंक्षुःखंदिगोमूत्रशकृजलैः ।
 पाच्यंपादावशेषश्चवृत्प्रस्थंविपाचयेत् ॥ ३९ ॥

पलैकैश्चयवक्षारं पि । पक्त्वावतारयेत् ।

तत्कार्षिकं पिबेच्चानुस्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—शुद्धपारा एकभाग, गंधक दोभाग और सेंधानोन, अभ्रककी भस्म, मीठा, कालाजीरा, वायविडंग, गिलोयका सत्त्व, वच और जवाखार, प्रत्येक १॥ डेढभाग, इन सबका बारीक चूर्णकर एक दिन सम्हालूके रसमें और एकदिन विजोरे नीबूके रसमें खगलकर सुखालेवे तो त्रैलोक्यसुन्दर रस तैयार हो । इसको दो गुंजाभर घृतके साथ खावे, इसमें वातोदर दूर होता है । घृत दो सेर, गोमूत्र चारसेर, गोबरका रस चार सेर और कल्कके लिये चीतेकी जड़का चूर्ण चार तोले और जवाखार चार तोले सबको मिलाकर घृत सिद्धकर त्रैलोक्यसुन्दर रसमें अनुपान करे ॥ ३६-४० ॥

अथोदरारिरसः ।

रसेनताम्रायसभस्मगंधंशिलाहरिद्राजयपालतुल्यम् ।

शिलाजतुटंकणकञ्चसर्वविमर्द्यसम्यक्परिभावयेच्च ॥ ४१ ॥

निर्गुण्डिकाञ्चूषणभृंगराजचित्रार्कतौयेनदिनप्रमाणम् ।

क्वाथेननिम्बस्यदिनप्रमाणंसिद्धोरसः स्यादुदरारिरसज्ञः ॥

यथाशनिर्भूधरपक्षपातेतथारसोऽयं ह्युदरं निहन्ति ॥ ४२ ॥

अर्थ—परिकी भस्म, ताँबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, गंध, मनशिल, हलदी, जमालगोटा, शिलाजीत और मुहागा, यह सब समानभाग लेकर बारीक चूर्ण बना सम्हालू, सोंठ, मिर्च, पीपल, भांगरा, चीता और आकके रसमें एकदिन खगल करे फिर नीमके काढ़ेमें एकदिन खगल करे तो उदगारिनाम-वाला रस तैयार हो । जैसे वज्र पर्वतोंके शिखरोंको तोड़ डालता है वैसेही यह उदगारि रस उदररोगोंको नष्ट करता है ॥ ४१॥४२ ॥

अथ वैश्वानरी वटी ।

शुद्धसूतंसमंगंधमृतायः सशिलाजतु ।

रसमानंप्रकर्तव्यं रसस्य द्विगुणं विषम् ॥ ४३ ॥

त्रिकटुश्चित्रकंकुष्ठं निर्गुण्डी सुसलीरजः ।

अजमोदादशांश्चैनप्रत्येकञ्च प्रकल्पयेत् ॥ ४४ ॥

पंचांगनिम्बक्वाथेन भावनाचैकविंशतिः ।

ः गराजरसे सप्त त्वाक्षौद्रेण लोडयेत् ॥ ४५ ॥

भक्षयेद्दूरीभात्रां वटिकां तां दिवानि शि ।

श्लेष्मोत्प्रेक्षि हन्त्याशुदा मावैश्वानरीवटी ॥ ४६ ॥

देवदारुवह्निमूलकल्कं क्षीरानुपाययेत् ।

भोजनं व्योषदुग्धं च कुलत्थेन रसेन वा ॥ ४७ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लोहेकी भस्म और शिलाजीत, यह सब समान भाग, मीठा दो भाग, साँठ, मिरच, पीपल, चीता, कूठ, सम्हाल, मुसली और अजमोदा, यह प्रत्येक औषधि दशांश भाग लेवे, सबका बारीक चूर्ण कर पंचांगनिम्ब (नीमके फल, फूल, पत्र, मूल, छाल) के काथमें इक्कीस भावना देवे, पश्चात् भांगरेके रसमें सात भावना देवे फिर इसमें सहत मिलाकर बेरकी बराबर गोली बनालेवे, एक गोली रातमें तथा दिनमें भक्षण करे तां कफोदर दूर होवे, इसको वैश्वानरवटी कहते हैं, अनुपान देवदारु और चीतेकी जड़का कल्क दूधके साथ त्रिकुटेका चूर्ण, दूध और कुलथीके रसके साथ भोजन करे ॥ ४३-४७ ॥

अथ जलोदरारिरसः ।

रसेन गन्धद्विगुणं शिलाचशिलाचबीजं जयपालकस्य ।

फलत्रयं त्र्यूषणकञ्च चित्रं सर्वविचूर्ण्य अपि विभावयेच्च ४८

दन्ती सुही भृंगरसे पृथक् च संभाव्य संशोष्य च सप्तवारान् ।

वयोबलं वीक्ष्य मिदं ददीत जाते विवेके च ददीत पथ्यम् ४९ ॥

अल्पं सतक्रं शिशिरानुपायी जाते बले तत्पुनरेव दद्यात् ।

तत्रेण रोगः समुपैति शान्तिं सिद्धौ रसो नाम जलोदरारिः ५०

अर्थ—पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, मैन्शिल दो भाग, हलदी दो भाग, जमालगोटा दो भाग, हरड दो भाग, बहेडा दो भाग, आमला दो भाग, साँठ दो भाग, मिरच दो भाग, पीपल दो भाग और चीता दो भाग इन सबका बारीक चूर्ण कर, दन्ती, थूहर और भांगरेके रसमें पृथक् पृथक् सात भावना देकर सुखालेवे । अवस्था और बलको विचारकर इस रसको सेवन करे । अनुपान थोडासा तक्र और शीतल जल है । यह जलोदरारि सिद्धरस तक्रके साथ शीघ्रही जलोदर रोगको नष्ट करे है ॥ ४८-५० ॥

अथ वडवाग्निमुखरसः ।

हिंशुत्रिकटुत्रिफलादेवदारुनिशाद्रयम् ।

भञ्जत्तदंशिशुफलंकटुकीचविकावचाम् ॥ ५१ ॥

शुण्ठीतुल्यंपंचपटुतुल्यंदध्राविपेपयेत् ।

अन्तर्धूमगतोदग्धःक्षारोयंवडवानलः ॥ ५२ ॥

त्रिदिनं मदिरायुक्तं पिबेद्भाकांजिकैः सह ।

मंदोष्णेनाथवापेयमुदरंगुल्मशूलनुत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—हींग, त्रिकुटा, त्रिफला, देवदारु, हल्दी, दारुहलदी, भिलावा, सेंजि-
नेके बीज, कुटकी, चव्य. वच, सोंठ, पाँचानोन, यह सब समानभाग लेवे और
सबकी बराबर दही लेवे, इन सब औषधियोंको दहीमें पीसकर अन्तर्धूममें
दग्धकरें तो वडवानल नामवाला क्षार सिद्धहो । इसको तीनदिन मदिराके साथ
या कांजीके साथ अथवा शतशीत जलके साथ सेवनकरें तो उदररोग, गुल्म
आर शूल नष्ट होताहै ॥ ५१-५३ ॥

अथाग्निकुमाररसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधं शुद्धतालमनःशिला ।

तुल्यांशंचैत्रकंमूलंयवमामृजैर्द्रवैः ॥ ५४ ॥

जम्बीरैश्चतथामर्द्यतद्गोलं ग्रावसंपुटे ।

रुद्धाबहिर्माषपिष्टैस्तयोर्लेप्यञ्चसंपुटम् ॥ ५५ ॥

गोधूमपिष्टिकावाथविलिप्यावस्त्रमृत्तिका ।

विशोष्यपाचयेद्यन्त्रेद्विपड्यामंसुवालुके ॥ ५६ ॥

क्रमवृद्ध्याग्निनापाच्यंस्वांगशीतंसमुद्धरेत् ।

दशमांशंविपंदत्त्वाविपांशंमृतताम्रकम् ॥ ५७ ॥

ज्वालामुख्याद्रवैःसर्वभावयित्वात्रिसप्तधा ।

न्यूनाञ्चसजीराद्रवैर्भाव्यंत्रिसप्तधा ॥ ५८ ॥

रसोद्वाग्निकुमारोऽयंसेव्यगुजाद्वयंसदा ।

ताम्बूलपत्रसंयुक्तमुदरवातगुल्मजित् ।

काकजंघाकषायश्च ह्यनुपानंसदापिबेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ—शुद्धपाग, शुद्धगंधक, शुद्धहिंगिताल, शुद्धमैन्शिल और चीतेकी जड़, इन सबको समानभाग लेकर यव और मसूरके काथमें तथा जम्बीगीनीवृक्षके रसमें खरलकर गोला बनालेवे, उस गोलेको पत्थरके सम्पुटमें रख ऊपरसे उड़दोंकी पिट्टीका लेपकर बन्दकर देवे, अथवा गेहूंकी पिट्टीमें लेपकर कपगैदी करे फिर सुखाकर आठ प्रहरतक चालकायंत्रमें पकावे, क्रमसे बढ़ाकर अग्नि देवे, स्वांगजीतल होजानेपर निकालकर चूर्णकरले, फिर इसमें दशभाग विष, विषका चौथा भाग मराहुआताँवा मिलाकर कलिहारीके रसमें इक्कीमिवाग भावना देवे तो अधिकुमाररस सिद्ध हो, इसको निरन्तर पानमें रखकर दो गुंजाभर खावे और ऊपरसे काकजंघाका अनुपान करे इससे वातगुल्म दूर होताहै ॥५४-५९॥

अथ वह्निवीर्योरसः ।

चतुःमूतस्यगंधाष्टौरजनीत्रिफलाशिला ।

प्रत्येकं स्याद्विभागेन त्रिवृज्जैपालचिकत्रम् ॥ ६० ॥

प्रत्येकञ्चैकभागस्यात्त्र्युषणं जीरदन्तिका ।

प्रत्येकमष्टभागस्यात्शुष्णीकृत्यविचूर्णयेत् ॥ ६१ ॥

जयन्तीस्तुक्पथोभृंगीतथाचैरण्डतैलकैः ।

प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥ ६२ ॥

वह्निवीर्यरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ।

विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम् ॥ ६३ ॥

दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ।

नाभ्युत्तरे जलं स्वाप्यं कुर्याद्वस्तिजलोदरम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—पाग द्वागभाग, गंधक आठभाग, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, मैन्शिल, प्रत्येक एक एकभाग, निमांत एकभाग, जमालगोटा एकभाग, चीता एकभाग, सोंट, मिरच, पीपल, जीरा, दन्ती प्रत्येक आठ आठ भाग लेकर सबका बारीक चूर्ण करले, फिर इसको अरणी, थूहर और भांगरेके रसकी तथा अण्डीके तेलकी पृथक् पृथक् सात भावना देवे तो वह्निवीर्य नामवाला रस सिद्ध हो, इसको चारमासेभर गरम जलके साथ सेवन करनेसे जुलाब होजाताहै ।

दिनके अंतमें तक्र और सेंधेनोनके साथ भात भोजन करे । इसके ऊपर शीतल जल कदापि न पीवे । इसके सेवन करनेके पश्चात् नाभिकी उत्तरकी ओर जल-
स्त्राव करे । इसमें जलोदररोग दूर होता है ॥ ६०-६४ ॥

अथ श्लेष्मशैलेन्द्रगमः ।

गंधकंपारदं शुद्धं त्र्यूपणं जीरकद्वयम् ।

शटीशृंगीयवानीचपुष्कं रामठं तथा ॥ ६५ ॥

सैन्धवं यावशुकञ्चटकणं गजपिप्पली ।

जातीकोपाजमोदाचवचायासलवंगको ॥ ६६ ॥

धौतूरकानकं बीजकटुफलं च व्यकन्तथा ।

प्रत्येकं तोलकं चैषां शृङ्गक्षणां चूर्णानि काग्येत् ॥ ६७ ॥

पापाणे विमले पात्रे घृष्टं पाषाणमुद्गरेः ।

विल्वमूलं रसंदत्त्वा अर्कचित्रकदन्तिका ॥ ६८ ॥

शिवर्गफंजिकावामानिर्गुण्डीगणिकारिका ।

धत्तं कृष्णजीरं च पाणिभद्रकपिप्पली ॥ ६९ ॥

कण्टकार्याद्रकं तत्र मूलान्येतानि चाहरेत् ।

एवं मूलं रसंदत्त्वा घृष्टमातपशोपितम् ॥ ७० ॥

गुंजाप्रमाणवटिकां काग्येच्च चिकित्सकः ।

ततश्चतुर्वर्टीखादेन्नित्यमार्द्रकसंयुताम् ॥ ७१ ॥

उष्णतोयानुपानं च सर्वव्याधिं नियच्छति ।

विंशतिं श्लेष्मिकां चैव सन्निपातान्सुदारुणान् ॥ ७२ ॥

प्रमेहान्विंशतिं चैव च गुल्मं तथा परम् ।

उदराष्टकदुर्नाम आपवातं विनाशयेत् ॥ ७३ ॥

पंचपांड्यामयान् हन्ति किमिस्थोऽप्यमयापहा ।

यथाशुष्केन्येयद्विस्तथा चाग्निविवर्द्धनम् ॥

श्लेष्मशैलेन्द्रोऽयं गेन्द्रः पर्गकीर्तितः ॥ ७४ ॥

अर्थ—शुद्धगंधक, शुद्धपारा, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कालाजीरा, कचूर, काकडाशिगी, अजवायन, पोहकरमूल, हींग, सैंधानोन, जवाखार, सुहागा, गजपीपल, जायफल, अजमोदा, वच, जवासा, लैंग, कनक धतूरेके बीज, कायफल और चव्य, प्रत्येक एकएक तोला लेकर सबका बारीक चूर्णकर उत्तम पत्थरके खरलमें डालकर पत्थरकी मूसलीसे खरल करै, फिर इसमें बेलकी जड़का रस, आक, दन्ती, पुनर्नवा, भारंगी, अडूसा, अरणी, कालाजीरा, पारिभद्र, पीपल, कटेरी और अदरख इन सबकी जड़का रस डालकर घोटे फिर धूपमें सुखाकर चौटलीकी बराबर गोली बनाले, प्रतिदिन चारगोली अदरखके रसके साथ खावे और ऊपरसे गरमजलका अनुपानकरै, यह सर्वप्रकारके रोग, बीसप्रकारके प्रमेह, दारुणसन्निपात, २० प्रकारके कफरोग, पाँचप्रकारके गुल्म, आठप्रकारके उदररोग, बवासीर, आमवात, पाँचप्रकारके पाण्डुरोग कृमिरोग और स्थाल्यरोगको दूर करताहै । जिसप्रकार सूखे काष्ठमें अग्नि बढ़तीहै, उसीप्रकार यह श्लेष्मशैलेन्द्ररुद्ररस अग्निको बढ़ावै है ॥ ६५-७४ ॥

अथ ब्रह्मवटी ।

विडंगं दाडिमं कुण्ठं निम्बं त्वग्दहनं वचा ।

अपं पाठादेवदारुनिशाव्याग्रनशाधया ॥ ७५ ॥

विल्वकं रोहिणीचैलात्रिवृत्प्रत्येकं कर्पूरिकम् ।

जैपालबीजचूर्णं च दन्तीमूलं पलं पलम् ॥ ७६ ॥

ब्रह्मदण्डीरसप्रस्थं पलमाज्यं पुरातनम् ।

पूर्वकल्कयुतं पाठचं मृद्वग्निना सुपातितम् ॥ ७७ ॥

भक्षयेद्बदराकारानित्यं ब्रह्मवटीं शुभाम् ।

चतुःपष्टचतुस्त्रयाधीन्साध्यासाध्यान्निहन्त्यलम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—वायविडंग, अणार, कूट, नीमकी छाल, पीता, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, पाठ, देवदारु, हलदी, व्याघ्रनख, इगड, जैत्र, कुटकी, इलायची और निसोत प्रत्येक दो दो तोले, जमालगोंदेका चूर्ण और दन्तीकी जड़, प्रत्येक चार चार तोले, ब्रह्मदंडीका रस चौंसठ तोले, पुगना बी चार तोले, इन सबकी भिलाकर मृदु अग्निसे पकावे, पश्चात् घेरकी बराबर गोलियें बना लेवे, इनको

ब्रह्मवटी कहतेहैं । प्रतिदिन एक गोली खावे, इससे चौंसठ प्रकारकी साध्या-
माध्य उत्तर व्याधियाँ नष्ट होतीहैं ॥ ७५-७८ ॥

अथोदरादिरोगप्रयोगः ।

सुहृत्कदन्तीधववह्निफञ्जीशोथारिपाशीशनकन्दकन्दः ।
जामातृपालिन्धीमाणाम्निवाणाबंडांगतालंखरमंजरीकः ७९
प्रत्येकशःक्षीरचतुष्पलांशस्तथापलाशस्यसमैःसमैःस्यात् ।
चतुर्गुणेक्काथजलाष्टशेपचैद्विधिज्ञोविधिशुद्धलौहम् ॥ ८० ॥
चूर्णीकृतंतत्पुटितंपुटेनतन्तुच्युतंपोडशिकंपलानाम् ।
वर्षाभुम्ल्लातकवह्निदन्तीत्रिवृद्वाक्षीरविबुद्धमूलम् ८१ ॥
कंचुकीतालमूलीचपीवरीगिरिकर्णिका ।
नीलिनीचवृहत्पत्रंशम्याकबलमासनम् ॥ ८२ ॥
चतुष्पलांशंक्रथिताष्टशेपंसुहृत्कदुग्धेनपलाष्टकेन ।
दत्त्वापचेत्ताम्रमयेचपात्रेपलैर्द्विरष्टौहविपस्तथैव ॥
अमूनिचूर्णानिचसिद्धशीतेशिपेत्तथालौहरजःसमानि ॥
लवणानिचसर्वाणिश्यामःपंचोपणानिच ॥
मरिचंचाजमोदाचहिंशुम्ल्लातकानिच ॥ ८४ ॥
चित्रकस्तालमूलीचगवाक्षीत्रिवृतामृता ।
वर्षाभूशूरणोमाणोविडंगंदन्तिग्रन्थिकम् ॥ ८५ ॥
पलंमाक्षिकचूर्णस्यकंगुष्ठस्यशिलाजतोः ।
गुग्गुलोर्गन्धकस्यापिपाण्डस्यपलंपृथक् ॥ ८६ ॥
शीतेपलाष्टकंक्षौद्रंदत्त्वामधुघृतान्वितम् ।
लौहचूर्णेनसंवृष्यलौहपात्रेचिगंभिषक् ॥ ८७ ॥
विधिज्ञोक्तेनविधिनादिनादागविहाग्वान् ।
अनुपानंतथासात्स्यंकुर्वन्नित्यनिगमयः ॥ ८८ ॥
उदरेषुचसर्वेषुशोथेषुविविधेषुच ।

अशौरीगविशेषेणगुल्मपाण्डौसकामले ॥

विधिनोक्तेनकुर्वाणोनरोरोगान्निन्दति ॥ ८९ ॥

वह्निर्भल्लातकम् । सोथारिः पुनर्नवा ।

अर्थ—थूहर, आक, दन्ती, धवा, भिलावा, भारंगी, पुनर्नवा, वग्ना, चर्मका-
रालु, वनजर्माकन्द, हुलहुल, करियावासाऊ, मानकन्द, चीता, शान्ता, पिया-
बाँसा, चिचिटा और ढाक प्रत्येकका क्षार, चार चार पल लेकर चौगुने जलमें
पकावे, जब आठवाँभाग जल शेष रहे जाय तब उतारले, पश्चात् शुद्ध लोहेका
आग्निमें पकाकर बारंबार इस क्षार जलमें बुझाकर जागण करें । फिर पुनर्नवा,
भिलावा, चीता, दन्ती निर्मात, गोरखकडी, आककाजड, क्षारकचुकी,
सुसली, मतावर, अपराजिता, नीलकावृक्ष, वटपत्र, अमलतास, खिगंदा और
विजयनगर प्रत्येक औषधि चार पल, जल सबसे चौगुना लेवे, सबको मिलाकर
आटावे, जब जल आठवाँभाग शेष रहे तब उतार लेवे, फिर इस काथमें थूह-
रका दूध चार पल, आकका दूध चार पल और गायका घी मोलहपल मिलावे
ताँबक पात्रमें पकावे, जब गाढ़ा होजाय तब प्रोक्त लोहका चूर्ण १५ पल
पाँचोनात, त्रिशार, पंचकोल, मिर्च, अजमोदा, हांग, भिलावा चीता, सुसली,
गोरखकडी, निर्मात, गिलाय, पुनर्नवा, जर्माकन्द, मानकन्द, वायविहंग
दन्तीकाजड और पीपलामूल प्रत्येकका चूर्ण एक पल, मोनामार्गीका चूर्ण
सुग्दासिंग, शिलार्जित, गृगुल, गंधक और पाग प्रत्येक एक पल, चीता
होनेपर आठ पल सहत मिला देवे, सहत घृत और लोहेके चूर्णके साथ लोहेके
पात्रमें घिमकर उत्तम वासनमें भरके रखदेवे । मात्रानुसार सेवन करें । इससे
ऊपर हित आहार और विहार करें । यथायोग्य अनुपान करें । इसमें मनुष्य
नीरोग होजातेहैं । यह—गर्वप्रकाशके उद्गम, विविध प्रकारके शोथरोग
अशौरीग, गुल्म, पाण्डुरोग और कामलादि रोगोंका दूर करें ॥ ७९-८९ ॥

अथ वह्निकुमाररसः ।

गुल्मरामठटंकानिसेन्धवंधान्यजीरके ।

यवानीमरिचंशुण्ठीलवंगैलाविडंगकम् ॥ ९० ॥

प्रत्येकंतोलकंचूर्णलोहचूर्णन्तुतत्समम् ।

रसस्यगंधकस्यापिपलैकंकजलीशुभा ॥ ९१ ॥

घृतेनमधुनाखाद्योरसोवह्निकुमारकः ।

यकृत्प्लीहोदरानाहं हन्ति गुल्मं हलीमकम् ॥ ९२ ॥

बलवर्णाग्निजननः कान्तिपुष्टिविवर्द्धनः ।

मासमेकं प्रकर्तव्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ।

श्रीमद्गहननाथेन रचितो विश्वसंपदि ॥ ९३ ॥

अर्थ—गठिवन. हींग. सुहागा, सेंधानोन. धनियां. जीरा, अजवायन, काली-
मिर्च, सोंठ, लोंग, इलायची और वायविडंग. प्रत्येक एक एक तोला लेकर
सबका बारीक चूर्ण करले और लोहेका चूर्ण सबकी बराबर लेवे. पाग और
गंधककी कजली चार तोले लेवे. सबको मिलाकर घृत और सहतक साथ
सेवन करें तो यह बहिदुमाग्नामवाला रोग यकृत. प्लीहा. उदरगंग. आनाह,
गुल्म और हलीमक रोगको दूर करे. बल. वर्ण और अग्निको बढावे. कान्ति
और पुष्टिको करे. इसको क्रमवृद्धिसे एक महीनेतक सेवन करें । यह श्रीमद्
गहननाथ वैद्यने संसारके उपकारके लिये निमोण किया है ॥ ९०-९३ ॥

अथ पिप्पल्यादि लौहम् ।

पिप्पलीमूलपिण्डाभत्रिकत्रयेन्दुसैन्धवैः ।

योजितोनियतं हन्ति लौहः सर्वादरामयत् ॥ ९४ ॥

पिण्डाभो गंधरसः । इन्दुः कर्पूरम् ।

सर्वचूर्णसमं लौहचूर्णग्राह्यम् । नवायसमत्र श्रेष्ठम् ।

अर्थ—पीपलामूल. बोल, नागरमोथा. वायविडंग. चीता, हड्ड, बहेडा,
आमला. सोंठ. पीपल, मिर्च, कर्पूर और सेंधानोन इन सबका चूर्ण एकभाग
और लोहेका चूर्ण सबकी बराबर लेवे. सबको बारीक पीसकर सेवन करें तो
सर्वप्रकारके उदरगंग दूर होंगे ॥ ९४ ॥

अथ त्रिकट्वाद्यं लौहम् ।

त्रिकटुत्रिफलादन्तीमार्गत्रिमदशुण्ठकैः ।

पुनर्नवासमायुक्तैर्युक्तो हन्ति सुदुर्जयम् ।

लौहः शोथोदरस्थौल्यमदोगदसमंसमम् ॥ ९५ ॥

मार्गोऽपामार्गः । शुण्ठको मूलकशुण्ठकः ।

अर्थ—सोंठ. मिर्च. पीपल. हड्ड. बहेडा, आमला, दन्ती. चिगचिटा,
नागरमोथा. वायविडंग. चीता. मूखामूला और पुनर्नवा यह सब द्रव्य समान-

भाग लेकर सबका चूर्णकर सबकी बराबर लोहेका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे शोथोदर, स्थूलता और मेदरोग नष्ट होता है ॥ ९५ ॥

अथ शोथोदरादिलौहम् ।

पुनर्नवामृतावह्निगवाक्षीमानकंस्तुही ।

सूर्यावर्त्तार्कमूलञ्चपृथगष्टपलंजले ॥ ९६ ॥

पादशेषेशृतद्रोणेसुपूतेवस्त्रछानिते ।

विधिवन्मारितपूतंपुटितंपुटनौषधैः ॥ ९७ ॥

लौहचूर्णाष्टपलिकंपचेदाज्यसमंभिषक् ।

अर्कस्यद्विपलंक्षीरंस्तुहीक्षीरंचतुष्पलम् ॥ ९८ ॥

पलद्वयंकौशिकस्यगंधकस्यपलन्तथा ।

पलार्द्धपारदंतत्रविधिवच्छोधितंक्षिपेत् ॥ ९९ ॥

सिद्धेऽवतारितेचूर्णवक्ष्यमाणंनिधापयेत् ।

कंगुष्टवह्निकन्दानांगवाक्ष्याघंटकर्णजम् ॥ १०० ॥

पलाशस्यचर्वाजानांकंचुकीतालमूलिका ।

त्रिफलायाःक्रिमिरिपोस्त्रिवृद्धन्तीभवन्तथा ॥ १०१ ॥

सूर्यावर्त्तागवाक्ष्यश्चर्वाभूवत्रवह्निचम् ।

एषालौहसमांमात्रांभाण्डेस्निग्धेसुगोपिते ॥ १०२ ॥

संस्थापितेततःशुद्धोगुटीःकुर्याद्विचक्षणः ।

येचशोथाःसुहृर्वाराश्विरकालानुबन्धिनः ॥ १०३ ॥

उदराःपाण्डुरोगाश्चकामलाःसहलीमकाः ।

अशौभगन्दरंगुलमंक्रिमिकुष्ठहरंपरम् ॥ १०४ ॥

येचान्येविविधारोगाश्चिरकालानुबन्धिनः ।

तैसर्वेनाशमायान्तिप्रयोगादस्यशासनात् ॥ १०५ ॥

नातःपरतरंकिंचिच्छोथोदरविनाशनः ॥ १०६ ॥

अत्रपुनर्नवादीनामष्टद्रव्याणांप्रत्येकमष्टपलम् ।

वज्रवल्लीअस्थियुक् ।

अर्थ—पुनर्नवा, गिलोय, चीता, गोरखककडी, मानकन्द थूहर, सूर्यावर्त और आककीजड, प्रत्येक आठ आठ पल लेकर एक द्रोण जलमें औटावे, जब चौथाभाग जल शेष रहे तब उतारकर निर्मलवस्त्रमें छान लेवे, फिर इस काथमें पुटपाकविधिसे माराहुवा लोहा आठपल, घी आठपल, आकका दूध दोपल, थूहरका दूध चारपल, गृगुल दोपल, गंधक चारतोले, पारा दो तोले मिलाकर पकावे, जब पक्कर गाढा होजाय तब मुरदासिंग, चीता, जमीकन्द, गोरखककडी, घण्टाकर्ण, टाकके बीज, क्षीरकंचुकी, मुसली, हरड, बहेडा, आमला, वायविडंग, निर्योन, दन्ती, दुलदुल, इन्द्रायण, पुनर्नवा और हाडजोडा इन सबका चूर्ण लोहेकी समान मिलाकर उत्तम चिकने वासनमें भरके रखदेवे । पश्चात् इसकी गोलियें बनालेवे । यह—असाध्य शोथरोग, उदररोग, पाण्डुरोग कामला, हलीमक, बवासीर, भगन्दर, गुल्म, कृमिरोग, कुष्ठरोग और अन्यान्य असाध्य तथा बहुतदिनोंके रोगोंको दूरकरे । शोफोदरको दूर करनेवाली इससेपरे कोई दूमरी औषधि नहीं है ॥ १६—१०६ ॥

अथोदररोगिणामहितानि ।

औदकानूपजंमांसंशाकंपिष्टकृतंतिलाः ।

व्यायामाध्वजिवास्वप्नयानपानंविवर्जयेत् ॥ १०७ ॥

तथोष्णलवणाम्लानिविदाहीनिगुरूणिच ।

नाद्यादन्नानिजठरीतोयपानंविवर्जयेत् ॥ १०८ ॥

इत्युदराध्यायः ।

अर्थ—जलचरजीवोंका मांस, अनुपदेशके जीवोंका मांस, शाक, पिष्टी, तिल, व्यायाम, मार्गचलना, दिनमें सोना, अश्वार्दिष चढना, मद्यपान, उष्ण, लवण, अम्ल, दाहजनक और भारी द्रव्य तथा जलपान, यह सब उदररोगी त्याग देवे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

इति उदररोगाधिकारः ।

अथ प्रकृतश्रीहोदरचिकित्सा ।

विदाह्यभिप्यन्दिगतस्य जन्तोः प्रदुप्यचात्यर्थमसृक्कफश्च ।

प्लीहाभिवृद्धिकुरुतः प्रसिद्धां प्लीहाहमेनं जठरं वदन्ति ।

तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥ १ ॥

प्लीहानिवेदनः श्वेतः कठिनः स्थूल एव च ।

महापरिग्रहः शीतः श्लेष्मसंभव उच्यते ॥ २ ॥
 सज्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवेदनः ।
 पीतमादौ विशेषेण प्लीहापैत्तिक उच्यते ॥ ३ ॥
 नित्यमाबद्धकोष्ठश्च नित्योदावर्तपीडितः ।
 वेदनाभिः परीतश्च प्लीहावातिक उच्यते ॥ ४ ॥
 क्रमो विदाहसंमोहो वैमल्यं गात्रगौरवम् ।
 रक्तोदभ्रममृच्छाभिर्ज्ञेयं रक्तजलक्षणम् ॥ ५ ॥
 त्रयाणामपि रूपाणि प्लीहासाध्ये भवन्ति हि ।
 स्नेहस्वेदविरेकादिविधेयं प्लीहारोगिणे ।
 अग्निकर्म च कुर्वीत भिषग्वातकफोत्थजे ॥ ६ ॥

अर्थ—विदाही और अभिष्यन्दि द्रव्य भोजन करनेवाले मनुष्यों के रक्त और कफ अत्यन्त दूषित होकर उदर के वामपार्श्व में प्लीहाको बढ़ाकर शरीर में अप्रसन्नता उत्पन्न करते हैं। इसीको प्लीहारोग कहते हैं। कफमें उत्पन्न हुई प्लीहा पीडाग्रहित, सफेद, कठिन, स्थूल, दृढमूल और शीतल होती है। पित्तमें उत्पन्न हुई प्लीहा ज्वर, प्यास, घर्म, अत्यन्त पीडा और पीतवर्णतायुक्त होती है। वातमें उत्पन्न हुए प्लीहारोगमें हृग्ममय मलवद्धता, उदावर्त और पीडा होती है रुधिरमें उत्पन्न हुए प्लीहारोगमें कान्ति, दाह, मोह, विमलता, अंगभार, पीडा, भ्रम शूलकी समान पीडा और मृच्छा होती है। जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिले वह प्लीहारोग असाध्य होता है। सर्वप्रकारके प्लीहारोगोंमें स्नेह, स्वेद और त्वरिचनार्थ विधि तथा कफवातज प्लीहारोगमें अग्निकर्म विधि करना चाहिये ॥ १-६ ॥

अथ प्लीहहर्गचूर्णम् ।

यवानिकाचित्रकयावशूकपट्ट्यन्थिदन्तीमगधोद्धवानाम् ।
 प्लीहानमेताद्रिनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुनामस्तु चतत्र नित्यम् ७ ॥

अर्थ—अजवायन, चीता, जवाखार, पीपलानूल, दन्ती और पीपल इन सबका समान भाग चूर्ण गरम जल और दहीके पानीके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग दूर होता है ॥ ७ ॥

अथान्यप्रयोगः ।

तालपुष्पभवःशारःसगुडःप्रीहनाशनः ॥ ८ ॥

अर्थ—ताड़के फूलोंका खार गुड़के साथ सेवन करनेसे प्लीहा रोग दूर होता-
हे ॥ ८ ॥

अथान्यत्प्लीहत्रचूर्णे ।

रसेनजम्बीरफलस्यशंखनाभीरजःपीतमवश्यमेव ।

कर्षप्रमाणंशमयेदशोपंप्रीहामयंकूर्मसमानमाशु ॥ ९ ॥

सतरात्रान्निहन्त्याशुप्रीहानमतिदारुणम् ।

प्रीहजिच्छरपुंखायाःकल्कस्तक्रेणसेवितः ॥ १० ॥

अर्थ—शंखनाभिका चूर्ण जम्बीरनीचूके रसके साथ सेवनकरनेसे प्लीहा-
रोग दूर होताहै । शर्फोंके चूर्णको दूधके साथ पीनेसे प्लीहारोग दूर
होताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

अथाभयालवणम् ।

पारिमद्रपलाशार्कसुव्रपामार्गचित्रकम् ।

वरुणाग्निमन्थमुष्कथदंष्ट्रावृद्धतीक्ष्णम् ॥ ११ ॥

पूतिकास्फोटकुटजकोपातक्यःपुनर्नवाः ।

समूलपत्रशाखाश्चक्षोदयित्वाप्युलुग्वले ॥ १२ ॥

तिलनालप्रदीप्ताग्निमुदग्धंभस्मशीतलम् ।

शारप्रस्थंगृहीत्वातुन्यसद्वपात्रेदृढेनवे ॥ १३ ॥

जलद्रोणेविपक्तव्यंयावत्पादावशेषितम् ।

पूर्ववत्क्षारकल्केनमाधयेच्चविचक्षणः ॥ १४ ॥

प्रस्थमेकंचलवणंतदद्द्वैश्चहरीतकी ।

तुल्याम्बुभागंगामूत्रंमाधयेन्मृदुनाग्निना ॥ १५ ॥

किंचिद्वास्येनसान्द्रेणमम्यकमिद्धन्तुगक्षयेत् ।

अजाजीव्यूपणंहिगुयवानीपुष्करंशठी ॥ १६ ॥

एतैर्द्धपलैर्भागैश्चूर्णकृत्यप्रदापयेत् ।

लवणञ्चाभयानामभक्षणीयं यथाबलम् ॥ १७ ॥

व्याधीनवेक्ष्यमतिमाननुपानं यथाहितम् ।

यावत्कोष्ठगतात्रोगानिहन्त्याशुनसंशयः ॥ १८ ॥

यकृतप्लीहोदरानाहगुल्माष्टीलाग्निसादजित् ।

प्रतितून्यार्त्तहृद्रोगशर्कराश्मविनाशनम् ॥ १९ ॥

लवणसैन्धवम् ।

अर्थ—फरहद, टाक, आक, थूहर, चिरचिटा, चीता, वरना, अगेथू, मोखा, गोखुरू, कटेरी कटाई, पूतिकरंज, लाल कचनाग, कुडा, कडवी तोरई और पुन-नर्वा, इन सब औषधियोंको मूल पत्र और शाखाओं सहित लेकर ऊखलीमें कूटकर तिलकी लकड़ियोंकी अग्नियमें जलावे, जब यह शीतल होजाय तब इसमेंसे दो सेर क्षार लेकर एक द्रोण जलमें उत्तमपात्रमें पकावे, जब चौथा भाग शेष रहै तब उतारकर, छानलेवे, फिर इस छनेहुए क्षारजलमें सैधानोन दो सेर, हरड एकमेर और गोमूत्र मोलह मेर, मिलाकर मंद मंद अग्निये पकावे, जब गाढ़ा होजाय तब जीरा, सोंठ, पीपल, काली मिरच, हांग, अजवायन, पोहकरमूल और कचूरका चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले मिलादेवे । इस अभयालवणको बलावलका विचार कर भक्षण करे । व्याधिको विचारकर अनुपान करे । यह अभयालवण सर्वप्रकारके कोष्ठगत रोग, यकृत, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, आष्टीला, मन्दाग्नि, प्रतूनिवात, हृदयरोग, शर्करा और पथरीरोगको दूर करै ॥ ११-१९ ॥

अथ गुडपिप्पली ।

पलैकंगुडमादायपिप्पलीञ्चतथैवच ।

हिंगुत्रिकटुकादीनांसैन्धवानां द्विमापिकम् ॥ २० ॥

चित्रकञ्चविडञ्चैवद्वौक्षारौशिखरीन्तथा ।

तालपुष्पंकोकिलाक्षं चिंचाक्षारं सफेनकम् ।

सुहीक्षीरसमायुक्तं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—गुड चारतोले, पीपल चारतोले, हांग, त्रिकुटा, सैधानोन, चीता, विगिया संचरनोन, जवाखार, सजी, चिरचिटा, तालके फूल, तालमखाना, इमलीका

क्षार, समुद्रफेन और थूहरका दूध, प्रत्येक दो दो मासे लेकर गुडपाकविधिसे पाक करके सेवन करनेसे प्लीहज्वर विनष्ट होताहै ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ चित्रकवृतम् ।

चित्रकस्यतुलाकाथेघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

आरनालन्तुद्विगुणंदधिमण्डंचतुर्गुणम् ॥ २२ ॥

पंचकोलकतालीसक्षारैर्लवणसंयुतैः ।

द्विजीरकनिशायुग्मेमरिचन्तत्रदापयेत् ॥ २३ ॥

प्लीहगुल्मोदराध्मानपांडुरोगारुचिज्वरान् ।

वस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुप्लीहोदावर्तपीनसान् ॥ २४ ॥

हन्यात्पीतंतदशोग्रंशोथघ्नंवह्निदीपनम् ॥

पुनर्नवकरंजापिभस्मकञ्चनियच्छति ॥ २५ ॥

दधिमण्डो दधिमस्तु ।

क्षारो यवक्षारः ।

लवणं सैन्धवं केचिच्च द्वौक्षारौपंचलवणानिददति ।

अर्थ—गायका घी दो मेर, चीतेका काय १२॥ साढ़े बाग्रहसेर, कौजी चाग्रसेर, दहीका तोड़ आठसेर और कलकके लिये पंचकोल, ताली-सपत्र, जवाखार, सजी, पाँचोन्नोन जीरा, कालाजीरा, हलदी, दारुहलदी और कालीमिरच प्रत्येक दो दो तोले लेंव, सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें । इस घृतको सेवन करनेसे प्लीहा, गुल्म, उदररोग आध्मान, पाण्डुरोग, अरुचि, ज्वर, वस्तिरोग, हृदयरोग, पगलियोंकी पीड़ा, कटिगोग, ऊरुगोग, प्लीहा, उदावर्त, पीनम, बवासीर और सूजन दूर होतीहै, तथा आग्नि दीपन होतीहै ॥ २२-२५ ॥

अथ महारोहितकंवृतम् ।

रोहीतकात्पलशतंशोदयेद्रुद्रादकम् ।

साधयित्वाजलद्वेणेचतुर्भागावशेषितम् ॥ २६ ॥

घृतप्रस्थं समावाप्यच्छामीक्षीरंचतुर्गुणम् ।

तस्मिन्दद्यादिमान्सर्वान्माततश्चाक्षसंमितान् ॥ २७ ॥

व्योषंफलत्रिकं हि गुयवानी तुम्बुरं विडम् ।
 उज्ज्वलीकुण्डलवणं दाडिमं देवदारुच ॥ २८ ॥
 पुनर्नवां विशालां च यवशरं सपौष्करम् ।
 विडंगं चित्रकं चैव हपुषां च विकारं चाम् ॥ २९ ॥
 एतैर्घृतं विपक्वञ्च स्थापयेद्राजने शुभे ।
 पाययेच्च पलमात्रां व्याधिवलमवेक्ष्य च ॥ ३० ॥
 रसकेनाथ यूषेण पयसा वापि भोजयेत् ।
 उपयुक्ते घृते तस्मिन् व्याधीन् हन्यादिमन्बहून् ॥ ३१ ॥
 यकृतप्लीहादग्ध्रैव प्लीहशूलं यकृततथा ।
 कुक्षिशूलं यकृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३२ ॥
 विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगान्मकामलान् ।
 छर्द्यतीसारशूलघ्नं तंत्रीज्वरविनाशनम् ॥
 महागोहितकं नाम प्लीहघ्नं तु विशेषतः ॥ ३३ ॥

अर्थ—गायकाधी मांसर, बकरीका दूध, आठमेर काथके लिये गोहेडा, साठे-
 वागहसेर और मुखेदेर चारमेर, जल बर्त्ताम सेर, ओष चारमेर और कलकके
 लिये सोंट, मिर्च, पीपल, हरद, बहेडा, आमला, हींग, अजवायन, धनियां,
 विगिया संचरनेन, जीरा, कालानेन, अनासकी छाल, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रा-
 यण, जवाखार, पोहकमृत्, वायविडंग, चीता, हाऊवर, चव्य और बच, प्रत्येक
 दो दो ताले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिमे घृतको मिद्धकर उत्तम वासन-
 में भरके रखदेवे । इसको चार तालेभर व्याधि और बलको विचारकर भवन
 करे । मांसरस, मृगादिका घृष, और दूधके साथ भोजन करे । यह घृत नाता-
 प्रकाशके रोग, यकृत, प्लीहा, उदररोग, प्लीहशूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल,
 अरुचि, विबन्धशूल, पाण्डुरोग, कामला रोग, वमन, अतिमार, शूल और
 तंत्रीज्वरको दूर करे । यह महागोहितक घृत विशेष करके प्लीहारोगको दूर
 करे ॥ २६-३३ ॥

अथ वृंश्वरोरसः ।

भूतभस्मवंगभस्मपलैकैकं विमर्दयेत् ।

गंधकं त्रिफलाताम्रप्रत्येकञ्चतुष्पलम् ॥ ३४ ॥

अर्कभीरैर्दिनमर्घ्यसर्वन्तं मेलकीकृतम् ।

रुद्धाथ भूधरेपच्यात्पुटकेन समुद्धरेत् ॥ ३५ ॥

एष वंगेश्वगेनामष्टीहगुल्मोदंजयेत् ।

वृतेर्गुआद्रयं लेह्यानिष्कंश्च न पुनर्नवा ॥

गवांशुत्रैः पिबेच्चानुरजनीवागवांजलैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पागेकी भस्म एकपल, वंगकी भस्म एकपल, गंधक, त्रिफला और ताँबा प्रत्येक चार चार पल, सबको एकत्र कर एकदिन आकके दूधमें खरल करे, पश्चात् गोला बनाकर भूधर्यंत्रमें फूंक देवे तो वंगेश्वर रम सिद्ध हो । इसको दो रत्तीभर घृतके साथ सेवन करे, पश्चात् चार मासे मफेद पुनर्नवाको अथवा हल-दीको गोमूत्रमें पीमकर पीवे तो प्लीहा, गुल्म और उदरगोग दूर होवे ॥ ३४—३६ ॥

अथ प्लीहाशनिग्गः ।

मृतेन वंगन्तुसमं नियोज्यंतत्तुल्यग्वण्डेन च गंधकेन ।

विमर्दयेदर्करसेन योज्यं विलिप्य मृपाञ्च पुटं ददाति ॥ ३७ ॥

देयोरसस्तेन विभावयेच्च मोभवेद्वासुकिभूषणः सः ।

सष्टीहगुल्मस्य च नाशनाय विनिर्मितो भेषजरूपवत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—पाग, वंग, खांड और गंधक यह सब समानभाग लेकर आकके दूधमें खरल कर गोला बालेवे, पश्चात् इस गोलेमें मृपाके मध्यभागको लीप कर पुट देवे, फिर आकके रसकी भावना देवे तो वासुकिभूषण रम सिद्ध हो । यह प्लीहा और गुल्मको नाश करनेके लिये भेषजरूप वत्त निर्माण किया-है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथाद्रिगर्भावटिका ।

शुद्धं संपलं ग्राह्यं गंधकं द्विपलं भवेत् ।

लोहं टंकं च कुण्डं मठं त्रिकुण्डं निशाम् ॥ ३९ ॥

रसाद्र्धभागमानेन सर्वमेकत्र कारयेत् ।

माणौ लवणं टाकणानां त्रिफलानां रसेन च ॥ ४० ॥

रत्तीषोडशमानेन वटिका परिनिर्मिता ।

अग्निगर्भेयमुदिताप्लीहगुल्मोदरापहा ॥ ४१ ॥

शूलघ्नीयकृतंहन्यादष्टीलाकामलानिच ।

हलीमकंचपाण्डुत्वंक्रिमिकुष्ठविनाशिनी ॥ ४२ ॥

चंद्रनाथेनगदितारसमङ्गलभूषिता ।

लवंगयोगेकर्तव्यामहाग्निदायिनीमता ॥ ४३ ॥

आनाहकासशमनीव्रणविस्फोटनाशिनी ।

संग्रहग्रहणींहन्याच्छेष्मदोषोद्भवामपि ॥ ४४ ॥

अर्थ—शुद्धपारा एक पल, गंधक दोपल, लोहा, सुहागा, वच, कूट, हींग, त्रिकुटा और हलदी प्रत्येक दो दो तोले ले सबका एकत्र चूर्ण कर मानकन्द, जमीकन्द, घंटाकर्ण और त्रिकुटेके रसमें खरल करे, पश्चात् सोलह सोलह रत्तीकी गोली बनालेवे, इनको अग्निगर्भा कहतेहैं । यह प्लीहा, गुल्म, शूल, उदररोग यकृत, अष्टीला, कामला, हलीमक, पाण्डुरोग, क्रिमि और कुष्ठरोगको नष्ट करेहैं । यह रसरूपी मंगलसे भूषित श्रीमान् चन्द्रनाथने कही है, इनको लवंगके साथ सेवन करनेसे अग्निदीपन होतीहै, तथा आनाह, खाँसी, व्रण, विस्फोट और कफसे उत्पन्न हुई संग्रहणी दूर होतीहै ॥ ३९-४४ ॥

अथ रोहितकायलौहम् ।

त्रिकत्रयसमायुक्तरोहीतकयुतंत्वयः ।

प्लीहानमग्रमांसञ्चयकृतंहन्तिदारुणम् ॥ ४५ ॥

अत्रत्रिकटुत्रिफलात्रिमदसर्वचूर्णसमंलौहम् ॥

अर्थ—हरड, वहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, वायविडंग, चीता और रोहेडा यह सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण एकत्र पीसकर सेवन करनेसे प्लीहा, अग्रमांस और यकृत रोग दूर होताहै ॥ ४५ ॥

अथ यकृत्प्लीहोदरशूलौहम् ।

लौहार्द्धमभ्रकंशुद्धंसूतमभ्रार्द्धभागिकम् ।

त्रिगुणामयसश्चूर्णात्रिफलांसार्द्धचाभ्रकात् ॥ ४६ ॥

द्विरष्टवारिणोभागमष्टशेषन्तुकारयेत् ।

तेनचा । विशेषेणसमेनाज्येनयत्नतः ॥ ४७ ॥

रसेनबहुपुत्रायाद्विगुणंक्षीरसम्मितम् ।

लौहमप्यापचेद्व्यापात्रेचायसिमृन्मये ॥ ४८ ॥

दिव्यौषधिहतंलौहंपुटितंपुटनौषधैः ।

पचेत्पाकविधिज्ञस्तुवह्निनामृदुनाशनैः ॥ ४९ ॥

अभ्रकंनिहतंकृष्णसूतकंविधिमूर्च्छितम् ।

अयसश्चार्द्धभागैस्तुआदौपाकेविनिक्षिपेत् ॥ ५० ॥

कन्दकापालिकाचव्यंविडंगंसबृहदलम् ।

शरपुंखाचपाठाचचित्रकंचमहौषधम् ॥ ५१ ॥

लवणानिचसर्वाणिसक्षारंवृद्धदारकम् ।

दीप्यकञ्चतथासिक्थंलौहाभ्रकसमंक्षिपेत् ॥ ५२ ॥

प्लीहोदरयकृद्गुल्मान्हन्तिक्षाराग्निभिर्विना ।

प्रयोगोऽयंमहावीर्योलौहोलौहविदांवरः ॥ ५३ ॥

प्लीहोदरविनाशायदद्याद्वेद्रेपुटेपृथक् ।

मानेनचण्टाकर्णेनसूरणेनाधिकंपुनः ॥ ५४ ॥

मिलितलौहाभ्रकात्रिगुणात्रिफला ।

शतावरीरसलौहाभ्रकाद्विगुणंक्षीरंच ।

कन्दकापालिकेआकन्दःसूग्णोवा ।

अर्थ—लोहे और अभ्रकसे तिगुना त्रिफला लेकर १६ सोलहगुने जलमें पकावे जब आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तब उतारले, पश्चात् इसमें लोहे और अभ्रकसे दूगुना सतावरका रस और दूध, लोहा १ एकभाग, अभ्रक आधा-भाग, पारा चौथाई भाग और आकर्का जड़, चव्य, वायविडंग, पठानी लोघ, शरफोंका, पाद, चीता, सांठ, पाँचानोन, जवाखार, विधारा, अजवायन और मोम प्रत्येक १॥ डेढ़ भाग मिला देव । पश्चात् इसको दोवार पुटपाककी विधिसे पकावे, और मानकन्द, जमीकन्द और वंटाकर्णादि औषधियोंके रसमें भावना देवे । इसको सेवन करनेसे प्लीहा, गुल्म और नानाप्रकारके (संसारमें प्लीहाको

दूर करनेवाली अनेक औषधियाँ हैं, परन्तु इस प्लीहोदरलोहके समान एकभी काम नहीं करती यह प्लीहोदरलोह स्वयं ब्रह्माजीने रोगी मनुष्योंके हितार्थ निर्माण किया है) उदररोग दूर होतेहैं ॥ ४६-५४ ॥

अथ त्रिलोचनरसः ।

त्रिलोचनोहरिःपक्षीपार्वतीनागभूषणम् ।

दरदंतीक्ष्णपुष्पौचवमूरुधिरवासकाः ॥ ५५ ॥

विडंगंसैधवंहिङ्गुपटोलामृतमुस्तकम् ।

गोक्षुरंमरिचंवह्निचविकैरण्डपिप्पली ॥ ५६ ॥

देवदारुसमंचूर्णगुडेनवटकीकृतम् ।

उदरंकुक्षिरोगञ्चप्लीहं गुल्मंविनाशयेत् ॥ ५७ ॥

नेत्ररोगंपार्श्वशूलंशिरःशूलंप्रमेहकम् ।

हृच्छूलमरुचिसर्वदुर्नामंचाश्मरींपराम् ।

मूत्रकृच्छ्रं तथावातंसर्वमेतद्व्यपोहति ॥ ५८ ॥

इतियकृत्प्लीहोदराध्यायः ।

अर्थ-पारा, गूगुल, सोनामाखी, सोरठकी मट्टी, सीमा, हरिताल, सिंगरफ, ईस्पात, रसौत, गंधक, ताँबा, अड्डसा, वायविडंग, सेंधानोन, हींग, पटोल, गिलोय, नागरमोथा, गोखुरु, काली मिरच, चीता, चव्य, अरण्ड, पीपल और देवदारु यह सब समान भागले सबका बारीक चूर्णकर गुडमें मिलाकर गोलीयें बना लें। इन गोलीयोंके खानेसे-उदररोग, कुक्षिरोग प्लीहा, गुल्म, नेत्ररोग, पार्श्वशूल, शिरःशूल, प्रमेह, हृदयशूल, अरुचि, बवासीर, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और वातरोग दूर होतेहैं ॥ ५५-५८ ॥

इति यत्कृत्प्लीहोरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ शोथाधिकारः ।

अथ वातशोथलिङ्गानि ।

शूयन्तेयस्यगात्राणिस्वपन्तीविरुजन्ति च ।

पीडितान्युन्नमन्त्यांशुवातशोथंतमादिशेत् ॥ १ ॥

यश्चाप्यरुणवर्णाभःशोथोनक्तं प्रशाम्यति ।

स्नेहोष्णमर्दनाभ्याञ्च प्रणश्येत्स तु वातिकः ॥ २ ॥

अर्थ—जिस शोथरोगीका गात्र सूज जावे और सुन्न होजावे, वेदनायुक्त तथा सूजनकी जगह दाबनेसे शीघ्रही ऊपरको उठ आवे, उसको वातिक सूजन कहतेहैं । तथा जिसकी सूजन लालरंगकी हो, रात्रिमें शांत होजाय, तथा स्नेह और उष्ण मर्दनके द्वारा आराम होजाय उसको भी वातज शोथ कहतेहैं ॥ १॥२ ॥

अथ पित्तशोथलक्षणानि ।

यःपिपासाज्वरार्तश्चपूयतेऽथविदह्यते ।

स्निग्धतेक्लिश्यतेगंधीसपैत्तश्चयथुःस्मृतः ॥ ३ ॥

यःपीतमुखनेत्रत्वक्पूर्वमध्यात्प्रशूयते ।

अनुत्वक्चातिसारीचपित्तशोथःस उच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—प्यास, ज्वर, सूजनकी जगह राध टपके, दाह हो, स्निग्ध, क्लिष्ट और दुर्गन्ध हो, उसको पित्तज शोथ कहतेहैं तथा जिस शोथरोगीका मुख नेत्र और चर्म पीलाहो, मध्यमे लेकर पूर्वतक सूजन, पतले चर्मयुक्त और अति मार्मयुक्त होवे तो भी पित्तिक शोथ कहतेहैं ॥ ३॥४ ॥

अथ कफशोथलक्षणानि ।

यःशीतलःसक्तनतिःपाण्डुःकण्ठयतेऽपिच ।

निपीडितोनोन्नमतिःश्वयथुःसकफान्मकः ॥ ५ ॥

यस्यशस्त्रगणच्छेदाच्छोणितंनप्रवर्तते ।

कृच्छ्रेणपिच्छांभवतिसर्चापिकफमंभवः ॥ ६ ॥

अर्थ—जो सूजन शीतल, नरम, पाण्डुवर्ण, खुजलीयुक्त और दाबनेसे ऊपरको न उठे उसको भी कफज सूजन कहतेहैं तथा जिस सूजनमें शस्त्रके छेदनेसे रक्तस्राव न हो और अत्यन्त कष्टके साथ पिच्छिलपदार्थ निकले उसको भी कफज सूजन कहतेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ वातशोथचिकित्सा ।

पटोलपत्रवेत्राग्रकाकमाचीसुवर्चला ।

शाकान्नेनिम्बवर्षाभूवालमूलकमेवच ॥ ७ ॥

शुण्ठीपुण्ड्रैरण्डपंचमूलीशृतंजलम् ।

वातिकेश्वयथौशस्तंपानाहारपरिग्रहे ॥ ८ ॥

अर्थ—शाकके लिये पटोलपत्र, बेंतका अग्रभाग, मकोयका शाक, ब्रह्मसों चली, नीम, पुनर्नवा और कच्चीमूली तथा सोंठ, पुनर्नवा, अरण्ड और पंच-मूल, इन सबको जलमें सिद्ध कर शीतल करें, यह शृतशीतल जल वातके शोथमें पान और आहारके समय देना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ त्रिविधशोथचिकित्सा ।

पृश्निपर्णीघनोदीच्यशुण्ठीसिद्धन्तुपैत्तिके ।

श्लेष्मिकेपिप्पलीमूलंदारुनागरचित्रकैः ॥ ९ ॥

दशमूलंसदाशस्तंवातशोथेविशेषतः ।

वातजेतैलमैरण्डंविड्ग्रहेपयसापिबेत् ॥ १० ॥

अर्थ—पित्तज शोथमें पिठवन, मोथा, सुगंधवाला और सोंठको औटाकर सिद्ध कियाहुआ जल, कफज शोथमें पीपरामूल, देवदारु, सोंठ और चीतिका औटाकर सिद्ध कियाहुआ जल, वातशोथमें दशमूलका काथ, तथा वातज मलरुद्ध शोथमें दूधके साथ अंडीका तेल हितकारी है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ सर्वशोथचिकित्सा ।

क्षीराशनःपित्तकृतेतुशोथेत्रिवृद्धूचीत्रिफलाकषायः ।

पिबेद्भ्रवांमूत्रविमिश्रितंवाफलत्रिकाचूर्णमथाक्षमात्रम् ॥ ११ ॥

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्धूचीशम्याकपथ्याऽरुकरुकल्कम् ।

शोथेकफोत्थेमहिषाक्षमूत्रयुक्तंपिबेद्वासलिलंतथैषाम् ॥ १२ ॥

अजाजिपाठाघनपंचकोलव्याघ्रीरजन्यासुखतोयपीताः ।

शोथंत्रिदोषंविजं प्रवृद्धंनिघ्नन्तिभूनिम्बमहौषधे च ॥ १३ ॥

बिल्वपत्ररसंपातुःशोषणंश्वयथौत्रिजे ।

विट्संगेचैव त्रिभिर्विदध्यात्कामलामपि ॥ १४ ॥

अर्थ—पित्तज शोथरोगमें—दूधका भोजन करें, तथा निसोत, गिलोय और त्रिफलेका काथ अथवा त्रिफलेका चूर्ण गोमूत्रके साथ पान करें। कफशोथमें—पुनर्नवा, सोंठ, निसोत, गिलोय, अमलतास, हरड, देवदारु और भैंसिया

गूगुल गोमूत्रके साथ पीसकर अथवा इनका काथ बनाकर पान करै । जीरा, पाद, नागरमोथा, पंचकोल, कटेरी, हलदी, चिरायता और सोंठ, इनका काथ गरमागरम पीनेसे बहुत दिनोंका शोथज रोग दूर होताहै । त्रिदोषज शोथरोगमें बेलके पत्तोंका रस पान करनेसे मलरोध, बवासीर और कामलारोग दूर होताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ पथ्यादिः ।

पथ्यामृताभार्ङ्गिपुनर्नवाग्निदार्वानिशादारुमहौषधानाम् ।

काथंप्रपीयोदरपाणिपादरक्ताश्रितंहन्त्यचिरेणशोथम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हरड, गिलोय, भारंगी, पुनर्नवा, चीता, दारुहलदी, हलदी, देवदारु और सोंठ इनका काथ पीनेसे उदर, हस्त, पाद और रक्तगत शोथरोग दूर होताहै ॥ १५ ॥

अथ पुनर्नवाष्टकम् ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतित्तामृतादाव्यभयाकपायः ॥

सर्वांगशोथोदरपार्श्वशूलश्वासान्वितंपाण्डुगदंनिहन्ति १६ ॥

अर्थ—पुनर्नवा, नीम, पटोल, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहलदी और हरड इनका काथ पीनेसे सर्वांगगत शोथ, पार्श्वशूल और श्वासयुक्त पाण्डुगद दूर होताहै ॥ १६ ॥

अथ सौवर्चलाद्यं घृतम् ।

सौवर्चलंयवक्षारंयवानीपंचकोलकम् ।

मरिचंदाडिमंपाठाधन्याकमम्लवेतसम् ॥ १७ ॥

वारिविल्वञ्चकर्पाशंक्राथयेत्सलिलाढके ।

तत्क्राथेनघृतप्रस्थंपाच्यंघृतावशेषकम् ।

शोथाशौगुल्ममेहार्तोघृतंसेव्यंप्रशान्तये ॥ १८ ॥

अर्थ—कालानोन, जवाखार, अजवायन, पंचकोल, कालीमिर्च, अनार, पाद, धनियाँ, अमलबेल, सुगंधवाला और बेल प्रत्येक दो दो तोले लेकर एक आढक जलमें औटावै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उतागकर छान लवै, पश्चात् इसमें एक प्रस्थ घृत मिलाकर पकावै, जब तैयार हो जाय तब सेवन करै इससे शोथ, बवासीर गुल्म, प्रमेह, यह सब रोग दूर होतहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकाथः ।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपंचमूलंशृतंजलम् ।

वातिकेश्वयथौशस्तंपानाहारेपरिग्रहे ॥ १९ ॥

अर्थ—सोंठ, पुनर्नवा, अरण्ड और पंचमूल इनका काथ पानाहारके समय पान करनेसे वातज सूजन दूर होती है, ॥ १९ ॥

अथ पुनर्नवाद्यंघृतम् ।

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुपंचोषणक्षारहरीतकीनाम् ।

कल्केनपक्वंदशमूलतोयेघृतोत्तमंशोथनिषूदनञ्च ॥ २० ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, काथके लिये दशमूल साठपल, पाकके लिये जल ५१२ पाँचसौ बारह पल, शेष बत्तीस पल और कल्कके लिये पुनर्नवा, चीता, देवदारु, पंचोषण, जवाखार और हरड़, प्रत्येक चार चार तोले लेंवें, सबको मिलाकर घृतको सिद्ध करै इसको सेवन करनेसे—शोथ रोग दूर होताहै ॥ २० ॥

अथ मानकघृतम् ।

मानककाथकल्काभ्यांघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

एकजंद्मजंशोथंत्रिदोषञ्चव्यपोहति ॥ २१ ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, मानकन्दका काथ दो सेर, जल आठसेर और कल्कके लिये मानकन्द आधसेर लेंवें । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करै यह घृत एकज, द्मज और त्रिदोषज शोथरोगको दूर करताहै ॥ २१ ॥

अथ शुष्कमूलाद्यंघृतम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः ।

पंचमभ्यंजनंतैलंसशूलंश्वयथुंजयेत् ॥ २२ ॥

अर्थ—तिलका तेल दो सेर, जल आठसेर और कल्कके लिये सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना और सोंठ यह सब आधसेर लेंवें । सबको मिलाकर तेलको सिद्ध करै । यह तेल शूलयुक्त शोथरोगको दूर करताहै ॥ २२ ॥

अथ बृहच्छुष्कमूलाद्यं तैलम् ।

मूलकंदशमूलञ्चकप्पामूलंपुनर्नवा ।

प्रत्येकंप्रस्थमानञ्चवरिण्यष्टगुणेपचेत् ॥ २३ ॥

तेनाष्टभागशेषेणतैलस्यार्द्धाढकंतथा ।
 दापयेतैलतुल्येनगोमूत्रंकुशलोभिषक् ॥ २४ ॥
 मूलकंचामृताशुण्ठीपटोलंचपलाबला ।
 पाठापुनर्नवामूलंवालोशीरञ्चशिशुकम् ॥ २५ ॥
 निर्गुण्डीन्द्रयवश्यामाकरञ्जवासकन्तथा ।
 कणाहरीतकीशुण्ठीवचापुष्करमुस्तकम् ॥ २६ ॥
 रास्नाविडंगंचव्यञ्चहरिद्रेद्रेचधान्यकम् ।
 द्विक्षारंसैन्धवंपत्रंदेवदारुसपन्नकम् ॥ २७ ॥
 शठीकरिकणाबिल्वमंजिष्ठाचततःक्रमात् ।
 प्रत्येकार्द्धपलंचैषापिपयित्वाततःक्षिपेत् ॥ २८ ॥
 अभ्यंगेनास्यतैलस्ययेगुणाःसन्तिताञ्छृणु ।
 नानाशोथाश्चनश्यन्तिवातपित्तकफोद्भवाः ॥ २९ ॥
 आमोद्भवाश्चयेकेचिद्विशेषेणजलाशयाः ।
 अवश्यंनिर्जलादेहाभविष्यन्तिनसंशयः ॥ ३० ॥

अर्थ—मूली, दशमूल, पीपरा, पुनर्नवा, प्रत्येक दो दो सेर लेकर आठगुने, जलमें पकावे, जब आठवाँ भाग शेष रहे तब उतारकर छान लेवे. पश्चात् इसमें अर्द्ध आढक तेल, अर्द्ध आढक गोमूत्र, मूली, गिलोय, साँठ, पटोल, पीपल, खिंटी, पाठ, पुनर्नवा, सुगन्धवाला, खस, सेंजिनेकी जड़, निर्गुण्डी, इन्द्रयव, श्यामलता, करंज, अहूमा, पीपल, हरड़, साँठ, वच, पोहकरमूल, नागरमोथा, रास्ना, वायविडंग, चव्य, हलदी, दारुहलदी, धनियाँ जवाखार, सजी, सैन्धानोन, तेजपात, देवदारु, पद्माख, कचूर, गजपीपल, बेल और मैजीठ प्रत्येक दो दो तोले ले सबको पीसकर मिलादे और उत्तम गीतिमें पाककर इस तेलसे शरीरादिकको मलनेसे नानाप्रकारके शोथरोग दूर होतें ॥ २३-३० ॥

अथ दशमूलहरीतकी ।

द्विपंचमूलस्यकृतेकपायेकंसेऽभयानाञ्चशतंगुडाश्च ।
 लेहेसुशीतेचविनीयचूर्णव्योपंत्रिसौगन्ध्यंसुखास्थितेच ३१
 प्रस्थार्द्धमानंमधुनःसुशीतेकिंचिच्चूर्णादपियावशूकात् ।

एकाभयांप्राश्यततश्चलेहाच्छुक्तिनिहन्तिश्वयथुंप्रवृद्धम् ३२॥

श्वासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगाद् ।

काश्यामवातावमृगम्लपित्तवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ३३

अर्थ—दशमूल चारसेर, हरड १०० एकसौ, जल बत्तीस सेर, शेष आठसेर गुड सवाछेसेर, इनको पकावै, जब पकते पकते गाढा होजाय तब इसमें त्रिकुटोका चूर्ण, त्रिसुगंधिका चूर्ण और जवारवार प्रत्येक चार तोले और सहन आधसेर मिला देवै। प्रतिदिन एक हरड और कुछ लेह खावै तो अत्यंत बढा-हुआ शोथरोग, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोषोदर, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रुधिरविकार, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्र, वात और शुक्रके दोष दूर होतेहैं ॥ ३१-३३ ॥

अथ मण्डूरचूर्णम् ।

श्लक्ष्णचूर्णञ्चमण्डूरंगोमूत्रेपाचयेद्दिनम् ।

वज्रवल्ल्यारसैःपेष्यंचिताकुड्मलसंयुतम् ॥

भक्षितंचाक्षमात्रञ्चह्यसाध्यंश्वयथुंजयेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—मण्डूरका उत्तमरीतिसे चूर्ण कर गोमूत्रके साथ पका वज्रवल्लीके रसमें पीसकर चीतेकी कलियोंके चूर्णके साथ पीनेसे असाध्य शोथरोग भी दूर होताहै ॥ ३४ ॥

अथ योगत्रयम् ।

काकमाचीरसैःपेष्यंमृतलोहञ्चशोथजित् ।

हरीतक्याःकषायेणहन्तिपानाच्छिलाजतु ॥ ३५ ॥

अर्थ—मारहुए लोहेको मकोयके रसके साथ या हरडेके काथके साथ शिला-जीतको पीनेसे शोथरोग दूर होताहै ॥ ३५ ॥

अथ कटुकायं लौहम् ।

कटुकात्र्यृषणंदन्तीविडंगंत्रिफलातथा ।

चित्रकोदेवदारुश्चत्रिवृदारुणपिप्पली ॥ ३६ ॥

चूर्णान्येतानितुल्यानिद्विगुणंस्यादयोरजः ।

क्षीरेणतुल्यमेतच्चश्रेष्ठंश्वयथुनाशनम् ॥ ३७ ॥

सर्वचूर्णाद् द्विगुणंलौहम् ।

अर्थ—कुटकी. सोंठ, मिरच, पीपल, दन्ती, वायविडंग, हरड, बहेडा, आम-
ला, चीता, देवदारु, निसोत और गजपीपल इन सबका चूर्ण एकभाग और
लोहेका चूर्ण दोभाग लें, सबको मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे शोथ-
रोग दूर होताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ करञ्जपत्रप्रलेपः ।

करञ्जपत्रलेपेनसारनालेनशोथजित् ॥

कोकिलाक्षकपायेणलेपःसर्वाङ्गशोथजित् ॥ ३८ ॥

अर्थ—करंजके पत्तोंको काँजीमें पीमकर लेप करनेसे अथवा तालमखानेको
पीमकर लेपकरनेसे शोथरोग दूर होताहै ॥ ३८ ॥

अथ माणकघृतम् ।

माणककाथकल्कभ्याघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोहति ॥

माणकस्य पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३९ ॥

तन्त्रान्तरदर्शनात् ।

अर्थ—गायका घी दोसेर, मानकन्दका काथ आठसेर और कल्कके लिये
माणकन्द आधसेर लें, फिर मिलाकर घृतको सिद्ध करें । यह घृत—एकज,
द्वन्द्वज और त्रिदोषज शोथरोगको दूर करे ॥ ३९ ॥

अथ भल्लानकादिप्रलेपादीनि ।

खण्डखाद्येश्वरमताऽमृतसारनवायसम् ।

लोहान्येतानि सर्वाण्योजयन्ति भिषग्विदः ॥ ४० ॥

भल्लानकयाजयेच्छोथं सतिलाकृष्णमृत्तिका ।

महिषीनवतीतंवालेपादुग्धतिलान्वितम् ॥ ४१ ॥

लेपोऽरुष्करशोथं निहन्ति तिलदुग्धमधुकनवनीतैः ।

तत्तलमद्रिर्वासालदलैर्वातिचिरेण ॥ ४२ ॥

सालदलस्य चूर्णमाहुः ।

कान्तक्रामकलेपोवालेपोवातिलदुग्धयोः ।

भल्लानतः श्वयथुहन्ति । नवातिलदुग्धयोः ॥ ४३ ॥

वानरकच्छूधूलीशोथेगोमयवर्षालेपौकाय्यौ ।

वृश्चिकपत्रीपीडाशोथेविधिनादुग्धस्थालीस्वेदः ॥ ४४ ॥

प्रायोभिघातादनिलःसरक्तःशोथंसवातंप्रकरोतिसद्यः ।

तत्राविसर्पत्वन्मात्रतन्वच्चकार्यविषघ्नविषजेतुकर्म ॥ ४५ ॥

अर्थ—खण्डरवाद्य लोह, अमृतसार लोह, नवायसादि लोह, शोथरोगमें देने चाहिये । तिल, कालीमट्टी और भिलावा इनके द्वारा लेप करनेसे अथवा भैंसके दूधका मक्खन, दूध और तिल इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे शोथरोग दूर होताहै । भिलावा, तिल, दूध, मुलैठी और माखन इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा भिलावेके वृक्षकी तलेकी मट्टी और सालके पत्तोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे शोथरोग दूर होताहै । मोथेका लेप करनेसे अथवा तिलोंको दूधमें पीसकर लेप करनेसे किंवा तिल, भिलावे, इनको दूधमें पीसकर सेवन करनेसे शोथरोग दूर होताहै । कोंछकी फलियोंके लगानेसे उत्पन्न हुआ शोथ गोबरके विसने तथा लेप करनेसे आराम होताहै । बिछवाघासके लगानेसे उत्पन्न हुआ शोथ दूधकी हाँडीको गरम करके स्वेद देनेसे शोथरोग दूर होताहै । प्रायः अभिघातसंयुक्त वायु रुधिरके साथ मिलकर वातसंयुक्त शोथको उत्पन्न करताहै । जो शोथ क्रमसे फैले नहीं उसपै चर्मसंशोधक लेपादि करें । तथा विषज शोथरोगमें विषघ्न कर्म करें ॥ ४०—४५ ॥

अथ शोथरोगेऽपथ्यानि ।

पिष्टान्नमम्ललवणानिमद्यंशुल्वंदिवास्वप्नजागरञ्च ।

स्त्रियोघृतंतैलपयोगुरुणिशोथंजिघांसुःपरिवर्जयेच्च ॥ ४६ ॥

इति शोथरोगाध्यायः ।

अर्थ—पिष्टान्न, खटाई, लवण, मदिरा, सूखामांस, दिनमें सोना, रात्रिमें जागरण, स्त्रीसंसर्ग, घृत, तेल, दूध और भारी द्रव्य शोथरोगी त्याग देवै ॥ ४६ ॥

इति शोथाधिकारः ।

अथ ब्रध्नवृद्ध्याधिकारः ।

तत्रादौ वातवृद्धिचिकित्सा ।

प्रपौण्डरीकमधुकरास्नाकुष्ठपुनर्नवैः ।

सरलागुरुभद्राख्यैर्वातजंसंप्रलेपयेत् ॥ १ ॥

निचुलैरण्डमूलानियवगोधूमसक्तवः ।

एतैश्चवातजंस्निग्धैःसुखोष्णैःसंप्रलेपयेत् ॥ २ ॥

गृगुलुरुदुतैलंवागोमूत्रेणपिबेन्नरः ।

वातवृद्धिनिहन्त्याशुचिरकालानुबन्धिनीम् ।

सक्षीरंवापिबेतैलंमासमेरण्डसंभवम् ॥ ३ ॥

पित्तानुबन्धे ।

पुनर्नवायास्तैलंवातैलंनारायणन्तथा ।

पानेबस्तौरुबोस्तैलंपेयंवादशकाम्भसा ॥ ४ ॥

पुनर्नवायाःकाथकल्कौ ।

दशकं दशमूलम् ।

इति वाते ।

अर्थ—पुण्डेरिया, मुलंटी, रास्ता, कूठ, पुनर्नवा, भूपसरल, अगर और मोथा इन सबको पीसकर लेप करनेसे वातज वृद्धिरोग दूर होताहै । हिजल, अरंडकी जड़, जौ और गेहूँ इनके सत्तू स्निग्ध और उष्ण करके लेप करनेसे वातज अन्त्र-वृद्धिरोग दूर होताहै । गृगुल अथवा अंडीका तेल गोमूत्रके साथ पान करनेसे वातज वृद्धिरोग दूर होताहै । अण्डीका तेल दूधके साथ पीनेसे पित्तानुबन्ध वातजवृद्धि रोग दूर होताहै । पुनर्नवेका तेल और नारायणतेल पान और बस्ति-कर्ममें प्रयोग करनेसे, अथवा अण्डीका तेल दशमूलके काथके साथ पीनेसे वात-जवृद्धिरोग दूर होताहै ॥ १-४ ॥

अथ पित्ताण्डवृद्धिचिकित्सा ।

गैरिकाअनमंजिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।

सचन्दनोत्पलैःस्निग्धैःपैत्तिकंसंप्रलेपयेत् ॥ ५ ॥

पद्मोत्पलमृणालैश्चससर्जार्जुनवेतसैः ।

सर्पिःस्निग्धैःसमधुकैःपैत्तिकंसंप्रलेपयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—गेरू, अंजन, मैजीठ, मुलंटी, खश, पन्नाख लालचंदन और कमल यह सब औषधि समानभाग लेकर घृतके साथ पीसकर लेप करनेसे अथवा कमल, कुमुदिनी, मृणाल, सर्जवृक्षकी छाल, अर्जुनवृक्षकी छाल, बेंत और

मुलैठी इनको एकत्र घीके साथ पीसकर लेप करनेसे अण्डवृद्धिरोग दूर होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ रक्ताद्यण्डवृद्धिचिकित्सा ।

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिःशोणितं रक्तज्वहेरेत् ।

कुर्यात्पैत्तिकवत्सर्वमामेपक्वेचबुद्धिमान् ॥ ७ ॥

कुलत्थोषणपिण्याकैःपिष्टोष्णैश्चोपनाहनम् ।

देवदारुकषायश्चपिबेन्मूत्रेणमानवः ॥ ८ ॥

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं पिबेत्सक्षारसैन्धवम् ।

कफामबद्धकोष्ठेषु विरेकः कफवृद्धिनुत् ॥ ९ ॥

संपिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।

लेपाद्बद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि ध्रुवम् ॥ १० ॥

स्यात्तावच्चटकक्षारः क्षारो वा कृकलासजः ।

स तैलोलवणोलेपः शीघ्रदुर्जयवृद्धिनुत् ।

वचासर्षपकल्केन प्रलेपो वृद्धिनाशनम् ॥ ११ ॥

अर्थ—रक्तजवृद्धिरोगमें बारबार जाँके लगवावे, तथा आम और पक्क वृद्धि रोगमें पैत्तिकवृद्धिरोगकी समान उपचार करें । कुलथी, कालीमिरच और तिलोंकी खल जलके साथ एकत्र पीसकर गरम करके स्वेदनेसे, देवदारुका काथ गोमूत्रके साथ पीनेसे वृद्धिरोग दूर होता है । त्रिकुटा और त्रिफला इनका काथ जवाखार और सैद्यानोनका प्रक्षेप देकर पान करनेसे कफ और आममें उत्पन्नहुए वृद्धकोष्ठमें विरेचन होकर कफजन्य वृद्धरोग दूर होता है । लाल आककी जड़की छाल काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे अण्डवृद्धिरोग दूर होता है । चटक पक्षीका क्षार वा कृकलास जन्तुका खार तेल और सैधेनानके साथ पीसकर लेप करनेसे अथवा वच और सर्पसाँको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वृद्धिरोग दूर होता है ॥ ७-११ ॥

अथाण्डवृद्धिहरयोगाः ।

गोमूत्रसिद्धारुबुतैलमिश्रां हरीतर्कसैन्धवचूर्णयुक्ताम् ।

खादेन्नरः कोष्णजलेनुपानं निहन्ति वृद्धिचिरजाप्रवृद्धाम् ॥ १२ ॥

ऐन्द्रीमूलभवंचूर्णरुतैलेनमर्दितम् ।

अ्यहाद्रोपयसापीतंसर्ववृद्धिविनाशनम् ॥ १३ ॥

गव्यं तंसैन्धवसंप्रयुक्तंशम्बूकभाण्डेनिहितंप्रयत्नत् ।

सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वंनिहन्ति कौरण्डमतिप्रवृद्धकम् १४॥

घृतात्पादिकं सैन्धवम् ।

अर्थ—हरडोंको गोमूत्रमें औटाकर अण्डीके तेल और सेंधेनोनके साथ मिलाकर सेवन करें और ऊपरसे गरम जलका अनुपान करें तो वृद्धिरोग दूर होवे । इन्द्रायणकी जड़का चूर्ण अंडीके तेलमें पीसकर गायकं दूधके साथ पीनेसे तीनदिनमें सर्वप्रकारके वृद्धिरोग दूर होतें । गायका घी एक भाग, सेंधानोन चौथाई भाग, इनको सम्पुटके भीतर खरल कर सातदिन सूर्यकी गर्मीमें पकाकर सेवनकरनेसे कुण्डरोग दूर होताहै ॥ १२-१४ ॥

अथ गंधर्वहस्तकंतैलम् ।

शतमेरण्डमूलस्यपलेशुण्व्यायवाढकम् ।

जलद्रोणेविपक्तव्यंयावत्पादावशोषितम् ॥ १५ ॥

तेनपादावशेषेणपयसातत्समेनच ।

प्रस्थमेरण्डतैलस्यतन्मूलञ्चतुष्पलम् ॥ १६ ॥

त्रिपलंशृंगवेरस्यगर्भदत्त्वाविपाचयेत् ।

तत्पिबेन्नियतःशुद्धोनरःक्षीरान्नभुक्सदा ।

अत्रवृद्धिनिहन्त्याशुतैलंगन्धर्वहस्तकम् ॥ १७ ॥

अर्थ—अण्डीका तेल दोसेर, काथके लिये अरण्डकी जड़ मवाछे सेर, सोंठ, दोपल और जी चारसेर, पाकके लिये बत्तीस सेर, शेष आठ सेर, दूध आठसेर और कल्कके लिये अरण्डकी जड़ चारपल और अदरक तीनपल, सबको मिलाकर तेलको सिद्ध करें । इसके ऊपर दूधके साथ भोजन करें, इससे अन्त्रवृद्धिरोग दूर होताहै । १५-१७ ॥

अथान्त्रवृद्धिहरयोगः ।

ससैन्धवंघृताभ्यक्तंताम्रभक्ष्यं तपे ।

प्रतप्तंर्णयाघृष्टातन्मलेनदिवानिशम् ॥ १८ ॥

भ्रक्षणादेवकुरण्डनास्तीत्याहपुनर्वसुः ।

रुद्रजटामूललिप्ताकरटव्यङ्गचर्मणा ॥ १९ ॥

अंत्रवृद्धिः शमयातिचिरजापिनसंशयः ॥ २० ॥

करटवी वृक्षमूषिका अस्या अंकचर्म क्रोडचर्म ।

अर्थ—सैधानोनको घृतमें मिलाकर एक ताँबेके बासनमें लेप कर धूपमें धर भेड़के गोमोंसे घिसकर लेपकरनेसे जो मल निकले इससे दिनरात घिसनेसे कुरण्डरोग दूर होता है । रुद्रजटाकी जड़के द्वारा वृक्षमूषिकके क्रोडचर्मको लेप कर तिससे कुरण्डको बांधनेसे बहुत दिनोंका अंत्रवृद्धिरोग दूर होता है ॥ १८-२० ॥

अथ शतपुष्पाद्यं घृतम् ।

शतपुष्पामृतादारुचंदनरंजनीद्वयम् ।

जीरकेद्वेवचानागत्रिफलागुग्गुलुत्वचम् ॥ २१ ॥

समांसीकुष्ठपत्रैलारास्नाशृंगीचचित्रकम् ।

क्रिमिघ्नमश्वगंधाचशैलेयंकटुरोहिणीम् ॥ २२ ॥

सैन्धवंतगरंचैवकुटजातिविषेतथा ।

एतैश्चकार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २३ ॥

वृषमुण्डीतिकैरण्डनिम्बपत्रभवोरसः ।

कण्टकार्यास्तथाक्षीरंप्रस्थंप्रस्थंप्रदापयेत् ॥ २४ ॥

सिद्धमेतद्घृतं पीतमंत्रवृद्धिर्व्यपोहति ।

वातवृद्धिपित्तवृद्धिमेदोवृद्धिमथापिवा ॥ २५ ॥

मूत्रवृद्धिं श्लेष्मिपदश्चयकृत्प्लीहानमेव च ।

शतपुष्पाघृतञ्चैतद्धन्यादेतन्नसंशयः ॥ २६ ॥

अर्थ—सौंफ, गिलोय, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, जीरा, कालाजीरा, वच, नागकेशर, त्रिफला, गुग्गुलु, दालचीनी, वालछड़, कूठ, तेजपात, इलायची, रास्ना, काकडाशिंगी, लालचीता, बायविडंग, असगंध, भूरिछरीला, कुटकी, सैधानोन, तगर, कुड़ा और जतीस प्रत्येकका कल्क, दो दो तोले अड़सेका रस, गोरखमुण्डीका रस, अण्डीका रस, नीमके पत्तोंका रस, कटेरीका रस

और दूध प्रत्येक दो दो सेर और गायका घी दोसेर लेवे, सबको मिलाकर यथा-
विधिसे घृतको सिद्ध करे । यह शतपुष्पाद्यघृत अंत्रवृद्धि, वातवृद्धि, पित्तवृद्धि,
मेदोवृद्धि, मूत्रवृद्धि, श्लीपद, यकृत, प्लीहा, इन सबको दूर करेहै ॥ २१-२६ ॥

अथ बृहत्सैन्धवाद्यंतैलम् ।

सैन्धवंमदनकुष्ठंशताह्वानिचुलंवचाम् ।

ह्रीबिरंमधुकंभार्ङ्गिदेवदारुसनागरम् ॥ २७ ॥

कट्फलंपौष्करंमेदांचविकांचित्रकंशठी ।

विडंगातिविषेश्यामारेणुकांनीलिनींस्थिराम् ॥ २८ ॥

बिल्वाजमोदेकृष्णांचदन्तीरास्नांप्रपिप्यच ।

साध्यमेरण्डजंतैलंतैलंवाकफवातनुत् ॥ २९ ॥

ब्रधोदावर्तगुल्मार्शःप्रीहमेहाढ्यमारुतान् ।

आनाहमश्मरीश्चैवहन्यात्तदनुवासनात् ॥ ३० ॥

अर्थ—सैन्धानोन, मैनफल, कूठ, सोंफ, हिजल, वच, सुगंधवाला, महुवा,
भांगी, देवदारु, सोंठ, कायफल, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, बाय-
विडंग, अतीस, करिया वासाऊ, रेणुका, नीलका वृक्ष, शालिपर्णी, बेल, अज-
मोदा, पीपल, दंती और रास्ना इन सबको पीसकर इनमें अण्डका तेल या
मगमोंका तेल सिद्ध करे । यह तेल—कफ, वात, ब्रध्न, उदावर्त, गुल्म, बवासीर
प्लीहा, प्रमेह, वात, आनाह और पथरी रोग दूर करताहै ॥ २७-३० ॥

अथ धत्तूरादिलेपः ।

धत्तूरमूलसिद्धार्थगवामूत्रेणपेपयेत् ।

प्रलेपनंत्रिभिःकुर्यात्कोष्णं ब्रध्नहरंपरम् ॥

घृतंसौरेश्वरंयोज्यं ब्रध्नवृद्धिनिवृत्तये ॥ ३१ ॥

अर्थ—धत्तूरेकी जड़ और मफेद मरसोंको गोमूत्रमें पीसकर कुल्लेक
गम कर लेपकरनेसे—ब्रध्नरोग दूर होताहै—सौरेश्वर घृतको पान करनेसेभी
ब्रध्नरोग और वृद्धिरोग दूर होताहै ॥ ३१ ॥

अथैकादशायसम् ।

मृतायःपुरुषःशुल्बःखगोदरदगंधकः ।
 गननंपुष्परागञ्चशोणितंचेश्वरोरगः ॥ ३२ ॥
 विडंगत्रिफलाहिंशुयवानीजीरकद्वयम् ।
 स्वर्जीफलवचाशृंगीमरिचंपिप्पलीद्वयम् ॥ ३३ ॥
 चवीदुरालभावाह्निशुण्ठीद्रावैर्विमर्दयेत् ।
 अण्डवातान्त्रवृद्धीश्चकच्छूमुर्गुदापहम् ॥
 येचअण्डगतारोगास्तान्सर्वानपकर्षति ॥ ३४ ॥

अर्थ—लोहा, पारा, ताँबा, सोनामाखी, सिंग्रफ, गंधक, अभ्रक, पुष्प-
 रागमणि, केशर, पीतल, सीसा. यह सब समान ले पश्चात् इनको
 वायविडंग, त्रिफला, हींग, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, सजी,
 जायफल, बच, काकड़ाशिगी, कालीमिरच, पीपल, गजपीपल, चव्य,
 जवासा, चीता, और सोंठके रसमें खरल कर लेप करनेसे अंडवात, अन्त्रवृद्धि,
 कच्छू, ऊरुरोग, और सर्वप्रकारके अंडगत रोगोंको दूर करैहै ॥ ३२-३४ ॥

अथ सैन्धवादिगुटिका ।

ससैन्धवाकुष्ठकरेण्वजाजीसत्रैफलारुष्करवालकञ्च ।
 विडंगविश्वौषधिरुद्रामृताभाङ्गीवचातस्करदेवदारुकम् ३५ ॥
 सनीलिनीसातिविषाजमोदायवानिकापिप्पलिमूलमुस्तकम् ।
 चव्यंसकृष्णाशठिचंदनद्वयंसकट्टफलवल्गुजबिल्वजंस्थिरम् ।
 दन्तीशताह्वाकटुकाजगंधासवाजिगन्धागजपिप्पलीनाम् ।
 मरीचत्रैजातलवंगगंधजातीफलंशैलजजातिपत्री ॥ ३७ ॥
 कर्षैकमात्रंकमश्चक्ष्णचूर्णपलाष्टकंगुग्गुलुनामधेयम् ।
 पेलद्वयंलौ रजस्तथैवशिलाजतुश्चैवपलंचतुष्कम् ॥ ३८ ॥
 सर्वैःसमैःसिताचक्राज ॥ ३९ ॥ कृत्वावटिकाक्षमात्रम् ।
 अत्यक्षोभक्ष्यमथोविधेयंमद्यंतथे ञ्जपयसाचक्षीरम् ३९ ॥

निहन्तिब्रध्नानुदरंसकृच्छ्रपाण्ड्वामयंकामलराजरोगम् ।
 प्लीहोदरं वृषिकारजश्चमूत्रामवातं श्वयथून्प्रकल्पम् ॥ ४० ॥
 अत्यग्निकारिज्वरनाशनं परंबलं सुपुष्टिकुरुते नराणाम् ।
 प्रमेहविंशंकफरोगविंशंचत्वारिंशत्पित्तगदं निहन्यात् ।
 अशीतिवातामयजान्विकारान्नश्च जित्ते सर्वमिदं नराणाम् ४१ ॥
 इति ब्रध्नवृद्ध्यायः ।

अर्थ—सैधानोन, कूठ, रेणुका, जीरा, त्रिफला, भिलावा, वायविडंग, सांठ, चीता, गिलोय, भारंगी, वच, भटेउर, देवदारु, नीलवृक्ष, अतिसि, अजमोदा, पीपराभूल, नागरमोथा, चव्य, पीपल, कचूर, सफेद चंदन, लाल चंदन, कायफल, वापची, बेलगिरी, दन्ती, सौंफ, कुटकी, अजगंधा, असगंध, गजपीपल, कालीभिरच, दालचीनी, इलायची, तेजपात, लवंग, सैंजना, जायफल, भूरिछरीला, और जावित्री, प्रत्येक दो दो तोल, गृगुल आठ पल, लोहा दो पल, शिलाजीत, चार पल, इन सबको एकत्र पीसलेवे, और सबकी बराबर मिश्री मिलादेवे, पश्चात् जलसे मर्दन कर दो दो तोलभरकी गोलियाँ बनालेवे, प्रतिदिन एकगोली मदिरा, गरम जल और दूधके साथ पान करनेसे—ब्रध्न, उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, कामला, राजरोग, प्लीहोदर, कोढ़, मूत्ररोग, आमवात, और सूजनको दूर करेहै । अत्यन्त अग्निजनक, ज्वरको दूर करनेवाला, बलकारक, पुष्टिकारक, बीस प्रकारके प्रमेह, चालीस प्रकारके पित्तरोग, अस्सीप्रकारके वातरोग, इन सबको यह दूर करेहै ॥ ३५-४१ ॥

इति ब्रध्नवृद्ध्यायः समाप्तः ॥

अथ गलगंडगंडमालाचिकित्सा ।

यवमुद्रपटोलानिकटुरूक्षश्च भोजनम् ।
 छर्दिसरक्तमुक्तिश्च गलगंडे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥
 निचुलं शिशुबीजानि दशमूलमथापि वा ।
 वातजगलगंडेतु सुखोष्णोलेप इष्यते ॥ २ ॥
 सर्पिणां शिशुबीजानि शणवीजातसीयवान् ।
 मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेपयेत् ॥ ३ ॥

गण्डातिग्रन्थयश्चैवगंडमालाःसुदारुणाः ।

प्रलेपात्तेनशाम्यन्तिविलयंयान्तिचाचिरात् ॥ ४ ॥

अर्थ—जौ, भूम, पटोल, कटु और रुक्षद्रव्य तथा वमन और रक्तमोक्षण (फस्त) यह सब गलगंडरोगमें प्रयोग करै। हिज्जल और सैंजिनेके बीज अथवा दशमूलको पीसकर गरम करके लेप करनेसे वातज गलगंडरोग दूर होतहै। सरसों, सैंजिनेके बीज, सनके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीजोंको एकत्र कर तक्र और काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे गण्डमाला, गलगण्ड और ग्रन्थिरोग निश्चय दूर होतहै ॥ १-४ ॥

अथ सिन्दूरादितैलम् ।

चक्रमर्दकमूलस्यकल्कंकृत्वाविपाचयेत् ।

केशराजरसेतैलंकटुकंमृदुनाग्निना ॥ ५ ॥

पाकशेषेविनिक्षिप्यसिंदूरमवतारयेत् ।

एतत्तैलंनिहन्त्याशुगंडमालांसुदारुणाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—सरसोंका तेल एकसेर, भांगरेका रस चारसेर, कल्कके लिये चक्रवडकी जड़ पावसेर और सिन्दूर पावसेर इन सबको मिलाकर तेलको मिद्ध करै। यह तेल—दारुणगण्डमाला रोगको दूर करैहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ तुम्बीतैलम् ।

विडंगक्षारसिन्धूग्रावासाग्निव्योषदत्तैः ।

कटुतुम्बीफलरसैःकटुतैलंविपाचयेत् ॥

चिरोत्थमपिनस्येनगलगंडंविनाशयेत् ॥ ७ ॥

उग्रा वचा ।

अर्थ—कडवा तेल एकसेर, कड़वी तोंबीका रस चारसेर और कल्कके लिये वायाविडंग, जवाखार, सैंधानोन, वच, अडूसा, चीता, सोंठ, पीपल, कालीमिरच और देवदारु प्रत्येक दो दो तोले, सबको मिलाकर तेलको सिद्ध करै। इसतेलके द्वारा नास देनेसे गलगण्डरोग दूर होतहै ॥ ७ ॥

अथ शाखोटतैलम् ।

प्रियंगुयष्टीमधुसूतंरुष्टंसपिप्पलीचन्दनस्तनिम्बम् ।

कल्कंविनिक्षिप्यविपाच्यतैलंचतुर्गुणेनस्यविधिप्रयुक्तम् ॥

शाखोटवल्कस्वरसेचसिद्धंहन्यात्प्रवृद्धान्गलगण्डरोगान् ८

अर्थ—कडवा तेल एकसेर, सिहोडेकी छालका रस चारसेर और कल्कके लिये फूलप्रियंगु सुलैठी, कूठ पीपल, लालचन्दन, नागरमोथा और नीमकी छाल प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावे । इस तेलको नासके द्वारा व्यवहार करनेसे गलगण्ड रोग दूर होताहै ॥ ८ ॥

अथ निर्गुण्डीतैलम् ।

निर्गुण्डीस्वरसेवापिलांगलीमूलकलिकतम् ।

तैलंनस्यान्निहन्त्याशुगंडमालांसुदारुणाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—तेल एकसेर, सम्हालूका रस चार सेर, कल्कके लिये कलिहारीकी जड़ पावसेर और जल चारसेरले यथाविधिसे तेलको मिद्ध कर नाम लेनेसे घोर गंडमालारोग दूर करैहै ॥ ९ ॥

अथ त्रिफलादिगुटिका ।

त्रिफलायास्त्रयोभागाव्योपाच्चद्विगुणोमतः ।

तस्माच्चद्विगुणंज्ञेयंकांचनालस्यवल्कलम् ॥ १० ॥

एकीकृत्यतुर्गुणंऽस्मिन्समोदेयोऽथगुग्गुलुः ।

क्षौद्रंदशगुणंदद्यात्त्रिफलाचूर्णतोभिपक्व ॥ ११ ॥

सर्वासुगण्डमालासुगलगण्डेतथैवच ।

नाडीव्रणेषुगंडेषुगुटिकेयंप्रशस्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हरड़, बहेडा, आमला, प्रत्येक एकएक भाग, मोंठ, पीपल, और कालीमिरच, प्रत्येक दो दो भाग, लालकचनार चारभाग और गुग्गुलु सबकी बराबर, इनसब द्रव्योंको एकत्र पीस दशभाग सहन मिलाकर गोली बनालेवे । इनगोलियोंको भेवन करनेसे गण्डमाला, गलगण्ड, नाडीव्रण और गण्डरोग दूरहोताहै ॥ १०-१२ ॥

अथ वचाद्यंघृतम् ।

वचाशठीहरिद्रेद्रेदार्वीन्द्रयवमुस्तकम् ।

पथ्याचातिविषाशुण्ठीसर्वदशपलंपृथक् ॥ १३ ॥

चतुर्द्रोणेम्भसःपक्त्वापादशेषेविपाचयेत् ।

सर्पिःप्रस्थंपलोन्मानैःकाथ्यद्रव्यैःसुपेषितैः ॥ १४ ॥

प्रक्षिप्यत्रिगुणंक्षौद्रंव्योषचूर्णात्पलानिषट् ।

यथाबलंपिबेत्कालंयथेष्टाहारमेवच ॥ १५ ॥

गंडमालांनिहन्त्याशुबहुवर्षसमुद्रवाम् ।

कासंश्वासंप्रतिश्यायंगलगंडंमुखामयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—गायका वी एक सेर, काथके लिये वच, कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, इन्द्रजव, नागरमोथा, हरड. अतीस और सांठ प्रत्येक दश दश पल, पाकके लिये जल चारद्रोण, शेष एक द्रोण. कल्कके लिये पूर्वोक्त काथद्रव्य प्रत्येक एक एक पल यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें जब सिद्ध होजाय तब छानकर तिगुना सहत और छे पल त्रिकुटेका चूर्ण मिलादेवे। इसको बलात्रल-का विचारकर और समयको देख पान करें और इसपर यथेष्ट भोजन करें। यह बहुत वर्षोंसे उत्पन्न हुए गंडमाला रोगको तथा खांसी, श्वास, प्रतिश्याय गल-गंड और मुखरोगको दूर करेंगे ॥ १३-१६ ॥

अथ पंचतित्तकगुग्गुलुः ।

प्रयोज्योगंडमालायांपंचतित्तकगुग्गुलुः ।

वनकार्पासिकामूलंतण्डुलैःसहयोजितम् ।

पक्त्वातुपोलिकांखादेदपचीनाशनायतु ॥ १७ ॥

अर्थ—पंचतित्तक गूगुलुको सेवन करनेसे गंडमालारोग आराम होताहै। वन-कपासकी जड़ और चावल दोनोंको एकत्र पीस पोलिका बनाकर खानेसे अप-चीरोग दूर होताहै ॥ १७ ॥

अथ त्रिगुणाख्यं ताम्रम् ।

द्विभागगन्धेनरसेनभागंदिनंचकुर्याःस्वरसेनघृष्टम् ।

निक्षिप्यताम्रस्यपुटेरसेनतुल्यंमृदातत्रपुटंददीत ॥ १८ ॥

पुटेष्टताक्तंमधुनासमेतंफलत्रयेणमधुनाघृतेन ।

भगन्दरप्रोहिरसोऽयमुक्तोददीतपथ्यंमधुरंहितञ्च ॥ १९ ॥

स्त्रियं दिवास्वापञ्च वर्जयेत् ।

अर्थ—दो भाग गंधक और एक भाग पारा दोनोंको एकत्र कुरीधानोके रसमें खरल करै, पश्चात् पारेकी समान ताम्रपुट बनाकर उसमें इनको रख मृत्तिकामे लेप कर पुटपाक करै । यह औषधि घृत और सहतके साथ अथवा त्रिफलेका चूर्ण और सहतके साथ भेवन करनेसे भगन्दर रोग दूर होताहै । पथ्य—मधुर और हितकारक पदार्थ भोजन करै । स्त्रीसंभोग और दिवानिद्रा त्याग देवे ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ व्योषादितैलम् ।

व्योषंविडंगंमधुकंसैन्धवंदेवदारुच ।

तैलमेभिःसमंनस्यात्सकृच्छ्रामपर्चीजयेत् ॥ २० ॥

अर्थ—तिलोंका तेल एक सेर, जल चार सेर और कल्कके लिये मांठ, पीपल, कालीभिरच, वायविडंग, मुलैठी, मंधानोन और देवदारु प्रत्येक दो दो तोले लेकर यथाविधिसे तेलको मिद्धकर नाम लेनेसे अत्यन्त कष्टयुक्त अपची रोग दूर होताहै ॥ २० ॥

अथ चंदनायंतैलम् ।

चन्दनंसाभयालाक्षावचाचकटुरोहिणी ।

एभिस्तैलंशृतंपीतंसमूलामपर्चीजयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—तेल एकसेर, जल चारसेर और कल्कके लिये लाल चंदन, हगड, लायवच और कुटकी, प्रत्येक दो दो तोले लेवे, सबको मिलाकर तेलको मिद्ध कर पान करनेसे मूलसहित अपचीरोग दूर होताहै ॥ २१ ॥

अथ गुंजायं तैलम् ।

गुंजाभयारिश्यामार्कर्मर्षपेर्मूत्रमाधितम् ।

तैलन्तुदशधापश्चात्कणालवणपंचकम् ॥ २२ ॥

मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तंस्वायस्थागतंजयेत् ।

अभ्यंगादपर्चीनाडीवलमीकाशोर्बुद्वरणान् ॥ २३ ॥

इति गलगंडगण्डमालाध्यायः ।

अर्थ—तिलका तेल एक सेर, गोमूत्र चारसेर और कल्कके लिये गुंजाकी जड, हगड, करियावामाऊ, खैर और सरसों प्रत्येक दो दो तोले सबको मिलाकर दशवार पकावे, पश्चात् पीपल, पांचानोन और कालीभिरचका चूर्ण मिला-

देवे । इसतेलको शरीरादिमें मर्दन करनेसे अपचीरोग, नाड़ी व्रण, वल्मीकरोग ववासीर, अर्बुद रोग और सर्वप्रकारके व्रण दूर होतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति गलगंडगंडमालाऽधिकारः समाप्तः ।

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लंघनालेपनस्वेदरेचनैरक्तमोक्षणैः ।

प्रायःश्लेष्महरैरुष्णैःश्लीपदंसमुपाचरेत् ॥ १ ॥

युज्याल्लघूनिचात्रानियवात्रश्चहितंतथा ।

कटुतैलंकूर्ममांसमशान्तौदाहमग्निना ॥ २ ॥

अर्थ—लंघन, प्रलेप, स्वेद, विरेचन, रक्तमोक्षण, श्लेष्मनाशक क्रिया उष्ण-क्रिया, लघु अन्न, यवान्न, सरसोंका तेल, कछुवेका मांस और अग्निदाह इन सब योगोंसे श्लीपद रोग शान्त होताहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ श्लीपदघ्नलेपनानि ।

शाम्यतिपिच्छलगुटिकासर्षपकल्कोपनाहतःसपदि ।

सैवलतात्वंगच्छतिकरचरणशोथतामपिच ॥ ३ ॥

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिशुसर्षपैः ।

प्रलेपःश्लीपदंहन्तिचिरोत्थमपिदारुणम् ॥ ४ ॥

निष्पिष्टमारनालेनरूपिकामूलवल्कम् ।

प्रलेपःश्लीपदंहन्तिबद्धमूलमपिध्रुवम् ॥ ५ ॥

हिताश्वालेपनेनित्यंचित्रकोदेवदारुच ।

सिद्धार्थशिशुकल्कोवासुखोष्णोमूत्रपेपितः ॥ ६ ॥

गोमूत्रेण त्रयो योगाः ।

रजनींगुडसंयुक्तांगोमूत्रेणपिबेन्नरः ।

वर्षोत्थंश्लीपदंहन्तिदद्रुकुष्ठंविशेषतः ॥ ७ ॥

अर्थ—सरसोंको पीसकर गोली बना उन गोलीयोंका लेप करनेसे हस्तपदगत श्लीपदजनित शोथ दूर होताहै । धतूरा, अरण्ड, सम्हालू, पुनर्नवा, सैजिना और सरसों, इनसबको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरनेसे बहुत पुराना घोर श्लीपदरोग दूर होताहै । लाल आकके वृक्षकी जड़की छालको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे श्लीपदकी सृजन दूर होतीहै । लाल चीता और देवदारु दोनोको गोमूत्रमें पीस-

कर अथवा सफेद सरसों और सैजिनेकी जड़की छालको गोमूत्रमें पीस कुछ कुछ गरम लेप करनेसे निश्चय शोथसंयुक्त श्लीपद रोग नष्ट होताहै । हलदीके चूर्णको गुड़में मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे एक वर्षका श्लीपदरोग और दद्दु कुछ रोग दूर होताहै ॥ ३-७ ॥

अथ कृष्णाद्यो मोदकः ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनांकर्षमर्द्धपलंपलम् ।

विंशतिश्चहरीतक्यागुडस्यचपलद्वयम् ॥

मधुनामोदकंखादेच्छ्लीपदंहन्तिदुस्तरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पीपलका चूर्ण एकतोला, चीतेकी जड़का चूर्ण दोतोले और दन्तीकी जड़का चूर्ण चार तोले, हरड़, बीस और गुड़ आठ तोले लेवे, सबको गुड़में मिलाकर मोदक बनालेवे । यह मोदक सहतके साथ खानेसे दुस्तर श्लीपदरोग दूर होताहै ॥ ८ ॥

अथ विविधयोगाः ।

जिङ्गिन्यास्तुदलैःपिष्टैःकांजिकेनोष्णतांगतैः ।

स्वेदःश्लीपदनाशायकर्त्तव्यःसंप्रजानता ॥ ९ ॥

स्वेदःस्नेहोपनाहांश्चश्लीपदेऽनिलजेभिषक् ।

मंजिष्ठामधुकंरास्नासहिंसासपुनर्नवा ॥ १० ॥

पिष्टारनालैर्लेपोऽयंपित्तश्लीपदनाशनः ।

पूतीकस्वरसंकोष्णंक्षारसैन्धवसंयुतम् ।

पिबेत्कटुकतैलेनश्लीपदानानिवृत्तये ॥ ११ ॥

गंधर्वतैलभृष्टांहरीतकींगोजलेनयःपिबति ।

श्लीपदबंधनमुक्तोभवत्यसौसप्तरात्रेण ॥ १२ ॥

वर्षाभूत्रिफलाचूर्णपिप्पल्यासहयोजितम् ॥

सक्षौद्रंविलिहँल्लेहांचिरोत्थंश्लीपदंजयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—जिगिनीके पत्तांको काँजीमें पीस गरम कर स्वेद देनेमें श्लीपद रोग दूर होताहै । वैद्य; वातज श्लीपदरोगमें स्वेद, स्नेह और प्रलेप प्रयोग करे । मैजीठ, मुलेठी, रास्ना, कटेरी, और पुनर्नवा यह सब द्रव्य समानभाग लेकर काँजीमें पीस लेप करनेसे श्लीपदरोग दूर होताहै । करंजकी छालका रस गरम करके

जवाखार और सैंधानोनका चूर्ण तथा सरसोंका तेल मिलाकर पान करनेसे श्लीपदरोग आराम होताहै । अरण्डके तेलमें भुनी हुई हरड गोमूत्रके साथ पान करनेसे सात दिनमें श्लीपदरोग दूर होताहै । पुनर्नवा, हरीतकी, आमला, बहेडा और पीपल इन सबका समानभाग चूर्ण सहतके साथ सेवन करनेसे श्लीपदरोग दूरहोताहै ॥ ९-१३ ॥

अथ वृद्धदारचूर्णम् ।

त्रिकटुत्रिफलाचव्यंदावीवरुणगोक्षुरम् ।

अलम्बुषांगुडूचीञ्चसमभागानिचूर्णयेत् ॥ १४ ॥

सर्वेषांचूर्णमाहृत्यवृद्धदारस्यतत्समम् ।

कांजिकेनचतत्पेयमक्षमात्रंप्रमाणतः ॥ १५ ॥

जीर्णेचापरिहारंस्याद्भोजनंसार्वकालिकम् ।

नाशयेच्छ्लीपदंस्थौल्यमामवातंचदारुणम् ॥

गुल्मकुष्ठानिलहरंवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, दारुहलदी, वग्ना, गोखुरु, गोरखमुण्डी और गिलोय इनसबको समानभाग लेकर चूर्ण कगले और सर्वचूर्णके बराबर विधारेका चूर्ण मिलादेवे, इसको काँजीके साथ दो तोले भर पान करनेसे श्लीपदरोग, स्थूलता, दारुण आमवात, गुल्म, कुष्ठ, वातगेम और वातकफज्वर दूर होताहै ॥ १४-१६ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पलीत्रिफलादारुनागरंसपुनर्नवम् ।

भागैर्द्विपलिकैरेषांतत्समंवृद्धदारकम् ॥ १७ ॥

कांजिकेनपिबेच्चूर्णकर्षमात्रंप्रमाणतः ।

जीर्णेचापरिहारंस्याद्भोजनंसार्वकालिकम् ॥ १८ ॥

श्लीपदंवातरोगांश्चहन्यात्प्लीहानमेवच ।

अग्निञ्चकुरुतेघोरंभस्मकंचनियच्छति ॥ १९ ॥

अर्थ—पीपल, हरड, बहेडा, -आमला, देवदारु, सोंठ, पुनर्नवा, प्रत्येक दो दो पल और सबकी बराबर विधारा लेवे सबका बारीक चूर्ण कर दो तोले

भर काँजके साथ पान करनेसे श्लीषदरोग वातरोग और प्लीहारोग दूर होता-
है । और जठराग्निको भस्माग्निकी समान दीपन करैहै ॥ १७-१९ ॥

अथ निर्गुण्ड्यादिसंधानम् ।

निर्गुण्डीतिन्तिडिकाशिखिमन्थदलंपुनर्नवामूलम् ।

भेत्तापाषाणानांगोक्षुरकःपारिभद्रत्वक् ॥ २० ॥

एतैःपलाद्धैर्योराशिस्ततःस्याद्विगुणःखलिः ।

तैलेनसर्षपाणाञ्चतदेकीकृत्ययत्नतः ॥ २१ ॥

शालेर्मण्डेनसंदध्यात्सत्तरात्रंनवेघटे ।

ततःसर्पपतैलेनपिबेत्कर्पप्रमाणतः ॥ २२ ॥

जीर्णेभुञ्जीतशाल्यब्रंमुद्गानांपक्षिणारसैः ।

पंचाशद्र्षजातञ्चजातांकुरमपिश्रुवम् ।

त्रिसप्ताहाज्यत्याशुश्लीपदंनान्नसंशयः ॥ २३ ॥

शिखिमन्थो गणिकारिका । निर्गुण्ड्यादित्रयस्यपत्रंसर्वेषां
चूर्णसर्षपखलिश्चवस्त्रच्छाननादधःपतितोरौद्रेणशोपितो
ग्राह्यः । मिश्रयित्वायोज्यःकटुतैलंमण्डस्त्वालोडनयोग्यः ॥

अर्थ—समूहालके पत्ते, इमलीके पत्ते, अरणी, पुनर्नखकी जड़, पाखानभेद,
गोखरू और फरहदकीछाल, प्रत्येक दो दो तोले और इनसे दुगुनी सगसोंकी खल
एकत्र कूटकर सगसोंके तेलमें खूब चलाकर मिलादेवे, पश्चात् इसमें चावलों-
का माँड मिलाकर एक नवीन मिट्टीके घड़ेमें भरके सातदिनतक गूस्वा गूहनेदे ।
फिर इसमें सगसोंका तेल मिलाकर दो तोले प्रमाण पिये तो निश्चय श्लीषदरोग
दूर होवे । इस औषधिके जीर्ण होनेपर मृगमसूगदि दालका गृप और कपोत,
लावादि पक्षियोंके मांसका गृप शालिधानके चावलके भातके साथ भोजन
करे ॥ २०-२३ ॥

अथ दन्त्यादिवृत्तम् ।

दन्तीमूलंपलंद्यात्रिवृन्मूलपलंतथा ।

त्रिफलातिविषाचित्रविडंगार्द्धपलंपृथक् ॥ २४ ॥

सुहीक्षीरसमतोयेघृतस्यकुडवंपचेत् ।
 बिन्दुमात्रप्रयोगेणवेगःसमुपजायते ॥
 दुर्वारश्लीपदंहन्तिवृक्षमिन्द्राशानिर्यथा ॥ २५ ॥
 तोये चतुर्गुणे ।

अर्थ—गायका घी आधासेर, जल दोसेर, थूहरका दूध आधासेर, और कल्के लिये दन्तीकीजड़ एकपल, निशोतकी जड़ एकपल, तथा हरड, बहेडा, आमला, अतीस, लालचीता और बायविडंग, प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करै, इस घृतको एक बिंदुभर खानेसे जुलान होताहै, और दुर्वार श्लीपदरोग आराम होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ सौरेश्वरघृतम् ।

सुरसादेवकाष्ठञ्चत्रिकटुत्रिफलातथा ।
 लवणानिचसर्वाणिविडंगान्यथचित्रकम् ॥ २६ ॥
 चविकापिप्पलीमूलंगुग्गुलुर्हपुपावचा ।
 यवाग्रश्चैवपाठाचवचैलावृद्धदारकम् ॥ २७ ॥
 कल्कैश्चकार्षिकैरेतैर्वृतप्रस्थंविपाचयेत् ।
 दशमूलीकषायेणधान्ययूषद्रवेणच ॥ २८ ॥
 दधिमण्डसमायुक्तंप्रस्थंप्रस्थंपृथक्पृथक् ।
 पक्वंस्यादुद्धृतंकल्कात्पिबेत्कर्पत्रयंहविः ॥ २९ ॥
 श्लीपदंकफवातोत्थंमांसरक्ताश्रितंजयेत् ।
 मेदःश्रितंचवातोत्थंहन्यादेतन्नसंशयः ॥ ३० ॥
 अपर्चीगंडमालांचअंत्रवृद्धिन्तथार्बुदम् ।
 नाशयेद्ग्रहणीदोषंश्वयथुंगुदजानिच ॥ ३१ ॥
 परमग्निकरंहृद्यंकोष्ठक्रिमिविनाशनम् ।
 घृतंसौरेश्वरंनामश्लीपदंहन्तिसेवितम् ।
 जीवकेनकृतंह्येतद्रोगानीकविनाशनम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-गायका घी दोसेर, दशमूलका काथ दोसेर, धानोंका यूष दो सेर कांजी दोसेर, दहीका मंड दोसेर और कल्कके लिये तुलसी, देवदारु, सांठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, सैधानोन, विडनोन, कालानोन, समुद्र-नोन, औद्धिदनोन, वायविडंग, चीता, चव्य, पीपगमूल, गूगुल, हाऊबेर, बच, जवाखार, पाद, बडी इलायची और विधारा प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें । प्रतिदिन तीनकर्ष प्रमाण इस घृतको पीवे, इससे कफवातोद्भूत श्लीपदरोग, मांसरक्ताश्रित श्लीपदरोग, मेदाश्रित श्लीपदरोग, वातोत्पन्न श्लीपदरोग अपची, गंडमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद संग्रहणी-गंग, सूजन, बवासीर, यह सब रोग दूर होतेहैं । अत्यन्त जठराग्निको दीपन करनेवाला हृदयको हितकारी, कोष्ठरोगको दूर करताहै । यह सौमेश्वर घृत निश्चय श्लीपदरोग दूर करैहै ॥ २६-३२ ॥

अथ महासौमेश्वरघृतम् ।

सुरसानांपलशतंपंचमूलीद्वयस्यच ।

शतंसंगृह्यसंक्षुद्यजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ३३ ॥

तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

धान्ययूषश्चमण्डश्चदध्नःप्रस्थचतुष्टयम् ॥ ३४ ॥

कल्कान्येतानिदेयानित्रिकटुत्रिफलानिच ।

निर्गुण्डीचित्रकश्चैवदेवदारुचयष्टिका ॥ ३५ ॥

पंचानांलवणानांचयवक्षारश्चपिप्पली ।

चविकाहपुपादार्वागुग्गुलुर्बृद्धदारुकम् ॥ ३६ ॥

शठीवचाविडंगैलापाठापालाशकंतथा ।

पिचुभागःप्रदातव्यःपक्तव्यंसुसमाहितैः ॥ ३७ ॥

विरेकान्तरितेकुर्याद्विडालपदमात्रकम् ।

इदंहिविविधात्रोगान्कफवातोद्भवानपि ।

श्लीपदान्विविधान्वोरान्करकर्णाश्रितानपि ॥ ३८ ॥

विद्रधिंचार्बुदश्चापिविविधानुदरस्थितान् ।

ब्रध्नवृद्धिगदांश्चापिमेदोमांसाश्रितानपि ॥ ३९ ॥

रक्ताश्रितान्गदान्हन्तिवृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

घोरनाडीव्रणाज्छोथान्गंडमालांश्चदारुणान् ॥ ४० ॥

नातःपरतरंश्रेष्ठविद्यतेश्लीपदेगदे ।

सज्वरंविज्वरश्चैवचिरजंकुलजन्तथा ॥

प्रोक्तंहारीतमुनिनामहासौरेश्वरंघृतम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, काथके लिये तुलसी १०० सौ पल, दशमूल, १०० पल, जल ३२ बत्तीस सेर, जेप आठसेर, धान्ययूष आठसेर, दहीका मण्ड आठसेर कल्कके लिये सांठ, मिरच, पीपल, हगड, बहेडा, आमला, समाल, चीता, देवदारु, मुलेठी, पांचांनोन, जवाखार, पीपल, चव्य, हाऊवेर, दारुहलदी, गुग्गुल, विधारा, कचूर, वच, वायविडंग, बडी इलायची, पाद और ढाकके बीज प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करै । इसको दो तोलेभर नित्य खाय, इसमे नानाप्रकारके कफवातमे उत्पन्न हुए रोग, विविध प्रकारके श्लीपदरोग, हाथके रोग, कानके रोग, विद्रधि, अर्बुद, अनेकप्रकारके उदररोग, ब्रध्नवृद्धिरोग, मेद, मांस और रुधिरके रोग दूर होतेहैं । तथा घोर नाडीव्रण, सूजन, गंडमाला, इन सबको यह घृत दूर करेहै । इससे परे और कोई दूसरी औषधि श्लीपदरोगकी नहीं है । यह ज्वरयुक्त, ज्वरहित, पुराना और कुलज श्लीपद रोगको दूर करेहै । यह महासौरेश्वर घृत हारी तमुनिने कहाहै ॥ ३३-४१ ॥

अथ वृद्धदारकाघृतम् ।

द्विपलंवृद्धदारस्यतदर्द्धश्चमहौषधम् ॥

पिप्पलीत्रिफलादावीचित्रकंसपुननवम् ॥ ४२ ॥

एभिश्चार्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

श्लीपदंनाशयत्याशुगृध्रसीशोथशूलनुत् ॥

पाण्डुरोगामवातघ्नंबलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—गायका घी दोसेर, जल आठसेर और कल्कके लिये विधागा दोपल सांठ एकपल, पीपल, त्रिफला, दारुहलदी, चीता और पुनर्नवा, प्रत्येक दोदो तोले लेकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करै । यह घृत—श्लीपद रोग, गृध्रसीवात, सूजन, शूल, पाण्डुरोग, और आमवातको दूर करेहै, तथा बल, वर्ण और अग्निको बढ़ावे है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ वृद्धदारकघृततैलंच ।

घृतप्रस्थंविपक्तव्यंसव्योषंवृद्धदारकैः ।

कल्कैःसौवीरसिद्धंस्याच्छीपदानानिवृत्तये ॥ ४४ ॥

अग्निचकुरुतेदीप्तमामवातेचशस्यते ।

एतैःकटुपचेतैलपानाच्छीपदनाशनम् ॥ ४५ ॥

सौवीरं संधानविशेषः तदभावे कांजिकम् ॥

अर्थ—गायका घी अथवा सरसांका तेल दोसेर, सौवीर नामवाली काँजी आठमेर और कल्कके लिये त्रिकुटा और विधारा दोनो मिलेहुए आधसेर, तथा जल आठसेर, सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको अथवा तेलको सिद्ध करें । इस घृत अथवा तेलको पानकरनेसे श्लीपदरोग दूर होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ बिडंगाद्यतैलम् ।

बिडंगमरिचार्कैषुनागरेचित्रकेतथा ।

भद्रदार्वेलकाख्येचसर्वेषुलवणेषुच ॥

तैलपक्वंपिबेद्रापिश्लीपदानानिवृत्तये ॥ ४६ ॥

अर्थ—कड़वातेल दोसेर, जल आठमेर और कल्कके लिये वायविडंग, कार्लामिगच, आककी जड़, सोंठ, चीता, देवदारु, इलायची और पाँचोंनोन प्रत्येक डेढ़ डेढ़ तोले । सबको मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करें । यह तेल—श्लीपदादि रोगोंको दूर करेहै ॥ ४६ ॥

अथ धान्यादिवृत्तगुग्गुलुः ।

धात्रीशिवामृतादन्तीवह्निगोशुररोहिणी ।

कणादर्वीङ्गुदीपूतिशुण्ठीनांपलपंचकम् ॥ ४७ ॥

प्रत्येकंक्राथयेत्सर्वजलद्रोणेभिपग्वरः ।

घृतप्रस्थोविपक्तव्योदत्त्वापुरपलाष्टकम् ॥ ४८ ॥

धान्यग्रूपस्यचप्रस्थेशर्नैर्मृद्वाग्निनाततः ।

कर्षमात्रन्तुकर्तव्यंवृत्तमेतदनुत्तमम् ॥ ४९ ॥

कठोरंश्लीपदंहन्तिगंडमालांविदोषजाम् ।

चिरोत्थमपिशोथञ्चआमवातंसुदारुणम् ॥ ५० ॥

स्थौल्यपाण्डुकामलाश्ववातश्लेष्मभवारुजम् ।

जीर्णज्वरन्तथाशूलनाडीव्रणमथार्बुदम् ।

अपर्चीगंडमालाश्चसर्वमेतद्रचपोहति ॥ ५१ ॥

अर्थ—गायका वी दो सेर, धान्ययूष दो सेर, गृगुल एकसेर, काथके लिये आमला, हरड, गिलोय, दन्ती, चीता, गोखरू, कुटकी, पीपल, दारुहलदी, हिंगोट, प्रतिकरंज और मांठ प्रत्येक पांचपांच पल, जल वत्तीससेर, शेष आठसेर, इस विधिसे इसवृत्तगृगुलको सिद्ध कर एककर्ष प्रमाण सेवन करें । यह कठोर श्लीपद रोग, त्रिदोषज गंडमाला, बहुत पुराना शोथ दारुण आमवात, स्थूलता, पाण्डुरोग, कामला, वातकफोद्ध्वरोग, जीर्णज्वर, शूल, नाडीव्रण, अर्बुद, अपर्ची, गण्डमाला इनसबको दूर करेहै ॥ ४७-५१ ॥

अथ चक्रेश्वरो रसः ।

ताम्रगंधंसमंमृतंशुद्धंमर्द्यदिनत्रयम् ।

मेघनादोनागवल्लीपाठापुनर्नवाद्भवेः ॥ ५२ ॥

गोमूत्रैर्मर्दयेद्वाटं चक्रयन्त्रेदिनंपचेत् ।

माषैकंभक्षयेदेतच्छ्लीपदंहन्तिदुस्तरम् ॥ ५३ ॥

खदिरपद्मकाष्ठश्चमधुकश्चाष्टमाषकम् ।

गवामूत्रैःसमंपिष्ट्वापिवेच्छ्लीपदशान्तये ॥ ५४ ॥

गर्तादधोभवेद्बहिर्मध्यगर्ताद्रिसंकुरु ।

चक्रयन्त्रमिदंसिद्धंबाह्यगर्ताद्बृहत्पुटम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—शुद्धताँवा एकभाग, शुद्ध गंधक एकभाग, शुद्धपारा एकभाग, इन तीनोंको चौलाई, पाठ और पुनर्नवेके रसमें तथा गोमूत्रमें तीन दिन खरल कर एकदिन चक्रयन्त्रमें पकावे। इसको एकमासेभर खावे तो निश्चय श्लीपद रोग दूर होवे । इसके ऊपर खैर, पद्माख, सहत, इनको गोमूत्रमें मिलाकर आठमासेभर पीवे । गड़देके अधोभागमें अग्नि, मध्यभागमें रस और बाहर बृहत्पुट दीजावे, इसको चक्रयन्त्र कहतेहैं ॥ ५२-५५ ॥

अथ नित्यानन्दरसः ।

हिंगुलसंभवंमृतगंधकंमृतताम्रकम् ।

कांस्यवंगहरीतालंतुत्थंशंखंवराटकम् ॥ ५६ ॥

त्रिकटुत्रिफलालौहंविडंगपटुपंचकम् ।
चविकापिप्पलीमूलंहृषाचवचातथा ॥ ५७ ॥
शठीपाठादेवदारुएलाचवृद्धदारकम् ।
एतानिसमभागानिसंचूर्ण्यवटिकांकुरु ॥ ५८ ॥
त्रिवृच्चित्रकदन्तीनांभावयित्वारसैः पृथक् ।
हरीतकीरसंदत्त्वापंचगुंजानिभांशुभाम् ॥ ५९ ॥
एकैकांभक्षयेद्रोगीशीतंचानुपयःपिबेत् ।
श्लीपदंकफवातोत्थंरक्तमांसाश्रितञ्चयत् ॥ ६० ॥
मेदोगतंधातुगतंहंत्यवश्यंनसंशयः ।
अर्बुदंगंडमालांचअत्रवृद्धिंचिरन्तनीम् ॥ ६१ ॥
वातपित्तेश्लेष्मवातेगुदरोगेक्रिमौतथा ।
अग्निवृद्धिंकरोत्येवबलवर्णञ्चसुस्थताम् ॥ ६२ ॥
श्रीमद्ब्रह्महृन्नाथेननिर्मितोविश्वसंपदि ।
नित्यानन्दरसोनाम्नाश्लीपदव्याधिनाशकः ॥ ६३ ॥
आनन्दयतिलोकेशःशिवोबाणासुरंयथा ॥
तथैवरोगिणानित्यंब्रध्नवृद्धौचसर्वजे ॥ ६४ ॥
रक्तजेपित्तजेचापिपथ्यंयोज्यंसदाबुधैः ।
अभावेवृद्धदारस्यत्रिवृताञ्चनियोजयेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ—मिश्रफमे निकाला हुआ पाग, गंधक, ताँबेकी भस्म, कांसी, वंग, इंगिताल, नीलाथोथा, शंख, कौडी, मोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, लोहा, वायविडंग, पांचांनोन, चव्य, पीपगमूल, हाडवेर, वच, कचूर, पाद, देवदारु, इलायची और विधाग इन सबको समानभागले चूर्णकर निमोत, चीता, दन्ती और हरड प्रत्येकके रसमें अलग-अलग भावना देकर पांचपांच रस्तीकी गोली बनालेवे । एकगोली प्रतिदिन खाय और ऊपरमे शीतल जलका अनुपान करे । यह—कफवातोद्भव श्लीपदरोग, रक्तमांसाश्रित श्लीपदरोग, मेदोगत-श्लीपदरोग, धातुगत श्लीपदरोग, अर्बुद, गण्डमाला, बहुत पुराना अन्त्रवृद्धि-रोग, वातपित्त, श्लेष्मवात, गुदरोग, क्रिमिरोग इनसबको दूर करेहे । आग्नि

दीपनकरै, बल, वर्ण और सुस्थताको बढ़ावैहै । यह श्लीपदरोगनाशक नित्या-
नन्द रस श्रीमद्ब्रह्मनाथ वैद्यने संसारके उपकारके लिये निर्माण कियाहै । तथा
ब्रह्मवृद्धि त्रिदोषज, रक्तज और पित्तज इनसबको हरैहै । इसके ऊपर सदा
पथ्य देवे । इसयोगमें जो विधारा नहीं मिले तो निसोत अथवा (समुद्रशोष)
लेवे ॥ ५६-६५ ॥

अथ कामदेवरसः ।

रसगंधकताम्राणिकाचंसीसंसमंसमम् ।

पिप्पलीत्रिवृताशुण्ठीधन्याकंचहरीतकी ॥ ६६ ॥

रसतस्त्रिगुणोग्राह्यःप्रत्येकंचूर्णमेवच ।

रसपादंप्रदातव्यंहिंगुचैवयवानिका ॥ ६७ ॥

अर्द्धमाषावटीकार्याखादेदेकांयथाबलम् ।

निहन्तिश्लीपदरोगंदोषत्रयसमुद्भवम् ॥ ६८ ॥

पैत्तिकेभक्षयेद्युषंश्लैष्मिकेशुण्ठिसैधवम् ।

वातिकेतकभक्तानिविष्टम्भंपरिवर्जयेत् ॥ ६९ ॥

कामदेवरसश्चायंतद्वदेहंकरोत्यलम् ।

श्रीमद्ब्रह्मनाथेनरचितोविश्वसंपदि ॥ ७० ॥

अर्थ—पारा, गंधक, ताँबा, काँच और सीसा प्रत्येक एकभाग, पीपल,
निसोत, सोंठ, धनियाँ और हरड प्रत्येक तीनभाग, तथा हींग और और अज-
वायन प्रत्येक चौथाई भाग, सबको बारीक पीसकर आधे आधे मासेकी गोली
बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली बलको विचारकर खावे । यह त्रिदोषज—श्ली-
पदरोगको दूर करैहै । यह औषधि सेवन करके मनुष्योंको चाहिये जो पित्तका
श्लीपद होयतो पूँग, माषादिके यूपके साथ भोजन करें । कफका श्लीपद होय तो
सैधेनोनका चूर्ण और सोंठका चूर्ण भक्षण करें । और वातज श्लीपद होय तो
तकके साथ भात भोजन करें, इसपर विष्टम्भी पदार्थ कभी न खावे । यह
कामदेव रस देहको कामदेवकी समान करताहै, यह श्रीमद्ब्रह्मनाथने संसारके
उपकारके लिये निर्माण कियाहै ॥ ६६-७० ॥

अथ पंचाननदुत्तंतैलञ्च ।

शालञ्जिकापलङ्ग-पलङ्गपुनर्नवा ।

इन्द्रसूरपलङ्गपल्लैकंचमरीफलम् ॥ ७१ ॥

गुंजादलंपलैकन्तुक्वाथयेत्प्रास्थिकेऽम्भासि ।

पादावशेषेविपचेद्गोघृतप्रास्थिकंसुधीः ॥ ७२ ॥

अभयाचित्रकंक्षारंसैन्धवंविश्वभेषजम् ।

एतेषां कर्षमानेन वस्त्रपूतं विचूर्णितम् ॥ ७३ ॥

घृतेसिद्धे प्रदातव्यं तच्च माषन्तु स्वादयेत् ।

पंचाननघृतं नाम श्लीपदे गदकुम्भिनि ॥ ७४ ॥

प्लीहगुल्मोदरानाहज्वरशोथविनाशनम् ।

श्रीमद्ब्रह्मनाथेन निर्मितं विश्वसम्पदि ॥ ७५ ॥

गोमूत्रं श्लैष्मिके देयं दुग्धं वा ते च पौष्टिके ।

सामान्यभोजनं देयमनुपानं प्रकीर्तितम् ॥ ७६ ॥

एतत्तैलं प्रकर्तव्यं कल्केन वस्तुना विना ।

घृतेन वा कृतं तैलं घृततुल्यगुणो भवेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ—शालिच दो पल, पुनर्नवा दो पल, इन्द्रायण दो पल, मुपारी एक पल और चांटलीके पत्ते एकपल, जल दोसेर, शोप आधसेर, गायका घी दोसेर, और कल्कके लिये हरड़, चीता, जवाखार, संधानोन और मोंट, यह प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें । यह पंचाननघृत श्लीपदरोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, ज्वर और शोथरोगको दूर करे । यह श्रीमद्ब्रह्मनाथने संसारके उपकारके लिये निर्माण किया है । श्लेष्मज श्लीपद होय तो गोमूत्रका अनुपान करें, जा तेल बनाना होय तो कल्ककी औषधियाँ न गेरै अथवा घृतहीमें तेलको डालकर पकावे तो घृतकी समान गुण करें ॥ ७१-७७ ॥

अथ कफवातशोथत्रलेपः ।

पुनर्नवादारुशिग्रुदशमूलमहौषधैः ।

कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ॥ ७८ ॥

अर्थ—पुनर्नवा, देवदारु, सेंजिनेकी जड़, दशमूल और मोंट यह सब समान भाग ले जलमें पीस लेपकरनेसे कफवातकृत शोथ दूर होता है ॥ ७८ ॥

अथ श्लीपदारिलोहः ।

हरीतक्याविभीतस्यधात्र्याश्चूर्णसुचूर्णितम् ।
 षट् तोलकप्रमाणेनग्राह्यमेतद्गुणैषिणा ॥ ७९ ॥
 तोलद्वयंलौहचूर्णकान्तलोहस्यजारितम् ।
 तोलद्वयंततोदेयंविशुद्धंचशिलाजतु ॥ ८० ॥
 कृतैकत्रसमस्तेषुत्रिफलाक्वाथभावना ।
 आशुश्लीपदविध्वंसीसर्वव्याधिविनाशनः ।
 श्लीपदारिरितिख्यातोलोहोमुनिभिरर्चितः ॥ ८१ ॥

अर्थ—हरड, बहेडा, आमला प्रत्येक छे छे तोले, जारित लोहेका चूर्ण दो तोले, शुद्ध शिलाजीत दो तोले इन सबको एकत्रकर त्रिफलेके काढ़में भावना देकर चूर्ण करले । यह श्लीपदरोगको शीघ्रही दूर करताहै इसको श्लीपदारि-लोह कहतेहैं ॥ ७९-८१ ॥

अथ वातरक्तान्तकोरसः ।

गंधकंपारदंलौहंघनतालंमनःशिला ।
 शिलाजतुपुरंशुद्धंसमभागंविचूर्णयेत् ॥ ८२ ॥
 विडंगंत्रिफलाव्योषमब्धिफेनंपुनर्नवा ।
 देवदारुंचित्रकंचदार्वीश्चेतापराजिता ॥ ८३ ॥
 चूर्णमेपांपृथक्तुल्यंसर्वमेकत्रकारयेत् ।
 त्रिफलाभृंगराजस्यरसेनैवत्रिधात्रिधा ॥ ८४ ॥
 भावनाखलुदातव्याततःसंचूर्ण्यभक्षयेत् ।
 मधुनामापमात्रञ्चप्रातःकालेदिनेदिने ॥ ८५ ॥
 कृत्वानुपानंनिम्बस्यषट्पुष्पंत्वचंसमम् ।
 शाणमात्रंघृतैःकुर्यात्सर्ववातविकारनुत् ॥ ८६ ॥
 वातरक्तंमहाघोरंगम्भीरंसर्वजंजयेत् ।
 सर्वोपद्रवसंयुक्तंसाध्यासाध्यंनिहन्त्यलम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, हारंताल, मैनाशिल, शिलाजीत, गृध्रुल, बायविडंग, त्रिकुटा, त्रिफला, समुद्रफेन, पुनर्नवा, देवदारु, चीता, दारुहलदी और सफेद कोयला. इन सब द्रव्योंको समानभाग ले एकत्र चूर्णकर, त्रिफला, और भांगरेके रसकी तीन तीन भावना देकर चूर्ण करले । इसको सहतके साथ एक मासेभर प्रतिदिन प्रातःकाल खावे, अनुपान—नीमके पत्ते, पुष्प और छालका चूर्ण कर चारमासे धृतके साथ खाय । इसमें—सर्वप्रकारके वातविकार, वातरक्त और महाघोर गंभीर तथा सर्वोपद्रव्ययुक्त वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ८२-८७ ॥

इति श्रीपदरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ विद्रधिचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नानि ।

विद्रधिं सर्वमेवात्र त्वरया व्रणशोथवत् ।

उपाचरेद्यथादोषं शोणितं च हरेच्छनैः ॥ १ ॥

जलौकः पातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ।

मृदुर्विरेकोलप्यन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २ ॥

अर्थ—सर्वप्रकारके विद्रधि रोगकी चिकित्सा व्रणशोथकी समान करे, तथा दोषानुसार रक्तमोक्षण करावे । सर्वप्रकारके विद्रधि रोगमें जोकोंको लगवाना अत्युत्तम है । पित्तज विद्रधिको छोड़कर बाकी सर्वप्रकारके विद्रधि रोगोंमें मृदु विरेचन, हलका भोजन और स्वेद देवे ॥ १ ॥ २ ॥

अथ वातविद्रधिचिकित्सा ।

वातघ्नमूलकलकैश्च वसतैलघृताप्लुतैः ।

सुखोष्णो वहुलोलेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ ३ ॥

गन्धादिभ्यो देवदारुविल्वमूलाग्रिमन्थकैः ।

मातुलुंगाम्लमपिष्टैः माज्यैलेपैश्च वातिकं ॥ ४ ॥

स्वेदापनाहाः कर्तव्याः शिशुमूलममन्विताः ।

स्वेदः पयोवेशवारकुशरापायसंघृतः ॥ ५ ॥

उपनाहश्च वातोक्तः प्रयोज्यः शाल्यनादिकः ।

यवगोधूममुद्गैश्च स्विन्नपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥

विलीयतेक्षणेनैवअपक्वश्चैवविद्रधिः ।

दशमूल्यमृतापथ्यावर्षाभूदारुनागरैः ॥ ७ ॥

सशिशुक्कथितंपेयंज्वरेवातजविद्रधौ ।

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा ॥

गुग्गुलुरुबुतैलंवापिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ ८ ॥

कफानुबन्धे गुग्गुलुम् ।

इति वाते ।

अर्थ-वातज विद्रधिरोगमें वातघ्न औषधियोंकी जड़को पीसकर घृत, तेल और वसामें मिलाकर कुछ कुछ गरम लेपकरे । रास्त्रा, कटेरी, देवदारु, वेलकी जड़, अरणी, विजौरानीवृ और अमलबंत, इन सबको एकत्र पीसकर घीके साथ मिलाकर लेप करनेसे वातज विद्रधिरोग दूर होताहै, विद्रधिरोगमें स्वेद और प्रलेप देना होय तो सेंजिनेकी जड़के साथ देवे, तथा दूध, वेशवार, कृशरा और पायसके द्वारा स्वेदप्रदान करे वातमें कहेहुए शाल्वनादि प्रलेप भी विद्रधिरोगमें करने चाहियें । जौ, गेहूं और मूँगको उवालकर पीसके लेपकरनेसे अपक्व-विद्रधि क्षणभरमेंही दूर होजावेगी । दशमूल, गिलोय, हरड, पुनर्नवा, देवदारु, सांठ और सेंजिनेकी जड़, इनका एकत्र काथ बनाकर पीनेसे वातज विद्रधिरोग नष्ट होताहै । पुनर्नवा, देवदारु, सांठ, दशमूल और हरड इनके काठके साथ गुग्गुलु अथवा अण्डीके तेलको सेवन करनेसे वातज विद्रधिरोग दूर होताहै पुनर्नवादिकाथके साथ गुग्गुलु कफानुबन्ध वातजविद्रधिरोगमें प्रयोग करे ॥३-८॥

अथ पित्तविद्रधिचिकित्सा ।

पैत्तिकेशर्करालाजामधुकैःशारिवायुतैः ।

प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वापयस्योशीरचन्दनैः ।

योगद्वयेऽपिक्षरेणलेपनंपित्तविद्रधौ ॥ ९॥

पयस्या क्षीरकाकोली ।

पंचवल्कलकल्केनघृतमिश्रेणलेपयेत् ॥

सर्पिषाशतधौतेननवनीतेनवागवाम् ॥ १०॥

त्रिवृद्धरीतकीनाञ्चूर्णमधुयुतंपिबेत् ॥

पिबेद्रात्रिफलाकाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ ११ ॥
इति पित्ते ।

अर्थ—मिश्री, खिलें, मुलैठी और अनन्तमूल इनको दूधमें पीसकर अथवा—क्षीरकाकोली, खश और लालचन्दन इनको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे पित्तज विद्रधि रोग दूर होता है । वड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंत इन पाँचवृक्षोंकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तज विद्रधि रोग दूर होता है । सौ बार धुलेहुए घीका अथवा मक्खनका लेप करनेसे पित्तज विद्रधि रोग दूर होता है निशोतका चूर्ण और हरडोंका चूर्ण समानभाग ले महतके साथ सेवन करनेसे अथवा त्रिफलेके काथमें निशोतका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे पित्तज विद्रधि रोग दूर होता है ॥ ९-११ ॥

अथ कफविद्रधिचिकित्सा ।

इष्टकासिकतालौहगोशकृच्चपपांशुभिः ।
मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छेष्मविद्रधौ ॥ १२ ॥
कपायपानैर्वमनैरालेपैरुपनाहकैः ।
हरेद्दोषमभीक्ष्णञ्च तथैवासृगलाम्बुना ॥ १३ ॥
दशमूलीकपायेण सस्नेहेन रसेन वा ।
शोथं व्रणं वा कोष्णेन सशूलं परिसेचयेत् ॥ १४ ॥
त्रिफलाशिथुवरुणदशमूलाम्भसापिबेत् ।
गुग्गुलुं मूत्रसंयुक्तं विद्रधौ कफसंभवे ॥ १५ ॥

इति कफे ।

अर्थ—ईंट, बालू, लोहा, गोबर और गोबरकी मांदको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कफज विद्रधि रोग दूर होता है । कफज विद्रधि रोगमें कपाय, वमन, प्रलेप और स्वेद देकर दोषोंको दूर करें, तथा अलावुप्रयोगके द्वारा रक्तमोक्षण कार्य करे । कुछ उष्ण दशमूलके काथ अथवा स्नेहसंयुक्त मांसादिसके द्वारा परिसेक करनेसे शूलकी समान पीडा युक्त व्रणशोथ दूर होता है । त्रिफला, मंजि-नेकी जड़, बरनेकी छाल और दशमूल इनका काथ गोमूत्र और गुग्गुलुके साथ पान करनेसे—कफजन्य विद्रधि रोग दूर होता है ॥ १२-१५ ॥

अथ भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

भूनिम्बार्द्धपलंशिलापलयुतं दार्वीपलेद्वेतथा
 दार्व्यर्द्धेन पुनर्नवांकुरुसमां दार्वीसमः प्रग्रहः ।
 वासादूर्द्धयुतं पलन्तुकट्टुकायोज्यातदूर्द्धेन वै
 विन्ध्याह्वंच निशासमानममृताकर्षास्तुपंचैवतु ॥ १६ ॥
 सर्ववत्सकसप्तकर्षसहितं सुश्लक्ष्णचूर्णीकृतम्
 वासायाः स्वरसेन भावितमिदं त्रीन्पंचवारंस्तथा ।
 भूयस्तद्गुडवारिणा प्रतिदिनं पीतं पुरस्तेरवौ ।
 पुंसां विद्रधिनाशनन्तुकथितं पथ्यं स्वयं ब्रह्मणा ॥ १७ ॥

प्रग्रहः शोणालुफलम् ।

विन्ध्याह्वस्थानेऽश्वामिति पाठेऽश्वगंधा ।

अर्थ—चिरायता दोतोले, हलदी चारतोले, दारुहलदी आठतोले, पुनर्नवा
 चारतोले, अमलतास आठतोले, अट्टसा डेढतोला, कुट्टकी पौनतोला, छोटी-
 इलायची चारतोले, गिलोय पाँचतोले और कुडेकी छाल साततोले लेवे । इन
 सब औषधियोंका उत्तमरीतिसे चूर्णकर अट्टसेके रसकी तीन तथा पाँच भावना
 देवे । इसको प्रतिदिन प्रातःकाल गुडके शरबतके साथ सेवन करें । यह मनु-
 ष्योंके विद्रधिरोगको नाश करनेके लिये स्वयं ब्रह्माजीने कहा है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथाभ्यन्तरिकविद्रधिचिकित्सा ।

मधुशिशुशृतंतोयं शिलाजतुसमन्वितम् ।

पिबेदभ्यंतरोत्थे च विद्रधावाशुशान्तये ॥ १८ ॥

वरुणादिगणक्वाथमपक्वेभ्यन्तरोत्थिते ।

उषकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै ॥ १९ ॥

उषकागिर्गणः ।

अर्थ—लालसेजिनेका क्वाथ शिलाजीतके साथ पान करनेसे आभ्यन्तरिक
 विद्रधिरोग दूर होता है । वरुणादिके क्वाथमें उषकादि गणस्थ औषधियोंका चूर्ण
 डालकर पान करनेसे आभ्यन्तरिक अषक्विद्रधिरोग दूर होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

इति श्लोपदाध्यायः ।

अथ प्रियंग्वाद्यंतैलम् ।

प्रियंग्वातकीलोध्रकङ्कफलंतिलसैन्धवम् ।

एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौरोपणं परम् ॥ २० ॥

तिलो वत्सकः ।

तिलशत्वचमित्यपपाठः सुश्रुतादावदर्शनात् ।

एषां कल्कः । जलं चतुर्गुणम् ।

अर्थ—तेल दोसेर, जल आठसेर और कल्कके लिये फूलप्रियंगु, धायकेफूल, लोध, कायफल, कुडा और सेंधानोन प्रत्येक दो दो तोले लेवे । इस तेलके प्रयोग करनेसे विद्रधिका घाव भरजाताहै ॥ २० ॥

अथ दशमूलाद्यंतैलम् ।

द्विपंचमूलीत्रिफलाकुलत्थेत्रिवृद्धनेर्मूलकशिशुयुक्तैः ।

तैलंतिलैरण्डजमतेदेभिः सिद्धं हितं विद्रधिगुल्मशूले ॥ २१ ॥

दशमूलादिकल्कः जलं चतुर्गुणम् ।

अर्थ—अरंडका तेल दोसेर, जल आठसेर, कल्कके लिये दशमूल, त्रिफला कुलथी, निशोत, नागरमोथा, मूली, सेंजिनेकी जड और तिल प्रत्येक दोदो तोले लेकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । यह तेल विद्रधि और गुल्मशूलको नष्ट करेहै ॥ २१ ॥

अथासाध्यविद्रधिहरकाथः ।

वरुणवलकलकाथेपिवेद्रासैन्धवं तथा ।

शिलाजतुसमंहिगुप्पसाध्यं विद्रधिं जयेत् ॥ २२ ॥

काथं शिशुवचावाथ हिं गुसैन्धवचूर्णितम् ।

संयुक्तं पययेच्छान्त्यै विद्रधिरोगपीडितम् ॥ २३ ॥

इति विद्रध्यध्यायः ।

अर्थ—वरनाकी छालके काठमें सेंधानोन, शिलाजीत और हींग डालकर पीनेसे अथवा सेंजिनेकी जड और वचके काथमें सेंधानोन और हींगका चूर्ण डालकर पान करनेसे सर्वप्रकारके विद्रधिरोग नष्ट होतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति विद्रध्यध्यायः समाप्तः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

तत्रादौ वातशोथचिकित्सा ।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् ।

तृतीयमुपनाहं चतुर्थीपाटनक्रियाम् ॥ १ ॥

पंचमं शोधनं चैव पष्टं रोपणमिष्यते ।

एते क्रमाद्व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥ २ ॥

मातुलुंगाग्निमन्थौ च भद्रदारुमहौषधम् ।

अहिंसा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ ३ ॥

कल्कः कांजिकसं पिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः ।

सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ ४ ॥

इति वाते ।

अर्थ—प्रथम विम्लापन (मर्दन), द्वितीय अवसेचन, तृतीय प्रलेप, चतुर्थ छेदन, पंचम शोधन, षष्ठ रोपण और सप्तम वैकृतविनाश, यह व्रणकी चिकित्सा करनेकी क्रिया क्रमसे कही है। विजौरानीवू, अरणी, देवदारु, सांठ, रास्ना और अहिंसा इन सबको समानभागले एकत्र पीसकर लेप करनेसे वातात्मक व्रण-शोथरोग दूर होता है। सिंहोडेकी छालको काँजीमें पीस घी मिलाकर लेप करनेसे वातजनित व्रणशोथ दूर होता है ॥ १-४ ॥

अथ पित्तशोथचिकित्सा ।

दूर्वाचनलमूलश्वमधुकंचंदनस्तथा ।

शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा ॥ ५ ॥

शीतला गणा उत्पलादिकाः कोलादिकाः ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्च तथ पुक्षवेतसवल्कलैः ।

स सर्पिष्कः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः स्मृतः ॥ ६ ॥

सर्पिः शतधौतम् । पंचवल्कलम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्च तथ पुक्षवेतसशेलुभिः ॥ ७ ॥

चंदनद्वयमंजिष्ठा यष्टी स्नगैरिक्तैः ।

शतधौतः तोन्मिश्रोलेपो रक्तप्रसादनः ॥ ८ ॥

दाहपाकरुजास्त्रावशोथनिर्वापणः परः ॥ ९ ॥

शेल्बहुवारकः । पूरणं मातुलुंगमूलमिति ।

कंचटंतिलभृष्टचपिडालेपप्रदापयेत् ।

दाहक्लेदरुजास्त्रावशोथवैवर्ण्यनाशनम् ॥ १० ॥

इति पित्ते ।

अर्थ—दूब, नीलकी जड, मुलैठी, लालचन्दन और उत्पलादि शीतल गणकी औषधियोंके द्वारा प्रलेप करनेसे पित्तज व्रणशोथ दूर होता है, बड गूलर, पीपल पाखर और बेंत इनकी छालको पीसकर सौवार धुलेहुए पुराने घीमें मिलाकर लेपकरनेसे पित्तज व्रणशोथ दूर होता है बडकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पाखरकी छाल, मुलैठी, बिजौरे नीवूकी जड, बेंतकी छाल, लिसोदेकी छाल, लालचन्दन, सफेद चंदन, मँजीठ और गेरू इन सब औषधियोंके समान भाग लेकर सौवार धुलेहुए पुगने घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तजव्रणशोथजन्य दूषित रक्त शुद्ध होवे, तथा व्रणकी दाह, पाक, वेदना, राध आदिका गिरना और सूजन दूर होती है । जलचौलाई और भुनेहुए तिलोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे व्रणकी दाह, क्लेद, पीडा, स्त्राव, शोथ और विवर्णता दूर होती है ॥ ९-१० ॥

अथ कफशोथचिकित्सा ।

अजगंधाश्वगंधाचकालासरलयासह ।

एकोपिचाजशृंग्याश्चप्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ११ ॥

अजगंधा क्षेत्रयवानी । अजशृंगी काकडाशृंगी ।

इति कफे ।

अर्थ—तिलवन, असगंध, कलम्बक और धूप सरल इनको एकत्र पीसकर अथवा केवल काकडासिंगीको पीसकर लेपकरनेसे कफजन्य व्रणशोथ दूर होता है ॥ ११ ॥

अथ त्रिफलाष्टकम् ।

तिलकल्कः सलवणोद्वेहरिद्रेत्रिवृद्धृतम् ।

मधुकनिम्बपत्राणिप्रलेपः शोथशोधनः ॥ १२ ॥

अर्थ—तिलोंका चूर्ण, सैधानोन, हलदी, दारुहलदी, निसोत, मुलैठी, और नीमके पत्तोंको एकत्र पीसकर घीमें मिलाके लेपकरनेसे व्रणशोथ दूर होता है ॥ १२ ॥

अथ व्रणरोपणचिकित्सा ।

निम्बपत्रंतिलादन्तीत्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।

दुष्टव्रणप्रशमनोलेपःशोधनकेसरी ॥ १३ ॥

सुषवीपत्रपत्तूरकर्णामोटकुठेरकाः ।

पृथगेतेप्रलेपेनगंभीरव्रणरोपणाः ॥ १४ ॥

येक्लेदपाकाःस्रुतिगंधवन्तोव्रणामहान्तःसरुजःसशोथाः

प्रयान्तितेगुग्गुलुमिश्रितेनपीतेनशान्तित्रिफलारसेन ॥

अर्थ—नीमकेपत्ते, तिल, दन्ती, निसोत और सैंधानोन इन सबको समान भाग लेकर जलके संग पीस सहत मिलाकर लेपकरनेसे दुष्टव्रण शुद्धहोकर आराम होताहै । करैलेके पत्ते, शालिचशाक, कर्णमोरटलता और तुलसीके पत्ते इनमेंसे एक किसीके पत्तोंको पीसकर प्रलेप करनेसे गंभीर व्रण भरजाताहै त्रिफलेके काथको गुग्गुलुके साथ सेवन करनेसे क्लेद, पाक, स्त्राव, वेदना और सूजनसहित व्रण नष्ट होजाताहै ॥ १३-१५ ॥

अथ वटिकागुग्गुलुः ।

विडंगत्रिफलाव्योपचूर्णगुग्गुलुनाशनम् ।

सर्पिपावटिकांकृत्वाखादेद्राहितभोजनः ।

दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीव्रणापहः ॥ १६ ॥

अर्थ—बायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा और गुग्गुलु, इनको एकत्र कर घीमें भिला गोली बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे—दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह कोढ, और नाडीव्रण दूर होताहै ॥ १६ ॥

अथ अमृतागुग्गुलुः ।

अमृतायाःपलशतंदशमूलशतन्तथा ।

पाठामूर्वाबलेद्रेचदार्वागन्धर्वहस्तकः ॥ १७ ॥

पृथग्दशपलान्भगान्छतंचापिहरीतकी ।

विभीतकशलेद्रेचचत्वार्यामलकानिच ॥ १८ ॥

गुग्गुलुप्रस्थसंयुक्तोद्रोणेऽपामुषितंनिशि ।

पूर्वाह्णेकाथयेद्दीर्घांश्चतुर्भागावशेषितम् ॥ १९ ॥

उद्धृत्यस्त्राव्यविपचेद्विवल्लेहकमाद्धनम् ।
 शीतेत्वेतानिसंचूर्ण्यप्रक्षिपेत्पलिकानिच ॥ २० ॥
 त्रिफलात्रिवृताव्योषदन्तीच्छिन्नाश्वगंधकाः ।
 क्रिमिशत्रुदलंचोचंसूक्ष्मैलानागकेशरम् ॥ २१ ॥
 स्वच्छन्दहारचेष्टस्यशीताम्भोवृष्यभोजनम् ।
 अमृतागुग्गुलुर्नाम्नासर्वव्रणविशोधनम् ॥ २२ ॥
 दुष्टकुष्ठविसर्पाश्वहिकार्महगरोदरम् ।
 घृहीतमयक्ष्महृद्रोगपाण्डुशोपमसृग्दरम् ॥ २३ ॥
 गुल्मार्शोविद्रधीन्भस्मनाडीव्रणभगंदरान् ।
 अशीतिवातजात्रोगान्निहन्तिश्वासजित्परान् ॥ २४ ॥
 कण्डूकोठाङ्गमर्दामवातशोणितवातहा ।
 आत्रेयानुमतोद्वेपगुग्गुलुःपरिकीर्तितः ॥ २५ ॥

अर्थ—गिलोय सौ पल, दशमूल १०० सौ पल, पाट, मूव्वा, खिरडी, गंगेरन, दारुहलदी, और अरण्ड, प्रत्येक, दश दश पल, हरड सौ, बहेडे सौ, आमले चारसौ और चौंसठतोले गृगुल पोठलीमं बांधकर सबको एक-द्रोण जलमें रातको भिजो दें और सबेरेको काथ बनावे, जब चौथा-भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् इसमें हरड, बहेडा, और आमलेकी गुठली निकालकर और गृगुलको पीसकर मिलादेवे, फिर इसको पकावे जब पकते २ गाढा होकर शीतल होजाय तब त्रिफला, निसोत, त्रिकुटा, दन्ती, गिलोय, अमगंध, वायविडंग, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोलें मिलादेवे । इसमें यथेष्ट और वृष्य भोजन करें और शीतलजल पान करें । यह अमृतागुग्गुलु—सर्वप्रकारके व्रणोंको शुद्ध करे, तथा दुष्ट कुष्ठ, विमर्ष, हिकारोग, प्रमेह, विषविकार, उदररोग, घृही, आम, राजयक्ष्मा, हृदयगर्भ, पाण्डु, शोष, रुधिरविकार, गुल्म, बवासीर, विद्रधि, भग्न, नाडीव्रण, भगंदर, अस्सी प्रकारके वातरोग, श्वासरोग, कण्डू, कोठ, अंगमर्द, आमवात और रक्तवात तथा अन्यान्य रोगोंको दूर करे- है ॥ १७-२५ ॥

अथ गुणवतीवर्त्तिः ।

तुल्यंसर्जरसंलोभ्रंसिन्दूरातिविषानिशा ।

अक्षकम्पिल्लश्रीवासगुग्गुलुघृततैलकैः ॥ २६ ॥

तुल्यांशंपेषयेत्पिण्डंतुल्यंसिक्थकंभवेत् ।

मृद्वग्निनापचेत्पात्रेमिश्रितंतसमुद्धरेत् ॥ २७ ॥

वर्त्तिगुणवतीनामयोज्याशीतजलान्विता ।

दुःसाध्यव्रणगण्डेषुहितानाडीव्रणेषुच ।

शोधनेरोपणेचैवस्वास्थ्यमुत्पादयत्यलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—गाल, लोध, सिंदूर, अतीस, हलदी, वहेडा, कवीला, सरलका गोंद, गुग्गुलु, घृत और तेल यह सब समानभाग और सबकी बराबर मोम लेवे, इनको मंद अग्निसे पकाकर वत्ती बनालेवे, यह वत्ती शीतल जलके साथ व्रण-पर लगावे । इससे असाध्य व्रण, गण्डव्रण और नाडीव्रण शुद्ध होकर मर-जाते हैं ॥ २६-२८ ॥

अथ व्रणशोथलेपः ।

धतूरपत्रमूलंसलवणमुष्णंव्रणोत्थितारम्भे ।

दत्तलेपान्नियतंव्रणशोथंहरतिबहुदुष्टम् ॥ २९ ॥

अर्थ—धतूरके पत्ते और जड़को पीस लवण मिलाके गरमकर व्रणके उत्पन्न होनेके पहलेही लेप करनेसे व्रणशोथ आराम होताहै ॥ २९ ॥

अथ व्रणगजांकुशः ।

दरदःपार्वतीपुष्पंकुनटीपुरुषोरसः ।

शोणितंगंधकोदैत्यःसैधवातिविषाचवी ॥ ३० ॥

शरपुंखाविडंगश्चयवानीगजपिप्पली ।

मरिचार्कश्चवरुणाधूनकंचहरीतकी ॥ ३१ ॥

मर्दितंकटुतैलेष्टुष्टिवांष्टाष्टोद्विह ।

नाडीव्रणप्रवाहश्चगंडमालाविचर्चिकाम् ॥ ३२ ॥

चिरव्रणंदद्रुकुष्ठंभूतिकन्तुशिसोमदम् ।

पादस्फोटतथाहस्तंविचर्चीबहुकीटजम् ॥ ३३ ॥

अत्र दरदो हिंगुलः । पार्वती वेङ्गामृत्तिका । पुष्पकं रसांजनं ।
मणिविशेषो वा । कुनटी मनःशिला । पुरुषो गुग्गुलुः ।
शोणितं ताम्रम् । दैत्यो लोहः । स्पष्टमपरम् ।

अर्थ—सिंग्रफ, वेंगामट्टी, रसांत, मनशिल, गुग्गुल, पाग, ताँबा, गंधक, लोहा, सैंधानोन, अतीस, चव्य, शरफांका, अजवायन, गजपीपल, बायबिडंग, बरना, आक, कालीमिरच, हरड और गाल इन सबको समानभाग ले कडवे तेलमें खरल कर गोली बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे नाडीव्रण, प्रवाह, गण्ड-माला, विचारिका बहुत दिनोंका व्रण, दाद, कोढ़, दुर्गन्धित व्रण, शिरोरोग पादस्फोट, हस्तस्फोट, विचर्ची और कृमिरोग दूर होतेहैं ॥ ३०-३३ ॥

अथ कर्कोटाद्यंतैलम् ।

वन्ध्याकर्कोटकीपाठाव्याघ्रीकुष्ठपटोलिका ।

अंकोटहस्तिपर्णीचतालगंधकसैन्धवम् ॥ ३४ ॥

मंजिष्ठाकरवीरंचनिशाहिंगुसुवर्चला ।

वचासिन्दूरतुल्यांशंजलेनसहपेषयेत् ॥ ३५ ॥

कल्काच्चतुर्गुणंतैलंतैलात्तोयंचतुर्गुणम् ।

पचेत्तैलावशेषञ्चलेपादुष्टव्रणापहम् ॥ ३६ ॥

इति व्रणरोगाध्यायः ।

अर्थ—कडवातेल दांसेर, जल आठसेर, और कल्कके लिये बांसककोडा, पाठ, कूट, कटेरी कडवीतोरई, अंकोल, हस्तपर्णी, हरिताल, सैंधानोन, गंधक, मंजीठ, कनेरकी जड़, हलदी, हांग, तुलसी, वच और सिंदूर प्रत्येक दो दो तोले लेकर यथाविधिसे तेलको मिद्ध कर इस तेलका लेप करनेसे दृष्टव्रण दूर होताहै ॥ ३४-३६ ॥

इति व्रणरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ शारीरव्रणाद्योव्रणाधिकारः ।

तत्रादौवैद्यकर्तव्यम् ।

परिपक्वंव्रणंवैद्योदारयेदवधानतः ।

नच्छिन्द्यादाममज्ञानान्नतुपक्वमुपेक्षते ॥ १ ॥

गवांदन्तंजलेघृष्टंविन्दुमात्रं प्रलेपतः ।

अत्यन्तकठिनेचापित्रणेपाचनभेदनम् ॥ २ ॥

कटुतैलान्वितैलेपात्सर्वनिर्मोकभस्मभिः ।

चयःशाम्यतिगण्डस्यप्रकोपःस्फुटतिद्रुतम् ॥ ३ ॥

चिरबिल्वाम्रिकोदन्तीचित्रकोहयमारकः ।

कपोतकंकगृध्राणांपुरीषाणिचदारुणम् ॥ ४ ॥

चिरबिल्वः करंजः।अम्रिको लांगली अजमोदावा । हयमारः

कर्वीरः।सर्पेचां मूलं एषांसमस्तानांव्यस्तानांचदारुणत्वम्॥

क्षारद्रव्याणिवायानिक्षारोवादारुणः परः ।

द्रव्याणांपिच्छलानान्तुत्वङ्मूलानिप्रलेपनम् ॥ ५ ॥

यवगोधूममाषाणांविचूर्णानिसमासतः ।

पटोलीतिलयष्ट्याह्वित्रिवृद्धन्तीनिशाद्रयम् ।

निम्बपत्रान्वितोलेपःसपटुर्व्रणशोधनः ॥ ६ ॥

अर्थ—वैद्यको चाहिये कि अत्यन्त चतुरताके साथ पक्षेत्रणको चीरे और कच्चा व्रण कदापि न चीरे, तथा पक्षेत्रणको तर्क करके चीरनेमें देर नकरे । गायके दाँतको जलमें घितकर एक विन्दुमात्र लेप करनेसे अत्यन्त शक्तव्रणभी पक्क करके अपने आपही फट जाताहै । साँपकी केंचलीकी भस्मको सर्प-साँके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे गलगण्डगतव्रण शीघ्रही फटकर नष्ट होताहै । करंजुवा, कलिहारी, दन्तीकी जड़, चीतेकी जड़, कनेरकी जड़, और कन्नूतर, कंक तथा गृध्र इन तीनों पक्षियोंकी विष्टा, इन सबको एकत्र अथवा अलग अलग तथा क्षारद्रव्य और जवाखार इन औषधियोंके द्वारा अथवा पिच्छिल द्रव्योंकी छाल या मूलके द्वारा लेप करनेसे व्रण विदीर्ण होकर आराम होजाता है जी, गेहूँ, और उडदोंका चूर्ण तथा पटोल, तिल, मुलैठी, निसोत, दन्ती, हलदी, दारुहलदी, नीमके पत्ते, और मेंधानोन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ विडंगादिवटिकागुग्गुलुः ।

विडंगत्रिफलाव्योपचूर्णगुग्गुलुनासह ।

सर्पिषावटिकांकृत । ॥ ६ ॥ देद्राहितभोजनः ।

दुष्टव्रणापचीमेहदुष्टनाडीविशोधनः ॥ ७ ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटिका चूर्ण और गूगुल इनको एकत्र घीमें पीसकर गोली बनालेवे, एक गोली प्रतिदिन खावे और इसपर हितकारक भोजन करे । यह गोली—दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह और दुष्टनाडीव्रणको दूर करेहै ॥ ७ ॥

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम् ।

समभागानांचूर्णसर्वसमोगुग्गुलोर्भागः ॥ ८ ॥

प्रतिवासरमेकैकांगुटिकांखादेदक्षपरिमाणाम् ।

जेतुव्रणवातामृग्गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुरोगान् ॥ ९ ॥

अथ अमृतावटिकागुग्गुलः ।

अर्थ—गिलोय, परवलकी जड़, त्रिकटु, त्रिफला, और वायविडंग, प्रत्येकका चूर्ण एकभाग और सबकी समान गूगुल लेवे, इन सबको एकत्र पीसकर दो दो तोलेकी गोली बनालेवे, फिर एक गोली प्रातदिन खाय, इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदररोग, सूजन और पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ जात्याद्यधृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादावींनिशाशारिवा

मंजिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्मुक्ताह्वीजैःसमैः ।

सर्पिःसिद्धमनेनसूक्ष्मवदनामर्माश्रितास्त्राविणो

गंभीराःसरुजोव्रणाःसगतिकाःशुध्यन्तिरोहन्तिच ॥ १० ॥

जात्यादेस्त्रयस्य पत्रम् । एषां कल्कः ।

जलं चतुर्गुणम् । गतिं नाडीम् ।

अर्थ—गायका घी दंभेर, जल आठमेर, कल्कके लिये चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, कुटकी, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मंजीठ, हरड, मोम, तुतिया, मुलैठी और मुक्तावीज प्रत्येक दो दो तोले । सबको मिलाकर यथाविधिमे घृतको सिद्ध करें, इस घृतको सेवन करनेमे सूक्ष्म मुखवाले, मर्माश्रित, सावयुक्त, गंभीर वेदनायुक्त नाडीव्रण, समस्त शुद्धहोकर आराम होजातेहैं ॥ १० ॥

अथ गौराद्यंघृतम् ।

गौरहरिद्रामंजिष्ठामांसीमधुकमेवच ।

प्रपौण्डरीकंहीवेरंभद्रमुस्तंसचन्दनम् ॥ ११ ॥

जातीनिम्बपटोलञ्चकरंजंकटुरोहिणी ।

मधूच्छिष्टंमधुकंमहामेदातथैवच ॥ १२ ॥

पंचवल्कलतोयेनघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

एषगौरोमहावीर्यःसर्वव्रणविशोधनः ॥ १३ ॥

आगन्तुसहजाश्चैवसुचिरोत्थाश्चयेव्रणाः ।

विषमामपिनाडींतुरोहयेच्छीघ्रमेवच ॥ १४ ॥

गौरहरिद्रा दारुहरिद्रा ।

जातीनिम्बपटोलानां पत्रं करंजस्य फलं मधुकस्य पुष्पम् ।

अर्थ—गायका घी दो सेर, बटादि पंचवल्कलोंका काथ आठसेर, जल आठ सेर, तथा कल्कके लिये दारुहलदी, मँजीठ, वालछड, मुलेठी, पुण्डेरिया, सुगंधबाला, नागरमोथा, लालचंदन, चमेलीके पत्ते, निम्बकेपत्र, पटोल, करंजके फल, कुटकी, मोम, महुवेंके फूल और महामेदा प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करें यह घृत नाडीव्रणको शुद्ध करके भर देताहै ॥ ११-१४ ॥

अथ करंजाद्यंघृतम् ।

नक्तमालस्यपत्राणितरुणानिफलानिच ।

मालत्याश्चैवपत्राणिपटोलारिष्टयोस्तथा ॥ १५ ॥

द्वेहरिद्रेमधूच्छिष्टंमधुकंतिक्तरोहिणी ।

मंजिष्ठाचंदनौशीरमुत्पलंशारिवात्रिवृत् ॥ १६ ॥

एतेषांकार्षिकैर्भगैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

ऋष्यव्रणप्रशमनंनाडीव्रणविशोधनम् ।

सद्यश्छिन्नव्रणानांचकरंजाद्यमिदंशुभम् ॥ १७ ॥

पत्राणि तरुणानि ।

अर्थ—उत्तम गायका घी दोसेर, जल आठसेर तथा कल्कके लिये करंजके पत्ते और फल मालतीके पत्ते, पटोलपत्र, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, मोम, महुएके फूल, कुटकी, मँजीठ, लालचंदन, खस, उत्पल, अनन्तमूल और निसोत, प्रत्येक दो दो तोले लेकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करें यह घृत दुष्टव्रणको शान्त करैहै नाडीव्रणको शुद्ध करैहै, तथा सद्य और छिन्नव्रणको यह घृत हितकारी-है ॥ १५-१७ ॥

अथ विपरीतमलतैलम् ।

सिंदूरहिंशुविषकुष्ठरसोनचित्रवालांत्रिलांगलिककल्कविपक्वतैलं
प्रासादमंत्रयुतदुंकृतमाध्विकेनछिन्नव्रणप्रशमनोविपरीतमल्लः १८

खट्वाभिघातगुरुगण्डमहोपदंश-

नाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः ।

एतान्निहन्तिविपरीतकमल्लनाम

तैलयथेष्टशयनाशनभोजनस्य ॥ १९ ॥

चित्रको रक्तचित्रकः । वालांत्रिः शरपुंखामूलम् ।

जलं चतुर्गणम् । केचित् कटुतैलमिच्छन्ति ।

तिलतैलेनव्यवहारः प्रासादमंत्रोमाहेश्वरोमंत्रः ।

ओंहाँहीहैंहौंशिवाय स्वाहेतिपठित्वाफेनमपनोद्यम् ॥

अर्थ—तिलका तेल दोसेर, जल आठसेर, तथा कल्कके लिये सिंदूर हींग, विष, कूठ, लहसुन, लालचीता, सरफोकेकी जड़ और कलिहारीकी जड़, प्रत्येक दो दो तोले । सबको मिलाकर यथाविधि तेलको मिद्ध कर । 'ओं हाँ हीं हैं हौं शिवाय स्वाहा' इस मंत्रको पढ़के झागोंको हटाकर तेलको पान करें यह विपरीत-मलतैल छिन्नव्रण, खट्वाभिघातव्रण, महागण्ड, महाउपदंश, नाडीव्रण, व्रण, वेचर्चिका, कुष्ठ और पामादि रोगोंको दूर करैहै । इसके ऊपर यथेष्ट भोजन और शयन करै ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ कुठारकतैलम् ।

कुठारकात्पलशतंक्राथयेदुल्वनेऽम्भासि ।

तेनपादावशेषेणतैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २० ॥

कल्कैः कुठारापामार्गप्रोष्ठीकामक्षिकासुच ॥ २१ ॥

एतत्कुठारकनामव्रणशोधनरोपणम् ।

नाडीषुपरमोऽभ्यंगोनिजगागन्तुकीषुच ॥ २२ ॥

प्रोष्ठीका शफरीमत्स्यः ।

अर्थ—तेल एक सेर, काथके लिये कुठारक (शुद्धताविशेष) ३ सेर, जल सोलह सेर, शेष चारसेर और कल्कके लिये कुठारक, चिरचिटा, प्रोष्ठीमछली और चिंगिडी मछली प्रत्येक चार चार तोल लेकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करै, यह तेल मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके व्रणोंको शुद्ध करके भर देवै ॥ २०-२२ ॥

अथ दूर्वातैलम् ।

दूर्वास्वरससंसिद्धंतैलकम्पिल्लकेनच ।

दार्वीत्वचश्चकल्केनप्रधानंव्रणरोपणम् ।

दूर्वास्वरसकल्काभ्यामेकंतैलं तथागतम् ॥ २३ ॥

कम्पिल्लदार्वीकल्केन जलं चतुर्गुणं दत्त्वा परमेकंतैलम् ।

अर्थ—तेल दो सेर, दूबका रस आठ सेर, जल आठ सेर, और कल्कके लिये कुटीहुई दूब आधा सेर लेकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करै । इस तेलको मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके नाडीव्रण दूर होतेहैं । तेल दो सेर, जल आठ सेर और कल्ककेलिये कबीला और दारुहलदी दोनों मिलेहुए आधसेर इस तेलसे भी व्रण भर जाताहै ॥ २३ ॥

अथ मंजिष्ठाद्यं घृतम् ।

मंजिष्ठाचंदनंमूर्वापिड्वासर्पिर्विपाचयेत् ।

सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥ २४ ॥

जलं चतुर्गुणम् ।

अर्थ—गायका घी दोसेर, जल आठसेर और कल्कके लिये मंजीठ, लालचन्दन और मूर्वा यह सब आधसेर सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करै । यह घृत अग्निदग्ध व्रणोंको दूर करैहै ॥ २४ ॥

अथ लांगलीघृतम् ।

लांगलीलोध्रमंजिष्ठाकृष्णामधुककट्फलम् ।

कम्पिल्लंद्रेनिशेमेदेनिम्बपत्रंफलत्रयम् ॥ २५ ॥

घृतेसिक्थंद्रिपलिकंदेयंतद्गन्धरोपणम् ।

लांगलीकंघृतंनामनाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ २६ ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, जल आठसेर, दूध चारसेर, तथा कल्कके लिये मोम आधपाव और कलिहारीकी जड़, मंजीठ, लोध, पीपल, मुलेठी, काय-फल, कबीला, मेदा, महामेदा, हलदी, दारुहलदी, नीमके पत्ते और त्रिफला प्रत्येक दो दो मासे लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको मिद्धकरै । यह घृत दुष्टव्रणको नष्ट करैहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ पाटलीतैलम् ।

सिद्धंकल्ककषायाभ्यांपाटल्याःकटुतैलकम् ।

दग्धव्रणरुजास्त्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ २७ ॥

अर्थ—पाटके कल्कमें तथा काथमें कडवे तैलको मिद्धकर लगानेसे अग्नि-दग्धजन्य व्रणकी वेदना, दाह और विस्फोट दूर होजातेहैं ॥ २७ ॥

अथ चन्दनाद्यं यमकम् ।

चन्दनवटशुंगाश्वमंजिष्ठामधुकंतथा ।

प्रपौण्डरीकंदूर्वाचघातकीरक्तचंदनम् ॥ २८ ॥

एभिस्तैलंविपक्तव्यंसर्पिःशिरसमायुतम् ।

अग्निदग्धेव्रणेश्रेष्ठंभ्रक्षणाद्रोपणंपरम् ॥ २९ ॥

अर्थ—तिलका तैल और घी दोंगर, जल आठसेर, दूध आठसेर, तथा कल्कके लिये सफेद चन्दन, वडके अंकुर, मंजीठ, मुलेठी, पुण्डेरिया, दूध, धायके फूल और लालचन्दन, यह सब आधसेर लेकर यथाविधिसे इस चन्दनाद्य यमकको मिद्धकर मर्दन करनेसे अग्निदग्ध व्रण नष्ट होजातेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ त्वग्निशुद्ध्यादिकराणिलेपनानि ।

मन्ःशिलालेमंजिष्ठासलाक्षारजनीद्वयम् ।

लेपःसघृतःक्षौद्रस्त्वग्निशुद्धिकरःपरः ॥ ३० ॥

अयोरजःसकाशीशंत्रिफलाकुसुमानिच ।
 प्रलेपःकुरुतेसात्म्यंसद्यएव नवत्वचि ॥ ३१ ॥
 त्रिफलायाः कुसुमाभावे फलं ग्राह्यम् ।
 कालीयकलतामास्थिहेमकालरसोत्तमैः ।
 प्रलेपोगोमयरसःसस्रवर्णकरःपरः ॥ ३२ ॥
 कालीयकं कालियाकाष्ठं । लता प्रियंगुर्दूर्वा वा ।
 हेम नागकेशरं । काला मंजिष्ठा । रसोत्तमं घृतम् ।
 चतुष्पदांघ्रित्वग्लोमखुरशृंगास्थिभस्मना ।
 तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेद्रोमवतीपुनः ॥ ३३ ॥

अर्थ—मैनशिल, हरिताल, मँजीठ, लाख, हलदी और दारुहलदी इन सब औषधियोंको पीस घृत और सहतमें मिलाके लेपकरनेसे त्वचा शुद्ध होतीहै । लोहा कसीस और त्रिफलेके फूल एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे तत्काल व्रणपे नवीन खाल जम आतीहै । कलम्बक, फूलप्रियंगु, आमकी गुठली, नागकेशर, मँजीठ और घृत इन सब द्रव्योंको एकत्र पीसकर गोवरके रसमें मिलाके प्रलेप करनेसे व्रणकी जगह उत्तमवर्णवाली होजातीहै चतुष्पद जन्तुओंके पाँव, चमड़ा, रोम, खुर, सींग और हड्डियोंकी भस्मको तेलमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणकी जगहमें रोम जम आतेहैं ॥ ३०—३३ ॥

अथ व्रणरोगेऽपथ्यानि ।

लवणाल्मकटूनिचविदाहीनिगुरूणिच ।
 वर्जयेदनुपानानिव्रणीमैथुनमेवच ॥ ३४ ॥
 नवंधान्यंमाषागुडतिलकुलत्थाम्बुकृशराः
 कलायानिष्पावाहरितकिजलानूपपिशितम् ।
 हिमापोबन्धूकलवणकटुकंपिष्टविकृति
 दधिशिरंतक्रं व्रणिषुसकलंदोषजनकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—नमक खटाई, मिरचा, गरमपदार्थ, दाहजनक द्रव्य और भारी भोजन, तथा पानद्रव्य, मैथुन, नवीनधान्य, उडद, गुड, तिल, कुलथी, यूप, खिचडी, मटर, निष्पाव, हरडोंका काय, अनुपदंशके जीवोंका मांस, शीतल-

जल, दुपहरियोंके फूल, लवणरसवाले द्रव्य, चरपरे द्रव्य, विष्टकविकार, दही, दूध और तक्र, यह सब पदार्थ व्रणरोगवाले मनुष्यको अहितकारीहैं ३४॥३५॥

अथ नाडीव्रणचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ गुग्गुल्वादिचूर्णम् ।

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योपैःसमांशैराज्ययोजितैः ।

नाडीदुष्टव्रणशूलभगंदरविनाशनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—गुग्गुल, त्रिफला और त्रिकुटा यह समान भाग लेकर चूर्ण बना धीमें मिलाके सेवन करनेमें नाडीव्रण, दुष्टव्रण और भगंदर रोग दूर होता है ॥ ३६ ॥

अथ कार्पासतैलम् ।

कुष्ठोदितःपंचतिक्तःगुग्गुलुश्चात्रशस्यते ।

कार्पासमूलरजनीकल्कंदत्त्वाजलेशृतंतैलम् ॥

पूरणमात्राच्चिरजंनाडीव्रणमाशुनाशयति ॥ ३७ ॥

अर्थ—कुष्ठरोगमें कहा हुआ पंचतिक्त गुग्गुल भी व्रणरोगमें हितकारी है । तेल दोसेर, जल आठसेर, तथा कल्कके लिये कपासकी जड़ और हलदी आधसेर यथाविधिसे तेलको मिद्धकर भग्नेमें नाडीव्रण (नासूर) आगम होताहै ॥ ३७ ॥

अथ कुम्भीकाद्यंतैलम् ।

कुम्भीकखंजूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनांतुशलाटुवर्गे ।

कृत्वाकपायंविपचेच्चेतैलमवाप्यमुस्तासगलाप्रियंगू ॥३८॥

सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्पलोध्राणिदत्त्वाखलुधातकीञ्च ।

एतेनशल्यप्रभवाहिनाडीरोहेद्व्रणोवेमुग्धमाशुचैव ॥ ३९ ॥

अर्थ—तेल दोसेर, जलकुम्भी, खजूर, कैथा, बेल, तथा वटादि पंच वृक्षोंके कच्चे फल इनका काथ आठसेर और कल्कके लिये नागमोथा, धूपमगल, फूल-प्रियंगु, अनन्तमूल, नागकेशर, लोध और धायके फूल प्रत्येक दो दो तोले लेकर । यथाविधिसे इस तेलको मिद्धकर सेवन करनेमें शल्याघातादिजन्य नाडीव्रण भर जातेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ निर्गुण्डीतैलम् ।

समूलपत्रनिर्गुण्डचारसैस्तैलंसमैःशृतम् ।

हन्तिनाडीव्रणस्फोटान्नस्याभ्यङ्गादिनापचीम् ॥ ४० ॥

अकल्कमेव ।

अर्थ—तेल दोसेर, जल आठसेर और पत्तोंसहित सम्हालूका रस आठसेर, इस तेलका नास लेनेसे तथा अभ्यंग करनेसे नाडीव्रण और अपचीरोग दूर होताहै ॥ ४० ॥

अथ हंसपदीतैलम् ।

हंसपद्वारिष्टपत्रंजातीपत्रंतोरसैः ।

तत्कल्कैश्चपचेतैलं नाडीव्रणनिरोहणम् ॥ ४१ ॥

इति नाडीव्रणाऽध्यायः ।

अर्थ—तेल दोसेर, जल आठसेर, हंसपदी, नीमके पत्ते और चमेलीके पत्तोंका स्वरस आठसेर, तथा कल्कके लिये हंसपदी, नीमके पत्ते और चमेलीके पत्ते आधसेर, यथाविधिसे इस तेलको सिद्ध कर लगानेसे नाडीव्रण भर-जाता है ॥ ४१ ॥

इति नाडीव्रणचिकित्सा समाप्ता ।

अथ भगंदरचिकित्साधिकारः ।

अथ सामान्ययत्नानि ।

लंघनस्वेदनालेपविम्लापनविरेचनैः ।

रक्तमोक्षादिभिःशीघ्रगुदजापिडकांजयेत् ॥ १ ॥

तथायत्नंभिषक्कुर्याद्यथापाकंनगच्छति ॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यःसपुनर्नवाः ॥ २ ॥

सुपिष्ट्वापिडकारम्भेलेपःशस्तोभगन्दरे ।

त्रिफलारससंयुक्तंविडालास्थिप्रलेपनम् ॥ ३ ॥

भगन्दरंनिहन्त्याशुदुष्टव्रणहरंपरम् ।

स्वित्रवंचाकुष्ठहिङ्गुयवानीपटुपञ्चकम् ॥ ४ ॥

सर्पिषापाययेच्चूर्णमम्लेनसुरयापिवा ।

स्तुह्यर्कदुग्धदावींभिर्वर्तितकृत्वाभगन्दरे ॥ ५ ॥

दद्यात्सर्वशरीरस्थानाडीहन्यात्प्रयोगराट् ।

त्रिवृत्तिलानागदन्तीमञ्जिष्ठासहसर्पिषा ॥ ६ ॥

उत्स दनम्भवेदेतत्सैन्धवंक्षौद्रसंयुतम् ॥ ७ ॥

उत्सादनमुद्धर्तनम् ।

रसांजनंहरिद्रेद्रेमंजिष्ठानिम्बपल्लवाः ।

त्रिवृज्ज्योतिष्मतीदन्तीलेपोहन्तिभगन्दरम् ॥ ८ ॥

कुष्ठंत्रिवृत्तिलादन्तीमागध्यःसैन्धवंमधु ।

रजनीत्रिफलातुत्थंहितं व्रणविशोधनम् ॥ ९ ॥

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रंनिशेवचालोध्रमगारधूमः ।

भगन्दरेचाप्युपदंशनेचदुष्टव्रणेशोधनरोपणीयम् ॥ १० ॥

पयःपिष्टतिलैरण्डयष्टीलेपःसशोणिते ।

खरास्रपक्वंभूरोमचूर्णलेपोभगन्दरम् ॥ ११ ॥

हन्तिदन्त्यग्न्यतिविपालेपस्तद्रच्छुनोस्थिवा ।

नश्येद्भगन्दरःक्षिप्रंक्षालितेत्रिफलाभसा ॥ १२ ॥

अर्थ—लंघन, स्वेद, प्रलेप, विम्लापन (मर्दनादि) विरेचन और रक्तमोक्षणा-
दिके द्वारा शीघ्र गुदज पिडकाओंको दूर करें, वैद्य इस प्रकार इस रोगकी चिकि-
त्साकरे कि जिससे यह पके नहीं । बडके पत्ते, ईंट, साँठ, गिलोय और पुनर्नवा
इनको एकत्र पीसकर भगन्दररोगके पिडकाओंको उत्पन्न होते ही लेप करनेसे
आराम होताहै । विलावकी हड्डियोंको त्रिफलेके रसमें पीसकर लेपकरनेसे भगन्दर
और दुष्टव्रण नष्ट होजाताहै । वच, कूठ, हाँग, अजवायन और पाँचानाँन घृतमें
भून चूर्ण करके कौजी अथवा सुगके साथ सेवन करनेसे भगन्दररोग नष्ट होताहै ।
थूहरके दूध और आकके दूधमें दारुहलदीके चूर्णको मिलाकर बत्तीबना लगा-
नेसे भगन्दररोग और नासूर दूर होताहै । निसोत, दन्ती, नागकेशर, तिल और
मैजीठ इनको घामें पीसकर सहत और संधानोन मिलाकर उबटन करनेसे भग-
न्दर दूर होताहै । रसात, हलदी, दारुहलदी, मैजीठ, नीमकेपत्ते, निसोत, माल-
कांगनी और दन्तीकी जड़ इनको एकत्र पीसकर लेपकरनेसे भगन्दररोग दूर

होता है । कूठ, निसोत, दन्तीकी जड़, तिल, पीपल, सैंधानोन, सहत, हलदी, हरड़, बहेडा, आमला और तूतिया, इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे भगन्दरका व्रण शुद्ध होजाता है । तिल, हरड़, लोध, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, वच, लोध और घरका धुआं यह सब औषधि समानभाग लेकर प्रलेप करनेसे भगन्दर, उपदंश और दुष्टव्रण शुद्ध होता है । दूध, पिटी, तिल, अरण्ड और मुलेठी इनका प्रलेप करनेसे रक्तदोषजन्य भगन्दररोग दूर होता है । गधेके रुधिरमें पकाया हुआ भूरोमेका चूर्ण तिसका लेपकरनेसे अथवा कुत्तेकी हड्डियोंका लेपकरनेसे किम्बा त्रिफलेक जलसे धोनेसे भगन्दररोग दूर होता है ॥ १-१२ ॥

अथ नवकार्षिकगुग्गुलुः ।

त्रिफलापुरकृष्णाभिस्त्रिपञ्चैकांशयोजिता ।

गुटिकाशोथगुल्मार्शोभगन्दरवतांहिता ॥ १३ ॥

अर्थ—हरड़, बहेडा, आमला, प्रत्येक एकएक कर्प गुग्गुल पाँच कर्ष और पीपल एक कर्प इन सब औषधियोंको एकत्र मिलाकर गोली बनालेवे । यह गोली सूजन, गुल्म, बवासीर और भगन्दररोगको नष्ट करै है ॥ १३ ॥

अथ सप्तविंशतिगुग्गुलुः ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगामृतचित्रकम् ।

शठचेलेपिप्पलीमूलंहपुषासुरदारुच ॥ १४ ॥

तुम्बुरंपुष्करं चव्यं विशालारजनीद्वयम् ।

विडसौवर्चलंक्षारः सैन्धवंगजपिप्पली ॥ १५ ॥

यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्भिगुणगुग्गुलुः ।

कोलप्रमाणांगुटिकांखादेत्तुमधुनासह ॥ १६ ॥

भगन्दरंश्वासकासक्षयजीर्णज्वरोदरम् ।

नाडीदुष्टव्रणानाहकुष्ठपामाश्मरीक्रिमीन्

मेहान्त्रवृद्धिहृत्पार्श्वशूलं प्रीहानमेव च ॥ १७ ॥

पंचतिकधृतं शस्तम् ।

सप्तविंशतिकोहन्तिगुग्गुलुः सर्वरोगहा ॥ १८ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरभोथा, बायबिडंग, गिलोय, चीता, कचूर, इलायची, पीपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, धनियाँ, पोह-करमूल, चव्य, इन्द्रायनकी जड़, हलदी, दारुहलदी, विरियासंचरनोन, काला-नोन, जवाखार, सेंधानोन और गजपीपल इन सबका चूर्ण एकभाग और सबसे दूना गूगुल एकत्र मिलालेवे । प्रतिदिन इसको बेरफी बराबर सहतमें मिलाकर खाय, इससे—भगन्दर श्वास, खाँसी, क्षय, जीर्णज्वर, उदररोग, नाडीव्रण, दुष्ट-व्रण, अकारा, कोढ़, पामा, पथरी, कृमिरोग, प्रमेह, अंत्रवृद्धि, हृदयरोग, पार्श्व-शूल, प्लीहा, तथा अन्यान्यरोग, दूर होतेहैं । अथवा पंचतित्त गूगुल तथा सप्तविंशति गूगुलको सेवन करनेसे भगन्दरादि नाना प्रकारके रोग दूर होतेहैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ भगन्दरघ्नप्रयोगः ।

जम्बुकमांसंभक्षयेत्प्रकारव्यंजनादिभिः ।

अजीर्णवर्जीमासेनमुच्येततुभगन्दरात् ॥ १९ ॥

पंचतित्तघृतंशस्तंपंचतित्तश्चगूगुलः ।

न्यग्रोधादिर्गणोयस्तुहितःशोधनरोपणः ॥ २० ॥

अर्थ—शृगालके मांसके विविधप्रकारके व्यंजन बनाकर सेवनकरै और अजी-र्णमें भोजन न करै तो भगन्दर रोगसे रोगी छूट जातेहैं । पंचतित्तघृत और पंचतित्त गूगुलको सेवन करनेसे तथा न्यग्रोधादिगणकी सर्व आपधियोंका काथ बनाकर सेवन करनेसे भगन्दर रोगके सम्पूर्ण व्रण शुद्ध और भरकर रोग दूर होजाताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ विस्यन्दनतैलम् ।

चित्रकार्कोत्रिवृत्पाठेमलपूहयमारकौ ।

सुर्हीवचालांगलकींहरितालंसुवर्चिकाम् ॥ २१ ॥

ज्योतिष्मतीञ्चसंहृत्यतैलंधीरोविपाचयेत् ।

एतद्विस्यन्दनं नामतैलंदद्याद्भगन्दरे ॥

शोधनरोपणंचैवसवर्णकरणंपरम् ॥ २२ ॥

मलपू कृष्णोदुम्बरः ।

अर्थ—तेल २ टांमर, जल ८ आठमर, कल्ककेलिये चीता, आक, निमोत, पाठ, कटूमर, कनेर, मालकाँगनी, थूहर, वच, कलिहारी, हरिताल और

सजी यह सब औषधियाँ आधसेर, लेकर यथाविधिसे इस तेलको सिद्ध करै, यह तैल-भगन्दर रोगके व्रण शुद्ध करके भरदेताहै और घावके स्थानको उत्तम-वर्ण-वाला करदेताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ करवीराद्यं तैलम् ।

करवीरनिशादन्तीलांगलीलवणाग्निभिः ।

मातुलंगार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ २३ ॥

कुटजस्य फलं दग्धम् ।

अर्थ-तेल २ दोसेर, जल ८ आठसेर, तथा कल्ककेलिये कनेरकी जड़, हलदी, दन्तीकी जड़, कलिहारी, सेंधानोन, चीता, विजोरेकी जड़, आककी जड़ और भुनेहुए इन्द्रजौ आधसेर यथाविधिसे इसतेलको सिद्ध करै, यह तैल भगन्दर रोगको दूर करेहै ॥ २३ ॥

अथ निशाद्यंतैलम् ।

निशार्कक्षीरसिन्ध्वग्निपुराश्वहनवत्सकैः ।

सिद्धमभ्यंजने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ २४ ॥

अर्थ-तेल २ दोसेर, जल आठसेर, तथा कल्कके लिये हलदी, आकका दूध, सेंधानोन, चीता और गूगुल तथा कनेरकी जड़ और इन्द्रजौ यह सब आध सेर, इस तेलकी मालिश करनेसे भगन्दर रोग आराम होताहै ॥ २४ ॥

अथ कालाग्रिरसः ।

शुद्धसूतंसमंगंधं मृतनागंसतुत्यकम् ।

जीरकं सैन्धवं तुल्यं तिक्ताकोषातकीद्रवैः ॥ २५ ॥

पिष्टं तल्लेपनाद्वान्तिभक्षणाच्च भगन्दरम् ।

रसः कालाग्रिनामोऽयं द्विगुंजं मृत्युजिद्भवेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-शुद्धपारा, गंधक, मृतसीसा, तृतिया, जीरा और सेंधानोन यह सब औषधि समानभाग ले कुटकी और कड़वी तोरइयाँके रसमें पीसकर लेपकरनेसे अथवा दोरत्तीकी गोली बनाकर प्रतिदिन एक गोली खानेसे भगन्दर रोग दूर होताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ साध्यासाध्यव्यवस्था ।

पूयञ्च हस्ते पद्मे च षट्साध्यो भगन्दरः ।

त्रिदोषोत्थमसाध्यं स्यात्किमिजश्च भगन्दरः

आदौसर्वप्रयत्नेनपाकरक्षेद्भगन्दरे ॥ २७ ॥

अर्थ—भगन्दर पकजाय तो राख निकालदेवे, यह पक भगन्दर कष्टसाध्य है । त्रिदोषोत्पन्नभगन्दर तथा क्रिमिजभगन्दर असाध्य है । सबसे पहिले वैद्यको चाहिये कि जिससे भगन्दर पके नहीं ऐसे यत्नांसे भगन्दरकी रक्षा करे ॥ २७ ॥

अथ रतिताण्डवरसः ।

शुद्धसूतं द्विधागन्धं कुमारीरसमर्दितम् ।

त्र्यहान्तेगोलकंकृत्वाहण्डिकान्तेनिरोधयेत् ॥ २८ ॥

तयोः समेताम्रपात्रेशुद्धेचताम्रलेपिते ।

तद्भाण्डं भस्मना पूर्य चुल्ल्यांतीव्राग्निनापचेत् ॥ २९ ॥

त्रियामान्ते समुद्धृत्य चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ।

जम्बीरस्यद्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटेपचेत् ॥ ३० ॥

गुंजैकं मधुना ज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम् ।

मुशलीलशुनंचानुआरनालयुतं पिबेत् ॥ ३१ ॥

कर्तव्यं मधुनाहारं दिवा स्वप्नश्च मैथुनम् ।

वर्जयेच्छीतमाहारं सेऽस्मिन्नतिताण्डवे ॥ ३२ ॥

अर्थ—पारा १ एकभाग, गंधक २ दोभाग, दोनोको एकत्र घीकुआरके रसमें तीनदिन खरलकर गोलाबनालेवे, इसपर कपगंटीकरे, फिर दोनोकी बराबर तांबेके पत्रोंको लेकर, उनको एक हाँडीमें बिछाकर उनके बीचमें गोलको रख ऊपरसे खूब दावकर राख भगदेवे, पश्चात् चूल्हेंप चढाकर तीनग्रहगतक प्रचण्ड अग्निदेवे, पश्चात् चूल्हेपरसे उतार स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करले, फिर जम्बीरी नीवृके रसमें खरलकर सप्तपुटमें रख ढूँकदेवे, इसप्रकार मातपुट देवे, इसरसको एक रत्तीभर सहत और घीके साथ सेवन करे तो भगन्दरगंग दूर होवे। ऊपरसे मूसली और लहसुनके चूर्णको काँजीके साथ पान करे, यह अनुपान है । इसरसको सेवन करनेवाला मनुष्य मधुरभोजन करे, तथा दिनमें सोना, मैथुन और शीतल आहार यह सब इसमें त्यागदेवे, इसको रतिताण्डवरस कहते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ भूनिम्बादिचूर्णकायश्च ।

भूनिम्बत्रिफलाकुष्ठवानरीबीजगन्धकम् ।

लशुनञ्चशिलायुक्तंतुल्यंचूर्णप्रकल्पयेत् ॥ ३३ ॥

उदुम्बरस्यचूर्णन्तुगवांक्षीरेणपाययेत् ।

तत्कषाययुतंचूर्णरात्रौलेपञ्चशान्तये ॥ ३४ ॥

गुग्गुलुश्चपलान्पञ्चपलैकापिप्पलीतथा ।

त्रिफलापलमेकञ्चत्वगेलाप्रतिकार्षिकम् ॥ ३५ ॥

चूर्णयेन्मधुनाज्येनभुक्त्वाहन्तिभगन्दरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—चिरायता, कूठ, हरड, वहेडा, आमला, कौंछकेबीज, गंधक, लहसुन और मैन्शिलके चूर्णको गायके दूधके साथ अथवा गूलरके चूर्णको गायके दूधके साथ पीनेसे तथा उपरोक्त द्रव्योंके काथमें उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण डालकर रात्रिमें लेपकरनेसे—भगन्दररोग शान्त होताहै । गुग्गुलु ५ पाँचपल, पीपलका चूर्ण १ एक पल, त्रिफलेका चूर्ण ४ चारतोले, दालचीनी २ दोतोले और छोटी इलायची २ दोतोले सबको एकत्र मिलाकर सहत और घृतके साथ सेवनकरनेसे भगन्दररोग दूर होताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ भगन्दरव्रणलेपनानि ।

नशस्त्रैश्छेदयेत्प्राज्ञः स्फोटयेच्छेपनादिभिः ।

हरिद्रानिम्बसिन्धूत्थंपिष्ट्वालम्पेत्स्फुटत्यलम् ॥ ३७ ॥

नरास्थितैललेपेनस्फुटितःशुध्यतिव्रणः ।

ताम्रचूर्णसमंचूर्णसुतमेकंविमर्दयेत् ॥ ३८ ॥

सैन्धवंसप्तभागञ्चगंधकंनवभागकम् ।

भृंगीद्रवैःसजम्बीरैःसप्ताहंवर्ममर्दितम् ॥ ३९ ॥

तैललितंस्फुटत्याशुयदपक्वंभगन्दरम् ।

ताम्रभस्मद्रवैर्मर्द्यमधुपर्णीपुनर्नवा ॥ ४० ॥

मेषशृंगीदिनैकेनव्रणशोधनरोपणम् ।

कांचनीद्विनिशामुण्डीमंजिष्ठाचशतावरी ॥ ४१ ॥

गंधकंधातकीपुष्पं तुल्यं लवणपंचकम् ।

कन्याद्रवयुतोलेपःकफोत्थेचभगन्दरे ॥ ४२ ॥

अर्थ—भगन्दरके व्रणोंको कदापि शस्त्रसे न चीरै, किन्तु लेपादिसे तोड़ै । हलदी, नीम और सेंधेनोनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा मनुष्यकी हड्डियोंके चूर्णको तेलमें मिलाकर लेप करनेसे भगन्दरके सब व्रण फूटकर सूख जाते हैं । ताँबेके चूर्णको और पारेको एक एक भागलेकर दोनोको एकत्र खरल करै, पश्चात् इसमें सेंधानोन ७ सात भाग और गंधक ९ नौ भाग मिलाकर भांगरेके रसमें और जम्भीरी नीकूके रसमें सात दिनतक धूपमें खरल करै, फिर इसमें बेल मिलाकर लेप करनेसे अपक्व भगन्दर भी फूट जाताहै । ताँबेकी भस्मको मधुपर्णी पुनर्नवा और मेढासिंगीके रसमें एक दिन खरलकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजातेहैं, और भरजातेहैं । सत्यानाशी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, गोरखमुण्डी, मजीठ, सतावर, गंधक, धायेके फूल और पाँचानोन इन सब औषधियोंको समान भाग ले घीकुआरके रसमें खरलकर कफज भगन्दरपे लेप करै ॥ ३७—४२ ॥

अथ सैन्धवादितैलम् ।

सैन्धवंचित्रकंदन्तीपलाशश्चेन्द्रवारुणीम् ।

गोमूत्रेऽष्टगुणेपच्याद्राह्यमष्टावशेषकम् ॥ ४३ ॥

क्वाथपादक्षिपेतैलंकृष्णासस्त्वयोमृतम् ।

पचेत्तैलावशेषश्चतेनलेप्यंभगन्दरम् ॥ ४४ ॥

असाध्यंसाधयत्याशुपक्वक्रिमिकुलान्वितम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—तिलका तेल १ एक सेर क्वाथके लिये सेंधानोन, चीता, दन्ती, पलाश और इन्द्रायणकी जड़, यह सब कूटेद्वय द्रव्य प्रत्येक ३ तीन पल २ दो तोले, पाकके लिये गोमूत्र १२८ एक सौ अठ्ठाईस पल, अंश ३२ वत्तीसपल, तथा कल्कके लिये पुटपाकमें माग हुआ और जागण किया हुआ लोहा २ दोपल, सबको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करै । इस तैलका लेप करनेसे पक्व और क्रिमिसंयुक्त असाध्य भगन्दरभी दूर होताहै ॥ ४३—४५ ॥

अथ हरिद्रादितैलम् ।

निशासैन्धवसिद्धार्थक्षौद्रगुग्गुलुसंयुता ।

वर्त्तिर्भगन्दरेयोज्यातश्चान्नीव्यापहा ॥ ४६ ॥

अर्थ—हलदी, सैन्धवलवण, सफेद सरसों, सहत और गूगुल इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बत्ती बना योजनेसे भगन्दर और नाडीव्रण दूर होताहै ॥ ४६ ॥

अथ भगन्दरेऽपथ्यानि ।

व्यायाममैथुनंयुद्धंपृष्ठयानंगुरुणिच ।

संवत्सरंपरिहरेदपिरूढव्रणोनरः ॥ ४७ ॥

इति भगन्दराध्यायः ।

अर्थ—व्रणोंके मरजानेपर अर्थात् भगन्दररोगके आराम होजाने परभी एक वर्ष तक व्यायाम, मैथुन, युद्ध, हाथीघोड़ेआदि सवारियोंपै चढना और भारीद्रव्य इन सबको वर्जदेवे ॥ ४७ ॥

इति भगन्दराध्यायःसमाप्तः ।

अथोपदंशचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नानि ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्यध्वजमध्येसिराव्यधः ।

जलौकःपातनंवास्याद्दूर्द्धाधःशोधनंतथा ॥ १ ॥

सद्योहिहृतदोपस्यरुक्शोथावुपशाम्यतः ।

पाफोरक्ष्यःप्रयत्नेनशिश्रक्षयकरोहिसः ॥ २ ॥

अर्थ—उपदंशरोगमें प्रथम स्नेह और स्वेद देकर लिंगकी फस्त खोले, अथवा जोंक लगवावे तथा वमन और विरेचन दोनों कराकर शुद्ध करै, इस प्रकार करनेसे सम्पूर्ण दोष दूर होकर तत्काल पीडा और सूजन दूर होजातीहै। परन्तु जिससे उपदंश पके नहीं, ऐसे यत्नोंसे रक्षा करै इसका विशेष ख्याल रखै, कारण यह है कि उपदंशके पकनेसे लिंगका अग्रभाग पक अर्थात् सडकर गिरपडता है, इससे लिंग छोटा और असमर्थ हो जाताहै। तथा कोई कोई रोगी परलोकनिवासी भी होजातेहैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ पटोलाद्विहृत्य दीनि ।

पटोलनिम्बत्रिफलागुडूचीकाथंपिबेद्वाखदिराशनाभ्याम् ।

सगुग्गुलुंवात्रिफलायुतंवासर्वोपदंशापहरःप्रयोगः ॥ ३ ॥

प्रपौण्डरीकमधुकंरास्नाकुष्ठपुनर्नवाः ।

सारलागुरुभद्राख्यैर्वातिकेलेपसेचने ॥ ४ ॥

भद्रो देवदारुः ।

अर्थ—परवल, नीम, त्रिफला, और गिलोयके काथमें अथवा खैर और असनके काथमें गृगुल अथवा त्रिफलेका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्वप्रकारके उपदंश नष्ट हो जाते हैं, पुण्डेरिया, मुलेठी, रास्ना, कूठ, पुनर्नवा, मगल, अगर, और देवदारु, इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा इन औषधियोंका काथ बनाकर सेवन करनेसे उपदंश गेग शान्त होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ पित्तजोपदंशहरलोपः ।

गैरिकांजनमंजिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।

सचन्दनोत्पलैःस्निग्धैःपैत्तिकसंप्रलेपयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—गेरू, रसीत, मंजीठ मुलेठी, खस, पद्माख, लालचंदन और उत्पल, इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर घी मिलाके लेप करनेसे पित्तज उपदंश दूर होता है ॥ ५ ॥

अथपित्तमज्जोपदंशहरसेकदीनि ।

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसेषु ।

प्रक्षालनालेपघृतानिकुर्याच्चूर्णञ्चपित्तास्रभवोपदंशैः ॥ ६ ॥

अर्थ—नीम, अर्जुन, पीपल, कदम्ब, शाल, जामुन, वट, गूलर और वेत, इन सब वृक्षांकी छालका काथ बनाकर परिपेक करनेसे अथवा इन सब छालोंको पीसकर लेप करनेसे, किम्वा इन सब छालोंका योगसे घृतको सिद्ध कर सेवन करनेसे या उक्त, छालोंका चूर्ण बनाकर योजनेसे पित्त और क्त-जन्य उपदंश दूर होता है ॥ ६ ॥

अथ त्रिफलादिक्वाथः ।

त्रिफलायाःकपायेणभृंगराजरसेनवा ।

व्रणप्रक्षालनंकुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ७ ॥

अर्थ—त्रिफलेके काढ़ेसे अथवा भाँगेके रसमें उपदंशका धोनेसे अराम होता है ॥ ७ ॥

अथोपदंशव्रणादिहरलेपः ।

दार्वीरसांजनंद्राक्षाशंखनाभिपयोमधु ।

तैलाज्यगोमयरसोलेपस्तैःसमभागकैः ॥

सुपिष्टैरुपदंशेस्याद्वणश्वयथुदाहहा ॥ ८ ॥

अर्थ—दारुहलदी, रसौत, लाख, शंखनाभि, दूध, सहत, तेल, घृत और गोबरका रस, इन सबको समानभाग ले एकत्र पीसकर लेप करनेसे उपदंशके घाव, सूजन और दाह दूर होजातेहैं ॥ ८ ॥

अथोपदंशव्रणरोहणलेपः चूर्णञ्च ।

वटप्ररोहाज्जुनजम्बुपथ्यालोध्रोहरिद्राचहितःप्रलेपः ।

सर्वोपदंशेषुचरोहणार्थचूर्णञ्चतज्ज्विमलांजनेन ॥ ९ ॥

अर्थ—बड़के बंकुर, अर्जुनकी छाल, जामुनकी छाल, हरड़ लोध, और हलदी, इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा उक्त औषधिका चूर्ण, फिटकरी और रसौत मिलाकर योजनेसे—उपदंश रोगके घाव भरजातेहैं ॥ ९ ॥

अथ भूनिम्बाद्यं घृतम् ।

भूनिम्बनिम्बात्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिराशनाभ्याम् ।

सतोयकल्कैर्घृतमाशुपक्वंसर्वोपदंशापहरंप्रदिष्टम् ॥ १० ॥

करञ्जस्य फलम् । एतद्भक्षणं प्रक्षणञ्च ।

अर्थ—घृत ४ चारसेर, काथके लिये चिरायता, नीमकीछाल, पटोलपत्र, करंजकेफल, चमेलीके पत्ते, खैर और विजयसारप्रत्येक एक एक सेर, पाकके लिये जल ६४ चौंसठसेर शेष १६ सोलहसेर और कल्कके लिये भी यही औषधि एक सेर लेवे, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतके खानेसे—तथा लगानेसे—सर्वप्रकारके उपदंश दूर होतेहैं ॥ १० ॥

अथोपदंशघ्नयोगवर्णनम् ।

घृतादिष्टानिचोक्तानिकुष्ठेनाडीव्रणेव्रणे ।

उपदंशेप्रयोज्यानिसेकाभ्यंजनभोजनैः ॥ ११ ॥

अर्थ—जो घृत कुष्ठरोग, नाडीव्रण और व्रणरोगमें कहेहैं, वे सब घृत उपदंश रोगमें सेक, अभ्यंग और भोजनरूपसे व्यवहार करने चाहियें ॥ ११ ॥

अथ गृहधूमाद्यं तैलम् ।

गृहधूमनिशाकिण्वैरेकद्वित्र्यंशकैः क्रमात् ।

तैलसिद्धंसकण्डूश्चशोथंचैवोपदंशनुत् ॥ १२ ॥

किण्वं सुराबीजम् ।

अर्थ—तेल ४ चारसेर, जल १६ सोलहसेर, तथा कल्कके लिये घरका धुआँ १ एक पल—४ चार तोले—पाँच ५ मासे—३ तीन रत्ती, हलदी २ दो पल—५ पाँच तोले—२ मासे—३ तीन रत्ती और सुराबीज ३ तीनपल—७ सात तोले—७ सात मासे ८ आठ रत्ती लेवे । यथाविधिसे तेलको सिद्ध करै, यह तेल—कण्डू और सूजनसंयुक्त उपदंश रोगको दूर करेहे ॥ १२ ॥

अथ कोषातक्याद्यं तैलम् ।

यस्यलिंगस्यमांसन्तुशीर्यतेकृमिभक्षितम् ।

तस्यकोषातकील्वम्बाबीजनागरसाधितम् ॥

तैलहन्त्यचिराद्दोरंदुष्टव्रणभगन्दरम् ॥ १३ ॥

अर्थ—तेल ४ चारसेर, जल १६ सोलह सेर, तथा कल्कके लिये कड़वी तोर-इयाँके बीज और सोंठ यह सब १ एक सेर लेकर यथाविधिसे तेलको सिद्धकर लगानेसे शीर्णमांस और कृमिभक्षित उपदंश रोग दुष्टव्रण तथा भगन्दर रोग दूर होताहै ॥ १३ ॥

अथ महाशंखलेपः ।

महाशंखजलैः पिष्ट्वातेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ।

लिङ्गरोगं निहन्त्यलुलेपोऽयं व्याधिनाशकः ॥ १४ ॥

अर्थ—मनुष्यकी खोपडीको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश रोग दूर होताहै ॥ १४ ॥

अथ कुष्ठादिप्रलेपः ।

शृङ्गं वचातोयैः सारं वा खदिरोत्थितम् ।

जलैः प्रलेपोऽयं लिंगरोगहरंपरम् ॥ १५ ॥

अर्थ—कूठ, सुपारी और बचको जलमें पीसकर लेप करनेसे अथवा खंखसारको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश रोग दूर होताहै ॥ १५ ॥

अथ त्रिफलाप्रयोगः ।

क्षालयेत्त्रिफलाकाथैःपक्वलिंगं पुनः पुनः ।

तच्चूर्णदेयमात्रेण अंकुरञ्च जयेद् ध्रुवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—पकेहुए लिंगको त्रिफलेके काथसे बारं बार धोवे, पश्चात् त्रिफलेकाचूर्ण लिंगपै बुरकादेवे, इससे लिंगपै अंकुर भाजातेहैं ॥ १६ ॥

अथ सगन्धकघृतलेपः ।

सगन्धकघृतैर्लेप्यं पक्वलिंगं सुखावहम् ॥ १७ ॥

अर्थ—गन्धकके चूर्णको घृतमें पीसकर लेपकरनेसे उपदंश रोग नाशको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

अथ पंचारविन्दघृतम् ।

मृणालपद्मबीजानिनालं पद्मञ्च केशरम् ॥

सर्वसप्तदलंकुर्यात्त्रिंशत्पलञ्च गोघृतम् ॥ १८ ॥

घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतशेषं विपाचयेत् ।

पाकान्ते चूर्णमेषाञ्च क्षिप्त्वा तदवतारयेत् ॥

भक्षयेत्लिंगरोगघ्नं घृतं पंचारविन्दकम् ॥ १९ ॥

अर्थ—मृणाल, कमलगट्टे, कमलकी डंडी, कमल और कमलकेशर इन सबका चूर्ण ७ सात पल बना रखे, पश्चात् ३० तीसपल घृत १२० एकसौ बीस पल दूध इन दोनोंको एकत्र पकावे, जब पकते पकते घृत शेष रहजाय तब पूर्वोक्त मृणालादिका चूर्ण ७ सात पल मिलादेवे, इस पंचारविन्दघृतको खानेसे लिंगरोग दूर होताहै ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ तुल्यादिलेपः ।

तुत्थटंकणकाशीशंशिलातालं रसांजनम् ।

सौराष्ट्रीसैन्धवञ्चैलांसिन्दूररेणुभूषणम् ॥

पिष्ट्वा तु शौद्रसंयुक्तं लेपं लिंगरुजापहम् ॥ २० ॥

अर्थ—तूतिया, सुहागा, कसीस, मैन्शिल, हरिताल, रसौत, सोरठकी मट्टी, सैंधानोन, इलायची, सिन्दूर और कपूर यह सब औषधि समानभाग ले सहतके साथ पीसकर लेप करनेसे लिंगरोग नष्ट होताहै ॥ २० ॥

अथ जीरकादिलेपः ।

कुमारीरससंपिष्टं जरिकं लेपनाद्भुजम् ।

तेन दाहश्च पाकश्च शान्तिमाप्नोति निश्चितम् ॥ २१ ॥

अर्थ—घीकुवाग्के रसमें जीरको पीसकर, लेप करनेमें उपदंशका दाह और पाक निवारण होता है ॥ २१ ॥

अथ लौहरजो लेपः ।

अयोरजस्ताम्ररजस्त्रिफलागैरिकस्तथा ।

उपदंशं निहन्त्येतद्दृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २२ ॥

अर्थ—लोहा, ताँवेका चूर्ण, त्रिफला और गेरू. इन सब औषधियोंको जलमें पीसकर लगानेमें उपदंश रोग दूर होता है ॥ २२ ॥

अथ भृङ्गराजादिलेपः ।

मार्कवास्त्रिफलादन्तीताम्रचूर्णमयोरजः ।

उपदंशं निहन्त्येतद्दृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २३ ॥

इत्युपदंशाऽध्यायः ।

अर्थ—भांगग, त्रिफला, दन्ती, ताँवेका चूर्ण और लोहेका चूर्ण जलमें पीसकर लेप करनेमें उपदंश रोग दूर होता है ॥ २३ ॥

इति उपदंशाऽधिकारः समाप्तः ।

अथ शूकदोषचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नानि ।

शूकदोषेषु सर्वेषु विपत्तीनां गयेत्क्रियाम् ।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यञ्चापि विरेचनम् ॥ १ ॥

हितं शोणितमोक्षञ्च यच्चापि लघुभोजनम् ।

ज्वलतीग्रथिताष्टीलामर्पपीणां विशेषतः ॥ २ ॥

उपनाशनमांसानां कल्कानां विणवद्विधिः ।

पित्तकोल्वणानां अपित्तश्च यथुवत्क्रिया ॥ ३ ॥

सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुम्नि गर्भैरुपनाहयेत् ।

कुम्भिकायां हरेद्रक्तपक्वायां शोधिते व्रणे ॥ ४ ॥
 तिन्दुकात्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलञ्चरोपणे ।
 अलज्यां हृतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ॥ ५ ॥
 स्वेदयेद्व्रथितं शिश्रं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ।
 रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियाशोणितजार्बुदे ॥ ६ ॥
 कषायकल्कसर्पीषितैलचूर्णरसक्रियाम् ।
 शोधने रोपणे चैव वीक्ष्यावस्थां विचारयेत् ॥ ७ ॥
 अर्बुदमांसपाकश्च विद्रधिं तिलतालकम् ।
 प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक्तेपां प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥

इति शूकदोषाधिकारः समाप्तः ।

अर्थ—सर्व प्रकारके शूकदोषोंमें विषन्न क्रिया करें । घृतपान, विरेचन, रक्त-
 मोक्षण और लघुभोजन, यह सब शूकदोषमें विशेष हितकारी हैं । ज्वलिता,
 ग्रथिता, अष्टीला और सर्पपी इन चार प्रकारके अधिक मांसयुक्त शूकदोष
 रंगोंमें व्रणवत् विधिप्रयोग करना चाहिये पित्त और रक्तजन्य शूकदोषरो-
 गमें पित्तज शोथकी समान क्रिया करें, तथा किंचित् गरम, सुस्निग्ध प्रलेप
 देवे । कुम्भिका नामक शूकदोषमें फस्त खुलवावे और जो वह पक जाय तो
 व्रणको शुद्धकर पश्चात् तेंदू, त्रिफला और लोधको एकत्र पीस तेलमें मिला-
 कर लेप करें, इससे वाव भर जाते हैं । अलजी शूकदोषमें भी फस्त खुलवाकर,
 पश्चात् इसी प्रकार क्रिया करें । ग्रथित शूकदोषमें नाडीस्वेदप्रदान करें । रक्ता-
 र्बुदशूकदोषमें रक्तज विद्रधिकी समान चिकित्सा करें । कषाय, कल्क, घृत,
 तेल, चूर्ण और रसक्रिया यह सब शूकदोषकी अवस्थाके अनुसार बारंबार
 विचारकर प्रयोग करें । अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलतालक इनको
 त्यागके चिकित्सा करें अर्थात् इनकी चिकित्सा न करें यह असाध्य है ॥ १-८ ॥

इति शूकदोषाधिकारः समाप्तः ।

अथ भग्नचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नानि ।

आदौ भग्नविदित्वा तु सेचयेच्छीतलांबुना ।

पंकेनालेपनं कार्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम् ॥ १ ॥

कुशा बन्धनद्रव्यम् ।

पलाशोदुम्बरीश्वत्थकदम्बनिचुलत्वचः ।

वंशसर्जार्जुनंवाथकुशार्थमुपकल्पयेत् ॥ २ ॥

सघृतेनास्थिसंहारंलाक्षागोधूममज्जुनम् ।

सन्धियुक्तेऽस्थिभग्नेतुपिबेत्क्षीरेणमानवः ॥ ३ ॥

रसोनमधुलाक्षाज्यंसिताकल्कंसमश्नताम् ।

छिन्नभिन्नच्युतोऽस्थीनांसन्धानमचिराद्भवेत् ॥ ४ ॥

पीतंवराटिकाचूर्णंद्विगुंजंवात्रिगुञ्जकम् ।

अपक्वक्षीरपीतस्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ ५ ॥

लाक्षास्थिसंहककुभाश्वगन्धाचूर्णीकृतानागबलापुरश्च ।

संभग्नयुक्तास्थिरुजनिहन्यादङ्गानिकुर्यात्कुलिशोपमानि ६

अर्थ—प्रथम भग्नरोगमें अर्थात् जिसकी हड्डी टूटगई हो उसको जीतल जलसे छिड़के, पश्चात् कीचका लेप करें, तथा टाक, गुलर, पीपल, कदम्ब, जलवंत, बाँस, शाल और अर्जुनादिकी छालको पीसकर कुशाके मंग बाँधे, मंथियुक्त हड्डी टूट जावे तो हडमंवागी, लाख, गेहूँ और अर्जुन इन सबको घृत और दूधके साथ पीवे, लहसुन, महत, बी, लाख और खोंड, इन सबको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे छिन्न, भिन्न और च्युत हड्डी जुड़जातीहै । २ दाँगती अथवा ३ तीन गत्ती पीली कौडीके चूर्णको कच्चे दूधके साथ सेवन करनेसे टूटी हड्डी जुड़जातीहै, लाख, हडमंवागी, अर्जुन, असगंध और गोंगन इन सब औषधियोंको समानभाग ले, चूर्णकर सबको बराबर गृगुल मिलाकर सेवन करनेसे अस्थिभग्न नष्ट होताहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथाभागुगुलुः ।

आभाफलत्रिकाव्योपैःसर्वैरेभिःसमीकृतेः ।

तुल्योगुगुलुर्वायोज्योभग्नसंधिप्रसाधकः ॥ ७ ॥

अर्थ—आभा (वाणकृद्रव्यविशेष) त्रिफला और त्रिकुटा यह सब समान भाग और सबकी बराबर गृगुल मिलाकर सेवन करनेसे अस्थिभग्न दूर होताहै ॥ ७ ॥

अथाभिघातजपीडादिहरलेपाः ।

सद्योऽतिघातजनितरोगरुजाश्वयथवःप्रशाम्यन्ति ।

पिष्टकलवणालेपादम्लीकाफलरसाभ्यांवा ॥ ८ ॥

कांजिकेनैवसंपिष्टंशाल्मलीवल्कलंहितम् ।

छागविट्सहितंकोष्णमस्थिभग्नेप्रलेपनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—पिष्टक और लवणको इमलीके रसमें पीसकर लेप करनेसे तत्काल अभिघातजनित पीडा और सूजन दूर होतीहै । सेमलकी छालको कांजीमें पीसकर लेप करना हितकारी है । अथवा बकरीकी मँगनको कांजीमें पीस गरम करके लेपकरना हितकारक है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ भग्नरोगोऽपथ्यानि ।

लवणंकटुकंक्षारमम्लमैथुनमातपम् ।

व्यायामश्चनसेवेतभग्नोरुक्षान्नमेवच ॥ १० ॥

अर्थ—नमकीन, चर्परी, खारी, खट्टे, मैथुन, धूप, कमरत और रुखे अन्न, यह सब भग्नरोगमें विशेष अहितकारी हैं ॥ १० ॥

अथ वज्रवल्लीयादिगुग्गुलुः ।

वज्रवल्ल्यर्जुनोवासाविशालालोहटंकर्णौ ।

रसगन्धकसिन्धुतथाःसमभागेनचूर्णयेत् ॥ ११ ॥

चूर्णाद्गुणत्रयंग्राह्यंगुग्गुलुंघृतपिडितम् ।

वज्रवल्ल्यादिकोनामगुग्गुलुःपारिनिर्मितः ॥ १२ ॥

गहनानन्दनाथेनभग्नरोगविनाशनः ।

नानाभग्ननिहन्त्याशुबलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १३ ॥

कृमिकुष्ठाक्षिरोगाणांहन्ताग्रन्थिव्यथापहः ॥

काटिहृद्रोगशमनआमवातनिपूदनः ॥ १४ ॥

वज्रवल्ली हाडा ।

अर्थ—वज्रवल्ली (हडसँघारी), अर्जुनवृक्षकी छाल, अडूसा, इन्द्रायण, लोहा, सुहागा, पारा, गंधक और सेंधानोन, यह सब औषधि समान भाग ले चूर्ण करै और सब चूर्णसे तिगुना घीमें पिसा हुआ गृगुलु मिला देवे ।

यह वज्रवल्गुआदि गूगुल श्रीमद्रहनानन्द वैद्यने भग्नरोगको नष्ट करनेके लिये निर्माण कियाहै । यह—नानाप्रकारके भग्नरोग, कृमिरोग, कुष्ठरोग, नेत्ररोग, ग्रन्थिरोग, कटिरोग, हृदयरोग और आमवातरोगको दूर करैहै । तथा बल, वर्ण और अग्निको बढ़ाताहै ॥ ११—१४ ॥

अथ कोष्ठशुद्धयर्थमुपायः ।

मासत्रयंप्रकर्तव्यंवज्रवल्लीरसैःसह ।

शुद्धयर्थिनेप्रदातव्यंतैलमेरण्डजंशुभम् ॥ १५ ॥

इति भग्नाधिकारः ।

अर्थ—कोठेको साफ रखनेके लिये भग्नरोगीको हृदयमार्गके रसके साथ अण्डीका तेल पीनेको देवे ॥ १५ ॥

इति भेगाधिकारःसमाप्तः ।

अथ कुष्ठचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ कुष्ठभेदवर्णनम् ।

पुण्डरीकंसविस्फोटंपामानंगजचर्ममकम् ।

काकणंकच्छुकंदद्रुजिह्वकंचापटमंस्मृतम् ॥ १ ॥

गलितञ्चमहाकुष्ठंकापालञ्चउदुम्बरम् ।

मण्डलञ्चविचर्चाख्यंवैपादिकिट्टिमन्तथा ॥ २ ॥

चर्मदद्रुतथासिध्मशतारुःस्यादशस्मृतम् ।

श्वित्रकाख्यंविसर्पञ्चविंशभेदाःप्रकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥

अर्थ—पुण्डरीक, विस्फोट, पामा, गजचर्ममक, काकण, कच्छ, दद्रु, जिह्वक, गलित, कापाल, उदुम्बर, मण्डल, विचर्चिका, वैपादिका, किट्टिम, चर्मदद्रु, सिध्म, शतारु, श्वित्र और विसर्प इन भेदोंमें कुष्ठ २० वीस प्रकारका है । अथवा यह कुष्ठके २० वीसभेद हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ सामान्ययत्नानि ।

पक्षेपक्षेचवमनंमासेमासेविरेचनम् ।

पण्मासेचशिरामोक्षंनस्यंसप्तदिनान्तरे ॥ ४ ॥

वातोद्भवेतुसर्पिर्वमनंश्लेष्मोत्तरेषुकुष्ठेषु ।
 पित्तोत्तरेषुमोक्षोरक्तस्यविरेचनंचोग्रम् ॥ ५ ॥
 प्रच्छलमल्पेकुष्ठेमहतिचशस्तंशिराव्यधनम् ।
 बहुदोषःसंशोध्यःकुष्ठीबहुशोनुरक्षताप्राणान् ॥ ६ ॥
 वचावासापटोलानानिम्बस्यफलिनीत्वचः ।
 कषायोमधुनापीतोवान्तिकृन्मदनान्वितैः ॥ ७ ॥
 विरेचनञ्चकर्तव्यंत्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः
 नस्यधूमौविधातव्यौद्धावस्तिञ्चजानता ॥ ८ ॥
 पुराणाःशालिगोधूममुद्राद्याःकुष्ठिनेहिताः ।
 तिक्तशाकंजांगलञ्चपानादौखादिरोदकम् ॥ ९ ॥

अर्थ—कुष्ठरोगी पक्ष पक्ष अर्थात् पन्द्रह पन्द्रह दिनमें वमन, एक एक महीनेमें विरेचन, छे महीनेमें रक्तमोक्षण और सात सात दिनके बाद नास लेवे। वात-कुष्ठरोगमें घृतपान, कफज कुष्ठमें वमन, पित्तज कुष्ठरोगमें रक्तमोक्षण और तीक्ष्णविरेचन, क्षुद्र कुष्ठरोगमें अन्नकर्म और महाकुष्ठरोगमें शिरावेध करे। और बहुत दोषवाले कुष्ठरोगीको इस प्रकार वमन और विरेचनके द्वारा बारंवार शोधन करे, जिससे बलका नाश न होवे। वच, अडूसा, पटोल, नीमकी छाल, प्रियंगुकी छाल और मैनाफल, इनका काथ बनाकर सहत मिलाकर वमनके लिये कुष्ठ रोगीको पीनेको देवे। नस्य, धूमपान, वस्तिक्रिया, पुराने शालिधानके चावलोंका भात, गेहूं, मूँग, आदिका, यूष, तिक्तशाक, जंगलदेशके जीवोंका मांस और खदिरका जल, यह सब कुष्ठरोगीकेलिये विशेष हितकारी हैं ॥४-९॥

अथान्येऽपिकुष्ठघ्नयोगाः ।

मनःशिलालेमरिचानितैलमार्कपयःकुष्ठहरःप्रदेहः ।
 करञ्जबीजैडगजंसकुष्ठंगोमूत्रपिष्टञ्चपरःप्रदेहः ॥ १० ॥
 पत्राणिपिष्टाचतुरङ्गुलस्यतक्त्रेणपत्राण्यनुकाकमाच्याः ।
 तैलाक्तगात्रस्यनरस्यकुष्ठान्युद्धर्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ११ ॥
 अश्वहनः करवीरः ।

अर्थ—मैनशिल, हरिताल, काली मिर्च, सरसोंका तेल और आकका दूध, इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है । करंजके बीज चकवड और कूठ, इन तीनों औषधियोंको एकत्र गोमूत्रके संग पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है । कुष्ठरोगीके शरीरमें तेल मलकर अमलतासके पत्ते बोलके साथ पीसकर मर्दन करनेसे अथवा मकोयको पीसकर मर्दन करनेसे—किम्बा कनेरके पत्तोंको पीस कर मर्दन करनेसे कुष्ठरोग दूर होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ षड्योगाः ।

आरग्वधःसेडगजःकरञ्जोवासागुडूचीमदनंहरिद्रे ।

श्याहःसुराहःखदिरोधवश्चनिम्बंविडंगंकरवीरकञ्च ॥ १२ ॥

ग्रन्थिश्चभौज्जालशुनःशिरीषःसालोमथोगुग्गुलुकृष्णगन्धे ।

फणिज्जकोवत्सकसप्तपर्णोपिचूनिकुष्ठंमुमनःप्रवालाः ॥ १३ ॥

वचाहरेणुस्त्रिवृतानिकुम्भोभल्लातकंगैरिकमंजनश्च ।

मनःशिलालेगृहधूमएलाकासीसलोध्राज्जुनमुस्तसर्जा १४ ॥

आयुद्धरूपैर्विहिताःपडेतेगोपित्तपीताःपुनरेवपिष्टाः ।

सिद्धाःपरंसर्पपतैलयुक्ताश्चूर्णप्रदेहाभिपजाप्रयोज्याः ॥ १५ ॥

कुष्ठानिकृत्स्नानिप्रयान्तिनाशंसुरेन्द्रलुप्तंकिटिभंसदद्रुः ।

भगन्दर्शस्यपर्चासपामांहन्युःप्रयुक्तानचिरान्नराणाम् १६

अर्थ—अमलताम, चकवड, करञ्ज, अट्टसा, मैनफल हलदी, और दारुहलदी, १ गंधविजाग, देवदारु, खैर, थववृक्षकी छाल, नीमकी छाल, वायविडंग और कनेर २ गटिवन, आजपत्र, लहशुन, शिरीषकी छाल गुल्म और मंजिनेकी छाल ३ तुलसी, कुंडेके बीज, कपाम, मतोनेकी छाल, कूठ और चमेलीके पत्ते ४ वच, रेणुका, निमोन, गृगुल, भिलावेके बीज, गेरू और रमांत ५ मैनशिल, हरिताल, घरका धुआँ, इलायची, कर्मीम, लोध, अर्जुन, नागर्मोथा और गाल ६ इन छे योगोंमेंसे एक किसी योगका काथकर गोलोचनके संग पानेसे अथवा पीसकर लेप करनेसे, या इनका चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करनेसे सर्व-प्रकारके कुष्ठ और भगन्दर, ववार्माग, तथा, अपची आदि रोग दूर होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ हरिद्राद्यं तैलम् ।

हरिद्रेपथ्याकुष्ठञ्चवनंसहरितालकम् ।

बिभीतकमुस्तकञ्चकटुतैलंमनःशिला ॥ १७ ॥

एतद्विचूर्ण्यसंमिश्र्यरौद्रेतुपरिपाचयेत् ।

विचर्चिकापामादद्रुखञ्जकुष्ठहरंपरम् ॥ १८ ॥

अर्थ--हलदी, दारुहलदी, कूठ, अभ्रक, हम्बिताल, बहेडा, नागरमोथा और मैनाशिल, इन सब औषधियोंको समानभाग ले सगसोंके तैलमें मिलाय धूपमें पकाकर परिपेक करनेसे विचर्चिका, पामा, दद्रु, खञ्ज आदि कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथदद्रादिकुष्ठहरप्रलेपाः ।

पल्लवैरर्कपूतीकसुहारग्वधजातिजैः ।

उद्धर्तनंसगोमूत्रैःसर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥ १९ ॥

त्रिडंगैडगजाकुष्ठंनिशासिन्धुत्थसर्पपैः ।

धान्याम्लपिष्टोलेपेनदद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ २० ॥

तुल्योरसःशालतरोस्तुपेणसचक्रमर्दोऽप्यभ्यविमिश्रः ।

पानीयभक्तेनतदम्बुपिष्टोलेपःकृतोदद्रुगजेन्द्रसिंहः २१

प्रपुत्राडस्यबीजानिधात्रीसर्जरसःस्नुही ।

सौवीरपिष्टदद्रुणामेतदुद्धर्तनोहितम् ॥ २२ ॥

चक्रमर्दसमापथ्यालेपादद्रुविनाशिनी ।

लेपनाद्रक्षणाद्रापितृणकंदद्रुनाशनम् ॥ २३ ॥

सक्षारंगंधकंलेपात्कटुतैलेनसिध्मजित् ।

सगन्धकंकासमर्दबीजकंमूलकंतथा ॥ २४ ॥

कदलीक्षारसंयुक्तारजनीसिध्मनाशिनी ।

तक्रमूलकबीजाभ्यांप्रलेपःसिध्मनाशनः ॥ २५ ॥

चक्राह्वयंस्नुहीक्षीरंभावितंमूत्रसंयुतम् ।

रवितप्तंहिक्किचिच्चलेपनंकिट्टिभापहम् ॥ २६ ॥

आरग्वधस्यपत्राणिचारनालेनपेषयेत् ।

दद्रुकिट्टिमकुष्ठानिहन्तिसिध्मानमेवच ॥ २७ ॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैःसंक्रिमिघ्नैः ।

कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानांनाशनोलेपःपरमः ॥ २८ ॥

एडगजातिलसर्षपकुष्ठंमागधिकालवणद्वयमस्तु ।

वर्षशतोपचितामपिकण्डूंनाशयतीहविचर्चिकदद्रुः २९ ॥

जलेन पिष्ट्वा तदेशे लेपः ।

नारिकेलोदकेन्यस्तस्तण्डुलःपूतिकांगतः ।

लेपाद्रिपादिकांहन्तिचिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ३० ॥

शुक्तिकाभस्मासिन्धृत्यसर्पिःसर्जरसंपयः ।

पादस्फोटनहालेपःतिक्तालाबुध्यवस्थितः ॥ ३१ ॥

अर्थ—आक, पृतिकरञ्ज, थूहर, अमलताम और चमेलीके पत्तोंको गोमूत्रमें पीसकर मर्दनकरनेसे सर्वप्रकारके चर्मरोग दूर होताहै । वायविडंग, चकवड, कूट, हलदी, सेंधानोन और मग्गों इन सबको समानभाग ले काँजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु कुष्ठ नष्ट होताहै । गाल, तुष, चकवड और हरड इन सबको भातकी काँजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु कुष्ठ रोग दूर होताहै । चकवडके बीज, आमला, गाल और थूहर इन सबको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा चकवड और हरडको जलमें पीसकर लेप करनेसे या चीनाधानको पीसकर लेप करनेसे वा भक्षण करनेसे दद्रुकुष्ठ नष्ट होताहै । गंधकका चूर्ण और जवाग्वार मग्गोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा गंधक, कमांदीके बीज, मृत्तीके बीज केलेका खार और हलदी एकत्र पीसकर लेप करनेसे या तक्रके साथ मृत्तीके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होताहै । चकवडके बीजोंको थूहरके दूधमें और गोमूत्रमें भावना देकर धूपमें गरमकर लेप करनेसे किट्टिम कुष्ठ नष्ट होताहै । अमलतामके पत्तोंको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किट्टिम और सिध्मकुष्ठ नष्ट होताहै । चकवड, कूट, सेंधानोन, काँजी, मग्गों और वायविडंग, इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कृमि, सिध्म, दंड और मण्डल कुष्ठ नष्ट होताहै । चकवड, तिल, मग्गों, कूट, पीपल, सेंधानोन, कालानोन, और दहीका तोड़, इन सबको एकत्र जलके साथ पीसकर लेप करनेसे

कण्डू, विचर्चिका और दद्रुकुष्ठ विनष्ट होता है । नारियलके जलमें चावलोंको भिजो देवे, जब उसमें वास आनेलगे तब पीसकर लेपकरनेसे विपादिका कुष्ठ-रोग विनष्ट होता है । सीपकी भस्म, सैधानोन, घृत, राल और दूध, इन सबको समानभाग लेकर एक दिन कड़वे कद्रूके बीचमें रखे, पश्चात् लेप करनेसे—पादस्फोट दूर होता है ॥ १९-३१ ॥

अथ नवकषायः ।

त्रिफलापटोलरजनीमंजिष्टारोहिणीवचानिम्बैः ।

एपकषायोऽभ्यस्तोनिहन्तिकफपित्तजंकुष्ठम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हरड़, वहेड़ा, आमला, पटोल, हलदी, मँजीठ, कुटकी, वच और नीमकी छाल, इन सबको समानभाग ले काथ करके पीनेसे कफ पित्तज कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

अथ कुष्ठहरकाथाः ।

पटोलखदिरारिष्टत्रिफलाकृष्णवेत्रजम् ।

तिक्तासिनःपिबेत्काथंसर्वकुष्ठग्रन्थपोहति ॥ ३३ ॥

काकोदुम्बरिकागिष्टविडंगव्योपयासकम् ।

कल्कंलिङ्वाजयेत्कुष्ठंकुटजत्वक्छृताम्बुना ॥ ३४ ॥

अर्थ—पटोल, खैर, नीमकी छाल, हरड़ वहेड़ा आमला कृष्णवेत, कुटकी और विजयसारकी छाल, इनका काथ पीनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं । कटूमर, वायविडंग, सांठ, मिरच, पीपल और जवासा यह सब सम-भाग लेकर कुटकी छालके काथमें पीसकर, लेप करनेमें सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ पंचतित्तघृतम् ।

निम्बंपटोलंव्याघ्रीश्वगुडूचीवासकन्तथा ।

कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्यसुकुटितान् ॥ ३५ ॥

जलद्रोणेविपक्तव्यंयावत्पादावशोषितम् ।

घृतप्रस्थंपचत्तेनत्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ ३६ ॥

पंचतित्तमितिख्यातंसर्पिःकुष्ठविनाशनम् ।

अशीतिंवातजात्रोगांश्चत्वारिंशच्चपैत्तिकान् ॥ ३७ ॥

विंशतिंश्लैष्मिकांश्चैवपानादेवापकर्षति ।

दुष्टव्रणकिमीनर्शःपंचकासांश्चनाशयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, काथके लिये नीमकी छाल, कटेरी, गिलोय और अड़सा प्रत्येक दश दश पल, पाकके लिये जल ३२ बत्तीससेर, शेष ८ आठ सेर, तथा कल्कके लिये हरड, बहेडा और आमला ५॥ आधसेर । यथा-विधिसे घृतको सिद्ध करें, यह पंचतित्त घृत कुष्ठरोग, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तरोग, बीस प्रकारके कफके रोग, दुष्टव्रण, कृमिरोग, बवासीर और पाँच प्रकारकी खाँसीको दूर करें ॥ ३५-३८ ॥

अथ सर्वकुष्ठघ्नचिकित्सा ।

सषिप्पलीकासहतालमूलासवेल्ववासासशशाङ्कलेखा ।

सायोमलासामलकासतैलासर्वाणिकुष्ठान्यपहन्ति ॥ ३९ ॥

शशाङ्कलेखा बाकुचीबीजम् । सायोमला समण्डूरा ।

विडंगत्रिफलाकृष्णाचूर्णलीढासमाक्षिकम् ।

हन्तिकुष्ठकृमीन्मेहान्नाडीव्रणभगन्दरान् ॥ ४० ॥

शक्राशनंसमादायप्रशस्तेऽहनिचोद्धृतम् ।

तच्चूर्णमधुसर्पिभ्यांलिह्यात्क्षीरघृताशनः ॥ ४१ ॥

हत्वाचसर्वकुष्ठानिजीवेद्रर्पशतद्रयम् ।

बाकुचीबीजसंजातदधिसारंसमाक्षिकम् ॥

लीढाचानुपिवेत्तक्रमेतत्स्यात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ ४२ ॥

दधिसारं नवनीतम् ।

अर्थ—पीपल, मुमली, वायविडंग, अड़सा, बापचाँक बीज, मण्डूर और आमला इन सब औषधियोंको समानभाग ले तिलके तेलमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं । वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला और पीपल इन सब औषधियोंको समान भाग ले सहतमें मिलाकर चाटनेसे—कोढ़, कृमि, प्रमेह, नाडीव्रण और भगन्दर रोग दूर होते हैं । शुभदिनमें भाँगको उखाड़ लावे, पश्चात् उत्तम रीतिसे बागीक चूर्णकर सहतमें मिलाकर चाटे और दूध तथा घृतके साथ भोजन करें तो सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होजाते हैं, तथा

२०० दो सौ वर्ष पर्यन्त जीता रहताहै । बापचीके बीजोंके योगसे निकाला हुआ नौनी घी सहितमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे तक्र पीवे, इससे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होतेहैं ॥ ३९-४२ ॥

अथान्येऽपिकुष्ठहरयोगाः ।

पिबतिसकटुतैलगन्धपाषाणचूर्ण
रविकिरणसुतप्तपामनोयःपलार्द्धम् ।

त्रिदिनंतदनुसिक्तंक्षीरभोजीतुशीघ्रं

भवतिकनकदीप्तिःकामचारीमनुष्यः ॥ ४३ ॥

त्रिभिर्दिनैः पलार्द्धं भक्ष्यम् ।

गन्धकचूर्णमिश्रितकटुतैलेनगात्रप्रक्षणेन ।

दुग्धेनभोक्तव्यंवातातपंवर्जयित्वातिष्ठेत् ॥ ४४ ॥

एकस्तिलस्यभागौद्रौसोमराज्यास्तथैवच ।

भक्ष्यमाणामिदंप्रातर्गुह्यददुविनाशनम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—कड़वे तेलमें दो ताले गंधकको मिलाकर तीन दिनतक सेवन करें, तथा इसीको धूपमें गरमकर कुष्ठरोगीके शरीरपै मले और केवल दुग्धान्न पथ्य है । इससे निश्चय कुष्ठरोग दूर होताहै, और शरीर सुवर्णकी समान दीप्तिमान् होता है । गंधकके चूर्णको कड़वे तेलमें मिलाकर शरीरपै मले, इसपै वायु सेवन और धूप सेवन करना त्याग देवे, केवल दूधके साथ अन्न भक्षण करें । एकभाग तिल और दोभाग बापचीके बीज, दोनोंको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे—गुह्यदेशके दाद दूर होतेहैं ॥ ४३-४५ ॥

अथैकविंशतिगुग्गुलुः ।

चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजीकारवीवचाम् ।

सैन्धवातिविपेकुष्ठंचव्यैलायावशूकजम् ॥ ४६ ॥

विडंगान्यजमेदाचमुस्तान्यमरदारुच ।

यावन्त्येतानिचूर्णानितावन्मात्रन्तुगुग्गुलुम् ॥ ४७ ॥

संमर्द्यसर्पिषासार्द्धगुटिकां गरयेद्भिषक् ।

प्रातर्भोजनकालेवाभक्षयेच्चयथाबलम् ॥ ४८ ॥

हन्त्यष्टादशकुष्ठानिकृमिदुष्टव्रणानिच ।

ग्रहण्यशोविकारांश्चमुखामयगलग्रहान् ॥ ४९ ॥

गृध्रसीमथगुल्मश्चभग्नंचापिनियच्छति ।

व्याधीन्कोष्ठगताश्चान्याञ्जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ५० ॥

अर्थ—चीता, हगड, बड़ेडा, आमला, मोंठ, भिगच, पीपल जीरा, सोंफ, वच, सेंधानोन, अनीम, कूठ, चव्य, इलायची, जवाखार, वायबिडंग, अज-मोदा, नागरमोथा और देवदारु, इन सब औषधियोंका चूर्ण समानभाग और सबकी बराबर गूगुल ले, सबका घृतमें मिलाकर गोली बनालेवे, इसको प्रातःकाल और भोजनके समय सेवन करनेसे अठारह प्रकारके कुष्ठ, कृमि, दुष्टव्रण, मंलग्रणी, बवालीर मुखरोग, गलग्रह, गृध्रसी, गुल्म, भग्न, कोठगत रोग और अन्यान्यरोग दूर होतेहैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ गुग्गुलुपंचतित्तवृत्तम् ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां

भागान्पृथक्दशपलान्विपचेद्द्वटेऽपाम् ।

अष्टांशशेषितरसेनसुनिश्चितेन

प्रस्थंघृतस्यविपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ ५१ ॥

पाठाविडंगसुरदारुगजोपकुल्या—

द्विक्षारनागरनिशामिपिचव्यकुष्ठैः ।

तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि—

रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ ५२ ॥

मंजिष्ठयातिविषयावरयायवान्या

संशुद्धगुग्गुलुपलेरपिपंचसंख्यैः ।

तत्सेवितंविधमतिप्रबलंसमीरं.

सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथकुष्ठमीदृक् ॥ ५३ ॥

जत्रर्द्धसर्वगदगुल्मगुदात्थमेहान्

यक्ष्मारुचिश्चसन गीदृष्टाः शोपम् ।

हृत्पाण् रोगमलविद्रधिवातरक्त-

माज्यंविनाशयतिगुग्गुलुपञ्चतित्तम् ॥ ५४ ॥

अर्थ-गायका घी २ दोसेर, काथके लिये नीमकी छाल, गिलोय, अडूसेकी छाल, पटोल और कटेरी प्रत्येक दशपल, पाकके लिये जल ३२ सेर, शेष, ८ सेर, तथा कल्कके लिये पाढ, बायबिडंग, देवदारु, जवाखार, गजपीपल, सज्जी, सोंठ, हलदी, सोया, कूठ, तेजवल, कालीमिरच, इन्द्रजौ, अजमोदा चीता, कुटकी, भिलावा, वच, पीपरामूल, मँजीठ, अतीस, त्रिफला और अजवायन प्रत्येक २ दो तोले तथा शुद्धगुग्गुलु दश १० तोले लेकर यथाविधिसे इस गुग्गुलुपञ्चतित्तघृतको सिद्ध करें । यह गुग्गुलुपञ्चतित्तघृत अत्यन्त प्रबल वात, सन्धि, अस्थि और मज्जागत कुष्ठ, ऊर्ध्वजत्रुरोग, गुल्म, गुदज्वरोग, प्रमेहरोग, राजयक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, खाँसी, शोष, हृदयरोग, पाण्डुरोग, गलरोग, विद्रविरोग, वातरक्त और विशेष करके कुष्ठरोगको नष्ट करैहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ महाभल्लातकम् ।

निम्बंगोपारुणाकटीत्रायन्तीत्रिफलाघनम् ।

पर्पटीवल्लुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ ५५ ॥

पाठाशुण्ठीशटीभाङ्गीवासाभूनिम्बवत्सकम् ।

श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडंगन्तुविसानलम् ॥ ५६ ॥

हास्तिकर्णमृतात्रेकापटोलंरजनीद्रयम् ।

कणारगवधसप्ताश्वकृष्णवेत्रोच्चटाफलम् ॥ ५७ ॥

भूकन्दतिलपर्णञ्जिङ्गीपद्माचमूषली ।

विष्वक्सेनाचकैटय्यःशरपुंखाचकञ्चुकी ॥ ५८ ॥

एतेषां द्विपलान् भागाञ्जलद्वौ विपाचयेत् ।

अष्टभागावशेषेण कषायमवतारयेत् ॥ ५९ ॥

भल्लातकसहस्राणिच्छित्त्वा त्रीण्यर्म्भणेऽम्भसि ।

चतुर्भागावशिष्टं तु कषायं परिकल्पयेत् ॥ ६० ॥

तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ समाचरेत् ।

भल्लातकसंस्नाणामज्जनंतत्रदापयेत् ॥ ६१ ॥
 इत्थंचतुलांदत्वालेहः त्रिधाधुसाधयेत् ।
 त्रिकटुत्रिफलमुस्तसैन्धवानांपलंपलम् ॥ ६२ ॥
 दीप्यकस्यपलंचैवचातुर्जातपलन्तथा ।
 संचूर्ण्यप्रक्षिपेत्सिद्धेघृतभाण्डेनिधापयेत् ॥ ६३ ॥
 महाभल्लातकोह्येषमहादेवेननिर्मितः ।
 प्राणिनान्तुहितार्थायजयेच्छीघ्रनिषेवितः ॥ ६४ ॥
 शिवत्रमौदुम्बरंददुःकण्यजिह्वंसकाकणम् ।
 गुण्डरीकंचचर्माम्बुविस्फोटंमण्डलंतथा ॥ ६५ ॥
 कण्डूकपालकुष्ठञ्चविसर्पसविपादिकम् ।
 वातरक्तमुदावर्तपाण्डुरोगव्रणक्रिमीन् ॥ ६६ ॥
 अर्शांसिपट्प्रकाराणिकासंश्वासंभगन्दरम् ।
 सदाभ्यासेनपलितमामवातंसुदारुणम् ॥ ६७ ॥
 निर्यत्रणंचकथितंसर्वत्रापिचशस्यते ।
 अग्निंचकुरुतेदीप्तंदीपनंपरमुत्तमम् ॥ ६८ ॥
 अनुपानंप्रयोक्तव्यंछिन्नाक्वाथंपयोऽथवा ।
 अम्लञ्चसर्वथात्याज्यंशाकमेवविशेषतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—नीमकी छाल, अनन्तमूल, अनीस, कुटकी, त्रायमाणा, हरड़, बहेडा, आमला, नागमोथा, पित्तपापड़ा, बापचीक बीज, करिया वासाऊ, बच, खैर, लालचंदन, पाद, मोठ, कचूर, भांगी, अहमा, चिगयता, कुडैक बीज, कालानिसांत, इन्द्रायण, मुवा, वायविडंग, कमलकेशर, पीपल, चीतेकी जड़, पलाश, गिलोय, गोरखमुण्डी, पगवल, हलदी, दारुहलदी, अमलतासकी छाल, आककी जड़, कृष्णवंत, उच्चटाफल, जंगली जमीकन्द, लालचन्दन, भँजीठ, स्थलकमल, मुसली, फूलमिरंगु, शरफाँका, कायफल और कञ्चुकी (क्षीरीशवृक्षकी छाल) प्रत्येक आठ आठ तोले लेकर एकट्रोण जलमें पकावे, जब आठवाँभाग जल शेष रहे तब उतार ले । पश्चात् १००० एकइजार भिलावोंको लेकर टुकड़े करके

३२ बत्तीससेर जलमें पकावे, जब आठसेर जल शेष रहे तब उतार लेवे, पश्चात् कपड़ेमें छानकर दोनो काथोंको मिलालेवे, फिर इसमें उपरोक्त भिलावोंकी गिरी और ६। सवा छेसेर गुड मिलाके पकावे जब पकते पकते लेहकी समान होजाय तब सांठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा और सेंधेनोनका चूर्ण प्रत्येक चार चार तोले, अजवायनका चूर्ण ४ चार तोले और चातुर्जातकका चूर्ण ४ चार तोले डालदेवे, सिद्ध होजानेपर इसको एक उत्तम चिकने घीके वासनमें भरके रखदेवे । यह महाभल्लातक श्रीगिरिजापतिने संसारके प्राणियोंके हितके लिये निम्माण किया है । इसको सेवन करनेसे श्वित्रकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋष्यजिह्व, काकण, पुण्डरीक, चर्मराल्य, विस्फोट, मण्डल, कण्डू, कपालकुष्ठ, विसर्प, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, छे प्रकारकी बवासीर, खाँसी, श्वास, भगन्दर और सदा अभ्यास कर सेवन करनेसे पलितरोग, दारुण आमवात, यह सब रोग दूर होते हैं । इसको निर्यन्त्रण कहा है सर्वत्र प्रशस्त है । अग्निको दीपन करे, और दीप्ताग्निवाले मनुष्योंको परमोत्तम है । अनुपान—गिलोयका काथ या दूध । सर्वप्रकारकी खटाई और विशेष करके सम्पूर्ण शाक खाना वर्जित हैं ॥ ५५-६९ ॥

अमृतभल्लातकीकुष्ठेऽपिकार्या ।

अर्थ—अमृतभल्लातकी भी कुष्ठरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥

अथ पंचतित्तघृतम् ।

निम्बपटोलंव्याघ्रीञ्जगुडूचीवासकंतथा ॥

कुय्याद्दशपलान्भागानेकैकस्यसुकुट्टितान् ॥ ७० ॥

जलद्रेणोविपक्तव्यंयावत्पादावशेषितम् ।

घृतप्रस्थंपचेत्तेनत्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ ७१ ॥

पंचतित्तमित्तिख्यातंसर्पिःकुष्ठविनाशनम् ।

अशीतिंवातजात्रोगांश्चत्वारिंशच्चपैत्तिकान् ॥ ७२ ॥

विंशतिंश्लैष्मिणांश्चैवपानादेवापकर्षति ।

दुष्टव्रणकृमीनर्शःपंचकासांश्चनाशयेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ—गायका घी २ दोसेर, काथके लिये नीमकीछाल, पटोल, कटेरी, गिलोय और अडूसेकी छाल, प्रत्येक कुटी हुई दश दश पल, पाकके लिये जल

३२ वत्तीममेर, शेष आठ ८ मेर कल्कके लिये त्रिफलेका चूर्ण ॥ आधमेर, यथाविधिसे इसको सिद्ध करें । यह पंचतित्तवृत-सर्वप्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करैहै तथा ८० अस्मीप्रकारके वातगोग, ४० चालीमप्रकारके पित्तगोग, २० बीस-प्रकारके कफ गोग, दुष्टव्रण, कृमि, ववामीर और पाँचप्रकारकी खाँसीको दूर करैहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ खदिरादिपंचतित्तकंवृतम् ।

खदिरारग्वधव्योषत्रिवृच्चित्रकदन्तिका ।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्रावाकुचीफलम् ॥ ७४ ॥

कटुकातिविपापाठात्रायन्तीधन्वयासकम् ।

कुष्ठंकरञ्जबीजानिशारिवेद्रेसवत्सकैः ॥ ७५ ॥

भल्लातकंविडंगानिगुग्गुलुश्चेतिकलिकतैः ।

पंचतित्तकपायेणसर्पिःसिद्धंपिवेत्रः ॥ ७६ ॥

हन्त्यष्टकुष्ठानिग्रंथिगलगण्डंतथैवच ॥ ७७ ॥

विपविस्फोटवीसर्पकण्डूदुष्टव्रणानपि ॥

रोगानन्यांश्चविविधान्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ७८ ॥

अर्थ—गायका वी २ दोमेर, काथके लिये नीमकीछाल, पटोल, कटंगी, गिलोय और अहूमा प्रत्येक दश दश पल, पाकके लिये जल ३२ वत्तीममेर, शेष ८ मेर, तथा कल्कके लिये खैर, अमलताम, त्रिकुटा, नीमकी छाल, निमोत, चीता, दन्ती, पटोल, त्रिफला, हलदी, वापचीके बीज, कुटकी, अतीम, पाठ, धमासा, त्रायमाणा, कूट, करंजकेबीज, अनन्तमूल, गौरीमर, कुडकेबीज भिलावे, वायविडंग और गुग्गुलु ॥ आधमेर, सबको मिलाकर यथाविधिसे वृतको सिद्ध करें, अठारह प्रकारके काँठ, ग्रन्थिगंग, गलगण्डगंग, विपविकार, विस्फोट, वीसर्प, कण्डू, दुष्टव्रण तथा अन्यान्यरोगोंको यह वृत दूर करै है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ तित्तकंवृतम् ।

त्रिफलाद्विनिशावामायासपर्पटभ्रणकान् ।

ः॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

काथयित्वाजलद्रोणेपादशेषेणतेनतु ।

घृतप्रस्थंपचेदक्षैःपिप्पलीवनचंदनैः ॥ ८० ॥

त्रायन्तीशत्रुभूनिम्बैस्तत्पीतंतित्तकंघृतम् ।

निहन्तिकुष्ठान्यर्शांसिश्चयथुंग्रहणीगदम् ॥ ८१ ॥

पाण्डुरोगंविसर्पश्चजीवानामपिशस्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ—गायका बी २ दोसर, काथके लिये हरड, बहेडा, आमला, हलदी, दारुहलदी, अट्टसा, जवासा, पित्तपापडा. सुगंधवाला, त्रायमान, कुटकी और नीमकीछाल, प्रत्येक ८ आठतोल, जल ३२ बत्तीससेर, शेष आठसेर, तथा कल्कके लिये बहेडा, पीपल, नागरमोथा, लालचंदन, त्रायमान, कुडेकेबीज और चिरायता आधसेर ले, यथाविधिसे घृतको मिद्ध करे. यह घृत—कुष्ठरोग, ववासीर, सूजन, मंग्रहणी, पाण्डुरोग और विसर्परोगको नष्ट करे ॥ ७९—८२ ॥

अथ महातित्तकंघृतम् ।

सप्तच्छदंप्रतिविषांशम्याकंतित्तगोहिणीपाठाम् ।

मुस्तमुशीरंत्रिफलांपटोलपिचुमर्दपंपटकम् ॥ ८३ ॥

धन्वयवासंचन्दनमुपकुल्येपद्मकरजन्यौच ।

पङ्ग्रन्थांसविशालांशतावरींशारिवेचोभे ॥ ८४ ॥

वत्सकबीजंवासांमूर्वांममृतांकिराततित्तश्च ।

कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वंत्रायमाणाश्च ॥ ८५ ॥

कल्कस्तुचतुर्भागोजलमष्टगुणंरसोऽमृतफलानाम् ।

द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिःपाययेत्सिद्धम् ॥ ८६ ॥

कुष्ठानिरक्तपित्तंप्रबलान्यर्शांसिस्तक्वाहीनि ।

विसर्पमल्लपित्तंवातामृक्पाण्डुरोगांश्च ॥ ८७ ॥

विस्फोटकान्सपामानुन्मादकान्कामलांज्वरकण्डूम् ।

हृद्रोगगुल्मपिडकानम्लपित्तमसृग्दरगंडमालांच्च ॥ ८८ ॥

हन्यादेतत्सद्यःपीतंकालेयथाबलंसर्पिः ।

योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातित्तम् ॥ ८९ ॥

अमृतफलानां आमलकीफलानाम् ।

अर्थ—उत्तम गायका बी २ दोमेर, जल ८ आठमेर, आमलोंका रस ४ चार मेर, तथा कल्कके लिये मतवनकी छाल, अतीम, अमलतासकी मज्जा, कुटकी, पाद, नागरमोथा, खस, हगड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, पित्तपापडा, धमासा, लालचंदन, पीपल, गजपीपल, पन्नाख, हलदी, दारुहलदी, वच, इन्द्रायन, सतावर, गौरिया वामाऊ, करिया वामाऊ, इन्द्रजी, अट्टमा, मूर्वा, गिलोय, चिगायता, मुलेठी और त्रायमाणा यह सब ॥ आधमेर, यथाविधिमे यह घृत सिद्ध करें । यह घृत सर्वप्रकारके कुष्ठ, रक्तपित्त, प्रचल और रुधिरकी बहनेवाली बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामारोग, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृदयरोग, गुल्म, पिड्डका, अम्लपित्त, प्रदर और गण्डमालादि रोगोंको दूर करेहै । मैकड़ों योगोंमें जिन रोगोंको आराम नहीं हुआहै, उन सबको यह महातित्त घृत दूर करताहै ॥ ८३-८९ ॥

अथ वज्रकंघृतम् ।

वासागुडूचीत्रिफलापटोलंकरञ्जनिम्बासनकृष्णवेत्रम् ।

तत्काथकल्केनघृतंविपकृतद्रव्रकंकुष्ठहंशप्रदिष्टम् ॥ ९० ॥

विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादःकृम्यर्दितोभिन्नमलोऽपिमर्दः ।

पौराणिकांकान्तिमवाप्यजीवेदव्याहतोवर्षशतञ्चकुष्टी ९१ ॥

अर्थ—उत्तम गायका बी २ दोमेर, जल आठमेर, तथा कल्कके लिये अट्टमा, गिलोय, हगड, बहेडा, आमला, पटोल, करंजके बीज, नीमकी छाल, असन वृक्षकी छाल और कृष्णवंत प्रत्येक दो दो तोल । और काथके लिये उपरोक्त काथकी औषधि प्रत्येक चार चार पल, पाकके लिये जल ८ आठमेर, शेष २ दोमेर रखें । सबको यथाविधिमे मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करें, यह वज्रक घृत कुष्ठको नष्ट करेहै । इस घृतको सेवन करनेमें मलमर्द है हाथपावाका अंगुलियाँ जिनकी, तथा जिनके कीड़े पड़ गयेहैं और बारंबार दस्त आतेहैं, उन कुष्ठरोगियोंको रोगमे छुटाकर पौराणिक कान्तिको प्राप्त कर १०० वर्षपर्यंतक जिवानाहै ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अथ बृहद्गुगुलोःपंचतित्तकंघृततैलञ्च ।

पटोलवासकारिष्टकरञ्जव्याघ्रिकामृता ।

प्रत्येकंविंशतिपलाञ्जलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ९२ ॥

पादशोषेरसेतस्मिन्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ।

कल्कैरक्षरसैदारुत्रिफलाञ्ज्यूपणाग्निभिः ॥ ९३ ॥

पृथ्वीकातिविषापाठाचव्येन्द्रयवदीप्यकैः ।

मूर्वाक्षारद्वयाजाजीवचाकृमिहरैर्युतैः ॥ ९४ ॥

कटुकासप्तपर्णाभ्यांपुरस्याष्टपलेनतु ।

सर्वकुष्ठान्यमृक्पित्तंवि सर्पपूतिकोष्ठताम् ॥ ९५ ॥

वातपित्तकफोद्धूतान्गदांस्तांस्तान्पृथग्विधान् ।

पानात्प्रशमयत्येतद्गुगुलोःपंचतित्तकम् ॥ ९६ ॥

सिद्धश्चैतेनविधिनतैलप्रस्थःसगुग्गुलुः ।

पानाभ्यंजननस्येषुयुक्तःपूर्वगुणावहः ॥ ९७ ॥

अर्थ-गायका बी या तिलका तेल २ दो सेर, काथके लिये पटोल, अट्टसा, नीमकी छाल, कर्जकेबीज, कटेरी और गिलाय प्रत्येक २० बीसपल, पाकके लिये जल ३२ वत्तीससेर, शोष ८ आठसेर, तथा कल्कके लिये देवदारु, त्रिफला, कालाजीरा, त्रिकुटा, चीता, अतीस, पाठ, इन्द्रजा. अजवायन, मूर्वा, चव्य, जवाखार, सजी, जीरा, वच, वायविडंग, कुटकी और सतवनकी छाल, प्रत्येक २ दो दो तोले, गुग्गुल ८ आठपल. यथाविधिसे घृत या तेलको सिद्ध-कर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठ और रक्तपित्तादि नानाप्रकारके रोग दूर होतेहैं ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथ मार्करघृतम् ।

भहौषधंमहामेदानिम्बपत्रंचसर्षपाः ।

मनःशिलाचसिन्दूरंपद्मचारिण्यवल्गुजम् ॥ ९८ ॥

हरिद्वेहरितालंचत्रिफलापीतगंधकम् ।

एतानिसंमंभांगानिकर्पाद्धश्चप्रयोजयेत् ॥ ९९ ॥

सर्पिषश्चपलान्यष्टौदेवदारुरसंशुभम् ।
 द्विगुणत्रिगुणंक्षीरंगोमूत्रंचतुर्गुणम् ॥ १०० ॥
 ताम्रभाण्डेतुसंस्थाप्यशनैर्मृद्वग्निनापचेत् ।
 चतुर्भागावशेषन्तुसकल्कमवतारयेत् ॥ १०१ ॥
 अग्नौक्षिप्तन्तुनिःशब्दंजलयुक्तंविचक्षणः ।
 अभ्यंगपानयोगाच्चतदासर्वगदाञ्जयेत् ॥ १०२ ॥
 अष्टादशानांकुष्ठानांदद्रूणांश्चित्रिणांतथा ।
 कुष्ठनाडीषुमर्त्यानांदुष्टानांकीटिनांतथा ॥ १०३ ॥
 अमृक्स्नावपरीतायेयेचत्यक्तभिपक्वक्रियाः ।
 विसर्पग्रहग्रस्तानांशीर्णाङ्गानांविशेषतः ॥ १०४ ॥
 सर्वधातुगतेकुष्ठेपतितभ्रूशिरोग्रहे ।
 वर्धराव्यक्तवोषाणांतथासर्वाङ्गपीडिनाम् ॥ १०५ ॥
 पानाभ्यंगेतथानस्येवास्तिकर्मणिनित्यशः ।
 सप्तरात्रप्रयोगेणसर्वकुष्ठानिनाशयेत् ॥ १०६ ॥
 द्विसप्ताहप्रयोगेणपूर्णचन्द्रनिभाननः ।
 जातकेशनखश्मश्रुर्भातिपोडशवर्षवत् ॥ १०७ ॥
 अनङ्गसदृशःसाक्षात्सर्वामयविवर्जितः ।
 एतद्घृतंमहाश्रेष्ठंभार्गवेणविनिर्मितम् ॥ १०८ ॥
 प्रजानाञ्चहितार्थायसर्वव्याधिहरंशुभम् ।
 महामार्करनामेदंघृतंसर्वापराजितम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—गायका घी १ एकमंग, देवदारुका रस या काथ २ दो सेर, गायका
 दूध ३ तीन सेर, गोमूत्र ४ चारमंग, तथा कल्ककं लिये मांठ, महामेदा, नीमकं
 पत्ते, सरसां, मेनाशिल, मिन्दूर, स्थलकमल, वापचीकेवीज, हलदी, दारुहलदी,
 हरिताल, आमला, बहेडा, हरड और पीलाचंदन, प्रत्येक एक एक तोले,
 यथाविधिसे इस घृतको ताँके पात्रमें मृदु अग्निसे शनः शनः पकावे, जब
 चौथा भाग शेष रहे तब उतार लेवे । जल समेत इस घीको अग्निसे गंग, जा

यह घी शब्द न करे तो जानो कि सिद्ध होगया । इस घीको पीनेसे—अथवा इसके मालिश करनेसे—सर्व प्रकारके रोग, अठारह प्रकारके कोढ़, दाद, श्वित्र-कुष्ठ, दुष्टनाडीव्रण दुष्टकीटि रोग, रक्तस्रावयुक्त कुष्ठरोग, असाध्यकुष्ठ, विसर्प-रोग, शीर्णाग, सर्वप्रकारके धातुगत कुष्ठ, पतितभ्रुकुटीरोग, शिरोग्रह, घर्षर-शब्द, अव्यक्तशब्द, सर्वाङ्ग पीडितरोग, यह सब रोग दूर होजातेहैं । इस घीको पीनेसे, मलनेसे और निरंतर सात रोजतक बतिकर्ममें प्रयोग करनेसे सर्व-प्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होतेहैं । इसको दो सप्ताहतक सेवन करनेसे पुर्णचन्द्रमाकी समान मुख होजाताहै, तथा बाल, नख और डाढ़ी, यह सब उत्पन्न होजातेहैं तथा सोलह वर्षके पुरुषकी समान छविवाला होजाताहै और सर्वप्रकारके रोगोंसे रहित होकर साक्षात् कामदेवकी समान होजाताहै । यह महाश्रेष्ठ महामार्कर नामवाला धृत संसारके उपकारके लिये श्रीमान् भृगुजीने निर्माण कियाहै, सर्व रोग नाशक और उत्तम है ॥ ९८—१०९ ॥

अथ बृहद्बुद्धीतैलम् ।

शतं छिन्नरुहायाश्च जलद्रोणे विपाचयेत् ।

तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ११० ॥

क्षीरंचतुर्गुणन्तस्य कल्कान्येतानियत्नतः ।

अश्वगन्धाविदारीचकाकोलीहरिचंदनम् ॥ १११ ॥

शतावरीचातिबलाश्वद्रंष्ट्राबृहतीद्वयम् ॥

क्रिमिघ्नं त्रिफलारास्नात्रायमाणाचशारिवा ॥ ११२ ॥

जीवन्तीग्रन्थिकंव्योपंबाकुचीभेकपर्णिका ।

विशालामुद्रपर्णीचमं जिष्ठावन्दनीनिशा ॥ ११३ ॥

शताह्वासप्तपर्णीभिः कार्षिकाणि प्रकल्पयेत् ।

पानाभ्यंजननस्येषु दातव्यन्तुभिषग्वरैः ॥ ११४ ॥

वातरक्तमुदरदंश्च कुष्ठान्यह्यदशैव तु ।

हनुस्तम्भप्रमेहश्च कामलापाण्डुता तथा ॥ ११५ ॥

विस्फोटश्च विषश्चापि व्रणनाडीभगन्दरम् ।

विचर्चि गात्रगण्डं हन्ति सर्वादिशेषतः ॥ ११६ ॥

एतत्तैलरसश्चैववलीपलितनाशनः ।

आत्रेयनिर्मितंचैवबलवर्णकरंस्मृतम् ॥ ११७ ॥

अर्थ—तिलका तेल २ दो मेर दूध आठमेर, काथके लिये गिलोय ५६। सवा छे मेर, जल ३२ बत्तीसमेर, शेष ८ आठमेर और कल्कके लिये असगंध, विदागीकन्द, काकोली, हरिचन्दन, सतावर, गंगेरन, कंधी, गोखुरू, कटेरी, बडी कटेरी, वायविडंग, दगड, बहेडा, आमला, गयमन, त्रायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, गठिवन, त्रिकुटा, वापची, मण्डूकपर्णी, इन्द्रायण, मुगवन, मजीठ, काली शारिवा. हल्दी. मोथा और लज्जावन्ती ये प्रत्येक २ दो दो तोले, लेकर यथाविधिसे इस तेलको सिद्ध करें, इसका पान, अभ्यंजन और नस्यकर्ममें प्रयोग करनेसे वातशक्त, उदर, अठारह प्रकारके कोढ़, हनुस्तम्भ, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, विस्फोट, विषदोष, नाडीव्रण, भगन्दर, विचर्चिका, गात्रकण्डू और वलीपलित रोगोंका दूर करेहै । बलकारक और वर्णको उत्तम करेहै । यह तैलोंमें उत्तम तैल श्रीमान आत्रेयजीने निर्माण कियाहै ॥ ११०—११७ ॥

अथ तृणकतैलम् ।

सर्पपक्वजकोपातकीतैलोनान्यथेङ्गुदीनाञ्च ।

कुष्ठेषुहितानाञ्चतैलंश्रेष्ठञ्चखदिरस्य ॥ ११८ ॥

मांजिष्टारुमिश्राचक्रमदार्द्रगवधपल्लवैः ।

तृणकस्वर्गमेसिद्धंतैलंकुष्ठहरंकटु ॥ ११९ ॥

अर्थ—मर्मां, कज्ज, कडवी तोरई, हिंगोट और खैरका तेल अथवा कुष्ठको हितकारक किसी अन्य औषधिका तेल २ दोमेर, जल ८ आठमेर, तथा कल्कके लिये मजीठ, कूट, हल्दी, चक्रवड और अमलतासके पत्ते ॥ आधसेर और चीनाधानाका स्वर्ग ८ आठमेर, सबको विधिपूर्वक मिलाकर तेलको सिद्ध करें, यह तेल कुष्ठरोगको नष्ट करेहै ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

अथ महानृणकतैलम् ।

हरिद्रात्रिफलादारुहयमागकचित्रकम् ।

सप्तच्छदश्चनिम्बत्वक्करञ्जोवालकंनखी ॥ १२० ॥

कुष्ठमेडगजावीजलांगलीगणिकारिका ।

जातीपत्रञ्चदार्वात्त्वक्हरितालमनःशिला ॥ १२१ ॥

कलिङ्गमिलिकां चक्षीरञ्च गुग्गुलुन्तथा ।

गुडत्वक्मरिचंचोचंकुमं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ १२२ ॥

सर्जपर्णासखदिरविडंगं पिप्पलीवचा ।

घनरेण्वमृतायुष्ठीकेशरंध्यामकं विषम् ॥ १२३ ॥

विश्वकट्फलमंजिष्ठाबोलंतुम्बीफलन्तथा ।

स्तुहीशम्याकयोः पत्रं वा गुजीबीजमासिके ॥ १२४ ॥

एलाज्योतिष्तीमूलं शिरीषोगोमयाद्रसः ।

चन्दने कुष्ठनिर्गुण्डी विशालामल्लिकाद्वयम् ॥ १२५ ॥

वासाश्वगन्धे ब्राह्मी च श्याह्वश्चम्पककुड्मलम् ।

एतैः कल्कैः पचत्तैलतृणकस्वरसद्रवम् ॥ १२६ ॥

सर्वत्वग्रोगहरणं महातृणकसंज्ञितम् ॥ १२७ ॥

अर्थ—कड़वातेल २ दोसेर, जल ८ आठसेर, चीनाधानांका स्वरस ८ आठ सेर, तथा कल्कके लिये हलदी, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, कनेरकीजड, चीतेकीजड, सतवनकी छाल, नीमकीछाल, दोनोकरञ्ज सुगंधवाला, नखद्रव्य, कूठ, पमाडकंबीज, अरणी, कलिहारी, चमेलीके पत्ते, दारुहलदी, दालचीनी, हरिताल, मैनाशिल, इन्द्रजौ, लालचंदन, आककादूध, गुग्गुलु, काली मिरच, तेजपात, केसर, गठिवन, राल, तुलसी, खैर, बायाविडंग, पीपल, वच. नागर्मोथा, रेणुका, गिलोय, मुलेठी, नागकेशर, सुगंधतृण, मीठाविष, सांठ, कायफल, मैजीठ, बोल, तोंबी, थूहरके पत्ते, अमलतासकेपत्र बापचीकेवाज, बालछड, इलायची, मालकांगनीकी जड, सिरसकी छाल, गोवरका रस, लालचंदन, सफेदचन्दन, कूठ, सम्हालू, इन्द्रायण, बेला, वनबेला, अट्टसा, अमगंध, ब्राह्मी, श्रीवास और चम्पेकीकली, यह सब औषधि ? एकसेर ले, सबको मिलाकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे इस तेलसे सर्वप्रकारके चर्मरोग दूर होते हैं ॥ १२०-१२७ ॥

अथ बज्रतैलम् ।

सप्तपर्णकरंजार्कमालतीकरवीरकम् ।

मूलं स्तुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोतयोरपि ॥ १२८ ॥

करंजबीजंत्रिकटु त्रिफलारजनीद्वयम् ।

सिद्धार्थकं विडंगंचप्रपुत्राडंचसंहरेत् ॥ १२९ ॥

मूत्रपिष्टैः पचैत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् ।

अभ्यंगाद्व्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १३० ॥

केचित्कुष्ठहरन्तैलमिति कुष्ठविनाशनम् ॥ १३१ ॥

सर्षपकरंजादितैलं पक्तव्यं न तु तिलतैलम् ।

अर्थ—कडवातेल २ दोसेर, गोमूत्र ८ आठसेर, जल आठसेर, तथा कल्कके लिये सतौनेकी छाल, आककीजड, करंजकीछाल, मालतीके पत्र, कनेरकीजड, थूहरकीजड, सिरसकीजड, चीतेकीजड, अपराजिताकीजड, करंजके बीज, सोंट, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, हलदी, दारुहलदी, सफेद सरसों, बाय-विडंग और पमाड यह सब द्रव्य ५॥ आधमेर ले, यथाविधिसे इस तेलको पकाकर मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके काढ़ दुष्टव्रण और नाडीव्रण दूर होतेहैं ॥ १२८-१३१ ॥

अथ बृहन्मरिचायंतैलम् ।

मरिचंत्रिवृतादन्तीक्षीरमार्कशकृद्रसः ।

देवदारुहरिद्रेद्रेमांसीकुष्ठंकुचन्दनम् ॥ १३२ ॥

विशालाकरवीरंचहरितालं मनःशिला ।

चित्रकोलांगलाख्याचविडङ्गंचक्रमर्दकम् ॥ १३३ ॥

शिरीषः कुटजोनिम्बः सप्तपर्णमनुहामृता ।

शम्याकोनक्तमालोऽब्दः खदिरं पिप्पलीवचा ॥ १३४ ॥

ज्योतिष्मतीचपलिकाविपस्यद्विपलं भवेत् ।

आढकंकटुतैलस्य गोमूत्रन्तुचतुर्गुणम् ॥ १३५ ॥

मृतपात्रेलोहपात्रेवाशनेर्मृद्वग्निनापचेत् ।

पक्त्वा तैलपरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कोष्ठिकान् व्रणान् ॥ १३६ ॥

पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ।

विलयः पलितच्छायानीलीव्यंगंतथैव च ॥ १३७ ॥

अभ्रं गेन प्रणश्यन्ति सौ कुमार्यञ्च जायते ।

प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यञ्च दीयते ॥ १३८ ॥

परामपि जरां प्राप्य नस्तनायान्ति न प्रताम ।

वलीवर्द्धस्तुरंगो वा गजो वा वायुपीडितः ।

त्रिभिरभ्यङ्गनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १३९ ॥

अर्थ—सरसांका तेल ८ आठमेर, गोमूत्र ३२ वत्तीसमेर, जल वत्तीस सेर, तथा कल्ककेलिये कालीमिरच, निसोतकी जड़, दन्तीकी जड़, चीता, वायविडंग, शिरस, सतोना, आकका दूध, मोवरकारस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बाल-छड, कूट, लालचंदन, इन्द्रायणकी जड़, कनेरकी जड़ हरिताल, मेनशिल, कलिहारीकी जड़, कुडेकी छाल, नीमकी छाल, थूहरका दूध, गिलोय, अमल-ताम्रके पत्र, कंजकी छाल, नागरमोथा, खैर, पीपल, वच और मालकांगनी, यह सब औषधि कुटीहुई प्रत्येक चार चार तोले, तथा मीठा विष ८ आठ तोले लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिमे तेलको मिद्धकर मर्दन करनेसे कुष्ठ, व्रण, पामा, विचर्चिका, दाद, कण्डू, विस्फोट, वलीपलितरोग, छाया, नीलता और व्यंग (झाँई) यह सब रोग दूर होजातेहैं तथा सुकुमारता उत्पन्न होतीहै स्त्रियोंको बाल्यावस्थामें इसतेलका नामदेनेमे वृद्धावस्थामें स्त्रियोंके स्तन नहीं नवतेहैं अर्थात् वृद्धावस्थामें भी स्तन पुष्ट रहतेहैं । वायुमे पीडित बल, घोडा और हाथी इस तेलके तीन दिन मलनेमे वातविकारमे मुक्त होकर पवनकी समान पराक्रमी होजातेहैं । ॥ १३८-१३९ ॥

अथ बृहत्सोमगजीतैलम् ।

सोमराजीतुलाक्वाथेतथादद्रुघ्नकस्य च ।

विषचेत्कार्षिकैरेतैः कटुतैलाढकं भिषक् ॥ १४० ॥

चित्रकंलाङ्गलाख्यञ्च नागरकुष्ठमेव च ।

हरिद्रानक्तमालञ्च हरितालं मनःशिला ॥ १४१ ॥

स्थौणेयं करवीरञ्च सप्तपर्णार्कगोमयम् ।

खदिरोनिम्बपत्रञ्च मरिचं कासमर्दकम् ॥ १४२ ॥

सुपिष्टं निक्षिपेत्सर्वगोमूत्राढकमेव च ।

सिद्धमभ्यंगतोहन्ति कुष्ठान्यष्टादशद्रुतम् ॥ १४३ ॥

रोगांस्तृप्तमृगभवान्सर्वान्कृमिवर्णविवर्णताम् ।

पाण्डुकण्डूविसर्पाश्चशीर्णचर्मादिदार्ढ्यकृत् ॥ १४४ ॥

अर्थ—कड़ुवातेल ८ आठसेर, गोमूत्र ३२ बत्तीससेर, काथके लिये वापची-
के बीज सवाछे ६। सेर, जल ३२ बत्तीससेर, शेष ८ आठसेर, चक्कड़ ६।
सवाछेसेर, जल ३२ बत्तीससेर, शेष ८ आठसेर, तथा काथके लिये चीतेकी-
जड़, कलिहारीकी जड़, मांठ, कूठ, हलदी, बडीकरंज, हरिताल, मैनशिल, गठि-
वन, कनेरकी जड़, मतौनेकी छाल, गोबरका रस, आकका दूध, खैर, नीमके पत्ते,
मिरच और कसौंदी प्रत्येक कुटेहुए दो दो तोले सबको मिलाकर यथाविधिसे
तेलको सिद्ध करें। इस तेलको शरीरादिमें मर्दन करनेसे १८ अठारह प्रकारके कोढ़,
रजोदोषजन्य वातरक्तादिरोग, कृमि, व्रण और विवर्णता दूर होतीहै १४०-१४४

अथ विषतैलम् ।

नक्तमालंहरिद्रेद्रेअर्कतगरमेवच ।

करवीरंवचाकुष्ठमास्फोटारक्तचंदनम् ॥ १४५ ॥

मालतीसप्तपर्णश्चमंजिष्ठासिन्धुवारिका

एषामर्द्धपलान्भागान्विषस्यापिपलंभवेत् ॥ १४६ ॥

चतुर्गुणैर्गवांमूत्रैतैलपात्रंविपाचयेत् ।

श्वित्रविस्फोटकिटिमकीटलृताविचर्चिका ॥ १४७ ॥

कण्डूकच्छूविकारांश्चयेव्रणाविषदूषिताः ।

विषतैलमिदं नाम्नासर्वव्रणविशोधनम् ॥ १४८ ॥

अर्थ—कड़ुवातेल ८ आठसेर, जल ८ आठसेर, गोमूत्र ३२ बत्तीससेर तथा
कल्कके लिये करंजकी छाल, हलदी, दारुहलदी, आकका दूध, तगर कनेरकी
जड़, वच, कूठ, मफेदकांयलकी जड़, लालचंदन, मालतीके पत्ते मतौनेकी छाल,
मंजीठ, और मम्हालके पत्ते यह सब कुटेहुए प्रत्येक २ दो दो तोले और
मीठाविष ४ चार तोले लेकर यथाविधिसे इस तेलको सिद्ध करें। इस तेलको
शरीरादिमें मलनेमें श्वित्रकुष्ठ, विस्फोट, किटिम, कीट, लृता, विचर्चिका,
कण्डू, कच्छू और विषदूषित व्रण, दूर होजातेहैं। यह विषतैल—सर्वप्रकारके
व्रणोंको शुद्ध करेहै ॥ १४५-१४८ ॥

अथ पुण्डरीककुष्ठलक्षणानि ।

पुण्डरीकदलंताम्रंश्चेतरक्तंघनंगुरुम् ।

गलगण्डसरागञ्चपुण्डरीकंकफाधिके ॥ १४९ ॥

अर्थ—पुण्डरीक (कमल) के पत्तेकी समान आकृतिवाला, ताँबेकी समान छविवाला, सफेद और लालरंगका, घन और भारी, तथा गलगण्डकी समान वर्णवाला पुण्डरीक कुष्ठ होताहै। यह पुण्डरीक कुष्ठ कफकी अधिकतासे होताहै ॥ १४९ ॥

अथ महानालेश्वरोरसः ।

तालंताप्यंशिलासूतंशुद्धसैन्धवटंकणम् ।

समांशंचूर्णयेत्खल्वेमृताद्द्विगुणगंधकम् ॥ १५० ॥

गंधतुल्यंमृतंताम्रंजम्बीरैर्दिनपंचच ।

मर्द्यपद्भिःपुटेपाच्यंभूधरेसंपुटोदरे ॥ १५१ ॥

पुटेपुटेद्रवैर्मर्द्यसर्वमेतच्चपटूपलम् ।

द्विपलंमातितंताम्रलोहभस्मचतुःपलम् ॥ १५२ ॥

जम्बीराम्लेनतत्सर्वंदिनमर्द्यपुटेष्टु ।

त्रिंशदंशंविपंचास्यक्षेप्यंसर्वंचूर्णयेत् ॥ १५३ ॥

महिषाज्येनसंमिश्र्यनिष्कार्द्वपुण्डरीकनुत् ।

मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णकर्षमात्रंलिहेदनु ॥ १५४ ॥

सर्वान्कुष्ठान्निहन्त्याशुमहातालेश्वरोरसः ॥ १५५ ॥

अर्थ—हरिताल, सोनाप्राखी, मैन्शिल, पारा, सैन्धानोन और सुहागा प्रत्येक १ एक भाग, गन्धक २ दो भाग और ताँबेकी भस्म २ दो भाग सबको एकत्र पीसकर जम्बीरी नीबूके रसमें ५ पाँच दिनतक खरलकरै, पश्चात् गोलावनाकर सम्पुटमें रख भूधरयंत्रमें छे पुटेदेवे और प्रत्येक पुटेपर जम्बीरी नीबूके रसमें खरल करै, पश्चात् भूधरयंत्रमें पकाई हुई औषधि ६ छेपल, ताँबेकी भस्म २ दो पल और लोहेकी भस्म ४ चारपल इन तीनोंको जम्बीरी नीबूके रसमें एक दिन खरलकर लघुपुटमें पकावे, फिर इसमें ३० तीस भाग मीठा विष मिलाकर चूर्ण करलेवे, इसको भैंसके घीमें मिलाकर दो मासेभर खानेसे पुण्डरीक

कुष्ठ नष्ट होनाहै, ऊपरसे वापचीके चूर्णको सहत और घृतमें मिलाकर दो तोले भर खावे, यह अनुपान है । यह महातालेश्वर रस—सर्व प्रकारके कुष्ठोंको दूर करे ॥ १५०—१५१ ॥

अथ भानुतैलम् ।

अर्कक्षीरंस्तुहीक्षीरंभृङ्गधत्तुरयोर्द्रवम् ।

द्रवंजम्बीरगोमूत्रंप्रत्येकंपलविंशतिम् ॥ १५६ ॥

तिलतैलंपलांस्त्रिंशत्सर्वमेकत्रपाचयेत् ।

तैलावशेषमुत्तार्यतत्रचूर्णंविनिक्षिपेत् ॥ १५७ ॥

कांचनीधातकीपुष्पंमंजिष्ठाचशतावरी ।

गंधकंपंचलवणंद्विनिशावत्सनाभकम् ॥ १५८ ॥

प्रतिचार्द्धपलंयोज्यमेकीकृत्यविमर्दयेत् ।

वर्मस्थःसर्वकुष्ठानिभानुतैलंनिहन्त्यलम् ॥ १५९ ॥

अर्थ—तिलका तेल ३० तीमपल, तथा आकका दूध, थूहरका दूध, भांगरेका रस, धतूरेका रस, जम्बीरी नीबूका रस और गोमूत्र प्रत्येक २० बीस पल, सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पकावे, जब केवल तेल ही शेष रहे तब उतार लेवे, पश्चात् इस तेलमें सत्यानाशी कटेरी, धायके फूल, मैजीठ, सतावर, गंधक, सैंधानोन, कालानोन, विरियामंलग्नोन, समुद्रलवण, हलदी, दारुहलदी और वत्सनाभ विष प्रत्येकका दो दो तोले चूर्ण डालकर एकत्र करे, फिर इसको मर्दन कर धूपमें धरदेवे, इस तेलका अगीगदिमें मलनेमें—निश्चय सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ १५६—१५९ ॥

अथ त्रिवर्गनलरसः ।

हिंगूलसम्भवंसूतंगंधकंमृतताम्रकम् ।

सम्यक्शुद्धंतथाकान्तंवंगंचापिशिलाजतुम् ॥ १६० ॥

तुथंरसांजनंचैवतालकंशंखमेवच ।

वराटकंचापितुल्यंजैपालीद्विगुणीकृतम् ॥ १६१ ॥

हवुषांपंचलवणंपंचैवकटुकानिच ।

विडंगपिप्पलीमूलंप्रियंगुरजमोदकम् ॥ १६२ ॥

द्रौक्षारौकुष्ठमेलाचलवङ्गजीरकद्वयम् ।

शटीदन्तीत्रिवृच्चैवत्रिफलागजपिप्पली ॥ १६३ ॥

सर्वमेकत्रसंचूर्ण्यभावयेत्रिफलाजलैः ।

सप्तधाखलुपाषाणेप्रचण्डातपशोषितम् ॥ १६४ ॥

हरीतकीरसेनाथपुनःसंचूर्ण्ययत्नतः ।

पंचरक्तीप्रमाणन्तुवटिकांकारयेद्विषक् ॥ १६५ ॥

एकैकांखादयेत्प्रातःशृङ्गवेररसाप्लुताम् ।

हन्तिभृंतथामेदआममारुतमेवच ॥ १६६ ॥

श्लीपदंमण्डभालाञ्चगलगण्डंभगन्दरम् ।

नाडीदुष्टव्रणञ्चैवअन्त्रवृद्धिञ्चदारुणाम् ॥ १६७ ॥

अम्लपित्तंरक्तपित्तंपक्तिशूलंहलीमकम् ।

वातरक्तंवातकफमुपदंशंसपीनसम् ॥ १६८ ॥

पंचगुल्मांस्तथानाहंप्लीहशोथज्वरानपि ।

उदराणितथाकासान्रसोऽयंवाडवानलः ॥ १६९ ॥

अर्थ—सिंघ्रफसे निकालाहुआ पारा, शुद्धगंधक, तौवेकी भस्म, शुद्ध-
कान्तलोह, शुद्धवंग, शुद्धशिलाजीत, नीलाथोथा, रसांत. हरिताल. शंखकी
भस्म, कौडीकी भस्म, हाडवेर, सैधानोन, कालानोन, विरियासंचग्गोन, समु-
द्रनोन, साँभग्गोन, साँठ, मिरच, पीपल, जवाखार, कूठ, छोट्टी इलायची, लोंग,
फूलप्रियंगु अजमोदा, वायबिडंग. पीपरामूल, जीरा, कालाजीरा, कचूर,
दन्ती, निसोतकीजड, हरड, बंहडा, आमला और गजपीपल प्रत्येक एकभाग
तथा जमालगोटेके बीज २ भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर सातवार त्रिफलेके
काथमें भावना देकर धूपमें खरल करे, फिर इसी प्रकार हरडके काथमें भावना
देकर पाँच पाँच रक्तीकी गोली बनालेवे, प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली अद-
रखके रसमें मिलाकर खावे, इससे—कुष्ठरोग, मेदरोग, आमवात, श्लीपद, गण्ड-
माला, गलगण्ड, भगन्दर, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, दारुण अंत्रवृद्धि, अम्लपित्त,
रक्तपित्त, परिणामशूल, हलीमक, वातरक्त, वातकफ, उपदंश, पीनसरोग,
पंचगुल्म, आनाह, प्लीहा, सूजन, ज्वर. उदररोग और खाँसी दूर होतीहै ।
इसको वाडवानल रस कहतेहैं ॥ १६०—१६९ ॥

अथ वृद्धदारकघृतम् ।

वृद्धदारकमूलानामाढकंतर्जनीकृतम् ।

जलद्रोणेपचेद्धीमानाढकेचावशेषितम् ॥ १७० ॥

घृतप्रस्थंपचेत्तेनदत्त्वामूलंपलाष्टकम् ।

सर्पिरेतन्महावीर्यरसायनमनुत्तमम् ॥ १७१ ॥

वातपित्तकफोत्थञ्चद्वन्द्वजंसान्निपातिकम् ।

नानावर्णजयेत्पुंसांश्लीपदंशीघ्रमेवच ॥ १७२ ॥

अर्थ—गायका घी दोसेर, कल्कके लिये विधारेकी जड ५॥ आधसेर जल ८ आठसेर, काथके लिये विधारेकी जड ४ चारसेर, पाकके लिये जल ३२ बत्तीस सेर, शेष ८ आठसेर, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करै, यह घृत महावीर्य-वान्, उत्तम रसायन, वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुआ, द्वन्द्वज, सान्निपातिक और नाना वर्णके श्लीपद रोगोंको दूर करै ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

अथ विस्फोटकुष्ठलिङ्गानि ।

स्फोटंकण्डूतीव्रदाहमण्डलंस्निग्धपाण्डुता ।

पाणौकच्छूस्फिचौक्लेदंकुष्ठविस्फोटलक्षणम् ॥ १७३ ॥

अर्थ—स्फोटक, खुजली और तीव्रदाह, हो मण्डलाकार चिह्न होवे, चर्म स्निग्ध और पाण्डु वर्णहो, हाथमें खुजली और नितम्बोंमें क्लेद हो, उसको विस्फोटक कुष्ठ कहतेहैं ॥ १७३ ॥

अथ कनकसंकोचरसः ।

तस्वर्णांशुद्विषांशुद्विसूतं त्रिभिः समम् ।

अम्लैर्मर्द्यन्तुतद्गोलं पिष्ट्वा तुल्यं च गन्धकम् ॥ १७४ ॥

कटुतैलयुतं पाच्यं लोहेचमृदुनाग्निना ।

द्रवैर्जीर्णैर्विचूर्ण्यथ वह्निमूलकटुत्रिकैः ॥ १७५ ॥

त्वग्विडङ्गविगैः सुख्यैः त्रिगुणं त्रिफलाविपात् ।

अजामूत्रेदिनं पिष्ट्वा गुञ्जैकां भक्षयेद्वटीम् ॥ १७६ ॥

निष्कैकं वा कुचीतैलं पिबेद्विस्फोटकुष्ठजित् ।

रसः कनकसंकोचोद्विगुंजं योजयेत्क्रमात् ॥ १७७ ॥

अर्थ सोनेकी भस्म १ एक भाग, अभ्रककी भस्म १ एक भाग, सोंठ १ एक-
भाग पारेकी भस्म ३ तीन भाग, सबको एकत्र नीबूके रसमें खरलकर गोला
बनालेवे, फिर इसमें छे भाग गंधक मिलाकर पीसलेवे, पश्चात् इसको कड़वे
तेलमें मिलाकर लोहेके पात्रमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे, जब पकजावे, तब
चीतेकी जड़, त्रिकुटा, दालचीनी, वायबिडंग और विषका चूर्ण प्रत्येक एक
भाग और त्रिफलेका चूर्ण प्रत्येक तीन भाग मिलाकर बकरीके मूत्रमें एकदिन
खरलकर एक एक रत्ती भरकी गोली बनालेवे, एक गोली प्रतिदिन खाय और
ऊपरसे चारमासे बापचीका तेल पीवे तो विस्फोट कुछ नष्ट होवे । यह कनकसं-
कोच रस क्रमसे एक रत्तीसे लेकर दो रत्नीतक खाय ॥ १७४-१७७ ॥

अथ कुष्ठान्तकोरसः ।

शुद्धसूताद्विधागन्धनिर्गुण्डीबाकुचीरसैः ।

दि० धर्मद्वयेत्पाच्यंयामंलवणयंत्रके ॥ १७८ ॥

उद्धृत्य चूर्णयेत्तुल्यैस्त्रिफलाबाकुचीफलैः ।

तुल्यांशं भृङ्गचूर्णञ्च सर्वमेकत्र पाचयेत् ॥ १७९ ॥

पलाशखदिरकाथंगोमूत्रैर्लोहभाजने ।

दिनैकान्तेवटींकुर्यान्निष्कैकंभक्षयेत्सदा ॥ १८० ॥

कुष्ठं विस्फोटकं हन्ति नाभ्रा कुष्ठान्तकोरसः ।

मर्दनं भानुतैलेन आतपेकारयेत्सदा ॥ १८१ ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ एक भाग शुद्धगंधक २ दोभाग, इनको एकत्र सम्हाल्य और वापचीके रससे एकदिन खरलकर एक प्रहरतक लवणयंत्रमें पकावे, स्वां-गशीतल होनेपर निकालकर चूर्णकर बराबर त्रिफला वापचीके बीज और दालचीनीका चूर्ण मिलाकर पलाश और खैरके काथ और गोमूत्रमें एकदिन-तक पकावे परन्तु लोहेके बासनमें पकावे, पश्चात् चार चार मासेकी गोली बनालेवे, प्रतिदिन एक गोली खाय तो निश्चय विस्फोटक कुष्ठ नष्ट होजाय । विस्फोटक कुष्ठपै भानु तेलको धूपमें सदैव मर्दन करे ॥ १७८-१८१ ॥

अथ गजचर्मकुष्ठलक्षणानि ।

पारदंगंधकंताम्रंशिलाजतुशिलामृता ।

मेघनादाश्वगंधाढ्यंतुल्यंक्षौद्रैविमर्दयेत् ॥

उद्धृतं लेपयेन्मासाद्भजचर्मविनश्यति ॥ १८२ ॥

अर्थ—पारा, गन्धक, ताँबा, शिलाजीत, मैन्शिल, गिलोय, चौलाईकी जड़ और असगंध, इन सब औषधियोंको समानभाग ले उत्तम रीतिसे चूर्णकर सहतमें मिलाके खरलकर एक महीनेतक शरीरपै लेप करनेसे गजचर्म कुष्ठ नष्ट होताहै ॥ १८२ ॥

अथ काकणघ्नवटी ।

लोहभस्मविषं वृहिकटुकात्रिकटुत्रयम् ।

तुल्यांशंचूर्णितं भाव्यं काथेनानेन तद्दिनम् ॥ १८३ ॥

पथ्यानिम्बविडंगानि खदिरं वासकामृता ।

जलैरष्टावशेषन्तु कषायं भावने हितम् ॥ १८४ ॥

मासमात्रं लिहेत् शौद्रैः काकणं हन्ति तद्वटी ।

इन्द्रवारुणिकामूलं वागुची त्रिफलाग्निभिः ॥ १८५ ॥

निम्बस्य वह्निशुण्ठीश्च मरिचं चूर्णयत्समम् ।

गोमूत्रैः पाययेत् कर्पमनुपानेन भक्षयेत् ॥ १८६ ॥

अर्थ—लोहेकी भस्म, विष, चीता, कुटकी, सांठ, मिर्च और पीपल, इन सबको समानभाग लेकर हड़, नीमकी छाल, वायविडंग, खैर, अडूसा और गिलोय इनको अष्टावशेष काथमें भावना देकर एक एक मासेभरकी गोली बना सहतके साथ खानेमें काकणकुष्ठ नष्ट होताहै इसके ऊपर इन्द्रायणकी-जड़, वापचीके बीज, हड़, बहेडा, आमला चीतेकी जड़, नीमकी छाल, भिलावेके बीज, सांठ और कालीमिर्च इन सब औषधियोंको समानभाग ले चूर्ण कर २ दो तोलेभर गोमूत्रके साथ पान करे ॥ १८३—१८६ ॥

अथ वर्जतलम् ।

वज्रीक्षीरं रविक्षीरं धुस्तूरं चित्रकद्रवम् ।

सर्वांशं तिलतैलं च गोमूत्रेण समं पचेत् ॥ १८७ ॥

तत्तैलं पाचयेद्यत्राद्रव्याण्येतान्यतः पचेत् ।

गन्धकामिशिलातालं विडंगातिविषाविषम् ॥ १८८ ॥

तिक्ताकोपातकी कुष्ठं वचामांसी कटुत्रयम् ।

हरिद्रादारुयष्ट्याह्वसर्ज्जक्षारश्च जीरिकम् ॥ १८९ ॥

कर्पाशदेवकाष्ठञ्चूर्णन्तैलेविमिश्रयेत् ।

वज्रतैलमिदंख्यातमर्दनात्सर्वकुष्ठजित् ॥ १९० ॥

अर्थ—थूहरकादूध, आकका दूध, धतूरेका रस और चीतेकी जड़का रस, प्रत्येक १ एकसेर, तिलकातेल ४ चारसेर और गोमूत्र ४ चारसेर इन सब द्रव्योंको एकत्र पकावे, जब केवल तेल शेष रहे तब उतार लेवे पश्चात् इस तेलमें गंधक, चीतेकीजड़, मैनाशिल, हरिताल, वायविडंग, अतीस, विष, चिरायता, कडवी-तोरई, कूट, बच, बालछड़, त्रिकुटा, हलदी, दारुहलदी, सजी, जीरा और देव-दारु प्रत्येकका चूर्ण २ दोतोले मिलादेवे, तो वज्रतैल सिद्धहो, इस तेलको मर्द-नकरनेसे—सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ १८७—१९० ॥

अथ सूर्यकान्तरसः ।

ताप्यंगन्धंशुद्धमृतंशिलाजत्वम्लवेतसम् ।

मृतताम्राभ्रकंतुल्यंमध्वाज्यगुडमिश्रितम् ॥ १९१ ॥

मासैकंजिह्मगंहन्तिसूर्यकान्तोमहारसः ।

मुण्डीपंचाङ्गचूर्णञ्चवाकुचीतुल्यचूर्णकम् ।

मध्वाज्यसंयुतं कर्षलेहयेदनुपानकम् ॥ १९२ ॥

अर्थ—सोनामाखी, गंधक, पारा, शिलाजीत, अमलबंत, ताँबा और अभ्रक इन सबको समानभाग ले सहत, घी और गुड़में मिलाकर एकमासेभर खाय तो यह सूर्यकान्तनामवाला रस—जिह्मग कुष्ठको दूर करेहै, ऊपरसे गोरखमुण्डीके पत्ते, मूल, पुष्प फल और छालका चूर्ण और बापचीका चूर्ण सहत या घृतमें मिलाकर दोतोलेभर खावे, यह अनुपान है ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

अथ कुष्ठकुठाररसः ।

भस्ममृतसमोगन्धोमृतायस्ताम्रगुग्गुलुः ।

त्रिफलाविषमुष्टिश्चचित्रकंचशिलाजतु ॥ १९३ ॥

त्येवंचूर्णितंकुर्यात्प्रत्येकंनिष्कषोडश ।

चतुःषष्टिकंरजस्यबीजचूर्णंप्रकल्पयेत् ॥ १९४ ॥

चतुःषष्टिवटीचक्रेमध्वाज्याभ्यांलिङ्गयेत् ।

स्निग्धभाण्डगतंस्वादेद्विनिष्कंगलितंचयत् ॥ १९५ ॥

रसःकुष्ठकुठारोऽयंगलत्तुष्टिनिकृन्तनम् ।

पथ्यं त्रिमधुरैर्देयं दत्तभोजनलेपनम् ॥ १९६ ॥

पंचांगतण्डुलीमूलं मधुपुष्पाचधान्यकम् ।

सितयाभक्षयेत्कर्षमतितापप्रशान्तये ॥ १९७ ॥

लिह्यान्नागबलामूलं मध्वाज्यैर्वातितापनुत् ॥ १९८ ॥

अर्थ—रससिन्दूर, गन्धक, लोहा, ताँबा, गृगुल, हगड, बहेड़ा, आमला, कलिहारीकी जड़, चीतेकी जड़ और शिलाजीत प्रत्येक आठ तोले ले बारीक चूर्ण करै, पश्चात् इस चूर्णमें ३२ बत्तीस तोले कर्जके बीजोंका चूर्ण मिलाकर उत्तम प्रकारसे सहत और घृतके साथ खरलकर ६४ चौंमठ बटी बनालेवे, उन गोलियोंको एक उत्तम चिकने बासनमें भरके रखदेवे, इस कुष्ठकुठारसको चार मासेभर खानेसे—गलितकुष्ठ नष्ट होताई, इसके ऊपरसे पंचांगयुक्त चौलाईकी जड़, दन्तीकी जड़ और धनियाँके चूर्णमें बूग मिलाकर २ दोतोलेभर अथवा गंगेरनकी जड़का चूर्ण २ दो तोलेभर सहत और घृतके साथ सेवन करनेसे कुष्ठरोगीकी रोगजनित अत्यन्तज्वाला निवारण होतीई । इसमें रोगीको घृत, बूग और सहत सेवन कर्ना और लेप कर्ना पथ्यहै ॥ १९३—१९८ ॥

अथ लंकेश्वररसः ।

भस्मसूतार्कलोहानांकृष्णागंधकटंकणम् ।

कुष्ठतुल्यकतुल्यांशमर्थधुस्तूरजैर्द्वैः ॥ १९९ ॥

दिनैकतद्रटीकुर्यान्मापमात्रञ्चभक्षयेत् ।

रसोलंकेश्वरोनाम्नाप्रसूतमण्डलप्रणुत् ॥ २०० ॥

गन्धकं त्रिफलाचूर्णं निर्विषीं गुग्गुलुंसमम् ।

लिहेदेरण्डतैलेन कर्पिकमनुपानकम् ॥ २०१ ॥

अर्थ—रससिन्दूर, ताँबा, लोहा, पीपल, गन्धक, सुहागा और कूठ, इन सब औषधियोंको समान भागलेकर धतूरेके रसमें एकदिन खरलकर एक एक मासेकी गोली बनालेवे, प्रतिदिन एक गोली खावे तो यह लंकेश्वरनामक रस मण्डल-कुष्ठको नष्ट करैहै । इसके पश्चात् गन्धक, त्रिफला, निर्विषीवृण और गुग्गुलुका चूर्ण करके अण्डीके तेलके साथ पान करै ॥ १९९—२०१ ॥

अथ लक्षान्तकोरसः ।

शुद्धमूतं विषं गन्धं तुल्यं ताप्यं शिलाजतु ।

शुद्धतीक्ष्णंमृतलौहंसर्वमर्द्यदिनत्रयम् ॥ २०२ ॥

काकमाचीदेवदाल्योःकर्कोटैश्चद्रवैर्दृढम् ।

मर्दयेद्भूधरेपच्यात्रिदिनन्तुषाग्निना ॥ २०३ ॥

निष्काद्धंलेहयेत्क्षौद्रैःरसःकुष्ठनिःकृन्तनः ।

भल्लातवाकुचीपथ्याविडंगंचित्रकंतथा ॥ २०४ ॥

जीरकंबदरीमूलंकटुतैलेङ्गुदेनतु ।

भक्षयेदनुपानोऽयंहन्ति कुष्ठंविचर्चिकाम् ॥ २०५ ॥

अर्थ—पारा, विष, गन्धक, सोनामाखी, शिलाजीत, तीक्ष्णलोह और काल-लोह, इन सब औषधियोंको समान ले उत्तमप्रकारसे चूर्णकर मकोयके रसमें एकदिन, देवदालीके रसमें एकदिन और ककोडेके रसमें एकदिन खरलकर भुसकी अग्निसे तीनदिन तक भूधरयंत्रमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर चूर्णकरले, इसको दोमासेभर सहतके साथ चाटे तो कुष्ठरोग दूरहोवे । इस औषधिके सेवनके पश्चात् भिलावा, बापचीकेबीज, हरड, बायविडंग, चीतेकीजड, जीरा और बेरकी जड़ यह सब समानभाग ले चूर्णकर कडवेतेल अथवा हिंगोटकेतेलके साथ पान करे, यह अनुपान है । इससे निश्चय विचर्चिका कुष्ठ नष्ट होताहै ॥ २०२-२०५ ॥

अथ बालकादिप्रलेपः ।

बालकंमाक्षिकंलोहं नागकेशरपत्रकम् ।

चंदनश्चमृणालानिभाङ्गीचतुर्गुणानिच ।

घृतंकुष्ठेविलेपोऽयंअतिदाहहरःपरः ॥ २०६ ॥

अर्थ—सुगन्धबाला, सोनामाखी, लोहेकीभस्म, नागकेशर, तेजपात, लाल-चंदन और खस, प्रत्येक एक २ भाग, और सबसे चौगुनी भारंगी सबको एकत्र कर घृतके साथ पीसकर लेप करनेसे कुष्ठजन्य शरीरकी दाह दूर होतीहै ॥ २०६ ॥

अथ रसादिलेपः ।

रसंटेकणगंधार्कक्षीरंस्नुक्पयसापिच ॥ २०७ ॥

पिप्पलीचंदनं षष्ठृततुल्येनपाचयेत् ।

लेपोऽयंदाहलुप्याप्तैश्चर्मकुष्ठकुलान्तकः ॥ २०८ ॥

अर्थ—पारा, सुहागा, गंधक, आककादूध, थूहरकादूध, पीपल, लालचंदन, और कूठ, इन सब औषधियोंको समानभाग ले घृतमें पकाकर बिजौरेनीबूके रसमें मिलाकर लेपकरनेसे चर्मरोग सम्पूर्ण कुछ नष्ट होतेहैं ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

अथ कूष्माण्डबीजादिलेपः ।

कूष्माण्डचक्रमर्दाभ्यांबीजंपथ्याचसैन्धवम् ।

क्षीरैस्तक्रैःकांजिकैर्वापिष्ट्वालेपंचदद्रुजित् ॥ २०९ ॥

अर्थ—पेठेकेबीज, चकवडकेबीज, हरड और सैन्धव लवण, इनको एकत्र दूध और तक्र अथवा कांजिके साथ पीसकर लेपकरनेसे—दाद दूर होताहै ॥ २०९ ॥

अथ पारदादिलेपः ।

पारदं टंकणं गंधं मूषली चार्द्रकद्रवैः ।

दिनं मर्द्यत्रणेलेपः सिध्महन्ति महद्भृतम् ॥ २१० ॥

अर्थ—पारा, सुहागा और गंधक इनको एकत्र मुसली और अदरकके रसमें एकदिन खरलकर लेपकरनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होताहै ॥ २१० ॥

अथ वेतालरसः ।

अभ्रकं मृतलौहश्च शुद्धसूतं शिलाजतु ।

ताप्यं बाकुचिबीजानि त्रिफलामुसलीसमम् ॥ २११ ॥

सव्योपंचूर्णितं लेह्यं मधुनानिष्कमात्रकम् ।

मासकं नाशयेत् सिध्मवेतालोऽयं महारसः ॥ २१२ ॥

अर्थ—अभ्रक, लोहेकी भस्म, पारा, शिलाजीत, सोनामाखी, वापचीके बीज, हरड, बहेडा, आमला, मुसली, मोंठ, मिरच और पीपल, इन सब औषधियोंको समानभाग ले सहतमें मिलाकर चार चार मासेकी गोली बनालेवे, एकमासे प्रतिदिन सेवन करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होताहै ॥ २११ ॥ २१२ ॥

अथ लंकाधिपेश्वरोरसः ।

सूताभ्रं शुण्ठिभस्मानि गन्धं तालं शिलाजतु ।

अम्लवेतसतुल्यां शंचाम्लेन मर्दयेत्ततः ॥ २१३ ॥

मध्वाज्याभ्यां वर्टीर्या द्विगुंजं भक्षयेत्सदा ।

कुष्ठं हन्ति न सन्देहो रसो लंकाधिपेश्वरः ॥ २१४ ॥

त्रिफलानिम्बमंजिष्ठावचापटोलमूलकम् ।

कटुकीरजनीतुल्यंक्वाथोऽयमनुपानतः ॥ २१५ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सोंठ, गन्धक, हरिताल, शिलाजीत, अमलबेंत, इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर चूर्णकर काँजीके साथ खरल कर २ दोरत्ती सहत और घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होताहै । इस औषधिके सेवन करनेके पश्चात् त्रिफला, नीमकीछाल, मैजीठ, वच, पटोल, भूली, कुटकी और हलदीका काथ पान करै ॥ २१३-२१५ ॥

अथ चक्रमर्दादिलेपः ।

चक्रमर्दस्यबीजानिकणाश्वेताश्चसर्षपाः ।

कुष्ठेद्वेरजनीतुल्यंतक्रैःपिष्ट्वाप्रलेपयेत् ।

सर्वकुष्ठहरोलेपोनात्रकार्याविचारणा ॥ २१६ ॥

अर्थ—पमाडकेबीज, पीपल, सफेदसरसों, कूठ, हलदी और दारुहलदी इन सब औषधियोंको समानभाग ले तक्रमें पीसकर लेप करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ-रोग नष्ट होतेहैं ॥ २१६ ॥

अथ कुष्ठशैलेन्द्ररसः ।

तालकंमरिचंकुष्ठंकाचटङ्कनिशावचा ।

निर्गुण्डीनिम्बकरलाबीजंवादलमेववा ॥ २१७ ॥

प्रत्येकंतोलकंचूर्णंचूर्णतुल्यन्तुगुग्गुलुः ।

बाकुच्याःपलिकंग्राह्यंपलंसूतंचगंधकम् ॥ २१८ ॥

लोहस्यद्विपलंचात्रत्रिफलाजलशोधितम् ।

षण्मासावटिकाकार्यागोमूत्रेणनिषेविता ॥ २१९ ॥

कुष्ठशैलेन्द्रवज्राख्योलेहोऽयममृतोपमः ।

अष्टादशानिकुष्ठंविद्रधिगुग्गुदद्रुसकुष्ठकम् ॥ २२० ॥

विद्रधिगण्डमालाश्चगर्दभामुपगर्दभाम् ।

प्रीहगुल्मोदरान्हन्तिकासंश्वासंहलीमकम् ॥ २२१ ॥

कामलापाण्डुरोगांश्चश्वयथुंश्चामवातजम् ।

चन्द्रनाथमुखाच्छ्रुत्वागहनानन्दभाषितः ॥ २२२ ॥

एषलोहरसोदिव्योमेधाः बलदायकः ।

कालदेशवयोवह्नीन्दृष्ट्वावाशुटिवर्द्धनम् ॥ २२३ ॥

अनुपानंप्रकर्तव्यंवातिकेविश्वकुण्डली ।

पटोलमुद्वैःपित्तेचपपटेनापिवारेणा ॥ २२४ ॥

अंकोठदलनीरेणचमर्द्धरसैःकफे ।

केवलेवातिकेपैत्तेगोमूत्रंपरिवर्जयेत् ॥ २२५ ॥

मूत्रस्थानेप्रकर्तव्यंछागीदुग्धनसंशयः ॥ २२६ ॥

अर्थ—हरिताल, मिरच, कूठ, कांच, सुहागा, हलदी, वच, सम्हालूके पत्ते, नीमकी छाल, करेलेके बीज या पत्ते, प्रत्येक एकएक तोले लेकर सबका चूर्ण कर ले और सब चूर्णकी बराबर वापचीके बीज ४ चार तोले, पारा चार ४ तोले, गंधक ४ चार तोले और त्रिफलेके काथसे शुद्ध किया हुआ लोहेका चूर्ण ८ आठतोले, इन सब द्रव्योंको एकत्र गोमूत्रमें खगल कर छे छे मासेकी गोली बना लेवे, इसको कुष्ठशीलेन्द्रवज्राख्यगम कहतेहैं । यह रस अमृतके समानहै, तथा अठारह प्रकारके कोठ कण्ट, ददु, कुष्ठ, विद्रधि, गण्डमाला, गर्दभा, उपगर्दभा, छीहा, गुल्म, उदररोग, खाँसी, श्वास, हलीमक, कामला, पाण्डुरोग और आमवातसे उत्पन्न हुई सूजनको दूरकरेहैं । यह श्री-गुरुचन्द्रनाथके मुखसे सुनकर महाराज गहनानन्दने भाषणकिया है । यह लोहस दिव्य मेधा, आयु और बलको बढ़ानेवाला है । इसको समय, देश, उमर और अग्निको देखकर कमती बढती करे । अनुपान—वाताधिक्यमें सोंठ और गिलेय, पित्ताधिक्यमें पटोल, पून और पित्तपापडेका काथ, तथा कफाधिक्यमें अंकोलके पत्तोंका रस और चकवडके पत्तोंका रस और केवल वात और पित्तरोगमें गोमूत्रको छोडकर बकरीके दूधके माथ गोलियें बनावे २१७—२२६

अथ पूर्णचन्द्रलेपः ।

करंजैडगजानिम्बंशुडावाचिकुष्ठके ।

तालकंमरिचंमुस्तंगोमूत्रकर्दमैःसह ॥ २२७ ॥

सर्वपृष्ठहरोलेपोगहनानन्दनिर्मितः ।

दहेहावानलेयद्वात्रदाघतृणसंशुद्धम् ॥ २२८ ॥

पूर्णचन्द्रकनामायंकुष्ठनाशोभवेत्तथा ।

यथाचन्द्रोनिशामन्दांतमसःपरिवर्जयेत् ॥ २२९ ॥

अर्थ—करंज, चकवड, नीम, थूहरकादूध, वापचीके बीज, कूठ, हरिताल, कालीभिरच और नागरमोथा, इन सबको समानभाग लेकर गोमूत्र और कर्दमके साथ पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ २२७—२२९ ॥

अथ सप्तामृतलेपः ।

शतमूलीरसञ्चैवकृष्णामूल्यामृताकुची ।

चक्रं चैडगजावज्रीसमभागेनलेपयेत् ॥ २३० ॥

वातरक्तं निहन्त्याशुःष्ठमन्यं विनाशनम् ।

सप्तामृतो भवेत्लेपोगदापन्ने निशाकरः ॥

श्रीमद्ब्रह्मनाथेन निर्मितो विश्वसम्पदि ॥ २३१ ॥

अर्थ—सतावरका रस, श्यामालता, गिलोय, वाकुची, अमलतासके पत्र, चकवड और थूहरकादूध, यह सब समानभाग ले पीसकर लेप करनेसे वातरक्त और सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ २३० ॥ २३१ ॥

अथ मित्रतैलम् ।

राजवृक्षदलस्याष्टपलं शुद्धं समुद्धरेत् ।

तथा सप्तच्छदस्याष्टपलं शुद्धं विचक्षणः ॥ २३२ ॥

एतत्काथेपचेतैलं पलान्पंचभिषग्वरः ।

स्नुक्पयोगंधकंपथ्याकरलाबीजमेव च ॥ २३३ ॥

तोलैकमानंतैलेषु दद्यात्पाचनकालतः ।

तैलमूर्च्छनहेत्वर्थे कृष्णवल्लीविषाकुची ॥ २३४ ॥

एषां तोलं त्रुत्तुल्यं तैलपाकार्थं सिद्धये ।

श्रीमद्ब्रह्मनाथेन मित्रतैलं विनिर्मितम् ।

हन्ति वज्रं तथा कुष्ठं कृमिदोषं विशेषतः ॥ २३५ ॥

अर्थ—तेल ५ पांच पल, काथके लिये अमलतासके पत्र ५॥ आधसेर और सतवनकीछाल ५॥ आधसेर, जल ८ आठसेर, शेष २ दोसेर, तथा कल्कके लिये थूहरकादूध, गन्धक, हरड और करेलेके बीज प्रत्येक एक एक तोला लें, सबको

यथाविधिसे मिलाकर तेलको सिद्ध करै, इसतेलको मूर्च्छितकरनेके लिये काली तुलसी, अतीस और बापची प्रदान करै । यह तेल—कुष्ठ और कृमिदोषको विशेष करके नष्ट करै ॥ २३२-२३५ ॥

अथ धात्र्यादिलेपः ।

धात्र्यक्षपथ्याकृमिशत्रुवाह्निभल्लातकावल्गुजलोहभृङ्गैः ।
भागामिवृद्धैस्तिलतैलमिश्रैः सर्वाणिकुष्ठानिनिहन्तिलेहः २३६
जारितपुटितचूर्णभृंगराजमूलंमिलितचूर्णादनुरूपम् ।

तिलतैलेनसम्मर्द्यलेह्यक्रमेणवृद्धिस्तदन्तरेअवश्यनिर्वृणत्वम् ।

अर्थ—आमला १ एकभाग, बहेडा २ दोभाग, हरड ३ तीनभाग, वाय-
विडंग ४ चारभाग, चीता ५ पाँचभाग, भिलावा ६ छेभाग, बापचीके
बीज सातभाग, लोहा ८ आठभाग और भांगरेकीजड ९ नौभाग, सबको एकत्र
चूर्ण करके तिलके तेलमें मिलाकर चाटनेसे सर्व कुष्ठरोग नष्ट होतेहैं ॥ २३६ ॥

अथ बृहत्यादिलोहम् ।

बृहतीशर्करानागतिलसारसमन्वितः ।

लोहंकुष्ठंनिहन्त्याशुसर्वरोगहरोऽपिसः ॥ २३७ ॥

नागो नागकेशरचूणम् । तिलसारो निस्तुपतिलः ।

अर्थ—बृहती, शर्करा, नागकेशर और निस्तुपतिल प्रत्येकका चूर्ण १ एकभाग
तथा लोहेका चूर्ण सबको समान ले, मिलाकर सहत और घृतके साथ चाटनेसे
सर्वप्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होतेहैं ॥ २३७ ॥

अथ योगराजलोहः ।

त्रिफलावाकुचीबीजंभृंगराजकटुत्रिकम् ।

गुडूच्यैडगजाबीजंकेशराजसमुस्तकम् ॥ २३८ ॥

धात्रीखदिरसिन्धूत्थंयमानीजीरकद्वयम् ।

कान्तक्रामविडंगानिसर्वचूर्णानिकारयेत् ॥ २३९ ॥

लोहंसर्वसमंह्येपयोगराजइतिस्मृतः ।

सर्वकुष्ठविकारेषुविहितलोहकोवेदैः ॥ २४० ॥

अर्थ—त्रिफला, बापचीके बीज, भांगरा, सांठ, मिरच, पीपल, गिलोय, पमा-
डकेबीज, कुकुरभांगरा, नागरमोथा, आमला, खैर, सेंधानोन, अजवायन, जीरा,

कालाजीरा, भद्रमोथा और बायबिडंग प्रत्येकका चूर्ण १ एक भाग, तथा सब-
की बराबर लोहेका चूर्ण एकत्र मिलकर सेवन करनेसे—सर्व कुष्ठरोग नष्ट
होतेहैं ॥ २३८—२४० ॥

अथ बृहत्पंचनिम्बचूर्णम् ।

पुष्पकालेतुपुष्पाणिफलकालेफलानिच ।

संगृह्यपिचुमर्दस्यत्वग्मूलानिदलानिच ॥ २४१ ॥

द्विरंशानिसमाहृत्यभागिकानिप्रकल्पयेत् ।

त्रिफलात्र्यूषणं ब्रह्मीश्वदंष्ट्रारूष्कराग्रिका ॥ २४२ ॥

विडंगसारवाराहीलौहचूर्णामृताःसमाः ।

हरिद्राद्वयावल्गुजव्याधिघाताःसशर्कराः ॥ २४३ ॥

कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्चकृत्वाचूर्णसुसंयुतम् ।

खदिरासननिम्बानांघनकाथेनभावयेत् ॥ २४४ ॥

सप्तधापंचनिम्बन्तुमार्कवस्वरसेनतु ।

स्निग्धशुद्धतनुधीमान्योजयेच्चशुभेदिने ॥ २४५ ॥

मधुनातिक्तहबुषाखदिराशनवारिणा ।

लेह्यमुष्णांबुनावापिकोलवृद्ध्यापलम्भवेत् ।

जीर्णेचभोजनकार्यस्निग्धंलघुहितंचयत् ॥ २४६ ॥

विचर्चिकादुम्बरपुण्डरीककपालदद्रूकिटिमालसादि ।

शतारुविस्फोटविसर्पमालांकफप्रकोपंत्रिविधं किलासम् २४७

भगन्दरश्लीपदवातरक्तंजाड्यान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।

सर्वप्रमेहान्प्रदरांश्चसर्वान्दंष्ट्राविषंमूलविषंनिहन्ति ॥ २४८ ॥

स्थूलोदरःसिंहकृशोदरश्चसुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।

समोपयोगादपियेदशान्तिसर्पादयोयान्तिविनाशमाशु ।

जीवेच्चिरंव्याधिजराविमुक्तःशुभेरतश्चन्द्रसमानकान्तिः २४९

अर्थ—नीमकेफूल, नीमकेफल, नीमकी छाल, नीमकीजड और नीमकेपत्ते
प्रत्येक २दो भाग लेकर उत्तम प्रकारसे चूर्णकर भांगरेके रसमें सातवार भाव-

ना देकर चूर्णकरके रखदेवे, तथा हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पी ,
ब्राह्मी, गोखरू, भिलावा, चीता, बिडंग सार, बाराहीकन्द, लोहा, गिलोय,
हलदी, दारुहलदी, वापचीकेबीज. अमलतास, कूठ, इन्द्रजौ और पाद प्रत्येक-
का चूर्ण एक भाग लेवे, पश्चात् उस चूर्णको खैर, असनवृक्षकी छाल और नीमकी
छाल इनके अष्टावशेष गाढे काथमें सातबार भावना देकर भले प्रकारसे चूर्ण करले
फिर इस चूर्णमें पूर्वोक्त भावित पंचनिम्बका चूर्ण और शर्करा एक भाग मिलादेवे।
इस चूर्णको बुद्धिमान वैद्य रोगीको वमन विरेचनादिसे शुद्ध कराकर शुभ दिनमें
देवे । यह चूर्ण कफपित्तोत्पन्न रोगोंमें सहतके साथ वातपित्तोद्भव रोगोंमें
पंचतित्तघृतके साथ, कफोत्पन्न रोगोंमें खैर और असनके काथकेसाथ अथवा
गरमजलके साथ सेवन करे, प्रथम इस चूर्णको एक तोलेखावे पश्चात् क्रमवृद्धि-
से चार तोलेतक सेवन करे, जब यह चूर्ण जीर्ण होजावे तब स्निग्ध और
हलका भोजन करे । यह चूर्ण विचर्चिका, उदुम्बर, पुण्डरीक, कपाल, ददु,
किटिभ, आलस. शतारू, विस्फोट, विसर्पमाला, कफप्रकोप, तीन प्रकारके
किलासकुष्ठ, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जाड्यान्ध्य, नाडीव्रण, शीर्षरोग,
सर्वप्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके प्रदर सर्वप्रकारके दंष्ट्राविष, मूलविष, स्थूलोदर
सिंहकृशोदररोग और सुश्लिष्टसन्धिरोगोंको सहतके साथ सेवन कराहुआ निश्चय
नष्ट करताहै । इस चूर्णको सेवन करनेवाले मनुष्यके सर्पादिकाविष नहीं चढ़ता-
है, तथा साँप आदि काटकर अपने आपही मरजाते हैं और वह मनुष्य बहुत
दिनोंतक जीता रहता है और जरा व्याधिसे विमुक्त होजाताहै, तथा चन्द्रमाके
समान कान्तिवाला होजाताहै ॥ २४१-२४९ ॥

अथामृताङ्कुरलोहम् ।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकरसस्यवै ।

पलंलेह्यं प्रस्यपलं भलातकस्य च ॥ २५० ॥

गन्धकस्य पलं चैकमभ्रकस्य च गुलोः ।

हरीतकीविभीतकयोश्चूर्णकर्षद्वयंद्वयोः ॥ २५१ ॥

अष्टमासाधिकंतत्रधात्र्याः पाणितलानिपट् ।

घृतंद्वयं पुष्पंलेह्यं शत्रिफलाजलम् ॥ २५२ ॥

एवं ज्वापचेत्ताम्रे शौल्वे च विधिपूर्वकम् ।

पाकमेतस्य जानीयात्पाकालोहपाकवित् ॥ २५३ ॥

विबुद्धः प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।
 रक्तिकादिक्रमेणैव सूतभ्रामरमर्दितम् ॥ २५४ ॥
 लोहे लोहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम् ।
 अनुपानं च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥ २५५ ॥
 सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् ।
 पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्त रुजापहम् ॥ २५६ ॥
 कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातकोपनुत् ।
 क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम् ।
 अग्निसंदीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ २५७ ॥
 विवर्ज्य शाकाम्लमपि स्त्रियञ्च
 सेव्योरसो जांगलावकादेः ।
 शाल्योदनं षष्टिकसाज्यमुद्रं
 क्षौद्रं शुभक्षीरमिह क्रियायाम् ॥ २५८ ॥
 सात्म्यञ्च गुर्वादिबृहत्करञ्ज-
 शिलाजतुक्षौद्रयुतं पयश्च ।
 सर्पिर्युतो भक्ष्यतो विहंगात्
 प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः ॥ २५९ ॥
 कृष्णस्य पक्षस्य सितेतुपक्षे
 त्रिपंचरात्रेण यथाशशांकः ॥ २६० ॥

अर्थ—अग्निमें पुटपाकसे शुद्ध किया हुआ पारा १ एकपल, लोहा १ एकपल, ताँबा १ एकपल, भिलावा १ एकपल, गन्धक १ एकपल, अभ्रक १ एकपल, गूगुल १ एकपल, हरड़ २ दो कर्ष, बहेड़ा २ दो कर्ष, आमला २ दो तोले ८ आठमासे, गायका वी ८ आठपल और त्रिफलेका काथ ३२ बत्तीसपल लेवे, यथाविधिसे ताँबेके पात्रमें अथवा लोहेके पात्रमें पाकको जाननेवाला वैद्य लोहपाकके समान पकावे । बुद्धिमान् वैद्य प्रातःकाल उठकर गुरु, देव और ब्राह्मणोंका पूजन करके लोहेके बासनमें करके लोहेके दण्डसे इस रसायनको मर्दन

करै, इसको करतीके क्रमसे बढ़ाकर खावे । अनुपान नारियलका जल । यह सर्वप्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करैहै, -लीपलित नाशक, पाण्डुरोग, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, क्रिमि, सूजन, पथरी, शूल, बवासीर, वातकोप, क्षय और महाश्वास रोगको दूर करैहै । शुक्रवर्द्धक, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, कान्ति, आयु और बलको बढ़ावैहै । इसपै शाक, खटाई और स्त्रीप्रसंग त्यागदेवे । जांगल और लावकादि पक्षियोंका मांस, शालिधानोंका भात, साठीधान, घी, मूँग, सहत, और दूध सेवन करना हितकारी है और स्वभावके माफिक भारी पदार्थ, बृहत्करंज, शिलाजीत, दूधयुक्त सहत, दूधसहित घी सेवन करै । इससे दुर्बल और धातुक्षीणवाले मनुष्य धातुपूरण होजातेहैं । जिसप्रकार कृष्णपक्षमें तीन दिनतक और शुक्लपक्षमें पाँच दिनतक चन्द्रमा पूर्ण रहताहै इसीप्रकार इसको करनेवाला मनुष्य पूर्णवीर्य होताहै ॥ २५०-२६० ॥

अथामृतार्णवलौहम् ।

त्रिकटुत्रिफलालौहंसमभागंचूर्णितम् ।

सर्वेषामपिचूर्णानामर्द्धभागंशिलाजतु ॥ २६१ ॥

गुडूचीस्वरसैर्देयाभावनारविंश्मभिः ।

वारत्रयंततःशुष्कंघृतेनसहमर्दयेत् ॥ २६२ ॥

मासमात्रंचमधुनामर्दितंभक्षयेन्नरः ।

हन्त्यष्टादशकुष्ठानिवातरक्तंसुदुस्तरम् ॥

जयेदर्शांसिसर्वाणिप्रमेहमुदराणिच ॥ २६३ ॥

अर्थ-सांठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला और लोहा प्रत्येक १ एकभाग और सबसे आधाभाग, शिलाजीत एकत्र मिलाकर चूर्णकरै, पश्चात् इसचूर्णको गिलोयके रसकी धूपमें तीनवार भावनादेकर सुखादेवे, फिर इसमें घी मिलाकर घीके साथ खरल कर एकमासे सहतमें मिलाकर खावे । यह अठारह प्रकारके कोष्ठ, दुस्तर वातरक्त सर्वप्रकारकी बवासीर, प्रमेह और उदररोगोंको दूर करैहै ॥ २६१-२६३ ॥

अथ समशर्करगुग्गुलुः ।

यावत्कसुरदारुसैन्धवंमुस्तकत्रुटिविचायमानिका ।

व्योषदीप्यकनिशेफलत्रिकं जीरकद्वयविडङ्गचित्रकम् २६४

कार्षिकं ममृणं प्रयोजितं संयुतं पुरपलैश्च पञ्चभिः ।
 पेषितं दृषदिशर्करासमंततः सर्पिषिविनिक्षिपेत्ततः ॥ २६५ ॥
 वातरक्तमुदरं भगन्दरप्लीहयक्ष्मविषमज्वरंगरम् ।
 श्वित्रकुष्ठमखिलं व्रणामयं विद्रधिभ्रमगदांश्च दारुणान् २६६ ॥
 गृध्रसीश्च गुदजाग्रिमन्दतां हन्ति कुष्ठजनितानि च ।
 वज्रमिन्द्रकरविच्युतं तथा हन्ति शैलकुलमुद्धतं द्रुतम् ॥ २६७ ॥
 अनुपानपरीहारवर्जितं सर्वकालसुखदं निरत्ययम् ॥
 सेव्यमानमिदमश्विनिर्मितं गुग्गुलोर्हि वटकरसायनम् २६८

अर्थ—जवाखार, देवदारु, सैधानोन, नागरमोथा, छोटी इलायची, बच, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोदा, हलदी, दारुहलदी, हरड, बहेडा, आमला, जीरा, कालजीरा, बायबिडंग और चीता, प्रत्येक दो दो तोले, गूगुल ५ पांचपल, बूरापांच ५ पल, इन सबको एकत्र पीसके तप्तघृतमें डालकर पकावे, इसको सेवन करनेसे वातरक्त, उदररोग, भगन्दर, प्लीहा, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, विषविकार, श्वित्रकुष्ठ, व्रणरोग, विद्रधि, भ्रमरोग, गृध्रसीवात, गुदजरोग, मंदाग्रि और कुष्ठसे उत्पन्न हुए रोग दूर होजाते हैं। जैसे इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र पर्वतोंको तोड़ता है, इसीप्रकार यह रोगोंके समूहको नष्ट करे है। इसपै अनुपान तथा परहेज करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है और निरन्तर सेवन किया हुआ सबकालमें सुखदेनेवाला है। यह गुग्गुलुसयन श्रीमान् अश्विनीकुमारोंने रचा है ॥ २६४-२६८ ॥

अथ श्वेतकुष्ठहरलेपः ।

श्वित्रिणोः तदोषस्य हृत्तरक्तस्य चासकृत् ।
 खदिराम्बुयवान्नश्च भोज्येति मेष्यते ॥ २६९ ॥
 वायस्येडगजाः कुष्ठकृष्णाभेर्गण्डिकाकृता ।
 बस्तमूत्रेण संषिः प्रलेपाश्चित्रनाशिनी ॥ २७० ॥
 वायसी काकमाची ।

स्नुहार्कजातीः तीक्ष्णसुवर्णाहलिपल्लवैः ।

गोमूत्रपिष्टैर्लेपोऽयं श्वित्राशौत्रणः कुष्ठहा ॥ २७१ ॥

कुडवोवागुजीबीजाहरितालपलान्विताः ।

गवांष्ट्रे ॥ संपिष्यलेपः श्वित्रहरः परः ॥ २७२ ॥

धात्रीखदिरयोः काथं पिष्ट्वा वल्गुजसंयुतम् ।

कुन्देन्दुधवलं श्वित्रं सद्यो हन्ति न संशयः ॥ २७३ ॥

अर्थ—श्वित्रकुष्ठरोगीको बारंबार रक्तसाव कराकर खैरका काथ और यवान्न भोजन करावे । मकोय, पमारकेबीज, कूठ और पीपल, इन सबका चूर्णकर गोली बना बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्ररोग दूर होता है । थूहरके पत्र, आककेपत्र, चमेलीकेपत्र, करंजकेपत्र और अमलतासके पत्र, एकत्र गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २६९—२७३ ॥

अथारग्वधाद्यं तैलम् ।

आरग्वधंधवंकुष्ठं हरितालं मनःशिला ।

द्वेरजन्यौ पचेत्तैलं चतुर्गुणजले भिषक् ॥

एतेनाभ्यज्य श्वित्रं च क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥ २७४ ॥

इति कुष्ठरोगाऽध्यायः ।

अर्थ—तिलकातेल २ दोसेर, जल ८ आठसेर, तथा कल्कके लिये अमलता-सकेपत्र, धववृक्षकी छाल, हरिताल, मैनाशिल, हलदी और दारुहलदी ॥ आध-सेर, यथाविधिसे तैलको सिद्धकर शरीरादिमें मर्दन करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २७४ ॥

इति कुष्ठरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ शीतपित्तादिचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ शीतपित्तहराभ्यङ्गादीनि ।

अभ्यङ्गं कटुतैलेन सेकञ्चाप्याम्बुभिस्ततः ।

उद्वेगमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ १ ॥

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ।

सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुत्राडतिलैः सह ॥ २ ॥

कटुतैलेन संमिश्र्य मेतदुद्धर्तनं हितम् ।

दूर्वा निशायुतोलेपः कच्छुपामाविनाशनः ॥ ३ ॥

कृमिदद्गुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः ।
निशारग्वधसिन्धूत्यविडंगैडगजेष्टका ॥ ४ ॥
दूर्वापर्णीसकाकघ्नैरुदर्दलेपनंहितम् ।

कासघ्नः कासमर्दकः ।

शुष्कमूलकस्वरसेनकौलत्थेनरसेनवा ॥ ५ ॥
भोजनसर्वदाकार्यलावतित्रिरजेनवा ।
पटोलत्रिफलानिम्बगुडूचीमुस्तचन्दनैः ॥ ६ ॥
समूवारीहिणीपाठारजनीसदुरालभा ।
कापायंपाययेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ७ ॥
कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशकः ।
अग्निमन्थभवंमूलंपिष्टंपीतंचसर्पिषा ॥ ८ ॥
शीतपित्तोदर्दकोठान्सप्ताहादेवनाशयेत् ॥ ९ ॥

इति शीतपित्तादिरोगाध्यायः ।

अर्थ—शीतपित्तरोगमें कड़वे तेलके द्वारा अभ्यंग और गरम जलके द्वारा सेक करना हितकारी है। उदररोगमें परवल और नीमकी छाल काथके द्वारा वमन और त्रिफला, गुग्गुल और पीपलके काथके द्वारा विरेचन करावे। सफेदसरसों, हलदी, चकवडके बीज और तिल, इनको कड़वे तेलमें पीसकर लेप करनेसे शीतपित्त और उदररोग दूर होता है। दूब और हलदी एकत्र पीसकर लेप करनेसे कचू पामा, कृमि, दद्गु और शीतपित्तरोग नष्ट होता है। हलदी सम्हालूकेपत्ते, सैधानोन, बायविडंग, चकवडके बीज, ईट, दूब, शालिपर्णी और कसौदी इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे उदररोग दूर होता है। सूखीमूलीके यूष कुलथीके यूष, तथा ल्या और तित्तिरपक्षीके मांसके यूषके साथ भोजन करना शीतपित्त रोगमें हितकारक है। परवल, त्रिफला, नीमकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाद, हलदी और जवासा इन सबका काथ बनाकर पान करनेसे पित्तश्लेष्मज्वर, कण्डू, चर्मरोग, विस्फोट, विषविकार और विसर्प रोग नष्ट होता है। अरणीकी जड़को पीसकर घृतके साथ पीनेसे शीतपित्त उदर और कोढरोग एक सप्ताहमें ही दूर हो जाता है ॥ १-९ ॥

इति शीतपित्तादिरोगचिकित्सासमाप्ता ।

अथाम्लपित्तचिकित्साधिकारः ।

तत्रादः खल्लप्रेतल्लमनादियोगाः ।

अम्लपित्तेचवमनं पटोलारिष्टवारिभिः ।

कारयेन्मदनक्षौद्रसैन्धवेन समन्वितैः ॥ १ ॥

वामयेदम्लपित्तार्तहिलमोचीरसेनवा ।

विरेचनं त्रिवृच्चूर्णमधुधात्रीद्रवान्वितम् ॥ २ ॥

प्रयोज्यमथवा खण्डत्रिवृताचूर्णमाक्षिकैः ।

ज्वलन्तमिव चात्मानं मन्यमानं सुशोधयेत् ॥ ३ ॥

उद्ध्वगं वमनैर्धीमानधोग्नेचनैर्हरेत् ।

सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ ४ ॥

आस्थापनं चिरोद्धूते देयं दोषाद्यपेक्षया ।

पानार्थं तिक्तभूयिष्ठमभीक्ष्णमिह योजयेत् ॥

यवगोधूमशालीनिलाजारससितामधु ॥ ५ ॥

अर्थ—अम्लपित्तरोगमें परवल और नीमकी छालकी काथके साथ मेनफल, सहत और सेंधानोन मिलाकर वमन करानेके लिये देवे और विरेचन करानेके लिये निसोतका चूर्ण, सहत और आमलोंकारस एकत्र मिलाकर या बूरा, निसोतका चूर्ण और सहत एकत्र मिलाकर देवे । उद्ध्वग अम्लपित्तरोगीको वमनद्रष्टा और अधोग अम्लपित्तरोगीको विरेचन द्वारा शुद्ध करे । और सम्यक्प्रकारसे वमन और विरेचनके द्वारा शुद्ध होजाय तो रोगीको स्निग्ध करके अनुवासन बस्ति करावे और जो रोग बहुत दिनोका होजाय तो आस्थापन (निरूहवस्ति) प्रयोगकरे । अम्लपित्त रोगीको पीनेके लिये कड़वे पानीय द्रव्य और पथ्यके लिये जौ, गेहूँ, शालिधान, खीलें, मांसरस और मृगादिका यूष तथा सहत देवे ॥ १-५ ॥

अथाम्लपित्तप्रकाथानि ।

धात्रीरसो घृतेर्भृष्टो मधुयुक्तोऽम्लापित्तह ॥ ६ ॥

धात्रीरसो यवकाथसंपीतो मधुना तथा ।

वकृष्णप्रखेल्य दत्तं क्षौद्रं तं पिबेत् ॥ ७ ॥

तेषांवाविश्वयुक्तानांशूलारुच्यम्लपित्तहा ।

किराताब्दामृताशुण्ठीकाथःसद्योऽम्लपित्तजित् ॥ ८ ॥

अर्थ—वीमें भुनाहुआ आमलोंकारस सहतके साथ पीनेसे अम्लपित्त रोग नाश होजाताहै । आमलोंका रस सहतके साथ, जौका काथ सहतके साथ, जौ, पीपल और परवल इनका मिलाहुआ काथ सहतके साथ अथवा जौ, पीपल, पटोल और सोंठ इन चार औषधियोंका मिश्रित काथ सहतके साथ अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनका काथ पीनेसे बहुत शीघ्र अम्लपित्त रोग नष्ट होताहै ॥ ६-८ ॥

अथ दशाङ्गकाथः।

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः ।

त्रिफलाकुलकैःकाथःसक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ ९ ॥

अर्थ—अडूसा, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीमकीछाल, चिरायता, भांगरा, हरड, बहेडा, आमला और पटोलका काथ सहत मिलाकर पान करनेसे—अम्ल-पित्तरोग दूर होताहै ॥ ९ ॥

अथ वासादिकाथः ।

सिंहास्यामृतभण्टाकीकाथंपीत्वासमाक्षिकम् ।

अम्लपित्तंजयेज्जन्तुःकासंश्वासंज्वरंवमिम् ॥ १० ॥

फलत्रयंपटोलंचतित्ताकाथःसितायुतः ।

पीनःकृीतकमध्वक्तोज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥ ११ ॥

अर्थ—अडूसा, गिलोय और कटेरी इनके काथमें सहत डालकर पीनेसे अम्ल-पित्त, खाँसी, श्वास, ज्वर और वमन दूर होताहै । हरड, बहेडा, आमला, पर-वल और कुटकी, इनका काथ बूरा सहत और मुलेठीके चूर्णके साथ पीनेसे ज्वर और वमन संयुक्त अम्लपित्तादि रोग दूर होताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ समसतकंचूर्णम् ।

जुङ्गामृताश्वेतपुनर्नवानांशक्राशनस्यापिचमार्कवस्य ।

चूर्णंसिताक्षौद्रयुतंघृतेनलीद्वापयःपेयमतन्द्रितेन ॥ १२ ॥

सामञ्चायुंग्रहर्णीप्रदुष्टाकासावसादंज्वरमम्लपित्तम् ।

शोथंतथापाण्डुमरोचकञ्चप्रमेहमुग्रंपरिणामशूलम् ॥ १३ ॥

स्निग्धान्नभोक्तुः पुरुषस्य शीघ्रं निहन्ति सर्वकफपित्तरोगम् ।

रसायनो वह्निबलप्रदश्च दुर्णामहन्ता समसत्कोयम् ॥ १४ ॥

अर्थ—विधारा, गिलोय, सफेद पुनर्नवा, भांग और भांगरा, इनका चूर्ण समानभाग लेकर बूरा, सहत और घृतके साथ चाटे, पश्चात् दूध पीवे और स्निग्धभोजन करे तो सामवायु, संग्रहणी, खाँसी, अम्लपित्त, ज्वर और सूजन आदि रोग दूर होते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ सुपक्वजम्बीररसः ।

सुपक्वजम्बीररसः सायं पीतोऽम्लपित्तजित् ।

धन्याकंचन्दनं मुस्तं यवश्चेति समांशिकम् ॥ १५ ॥

लेहः क्षौद्रयुतो हन्यादम्लपित्ता रुचिज्वरान् ॥ १६ ॥

अर्थ—उत्तम पकेहुए जम्बीरी नीवृकारस सायंकाल पान करनेसे अम्लपित्तरोग दूर होता है । धनियाँ, लालचंदन, नागरमोथा, और जो यह चारों औषधि समान भाग लेकर भलेप्रकारसे पीसकर सहतके साथ चाटनेसे—अम्लपित्त, अरुचि और ज्वर दूर होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ लादिमन्थः ।

एलापटोलघनचन्दनधान्यधात्री-

वांशीवराङ्गदलनागकणाभयाभिः ।

लेहः सिताज्यमधुभिः सितयाथ पित्तं

हन्त्यम्लपित्तमरुचिज्वरदाहशोषान् ॥ १७ ॥

अर्थ—छोटी इलायची, पटोल, नागरमोथा, लालचंदन, धनियाँ, आमला, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपान, गजपीपल और हरड, इन सब औषधियोंको बारीक पीसकर बूरा, घी और सहत मिलालेव, इसको बूराके साथ खावे तो पित्त, अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोषदूर होता है ॥ १७ ॥

अथाम्लपित्तजवान्तिनुचूर्णम् ।

गुडाभयाभृंगराजचूर्णन्तद्भववान्तिनुत् ॥ १८ ॥

अर्थ—गुड, हरड और भांगरेका चूर्ण, एकत्र मेलन करनेसे अम्लपित्तोद्भव वमन दूर होता है ॥ १८ ॥

अथ द्राक्षाघृतम् ।

द्राक्षामृतोशीरकिरातपद्मत्रायन्तिधान्यब्दपटोलधान्यैः ।

सचन्दनेन्द्रैः शृतमम्लपित्तकासाग्निसादज्वरजिद्घृतं स्यात् १९

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दोसेर, जल ८ आठसेर तथा कल्कके लिये दाख गिलोय, खस, चिरायता, पद्माख, त्रायमाणा, आमला, नागरमोथा, पटोल, धनियाँ, लालचंदन और इन्द्रजौ, यह सब औषधि ॥ आधसेर ले, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे, इस घृतको पान करनेसे अम्लपित्त, खाँसी मन्दाग्नि और ज्वर दूर होता है ॥ १९ ॥

अथ खण्डपिप्पली ।

कणाचूर्णस्यकुडवंषट्पलंहविपन्तथा ।

वरीरसात्पलान्यष्टौक्षीरप्रस्थद्वयन्तथा ॥ २० ॥

खण्डप्रस्थंपचेत्तत्रसिद्धेसंचूर्ण्यधान्यकम् ।

शुण्ठीद्विजीरपथ्याब्दमांसीधात्रीत्रिजातकम् ॥ २१ ॥

पृथक्द्वादशमासंहिपण्मासंनागकेशरम् ।

खदिरंमरिचंशीतेक्षिपेत्क्षौद्रपलत्रयम् ॥

शूलाम्लपित्तवान्त्यग्निमान्द्यजित्खण्डपिप्पली ॥ २२ ॥

अर्थ—पीपलकाचूर्ण ॥ आधसेर, गायका घी ६ छेपल, जनावरका रस ८ आठपल, गायका दूध ४ चारसेर और खाँड २ दोसेर इन सब द्रव्योंको एकत्र मिलाकर पकावे, जब पाक पूर्ण होजाय तो धनियाँ, साँठ, जीरा, कालाजीरा, हरड, नागरमोथा, बालछड, आमला, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, प्रत्येकका चूर्ण १२ बारह मासे, नागकेशर, खैर और काली-मिरच, प्रत्येकका चूर्ण ६ छे मासे और सहत ३ तीन पल मिलादेवे । यह गण्डपिप्पली—शूल, अल्मपित्त वमन और मन्दाग्निको नष्ट करे है ॥ २०—२२ ॥

अथ द्वितीयखण्डपिप्पली ।

पिप्पल्याःकुडवंचूर्णपलषोडशकंघृतम् ।

वरीरसात्पलान्यष्टौषोडशामलकीरसात् ॥ २३ ॥

खण्डप्रस्थंपयःप्रस्थद्वयेपक्ताधिकंक्षिपेत् ।

धात्रीधान्याभयाजाजीत्रिजाताम् सुचूर्णितम् ॥ २४ ॥

कर्षां जीरकंकुष्ठं नागरं नागकेशरम् ।

ज तीफलं मरीचं च शीते मधुपलत्रयम् ॥ २५ ॥

अम्लपित्तरुचिश्छर्दिश्वासकासज्वरापहम् ।

अग्निसन्दीपनं हृद्यं खण्डपिप्पलिनामकम् ॥ २६ ॥

अक्षिकं कार्षिकं पृथक् ॥

अर्थ—पीपलकाचूर्ण १ एककुडव, गायका घी १६ सोलहपल, सतावरकारस ८ आठ पल, आमलोंका रस १६ सोलहपल, खाँड २ दो सेर गायका दूध २ दो सेर, यथाविधिसे पकावे, जब पाक समाप्त होजाय तो आमला, धनियाँ, हरड, कालाजीरा, दालचीनी, छोटी इलाची, तेजपात और सुगन्धवाला, प्रत्येकका चूर्ण २ दो तोले, सफेद जीरा, कूठ, सोंठ, नागकेशर, जायफल और कालीमिरच, प्रत्येक १ एक तोले और सहत ३ तीनपल मिलादेवे । यह द्वितीयखण्ड पिप्पली, अम्लपित्त, अरुचि, श्वास, खाँसी और ज्वरको नष्ट करताहै । अग्निको दीपनकरतीहै और हृदयको हितकारीहै ॥ २३-२६ ॥

अथ खण्डशुण्ठी ।

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समावपेत् ।

दत्त्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थत्रयेपचेत् ॥ २७ ॥

पाकसिद्धेऽपि चूर्णकणाधात्रीत्रिजातकम् ।

वांशीद्विजीरकं पथ्याह्वदधान्यं त्रिशाणिकम् ॥ २८ ॥

षण्मासं मरिचं नागं शीते तु त्रिफलं मधु ।

शूलाम्लपित्तहृत्प्रांत्यामानिलनाशनम् ॥ २९ ॥

लवणं दमायुष्यं खण्डशुण्ठीरसायनम् ॥ ३० ॥

अर्थ—सोंठकाचूर्ण ५॥ आधसेर, खाँड २ दोसेर, गायका घी १ एक सेर और गायका दूध छे सेर, यथाविधिसे घृतको सिद्धकर, जब पाक पूर्ण हो जाय तो—पीपल, आमला, छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी, वंशलोचन, जीरा, कालाजीरा, हरड, नागरमोथा और धनियाँ प्रत्येकका चूर्ण १॥ डेढ़ तोले, कालीमिरच और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण ६ छे मासे तथा सहत ३ तीनपल

मिलावे । इस खण्डशुण्ठीको सेवन करनेसे शूल, अम्लपित्त, हृदयरोग, वमन और आमवातरोग नष्ट होता है तथा बलकी वृद्धि होती है वर्णको उज्ज्वल करे है आयुको बढ़ावे है और रसायन है ॥ २७-३० ॥

अथाग्निमुखताम्रम् ।

गन्धकेनाक्षमात्रेणमूततुल्येननिर्मिता ।

कज्जलीयातयालेप्यंताम्रपात्रन्तुतत्समम् ॥ ३१ ॥

अर्जुनत्वग्रसैःसार्द्धपक्वोदुम्बरपल्लवे ।

आच्छाद्यपंचलवणैश्चूर्णैश्चापिचण्मये ॥ ३२ ॥

अन्धमूषागतंध्मातंतत्सिद्धभक्षयेन्नरः ।

शाणकरक्तिकावृद्ध्यामासमात्रंप्रयोगतः ॥ ३३ ॥

अम्लपित्तक्षयंशूलंजरत्पित्तंक्षुब्धरक्तम् ।

सप्तरात्रप्रयोगेणशरीरंनिर्मलंभवेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ-पारा २ दो तोले और गंधक २ दो तोले दोनोंको एकत्र खरल कर कज्जलीवना उस कज्जलीसे ताँबेके पत्तोंको लेप करके अर्जुनकी छालके रसमें पकाकर गूलरके पक्के पत्तोंसे आच्छादितकर पंचलवण चूर्णके साथ मट्टीके अन्धमूषामें पकावे । इसको एक रत्तीके क्रमसे चारमासे तक खावे, इससे-अम्ल-पित्त, क्षय, शूल, दारुणज रक्तपित्त, यह सब सात रोजमें दूर होजाते हैं और शरीर निर्मल होजाता है ॥ ३१-३४ ॥

अथ वातपित्तान्तकोरसः ।

मृतसूताभ्रमुण्डार्कतीक्ष्णमाक्षिकतालकम् ।

गंधकमर्दयेत्तुल्यंयष्टीद्राक्षामृताद्रवैः ॥ ३५ ॥

धात्रीशतावरीद्रावैर्द्रवैःक्षीरविदारिजैः ।

दिनैकमर्दयेत्खल्वेसिताक्षौद्रयुतावटी ॥ ३६ ॥

निष्कमात्रंनिहंत्याशुपित्तंपित्तज्वरंक्षयम् ।

दाहंतृष्णाभ्रमंशोषंवातपित्तान्तकोरसः ॥ ३७ ॥

सिताक्षीरंपिबेच्चा-यष्टिकाथंसितातम् ।

पिबेद्वापिशान्त्यर्थशीततोयेनचन् नम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, मुण्डलोह, ताँबा, तीक्ष्णलोह, सोना-
माखी, हरिताल और गंधक यह सब द्रव्य समान भाग लेकर मुलेठी, दाख और
गिलोयके काथमें एकदिन आमले और सतावरके रसमें एकदिन एवं विदारी-
कन्दके रसमें एकदिन खगलकर गोली बना लेवे इन गोलियोंको खांड और
सहतके साथ सेवन करनेसे पित्त, पित्तज्वर, क्षय, दाह, तृषा, भ्रम और शोष
दूर होताहै । इस औषधिके सेवन करनेके पश्चात् बूरा और दूध अथवा मुलेठी-
का काथ और बूरा या लाल चन्दन और शीतल जल पान करे ॥ ३५-३८ ॥

अथ पंचाननावटिका ।

शुद्धसूतंपलार्द्धश्चशुद्धगन्धकतत्समम् ।
द्वयोस्तुल्यंताम्रपलंलिङ्गामूषान्तरेक्षिपेत् ॥ ३९ ॥
तंसिद्धंताम्रमादायपलमेकंसमाहरेत् ।
पारदस्यपलंचैकंगन्धकस्यपलन्तथा ॥ ४० ॥
पुटशुद्धस्यलौहस्यगगनस्यपलंपलम् ।
यमानीशतपुष्पाचटङ्कणक्षारमेवच ॥ ४१ ॥
प्रत्येकमेपाञ्चपलंतदन्यस्यपलार्द्धकम् ।
वण्टकर्णभृंगराजमण्डूराणांतथैवच ॥ ४२ ॥
प्रत्येकंचसमादायसर्वमेवत्रकारयेत् ।
त्रिकटुत्रिफलादन्तीचविकाशुक्लजीरकम् ॥ ४३ ॥
चित्रकञ्चनिशापाङ्गत्रिवृतामणकस्यच ।
पिप्पलीमूलकस्याथप्रत्येकेनरसेनच ॥ ४४ ॥
आर्द्रकस्यरसैःपिष्ट्वागुटिकासंप्रकल्पयेत् ।
पंचाननावटीख्यात सर्वरोगविनाशिनी ॥ ४५ ॥
अम्लपित्तगजेन्द्रस्यप्रशमीचरसायनी ।
महाग्निकारिणीचैषापारिणामरापरा ॥ ४६ ॥
शोथपाण्ड्वामयंहन्तिष्ठीहृल्मोदरापहा ।
गुल्फ्याहृषादादिप्रयोमांसरसाहिताः ॥ ४७ ॥

पक्वाग्रनारिकेलञ्चद्राक्षातालफलानिच ।

यथेष्टंभक्षयेद्रोगीनिःशङ्कोचितमेवतत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—शुद्ध पारा, दो २ तोले शुद्ध गंधक, २ तोले दोनोकी कज्जलीकर चार तोले ताँबेके पत्रोंपै प्रलेप करे, पश्चात् ताँबेके पत्रोंको मूषामें रख पुट देवे । इस प्रकार शुद्ध किया हुआ ताँबा ४ चारतोले, पारा ४ चार तोले, सोया ४ चार तोले और सुहागा ४ चार तोले, एवं वण्टकर्ण, भांगरा, कुकुर भांगरा और मण्डूर, प्रत्येक दो दो तोले लेकर भले प्रकारसे सबका बारीक चूर्ण करले, पश्चात् इस चूर्णको त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, दन्ती, सफेदजीरा, चीता, हलदी, चिरचिटा, निसोत, मानकन्द, पीपरामूल और अदरक प्रत्येकके रसमें एकवार खरलकर गोली बना लेवे । इनको पंचानना वटिका कहतेहैं । यह सब रोग नाशक हैं । यह अम्लपित्तरूपी गजेन्द्रको शान्त करनेवाली है रसायनहै अत्यन्त जठराग्निको दीपन करनेवाली, परिणाम शूलको नष्ट करनेवाली, तथा सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, गुल्म और उदररोगको दूर करैहै । इसपै भारी और वीर्यवर्द्धक अन्नपान, दूध और मांसरस हितकारी है । पके हुए आम, नारियल, दाख, ताड़के फल, इन सबका भक्षण करना हितकारी है । और इसपै यथेष्ट भोजन करे, तथा सदैव निःशंक चित्त रहै ॥ ३९-४८ ॥

अथ पानीयभक्तवटिका ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडंगामृतचित्रकम् ।

यमानीहवुषाहिडुतुम्बुरंलवणत्रयम् ॥ ४९ ॥

भल्लातंशतपुष्पाचधन्याकंजीरकद्वयम् ।

अजमोदावचाशृंगीरोहिषंबृहतीद्वयम् ॥ ५० ॥

बालोवृद्धिबलैबाणात्तथामुण्डतिकाद्वयम् ।

कुठारच्छिन्नकणौचलक्षःपीतःशुभाञ्जनः ॥ ५१ ॥

सूर्यावर्त्तात्रिवृद्धतीभद्रोत्कटपुनर्नवा ।

भार्ङ्गीपर्णासमूलञ्चमेधावीन्द्राशनःशटी ॥ ५२ ॥

तेजोवतीगवाक्षीचनीलिन्यौशरपुङ्खकम् ।

करिकर्णपलाशञ्चगृध्रनाख्योशतावरी ॥ ५३ ॥

गोधावत्यलम् पकोबृहत्पत्रुलाहलौ ।
 सर्पदंष्ट्राकणामूलं राजानौ भृङ्गकेशयोः ॥ ५४ ॥
 वृद्धद्वारकशम्याकवलेन्द्रस्वरसन्तथा ।
 दण्डोत्पलं रुक्मश्च सुदर्शः खरमञ्जरी ॥ ५५ ॥
 तालमूल्यस्थि संहारः घण्टकर्णोरुदन्तिका ।
 कर्षमात्रश्च संग्राह्यमेपाञ्चैव पृथक् पृथक् ॥ ५६ ॥
 एकपत्रीकृतं व्योमकृष्णकश्च पलायकम् ।
 आम्लभक्ताम्लपानीये स्थापयेच्च दिनत्रयम् ॥ ५७ ॥
 शुष्कं चूर्णीकृतं पश्चात्पुटयेद्गोमयाग्निना ।
 प्राणास्थि संहतकन्दानां भृङ्गार्द्रत्रिफलारसैः ॥ ५८ ॥
 एवं हतस्य लौहस्य पट्फलस्य यथाक्रमम् ।
 पश्चादेकीकृतं स पुटयेद्गार्द्रमालयोः ॥ ५९ ॥
 पारदार्षपलं शुद्धं गन्धकस्य पलन्तथा ।
 सर्वमेकीकृतं श्लक्ष्णं पेपयेद्गार्द्रकाम्बुना ॥ ६० ॥
 षण्मासकमिताञ्चैव गुटिकां पाययेत्सदा ।
 गुटीत्रयं भक्षयित्वा अम्लं चानुपयः पिवेत् ॥ ६१ ॥
 नागाज्जुनेन भुनिनानिर्मिताहितकारिणा ।
 सर्वरोगहरी चैषा गुटिका चाभृतोपमा ॥ ६२ ॥
 अनेन वर्द्धते पुष्टिरग्निवृद्धिश्च जायते ।
 सर्वरोगाविनश्यन्ति चामाजीर्णज्वरादयः ॥ ६३ ॥
 अम्लपित्तश्च गुदजं ग्रहणीन्नाशयेदपि ।
 कामलां पाण्डुरोगश्च वलीपलितनाश्चनम् ॥ ६४ ॥
 कंजिकाम्लश्च माषश्च मूलकं चैव भक्षयेत् ।
 सकलाशकुना भक्ष्यामांसश्च सकलन्तथा ॥ ६५ ॥
 वार्य्यन्नं दधिशकञ्च तक्रञ्चापियथेच्छया ।

सर्वान्त्रित्तिन्तिडीवर्ज्यमम्लमात्रंचभक्षयेत् ॥ ६६ ॥

नभक्षयेच्छुष्कशाकंक्षीरंचैवविवर्जयेत् ।

मधुकंनारिकेलंचवर्जनीयांविशेषतः ॥ ६७ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, बायवि-
डंग, गिलोय, चीता, अजवायन, हाऊबेर, हींग, तुम्बुरु, तीनों लवण, भिलावा,
सोया, धनियाँ, सफेदजीरा, कालाजीरा, अजमोदा, बच, काकडाशिंगी, रोहिप-
ट्टण, कटेरी, कटाई, सुगन्धवाला, वृद्धि, खिरैटी, कटसरैया, मुण्डी, बडीमुण्डी,
कुठारक, छिन्नकर्ण, सफेदसैजिना, पीला सैजिना, हुलहुल, निसोत, दन्तीकी
जड, प्रसारन, पुनर्नवा, भारंगी, तुलसीकी जड, ब्राह्मी, भंग, कचूर, चव्य, गोंगेरन,
नील, कालानिसोत, शरफाँका, हस्तिकर्ण, पलाश, काकादनी, मकोय, सतावरी,
गोधापदी, बडी गोरखमुण्डी, पठानी लोध, कुलाहल, विछाटी, पीपरामूल, भां-
गरा, कुकुरभांगरा, विधारा, अमलतास, बीजबंद, सम्हालू, दण्डोत्पल, अरण्ड,
जामुन, चिरचिटा, मुसली, हड संघारी, घंटाकर्ण और रुदन्ती, प्रत्येक औष-
धिका चूर्ण दो दो तोले लेवे, पश्चात् एकपत्री किया हुआ कृष्णाभ्रक लेकर
भातकी काँजीमें तीन दिनतक स्थापन करे, फिर सुखाके चूर्णकर आरने उप-
लोंकी अग्निके द्वारा पुट देवे, ऐसा अभ्रक ८ पल लेवे, मानकन्द, अस्थिसंहार,
भांगरा, अदरख और त्रिफलेके रससे मारा हुआ लोहा ६ पल लेवे, फिर सबको
एकत्र करके अदरख और मालाकन्दके रसकी पुट देवे, पश्चात् २ दो तोले शुद्ध-
पारा और ४ चार तोले शुद्ध गंधक दोनोंकी कज्जली बना मिला देवे, सबको
अदरखके रसमें वारीक पीसकर छे छे मासेकी गोली बना लेवे । प्रतिदिन तीन
गोली खावे । अनुपान कांजी और जल है । यह पानीयभक्तवटिका रोगी मनु-
ष्योंके हितके लिये श्रीमान् नागाज्जुन ऋषिने निर्माणकी है । सर्व रोगोंको
हरनेवाली, अमृतकी समान पुष्टिकारक, अग्निजनक सर्वरोग नाशक आम और
जीर्णज्वरादिको दूर करैहै । तथा अम्लपित्त, गुदज रोग, संग्रहणी, कामला,
पाण्डुरोग और वलीपालित रोगको दूर करैहै । इसपै कांजी, उडद और मूली
भक्षण करना हितकारीहै । तथा सर्व प्रकारके मत्स्य, मांस, जल, अन्न, दधि,
शाक और तक्र यह यथेच्छ भोजन करे । सर्व प्रकारके अन्न, केवल इमलीको
छोडकर सर्व प्रकारकी खटाई भक्षण करे । सूखाशाक, दूध, मधु और नारियल
इनको त्याग देवे ॥ ४९-६७ ॥

अथ नारिकेलामृतम् ।

नारिकेलफलप्रस्थंसुपिष्टंघृतभर्जितम् ।

प्रस्थंप्रस्थंसमादायशुण्ठ्याश्चूर्णस्यतद्युतम् ॥ ६८ ॥

द्विपात्रंनारिकेलाम्बुतत्समंक्षीरमेवच ।

धात्र्याश्चस्वरसःप्रस्थंखण्डस्यापितुलान्यसेत् ॥ ६९ ॥

एकीकृत्यपचेत्सर्वशनैर्भृदग्निनाभिपक्व ।

सिद्धशीतेप्रदातव्यंचूर्णतत्रसुशुण्डितम् ॥ ७० ॥

त्रिकटोःसचतुर्जातप्रत्येकन्तुपलोन्मितम् ।

धात्रीजीरकयुग्मञ्चधन्याकंग्रन्थिपर्णकम् ॥ ७१ ॥

तुगापयोदचूर्णानित्रिकर्षञ्चपृथक्पृथक् ।

मधुनःपलानिचत्वारिस्निग्धेभाण्डेनिधापयेत् ॥ ७२ ॥

कर्षप्रमाणंकर्तव्यंसंयूपंपिबेदनु ।

अम्लपित्तनिहन्त्याशुशूलंचैवसुदुस्तरम् ॥ ७३ ॥

परिणामभवंशूलंपृष्ठशूलञ्चनाशयेत् ।

अत्रोपरिहृतंशूलंहृच्छूलञ्चसुदुस्तरम् ॥ ७४ ॥

सर्वशूलहरंश्रेष्ठंवायोर्वेगंयथागिरिः ।

कण्ठदाहञ्चहृद्दाहंछर्दिंतृष्णांसुदारुणाम् ॥ ७५ ॥

कासंपंचविधंचैवरक्तपित्तंसुदारुणम् ।

पीनसंचप्रतिश्यायंयक्ष्माणंविनिहन्तिच ॥ ७६ ॥

परंवाजीकरंश्रेष्ठंबलपुष्टिविवर्धनम् ॥

अग्निसन्दीपनकरंरसायनमिदंशुभम् ॥ ७७ ॥

मूत्ररोगेषुसर्वेषुवातरोगेषुशस्यते ॥

गुदजानिचसर्वाणितांस्तात्रोगात्रिहन्तिच ॥ ७८ ॥

रोगानीकविनाशायलोकानुग्रहहेतुना ।

अश्विभ्यानिर्मितंश्रेष्ठममृताख्यंरसायनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ—पिसी हुई और वीमें भुनी हुई नारियलकी गिरी २ दो सेर सोंठका चूर्ण २ दोसेर, नारियलका जल १६ सोलह सेर, गायका दूध १६ सोलह सेर, आमलोंका रस २ दोसेर और खांड १२॥ सेर लेवे सबको मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे, जब पककर सिद्ध होकर शीतल होजाय तब सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, नागकेशर, छोटीइलायची और तेजपात प्रत्येकका चूर्ण ४ चार तोले, आमला, सफेदजीरा, कालाजीरा, धनियाँ, गठिवन, वंशलोचन और नागरमोथा, प्रत्येकका चूर्ण तीन ३ तोले और सहत आधसेर मिलाकर एक चिकने वासनमें भरके रख देवे । इसमेंसे प्रतिदिन २ दो तोले खाय और मांसरस या मूँगादिके यूषका अनुपान करे । अम्लपित्त, दुस्तरशूल, परिणाम शूल, पृष्ठशूल, अन्न भक्षण करनेके पश्चात् उत्पन्न हुआ शूल, दारुण हृदयशूल और सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करैहै । कण्ठदाह, हृदयदाह, वमन, तृषा, पाँच प्रकारकी खाँसी, दारुण रक्तपित्त, पीनस, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, सर्व प्रकारके मूत्ररोग, वातरोग, सर्व प्रकारके गुदाके रोग, इन सबको यह निश्चय नष्ट करैहै । श्रेष्ठ बाजीकरण, बलकारक, पुष्टिजनक, अग्निप्रदीपक और उत्तम रसायन है । रोगोंको नाश करनेके लिये और संसारके उपकारके लिये श्रीमान् अश्विनीकुमारोंने यह उत्तम नारिकेलामृत रचा है ॥ ६८-७९ ॥

अथामलक्यादिलौहम् ।

आमलापिप्पलीचूर्णतुल्ययासितयासह ।

रक्तपित्तहरोलौहोयोगराजइतिस्मृतः ॥ ८० ॥

बल्योऽग्निदीपनोवृष्योमहाम्लपित्तनाशनः ।

पित्तोत्थान्वातपित्तोत्थान्निहन्तिविविधान्गदान् ॥ ८१ ॥

अर्थ—आमलोंका चूर्ण १ एक भाग, पीपलका चूर्ण एकभाग, बूरा दो भाग और लोहा ४ चार भाग सबको एकत्र मिला लेवे । यह बलकारक, अग्निप्रदीपक, वीर्यजनक, तथा रक्तपित्त, अम्लपित्त, पित्तोद्भवरोग, वातपित्तोद्भव रोग और नाना प्रकारके रोगोंको दूर करैहै ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथ लौहामृतलौहम् ।

चित्रकंत्रिफलादन्तीविदारीमार्कवंबलाम् ।

पीवरींतालमूलंचपृथगष्टपलोन्मिताः ॥ ८२ ॥

अक्षवात्रीशिवानाञ्चप्रस्थं प्रस्थं सुकुट्टितम् ।
 विपाच्यसलिलद्रोणे सुपूतेऽष्टांशशोषिते ॥ ८३ ॥
 प्रस्थंचायोरजःशुद्धं गन्धकंचतदर्द्धकम् ।
 खण्डस्यकुडवंदत्त्वानारिकेलपयस्तथा ॥ ८४ ॥
 एकीकृत्यपचेल्लौहं रसेन सह सर्पिषा ।
 अवतार्यततः शीते मधुनोऽष्टपलं क्षिपेत् ॥ ८५ ॥
 त्रिकटुं त्रिफलां दन्तीं विडंगं नागकेशरम् ।
 पलाशबीजं त्रिवृतां हवुषां जीरकद्वयम् ॥ ८६ ॥
 तालीशपत्रधन्याकं वराङ्गं वंशलोचनम् ।
 भागतः पलिकं चूर्णमाक्षिकञ्च पलद्वयम् ॥ ८७ ॥
 शिलाजतुरजस्तद्वत्क्षिप्त्वा भाण्डे निधापयेत् ।
 लौहे लौहेन संघृष्य मधुदत्त्वा घृताद्धिकम् ॥ ८८ ॥
 कृत्वा चानुपिबेत्क्षीरं जलं वानारिकेलजम् ॥
 त्र्यहं मापमितं कृत्वा वर्द्धयेद्भक्तिकाक्रमात् ॥ ८९ ॥
 गुरुवृष्यान्नपानानि पयोमांसरसाः शुभाः ।
 सेवनीयाः प्रयत्नेन पावकं वीक्ष्य चात्मनः ॥ ९० ॥
 उत्थिताग्निं च भुञ्जीत कर्तव्यापेक्षया बलात् ।
 एवङ्कुर्वन्नवकान्तं प्राप्नुयाद्देहमात्मनः ॥ ९१ ॥
 तेजस्वी बलवान्वाग्मी निर्व्याधिर्भाति देववत् ।
 अस्योपयोगात्सततं गुणैर्हृष्यति ॥ ९२ ॥
 अम्लपित्तं तथा शूलमग्निमान्द्यं क्षयज्वरम् ।
 ग्रहणीपाण्डुरोगञ्च परिणामभवं रुजम् ॥ ९३ ॥
 ये च कुक्षिगतारोगामं दानलभवाश्च ये ।
 तान्सर्वान्नाशयेद्देगाज्जलोत्प्लव्ण्डात् ॥ ९४ ॥

इति अम्लपित्ताध्यायः ।

अर्थ—चीता, हरड, बहेडा, आमला, दन्तीकीजड, विदारीकंद, भांगरा, खिरैटी, सतावर और मुसली प्रत्येक आठ आठ पल, हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक २ दोसेर, पाकके लिये जल ३२ सेर, शेष ४ चार सेर, लोहेका चूर्ण २ दोसेर, शुद्धगंधक १ एकसेर, खांड आधसेर, नारियलका जल आधसेर और गायका घी २ सेर, सबको मिलाकर यथाविधिसे पकावे, जब पाक पूर्ण होजाय तो ८ आठपल सहत, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्ती, बायबिडंग, नागकेशर, ढाककेबीज, निसोत, हाऊबर, जीरा, कालाजीरा, तालीशपत्र, धनियाँ, दालचीनी और वंशलोचन प्रत्येकका चूर्ण चारतोले, सोनामाखी ८ आठतोले और शिलाजीतका चूर्ण ८ आठतोले, ~~मन्त्र~~ लोहेके पात्रमें करके लोहेके डंडेसे चलावे । पश्चात् इसमें घृतसे आधा सहत मिलाकर इसको सेवनकरे और ऊपरसे दूध, अथवा नारियलका जल पानकरे । तीन दिनतक एकमासे पर्यन्त खावे पश्चात् एक एक रत्ती रोज बढाताजाय । इसपै भारी वृष्य अन्न, पान, दूध और मांसरस हितकारी है । जठराग्निको विचारकर क्षुधाके समय इसको सेवन करे । इससे मनुष्य नवीन और कांतिमान् होतेहैं । तेजस्वी, बलवान्, सुन्दर वाणी युक्त और निरोगी, देवोंके स्वरूपकी समान शरीरवाले होतेहैं । इसको सेवन करनेवाला मनुष्य मदिरा पीनेवाले मनुष्यकी समान निरन्तर आनन्दमें मग्न रहताहै । यह लोहामृतरसायन—अम्लपित्तशूल, मंदाग्नि, क्षय, ज्वर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, परिणामभवरोग, कुक्षिगत रोग और मंदाग्निसे उत्पन्न हुए रोगोंका दूरकरैहै ॥ ८२—९४ ॥

इति अम्लपित्तचिकित्सासामाप्ता ।

अथ विसर्पचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नाः ।

निरिकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ।

उपाचरेद्यथादोषंविसर्पानुविदाहिभिः ॥ १ ॥

पूर्वविसर्पेऽसृङ्मोक्षंकुर्याल्लघनरूक्षणम् ।

पटोलपित्तमर्दाभ्यांपिप्पल्यामदनेन च ॥ २ ॥

विसर्पवमनंशस्तंतथाचेन्द्रयवैः सह ।

मदनंमधुकंनिम्बंवत्सकस्यपलानिच ॥ ३ ॥

मदनञ्चविधातव्यंविसर्पेकफपित्तजे ॥ ४ ॥

अर्थ—विसर्परोगमें विरेचन, वमन, प्रलेप, सेक और रक्तमोक्षण, यह सब उपचार करने चाहियें, तथा विदाही क्रियाके द्वारा दोषानुसार विसर्प रोगकी चिकित्सा करे । विसर्परोगमें सबसे प्रथम रक्तमोक्षण, लंघन और रूक्ष-क्रिया प्रयोग करे । पटोल, नीम, पीपल, भैरवफल और इन्द्रजौके द्वारा विसर्प-रोगीको वमन करावे । भैरवफल, मुलैठी, नीम और इन्द्रजौ इनके द्वारा कफपित्तज विसर्परोगमें वमन करावे ॥ १-४ ॥

अथ विरेचनादियोगाः ।

त्रिवृच्चूर्णसमालोड्यसर्पिषापयसापिवा ।

उष्णाम्बुनाचपातव्यंविसर्पेचविरेचनम् ॥ ५ ॥

द्राक्षारग्वधकाश्मर्यत्रिफलामण्डवीजकैः ।

त्रिवृद्धरीतकीभिश्चविसर्पेशोधनंहितम् ॥ ६ ॥

पुराणाजांगलरसैःशस्ताःशालियवादयः ।

अतिस्निग्धंहिमंपित्तेरूक्षंश्लेष्मणियोजयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—निसोतकाचूर्ण घृतके साथ अथवा दूधके साथ या गरम जलके साथ विरेचन करानेके लिये विसर्प रोगीको देवे । दाख, अमलतास, कुम्भेर, हरड, बहेडा, आमला और अरण्डके बीजोंका काथ तथा निसोत और हरडका काथ विसर्प रोगमें विरेचन करानेके लिये देवे । पुराने शालिध नोंके चावल, यव आदि अन्न और जांगलदेशके पशु पाक्षियोंके मांसका स विसर्प रोगमें हितकारी है । वातजविसर्प रोगमें स्निग्ध क्रिया, पित्तज विसर्प रोगमें शीतल क्रिया और कफज विसर्परोगमें रूक्ष क्रिया करनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ वातजविसर्पचिकित्सा ।

कुष्ठंशताह्वासुरदारुमुस्तावारहिकुस्तुम्बुरुक्षगन्धाः ।

वातेर्ऽर्कवंशार्त्तगलाश्चयोज्याःसेकेषुलेपेषुतथाघृतेषु ८ ॥

रास्नानीलोत्पलंदारुचन्दनंमधुकंबला ।

क्षीरसर्पियुतोलोपोवातवीसर्पनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ—कूठ, सोया, देवदारु, नागरमोया, वाराहीकंद, धनियाँ, सैजिना, आक, बाँस और नीलीकटसरीया इनके काथसे परिषेक अथवा इन सबको पीसकर घृतके साथ मिलाकर प्रलेप करनेसे वातज विसर्प रोग नष्ट होताहै । रास्ना, नीलोत्पल, देवदारु, चन्दन, मुलेठी और खिरैटीको दूधमें पीसकर घृत मिलाकर लेपकरनेसे वातज विसर्प रोग दूर होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ पित्तजविसर्पचिकित्सा ।

प्रपौण्डरीकमंजिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ।

सयष्टीन्दीवरैःपित्तक्षीरपिष्टैःप्रलेपनम् ॥ १० ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्रासशैवलासोत्पलकर्ममाश्च ।

वस्त्रान्तराःपित्तकृतेविसर्पलेपाविधेयाःसघृतःसुशीताः ११

अर्थ—पुण्डेरिया, मैजीठ, कमल, खश, लालचन्दन, मुलेठी और नीलेकमल इन सबको दूधमें पीसकर प्रलेपकरनेसे पित्तजन्य विसर्प नष्ट होताहै, कशेरु, सिंवाड़े, कमल, गुन्द्राटण, सिवार, उत्पल और कर्म इन सबको घृतके साथ पीसकर वस्त्रपै लपेटकर लेपकरनेसे पित्तज विसर्प रोग दूर होताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथान्येऽपिपित्तविसर्पघ्नयोगाः ।

सघृतंलेपनंश्रेष्ठंजम्बूत्वक्पंचवल्कलम् ।

प्रदेहःपरिसेकश्चशस्यतेपंचवल्कलैः ॥ १२ ॥

पद्मकोशीरमधुकैश्चन्दनैर्वाप्रशस्यते ।

सेकोमधूदकैर्दुग्धैःशर्करेश्चुरसैःसह ॥ १३ ॥

यवचूर्णसमधुकंसघृतंस्यात्प्रलेपनम् ॥ १४ ॥

मृणालचन्दनलोध्रमुशीरंकमलोत्पलम् ।

शारिवामलकीपथ्यालेपःपित्तविसर्पहा ॥ १५ ॥

अर्थ—जामुनकीछाल और पंचवल्कलको एकत्र पीस घीमें मिलाकर लेप करनेसे, अथवा केवल पंचवल्कलोंको पीसकर लेपकरनेसे, या पंचवल्कलोंका काढ़ा बनाकर सींचनेसे विसर्परोग नष्ट होताहै । पद्माख, खश, मुलेठी, लालचन्दन, इनका काढ़ा बनाकर परिषेक करनेसे अथवा इन सबको पीसकर लेप करनेसे विसर्प नष्ट होताहै । महुएके जलसे या खाँड और ईखके रसको मिलाकर दूधके सींचनेसे अथवा जौका चून और मुलहटीको घीमें पीसकर प्रलेप करनेसे

विसर्प रोग नष्ट होता है । कमलकी नाल, चन्दन, लोध, खश, कमल, कुमुद, शारिवा, आमला और हरड़ इनको पीसकर लेप करनेसे पित्तज विसर्प रोग नष्ट होता है ॥ १२-१५ ॥

अथ कफजविसर्पहरचिकित्सा ।

गायत्रीसः वर्णाब्धवारग्वधदारुभिः ।

कुरुण्टकैर्भवेच्छेपोविसर्पेच्छेष्मसम्भवैः ॥ १६ ॥

धवेत्यत्र वासेति कुरुण्टकैरित्यत्र कुटन्नकै-
रिति च न पाठश्चरकादावदर्शनात् ॥

त्रिफला पद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥

दशमूलमनन्ताचलेपःश्लेष्मविसर्पहा ॥ १७ ॥

अर्थ—खैर, मर्तनेकीछाल, नागरमोथा, धववृक्षकीछाल, अमलतासके पत्ते देवदारु और पियावाँसा इन सब औषधियोंको जड़में पीसकर लेपकरनेसे कफ-जन्य विसर्परोग आगम होता है । हरड़, बहेड़ा, आमला, पञ्जाख, खश, मँजीठ, कनेरकी जड़, नलकी जड़, दशमूल और अन्तमूल इन सबको पीसकर लेप करनेसे श्लेष्मजन्य विसर्प रोग दूर होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ सर्वविसर्पचिकित्सा ।

पटोलचंदनारिष्टगुडूचीवृषपद्मका ।

काथोरुपपंचमूलाद्वासघृतोवातिकेर्हितः ॥ १८ ॥

मुस्तारिष्टपटोलानांकाथःसर्वविसर्पहा ।

धात्रीपटोलमुद्गानामथवापिघृतान्वितः ॥ १९ ॥

पटोलारिष्टदार्वात्त्वक्तित्तात्रायन्तिकासमाः ।

सयष्टीमधुकाःसर्वान्विसर्पान्घ्रन्तिपानतः ॥ २० ॥

अर्थ—परवल, लालचंदन, नीमकीछाल, गिलोय, अड्डमा और पञ्जाख, इनका काथ अथवा पंचमूलका काथ घृतके साथ पानकरनेसे वातजन्य विसर्परोग दूर होता है । नागरमोथा, नीमकी छाल और पटोल इन तीन औषधियोंका काढा बनाकर पीनेसे सर्वप्रकारके विसर्परोग नष्ट होते हैं । आमला, पटोल और भृंगका काथ घृतके साथ पान करनेसे सर्वप्रकारके विसर्परोग दूर होते हैं ।

पटोल, नीमकी छाल, दारुहलदी, कुटकी, त्रायमाणा और मुलेठीका काथ पीनेसे सर्वप्रकारके विसर्प रोग नष्ट होतेहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ बृहदमृतादिकाथः ।

अमृतविषपटोलंनिम्बपत्रैरुपेतं

त्रिफलखदिरसारव्याधिघातंचतुल्यम् ।

क्वथितमिदमशेषंगुग्गुलोर्भागयुक्तं

जयतिविषविसर्पकुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥ २१ ॥

अर्थ—गिलोय, अड्डसा, पटोल, नीमकेपत्ते, हरड, वहेडा, आमला, खैरसार और अमलतासका गूदा इनके काथमें गुग्गुलु डालकर पीनेसे विषविकार, विसर्परोग और अठारह प्रकारके कोढ़ दूर होतेहैं ॥ २१ ॥

अथामृतादिकाथः ।

अमृतवृषपटोलमुस्तकंसतपर्णं

खदिरमसितवेत्रंनिम्बपत्रंहारिद्रे ।

विविधविषविसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डूच

अपनयतिमसूरींशीतपित्तज्वरञ्च ॥ २२ ॥

अत्र विरेकार्थं गुग्गुलुं केचित्क्षिपन्ति ।

अर्थ—गिलोय, पटोल, नागरमोथा, सतवनकी छाल, खैर, कुष्णवंत, नीमके पत्ते, हलदी और दारुहलदी, इन सब औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे नाना प्रकारके विषविकार, अनेक प्रकारके विसर्परोग, कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू, मसूरिका, शीतपित्त और ज्वर दूर होताहै । इस काथसे दस्त कराने होय तो गुग्गुलु डालकर पान करे ॥ २२ ॥

अथ विसर्पेपिकुष्ठायुक्तस्योपयोगित्वम् ।

कुष्ठेषुयानिसर्पापित्रणविस्फोटकेषुच ।

विसर्पेतानियुज्जीतपानालेपनसेचनैः ।

विशेषेणमहातित्तकुष्ठोक्तंयोजयेद्भिषक् ॥ २३ ॥

अर्थ—कुष्ठरोगमें, व्रण रोगमें और विस्फोट रोगमें जो जो घृत कहें वह सब विसर्परोगमें पान, प्रलेप और सेचनके लिये देवे । विशेष करके कुष्ठरोगमें कहा-
हुआ महातित्त घृत विसर्परोगमें विशेष हितकारी है ॥ २३ ॥

अथ कालाग्निरुद्ररसः ।

मृतंताम्राभ्रतीक्ष्णानां भस्ममाक्षिकगन्धकम् ।
वन्ध्याकर्कोटकद्रावैस्तुल्यंमर्द्यदिनावधिः ॥ २४ ॥
वन्ध्याकर्कोटिकापिष्ट्वास्थाप्यंलेप्यंमुदाबहिः ।
भूधराख्येपुटेपच्यादिनैकं तंविचूर्णयेत् ॥ २५ ॥
रसःकालाग्निरुद्रोयंदशाहेनविसर्पनुत् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानंप्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—ताँवेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, तीक्ष्णलोहेकी भस्म, सोनामाखी और गंधक यह सब औषाधि समानभाग लेकर बाँझककोडेकं रसमें एकदिन खरल करे, फिर बाँझककोडेको पीप उममें पृथोक्त खरल किये हुए द्रव्यको रख कपरमिष्टी कर एकदिन भूधर्यंत्रमें पकावे, जब स्वांग शीतल होजाय तब चूर्ण करले, यह कालाग्निरुद्ररस—इशगेजमें विमर्ष रंगको दृग् करहे, अनुपान—पीपल और सहन है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ विसर्पेऽप्यध्यानि ।

त्यजेद्विदाहिपानान्त्रं विरुद्धं स्वपनं दिवा ।
क्रोधप्रवातव्यायामसन्तापंचाग्निसूर्ययोः ॥ २७ ॥

इति विमर्षाऽध्यायः ।

अर्थ—विदाहि अन्नपान, दुग्धमत्स्यादि विरुद्ध द्रव्य, दिवानिद्रा, क्रोध, प्रवत वायु, व्यायाम, अग्निका ताप और धृत् यद् सब विमर्षगेगी अवश्य त्याग करदेवे ॥ २७ ॥

इति विमर्ष रोगाऽध्यायः ।

अथ विस्फोटचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामन्ययत्नपूर्वकक्राययोगः ।

तत्रादौलंवनंकार्यवमनंलघुभोजनम् ।
तथादोषवलंवीक्ष्ययुक्तियुक्तंविरेचनम् ॥ १ ॥
पटोलेन्द्रयवारिष्टवचामदनसाधितम् ।
प्रदद्याद्वमनेकाथंविस्फोटिकफपित्तजे ॥ २ ॥

अर्थ—विस्फोटकरोगमें प्रथम लंघन, वमन, हलका भोजन और दोषानुसार युक्तिके साथ विरेचन करावे । पटोल, इन्द्रजौ, नीमकीछाल बच और मैनफल इनका काथ बनाकर पीनेसे कफपित्तज विसर्प रोग आराम होताहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथाशेषविस्फोटचिकित्सा ।

यूषैः सनिम्बैर्मुद्गाद्यैः पटोलाद्यैश्च तित्तकैः ।

लंघितं भोजयेद्वैद्योजीर्णशालियवादिकम् ॥ ३ ॥

शिरीषोशीरनागाह्वर्हिसाभिलेपनाद्भुतम् ।

विषवीसर्पविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥ ४ ॥

च. नंनागपुष्पंचतण्डुलीयकशारिवे ।

शिरीषवल्कलंजातीलेपः स्यादाहनाशनः ॥ ५ ॥

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठबाणैः ॥

लेपोदशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो विसर्पकण्डूज्वरशोथहारी ६ ॥

शिरीषोदुम्बरौ जम्बूसेकलेपनयोर्हिताः ॥ ७ ॥

अर्थ—लंघन कराये हुए विस्फोट रोगीको नीम मूंगादि या पटोलादि कड़वे द्रव्योंके यूपके साथ पुराने चावल अथवा यवादि अन्न भोजन करनेके लिये देवे। शिरसकी छाल, खश, नागकेशर और कटेरी यह सब समान भाग ले जलके साथ पीसकर प्रलेप करनेसे शीघ्रही विषविकार, विस्फोट और विसर्परोग शान्त होताहै । लाल चन्दन, नागकेशर, चोलाई, अनन्तमूल, शिरसकी छाल और चमेलीके पत्ते समान भाग लेकर लेप करनेसे विस्फोटजन्य दाह दूर होताहै । शिरसकी छाल, मुलेठी, तगर, लालचंदन, इलायची, बालछड, हलदी, दारुहलदी, कूठ और रामसर यह सब समानभाग ले घृतके साथ पीसकर लेपकरनेसे विसर्प, कण्डू, ज्वर और सूजन दूर होताहै । शिरसकी छाल, गूलरकी छाल और जामुनकी छाल, पीसकर लेप करनेसे अथवा इनका काथ बनाकर सींचनेसे विस्फोट और विसर्पादि रोग दूर होतेहैं ॥ ३-७ ॥

अथ वातजादिविस्फोटकचिकित्सा ।

द्विपंचमूलीरास्नातुदाव्युशीरदुरालभाः ।

धान्यमुस्तामृताक्वाथोवातविस्फोटनाशनः ॥ ८ ॥

द्राक्षाकाशमर्य्यखर्ज्जरपटोलारिष्टपर्पटैः ।

लाजाकुलत्थदुःस्पर्शैःकाथःपित्तसितायुतः ॥ ९ ॥

भूनिम्ब निम्बत्रिफलायासेन्द्रयवबालकैः ।

सपटालान्दैःकाथःसक्षौद्रःकफजेहितः ॥ १० ॥

पटालान्तभूनिम्बवासकारिष्टुपर्पटैः ।

खदिराब्दयुतैःकाथःविस्फोटार्तिज्वरापहः ॥ ११ ॥

अर्थ—दशमूल, रास्ना, दारुहलदी, खश, धमासा, धनियौ, नागरमोथा और गिलोय, इनका काथ पान करनेसे वातजन्य विस्फोट दूर होतेहैं । दाख, कुम्भेर, खजूर, पटोल, नीमकीछाल, पित्तपापड़ा, खीलें, कुलथी और धमासा इनका काथ बना बूरा मिलाके पानकरनेसे पित्तजनित विसर्प रोग दूर होताहै । चिरायता, नीमकी छाल, हरड़, बहेडा, आमला, धमासा, इन्द्रजौ, सुगंधबाला, पटोल और नागरमोथा इनके काथमें सहत डालकर पान करनेसे कफजन्य विस्फोट दूर होतेहैं । परवल, गिलोय, चिरायता, अड़सा, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, खैर और नागरमोथा इनका काढ़ा पीनेसे विस्फोट और ज्वर दूर होताहै ॥ ८-११ ॥

अथ विस्फोटकादिहरकाथाः ।

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः ।

समूर्वारोहिणीपाठारजनीसदुरालभा ॥ १२ ॥

कषायंपाययेदेतत्पित्तश्लेष्मरुजापहम् ।

कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविपवीसर्पनाशनम् ॥ १३ ॥

भूनिम्ब वासाकटुकापटोलफलत्रिकंचन्दननिम्बसिद्धः ।

विसर्पदाहज्वरवक्रशोषविस्फोटतृष्णावमिनुत्कपायः ॥ १४ ॥

अर्थ—पटोल, हरड़, बहेडा, आमला, नीमकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, लालचंदन, मूर्वा, कुटकी, पाद, हलदी और धमासा इन सबका काथ बनाकर पीनेसे पित्तश्लेष्मकी पीडा, कण्डू, चर्मदोष, विस्फोट, विपदोष और विसर्प-रोग नष्ट होजाताहै । चिरायता, अड़सा, कुटकी, पटोल, हरड़, बहेडा, आमला, लालचंदन और नीमकी छाल, इन औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, मुखशोष, विस्फोट, तृषा और वमन दूर होतेहैं ॥ १२-१४ ॥

अथ पञ्चतित्तघृतम् ।

पटोलसप्तच्छदनिम्बत्रासाफलत्रिकाच्छिन्नरुहाविपक्वम् ।

तत्पंचतिकंघृतमाशुहन्तित्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ १५ ॥

अर्थ—गायका घी दो सेर, त्रिफलेका काथ आठसेर, जल आठसेर और कल्ककेलिये पटोल, सतवनकी छाल, नीमकी छाल, अड्डसेकी छाल, हरड़, वहेड़ा, आमला और गिलाय यह सब आधसेर ले यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत—त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प और कण्डूको नष्ट करैहै ॥ १५ ॥

अथ महापद्मकघृतम् ।

पद्मकंद्विनिशायपिष्टुटिशेलूनतामयाः ।

शिरीषकिमिजिल्लाक्षासिक्थतुत्थकपित्थकैः ॥ १६ ॥

पत्रनागाह्वलोध्रैश्चकल्कैःसिद्धंजलेघृतम् ।

विस्फोटाज्ज्वरवीसर्पान्दोषकीटक्षताधिकान् ।

हन्तिनाडीमगस्त्योक्तमहापद्मकसंज्ञितम् ॥ १७ ॥

अर्थ—गायका घी २ दोसेर, जल आठसेर, तथा कल्कके लिये पद्माख, हलदी, दारुहलदी, मुलैठी, छोटी इलायची, लिसोडे, तगर, कूट, सिरसकी छाल, बायबिडंग, दाख, मोम, तृतिया, कैया, तेजपात, नागकेशर और लोध, यह सब आधसेर ले, सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतको सेवन करनेसे विस्फोट, ज्वर, विसर्पादि रोग दूर होतेहैं ॥ १६॥१७ ॥

अथ विस्फोटकव्रणरोपणतैलम् ।

कम्पिल्लंघातकीमूर्वाविडंगागुरुचन्दनैः ।

पटोलत्रिफलारिष्टबलालोध्रप्रियंगुभिः ॥

कलिंगेनाथखदिरैस्तैलपक्वन्तुरोपणम् ॥ १८ ॥

इति विस्फोटाऽध्यायः ।

अर्थ—तेल दो सेर, जल आठसेर, कवीला, धायके फूल, मूर्वा, बायबिडंग, अगर, चंदन, पटोल, त्रिफला, नीमकी छाल, खिरैटी, लोध, खैर, फूलप्रियंगु और इन्द्रजी इनका काथ ८ आठसेर और कल्कके लिये येही औषधि आध सेर ले यथाविधिसे तेलको सिद्ध करै । इस तेलका प्रयोग करनेसे विस्फोटक के घाव भरजातेहैं ॥ १८ ॥

इति विस्फोटाऽध्यायः ।

अथ स्नायुकचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नानिलेषाश्च ।

विसर्पभेषजंसर्वस्नायुकेऽपिप्रयोजयेत् ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादिकर्मकुर्याद्यथाक्रमम् ॥ १ ॥

स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेककांजिकसाधितम् ।

हन्तिहिज्जलकंवीजंपिटंतद्वःप्रलेपनात् ॥ २ ॥

शोभाञ्जनमूलदलैःकाञ्जि रूपिटैश्चसलवणैर्लेपः ।

हन्तिस्नायुकरोगंयद्दामोचत्वचोलेपः ॥ ३ ॥

अर्थ—जो औषधि विसर्प रोगमें कही है वही औषधि स्नायु रोगमें भी देनी चाहिये, यथाक्रमसे स्नायुक रोगमें स्नेह, स्वेद और प्रलेपादि क्रिया प्रयोग करे । भेकको काँजीमें ओटाकर बफारा देनेसे स्नायुक रोग आगम होता है । अथवा हिज्जलके बीजोंको पीमके प्रलेप करनेसे स्नायुक रोग दूर होता है । सैंजिनेकी जड़ और पत्तोंको काँजीमें पीस लवण मिलाकर लेप करनेसे अथवा केलेकी छालको पीमकर लेप करनेसे स्नायुक रोग दूर होता है ॥ १-३ ॥

अथ स्नायुकहरलेपादीनि ।

सप्तपर्णशिफाकल्कःपानालेपप्रयोगतः ।

त्र्यहात्स्नायुकरोगघ्नोदृष्टेवारसहस्रशः ॥ ४ ॥

गव्यंसर्पिरुयहंपीत्वानिर्गुण्डीस्वरसंत्र्यहम् ।

पिवेत्स्नायुकमत्युग्रंहन्त्यवश्यंनसंशयः ॥ ५ ॥

हिंणुवांशीजतोयेनमूलंवाकारवेलजम् ।

घृतेनैरण्डमूलंवापिवेत्स्नायुकशान्तये ॥ ६ ॥

इति स्नायुकरोगाध्यायः ।

अर्थ—सतोंनेकी जड़को पीमकर पान करनेसे अथवा लेप करनेसे तीन दिनमें स्नायुक रोग दूर होता है । प्रथम गायके घीको पीकर पश्चात् सम्हालुके पत्तोंका रस पीवे तो तीन दिनमें ही स्नायुक रोग दूर होवे । वंशलोचनके काथमें हांग अथवा कलेकी जड़को पीमकर भेवन करनेसे या अरंडकी जड़को घृतके साथ पीमकर भेवन करनेसे स्नायुक रोग दूर होता है ॥ ४-६ ॥

इति स्नायुरोगाध्यायः ।

अथ मसूरीचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नः । नि ।

तत्रा नौवमनं युज्यात्तथा लंघनपाचनः ॥

सर्वेषां वमनं पूर्वपटोलारिष्टालकैः ॥ १ ॥

कषायैश्च वचावत्सयष्ट्या हृत्फलकल्कितैः ।

सक्षौद्रं पाययेद्ब्रह्मरसं वा हिलमोचिकम् ॥ २ ॥

श्वेतचंदनकल्काक्षंहिलमोची भवं रसम् ।

पिबेन्मसूरिकारम्भेनैम्बं वा केवलं रसम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मसूरिका रोगमें प्रथम वमन, लंघन और पाचन करावे । मसूरिका रोगमें सबसे प्रथम पटोल, नीम और सुगंधवाला इनके रसके द्वारा अथवा वच, इन्द्रजौ, मुलैठी और मैनफल इनके काथके द्वारा वमन करावे । मसूरिकाके उत्पन्न होनेके पहिले ही ब्रह्मीका रस सहित डालकर या हिलमोचिकाके रसमें सहित डालकर अथवा सफेद चंदनको हिलमोचिकाके रसमें पीसकर पीनेको देवे ॥ १-३ ॥

अथ मसूरिकाहरयोगः ।

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।

रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ ४ ॥

वन्तस्य रेचनं देयं वमनं चाबलेस्य वै ।

उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुद्ध्यन्ति मसूरिकाः ॥ ५ ॥

निर्विकाराल्पपूयाश्च पच्यन्ते चाल्पवेदनाः ।

रुद्राक्षं मरिचैर्युक्तं पीतं पर्युषिताम्बुना ।

त्र्यहात्पापरुजं हन्ति दृष्टं वारसहस्रशः ॥ ६ ॥

अर्थ—करेलेकारस अथवा करेलेको पीसकर हलदीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे रोमान्ती ज्वर विस्फोट और मसूरिका रोग दूर होता है । छर्दिवाले मनुष्यको विरेचन और जो दुर्बल होय तो फिरभी वमन करावे । इन दोनों विधियोंसे मसूरिका दोषहीन होकर शुद्ध हो जाती है, निर्विकार, अल्पराधवाली, शीघ्र पक जाती है और थोड़ी पीडा होती है । रुद्राक्ष और कालीभिरच दोनोंको एकत्र बासी जलमें पीस कर तीन दिन तक सेवन करनेसे मसूरिका रोग दूर होता है ४-६ ॥

अथान्येऽपिमसूरिकाहरयोगाः ।

बिल्वस्यकण्टकाःसप्तसंयुक्तामरिचेनच ।

पिबान्व्युषिततोयेनपीताःपापरुजापहाः ॥ ७ ॥

यावत्संख्यामसूर्य्यङ्गेतावद्भिःशोलुजैर्दलैः ।

छिन्नैरातुरनाम्नातुगुडीचेतिनवर्द्धते ॥ ८ ॥

चैत्रासितभूतदिनेरक्तपताकान्वितास्तुहीभवान् ।

धवलितलसन्यस्तापापरुजंदूरतोपते ॥ ९ ॥

वानीरबिल्वजनितक्राथंपर्युषितमुत्तमेदिवसे ।

चैत्रासितपदरोगःपिबतानभवेद्भ्रुवंचेत् ॥ १० ॥

अर्थ—बेलके सात काँट और कालीमिरचाँको एकत्र बासी जलमें पीसकर सेवन करनेसे मसूरिका रोग दूर होताहै । शरीरमें जितनी मसूरिकाकी फुंसी होवें, उतनेही लिसोडेके पत्ताँको रोगीका नाम लेलेकर छेदता जावे, इससे मसूरिकाकी फुंसी नहीं बढ़तीहैं । चैत्रके महीनेमें कृष्णपक्षके प्रथम दिन थूहरके पत्ताँपि लाल पताका बना सफेद कलशमें रखनेसे वसन्त रोग दूरहोताहै । बेंत और बेलका काथ बनाकर बासी जलके साथ चैत्र महीनेके उत्तम दिनमें पानिसे निश्चय पापरोग नाशहोताहै ॥ ७-१० ॥

अथ मसूरिकाहरधूपम् ।

वेणुत्वक्स्वरसोलाक्षाकार्पासास्थिमयूरकः ।

यवपिष्टंविपंसर्पिर्वचाब्राह्मीसुवर्चला ॥ ११ ॥

आदौधूपाद्यथालाभमेतैर्वाशुमसूरिका ।

नश्यन्त्यल्परुजापूयानिर्विकाराभवन्तिच ॥ १२ ॥

अर्थ—बाँसकी छालकास, लाख, बिनोले, कृतिया, जौकाचून, विप, वी, बच, ब्राह्मी और ब्रह्मसुवर्चला, इनमेंसे जितनी औषधि मिले उनकी धूपदेवे । इससे निश्चय मसूरिका रोग नष्ट होताहै तथा मसूरिका रोगकी पीडा दूर होतीहै राघरहित होजातीहै और दोषरहित होजातीहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ वातजमसूरिकाचिकित्सा ।

द्विपंचमूलीरास्नाचदाव्युशीरंदुरालभाः ।

सामृतंधान्यकंमुस्तंजयेद्वातसमुत्थिताम् ॥ १३ ॥

गुडूचीमधुकंरास्नापंचमूलंकनिष्ठकम् ।

चंदनंकाश्मर्यफलंबलामूलंविकंकतम् ॥

पाककालेमसूर्यान्तुवातजायांप्रयोजयेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—दशमूल, रास्ना, दारुहलदी, खश, गिलोय, धनियाँ और नागर-
मोथा इनका काथ पीनेसे वातजनित मसूरिका रोग नष्ट होताहै । गिलोय,
मुलेठी, रास्ना, स्वल्पपंचमूल, लालचंदन, कुम्भेरा फल, खिरैटीकी जड़ और
विकंकत, इनका काथ वातजनित मसूरिकाकी फुंसियोंके पकनेके समय पीनेको
देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ पित्तजमसूरिकाचिकित्सा ।

श्यामापर्पटकारिष्टचंदनद्वयरेणुकैः ।

वात्रीतिक्तवृषोशीरयासैश्चक्रथितंजलम् ॥ १५ ॥

पीतमसूरिकांहन्तिपित्तजांदाहसंयुताम् ।

द्राक्षाकाश्मर्यखजूरपटोलारिष्टवासकैः ।

लाजामलकटुःस्पर्शैःसितायुक्तन्तुपैत्तिके ॥ १६ ॥

शर्कराप्रक्षेपः ।

अर्थ—श्यामलता, पित्तपापडा, नीमकीछाल, मफेदचन्दन, लालचंदन,
रेणुका, आमला, कुटकी, अडूसा, खश और धमासा, यह सब समानभाग
लेकर काथ बनाकर पीनेसे दाहसंयुक्त पित्तजन्य मसूरिका रोग दूर होताहै ।
दाख, कुम्भेर, खजूर, पटोल, नीमकी छाल, अडूसेकी छाल, खीरल, आमला
और धमासा इनका काथ बना बूग डालकर पीनेसे पित्तजन्य मसूरिका रोग
दूर होताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ कफपित्तजमसूरिकाचिकित्सा ।

शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधवल्कलैः ।

प्रलेपःसघृतःशीघ्रं व्रणवीसर्पदाहहा ॥ १७ ॥

शेलूककृतशीताम्भःसेकेवाकायशोधने ।

दुरालभांपर्पटकंभूनिम्बंकटुरोहिणीम् ॥ १८ ॥

श्लैष्मिक्यांपित्तजायान्तुपानेनिःकाथ्यदापयेत् ।

अमृतादिकपायन्तुजयेत्पित्तकफान्विताम् ॥ १९ ॥

अर्थ—सिरसकीछाल, गूलरकीछाल, पीपलकीछाल, लिसोडेकीछाल, और बडकी छाल, इन सबको घृतकेसाथ पीसकर प्रलेप करनेसे मातारोगके घाव, विसर्प और दाह दूर होताहै । लिसोडेकी छालके शीतल काथके सींचनेसे मसूरिका रोग आराम होताहै । धमासा, पित्तपापडा, चिगायता और कुटकी इनके काथके पीनेसे श्लैष्मिक और पित्तज मसूरिकारोग दूर होताहै । अमृतादि काथके पीनेसे पित्तश्लैष्मिक मसूरिका रोग दूर होताहै ॥ १७-१९ ॥

अथ निम्बादिकाथः ।

निम्बंपर्पटकांपाठांपटोलंकटुरोहिणीम् ।

वासांदुरालभांधात्रीमुशीरंचंदनद्रवम् ॥ २० ॥

एषनिम्बादिकःख्यातःसितयाचसमन्वितः ।

हन्तित्रिदोषमसूरीज्वरवीसर्पसम्भवाम् ।

उत्थितांप्रविशेद्यातुपुनस्तावाह्यतोनयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—नीमकीछाल, पित्तपापडा, पाठ, पटोल, कुटकी, अहमेकीछाल, धमासा, आमला, खश, सफेदचंदन और लालचंदन इनका काथ बना मिश्री मिलाके पीनेसे त्रिदोषजमसूरिका, ज्वर और विसर्प रोग नष्ट होताहै ॥ २०॥२१ ॥

अथ मसूरिकाहरकाथोरसश्च ।

कांचनालत्वचःकाथःस्वर्णमाक्षिकचूर्णितः ।

निहत्यान्तःप्रविष्टान्तुमसूरींवाह्यतोनयेत् ॥ २२ ॥

बिल्वपत्ररसेनैवमृच्छितःपारदोरसः ।

हिलमोचीरसोहन्तिपीतोमधुसमायुतः ।

गदगदःसर्वजांशीघ्रमस्थिजांसर्वदेहजाम् ॥ २३ ॥

अर्थ—कचनारकी छालके काथमें सोनामाखीका चूर्ण डालकर पीनेमें अन्नः—प्रविष्ट मसूरिका शरीरके बाहर निकल आतीहैं । बेलके पत्तोंके रसमें मृच्छित-

कियेहुए पारेको डुलहुल शाकके रसके और सहतके साथ सेवन करनेसे
अस्थिजात और सर्वदेहजात सर्व प्रकारका मसूरिका रोग नष्ट होता
है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ पटोलादिकाथः ।

पटोलकुण्डलीः स्तवृषधन्वयवासकैः ।

भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्चशृतंजलम् ॥ २४ ॥

मसूरीशमयेदामंपक्वाश्चैवविशोधयेत् ।

नातःपरतरंकिंचिद्विस्फोटज्वरशान्तये ॥ २५ ॥

अर्थ—पटोल, नीमकी छाल, कुटकी, गिलोय, नागरमोथा, अडूसेकी छाल,
धमासा, चिरायता और पित्तपापडा इनका काथ बनाकर पीनेसे अपक्वमसूरिका
शमन होतीहैं, पक्वमसूरिका शुद्ध होतीहैं, तथा विस्फोट और ज्वर निश्चय नष्ट
होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ पटोलमूलादिप्रयोगौ ।

पटोलमूलारुणतण्डुलीयकंपिबेद्धरिद्रामलकल्कसंयुतम् ।

मसूरीविस्फोटविदाहशान्तयेतदेवरोमान्तिवमिज्वरापहः २६

पटोलमूलारुणतण्डुलीयकंतथैवधात्रीखदिरेणसंयुतम् ।

पिबेज्जलंसुक्रथितंमुशीतलंमसूरिकारोगविनाशनंपरम् २७ ॥

अर्थ—पटोलकीजड, लालचौलाई, हलदी और आमला एकत्र पीसकर सेव-
नकरनेसे मसूरिका और विस्फोटजन्य दाह तथा रोमान्तिकज्वर और वमन
दूर होताहै । पटोलकी जड, लाल चौलाई, आमला और खैर इनका काथ
शीतलकर पीनेसे निश्चय मसूरिकारोग नष्ट होताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ खदिराष्टकः ।

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः ।

काथोऽष्टकांगोजयतिरेऽऽप्तिरस्यमसूरिकाः ।

कुष्ठविस्फोटवीसर्पकण्ड्वान्निनपिपानतः ॥ २८ ॥

अर्थ—खैर, हरड, आमला, बहेडा, पटोल, गिलोय, अडूसेकी छाल और नीम-
की छाल, इनका काथ पीनेसे रोमान्तिक मसूरिका रोग, कुष्ठ, विस्फोट, वीसर्प
और कण्ड्वादि रोग दूर होतेहैं ॥ २८ ॥

अथ मसूरिकापाककालिकयोगाः ।
 पाककालेतुसर्वास्ताविशोषयतिमारुतः ।
 तस्मात्सं हणंकार्य्यनतुपथ्यंविशोषणम् ॥ २९ ॥
 गुडूचीमधुकंद्राक्षामोरटंदाडिमैःसह ।
 पाककालेतुदातव्यंभेषजंगुडसंयुतम् ॥
 तेनपाकं ब्रजत्याशुनचवायुःप्रकुप्यति ॥ ३० ॥

अर्थ—पकनेके समय मसूरिका पवनः सुखादेतीहै, इसकारण इसपै विशोषक पथ्य नहीं देवे, पुष्टिकारक पथ्य देवे । गिलोय, मुलेठी, दाख, मोरटलता और अनारकी छाल, इनका काथ बना गुड डालके मसूरिकाके पकनेके समय पीवे, इससे मसूरिका शीघ्रही पकजातीहै और वात कुपित नहीं होता ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वादरचूर्णादियोगाः ।
 लिह्याद्वावादरचूर्णपाचनार्थगुडेनतु ।
 अनेनाशुविपच्यन्तेवातपित्तकफात्मिकाः ॥ ३१ ॥
 शूलाध्मानपरीतस्यकम्पमानस्यवायुना
 धन्वमांसरसाःशस्ताईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ ३२ ॥
 पंचमुष्टिकयूपस्तुदोषत्रयहरंपरम् ।
 साधितोदशमूलार्द्धशृतेनधन्वजोरसः ।
 हन्तिकम्पंप्रलापंचेत्यनुभूतमनेकधा ॥ ३३ ॥

अर्थ—वेरोंका चूर्ण गुडमें मिलकर सेवन करनेसे भी मसूरिका पकजातीहै । शूल और आध्मानसे पीड़ित तथा वायुसे कम्पायमान मनुष्यको जंगलदेशके जीवोंके मांसका रस सैन्धानोनके साथ सेवन करनेसे विशेष लाभ होताहै । बेर, कुलथी, मूँग, मूली और मोंठ इनका यूप पीनेसे त्रिदोषज मसूरिका रोग दूर होजाताहै । दशमूलके साथ, जंगलमांसका रस बनाकर पीनेसे कम्प और प्रलाप दूर होताहै ॥ ३१—३३ ॥

अथ मुखकण्ठरोगघ्नयोगौ ।
 जातीपत्रंसमंजिष्ठादार्वापूगफलंशमी ।
 धात्रीफलंसमधुकंक्रथितंमधुसंयुतम् ॥ ३४ ॥

मुखरोगेकण्ठरोगेगण्डूषान्नप्रशस्यते ।

कुष्ठाभयारजोलिह्यान्मधुनाकण्ठशुद्ध्ये ॥ ३५ ॥

अर्थ—चमेलीके पत्ते, मँजीठ, दारुहलदी, सुपारी, छीकर, आमला और मुलेठी इनके काथमें सहत डालकर गण्डूष धारण करनेसे मुखरोग और कण्ठरोग दूर होताहै । कूठ और हरडका चूर्ण सहतके साथ चाटनेसे कण्ठ शुद्ध होजाताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथाष्टांगकावलेहादियोगाः ।

अष्टांगकावलेहोवाकवडश्चार्द्रकादिभिः ।

शेलुत्वक्त्रिफलादावींकाथोरोचनयायुतः ॥ ३६ ॥

अक्ष्णोःसेकंप्रशंसन्तिगवेधुमधुकाम्बुना ।

मःकंत्रिफलामूर्वादावींत्वङ्नीलमुत्पलम् ॥ ३७ ॥

उशीरंलोध्रमंजिष्ठाप्रलेपाश्च्योतनेहिताः ।

गवेधुमधुसिन्धूत्थघृतंवैकंकतंसमम् ।

नेत्रयोरंजनाद्धन्तिशोषंविस्फोटदुर्जयम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—अष्टांगकावलेह सेवनकरनेसे, अथवा अदरखके रसादिका कवल धारण करनेसे या लिसोडेकी छाल, हरड़, वहेडा, आमला और दारुहलदी इनका काथ गोलोचनके साथ पीनेसे, या गरहेडुआ और मुलेठीके काथसे आँखोंको सींचनेसे विशेष लाभ होताहै । मुलेठी, हरड़, आमला, वहेडा, मूर्वा, दारुहलदीकी छाल, नीलोत्पल, खश, लोध और मँजीठ इनके प्रलेपके द्वारा नेत्रोंमें आश्च्योतन प्रयोग करनेसे अथवा गरहेडुआ, सहत, संधानोन, घृत और विकंकत इनको पीस नेत्रोंमें अंजन लगानेसे शीघ्रही विस्फोट रोग दूर होताहै ॥ ३६—३८ ॥

अथ मसूरिकान्तकरसः ।

अथशुद्धस्यमूतस्यमूर्च्छितस्यमृतस्यच ।

धवलापिप्पलीधात्रीरुद्राक्षघृतमाक्षिकैः ।

पापरोगान्तकोयोगःपृथिव्यामेवदुर्लभः ॥ ३९ ॥

इति मसूरिकारोगाध्यायः ।

अर्थ—शुद्ध और मूर्च्छित पारेकी भस्म, सफेद कोयल, पीपल, आमला और रुद्राक्ष इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर सहत और घृतके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके मसूरिका रोग दूर होतेहैं ॥ ३९ ॥

इति मसूरिकारोगाध्यायः ।

अथ क्षुद्ररोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादावजगल्लिकेन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामामांजलौकाभिरुपाचरेत् ।

शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥

इन्द्रलुप्तेसिराविद्धाशिलाकाशीशतुत्थकैः ।

लेपयेत्परितःकल्कैस्तैलंवाऽभ्यञ्जनेहितम् ॥ २ ॥

कुटव्रटंशिखीजातीकरञ्जकरवीरजैः ।

अवगाढपदञ्चैवप्रच्छयित्वापुनःपुनः ॥ ३ ॥

गुआफलेश्चिरंलिम्पेत्केशभूमिसमन्ततः ॥ ४ ॥

अर्थ—अब क्षुद्ररोगोंकी चिकित्सा वर्णन करतेहैं—सीप, सौराष्ट्रकी मर्टी और जवाखार इन तीनोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अजगल्लिका रोग दूर होताहै । इन्द्रलुप्त रोगमें शिरावेध करावे, हरिताल, कर्मास और तुनिया इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा शिरमें तेल मर्दन करनेसे इन्द्रलुप्त रोग नष्ट होताहै । श्योनाक, चीता, चमेली, कर्ज और कंजर सबको एकत्र पीसकर, बारंवार मस्तकपर गाढ़ा प्रलेप कर ढक देवे अथवा चोटालियोंको पीसकर मस्तकपर सर्वत्र प्रलेप करनेसे इन्द्रलुप्त रोग आगम होताहै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथेन्द्रलुप्तहरलेपः ।

हस्तिदंतमसीलेपःसतैलमिन्द्रलुप्तजित् ॥ ५ ॥

हस्तिदंतमसीकृत्वासुखाञ्चैवगसाञ्जनम् ।

लोमानितेनजायन्तेनृणांपाणितलेष्वपि ॥ ६ ॥

भल्लातकवृहतीफलगुआमूलफलेभ्यएकेन ।

मधुसहितैर्विलिप्तंसुरपतिलुप्तंशमंयाति ॥ ७ ॥

अर्थ—हाथीके दांतकी स्याहीको तेलमें मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है । हाथीके दाँतकी स्याहीमें रसौत मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्त रोग दूर होता है इसको हथेलीमें भी लगानेसे रुयें जम आते हैं । भिलावेंकी गुठली बृहतीके फल, चौंटली और चौंटलीकी जड़ इन चारोंमेंसे किसी एकको सहतके साथ पीसकर प्रलेप करनेसे निश्चय इन्द्रलुप्त रोग आराम होता है ॥ ८-७ ॥

अथान्योपिलेपः ।

बृहतीफलसंपिष्टगुञ्जाफलञ्चेन्द्रलुप्तस्य ।

कनकनिघृष्टस्यसतोदातव्यंप्राच्छित्तस्यसदा ॥ ८ ॥

मधुकेन्द्रीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृंगलेपेन ।

अचिराद्भवन्तिकेशाघनदृढमूलायतानृजवः ॥ ९ ॥

अर्थ—बृहतीके फल और गुंजा दोनोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा कनक—धतूरेको पीसकर मस्तकपै प्रलेप करके मस्तकको दृढलेवे, इससे इन्द्रलुप्त रोग दूर होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मालत्यादितैलम् ।

मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ।

तैलमभ्यञ्जनेशस्तमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥ १० ॥

इदंहित्वरितंहन्तिदारुणंनियतंनृणाम् ॥ ११ ॥

अग्निश्चित्रकः गोमूत्रेण पाकः ।

अर्थ—मालतीके पत्र कनेर, चीता और करंजी छाल यह सब ५ ॥ भेर लेकर यथाविधिसे तेलको पकावे । यह तेल बहुत शीघ्र इन्द्रलुप्त और दारुणक रोगको दूर करे ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ स्नुह्यादितैलम् ।

सुहीपयःपयोर्कस्यमार्कवोलांगलीविषम् ।

मूत्रमाजंसगोमूत्रंरक्तिकासेन्द्रवारुणी ॥ १२ ॥

सिद्धार्थतीक्ष्णतैलंचगर्भदत्त्वाविपश्चिता ।

वह्निनामृदुनापक्वंतैलंखालित्यनाशनम् ॥ १३ ॥

कूर्म्मपृष्ठसमानापिरूक्षायारोमत्रक्षरी ।

दिग्धामानेनजायेतऋक्षणानीरलोमसा ॥ १४ ॥

लांगलिविषं लागलीमूलम् । रत्तिका गुंजामूलम् ।
तीक्ष्णं ज्योतिष्मतीमूलम् । केचिच्च सिद्धार्थतीक्ष्णतैल-
मिति श्वेतसर्षपतैलं वदन्ति ।

अर्थ—तिलकातेल २ सेर, गोमूत्र ४ सेर, वकरीका मूत्र ४ सेर तथा कल्कके-
लिये थूहरकादूध, आककादूध, भांगरा, कलिहारीकी जड़, चोटली इन्द्रायण-
कीजड़, सफेद सरसों और मालकांगुनीकी जड़ यह सब ५॥ सेर लेकर यथा-
विधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको शिर्गमें मलनेसे खालित्यरोग दूर होता-
है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथादित्यपाकनैलम् ।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ।

गुडूचीस्वरसेतैलमभ्यङ्गात्केशरोपणम् ॥ १५ ॥

केशिनी भूकेशी । एवं चतुर्गुणम् ।

अर्थ—बड़ेक अंकुर, भूकेशीका चूर्ण और गिलोयके रसमें तेलको मिलाकर
चूषमें पकाकर शिर्गमें मलनेसे शिर्गमें बाल जम आतेहैं ॥ १५ ॥

अथ यष्टिमध्वादि तैलादीनि ।

तैलंसयष्टिमधुकैःक्षिरेधात्रीफलैःस्मृतम् ॥

नस्यंदत्तंजनयतिकेशाञ्जश्मश्रुणिचाप्यथ ॥ १६ ॥

श्वेतसर्षपकल्केनस्नानंदारुणकापहम् ।

कार्य्योदारुणकमूर्ध्निप्रलेपोमधुसंयुतः ॥ १७ ॥

पियालबीजमधुकैःकुष्ठमिश्रैःससैन्धवैः ।

काञ्जिकस्थान्त्रिसत्ताहंमासादारुणकापहाः ॥ १८ ॥

अर्थ—तेल २ सेर, दूध ८ सेर और कल्ककेलिये मुलेठी और आमला दोनों
५॥ सेर लेकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलका नाम लेनेसे केश और
उमथु उत्पन्न होजातेहैं । सफेद सरसोंको पीसकर शिर्गपर मलकर स्नान करनेमें
या मस्तकपर प्रलेप करनेमें दारुणक रोग दूर होताहै । चिर्गंजीकी जड़,
मुलेठी, कूट और संधानोन यह चारों औषध समानभाग लेकर २१ दिनतक
काँजीमें स्थापन करे, पश्चात् इससे लेप करनेमें एक महीनेमें दारुणकरोग
दूर होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथान्यावपिदारुणकहरयोगौ ।

नागरंगफलत्वग्भिःस्नानंलेपनकन्तथा ॥ १९ ॥

सहनीलोत्पलकेशवयष्टीमधुतिलैःसदृशामलकम् ।

चिरजातमपिशिर्षेदारुणरोगंशमंनयति ॥ २० ॥

अर्थ—नारंगीके छिलकेको पीसकर स्नान करनेसे अथवा मस्तकमें प्रलेप करनेसे शीघ्रही दारुणक रोग नष्ट होताहै । नीलोत्पल, पुन्नागपुष्प, मुलेठी और तिल प्रत्येक एक १ भाग और आमला ४चारभाग लेकर सबको एकत्र पीसकर मस्तकपै प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंका दारुणक रोग दूर होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ चित्रकादितैलम् ।

चित्रकंदन्तिमूलंचकोपःतकिसमन्वितम् ।

कल्कपिष्ट्वापचेतैलंकेशशत्रुविनाशनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—तेल २ सेर, जल ८ सेर और चीता, दन्तीकी जड़, तथा कड़वी तारुई यह सब आध ॥ सेर ले यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको शिरमें मर्दन करनेसे दारुणक रोग दूर होताहै ॥ २१ ॥

अथ गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जाफलैःशृतंतैलंभृङ्गराजरसेनतु ।

कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ २२ ॥

अर्थ—तेल २ सेर, भांगरेका रस ८ सेर, तथा कल्ककेलिये चौंटलीकी जड़ ॥ सेर ले, यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । यह तेल कण्डू, दारुणक और कपाल कुष्ठको नष्ट करैहै ॥ २२ ॥

अथ भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गराजस्त्रिफलोत्पलशारिवलौहपुरीषसमन्वितकारि ।

तैलमिदंपचदारुणहारिकुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ २३ ॥

अर्थ—तिलकातेल दो सेर, भांगरेका रस आठसेर और कल्ककेलिये हरड़, बहेडा, आमला, नीलेकमल, अनन्तमूल, लोहेकामल और आमकी गुठली यह सब आध ॥ सेर ले, यथाविधिसे तेलको सिद्ध कर शरीरपै मर्दन करनेसे केश सघन, कुञ्चित और दृढ़ होजातेहैं ॥ २३ ॥

अथ हरिद्राद्यंतैलम् ।

हरिद्राद्यभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः ।

एतत्तैलमरुपीणांसिद्धमभ्यंजनेहितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तेल दोसेर, जल ८ सेर और कल्कके लिये हलदी, दारुहलदी, चीता, हगड, बहेडा, आमला, नीमकी छाल और लालचंदन यह सब ॥ आधसेर ले, यथाविधिसे तैलको सिद्ध करें । यह तेल निश्चय अरुपिका रोगको नष्ट करेगा ॥ २४ ॥

अथ वंशतैलम् ।

कटुतैलमरुपिग्रंमूत्रेवंशफलैःस्मृतम् ॥ २५ ॥

अर्थ—कडवातेल २ दोसेर, गोमूत्र ८ आठसेर और कल्कके लिये बांसके फल कुटेहुए चावल ॥ आधसेर ले, यथाविधिसे तैलको सिद्ध कर मस्तकपे मलनेसे अरुपिका रोग दूरहोताहै ॥ २५ ॥

अथ काकमार्चतैलम् ।

काकमाचीरसेसिद्धंकटुतैलंचतुःपलम् ।

मनःशिलासोमराजीबीजसिन्दूरगन्धकैः ॥ २६ ॥

शाणमात्रैस्तदभ्यंगाद्धन्त्यवश्यमरुपिकाम् ।

पामांविचर्चिकाश्चैवतथान्याज्जिह्वारसोत्रणान् ॥ २७ ॥

अर्थ—कडवातेल १ एकसेर, मकोयका रस ४ चार सेर और कल्कके लिये भैनाशिल, वापचीकेबीज, सिन्दूर और गंधक प्रत्येक ६ छे मासे ले, यथाविधिसे तैलको सिद्ध करें, इस तैलको मस्तकादिमें मर्दन करनेसे अरुपिका, पामा, विचर्चिका और शिरोत्रण नष्ट होतेहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ पलितघ्नयोगौ ।

लोहमलामलकरकैःसजवाकुसुमैर्नरःसदास्नायी ।

पलितानीहनपश्यतिगंगास्नायीवपातकानि ॥ २८ ॥

शिरसि लेपं कृत्वा चिरं स्थातव्यम् ।

नवदग्धशंखचूर्णकांजिकसहितंहिसीसकंघृष्ट्वा ।

लेपात्कचानर्कदलानवद्धानंशुभ्रान्करोतिनीलिर्भवान् ॥ २९ ॥

अर्थ—लोहेका मैल, आमला और गुडहरकेफूल, एकत्र पीसकर मस्तकपै प्रलेप कर पश्चात् स्नान करनेसे पलित रोग दूर होताहै । तत्काल जलाया हुआ शंखका चूना और सीसा इनको काँजीमें पीसकर मस्तकपर प्रलेप करे और शिरमें आकके पत्ते बांधले तो धवलबाल नीले होजातेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथाकालपलितघ्नयोगः ।

धात्रीफलंद्वयंपथ्येद्वेतथैकंविभीतकम् ।

लोहचूर्णस्यकर्षन्तुकर्षार्द्धचूतमज्जतः ॥ ३० ॥

पिष्टालौहमयेभाण्डेस्थापयेदुषितंनिशाम् ।

लेपोनिहन्यादचिरादकालपलितमहत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—आमले २, हरड २, बहेडा १, लोहकाचूर्ण दो तोले और आमकी मज्जा १ एक तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस एकलोहेके वासनमें भरके रखदेवे, दूसरे दिन प्रातःकाल मस्तकपै लेप करनेसे अकालमें केशोंका पकना दूर होजाताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथ धात्रीफलादियोगः ।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तंलौहचूर्णंविनिःक्षिपेत् ।

ईषत्पक्वेनारिकेलेभृंगराजरसान्विते ॥ ३२ ॥

मासकन्तुविनिःक्षिप्यसम्यग्दत्त्वासमुद्धरेत् ।

ततःशिरोमुण्डयित्वालेपंदत्त्वाभिषग्वरः ॥ ३३ ॥

संवैष्ट्यकदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमेदिने ।

क्षालयेत्त्रिफलाक्वाथैःक्षीरमांसरसाशिनः ।

अकालपलितस्यैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—त्रिफलेका चूर्ण और लोहेकाचूर्ण दोनोंको एकत्र भांगरेके रसमें मिलाकर एक नारियलके भीतर भरके एक महीनेतक रक्खा रहने देवे, पश्चात् शिरको मुंडवाकर लेप करे और केलेके पत्तोंको शिरपै बाँध देवे, फिर सातदिनमें खोले और त्रिफलेके क्वाथसे शिरको धोवे । दूध और मांसके साथ अन्नका भोजन करे तो अकालमें बालोंका सफेद होजाना दूर होजाताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथौण्डपुष्पनस्यम् ।

ओंडूत्सुमस्वरसोमधुतुल्योनस्यतःपलितम् ।

योगशतैरप्यजितंमासाज्जयतिनाश्चर्यम् ॥ ३५ ॥

अर्थ-गुडहरके फूलोंका स्वरस, सहतमें मिलाकर नासलेनेसे १ एक महीने-
मही अकालमें वालोंका पकजाना दूरहोकर केश कृष्णवर्ण होजातेहैं ॥ ३५ ॥

अथ चन्दनादितैलम् ।

चन्दनंमधुकंमूर्वात्रिफलानीलमुत्पलम् ।

कान्तावटावरोहश्चगुडूर्चीविषमेवच ॥ ३६ ॥

लौहचूर्णतथाकेशीशारिवेद्रेतथैवच ।

मार्कवस्वरसेनैवतैलमृद्रग्निनापचेत् ॥ ३७ ॥

शिरस्युत्पतिताःकेशाजायन्तेयेनकुंचिताः ।

दृढमूलामूलान्वाश्वतथाभ्रमरसन्निभाः ॥

नस्येनाकालपलितंनिहत्यात्तैलमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-तिलका तेल २ दो सेर, भांगरेका स्वरस ८ आठसेर, तथा कल्कके-
लिये लालचंदन, मुलेठी, मूर्वा, आमला, हरड, बहेडा, नीलेकमल, फूलप्रियंगु,
वटांकुर, गिलोय, मृणाल, जारण करके पुटसे पकाया हुवा लोहा, भूकेशी,
अनन्तमूल और करिया वासाऊ, यह सब औषधि ५॥ आधसेर ले यथाविधिसे
तेलको मिद्ध करे, इस तेलको शिरमें मलनेसे बाल कुंचित, दृढमूल और भौंरेकी
समान कृष्णवर्ण होजातेहैं, इस तेलसे नासलेनेसे, अकालमें उत्पन्न हुवा पलित
रोग दूर होजाताहै ॥ ३६-३८ ॥

अथ नीलविन्दुतैलम् ।

अंजनंमधुकंकृष्णतार्क्षजंशारिवोत्पलम् ।

त्रिफलानीलिकापत्रंकाशीशंमुस्तकंतिलाः ॥ ३९ ॥

आम्रास्थितालपत्रंचफलंपिण्डीतकस्यच ।

जम्बवाम्राजुनपत्राणिकूर्मपित्तंसतुत्थकम् ॥ ४० ॥

भूकेशःशिशपाश्चैवमार्कवंसत्रिकण्टकम् ।

पृथक्कर्पसमान्भागान्तथालौहरजःसमम् ॥ ४१ ॥

तैलप्रस्थमजाक्षीरंधात्रीभृंगरसाढकम् ।
 पक्वन्तुलौहभाण्डस्थंशिरसोऽभ्यङ्गनस्ययोः ॥ ४२ ॥
 यत्नेनयोजयेत्तैलंवराङ्गेविनिपातयेत् ।
 पतन्तिविन्दवोयत्रकृष्णत्वमुपजायते ॥ ४३ ॥
 भवन्तिकुटिलाःशीघ्रंकेशाःषट्पदकोपमाः ।
 खालित्यंपलितंवैवइन्द्रलुप्तञ्चनाशयेत् ॥ ४४ ॥
 मेध्यंमंगल्यमाथुष्यंबलवर्णकरंशिवम् ।
 नीलविन्दुरितिख्यातंविश्वामित्रेणपूजितम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—तेल २ दोसेर, वकरीका दूध, आमलोंका रस और भांगरेका रस यह तीनों मिले हुए ४ चारसेर और कल्कके लिये कालासुरमा, मुलेठी, सफेद सुरमा, अनन्तमूल, कमल, हरड, बहेडा, आमला, नीलके पत्ते, हीराकसीस, नागरमोथा, तिल, आमलेकी गुठली, ताड़के पत्र, मैनाफल, जामुनकेपत्ते, आम-केपत्ते, अर्जुनकेपत्ते, कटुएकापित्त, तूतिया, भूकेशी, सीसमकी छाल, भांगरा और गोखरू प्रत्येक दो दो तोले तथा लोहेका चूर्ण २ दो तोले और अर्जुनकी छालका काथ ४ चारसेर ले यथाविधिसे लोहेके वासनमें तेलको सिद्ध करे। इस तेलका नासदेवे या शिरमें मर्दनकरे। इस तेलके विन्दु शिरपै डालनेसे शीघ्रही कुटिलकेश भौरके समान कृष्णवर्ण होजातेहैं। तथा खालित्यरोग, पलितरोग और इन्द्रलुप्तरोग दूर होताहै। यह तेल—मेधाको बढ़ावेहै, मंगलदायक है अवस्थाको स्थापन करेहै, बल और वर्णको बढ़ावेहै। इसको नीलविन्दु तेल कहतेहैं ॥ ३९-४५ ॥

अथ बृहद्भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गराजरसेकंसकेशराजरसेतथा ।
 त्रिफलायारसेकंसेक्षीरकंसेसुसाधितम् ॥ ४६ ॥
 कंसंचतिलतैलस्यलौहपात्रेत्तुपाकवित् ।
 कल्कंमृणालशालूकमंजिष्ठापीतशालकम् ॥ ४७ ॥
 नीलिकापद्मबीजञ्चशटीमुस्तंपुनर्नवा ।
 वरावाट्यालकंकेशीकेशराजंसकेशरम् ॥ ४८ ॥

मण्डूरंचाम्रबीजश्चश्यामानन्ताप्रियंगुका ।
 पाकलंमधुकंझिण्टादेवदारुसपन्नकम् ॥ ४९ ॥
 द्वीवेरंचन्दनंपत्रमेथीमधुरिकावरी ।
 न्यग्रोधोरोचनातुत्थंमाहेन्द्रीकेतकीकेशी ॥ ५० ॥
 उत्पलंचौण्ड्रपुष्पंचनीलीलताक्षवीजकम् ।
 रास्नाचगैरिकंदावीपुण्डरीकरसाञ्जनम् ॥ ५१ ॥
 जीवनीयगणोलाक्षाश्रीखंडंभद्रमुस्तकम् ।
 त्वक्पत्रंवावुपामूलंकृष्णागुरुचलोध्रकम् ॥ ५२ ॥
 दत्त्वापलोन्मितैर्भागैःशनैर्मृद्गग्निनापचेत् ।
 शिरोमध्यगतात्रोगात्रेत्ररोगांश्चसर्वशः ॥ ५३ ॥
 हन्तिवातश्चपित्तंपलितश्चकालसंभवम् ।
 खालित्यमिन्द्रलुप्तश्चहन्यादेतन्नसंशयः ॥ ५४ ॥
 कचान्नीलतरान्कुर्यात्सुस्निग्धान्कुटिलांस्तथा ।
 नस्याभ्यंजनपानेचतैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥ ५५ ॥
 यत्रतैलरसस्यास्यपतन्तिविन्दवःशुभाः ।
 तत्रकेशाःप्रजायन्तेनृणांपाणितलेष्वपि ॥ ५६ ॥
 अजातेकेशेमस्तेचजातेनष्टेचवापुनः ।
 तत्रोपजायतेकेशोहन्तिदारुणकंतथा ॥ ५७ ॥

अर्थ—तिलकातेल आठमेर, भांगरेका रस ८ आठमेर, कुकुरभांगरेका रस ८ आठमेर, त्रिफलेका काथ ८ आठमेर, गायका दूध ८ आठमेर और कल्कके लिये कमलकी नाल, कमलकी जड़, मँजीठ पियासाल, नील कमलगट्टा, कचूर, नागर्मोथा, पुनर्नवा, हर्द, बहेडा, आमला, भूत्केशी, खिरंटी, कुकुरभांगरा, नागकेशर, मण्डूर, आमके बीज, करियावामाऊ, गौरियावामाऊ, फूडप्रियंगु, कूट, मुल्लठी, पियावामा, देवदारु, पद्माख, सुगंधवाला, लालचंदन, तेजपान, मेथी, साँफ, शतावर, वडके अंकुर, गोरोंचन, तृनिया, बडीइन्द्रायण, केतकी, मांसरोहिणी, उत्पल, जवाकेफूट, नीली, बहेडेके बीज,

रास्ना, गेरू, दारुहलदी, पुण्डेरिया, रसौत, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहठी, मुगवन, मषवन, लाख, लालचंदन, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, पीले केलकी जड, कालीअगर और लोध, प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर यथाविधिसे सबको मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे तेलको पकावे । यह तेल—कुटिल केशोंको नील और चिकने करैहै । इसको नस्य, अभ्यंजन और पान, इनमें प्रयोग करै । यह तेल—शिरोरोग, नेत्ररोग, वातरोग, पित्तरोग, अकालोत्पन्न पलितरोग, खालित्यरोग और इन्द्रक्ष्म रोगको दूर करैहै । इस तेलरूपी रसके जिस जिस स्थलमें बिन्दु गिरतेहैं वही केश उत्पन्न होजातेहैं, यहाँतक कि हथेलीमें भी बाल जमआतेहैं । जिस स्थानमें केश नहीं उत्पन्न हुएहैं और जिन स्थानोंमें उत्पन्न होकर नष्ट होगयेहैं, उन सब स्थानोंमें इस तेलको लगानेसे शीघ्रही केश उत्पन्न होजातेहैं यह तेल दारुणकको भी दूर करैहै ॥ ४६—५७ ॥

अथ यौवनपिडकालेपाः ।

लोध्रनागवलालेपस्तारुण्यपिडकापहः ।

तद्वद्गोरोचनायुक्तंमरिचंमुखलेपनात् ॥ ५८ ॥

सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्वप्रलेपनम् ।

वरण्डश्चनिहन्त्याशुपिडकांयौवनोद्भवाम् ॥ ५९ ॥

व्यंगेषुचार्जुनत्वचामंजिष्ठावासमाक्षिका ।

लेपःसनवनीतावाश्वेताश्वखुरजामसी ॥ ६० ॥

श्वेताश्वखुरदग्धनवनीतेनसमलेपः ।

अर्थ—लोध और गंगेरनको पीसकर प्रलेप करनेसे मुखके मुहासे दूर होजातेहैं गोरोचन और कालीमिरच, दोनोको एकत्र पीसकर अथवा सफेद सरसों, बच, लोध और सैंधानोन, इनको एकत्र पीसके लेप करनेसे मुखके मुहासे दूर होजातेहैं अर्जुनकी छालको अथवा भँजीठको सहतमें पीसके या सफेद रंगके घोडेके खुरको अग्निमें जला स्याही बना नौनीमें मिलाकर लेप करनेसे व्यंग रोग दूर होताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अथ व्यंगरोगहरयोगाः ।

रक्तचंदनमंजिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियंगवः ।

वटाङ्कुरामसूराश्चव्यंगघ्नामुखकान्तिदाः ॥ ६१ ॥

व्यस्तसमस्तेन ।

मधुनादाडिमाद्र्द्वग्लेपोव्यंगविनाशनः ॥

व्यंगजिद्वरुणत्वग्वाछागदुग्धप्रपेपिता ॥ ६२ ॥

अर्थ—लालचंदन, मँजीठ, कूठ, लोध, फूलप्रियंगु, वड़के अंकुर और मसूर इन सबको एकत्र पीसकर अथवा प्रत्येकको अलग अलग पीसकर प्रलेप करनेसे व्यंगरोग नष्ट होकर मुखकी कांति बढ़तीहै । सहत, अनारकी छाल, अदरख और दालचीनी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे व्यंगरोग दूर होताहै । बरनेकी छालको बकरीके दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे भी व्यंगरोग दूर होताहै ६१॥६२

अथ व्यंगादिरोगघ्नयोगाः ।

केवलान्पयसापिष्ट्वातीक्ष्णाञ्ज्जालमलिकंटकान् ।

आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ ६३ ॥

श्वेतं पुनर्नवामूलं सर्पाक्षीमूलसंयुतम् ।

उद्धर्तनं हरेत्स्त्रीणामक्षिच्छायाश्च दुःसहाः ॥ ६४ ॥

महिषीक्षीरसंपिष्टमंजनं रक्तचंदनम् ।

कृतोलेपो निहन्त्याशु मक्षिकागण्डयोः स्थिताम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—केवल तीक्ष्ण सेमलके कांटोंको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे तीन दिनमें ही व्यंग (झाई) रोग नष्ट होकर मुख कमलके समान सुंदर होजाताहै । सफेद पुनर्नवाकी जड़ और सर्पाक्षीकी जड़को एकत्र पीसकर उद्धर्तन करनेसे स्त्रियोंकी अक्षिच्छाया दूर होजातीहै । रसात और लालचंदन भस्मके दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे गण्डस्थित मक्षिकागण्ड दूर होजाताहै ॥ ६३-६५ ॥

अथ मक्षिकादिचिकित्सा ।

मनःशिला तथा लोध्रं द्विनिशासर्पपाः समम् ।

वारिपिष्टो हितोलेपो वदनैर्मक्षिकां हरेत् ॥ ६६ ॥

माक्षिकं तालकं तु त्थं राजावर्तशिलाजतु ।

महिषाक्षंसर्वतुल्यंपेषयेन्महिषीपयैः ॥ ६७ ॥
 सप्ताहंमर्दयेद्ग्राह्यं व्यंगघ्नकान्तिवर्द्धनम् ।
 महिषीक्षीरमथितमेतदुद्धर्तनंहितम् ॥ ६८ ॥
 मुखवर्णकरंस्त्रीणांतिलकालंचनाशयेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ—मैनशिल, लोध, हलदी, दारुहलदी और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर मुखपै प्रलेप करनेसे मक्षिका नामक काले रंगके दाग दूर होकर मुख उज्ज्वल कान्तियुक्त होजाताहै। सोनामाखी, हरिताल, तूतिया, राजावर्त (रेवटी) शिलाजीत और भैंसिया गूगुल यह सब औषधि समानभाग ले एकत्र भैंसके दूधमें पीसके मुखपै प्रलेप करनेसे एक सप्ताहमें व्यंग दूर होकर मुख कान्तियुक्त होजाताहै । भैंसकी नौनीको मुखपै मलनेसे स्त्रियोंके मुखकी कान्ति बढ़तीहै ॥ ६६-६९ ॥

अथ प्रथममंजिष्ठाद्यंतैलम् ।

चतुर्गुणंगवांक्षीरंक्षीरार्द्धंतिलतैलकम् ।
 मंजिष्ठाद्विनिशालोध्रतुवरीतालकंशिला ॥ ७० ॥
 लाक्षागोरोचनाकुष्ठंतथाचकुंकुमद्रयम् ।
 गैरिकंशिखितुत्थञ्चवटवृक्षस्यपत्रकम् ॥ ७१ ॥
 नागकेशरकालीयपद्मबीजञ्चकेशरम् ।
 पारदंगंधकपत्रंत्वचञ्चप्रतिकार्पिकम् ॥ ७२ ॥
 सर्वपाच्यंतैलशेषंभ्रक्षणान्मक्षिकापहम् ।
 वदनञ्चेन्दुतुल्यंस्यात्सप्तरात्रान्नसंशयः ॥ ७३ ॥

अर्थ—तिलका तेल २ दो सेर, गायका दूध आठ ८ सेर और कल्कके लिये मँजीठ, हलदी, दारुहलदी, दोनो प्रकारकी केशर, गेरू, तूतिया, बड़के पत्ते, नागकेशर, कलम्बक, कमलगट्टा और कमलकेशर, पारा, गंधक, तेजपात और दालचीनी प्रत्येक दोतोले लेकर यथाविधिसे तेलको तय्यार कर मुखपै मालिश करनेसे ७ सात रात्रिमेंही मुखगत मक्षिका रोग नष्ट होकर मुखचंद्रमाके समान शोभायमान होजाताहै ॥ ७०-७३ ॥

अथ द्वितीयमंजिष्ठाद्यतैलम् ।

मधुयष्टीपलेवारांद्रात्रिंशच्चपलानिवै ।

पादशेषोभवेत्काथोक्ताथांशंतिलतैलकम् ॥ ७४ ॥

पुनर्मरिचमंजिष्टेप्रत्येकंचपलार्द्धकम् ।

तैलशेषंपचेत्सर्वलेपोऽयंमुखवर्णकृत् ॥ ७५ ॥

अर्थ—मुलैठी ८ आठ तोले जल वत्तीस ३२ पल, शेष १ सेर, तिलकातेल ८ आठ तोले और कल्कके लिये काली मिरच २ दो तोले और मँजीठ २ दो तोले लेकर यथाविधिसे तेलको पकावे. जब तेल शेष रहजाय तब उतारलेवे । इस तेलको मुखपर मलनेसे व्यंगरोगादि नष्ट होकर मुख उज्ज्वल होजाता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अथ तृतीयमंजिष्ठाद्यतैलम् ।

मंजिष्ठामधुकंलाशामातुलुंगंसयष्टिकम् ।

कर्पप्रमाणैरेतैस्तुतैलस्यकुडवंपचेत् ॥ ७६ ॥

अजाक्षीरञ्चद्विगुणंशनैर्मृद्रग्निनापचेत् ॥

नीलिकापिडकाव्यंगानभ्यंगादेवनाशयेत् ॥ ७७ ॥

मुखंप्रसन्नोपचितंवलीपलितवर्जितम् ।

सप्तरात्रप्रयोगेणमुखंस्यात्कांचनप्रभम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—तिलका तेल ५॥आधसेर, वकरीका दूध एकसेर और मँजीठ, मुलैठी, लाख, विर्जागनीत्र और महुवा, प्रत्येक दो दो तोले लेवे, सबको मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको मुखादिमें मर्दन करनेसे नीलिका, पिडका, व्यंगदि मुखदूषितरोग सात दिनमें नष्ट होजातेहैं । मुखमंडल उज्ज्वल और कांचनके तुल्य दीप्तिमान् होजाताहै और बलीपलितादि रोग दूर होजातेहैं ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ कुंकुमाद्यतैलम् ।

कुंकुमंकिंशुकंलाशामंजिष्टारक्तचंदनम् ।

कालीयकंपद्मकञ्चमातुलुंगस्यकेशरम् ॥ ७९ ॥

कुसुम्भंमधुयष्टीचफलिनीमदयन्तिका ।

निशिगोरोचनापद्ममुत्पलञ्चमनःशिला ॥ ८० ॥

काकोल्यादिसमायुक्तैरैरक्षसमैर्भिषक् ।

लाक्षारसपयोभ्याञ्चतैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ८१ ॥

कुंकुमाद्यमिदन्तैलमभ्यंगात्कांचनोपमम् ।

करोतिवदनंसद्यःपुष्टिलावण्यकान्तिदम् ॥ ८२ ॥

सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ८३ ॥

अर्थ—तिलकातेल २ दो सेर, लाखका काथ २ दोसेर, गायका दूध २ दो सेर, जल आठ ८ सेर और कल्कके लिये सर, ढाककेबीज, लाख, मैजीठ, लालचंदन, कलम्बक, पद्माख, विजोरे नीबूकी केशर, कुसुमके बीज, मुलेठी, फूलप्रियंगु, मोतियाकेफूल, हलदी, दारुहलदी, मैनशिल, गोगेचन, कमल, कुमुद, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि प्रत्येक दो दो तोले लेकर, यथाविधिसे तैलको सिद्ध करें। इस तेलको मुखपै मलनेसे तत्कालही मुख कांचनके समान होजाताहै। यह तेल पुष्टि, लावण्य, कान्ति, सौभाग्य और लक्ष्मीको देवैहै। तथा उत्तम वशीकरण है ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ गुदनिर्गमनिवृत्त्युपायः ।

कोमलंपद्मिनीपत्रंयःखादेच्छर्करान्वितम् ।

एतन्निश्चित्यनिर्दिष्टंनतस्यगुदनिर्गमः ॥ ८४ ॥

वृक्षाम्लकंचचांगेरीशुण्ठीपाठायवाग्रजम् ।

तक्रेणशीलयेत्पायुभ्रंशार्तानलदीपनम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—कमलके कोमल पत्तांको बूराके साथ सेवन करनेसे काँच निकलनी बंद होजातीहै। विषाविल, चांगेरी, सोंठ, पान और जवाखार. इन सबको तक्रमें पीसके सेवन करनेसे गुदभ्रंश गेगवाले मनुष्यकी अग्नि दीपन होजातीहै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ चांगेरीवृतम् ।

चांगेरीकोलदध्यम्लयवक्षारसमायुतम् ।

वृतमुत्कथितंदेयंगुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ८६ ॥

बदरस्य काथः । दधिचांगेर्याः स्वरसः ।

अर्थ—गायका घी दोसेर, चांगेरीका रस २ दोसेर, बेरोंका काथ २ दोसेर खटादही २ दोसेर और जवाखार ५॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे तेलको पकावे । इस तेलको मर्दन करनेसे गुदभ्रंश दूरहोताहै ॥ ८६ ॥

अथ मूषिकादितैलम् ।

मूषिकामांसकुडवंदशमूलंपलोन्मितम् ।

चित्रकंद्रिपलंचात्रकाथश्चाष्टगुणेऽम्भसि ॥ ८७ ॥

पादावशेषंकर्तव्यतैलपाच्यंपयःसमम् ।

जीवनीयैस्तुतत्पादैःपचेन्मृद्वग्निनाभिषक् ॥ ८८ ॥

अभ्यंगात्राशयत्याशुगुदभ्रंशंसुदारुणम् ।

भगंदरंगुदेशूलंनाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ८९ ॥

इति क्षुद्ररोगाध्यायः ।

अर्थ—तिलका तेल ४ चारसेर, गायकादूध ४ चारसेर, कल्कके लिये चूहेका मांस ५॥ आधमेर, दशमूलकी औषधि प्रत्येक एक एक पल, चीना दो २ पल, जल १२८ एकमाँ अट्राईस पल और कल्कके लिये जीवनीय गण १ एक सेर ले, यथाविधिसे तेलको मिद्ध करे । इस तेलको गुह्यदेशमें मर्दन करनेमें दारुण गुदभ्रंश, भगन्दर, गुदशूल, नाडीव्रण और दुष्टव्रण नष्ट होजातेहैं ॥ ८७-८९॥

इति क्षुद्ररोगाध्यायः ।

अथ मुखरोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौसामान्ययन्त्राः ।

मुखदन्तमूलगलजाःप्रायोरोगाःकफास्रभूयिष्ठाः ।

तस्मात्तेपामसकृद्रक्तंविस्त्रापयेदुष्टम् ॥ १ ॥

शुद्धिर्नस्यंकवडाःकटुतिक्ताःकफरक्तहरंकर्म ।

यवतृणधान्ययुक्तंरूक्षैर्यूपादिकंहितंतेषु ॥ २ ॥

अर्थ—मुखरोग, मसूदेरोग और गलरोग, यह सब प्रायः कफ और रक्तजन्य होतेहैं, इस कारण इन सब रोगोंमें बारंबार दुष्ट रुधिरको निकलवाना चाहिये और वमन, विरेचन, नस्य, कटु और तिक्त द्रव्योंका कवल तथा कफ और दूषित रक्त नाशक क्रिया करनी चाहिये । उक्तरोगोंमें यव और तृणधान्योंका भोजन रूक्षद्रव्योंके यूपादिके साथ पथ्य है ॥ १ ॥ २ ॥

अथौष्ठस्फुटनादिविकित्सा ।

ओष्ठप्रकोपेवातोत्थेशाल्वनेनोपनाहयेत् ।

मस्तिष्केचैवनस्येचतैलंवातहरंस्मृतम् ॥ ३ ॥

श्रीवेष्टकंसर्जरसंगुग्गुलुंसुरदारुच ।

यष्टीमधुकचूर्णञ्चविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ ४ ॥

त्रिकटुःसर्जिकाक्षारःक्षारश्चयवशूकजः ।

क्षौद्रयुक्तंविधातव्यंएतच्चप्रतिसारणम् ॥ ५ ॥

प्रियंगुत्रिफलालोभ्रंसक्षौद्रंप्रतिसारणम् ।

हितंचत्रिफलाचूर्णमधुयुक्तंप्रलेपनम् ॥ ६ ॥

तैलाक्तंसर्जचूर्णंचजलधौतमनेकधा ।

लेपतःशतशोदष्टमोष्ठस्फुटननाशनम् ॥ ७ ॥

अर्थ—वातजन्य ओष्ठप्रकोपमें शाल्वनस्वेदका प्रयोगकरे, और मस्तिष्करोगमें नासके लिये वातनाशक तेल प्रयोग करने चाहिये । श्रीवेष्टक, राल, गुग्गुलु, देवदारु और मुलेठी इन सब औषधोंका चूर्णकर प्रतिसारण करनेसे, अथवा मोंट, मिरच, पीपल, सजी और जवाखार इनको एकत्र पीस सहतमें मिलाके प्रतिसारण करनेसे या फूलप्रियंगु, हरड, वहेडा, आमला और लोध इनको भल प्रकारसे पीस सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करनेसे अथवा त्रिफलेके चूर्णको सहतमें मिलाकर प्रलेप करनेसे या सजीको बारंबार जलमें धोकर तेलमें मिलोके लेप करनेसे ओष्ठस्फुटन दूर होजाताह ॥ ३-७ ॥

अथ शीतादप्रशमनार्थमुपायाः ।

काशीशलोभ्रकृष्णामनःशिलालप्रियंगुचव्योत्थम् ।

चूर्णमधुसंयुक्तंशीतादेपूतिमांसहरम् ॥ ८ ॥

कुष्ठंदार्वीलोभ्रमब्दंसमंगापाठातिक्तातेजनीपीडिकाच ।

चूर्णंशस्तंघर्षणंतद्विजानारक्तस्त्रावंहन्तिकण्डूरुजञ्च ॥ ९ ॥

प्रपौण्डरीकमधुकंत्रिफलोत्पलसाधितम् ।

तैलघृतंवानस्येनशीतादंप्रशमनयेत् ॥ १० ॥

अर्थ—कसीस, लोध, पीपल, मैनाशिल, हरिताल, फूलप्रियंगु और चव्य, इन सब औषधियोंका चूर्ण सहतमें मिलाकर शीतादरोगमें देनेसे पूतिमांस दूरहोताहै । कूठ, दारुहलदी, लोध, नागरमोथा, मैजीठ, पाढ कुटकी, चव्य, और असवरग, इनके चूर्णसे मसूढोंको घिसनेसे मसूढोंमेंसे रुधिरका निकलना, कण्डू, और पीड़ा दूर होजातीहै । पुण्डरिया, मुलेठी, त्रिफला, और कमलके साथ सिद्ध किये तेल या घीसे नास देनेसे शीतादरोग दूर होता-
हे ॥ ८-१० ॥

अथ दन्तपुष्पुटकादिचिकित्सा ।

दन्तपुष्पुटकेकार्यतरुणेरक्तमोक्षणम् ।

सपंचलवणक्षारंसक्षौद्रंप्रतिसारणम् ॥ ११ ॥

विस्त्रावितेदन्तवेष्टेव्रणन्तुप्रतिसारयेत् ।

शस्त्रेणदन्तवैदर्भेदन्तमूलानिशोधयेत् ॥ १२ ॥

ततःक्षीरंप्रयुंजीतक्रियाःसर्वाश्चशीतलः ।

तैलमधुककाकोलीशर्करासाधितंहितम् ॥ १३ ॥

विद्रव्यौकटुतिक्तोष्णरूक्षैःकवललेपनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—नवीनदन्तपुष्पुट रोगमें रक्तमोक्षण (फस्त) कगना हितकारीहै । पांचांनोन और जवाखारको सहतमें मिलाकर दन्तवेष्ट रोगमें रक्तमोक्षण कराकर पश्चात् प्रतिसारणके द्वारा व्रण नष्ट करें । दन्तवैदर्भ रोगमें दन्तमूलोंको शुद्ध करके पश्चात् दूध और सर्व प्रकारकी शीतल क्रियाकरे । मुलेठी, काकोली और खांडक द्वारा सिद्ध किये हुए तेलमें भी दन्तवैदर्भ रोग दूर होताहै । कटु, तिक्त, रूक्ष और ऋण द्रव्योंसे कवल और लेपनके द्वारा दन्त-विद्रव्य रोगकी चिकित्सा कर्नी चाहिये ॥ ११-१४ ॥

अथ दन्तचालचिकित्सा ।

चलदन्तस्थिरकरंकार्यबकुलचर्वणम् ।

दन्तचालेहितंश्रेष्ठंतिलोग्राचर्वणंहितम् ॥ १५ ॥

दन्तकालेतुगण्डूपोबकुलत्वक्कृतोहितः ।

काथोवादशमूलस्यसस्नेहःकवलग्रहः ॥ १६ ॥

भद्रमुस्ताःप्राव्योषविडंगारिष्टपल्लवैः ।

गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकांछायाशुष्कांप्रकल्पयेत् ।

तानिधायमुखेदद्यादन्तचालंजयेद्ध्रुवम् ॥ १७ ॥

अर्थ—मौलसिरीकी छालको चावनेसे चलदन्त रोग (दांतोंकाहिलना) स्थिर होजाताहै । तिल, और वच दोनोको मिलाकर चावनेसे अथवा मौल-सिरीके रसके द्वारा कवल धागण करनेसे या दशमूलके काथको घृत या तेलके साथ कुल्ले करनेसे, या नागरमोथा, हरड़, साठ, भिरच, पीपल, वायविडंग और नीमके पत्ते इन सब औषधियोंको पीस गोलीबना छायामें सुखाकर मुखमें धारण करनेसे हिलतेहुए दांत स्थिर होजातेहैं ॥ १५-१७ ॥

अथ सहाचरतैलम् ।

तुलाघृतांनीलसहाचरस्यद्रोणेऽम्भसःसंस्वणंयथावत् ।

कृत्वाचतुर्भागरसेचतैलंपचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥ १८ ॥

कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेदाजम्बवाप्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।

तत्तैलमाश्वेवघृतंमुखेनस्थैर्यद्रिजानांविदधातिसद्यः १९॥

अर्थ—तिलकातेल २ दो सेर, काथके लिये कटसरैया ६। सवाछे सेर, जल ३२ वत्तीस सेर, शेष ८ आठसेर और कल्कके लिये अनन्तमूल, खैर, दुर्गंध खैर, जामुन, आम, मुल्लंठी और कमल ५॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे तैलको सिद्धकर मुखमें धारण करनेसे चलदन्त स्थिर होजातेहैं ॥ १८॥ १९॥

अथ बकुलाद्यंतैलम् ।

बकुलस्यफलंलोध्रंवज्रवल्लीकुरुण्टकम् ।

चतुरंगुलबघोलंवाजिकर्णोविनाशनम् ॥ २० ॥

एषांपकायकल्काभ्यांतैलपक्वंमुखेधृतम् ।

स्थैर्यकरोतिदन्तानांचलतांपवनेनच ॥ २१ ॥

अर्थ—तिलका तेल २ दो सेर, जल वत्तीस सेर, काथके लिये मौलसिरीके फल, लोध, वज्रवल्ली, कटसरैया, अरण्ड, बबूर और पियासाल यह सब ५६। सवाछेसेर, शेष ८ आठसेर और कल्कके लियेभी येही सब औषधि ५॥ आध-सेर लेकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करै । इस तैलको मुखमें धागण करनेसे वायुजन्य चलदन्त स्थिर होजातेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ कृमिदन्तकचिकित्सा ।

बृहत्यास्तुफलं पिष्ट्वा सर्पिपासहृदापयेत् ।

अस्य धूमो मुखेनैव धार्यो दन्तरुजापहः ॥ २२ ॥

नीलीवायसजं घास्तु वज्रीणां मूलमेकैकम् ।

संचर्व्य दशनविधृतं दशनकृमिपातनंसद्यः ॥ २३ ॥

दन्तमूलकृमिहरं वासामूलस्य चर्वणम् ।

बीजपूरकमूलन्तुवागुजीबीजसंयुतम् ॥ २४ ॥

वर्तीकृतं दन्तदत्तं कृमिदन्तकनाशनम् ।

सुहार्कयोर्वा दुग्धेन दन्तच्छिद्रप्रपूरणम् ॥ २५ ॥

फलान्यम्लानि शीताम्बुरुक्षान्नं दन्तधावनम् ।

तथा तिकठिनान्भक्ष्यान् दन्तगोमीविवर्जयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—कटाईके फलोंको घृतमें पीसकर उनका धुआँ मुखमें धारण करनेसे दन्तगत पीडा दूर होजातीहै । नील, या काकजंघा अथवा थूहरकी जड़को चावकर दाँतोंमें धारण करनेसे तत्काल दाँतोंके कीड़े गिर पड़तेहैं । अड़मेकी जड़को चावनेसे दन्तमूलगत कृमि नष्ट होजातेहैं । विजरेकी जड़ और वाप-चीके बीज दोनोंको एकत्र पीस बत्ती बनाके दाँतोंमें रखनेसे कृमिदन्तक रोग दूर होताहै । थूहरका दूध अथवा आकका दूध दाँतोंमें भरनेसेभी कृमिदन्तक रोग नष्ट होताहै । दन्तगोमी अम्लफल, शीतलजल, रुखा अन्न, दर्तान और अत्यन्त कठिन पदार्थोंका भोजन त्याग देवे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथोजिह्वादिचिकित्सा ।

वलाक्याथोमाशिकमैन्धवगृहधूममालतीयुक्तः ।

गण्डूषेणनिहन्यादुपजिह्वांकण्ठशालूञ्च ॥ २७ ॥

वचामतिविपां पाठारास्नांकटुकगेहिणीम् ।

निःक्वाथ्यपिचुमर्दञ्च कवलंतत्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

क्षीरसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशनेहितः ।

मरिचातिविपापाठावचाकुष्ठाम्बुदैस्तथा ॥ २९ ॥

क्षौद्रयुक्तैः ससिन्धुर्त्यैर्गलशुडीं प्रघर्षयेत् ।

उपजिह्वांतथाहन्तिगलशुण्डीमशेषतः ॥

गलशुण्डीहरंतद्वच्छेफालीमूलचर्वणम् ॥ ३० ॥

अर्थ—खिरेटीके काथमें सहत, सेंधानोन, वरकाधुआँ और मालतीके फूलां-का चूर्ण मिलाकर गण्डूप धारण करनेसे उपजिह्विका और कण्ठशालूक रोग दूर होताहै । वच, अतीस, पाद, रास्ना, कुटकी और नीमकीछाल, इनका काथ बना कवल धारण करनेसे उपजिह्विका और कण्ठशालूक रोग दूर होताहै । दूधके साथ मूँगका यूप बनाकर उपजिह्विका और कण्ठशालूक रोगपै पथ्य देवे । कालीमिरच, अतीस, पाद, वच, कूठ और नागरमोथा इन सब औषधियोंका चूर्ण कर सहत और सेंधानोन मिलाकर घिसनेसे गलशुण्डी रोग और उपजिह्वा रोग दूर होताहै । हारसिंगारकी जडको चावनेसे गलशुण्डीरोग दूर होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ रोहिणीचिकित्सा ।

साध्यानांरोहिणीनांचहितंशोणितमोक्षणम् ।

छर्दनधूमपानञ्चगण्डूषोनस्यकर्मच ॥ ३१ ॥

वातिकन्तुगतेरत्तेलवणैःप्रतिसारयेत् ।

काथोबृहत्पंचमूलाद्रण्डूपश्चात्रशस्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—साध्य कण्ठरोहिणी रोगमें रक्तमोक्षण, वमन, धूमपान, गण्डूपधारण और नस्यकर्म प्रयोग करना चाहिये । वातज कण्ठरोहिणी रोगमें प्रथम रक्त-मोक्षण कगकर पश्चात् सेंधानोनके चूर्णके द्वारा प्रतिसारण अथवा बृहत्पंचमूलके काथका गण्डूप धारण करनेसे विशेष लाभ होताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ कालकचूर्णम् ।

गृहधूमयवक्षारःपाठाव्योषरसांजनम् ।

तेजोह्वात्रिफलालौहंचित्रकंचेतिचूर्णितम् ॥ ३३ ॥

सक्षौद्रंधारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।

कालकन्नामतच्चूर्णदन्तस्यगलरोगनुत् ॥ ३४ ॥

तेजोह्वा चक्री । लौहं जारितपुटितम् ।

अर्थ—घरकाधुआँ, जवाखार, पाद, सांठ, मिरच, पीपल, रसौत, चव्य, हरड, बहेडा, आमला, लोहा और चीतेकी जड़ इन सबको एकत्र पीस सहत

मिलाके मुखमें धारण करनेसे दन्तरोग और गलरोग दूर होता है, इसको कालक-
चूर्ण कहते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ पीतकचूर्णम् ।

मनःशिलायवक्षारोहरितालंससैन्धवम् ।

दार्वात्त्वक्चेतितच्चूर्णमाक्षिकेणसमायुतम् ॥ ३५ ॥

मूर्च्छितंघृतमण्डेनकण्ठरोगेषुधारयेत् ।

मुखरोगेषुचश्रेष्ठंपीतकन्नामकीर्तितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—मैनशिल, जवाखार, हगिताल, सेंधानोन और दारुहलदीकी छाल,
यह सब समानभाग ले सहत मिला घृतसे मूर्च्छित कर मुखमें धारण करनेसे
कण्ठरोग और मुखरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथाशेषदन्तरोगचिकित्सा ।

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकौरण्ट्यकुष्ठं वचा ।

शुण्ठीदीप्यहरीतकंसमघृतंचूर्णमुखेधारितम् ॥ ३७ ॥

वातघ्नकृमिकण्डुशूलदलनं सर्वामयघ्नं सकृत् ।

दुर्गन्धादिसमस्तदोषविमलं दन्तश्च वज्रायते ॥ ३८ ॥

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।

यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्चक्राथोहरेत्पाकमुखं नरस्य ३९

ताम्रपात्रेक्षणपाच्यं अभयाचूर्णितं मधु ।

कठिनागुटिकाकार्यादन्तैर्धार्याकृमिहरेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—चमेलीके पत्ते, पुनर्नवा, तिल, पीपल, पियावाँसा, कूठ, वच, सांठ,
अजवायन और हरड यह सब द्रव्य समानभाग लेकर मुखमें धारण करनेसे
वात, कृमि, कण्डू, शूल और दुर्गन्धादि सम्पूर्ण दोष दूर होकर दन्त निर्मल
और वज्रके समान दृढ़ होजाते हैं । सतोंकी छाल खश, पटोल, नागरमोथा,
हरड, कुटकी, धमलतास और लालचंदनका काथ बनाकर पीनेसे मुखपाक
रोग दूर होजाता है । हरडका चूर्ण और सहत दोनोको ताँबेके वासनमें मंद
अग्निसे पकाकर शक्त गोली बनाकर दाँतोंमें रखनेसे दाँतोंके कीड़े गिर-
जाते हैं ॥ ३७—४० ॥

अथ कृमिशूलादिचिकित्सा ।

कौशिकं हिंशुसौराष्ट्रीपिष्टाचैव समंजलैः ।

गुटिकां धारयेदन्ते कृमिशूलहरं परम् ॥ ४१ ॥

यवचिञ्चाजया पुंखामूलं वा चूर्णमाहरेत् ।

चलदन्तादृढकराः प्रत्येकं दन्तवर्षणात् ॥ ४२ ॥

जातीकुरुण्टपत्रं वा चर्वयेत् प्रातरुत्थितः ।

स्थिराश्च चलिता दन्ता तत्काष्ठदंतधावनात् ॥ ४३ ॥

अर्थ—गुगुल, हींग और सोरठकी मिट्टी समान भाग ले जलमें पीसकर गोली बना दाँतोंमें रखनेसे कृमिशूल रोग नष्ट होता है । शंखिनी, जयन्ती और शरफोंके की जड़, इनमेंसे किसी एकका चूर्ण कर दाँतोंको घिसनेसे हिलते हुए दाँत दृढ होजाते हैं। चमेलीके पत्ते, अथवा पियावाँसेके पत्ते प्रातःकाल उठकर चाबनेसे तथा चमेलीकी लकड़ी या बाँसेकी लकड़ीसे दंतोंन करनेसे चलदन्त स्थिर होजाते हैं ॥ ४१-४३ ॥

अथान्यापिकृमिशूलादिचिकित्सा ।

मुण्डीशुण्ठीवचाकुष्ठं पाठाक्षौद्रविनिश्चितम् ।

गुटिकां धारयेदन्ते कृमिशूलहरा भवेत् ॥ ४४ ॥

त्रिसुतं रौप्यमेकन्तु जम्बीराणां द्वैर्युतम् ।

जम्बीरफलमध्यस्थं वस्त्रे बद्धा त्र्यहंपचेत् ॥ ४५ ॥

क्षारमध्ये समुद्धृत्य गुटिकाभंततः पुनः ।

भावितं भानुदुग्धेन तालकं सूक्ष्ममुण्डितम् ॥ ४६ ॥

तन्मध्ये गुटिकां क्षिप्वा वस्त्रे बद्धा दिनत्रयम् ।

मधुभाण्डगतं पच्यद्बुद्धृत्य चास्यधारितम् ॥ ४७ ॥

चलांश्च गलितान् दन्तान्सप्ताहात् कुरुते दृढम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—गोरखमुण्डी, सोंठ, वच, कूठ और पाठ यह सब औषधि समान भाग ले चूर्ण कर सहत मिलाकर गोली बना दाँतोंमें रखनेसे दन्तगत कृमिशूल नष्ट होजाता है । पारा ३ तीन भाग और रूपा एक १ भाग, दोनोंको एकत्र खरल करै, पश्चात् इसमें जम्बीरीनीबूका रस मिलाकर जम्बीरी नीबूके भीतर रख

वस्त्रसे बांध तीन दिनतक पकावे, पश्चात् खूब वारीक पिसी हुई हरितालको आकके दूधमें भावना दे जवाखारके साथ पूर्वोक्तमें मिलाकर गोली बना उक्त जम्भीरी नीचूमें भर वस्त्रसे बाँध सहतसे भरेहुए भोंडेमें डालकर ३ तीन दिनतक पकावे । इस औषधिको मुखमें धारण करनेसे ७ सात दिनमेंही चलदन्त निश्चल होजातेहैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ गलरोगचिकित्सा ।

पारदंविमलाताप्यंत्रिकटुस्ताम्रसैन्धवम् ।

तुल्यंगवांजलैःपिष्टंमुखोष्णंलेपयेन्मुहुः ॥ ४९ ॥

त्रिदिनात्कण्ठशालूकंगलगंडञ्चनाशयेत् ।

तजोद्वांत्रिफलांलोहंचित्रकंचूर्णयेत्समम् ॥ ५० ॥

सक्षौद्रंलेपयेत्कण्ठंगलरोगप्रशान्तये ।

समंगाधातकीलोध्रश्यामापद्मकरेणुभिः ॥

अवचूर्ण्यपाचनीयंयुञ्ज्याच्चमुखधावनम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—पारा, विमला (सोनामाखीभेद) सोनामाखी, साँठ, मिरच, पीपल, ताँवा और सेंधानोन यह सब औषधि समानभाग लेवे, फिर इनको गोमूत्रमें पीम किंचित् गरम करके बारंबार प्रलेप करनेसे ३ तीन दिनमेंही गलगण्ड और कंठशालूक रोग दूर होताहै । चव्य, हरड, बहेडा, आमला, लोहा, चीता, यह सब औषधि समान भाग ले वारीक चूर्ण करे, पश्चात् इस चूर्णमें सहत मिलाकर कण्ठमें लेप करनेसे गलरोग दूर होताहै । मैजिठ, धायके फूल, लोध, करिया-वासाउ, पद्माख और रेणुका इनका काथ बनाकर अथवा चूर्ण कर तिस काथ या चूर्णसे मुख धोनेसे सर्व प्रकारके गलरोग दूर होजातेहैं ॥ ४९--५१ ॥

अथ पूतिगन्धहरयोगाः ।

वनकुष्ठैलाधान्याकयष्टीमध्वेलवालुकैः ।

वदनस्थंपूतिगंधंहरतिमुरालशुनगंधंच ॥ ५२ ॥

चूर्णैः कवलः ।

कोपफलकुष्ठमरुवकभृंगैर्वर्तिःकृताधृतावक्रे ।

घोरःखपूतिगंधंहत्वाकुरुतेऽतिकमनीयम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—नागरमोथा, कूठ, छोटीइलायची, धनियाँ, मुलँठी और एलुआ, इन सब औषधियोंका कवल धारण करनेसे अथवा कपूरकचरी, लहशुन और

एलुआ इनका चूर्ण कर कवल धारण करनेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर होतीहै ।
जायफल, कूठ, मरुवेके फूल और भांगरा, इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस बत्ती
बनाकर मुखमें धारणकरनेसे मुखकी घोर दुर्गन्ध दूर होजातीहै ॥५२॥५३॥

अथेरिमेदाद्यतैलम् ।

इरिमेदत्वक्पलशतमापोथ्यखण्डशःकृत्वा ।

तोयाढकैश्चतुर्भिर्निःकाथ्यंचतुर्दशाहेन ॥ ५४ ॥

क्वाथेनतेनमतिमांस्तैलस्यार्द्धाढकंपचेत् ।

कल्कैरक्षप्रमाणैर्मज्जिष्ठालोघ्रमधुकानाम् ॥ ५५ ॥

कट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला ।

कर्पूरागुरुपद्मकलवंगकंकोलजातीनाम् ॥ ५६ ॥

फलपत्तंगैरिकवराङ्गजकुसुमधातकीनाम् ।

सिद्धंभिषग्विदध्यादिदंमुखोत्थेषुरोगेषु ॥ ५७ ॥

परिशीर्णदन्तविद्रधिशौषिरशीताददन्तहर्षेषु ।

कृमिदन्तहरणचलितप्रकृष्टमांसावशीर्णेषु ॥ ५८ ॥

मुखादौकुष्ठेकार्यप्रागुक्तेष्वामयेषुतैलमिदम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-तिलका तेल ८ आठसेर, क्वाथके लिये खैर ६। सवाछेसेर, जल
३२ बत्तीस सेर, शेष ८ आठ सेर, इस क्वाथको चौदह दिनमें पकावे, तथा
कल्कके लिये मँजीठ, लोध, मुलेठी, कायफल, लाख, बटांकुर, नागमोथा,
छोटीइलायची, कपूर, अगर, पद्माख, लौंग, कंकोल, जायफल, चमेलीके फूल,
लालचंदन, गेरू, दालचीनी, नागकेशर और धायके फूल, प्रत्येक २ दो तोले ले,
यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे, यह तेल-सर्वप्रकारके मुखरोग, शीर्णदन्त,
दन्तविद्रधि, शौषिर, शीताद, आदि रोगोंको दूर करैहै ॥ ५४-५९ ॥

अथ लाक्षाद्यतैलम् ।

तैलंलाक्षारसंक्षीरंपृथक्प्रस्थेसमंपचेत् ।

चतुर्गुणेरिमेदक्वाथेद्रव्यैश्चपलसम्मितैः ॥ ६० ॥

लोघ्रकट्फलमंजिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः ।

चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलगण्डूषधारणम् ॥ ६१ ॥

दलनदन्तचालश्चदन्तमोक्षकपालिकाम् ।

शीतादंपूतिवक्रत्वमरुचिविरसास्यताम् ॥

हन्यादाशुगदानेतान्कुर्यादन्तानपिस्थिरान् ॥ ६२ ॥

अर्थ—तिलकातेल २ दो सेर, लाखका काथ २ दो सेर, गायका दूध २ सेर, दुर्गन्ध खैरका काथ ८ आठ सेर, तथा कल्के लिये—लोध, कायफल, मँजीठ, कमलकेशर, पद्माख, लालचंदन, कमल और मुलेठी, प्रत्येक ४ चार तोले ले यथाविधिसे तेलको पकाकर गण्डूष धारण करनेसे दालन, दन्तचालन, दन्तमोक्षादि, नाना प्रकारके दंतगत और मुखगत रोग दूर हो जाते हैं ॥ ६०-६२ ॥

अथ सहकारिवटिका ।

एलालतालवलिकाफलशीतकोष-

कोलद्विकानिखदिरस्यकृतेकपाये ।

तुल्यांशकानिदशभागमितेनिधाय

प्रोद्भिन्नकेतकिपुटेचपुटंविपाच्य ॥ ६३ ॥

प्रागंशतुल्यशशिनाभितदेकशस्तं

पिष्ट्वानवेनसहकाररसेनहस्तौ ।

लिप्त्वायथाभिलपितांगुटिकांविदध्या-

स्त्रीपुंसयोर्वदनसौरभवल्गुतास्यात् ॥ ६४ ॥

अर्थ—इलायची, लताकस्तूरी, लवंगफल, कपूर, जायफल, कंकोल और अगर यह सब औषधि समानभाग ले दशगुने खैरके काथमें मिलाकर केतकीपुटमें स्थापन कर पकावे, शीतल होनेपर निकाल लेवे, पश्चात् इसमें पूर्वभागकी समान एकभाग कपूर और एक भाग कस्तूरी मिला लेवे, फिर कलमी आमके रसको हथेली लेपकर पूर्वाक्त औषधिकी गोलियें बनालेवे । इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे स्त्री पुरुष दोनोंका मुखमण्डल सुगंधित और कमनीय होजाताहै ॥ ६३॥६४ ॥

अथ स्वल्पखदिरवटिका ।

खदिरस्यतुलांसम्यग्जलद्रोणेविपाचयेत् ।

अष्टभागावशेषेणदद्यादत्रघनीकृते ॥ ६५ ॥

जातीकपूरपूगानिकंकोलकफलानिच ।

इत्येषागुटिकाकार्यासुखसौभाग्यवर्द्धिनी ॥ ६६ ॥

दन्तोष्ठमुखरोगेषुजिह्वाताल्लाशयेषुच ॥ ६७ ॥

अर्थ—६ छेसेर खैरके टुकड़ोंको ३२ बत्तीस सेर जलमें पकावे, जब आठमा भाग शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् इस छनेहुए काथको फिर पकावे, जब गाढा होजाय तब जावित्री, कपूर, शीतलचीनी, सुपारी और जायफल, प्रत्येक ४ चार तोले मिलाकर गोली बनालेवे । यह गोली—सुख और सौभाग्यको बढ़ानेवालीहै, तथा मुखरोग, तालुरोग और दन्तरोगादिको दूर करैहै ॥ ६६—६७ ॥

अथ बृहत्खदिरवटिका ।

गायत्रिसारतुलामरिमेदवल्कलानां

सार्द्धतुलायुगलमम्लघटैश्चतुर्भिः ।

निःकाथ्यपादमवशिष्यसुवस्त्रपूतं

भूयःपचेदथशनैर्मृदुनानलेन ॥ ६८ ॥

तस्मिन्वनत्वमुपगच्छतिचूर्णमेषां

क्षिप्रंक्षिपेच्चकवडग्रहभागिकानाम् ॥

एलामृणालसितचंदनचंदनाम्बु ।

श्यामातमालविकषावनलौहयष्टी ॥ ६९ ॥

लज्जाफलत्रयरसांजनधातकीभिः

श्रीपुष्पगैरिककटकटकटफलानाम् ।

पद्माह्वलोध्रवटगेहयवासकानां

मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ ७० ॥

कक्कोलजातिफलकोषलवंगकानि

चूर्णीकृतानिविदधीतपलांशिकानि ।

शीतेऽवतार्यधनसारचतुष्पलञ्च

क्षिप्वाकलायसदृशींगुटिकांप्रकुर्यात् ॥ ७१ ॥

शुष्कामुखेविनिहिताविनिवारयान्ति ।
 रोगान्गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान् ।
 कुर्यान्मुखेसुरभितापटुतारुचिञ्च
 स्थैर्यपरंदशनगंरसनालघुत्वम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—खैरसार १२ ॥ सादेवारहसेर और दुर्गन्धखैरकी छाल ३१। सवा-
 इक्तीस सेर, पाकके लिये काँजी ४ द्रोण, शेष १ एकद्रोण रखै इस काढेको
 उत्तम रीतिसे छानकर फिर पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय तब छोटी
 इलायची, खश, सफेदचंदन, लालचंदन, सुगंधवाला, करियावासाऊ, श्यामत-
 मालकी छाल, मैजीठ, नागरमोथा, अगर, मुलेठी, लज्जावंती, हरड़, बहेडा,
 आमला, रसौत, धायकेफूल, पुण्डेरिया, गेरू, दारुहलदी, कायफल, पन्नाख,
 लोध, बडके अंकुर, धमासा, बालछड, हलदी, कुन्दुरु, दालचीनी, शीतल-
 चीनी, जायफल, जावित्री और लौंग प्रत्येक चार चार तोले, मिलादेवे, जब
 शीतल होजाय तब १६ सोलह तोले कपूरका चूर्ण मिलाकर मटरकी समान
 गोलियें बनालेवे । इन गोलियोंको सुखाकर सुखमें धारण करनेसे—गलरोग,
 ओष्ठरोग जिह्वारोग, दन्तरोग और तालुगोग दूर होतेहैं । मुखमें सुगंधि पटुता,
 और रुचि उत्पन्न होतीहै ॥ ६८—७२ ॥

अथ सतामृतरसः ।

मृतसूताभ्रकंतुल्यंमृतलौहंशिलाजतु ।
 गुग्गुलुञ्चशिलाताप्यंसमांशंमधुनालिहेत् ॥
 मासमात्रप्रयोगेणमुखरोगंविनाशयेत् ॥ ७३ ॥

इति मुखरोगचिकित्साध्यायः ।

अर्थ—पारेकीभस्म, अभ्रकंकीभस्म, लोहेकीभस्म, शुद्धशिलाजीत, शुद्धगुग्गुलु
 मैनशिल और सोनामाखी यह सब समानभाग ले चूर्ण कर सहतमें मिलाकर
 चाटनेसे एक महीनेमें ही सर्वप्रकारके मुखरोग दूर होजातेहैं और दातोंमें
 दृढ़ता उत्पन्न होतीहै और जिह्वामें कोमलता उत्पन्न होतीहै ॥ ७३ ॥

इति मुखरोगचिकित्सासमाप्ता ।

अथ कर्णरोगचिकित्सा धिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नाः ।

सामान्यकर्णरोगेषु घृतपानं रसायनम् ।

अव्यायामोऽशिरःस्नानं दिवा स्वप्नभाषणम् ॥ १ ॥

कपित्थमातुलंगाम्बुशृङ्गवेररसैः शुभैः ।

सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ २ ॥

कपित्थस्य फलम् ।

लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरङ्गचामूलकस्य च ।

कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठं कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ३ ॥

सुरङ्गी रक्तशोभाञ्जनः ।

अर्थ—सामान्य कर्णरोगोंमें घृतपानही रसायन है । व्यायाम (कसरत) नहीं करना, शिरसे स्नान नहीं करना, दिनमें नहीं सोना और बहुत कम बोलना यह सब कर्णरोगोंमें विशेष हितकारी हैं । कैथा, विजोरेनव्रीका रस और अदरखका रस इनको गरम करके कानमें डालनेसे—कर्णशूल नष्ट होता है । लहशुन, अदरख, सेंजिना, लाल सेंजिना, मूली और केला इनका किंचित् गरम रस कानमें भरनेसे शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ कर्णशूलहरयोगाः ।

आर्द्रकसूर्यावर्तशोभाञ्जनमूलकस्वरसाः ।

मधुतैलसैन्धवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥ ४ ॥

कोष्णशिग्रुरसः कर्णेतिलतैलेन शूलनुत् ।

अर्कपत्रपुटेदग्धः स्नुहीपत्रभवोरसः ॥

कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥ ५ ॥

अर्कस्य पत्रपरिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् ।

आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनाञ्च ॥ ६ ॥

अर्थ—अदरख, हुलहुल और सेंजिनेकी जडका रस अलग २ सहत, तेल, सैंधानोनेके साथ कानमें डालनेसे कर्णशूल नष्ट होता है । किंचित् गरम सेंजिनेका रस तिलोंके तेलमें मिलाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल नष्ट होता है ।

आकके पत्तोंके पुटमें पकायाहुवा थूहरके पत्तोंका रस किंचित गरम करके कानमें डालनेसे निश्चय कर्णशूल, नष्ट होताहै । आकके पकेहुए पीले पत्तोंपै घृत चुपडके आगमें गरम कर कानमें निचोड़नेसे कर्णशूल और अत्यन्त पीडा दूर होजातीहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथान्येऽपिकर्णशूलघ्नयोगाः ।

तीव्रशूलयुतेकर्णेसशब्देक्रेदवाहिनि ।

बस्तमूत्रंक्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनसमन्वितम् ॥ ७ ॥

अंगारपूर्णात्तैलाक्तादश्वत्थदलखल्लकात् ।

च्युतंतैलंजयेत्सद्यः पूरणात्कर्णवेदनाः ॥ ८ ॥

अर्थ—कानमें शूलकी समान तीव्र वेदना, शब्द और क्रेद होय तो बकरेके मूत्रमें सैन्धेनोनका चूर्ण डाल गरम करके कानमें डाले । पीपलके पत्तोंको तेल या घी मिलाके खरल कर अंगारोंकी आगमें धरदेवे, उन अंगारोंमेंसे जो तेलकी वूँदें टपकें, उन वूँदोंको कानमें डालनेसे कानकी पीडा दूर होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ हिंवाद्यंतैलम् ।

हिं गुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यंतैलन्तुसार्पपम् ।

कर्णशूलेप्रधानन्तुपूरणंहितमुच्यते ॥ ९ ॥

अर्थ—सरसोंका तेल २ दो सेर और कल्कके लिये हींग, कडवी तांबी और सांठ यह सब आधसेर लेकर, यथाविधिसे तेलको पकावे । इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णशूल नष्ट होताहै ॥ ९ ॥

अथ रास्नादिगुग्गुलुः ।

रास्नाघृतैरण्डसुराह्वविश्वंतुल्यंपुरेणाथविमर्द्यखादेत् ।

वातामयीकर्णशिरोगदीचनाडीव्रणीचापिभगन्दरीच ॥ १० ॥

अर्थ—रास्ना, घृत, अण्ड, देवदारु, सांठ, यह सब समानभाग और सबकी बराबर गुग्गुलु ले एकत्र खरल कर सेवन करनेसे वातरोग, कर्णरोग, शिरोग, नाडीव्रण और भगंदर रोग नष्ट होजातेहैं ॥ १० ॥

अथ क्षारतैलम् ।

बालमूलकशुण्ठीनाक्षारोहिंसुसनागरम् ।

शतपुष्पावचाऽष्टदारुशिथुरसांजनम् ॥ ११ ॥

सौवर्चलयवक्षारःस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ।
 मातुलुंगरसंचैवकदल्यारसएवच ॥ १२ ॥
 तैलमेभिर्विपक्तव्यंकर्णशूलहरंपरम् ।
 बाधिर्य्यकर्णनादञ्चपूयास्त्रावश्चदारुणः ॥ १३ ॥
 पूरणादस्यतैलस्यकृमयःकर्णसंश्रिताः ।
 क्षिप्रंविनाशंगच्छन्तिकृष्णात्रेयस्यशासनात् ॥ १४ ॥
 क्षारतैलमिदंश्रेष्ठंमुखकर्णामयापहम् ।
 मधुप्रधानंशुक्तञ्चमधुशुक्तंतथापरम् ॥ १५ ॥
 जम्बीरस्यफलरसंपिप्पलीमूलसंयुतम् ।
 मधुभाण्डेविनिक्षिप्यधान्यराशौनिधापयेत् ॥ १६ ॥
 मासेनतज्जातरसंमधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ १७ ॥

अर्थ—तिलकातेल, दोसेर, विजोरे नीबूकारस २ दोसेर, केलेका रस २ सेर और कल्कके लिये कच्ची सूखी मूलीका खार, हींग, सांठ, सोया, वच, कूठ, देवदारु, सैंजिनेकी जडकी छाल, रसौत, कालानोन, जवाखार, सजी, औद्भिदनोन और सैंधेनोनका चूर्ण प्रत्येक ५॥ आधसेर लेकर, यथाविधिसे तेलको पकावे । यह तेल कर्णशूल, वधिरता, कर्णनाद, पूयस्त्राव और कानके कीड़ोंको दूर करेहै, तथा मुख और सम्पूर्ण कानके रोगोंको दूर करेहै । यह क्षारतैल कृष्णात्रेयने कहाहै । अनुपान; मधुप्रधान शुक्त तथा मधुशुक्त है मधुशुक्त बनानेकी विधि यह है कि जम्बीरी, निम्बूका रस और पीपलामूलके चूर्णको सहतसे भरेहुए वासनमें डालके धानोंके ढेरमें धरदेवे, पश्चात् १ एक महीनेके बाद निकाललेवे, उस वासनकेही रसको मधुशुक्त कहतेहैं ॥ ११-१७ ॥

अथ कर्णरोगहरनस्यम् ।

गुडविश्वाम्बुनानस्यंनादबाधिर्ययोर्हितम् ॥ १८ ॥

अर्थ—सांठके काथमें गुड़ डालकर नास देनेसे कर्णनाद और वधिरता दूर होतीहै ॥ १८ ॥

अथ स्वर्जिकायतैलम् ।

स्वर्जिकामूलकंशुष्कंहिंगुकृष्णामहौषधम् ।

शतःप्याचतैस्तैलंपक्त्वाशुक्तचतुर्गुणम् ॥ १९ ॥

प्रणादः लबाधिर्यसावञ्चाशुव्यपोहति ॥ २० ॥

अर्थ—तेल दो २ सेर, काँजी ८ आठसेर और कल्कके लिये सज्जी, सूखी-मूली, हींग, पीपल, सोंठ और सोया यह सब ५॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णनाद, कर्णशूल, बधिरता और पूयसाव दूर होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ दशमूलीतैलम् ।

दशमूलीकषायेणतैलप्रस्थंविपाचयेत् ।

एतत्कल्कंप्रदायैववाधिर्येपरमौषधम् ॥ २१ ॥

अर्थ—तेल २ दो सेर, दशमूलका काथ ८ आठसेर, तथा कल्कके लिये भी दशमूलका चूर्ण ५॥ आधसेर लेकर, यथाविधिसे तेलको पकाकर कानमें डालनेसे बधिरता दूर होताहै ॥ २१ ॥

अथ विल्वतैलम् ।

फलंविल्वस्यमूत्रेणपिड्वातैलंविपाचयेत् ।

साजक्षीरंतद्विहरेद्र्वाधिर्येकर्णपूरणम् ॥ २२ ॥

अर्थ—तेल २ दोसेर, बकरीकादूध ८ आठसेर और कल्कके लिये गोमूत्रमें पिसाहुवा बेल ५॥ आधसेर लेकर; यथाविधिसे तेलको सिद्ध कर कानमें डालनेसे बधिरता दूर होजातीहै ॥ २२ ॥

अथ जातीतैलम् ।

जम्बवाप्रपत्रंतरुणंसमांशंकपित्थकर्पासफलञ्चसार्द्रम् ।

शुत्वारसन्तंमधुनाविमिश्रंस्नावापहंसंप्रवदन्तितज्ज्ञाः २३॥

चूर्णाधिकन्तुताम्बूलंसंचव्यास्यरसेनतु ।

पूरणान्निपतन्त्याशुमृताःकारण्डकादयः ॥ २४ ॥

नीलबह्वारसस्तैलमिन्धुकांजिकसंयुतम् ।

कटुष्णापूरणात्कर्णेनिःशेषकृमिपातनम् ॥ २५ ॥

घृष्टंरसांजनंनार्याःक्षीरेणक्षौद्रसंयुतः ।

प्रशस्यतेचिरोत्थेचसत्त्वावेष्टातिकर्णके ॥ २६ ॥

निर्गुण्डीस्तैलमिन्धुधूमरजोगुडः ।

**पूरणात्पूतिकर्णस्यशमनोमधुसंयुतः ॥
जातीपत्ररसेतैलंविपक्वंपूतिकर्णजित् ॥ २७ ॥**

अर्थ—कच्चे जामुनके पत्ते, कच्चे आमके पत्ते, कच्चा कैथाका फल, कच्चे कपासके फल और अदरख इनको समानभाग ले कूटकर रस निकाललेवे, पश्चात् इस रसमें सहत मिलाकर कानमें डालनेसे पृयादिस्त्राव दूर होताहै । पानमें अधिक चूना लगाकर पानको चावके तिसका रस कानमें डालनेसे कानके समस्त कीड़े मरजातेहैं । नीलबोनेका रस, तेल, सैंधानोन और काँजी इनको एकत्र किंचित गरम करके कानमें डालनेसे कानके सब कीड़े गिरजातेहैं । स्त्रीके दूधमें रसौतको विसकर सहत मिलाके कानमें डालनेसे बहुत दिनोंका स्त्राव युक्त पूतिकर्ण नष्ट होजाताहै । सम्हालूका रस, तेल, सैंधानोन, घरके धुँएँका चूर्ण, गुड़, और सहत एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग दूर होताहै । चमेलीके पत्तोंके रसमें तेलको पकाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्ण रोग दूर होजाताहै ॥ २३-२७ ॥

अथ कुष्ठादितैलम् ।

**कुष्ठहिंशुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवम् ।
पूतिकर्णापहतैलंबस्तमूत्रेण साधितम् ॥ २८ ॥**

अर्थ—तिलकातेल २ दोसेर, बकरीका मूत्र ८ आठसेर तथा कल्कके लिये कूठ, हींग, बच, दारुहलदी, सोया, साँठ और सैंधानोन. यह सब ५॥ आधसेर लेकर यथानियमसे तेलको सिद्ध कर कानमें भरनेसे पूतिकर्ण रोग शान्त होताहै ॥ २८ ॥

अथ बृहच्छम्बूकाद्यं तैलम् ।

**प्रस्थंशम्बूकमांसस्यकटुतैलञ्चतत्समम् ।
कुष्ठंभृंगोरजोवासाह्यर्कपत्रंस्नुहीघनम् ॥ २९ ॥
बिल्वंशालिञ्चपत्रं चकेशरं नागकेशरम् ।
द्राक्षाचातिविषाचैवयष्टीमधुकमेवच ॥ ३० ॥
शटीचैरण्डकार्पासमृद्गकेशरजस्यच ।
एतेषां कर्षमादायपचेत्तलं भिषग्वरः ॥ ३१ ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडीप्रशम्यति ।**

बाधिर्यकर्णनादश्चायास्त्रावंसुदारुणम् ॥ ३२ ॥

चक्षुरोगंशिरोरोगनाशयेत्तिमिरार्बुदम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—कडवातेल २ दो सेर, शम्बूकका मांस २ दो सेर, तथा कूठ, दाल-चीनी, पित्तपापडा, अड्डसा, आकके पत्ते, थूहरके पत्ते, नागरमाथा, बेल, शालिचके पत्र, केशर, नागकेशर, दाख, अतीस, मुलेठी, कचूर, अरण्ड, कपास, भांगरा और कुकुरभांगरा यह सब ५॥ आधसेर लेकर, यथाविधिसे तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाडी, बधिरता, कर्णनाद, नेत्ररोग, शिरोरोग, तिमिररोग और अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ शम्बूकाद्यतैलम् ।

शम्बूकमांसकल्केनकटुतैलंविपाचयेत् ।

अस्य पूरणमात्रेणकर्णनाडीप्रशाम्यति ॥ ३४ ॥

अर्थ—कडवा तेल २ दोसेर और शम्बूकका मांस ५॥ आधसेर दोनोको मिलाकर यथाविधिसे टपकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाडी रोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

अथ धुस्तूरतैलम् ।

निशागन्धपलेपक्वकटुतैलंपलाष्टकम् ।

धुस्तूरपत्रजरसेकर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—कडवातेल १ एकसेर, धतूरेके पत्तांका स्वरस ४ चार सेर और कल्के लिये हलदी ४ चार तोले और गंधक चार ४ तोले ले यथाविधिसे तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्ण नाडी रोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

अथ कर्णस्फोटचिकित्सा ।

केतकीशिथुलवणभारनालेनपेपयेत् ॥

कर्णमूलस्थितंस्फोटंलेपनाच्चव्यथापहम् ॥ ३६ ॥

पुत्रजीवस्यमज्जानंजलेपिद्वाप्रलेपयेत् ।

शोथंहन्ति । लघ्वर्णैः कर्णस्फोटंविशेषतः ॥ ३७ ॥

अर्थ—केतकी, सैंजिना, सैंधानोन और कांजी इन चारोंको एकत्र पीसके लेपकरनेसे कर्णमूलस्थित पीडा और स्फोटक नाश होजातेहैं । पतिजियाके फलोंकी मींगको जलमें पीसके लेप करनेसे कर्णशोथ, गलशोथ और कर्णस्फोट नष्ट होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ कर्णपालीवृद्धयोगः ।

मूषलीकन्दमूलञ्चमहिषीन्द्रणीतयुक् ।

गोलयित्वाक्षिपेद्भाण्डेधान्यराशौनिवेशयेत् ॥ ३८ ॥

सप्ताहादुद्धतेलेपंकर्णपालीविवर्द्धनम् ।

चर्मचटस्यरक्तेनलेपात्कर्णविवर्द्धते ॥ ३९ ॥

अश्वगन्धावचाकुष्ठं गजपिप्पलिकासमम् ।

महिषीनवनीतेनलेपात्कर्णविवर्द्धते ॥ ४० ॥

अर्थ—मुसलीकी जड़को भैंसके माखनमें मिलाके गोला बनालेवे, उस गोले-को एकबासनमें स्थापनकर उस वासनको धानोंके ढेरमें धरदेवे, सात ७ दिनके बाद उसको निकालकर कानमें प्रलेप करनेसे कर्णपाली बढ़तीहै । चर्म-चटके रुधिरको लेप करनेसे कर्ण बढ़तीहै । असगन्ध, वच, कूठ और गजपी-पल समान भाग ले भैंसके दूधमें पीसकर लेप करनेसे कर्णपाली बढ़ती-है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ जीवनाद्यतैलम् ।

कल्केनजीवनीयेनतैलंपयसिसाधितम् ।

आनूपमांसकाथेनपालिशोषवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—तेल २ दोसेर, काथके लिये अनूपदेशके जीवोंके मांस आठसेर और कल्कके लिये जीवनीयगणकी औषधि आधसेर लेकर यथाविधिसे तेलको पकाकर कानोंमें मलनेसे शुष्क कर्णपाली बढ़जातीहै ॥ ४१ ॥

अथ गन्धकतैलम् ।

निशागन्धपलेद्रेतुकटुतैलंपलाष्टकम् ।

धूर्तपत्ररसेसिद्धंकर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—कड़वातेल १ एकसेर, गंधक और हलदी प्रत्येक चारतोले घटूके पत्तोंका रस २ दोसेर ले यथाविधिसे तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्ण-नाडीरोग नष्ट होताहै ॥ ४२ ॥

अथ निर्गुण्डीतैलम् ।

निर्गुण्डीरसैस्तैलंसिन्धुधूप्राणोद्युतः ।

पूरणात्पूतिकर्णस्यशमनोमधुसंयुतः ॥ ४३ ॥

अर्थ—कडवातेल, २ दो सेर, सम्हालूकारस ८ आठसेर और कल्कके लिये सेंधानोन, घग्का धुआँ और गुड ५॥ आधसेर ले यथाविधिसे तेलको पकाकर सहतके साथ प्रयोग करनेसे पृतिकर्ण रोग शांत होताहै ॥ ४३ ॥

अथ शतावरीतैलम् ।

शतावरीवाजिगन्धापयस्थैरण्डबीजकैः ।

तैलपक्वंसमंक्षीरंपालीनांपुष्टिवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥

इति कर्णरोगाध्यायः ।

अर्थ—तेल २ दो सेर, गायका दूध २ सेर और कल्कके लिये शतावर, अस-
गंध, विदारीकन्द और अण्डके बीज ५॥ आधसेर ले यथाविधिसे तेलको
सिद्धकर कानमें मलनेसे कर्णपाली पुष्ट होतीहै ॥ ४४ ॥

इति कर्णरोगाध्यायः ।

अथ नासारोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ व्योषादिचूर्णम् ।

व्योषचित्रकतालीशतिन्तिडीचाम्लवेतसम् ।

सचव्यजाजीतुल्यांशंएलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ १ ॥

तच्चव्योपादिकंचूर्णपुराणगुडसंयुतम् ।

पीनसश्वासकासघ्नंरुचिस्वरकरम्परम् ॥ २ ॥

अर्थ—मोठ, मिर्च, पीपल, चीतेकी जड़, तालीसपत्र, इमली, अमलबंत,
चव्य और जीग प्रत्येक औषधिका चूर्ण १ एक भाग और दालचीनी, तेजपात
और छोटी इलायची प्रत्येकका चूर्ण चौथाई भाग लेकर सबको एकत्र पीम
पुराना गुड मिलाकर मंवन करनेसे पीनस, श्वास और कास रोग दूर होताहै,
तथा रुचि और स्वरको करेहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ दाडिमाचंचूर्णम् ।

यःपिबतिशयनकालेशयनारूढःसुशीतलंभूरि ।

सलिलंपी-ऽऽपुःसोऽपिचमुच्यतेऽत्रयोगेन ॥ ३ ॥

द्वेपलेदाडिमादग्रैस्वण्डाद्व्योषपलद्वयम् ।

त्रिसुगन्धिपलञ्चैकचूर्णमेकत्रकारयेत् ॥

दीपनंरुचिरंस्वर्य्यपीनसज्वरकासनुत् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य रात्रिमें सोतेहुए शय्यापर शीतल जलको पीताहै उसका पीनसरोग निश्चय दूर होजाताहै । अनारकी छाल २ दोपल खांड ८ आठपल, सोंठ २ दोपल, पीपल २ दोपल, कालीमिरच २ दोपल, छोटी इलायची १ एकपल, तेजपात १ एक पल और दालचीनी १ एकपल, सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करलेवे । यह चूर्ण—अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, स्वरको शुद्ध करनेवाला, पीनस रोगको हरनेवाला ज्वरको नष्ट करनेवाला और खाँसीको दूर करेहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ त्रिफलाद्यंचूर्णम् ।

त्रिफलाचपलासैन्धवचूर्णसक्षौद्रमशितमथसायम् ।

पीनसशोषश्वासाञ्जयतीहकफसंभवान्वितम् ॥ ५ ॥

अर्थ—दूग्ध, बहेडा, आमला, पीपल और सेंधानोन यह सब औषधि समान भाग ले वारीक चूर्णकर सहतके साथ सायंकालमें सेवन करनेसे पीनस, शोष श्वास और कफजनित रोग दूर होतेहैं ॥ ५ ॥

अथ पाठाद्यंतैलम् ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।

दन्त्याचतैलंसंसिद्धंनस्यंसम्पक्कपीनसे ॥ ६ ॥

अर्थ—पाद, हलदी, दारुहलदी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दन्तीकी जड़ यह सब औषधि कलकके लिये ॥ आधसेर और तेल २ दोसेर ले इस तेलको पकाकर नाम देनेसे पक्कपीनस रोग शान्त होताहै ॥ ६ ॥

अथ कलिङ्गाद्यंतैलम् ।

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः ।

कुष्ठोग्राशिगुजन्तुघ्नैरवपीडःप्रशस्यते ॥ ७ ॥

तैरेवमूत्रसंयुक्तैःकटुतैलंविपाचयेत् ।

पीनसेषूतिनस्येचशमनंकीर्तितंपरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, हींग, मिरच, लाख, तुलसी, काबफल, कूठ, बच, सेंजिना और वायविडंगके द्वारा अवपीड (नस्यविशेष) प्रयोग करनेसे पीनस और

पूतिनस्य रोग दूर होतेहैं । कडवातेल २ दो सेर, गोमूत्र ८ आठसेर, तथा कल्कके लिये इन्द्रजौ, हांग, कालीमिरच, लाख, तुलसी, कायफल, कूठ, वच, सैंजिना और वायबिडंग यह सब ५॥ आधमेर ले यथाविधिमे तेलको पकाकर नाम देनेमे पीनम और पूतिनस्य रोग दूर होताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ चित्रहरीनकी ।

चित्रकस्यामलकयाश्चगुडुच्यदशमूलजम् ।

शतंशतरंसंदत्त्वापथ्याचूर्णादिकंगुडात् ॥ ९ ॥

शतंपचेद्वनीभूतेपलंद्वादशकंक्षिपेत् ।

व्योषत्रिजातयोःशरात्पलार्द्धमपरेऽहनि ॥ १० ॥

प्रस्थार्द्धमधुनोदत्त्वायथाश्वद्यादमैथुनः ।

वृद्धयेऽग्नेःक्षयंकासंपीनसंदुस्तंक्रुमीन् ॥

गुल्मोदरार्तदुर्णमिथासान्हन्तिग्मायनम् ॥ ११ ॥

अर्थ—चीतेकी जड़का रस १२॥ सादे वाग्द सेर, आमलोंका रस १२॥ सादे वाग्द सेर, गिलोयका रस १२॥ सादे वाग्द सेर दश मूलका साथ सादे-वाग्द सेर, हरड़का चूर्ण ८ आठमेर और गुड १२॥ सादे वाग्द सेर सबको मिलाके पकावे, जब देखे कि गुब गाढ़ा होगया तब साँटका चूर्ण, पीपलका चूर्ण, कालीमिरचोंका चूर्ण, छोटी इलायचीका चूर्ण, दालचीनीका चूर्ण, और तेजपातका चूर्ण प्रत्येक १२ वाग्द पल और जवायार का चूर्ण २ दो तोले मिलादेवे । फिर एक दिनके बाद १ एक सेर सहन मिलादेवे । इस औषधिको मेवन करनेसे अग्नि वर्द्धनीहै तथा अथ, खाँसी, पीनम, दुस्तंक्रुमि, गुल्म, उदररोग, ववासीर और श्वासको यह मद्भाग्यायन नष्ट करेहै ॥९-११॥

अथ पूतिनस्यादिचिकित्सा ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिशुम्बग्मव्योपमैवधेः ।

पाचितंलवणंतैलंपूतिनामागदंजयेत् ॥ १२ ॥

त्रिकटुविडंगसैन्धवबृहतीफलशिशुदन्तीभिः ।

तैलंगोजलमिद्धंनस्येस्यात्पूतिनस्यस्य ॥ १३ ॥

पूयास्त्ररक्तपित्तघ्नकषायलवणानिच ।

चिरोत्थेतत्रयुजीतनाडीव्रणहरंविधिम् ॥ १४ ॥

सोषणं गुडसंयुक्तं शिशुर्दध्यम्लभोजनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—कटेरी, दन्तीकी जड़, बच, सेंजिना, तुलसी, त्रिकुटा और सेंधानोन, इन सब औषधियोंके साथ तेलको पकाकर नासलेनेसे पृतिनस्यरोग दूरहोताहै । त्रिकुटा, बायबिडंग, सेंधानोन, कटाईकेफल, सेंजिना, दन्तीकी जड़, और गोमूत्र, इनकेसाथ तेलको पकाकर नस्यदेनेसे पृतिनस्यरोग दूर होताहै । नाकमेंसे राध और रुधिर निकलताहोय तो रक्तपित्त नाशक पाचन और नस्यादिदेवे । कालीमिरचांका चूर्ण, सेंजिनेकी जड़का चूर्ण और गुड. इन तीनोंको मिला कर सेवन करनेसे प्रतिश्याय रोग दूरहोताहै, इसपे खटा दहीखावे ॥ १२-१५॥

अथ गृहधूमाद्यंतैलम् ।

व्योषं पृथक्समस्तं वाजम्बीरमथ वार्द्रकम् ।

गुडयुक्तं प्रतिश्यायी प्राग्भुक्तमुपयोजयेत् ॥ १६ ॥

अर्शोऽर्बुदन्तुशस्त्रेण च्छेदयेत्कर्त्तितंतथा ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ॥

सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलनासार्शसांहितम् ॥ १७ ॥

नक्ताह्वं करंजबीजम् ।

अर्थ—सोंठ, पीपल और कालीमिरच, इन तीनोंका अलग अलग अथवा एकत्र पीसकर जम्भीरी निम्बूके रसके साथ या अदरखके रसके साथ अथवा गुडके साथ भोजनके पहिले खानेसे प्रतिश्याय रोग दूर होताहै । नामिकामें अर्शाकुर वा अर्बुद होय तो शस्त्रसे छेदन करे । घरका धुआँ, पीपल, देवदारु, जवाखार, करंजके बीज, सेंधानोन और चिरचिटेके बीज इन सब औषधियोंके साथ तेलको पकाकर नासिकामें डालनेसे नासार्श रोग दूर होताहै ॥ १६॥ १७॥

अथ करवीराद्यंतैलम् ।

करवीरस्य नक्तस्य मालत्यास्फोटयोरपि ।

पुष्पकल्कैः शृतं तैलनासार्शो नाशनं परम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कनेर, हलदी, मालती और अपराजिताके फूलोंका कल्क बना तिस कल्कसे तेलको सिद्धकर नासिकामें डालनेसे नासार्श रोग दूर होताहै ॥ १८ ॥

अथ चित्रकाद्यतैलः ।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरंजबीजलवणार्कैः ।

गोमूत्रयुक्तसिद्धंतैलंनासारशंसाहितंपरम् ॥ १९ ॥

इति नासारोगाध्यायः ।

अर्थ—तेल २ दोसेर, गोमूत्र ८ आठसेर, तथा कल्कके लिये चीता, चव्य, अजवायन, कटेरी, करंजके बीज, सेंधानोन, और आक ले यथाविधिसे तैलको सिद्धकर नासिकामें डालनेसे नासारो रोग दूर होताहै ॥ १९ ॥

इति नासारोगाध्यायः ।

अथ चक्षुरोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्ययत्नाश्चिकित्साच्च ।

प्राग्रूपएवाभिस्यन्देतीक्ष्णगण्डूपधारणम् ।

कारयेदुपवासञ्चकोपादन्यत्रवातजात् ॥ १ ॥

श्रीवासातिविषालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः ।

अव्यक्तेऽक्षिगदेकार्यंप्रोतस्थैर्गुण्डलंवहिः ॥ २ ॥

श्रीवासो देवदारुः ।

अर्थ—नेत्राभिष्यन्दरोगके पूर्वरूपमें ही तीक्ष्ण द्रव्योंका गण्डूप धारण करे और वातजको छोडकर नेत्राभिष्यन्द रोगमें लंघन करावे । श्रीवास (देवदारु) अतीस, लोध, और थोडासा सेंधानोन, सबको एकत्र पीस वस्त्रमें बाँध पोतली बना दोनो आँखोंमें लगावे तो अव्यक्त नेत्ररोग दूर होतेहैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ नेत्ररोगादिचिकित्सा ।

लंघनालेपनस्वेदशिरव्यधिविरेचनैः ।

उपाचरेदभिष्यन्दमञ्जनाश्रयोतनादिभिः ॥ ३ ॥

अक्षिकुक्षिभवारोगाःप्रतिश्यायव्रणज्वराः ॥

पंचैतेपंचरात्रेणरोगानश्यन्तिलंघनात् ॥ ४ ॥

अर्थ—लंघन, प्रलेप, स्वेद, शिरावेध, विरेचन, अञ्जन और आश्रयोतनादि द्वारा नेत्राभिष्यन्द रोगकी चिकित्सा करे । नेत्ररोग, कुक्षिरोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर यह पाँचरोग पाँचादिनमें केवल लंघन करानेसे ही दूर होजातेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथाक्षिरोगेषाचनानिपथ्यञ्च ।

स्वेदःप्रलेपस्तिक्तानांसेकस्त्रावचतुष्टयम् ।

लंघनंचाक्षिरोगाणामामानांपाचनानिषट् ॥ ५ ॥

अंजनंपूरणंकाथपानमामेनशस्यते ।

स्नानंचसर्पिषःपानंतथैवगुरुभोजनम् ॥ ६ ॥

पथ्यं^१प्लेख^२कोटतण्डुलीयकवास्तुकैः ॥

घृतसिद्धैःसवार्त्तकैःमुद्गयूषेणजाङ्गलैः ॥ ७ ॥

अर्थ—स्वेद, प्रलेप, तिक्तद्रव्योंका सेक, स्त्राव, लंघन, पाचन, अंजन पूरण, काथपान, घृतपान और भारी पदार्थोंका भोजन यह सब अपक्व नेत्ररोगमें प्रयोग करना चाहिये । घृतमें सिद्ध किये हुए पटोल, ककरोडे, चौलाई, बथुआ और बैंगनका शाक, मूंगका यूप और जांगल देशके जीवोंके मांसका यूप यह सब इसमें पथ्य ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ नवदृक्कोपहरयोगाः ।

धात्रीफलनिर्यासोनवदृक्कोपनिहन्तिपूरणतः ।

शिखरीजमूलंताम्रजेभाजनेस्तोकसैन्धवोन्मिश्रम् ॥ ८ ॥

मस्तुनिघृष्टंभरणाद्धरतिदिनवलोचनात्कोपम् ॥ ९ ॥

पथ्याकल्कोघृतेभृष्टौबहिल्लेपोऽक्षिकोपहा ॥ १० ॥

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसांजनैःपिष्टैः ।

दत्तोबहिःप्रलेपोभवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥ ११ ॥

अर्थ—आमलोंका रस नेत्रोंमें भरनेसे नवीनदृष्टि रोग दूर होताहै । चिर-चिटेकी जड, थोडासा सेंधानोन और दहीका पानी इनको एकत्र ताँबेके वासनमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे नवीन नेत्ररोग दूर होताहै । हरडको पीस घृतमें भूनकर नेत्रोंके ऊपर लेप करनेसे नेत्र रोग दूर होताहै । सेंधानोन, देवदारु, हलदी, गेरू, हरड और रसौव इन सबको एकत्र पीस नेत्रोंके ऊपर लगानेसे नाना प्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं ॥ ८-११ ॥

अथाक्षिरोगघ्नलेपाः ।

गिरिमृच्चन्दननागरखटिकासंयोजितोबहिल्लेपः ।

कुरुतेवचयामिश्रोलोचनमगदंनसन्देहः ॥ १२ ॥

भूम्यामलकीघृष्टासैधवगृहवारियोजिताताम्रे ।

जातावनत्वमक्ष्णोर्जयतिबहिल्लेपतःपीडाम् ॥ १३ ॥

वृहत्पेरण्डमुलत्वक्छिग्रोर्मूलसमैन्धवम् ।

अजाक्षरेणपिष्टस्याद्वर्तिर्वाताक्षिशूलनुत् ॥ १४ ॥

अर्थ—गेरू, लालचंदन, मोंट, मेलखड़ी और वच इन सबको एकत्र पीस नेत्रोंके ऊपर प्रलेप करनेसे अनेक प्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं भुईआमला और सैधेनोनको काँजीके द्राग तांबेके वामनमें गाढ़ा घिमकर नेत्रोंपि लेप करनेसे नेत्रोंकी पीडा दूर होतीहै । कटाई, अण्डकी जडकी छाल, सेंजिनेकी जड और सैधानोन, इनको एकत्र बकरीके दूधमें पीस बत्ती बनाके नेत्रोंमें लगानेसे वात-जन्य नेत्ररोग दूर होताहै ॥ १२-१४ ॥

अथाभिम्यन्दपिप्ताक्षिरुक्चिकित्सा ।

हरिद्रिमधुकंपथ्यादेवदारुचपेपयेत् ।

आजेनपयसाश्रेष्ठमभिम्यन्देतदञ्जनम् ॥ १५ ॥

पथ्यास्थाने द्राक्षा इत्यपि पाठः ।

गेगिकंसैधवंकृष्णानागरंचयथोत्तमम् ।

पिष्टद्विंशतोऽद्विर्वागुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १६ ॥

मंजिष्ठाचन्दनानन्तालपःपित्ताक्षिशूलनुत् ।

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्निशामलकपद्मकैः ॥

शीतैःमितासमायुक्तैःमेकःपित्ताक्षिशूलनुत् ॥ १७ ॥

अर्थ—हल्दी, दारुहल्दी, मल्लई, हरड, (काँई वैद्य हरडके स्थानमें दाख डालते हैं) और देवदारु इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रगत अभिम्यन्द रोग दूर होताहै । गेरू १ एक भाग, सैधानोन २ दो भाग पीपल ३ तीन भाग, मोंट ४ चार भाग, इन चारोंको दूधने जलमें पीसकर गोली बना नेत्रोंमें लगानेसे नेत्ररोग दूर होताहै । मंजीठ, लालचंदन और अनन्त-

मूल इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे पित्तजनित चक्षुशूल दूर होता है । पुण्डेरिया, मुलेठी, हलदी, आमला, पन्नाख और खांड इनको एकत्र पीसकर शीतल प्रलेप करनेसे पित्तजनित नेत्रशूल नष्ट होता है ॥ १५-१७ ॥

अथ कफाक्षिरोगचिकित्सा ।

शुण्ठीनिम्बदलैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्वल्पसैन्धवैः ।

धार्यश्चक्षुषिसंक्षेपाच्छोथकण्डूव्यथापहः ॥ १८ ॥

वलकलंपारिभद्रस्यतैलकांजिकसैन्धवम् ।

कफोद्धूताक्षिरोगघ्नतरुघ्नकुलिशंयथा ॥ १९ ॥

अर्थ—सांठ, नीमके पत्ते और थोडासा सेंधानोन इनको एकत्र पीस किंचित् गरम करक नेत्रोंमें लगानेसे थोडे ही दिनोंमें नेत्रोंकी सूजन, कंठ और पीडा शान्त होती है । फरहदकी छाल, तेल, कांजी और सेंधानोन इन सबको एकत्र ताँबेके वासनमें घिस अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे कफजनित नेत्ररोग दूर होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ बिल्वांजनम् ।

बिल्वपत्ररसःपूतःसैन्धवाज्यलवणान्वितः ।

ताम्रेवराटिकाघृष्टोधूपितोगोमयाग्निना ॥ २० ॥

स्तन्येनालोडितश्चाक्ष्णोःपूरणाच्छोथशूलनुत् ।

अभिस्यन्देऽधिमन्थेचरक्तस्रावेचशस्यते ॥ २१ ॥

गोमयं छायाशुष्कम् ।

अर्थ—बेलके पत्तोंके स्वरसको वस्त्रमें छानकर सेंधानोन और घृत मिलाकर ताँबेके वासनमें रख लेवे, पश्चात् इसमें कौडीको घिसकर सूखे उपलोंकी अग्निसे धूपित कर स्त्रीके दूधमें आलोडन करके आँखोंमें भरनेसे नेत्रोंकी सूजन, शूल, अभिष्यन्द, अधिमन्थ और रक्तस्राव दूर होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ वातकफाक्षिरोगचिकित्सा ।

सलवणकटुतैलकांजिकंकांस्यपात्रे

घनितःपलघृष्टंधूणितंगोमयाग्नौ ॥

सपन्नकफकोपंछागदुग्धावसितं

जयतिनयनशूलंस्त्रावशोथंसरागम् ॥ २२ ॥

अर्थ—सैंधानोन, कडवातेल और काँजी इन तीनोंको काँसीके पात्रमें पत्थरकी मुँगरीसे घिसे, जब गाढ़ा होजाय तब उपलोंकी अग्निसे धूपित कर नेत्रोंमें लगावे तो वातश्लैष्मिक, नेत्ररोग शान्त होताहै । और इस औषधिको बकरीके दूधमें मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रशूल, चक्षुस्त्राव, चक्षुशोथ और नेत्रोंकी लाली दूर होजातीहै ॥ २२ ॥

अथ वासादिकाथः ।

अटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकू (कु) लकैः ।

रक्तस्रावंकफंहन्तिचक्षुष्यंवासकादिकम् ॥ २३ ॥

अर्थ—अट्टसा, हरड, नीमकी छाल, आमला, नागरमोथा, बहेडा और पटोल यह सब औषधि समान भाग ले काथ बनाकर पीनेसे नेत्रोंका रक्तस्राव और कफ दूर होताहै ॥ २३ ॥

अथ बृहद्रासकादिकाथः ।

वासाचनंनिम्बपटोलपत्रंतिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् ।

कलिंगदावींदहनंसनागरंभूनिम्बधात्र्यप्यभयाविभीतम् २४

श्यामायवक्राथमथाष्टशेषंपिबेदिमंपूर्वदिनेकपायम् ।

तैमिर्यकण्डूंपटलार्बुदश्चशुक्रंसरागंव्रणमव्रणश्च ॥ २५ ॥

काचश्चपैल्वञ्चमहारुजश्चनक्तान्ध्यरोगंश्वयथुंसशूलम् ।

वासादिरेपःप्रथितप्रभावोनिहन्तिसर्वाव्रयनामयांश्च ॥ २६ ॥

अर्थ—अट्टसा, नागरमोथा, नीमकी छाल, पटोल, कुटकी, गिलोय, लाल-चंदन, कुंडकी छाल, इन्द्रजा, दासहलदी, चीतेकी जड़, मोंठ, चिगायता, आमला, हरड, बहेडा, करियावामाड और जो यह सब औषधि समान भाग ले अष्टाव-शेष काथ बनाकर दस दिनमें पीनेमें नेत्रगत निमिररोग, कण्डू, पटल, अर्बुद, शुक्र, रक्तवर्णता, व्रण, काच, पिल्व, आभ्यंतर्गपीडा, रात्र्यन्धता और शूल-सदृश वेदना युक्त शोथ रोग दूर होताहै ॥ २४-२६ ॥

अथाशेषाक्षिरोगवक्राथाः ।

गुडूचीपित्तलहृत्थोमधुनासहयोजितः ।

पीतःसर्वाक्षिरोगघ्नःकृष्णाचूर्णावचूर्णितः ॥ २७ ॥

विभीतकशिवाधात्रपटोलारिष्टवासकैः ।
 काथोगुग्गुलुनापेयःशोथशूलाक्षिपाकनुत्त ॥ २८ ॥
 सपिल्वंसत्रणंशुक्रंरागादींश्चविनाशयेत् ।
 एतैश्चापिघृतंपक्वैरोगांस्तांश्चव्यपोहति ॥ २९ ॥

गुग्गुलोः कल्कः ।

अर्थ—गिलोय, हरड, आमला और बहेडा, इनका काथ बना पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होजातेहैं । हरड, बहेडा, आमला, पटोल, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका काथ बना शुद्ध गुग्गुलु मिलकर पान करनेसे अक्षिरोग, अक्षिशूल और अक्षिपाक, तथा पिल्वरोग, व्रणराग, शुक्ररोग और रक्तवर्णतादि नाना प्रकारके नेत्ररोग, दूर होतेहैं । घी दो मर, काथके लिये हरड बहेडा, आमला, पटोल, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका काथ ८ आठ मर तथा कल्कके लिये गुग्गुलु ५॥ आधसेर ले यथाविधिसे घृतको पकाकर सेवन करनेसे अक्षिशोथ, अक्षिशूलादि सम्पूर्ण पूर्वोक्त रोग दूर होजाते हैं ॥ २७-२९ ॥

अथ चन्द्रनाद्यावर्तिः ।

चन्दनंगौरिकंलाक्षामालतीकणिकाःसमाः ।
 व्रणशुक्रहरावर्तिःशोणितस्यप्रसादिनी ॥ ३० ॥

अर्थ—लालचंदन, गेरू, लाख. मालती और पीपल, यह सब औषधि समान भाग ले बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रव्रण और शुक्र रोग दूर होता है, तथा रुधिरकी प्रसन्नता उत्पन्न होतीहै ॥ ३० ॥

अथ चन्द्रोदयावर्तिः ।

हरीतकीवचाकुष्ठपिप्पलीमरिचानिच ।
 विभीतकस्यमज्जाचशंखनाभिर्मनःशिला ॥ ३१ ॥
 सर्वमेतत्समंकृत्वाछागीक्षीरेणपेषयेत् ।
 वर्तिश्चन्द्रोदयानामनृणांदृष्टिप्रसादिनी ॥ ३२ ॥
 नाशरोक्षिमिरंकरुण्डूपलान्यर्बुदानिच ।

अधिकानिचमांसानि श्वरात्रौ न पश्यति ॥

अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन साधयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—हरड, बच, कूठ, पीपल, कालीमिरच, बहेडेकी मींग, शंखनाभि और मैनाशिल, यह सब औषधि बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बना नेत्रोंमें लगानेसे दृष्टि प्रसन्न होती है, तथा तिमिररोग, कण्ठ, पटलरोग, अर्बुदरोग, अधिक मांस-रोग, रात्र्यन्धता और दोषर्षका फूला दूर होजाता है ॥ ३१-३३ ॥

अथ त्रिकट्वादिवर्तिः ।

त्रीणिकटू निकर अफलानि द्वेरजनी सह सैन्धवकश्च ।

बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं वारिचरं दशनं प्रवदन्ति ॥ ३४ ॥

हन्ति तमस्तिमिरं पटलश्च पिच्छिटशुक्रमथाज्जुनकश्च ।

अंजनकं जनरजनकं च दृगंच न पश्यति वर्षशतश्च ॥ ३५ ॥

अर्थ—सांठ, मिर्च, पीपल, कंजकेफल, हलदी, दारुहलदी, सेंधानोन, बेलकीजड, बर्नाकी जड और शंखनाभि, यह सब औषधि समान भाग ले एकत्र पीसकर आँखोंमें आँजनेसे—तमोगोग, तिमिर्गोग, पटलगोग, पिच्छट, शुक्र, अर्जुन और रात्र्यन्धरोग दूर होता है ॥ ३४-३५ ॥

अथ नागार्जुनवाटिका ।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थं यष्टीतुत्थं रसांजनम् ।

प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोभ्रं ताम्रं चतुर्दश ॥ ३६ ॥

द्रव्याण्येतानि संक्षुभ्यवर्तिः कार्या न ताम्बुना ।

नागार्जुनेन लिखितास्तम्भे पाटलिपुत्रे ॥ ३७ ॥

नाशिनीतिमिराणाञ्च पटलानां तथैव च ।

सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रियो विजयते ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

किंशुकस्वरसेनाथपैल्वपुष्पकरक्ता ।

अंजनाल्लोभ्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ ३९ ॥

टिरं सञ्छादितेनेत्रे वस्तमूत्रेण संयुता ।

उन्मीलयति कृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥ ४० ॥

अर्थ—हरड, वहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानोन, मुलैठी, नूतिया, रसौत, पुण्डेरिया, वायविडंग, लोध और ताँवा, यह सब औषधि समान भागलेकर भलेप्रकारसे पीस लेवे, फिर अनन्तमूलके काढ़ेमें भावनादे बत्ती वनाके नेत्रोंमें लगानेसे तिमिररोग और पटलगोग दूर होताहै । स्त्रीके दूधमें बत्तीवनाकर नेत्रोंमें लगानेसे तत्काल प्रकोप नष्ट होताहै । टेसूके स्वरसमें बत्तीवनाकर नेत्रोंमें लगानेसे विल्वपुष्पक और रक्तवर्णता रोग दूर होताहै । लोधके काथमें अंजनवनाकर लगानेसे—आसन्नतिमिररोग दूर होताहै ॥ और वकरीके मूत्रमें बत्तीवनाकर दोनों नेत्रोंमें लगानेसे बंदनेत्र खुलजाते हैं ॥ ३६—४० ॥

अथ चन्द्रप्रभावार्तिः ।

अंजनंश्चेतमरिचंपिप्पलीमधुयष्टिका ।

विभीतकस्यमज्जाचशंखनाभिर्मनःशिला ॥ ४१ ॥

एतानिसमभागानिछागीक्षीरेणोपयेत् ।

छायाशुष्कीकृतावर्तिनेत्रेषुचप्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥

अर्बुदंपटलंकाचंतिमिरंरक्तराजिकाम् ।

अधिमांसमलश्चैवयश्चरात्रौनपश्यति ॥

वर्तिश्चन्द्रप्रभानामजात्यन्धमपिसाधयेत् ॥ ४३ ॥

श्चेतमरिचं शोभांजनबीजम् ।

अर्थ—अंजन, सेंजिनेके बीज, पीपल, मुलैठी, वहेडेकी मींग, शंखनाभि और मैनशिल यह सब औषधि समान भाग ले वकरीके दूधमें पीस बत्तीवनाकर छायामें सुखादेवे । इनको नेत्रोंमें लगानेसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, मल, रात्र्यन्धता और जन्मांधता दूर होतीहै ॥ ४१—४३ ॥

अथ तिमिरहरयोगाः ।

चंदनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः ।

पिष्टैरियंकृतावर्तिरशेषतिमिरापहा ॥ ४४ ॥

नीलोत्पलंविडंगानिपिप्पलीरक्तचंदनम् ।

रसाअनंसैन्धवश्चनक्तंतिमिरनाशनम् ॥ ४५ ॥

विसंधात्रीफलरसैर्दिनैकंपरिभावितम् ।

अंजनंताम्रसहितंप्रगाढतिमिरप्रणुत् ॥ ४६ ॥

द्विनिशासैन्धवंयूषंबीजंकारञ्जकंसमम् ।

भृंगराजयुतंमर्द्यतिमिरंपटलंहरेत् ॥ ४७ ॥

मनःशिलाहतंनागंनागाद्विगुणरूप्यकम् ।

किंचित्कर्पूरसंमर्द्यद्रोणपुष्परसैर्दिनम् ।

वर्तिरेपाह्यभिष्यन्दिनाशायगजकेसरी ॥ ४८ ॥

अर्थ—लालचंदन, हरद, बहेड़ा, आमला और सुपारी इन सब औषधियोंको ढाकके रसमें पीस बत्ती बनाके नेत्रोंमें लगानेसे तिमिररोग दूर होताहै । नीले-कमल, बायबिडंग, पीपल, लालचंदन, रसीत और सेंधानोन यह सब औषधि एकत्र पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे तत्काल तिमिर रोग दूर होताहै । कमलकन्द (भँसीडे) को आमलोंके रसमें भावनादे पश्चात् अंजन और ताँबा मिला बत्ती बनाके नेत्रोंमें लगानेसे प्रगाढ़ तिमिररोग दूर होताहै । हलदी, दारुहलदी, सेंधानोन, मोंठ, मिर्च, पीपल और करंजके बीज यह सब औषधि समान भागले भांगरेके रसमें खरलकर नेत्रोंमें लगानेसे तिमिररोग और पटलरोग दूर होताहै । मैनाशिलसे मारा हुआ सीमा १ एकभाग, रूपा २ दो भाग और कुछ थोडासा कपूर इन तीनोंको गूमाके रसमें खरल कर बत्ती बनाके नेत्रोंमें लगानेसे नेत्राभिष्यन्द रोग दूर होताहै ॥ ४४-४८ ॥

अथ तारकाद्यावटिका ।

तारंताम्रंरसंसीसंकर्पूरंखर्परंतथा ।

रसांजनंकांस्यशंखंहंसपद्याद्रवैर्दिनम् ॥

वर्तिकृत्वाञ्जनाद्धन्तिसमस्तनेत्रजामयम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—चाँदी, ताँबा, पाग, सीसा, कपूर, खपरिया, रसीत, कौसी और शंख इन सब औषधियोंको एकत्र हंसपदीके रसमें एकदिन खरल कर बत्ती बना लेवे, इन बत्तियोंको आँखोंमें लगानेसे सर्व प्रकारके नेत्र रोग दूर होतेहैं ॥ ४९ ॥

अथ नेत्राञ्जनम् ।

टंकणंरसकंपिड्वाजम्भीरैःकांस्यभाजने ।

पक्ष्मरोगंरंकण्डूरंरक्तम्रावञ्चनाशयेत् ॥ ५० ॥

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचूर्णिताः ।

सर्वनेत्रामयंहन्यादेतत्सौगतमंजनम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—खपरिया और सुहागेको काँसीके बासनमें स्थापन कर जम्भीरी नीबूका रस डालके खरल करे, फिर इसको आँखोंमें लगानेसे पक्ष्मरोग, कण्डू और रक्तस्राव दूर होताहै । हलदी, दारुहलदी, हरड़, बालछड, कूठ और पीपल. यह सब समानभाग ले अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे—सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर, होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ शुक्रादिरोगहराञ्जनम् ।

पटकारीकृतंक्वाथं वस्त्रपूतं पुनः पचेत् ।

घनीभूतं समादाय लोहभाण्डे निधापयेत् ॥ ५२ ॥

मात्रामादाय तस्माद्विमाणिमथेन योजयेत् ।

घृष्टानेत्रेऽञ्जितायस्तु सर्वनेत्रगदाञ्जयेत् ॥ ५३ ॥

शुक्रकाचाजकाजातवर्तर्मावुदमथापिवा ।

अभिष्यन्दं विशेषेण पटलं चापि नाशयेत् ।

अञ्जनं नावरंचैतत्तिमिरान्तकरं परम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—कटेरीका काथ बनाकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर आगपे पकावे जब पकते पकते गाढा होजाय तब उतारकर लोहेके बासनमें करके रख देवे । पश्चात् इसमेंसे कुछ थोडासा लेकर उसमें संधानोनको घिसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं । विशेष करके यह औषधि शुक्र, काच, अजका, वर्तर्मरोग, अवुद, अभिष्यन्द, पटल और तिमिर रोगको दूर करेहै । यह सर्वप्रकारक अंजनोंमें श्रेष्ठ अंजन है ॥ ५२—५४ ॥

अथ दशमूलघृतम् ।

दशमूलाम्बुनापक्वं घृतं दुग्धञ्चतुर्गुणम् ।

त्रिफलाकल्कसंयुक्तं तिमिरं राजते पिबेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, दशमूलका काथ दो २ सेर, दूध ८ आठ सेर और कल्कके लिये कूटाहुआ त्रिफला ५॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे घृतको पकाकर सेवन करनेसे—तिमिररोग दूर होताहै ॥ ५५ ॥

अथ त्रिफलाचूर्णम् ।

यस्त्रिफलचूर्णमपथ्यवर्जसायंसमश्नातिहविर्मधुभ्याम् ।

विमुच्यतेनेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथाक्षीणधनोमनुष्यः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पथ्यको सेवन करनेवाला जो मनुष्य त्रिफलेका चूर्ण सहित और घृतके साथ सन्ध्याके समय सेवन करताहै, उसके सर्व प्रकारके नेत्र रोग दूर होजातेहैं ॥ ५६ ॥

अथ स्वल्पत्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यांसपयस्कंशृतंघृतम् ।

तिमिराण्यचिराद्धन्तिपीतमात्रंनिशामुखे ॥ ५७ ॥

अर्थ—गायका घी २ दोसेर, त्रिफलेका काथ २ दोसेर, गायका दूध दोसेर, और कल्कके लिये कूटाहुआ त्रिफला ५॥आधसेर ले यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे संध्याके समय पान करनेसे बहुत दिनोंका तिमिररोग दूर होताहै ॥ ५७ ॥

अथ मध्यमत्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलात्र्यूपणंद्राक्षामधुकंकटुरोहिणी ।

प्रपौण्डरीकंसुक्ष्मैलाविडंगनागकेशरम् ॥ ५८ ॥

नीलोत्पलंशारिवेद्रेचंदनंरजनीद्रयम् ।

कार्षिकैःपयसातुल्यंद्विगुणंत्रिफलारसम् ॥ ५९ ॥

घृतप्रस्थंपचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ।

तिमिरंरक्तसंस्त्रावंपटुलंकाचमर्बुदम् ॥ ६० ॥

विसर्पप्रदंरंकण्डूरंरक्तंश्वयथुमेवच ।

खालित्यंपलितंचैवकेशानांपतनंतथा ॥ ६१ ॥

विषमज्वरमर्शांसिशुक्रमाशुव्यपोहति ।

अन्येचबहवोरोगानेत्रजायेचवर्त्मजाः ॥ ६२ ॥

तन्सर्वान्नाशयत्याशुभारस्तिमिरंयथा ।

नचैवास्मात्परंकिंचिदपिभिःकाश्यपादिभिः ॥

दृष्टिप्रसादनंदृष्टंयथ स्यात्त्रिफलंघृतम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, दूध दो सेर ~~दि. ५५५५५५~~, काथ ४ चारसेर, और कल्के लिये हरड, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, दाख मुलेठी, कुटकी, पुण्डेरिया, छोटी इलायची, बायबिडंग, नागकेशर, नीलोत्पल, अनंतमूल, करियावासाऊ, लालचंदन, हलदी और दारुहलदी, प्रत्येक २ दो दो तोले ले, सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्धकरे । इस घृतको पान करनेसे तिमिर, काच, पटलादि सर्वप्रकारके नेत्ररोग, विसर्प, प्रदर, कण्डू, शोथ-दि नानाप्रकारके नेत्ररोग नाश होतेहैं ॥ ५८-६३ ॥

अथ बृहत्त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलायारसप्रस्थंभृंगराजरसस्यच ।

वृषस्यचरसप्रस्थंशतावर्याश्चतत्समम् ॥ ६४ ॥

अजाक्षीरंगुडूच्याश्चआमलक्यारसन्तथा ।

प्रस्थंप्रस्थंसमाहृत्यसर्वैरेभिर्घृतंपचेत् ॥ ६५ ॥

कल्कःकणासिताद्राक्षात्रिफलानीलमुत्पलम् ।

मधुकंक्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका ॥ ६६ ॥

तत्साधुसिद्धंविज्ञायशुभेभाण्डेनिधापयेत् ।

अर्द्धपानमधःपानमध्यपानंचशस्यते ॥ ६७ ॥

यावन्तोनेत्रजारोगास्तान्पानादपकर्षति ।

सरक्तेचातिरक्तेचदुष्टेचातिसुतेऽपिच ॥ ६८ ॥

नक्तान्ध्येतिमिरेकाचेनीलिकापटलार्बुदे ।

अभिष्यन्देऽधिमंथेचपक्ष्मकोपेसुदारुणे ॥ ६९ ॥

नेत्ररोगेषुसर्वेषुवातपित्तकफेषुच ।

अट्टिष्टिमंदट्टिष्टिचकफवातप्रदूषिताम् ॥ ७० ॥

सर्वतीवातपित्ताद्वासकण्डासन्नदूरदृक् ।

गृध्रट्टिफलंसद्योबलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ७१ ॥

सर्वनेत्रामयंहन्यात्रिफलं ~~५५५५५५~~ ॥ ७२ ॥

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, त्रिफलेका काथ दो २ सेर, भांगरेका रस २ दो सेर, शतावरका रस २ सेर अडूसेका रस २ दोसेर, बकरीका दूध दो २

सेर, गिलोयकारस दो २ सेर, आमलोंकारस २ दोसेर, और कल्कके लिये पीपल, मिश्री, दाख, हरड, बहेड़ा, आमला, नीलोत्पल, मुलेठी, क्षीरका-
कोली, गिलोय और कटेरी, यह सब ॥ आधसेर ले, सबको मिलाकर यथावि-
धिसे घृतको पकावे, जब पककर तैयार होजाय तब उत्तम वासनमें भरकर
रखदेवे, इसको भोजनके पहिले, भोजनके पश्चात्, और भोजनके मध्यमें पीवे,
इस घृतको पान करनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होजातेहैं । यह बृहत् त्रिफला
घृत रक्तयुक्त नेत्ररोग अतिरक्तयुक्त, दृष्टरक्त युक्त अनिसृत नेत्ररोग, रात्र्यन्ध-
रोग, निमिग रोग, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ,
दारुण पद्मकाप, वात पित्त और कफसे उत्पन्न दृष्ट नेत्ररोग अदृष्टि, मंददृष्टि,
कफ वातसे दूषित दृष्टि, नेत्रस्त्राव, वात और पित्तसे उत्पन्न दुई नेत्रोंमें कण्डू,
और समीपकी वस्तु दूर दीखे, इन सब रोगोंको दूर करे, तथा दृष्टिको
गोवकी समान करे, बल, वर्ण और अग्निको बढ़ावे, और सर्व प्रकारके नेत्र-
रोगोंको हरे ॥ ६४-७२ ॥

अथ भृंगराजतैलम् ।

भृंगराजरसप्रस्थेयष्टीमधुपलेनच ।

तैलस्यकुडवंपकंसद्योदृष्टिप्रसादयेत् ॥

नस्याद्रलीपलीतघ्नमासेनैतन्नसंशयः ॥ ७३ ॥

अर्थ—तेल ॥ आधसेर, भांगरेकाग्र २ दोसेर, और कल्कके लिये मुलेठी
चांगतोले ले, यथाविधिसे तेलको पकाकर जमीरादिमें मलनेसे तत्काल दृष्टि
प्रसन्न होतीहै । इस तेलका नाम लेनेसे एक महीनेमें बलि और पलित रोग दूर
होजातेहैं ॥ ७३ ॥

अथ गोमयाद्यंतैलमधुरघृतञ्च ।

गवांशकुत्काथविपक्रमुत्तमंहितंचतैलंतिमिरेपुनस्यतः ।

घृतंहितंकेवलमेवपेत्तिकेद्याजाविकंयन्मधुरैर्विपाचितम् ७४

अर्थ—गोवर्गके काथके साथ तेलको पकाकर नासलेनसे तिमिर रोग दूर
होताहै । और मधुरवर्मकी औषधियोंके साथ बकरी या भेड़के घृतको पकाकर
सेवन करनेसे पक्षिक नेत्ररोग दूर होताहै ॥ ७४ ॥

अथ नृपवल्लभतैलम् ।

जीवकऋषभकामेदाद्राक्षांशुमतीनिदिग्धिकाबृहती ।

मः कंबलाविडंगमंजिष्ठाशर्कराराम्ना ॥ ७५ ॥

नीलोत्पलंश्वदंष्ट्राप्रपौण्डरीकंपुनर्नवालवणम् ।

पिप्पल्यःसर्वेषांभागैरक्षांशिकैःपिष्टैः ॥ ७६ ॥

तैलंवायदिसर्पिर्दत्त्वाक्षीरंचतुर्गुणंपक्वम् ।

आत्रेयनिर्मितमिदंतैलंनृपवल्लभंनाम ॥ ७७ ॥

तिमिरंपटलंकाचंनक्तान्ध्यंचार्बुदंतथान्ध्यञ्च ।

श्वेतंचलिंगनाशंनाशयतिनीलिकाव्यंगम् ॥ ७८ ॥

मुखनासादौर्गन्ध्यंपलितंचाकालजंहनुस्तम्भम् ।

कासंश्वासंशोषंहिक्कांस्तम्भंतथान्ध्यतानेत्रे ॥ ७९ ॥

मुखजाड्यमर्द्धभेदंरोगंबाहुग्रहंशिरःस्तम्भम् ।

रोगानथोर्द्धजत्रोःसर्वानचिगेणनाशयति ॥ ८० ॥

नस्याल्पत्वात्तैलकुडवः साध्यः ।

अतोक्षांशिकैश्चतुर्भागैः मासकचतुष्टयैः ।

यद्वाऽक्षरूपौ भागन्तथा प्रस्थः साध्यः ।

अर्थ—तिलका तेल या गायका वी २ दोसेर, गायका दूध ८ आठसेर, और कल्कके लिये जीवक, ऋषभक, मेदा, दाख, शालपर्णी, कटेरी, बृहती, मुलेठी खिरैटी, वायविडंग, मंजीठ, चीनी, रास्ना, नीलेकमल, गोखरू, पुण्डेरिया पुनर्नवा, सेंधानोन और पीपल यह सब पिसी हुई औषधिऽ॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे तेलको पकावे । इसको नृपवल्लभ तेल कहतहैं, यह श्रीमान् आत्रेयजीने रचाहै । यह तेल या वी तिमिर, पटल, काच, नक्तान्ध्य, अर्बुद, आन्ध्य, श्वेत, लिंगनाश, नीलिका, व्यंग, मुख और नाककी दुर्गन्ध, अकालज पलितरोग, हनुस्तम्भ, कास, श्वास, शोष, हिक्का, स्तम्भरोग, नेत्रोंमें अंधेरा, मुखकी जड़ता अर्द्धभेद, बाहुग्रह, शिरःस्तम्भ और ऊर्द्ध जत्रुको दूर करैहै, इसका नास लेना चाहिये ॥ ७५-८० ॥

अथ तोयस्त्रावचिकित्सा ।

अजस्रंस्यस्याप्यश्रुस्वच्छं स्रवति चक्षुषः ।

तोयस्त्रावन्तु तं विद्याद्विकारं मारुतात्मकम् ॥ ८१ ॥

पानीयेन निघृष्टं हि फलं हिज्जलजं शुभम् ।

अश्रुपातं निहन्त्याशु वृद्धानामपि चाज्जनात् ॥ ८२ ॥

अर्थ—जिनके दोनों आंखोंमें सदैव स्वच्छ आंसू टपकें, उसके तोयस्त्राव रोग जानना, यह तोयस्त्राव रोग वातजन्य है । हिज्जलके फलोंको पानीमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे तोयस्त्राव दूर होता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथाजितं तैलम् ।

तैलस्य पचेत्कुडवं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन ।

आमलकीरसप्रस्थं शीरप्रस्थेन संयुतं कृत्वा ॥ ८३ ॥

अजितं नाभ्रातैलंतिमिरं हन्यान्निमिप्रोक्तम् ।

विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्या नयेत्तद्वत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—तैल ५॥ आधमेरु, आमलोंका रस २ दोमेरु, गायका दूध २ दोमेरु, और कल्कके लिये गुलटी चार ४ तैलके १० पदार्थोंमें तैलको मिलाकर इस अजित तैलका नाम देनेसे विविध रोग दूर होता है । और दोनों नेत्रोंकी ज्योति निर्मल्य हो जाती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथामृतघृतगुग्गुलुः ।

अमृतघृतपटोलचंदनं मुस्ततिका—

कुटजकुटजबीजं पूतनाकांडतिका ।

दहनविटपिमूलं दीर्घमूलायवश्च

कलिनरुफलधात्री सर्वतोभद्रविश्वम् ॥ ८५ ॥

समधरणघृतानां काथमादाय चैषां

विधिवदिति पचेत्तं सर्पिषः प्रस्थमेकम् ।

भिषगपि विधिपूर्वशोधयित्वा पुरस्य

वसुपलपरिमाणं कल्कमत्रैव दत्त्वा ॥ ८६ ॥

सुतिथिदिवसचन्द्रेभास्करंपूजयित्वा
 नयनगदगदीयःसर्पिरेतच्चकुर्यात् ।
 असिअसितसमुत्थानर्बुदान्काचशुक्रान्
 पटलतिमिररोगान्पित्तवकण्ड्वामयांश्च ॥ ८७ ॥
 विविधनयनदोषानश्रुपातामवातान्
 समशनदिनपूर्वोभोजनान्तेनिहन्ति ॥ ८८ ॥
 दहनविटपी लांगली दीर्घमूला श्यामालता ।

अर्थ—गिलोय, अड्डसा, परवल, लालचंदन, नागरमोथा, कुटकी, छाल, इन्द्रजौ, हरड़, चिरायता, कलिहारीकीजड, करियावासाऊ, जौ, बहेडा, आमला, कुम्भेर और सांठ, इनका काथ, दो २ सेर, गायका घी दो २ सर शुद्ध गूगुल १ एकसेर, शुभदिनमें चंद्रमा और सूर्य देवका पूजन करके इसको पकावे । यह—सर्व प्रकारके नेत्ररोग, ८० अस्सी प्रकारके अर्बुदरोग काचरोग, शुक्ररोग, पटलरोग, तिमिररोग, पित्तवकण्ड्वरोग, नानाप्रकारके नेत्रवि-
 कार और आम वातोद्भव अश्रुपातरोग, इन सबरोगोंको यह घृतगूगुल भोजनके अंतमें खायाहुवा है ॥ ८५—८८ ॥

अथ वासामृतगुगुलः ।

वासामृतानिम्बपटोलपत्रंफलत्रयाणांविधिवत्कषाये ।
 भिषक्पचेद्गुगुलकल्कमाज्यंजेतुंनराणांनयनोत्थदोषान्॥८९॥
 नेत्रामयान्सर्वसमुद्भवांश्चनिहन्तिशीघ्रंनयनाश्रुपातम् ।
 रागाश्रुशोथंपटलार्बुदश्चमलंसकण्डूतिमिरंचकाचम् ॥९०॥
 महद्भुजंचैवतथामवातंसर्वाणिकुष्ठानिचवातरक्तम् ।
 रसायनंसर्पिरनुत्तमश्चयथानुपानंभिषजाप्रयोज्यम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दो सेर, काथकेलिये अड्डसा, गिलोय, नीमकी-
 छाल, पटोलपत्र, हरड़, बहेडा, आमला, यह सब औषधि ४ चारसेर, जल ३२ बत्तीससेर, शेष ८ आठसेर, और कल्कके लिये गूगुल ५॥ आधसेर ले सबको मिलाकर यथाविधिसे सिद्ध करै । यह सर्व प्रकारके नेत्ररोग, तोयस्त्राव, पटलादि सर्व प्रकारके नेत्ररोग और आमवात, कुष्ठादि अन्यान्य नाना प्रकारके रोग यथानुपानके साथ दूर करै ॥ ८९—९१ ॥

अथ सर्वार्णसमंलाहम् ।

फिलात्वचमायसञ्चूर्णसहयष्टीमधुकंसमांशयुक्तम् ।
 मधुनासहसर्पिषादिनान्तेषु षोनिष्परिहारमाददीत ॥९२॥
 तिमिराक्षिसरक्तराजिकण्डूक्षणदान्ध्यार्बुददाहतोदरलान् ।
 पटलं-~~पटलं~~ काचपिल्वंशमयत्येवनिषेवितःप्रयोगः ॥९३॥
 नचकेवलमेवलोचनानांसुहितोरोगनिबर्हणायपुंसाम् ।
 दशनश्रवणोर्द्ध्वकण्ठजानांप्रशमेहेतुरयंतथामयानाम् ॥९४॥
 गुदजानिभगन्दरंप्रमेहंघ्नीहानंकुष्ठहलीमकंकिलासम् ।
 पल्लितादि विनाशयेत्तथाग्निचिरंतनञ्चकरोतिसुप्रचण्डम् ९५
 दयिताभुजपंजरपगूढःस्फुटचन्द्राभरणासुयामिनीषु ।
 सुरतानिमुहुर्निषेवतेऽसौपुरुषोयोगवरंनिषेवमाणः ॥ ९६ ॥
 मुखंचनीलोत्पलतुल्यगंधिशिरोरूहाश्चाञ्जनमेचकप्रभाः ।
 भवेच्चगृध्रस्यसमानलोचनःश्रुतंधरोवर्षशतंचजीवति ॥९७॥

अर्थ—हरड, बहेडा, आमला, दालचीनी, और मुलेठी, यह सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण, सबको मिलाकर सहत और घृतके साथ सन्ध्यासमय सेवन करे, इससे कुछ परहेज नहीं करे इससे तिमिररोग, रक्तराजिका, क्षणद, अन्ध्यरोग, अर्बुद, दशशूल पटल, शुक्ररोग, काचरोग, और पिल्वादि विविध प्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं। यह केवल नेत्ररोगोंकोही दूर नहीं करताहै, परन्तु अन्यान्य दन्तरोग श्रवणरोग, ऊर्ध्वरोग, कण्ठरोग, गुदज-रोग, भगन्दर, प्रमेह, घ्नीहा, कोढ, हलीमक, किलास और पल्लितादि रोगोंको-भी दूर करैहै। इस योगको सेवन करनेवाला स्त्रीके भुजारूपी पंजरमें आयाहुवा मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रफुल्लित होजाताहै और बागंवार मेशुन करनेमें तत्पर रहताहै, मुख नीलोत्पलकी गंधके समान सुगंधित होजाताहै, शिरके बाल अंजनकी समान कृष्णवर्ण होजातेहैं, नेत्र गंधकी समान ज्योतिवाले होजातेहैं। कर्ण अत्यन्त श्रेष्ठहोजातेहैं, और १०० सां वर्षतक जीतारहेहैं ॥९२-९७॥

अथ षडङ्गरसः ।

लक्ष्मीहरिहरःकाशीत्रिफलाऽदुःखोद्घोषिणी ।
 कामिनीगुग्गुलुदन्तीघोषागुग्गुलु बालकम् ॥ ९८ ॥

सर्वमेतत्समाहृत्यवातारितैलमर्दितम् ।

पुष्पितंस्फुटितंचक्षुःपटलंवातदूषितम् ॥ ९९ ॥

मुखपाकंकृमिदन्तरक्तजंप्रूतिनासिकम् ।

घ्राणस्तनादिरोगञ्चपूतिकर्णप्रशाम्यति ॥ १०० ॥

अर्थ—हलदी, पारा, सोरठकी मिट्टी, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, फूल-प्रियंगु, गृगुल, दन्ती, कडवीतोरई, गिलोय और सुगंधबाला यह सब औषधि एकत्र पीसकर अंडीके तेलमें खरल करे, इस औषधिको सेवन करनेसे आँखोंके फूले, स्फुटरोग, वातदूषित पटल रोग, मुखपाक रक्तजनित कृमि और दन्तरोग प्रूतिनासिका, घ्राणरोग, स्तनादिरोग और पूतिकर्ण रोग दूर होताहै ॥ ९८-१०० ॥

अथ नक्तान्ध्यचिकित्सा ।

दघ्नानिघृष्टंमरिचंरात्र्यन्धाञ्जनमुत्तमम् ।

सफरीमत्स्यकक्षारोनक्तान्ध्यहन्तिचाञ्जनात् ॥ १०१ ॥

कणाछागशकृन्मध्येपक्कातत्रसुपेपिता ॥

अंजनाद्धन्तिनक्तान्ध्यंतद्रत्सक्षौद्रसर्पिषा ॥ १०२ ॥

नदीजशंखत्रिकटून्यथाञ्जनंमनःशिलाद्वेचनिशेगवांशकृत् ।

सचन्दनेयंगुडिकांजनेषुप्रशस्यतरात्रिदिनेषुपश्यताम् १०३

केशराजास्वितंसिद्धंमत्स्याण्डंहन्तिभक्षितम् ।

नक्तान्ध्यंनियतंनृणांसप्ताहात्पथ्यसेविना ॥ १०४ ॥

अर्थ—काली मिरचको दहीमें घिसकर नेत्रोंमें अञ्जन लगानेसे रतौंधा दूर होताहै । सफरी मछलीके खारका अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे रतौंधा दूर होताहै । पीपलको बकरीकी मैंगनमें रख आगमें पकाकर पीस लेवे, इस अंजनको नेत्रोंमें लगानेसे, अथवा घृत और सहतको मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे—रतौंधा दूर होताहै । सैधानोन, शङ्ख, सोंठ, मिरच, पीपल, रसौत, मैनाशिल, हलदी, दारुहलदी, गोबर और लालचंदन इन सबको एकत्र पीसकर गोली बनालेवे, इन गोलीयोंको नेत्रोंमें आजनेसे अन्धता रोग दूर होताहै । मछलीके अंडेको कुकुरभांगरेके रसमें पकाकर भक्षण करनेसे—एकसप्ताहमें नक्तान्ध्य रोग दूर होजाताहै, इसपै पथ्यसे रहै ॥ १०१-१०४ ॥

अथ पिच्चटादिचाकत्सा ।

हरिद्रात्रिफलालोध्रमधुकंरक्तचंदनम् ।

भृंगराजरसेपिष्ट्वावर्षयेछौहभाजने ॥ १०५ ॥

तथाताम्रेचसप्ताहंकृत्वावर्तिञ्चचाञ्जयेत् ।

पिच्चटीधूमदर्शीचतिमिरोपहतेक्षणः ॥ १०६ ॥

प्रातर्निश्चयञ्जयेन्नित्यं सर्वनेत्रामयापहम् ।

इडामूत्रेणभूयात्रीमूलंपिष्ट्वाचवर्तिकम् ॥

नवनीतेनसंयुक्ताहन्तिपुष्पंचिरन्तनम् ॥ १०७ ॥

अर्थ—हलदी, हरड, बहेडा, आमला, लोध, मुलेठी और लालचंदन यह सब औषधि समान भाग लेकर भांगरेके रसमें पीसकर सातदिन लोहेके पात्रमें और रात दिन तांबेके पात्रमें धिमे, फिर इसकी बत्ती बनाकर प्रातःकाल आग गात्रिम आखोंमें आजनेमे पिच्चट, धूमदर्शन, तिमिरादि सर्वप्रकारके नेत्र रोग दूर होताहै । भुईआमलेको गौंके भूत्रमें पीसकर बत्तीबना नौनीची मिलाके नेत्रोंमें आजनेमे बहुत दिनोंका नेत्रोंका फूला दूर होजाता है ॥ १०५-१०७ ॥

अथ पुनर्विक्किपाकृमिपानमश्च ।

शम्बुकंचवगटंशदग्धंचैतद्विचूणयेत् ।

अंजननवनीतेनहन्तिपुष्पंचिरन्तनम् ॥ १०८ ॥

अंजनात्राशयेत्पुष्पंशौद्रैर्वास्वर्णमाक्षिकम् ।

अपामार्गस्यबीजाभिमरिचंकण्टकारिका ॥ १०९ ॥

अर्कक्षीरेरुयहंतत्तुशुष्कंमृद्वाग्निनापचेत् ।

तत्पृष्ठेच्छादनंपात्रंसगन्ध्रलेपयेद्बहिः ॥ ११० ॥

इत्थंतदुत्थितंधूमनेत्रेकर्णमुखेऽथवा ।

नासायांग्राहयेद्धूमंकृमिपातोभवत्यलम् ॥ १११ ॥

अर्थ—शम्बुक अथवा कौडीकी भम्मको नौनीचीम मिलाकर नेत्रोंमें अंजन लगानेमे पुष्परोग दूर होताहै । मोनामाखीको सहनम मिलाकर अंजन लगानेमे पुष्परोग दूर होताहै । चिरचिटेके बीज, कालीमिरच और कटेरी,

इनको एकत्र आकके दूधमें तीन दिनतक सुखाके मंद मंद आगमें पकाओ और ऊपर छेदोंवाला पात्र ढकदेवे और बाहरसे लीपदेवे, इसमेंसे जो धुआँ निकले उस धुएँको कान, नेत्र, मुख और नासिकामें प्रहण करे तो सब कृमि गिर पड़तेहैं ॥ १०८-१११ ॥

इति चक्षुरोगाधिकारः ।

अथ शिरोरोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ वातशिरोरोगेयत्नाः ।

वातिकेशिरसोरोगेस्नेहस्वेदानुवासनान् ।

पानानुपनाहान्श्चकुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥

पयोऽनुपानसेवेतघृततैलमथापिवा ।

स्वेदोपनाहान्कुर्वीतकृशरापायसादिभिः ॥ २ ॥

कुष्ठमेरण्डमूलन्तुलेपात्कांजिकपेपितम् ।

शिरोऽर्त्तिनाशयत्याशुपुष्पवामुचुकुन्दजम् ॥ ३ ॥

पंचमूलीशृतक्षीरंनस्येदद्याच्छिरोरोगदे ॥ ४ ॥

अर्थ—वातिक शिरोरोगमें स्नेह, स्वेद, अनुवासन, पान और उपनाह स्वेद यह सब वातनाशक करने चाहिये । दूधका अनुपान या घृत और तेल, इसमें विशेष हितकारीहैं । दूध और कृशरादिके द्वारा स्वेद और प्रलेपादिका प्रयोगकरे । कूठ और अरंडकी जड़को काँजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे, अथवा मुचुकुन्दके फूलोंको जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे मस्तककी पीड़ा दूर होतीहै । पंचमूलके साथ औटाए दूधका नास देनेसे शिरोरोगकी पीड़ा दूर होतीहै ॥ १-४ ॥

अथ शिरोरोगचर्मबन्धनविधिः ।

आशिरोव्यायतश्चर्मकृत्वाष्ठांगुलिमुद्रितम् ।

तेनावेष्ट्यशिरोऽधस्तान्मापकल्केनलेपयेत् ।

निश्चलस्योपविष्टस्यतैलैरुष्णैःप्रपूरयेत् ॥ ५ ॥

धारयेदारुजःशान्त्यैयामंयामार्द्धमेववा ॥

एषएवविधिःकार्यःतथाकर्णाक्षिपूरणे ॥ ६ ॥

अर्थ—आठ अंगुल ऊँचा और मस्तकके चारों ओर आजाय ऐसे चमड़ेमें रोगीके मस्तकको लपेटकर बांधे और उसके नीचेकी संधियोंको उड़के-

चूनसे बंद करदेवे, और रोगीके मस्तकपर भी उडदांके चूनकाही लेप करदेवे, पश्चात् रोगीको निश्चल बैठा करके उसमें गरम गरम तेलको भरदेवे, एक प्रहर या अर्द्ध प्रहर अर्थात् जबतक पीडा रहे तब तक तेल धारण करे रहे, यही विधि कान और आँखोंके भरनेमें भी करनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ नागरसिद्धनस्यादियोगाः ।

नागरकल्कविमिश्रंक्षीरंनस्येनयोजितंपुंसाम् ।

नानादोषोद्धूतांशिरोरुजांहन्तितीव्रतराम् ॥ ७ ॥

मृणालविसशालूकचंदनोत्पलकेशरैः ।

स्निग्धशीतैःशिरोदद्यात्तद्भदामलकोत्पलैः ॥ ८ ॥

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धंघृतंहितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—सांठके कल्कको दूधमें मिलाकर नास देनेसे नाना प्रकारके दोषोंसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग दूर होताहै । कमलकी नाल, कमलकी जड़ भर्साडे, लाल चंदन, कमल और कमलकेशर, अथवा आमला और उत्पल इनका शीतल काथ स्निग्ध करके शिर्ष पर प्रयोग करनेसे शिरोरोग दूर होताहै । मुलेठी लाल-चंदन और अनन्तमूल तथा दूध, इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृत पीनेसे शिरो-रोग दूर होताहै ॥ ७-९ ॥

अथ सद्यःशूलहरयोगौ ।

कृष्णाह्वशुण्ठीमधुकंशताहोत्पलपाकलैः ।

जलपिष्टैःशिरोलेपःसद्यःशूलनिवारणः ॥ १० ॥

देवदारुनतंकुष्ठंनलदंविश्वभेषजम् ।

लेपःकांजिकपिष्टोहितैलयुक्तःशिरोऽर्त्तिनुत् ॥ ११ ॥

अर्थ—सांठ, पीपल, मुलेठी, मौफ, कमल और कूठ इनका जलमें पीसके सिरपे लेप करनेसे तत्काल शिःशूल दूर होजाताहै । देवदारु, तगर, कूठ, खश और सांठ, यह सब आपाधि कांजीमें पीस तेल मिलाकर लेप करनेसे शिरो-रोग दूर होताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ शिरोर्त्तिहरयोगाः ।

त्रिकटुकपुष्करबीजरजनीरास्नातुरंगगन्धानाम् ।

क्वाथःशिरोऽर्त्तिजालंनसापीतोनिवारयति ॥ १२ ॥

• तोत्पलंचन्दनकुष्ठयुक्तं शिरोरुजायांसघृतः प्रलेपः ।

प्रपौण्डरीकंसुरदारुकुष्ठं यष्ट्या ह्रमेलाकमलोत्पले च ॥

शिरोरुजायांसघृतः प्रदेहो लोहैर्वकैः पद्मकरोचकैश्च ॥ १३ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, पोहकरमूल, विजयसार, हलदी, रास्ना और असगंव इनका काथ नासिकाके द्वारा पीनेसे सर्व प्रकारकी शिरकी पीडा दूर होती है । तगर, कमल, लालचंदन और कूठ यह सब औषधि एकत्र पीस घृतमें मिलाकर प्रलेप करनेसे शिरकी पीडा शान्त होती है । पुण्डेरिया, देवदारु, कूठ, मुलेठी, इलायची कमल और कुसुद, मण्डूर, वक, पद्माख, और रोचक (गठिन भेद) यह सब औषधि समानभाग ले घृतमें पीसके प्रलेप करनेसे शिरकी पीडा दूर होती है ॥ १२॥१३ ॥

अथ जीवकाद्यंतैलम् ।

जीवकर्पभकौद्राक्षामधुकं मधुकाम्बुना ।

नीलोत्पलंचंदनंचविदारीशर्करा तथा ॥ १४ ॥

तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे ।

जांगलस्य तु मांसस्य तु लार्द्धस्य रसेन तु ॥ १५ ॥

सिद्धमेतद्रवेन्नस्य तैलमर्द्धावभेदकम् ।

बाविर्धकर्णशूलश्चतिमिरगलशुण्डिकाम् ॥ १६ ॥

वातिकंपैत्तिकंचैव शीर्षरोगं निवृच्छति ॥ १७ ॥

अर्थ—तिलोंका तेल २ दोसेर, दूध १२ वाग्ह सेर, जांगलदेशके जीवोंके मांसकारस ६। सवाछे सेर, मुलेठीका काथ २ दोसेर, कल्कके लिये जीवक, ऋषभक, दाख, मुलेठी, नीलकमल, लालचंदन, विदारीकन्द और खांड, यह सब ५॥ आधसेर ले यथाविधिसे तेलको पकाकर नासलेनेसे अर्द्धावभेदक, बधिरता, कर्णशूल, तिमिर, गलशुण्डिका और वातज तथा पित्तज शिरोरोग दूर होते हैं ॥ १४—१७ ॥

अथ षड्विन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलंतगरं शताह्वा जीवन्ति रास्ना सहसैन्धवश्च ।

भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ १८ ॥

आजं यस्तैलविमिश्रितश्चतुर्गुणे भृंगरसे विपक्वम् ।

षड्बिन्दोनासिकयाविधेयाःशीघ्रनिहन्युःशिरसोविकारान् १९
च्युतांश्चकेशांश्चलितांश्चदन्तानंबद्धमूलान्सुदृढीकरोति ।

अष्टवर्णदृष्टिप्रतिमश्चक्षुर्लंबबाहोरधिकंददाति ॥ २० ॥

अर्थ—तिलकातेल २ दोसेर, भांगरेका रस आठ ८ सेर, बकरीका दूध आठ ८ सेर और कल्कके लिये अरण्डीजड़, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सैंधानोन, भांगरा, बायबिडंग, मुलेठी और सांठ यह सब औषधि ॥ आध सेर ले यथाविधिसे तेलको पकावे, इस तेलका नाम लेनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होकर केश दृढमूल और नेत्रोंकी ज्योति उज्ज्वल होजातीहै ॥ १८-२० ॥

अथ दशमूलतैलम् ।

दशमूलकपायेणपयसाद्विगुणेनच ।

कल्कतश्चाष्टवर्गेणतैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २१ ॥

तत्तैलंविहितंश्रेष्ठं सर्वदावातरोगिणे ।

शिरःकर्णाक्षिशूलेषुसर्वत्रैवप्रशस्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—तेल २ दोसेर, दूध ४ चांगरे, दशमूलका काथ ८ आठसेर और कल्कके लिये अष्टवर्ग ॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे तेलको सिद्धकरे । यह तेल सर्वप्रकारके शिरःशूल, कर्णशूल और चक्षुःशूलको दूर करताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ द्वितीयषड्बिन्दुतैलम् ।

शुण्ठीविडंगयष्ट्याह्वैःभृंगतोयशृतंघृतम् ।

षड्बिन्दुनस्यदानेनसर्वानूर्द्ध्वगदाजयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ—तिलका तेल २ दोसेर, भांगरेका रस ८ आठसेर और कल्कके लिये सांठ, बायबिडंग और मुलेठी ॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे तेलको पकावे । इस तेलका नाम लेनेसे शीवाके ऊर्ध्वगत शिरोमेगादि सम्पूर्ण रोग दूर होतेहैं ॥ २३ ॥

अथ वरुणाद्यं घृतम् ।

वरुणशतसुतायामेषशृङ्गीकरंजी

वरककुभजयन्तीशिशुश्वोनाग्निमन्थः ।

वसिरवसुगुडूचीबिम्बिशौरीद्वयंच

कुशदहनजटाजशृगिमालूरविश्वम् ॥ २४ ॥

बृहतियुगलमूलंमोरटानांद्विप्रस्थं

वसुगुणजलदानादष्टभागावशेषम् ॥ २५ ॥

विपच्यमायूरमथापिमांसप्रस्थंतथाक्षीरसमंवरायाः ।

प्रस्थंचसर्पिर्मधुकंकिरांतरास्नागुडूचीपिचुमर्दरात्रिः ॥ २६ ॥

प्रत्येकशःसार्द्धपलञ्चकल्कंदत्त्वातुसर्वविपचेद्विधिज्ञः ।

भ्रूशंखमन्याशिरसांविकारास्त्रिदोषजोद्धन्द्वंजएवनातः ।

नानाप्रकारेशिरसोविकारेतथायथादन्तिबधेमृगेन्द्रः ॥ २७ ॥

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, काथके लिये वरनाकी छाल, शतावर, मेढा-
शिगी, करंज, वडीकरंज, अर्जुनकीछाल, जयन्ती, सैजना, श्योनाक, अरणी,
मफेद खिरंटी, आककी जड़, बेल, सांठ, गिलोय, कुंदुरू, नीली कटसरैया,
पीलीकटसरैया, कुशा, चीता, बालछड, काकड़ाशिगी, बृहती, कटेरी और
अंकोलकी जड़, यह सब औषधि २ दोसेर, पाकके लिये जल १६ सोलहसेर,
शेष २ दोसेर, मोरका मांस २ दोसेर और त्रिफला २ दोसेर, जल १६ सोलहसेर,
शेष २ दोसेर, गायका दूध २ दोसेर और कल्कके लिये मुलेठी, चिरायता,
रास्ना, गिलोय, नीमकी छाल और हलदी प्रत्येक दो दो तोले ले, यथाविधिसे
घृतको मिद्धकरे । इस घृतको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शिरोरोगादि अनेक
रोग दूर होतेहैं ॥ २४-२७ ॥

अथ मयूराद्यं घृतम् ।

दशमूलीबलारास्नामधुरैस्त्रिफलैःसह ।

मधुरंपक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ २८ ॥

जलेपक्ताघृतप्रस्थंतस्मिन्क्षीरसमंपचेत् ।

मधुरैःकार्षिकैःकल्कैःशिरोरोगादितापहम् ॥ २९ ॥

कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ।

मयूराद्यमिदंख्यातमूद्धर्वजव्रुगदापहम् ॥ ३० ॥

दशमूलादिनातुल्योमयूरइहगृह्यते ।

अन्येत्वाकृतिमानेनमयूरग्रहणंविदुः ॥ ३१ ॥

आसुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिबुद्धिमान् ।

कल्केनानेनविपचेत्सर्पिर्हृद्धगदापहम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दो सेर, दशमूल, खिरौटी, रास्ना, त्रिफला और जीवनीय दशक, इन औषधियोंका काथ ४ सेर, पक्ष, पित्त, अन्त्र, विष्ठा, पाद, और मुखको छोड़कर मोरके शेष अंगोंके मांसका काथ ४ चारसेर, और कल्कके लिये जीवनीय दशक ५॥ आधमेर ले यथाविधिसे घृतको पकावे । यह—शिरोरोग, कर्णरोग, नासिका रोग, नेत्ररोग, जिह्वा रोग, और गलरोगको दूर करेहै । यह मयूराद्य घृतविशेष करके उर्द्धजत्रु रोगको दूर करेहै । यहाँ दशमूलदि औषधियोंके समान मयूरका मांस लिया जाताहै । और अन्यवैद्य आकृतिसे ही मोरके मांसको ग्रहण करतेहैं । मुसा, मुरगा, हंस और शशकके मांसके कल्कमें भी घृतको भिद्धकरना चाहिये, यह सब घृत उर्द्धरोगको दूरकरेहै ॥ २८-३२ ॥

अथ द्वितीयमयूराद्यंघृतम् ।

शतमयूरमांसस्यदशमूलबलातुलाम् ।

द्रोणेम्भसःपचेत्क्षुत्वातस्मिन्पादस्थितेततः ॥ ३३ ॥

निक्षिप्यपयसोद्रोणेपशोत्तत्रघृताढकम् ।

प्रपौण्डरीकवर्गोक्तैर्जीवनीयैश्चभेषजैः ॥ ३४ ॥

मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्द्धजत्रुगदापहम् ।

मायूरमेतन्निर्दिष्टंमर्वानिलहंशुभम् ॥ ३५ ॥

मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्माग्नाशनम् ।

विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—गायका घी ८ आठमेर, मोरका मांस १२॥ मादेवारहमेर, दशमूल और खिरौटीका काथ १२॥ मादेवारहमेर, दूधवनीम ३२ मेर, और कल्कके लिये प्रपौण्डरीकवर्गकी सम्पूर्ण औषधि और जीवनीयगणकी समस्त औषधि यह सब २ दो सेर लेकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह घृत मेधा, स्मरण-शक्ति और बुद्धिको बढ़ावेहै । उर्द्धजत्रुरोगको दूर करेहै । तथा सर्वप्रकारके वातरोग, मन्यारोग, कर्णरोग, शिरोरोग, नेत्ररोग, अपस्मार, विषविकार, वातरोग, श्वास, विषमज्वर और खाँसीको दूर करेहै ॥ ३३-३६ ॥

अथ त्र्यषणादिगुटिका ।

त्रीणिकटूनितथातिविषाणिक्षारयुतौत्रिफलात्रिवृतानि ।
 दन्तिनिवासकलोध्नतानिचन्दनवारीभकणामृतकानि ३७
 ग्रन्थिकपुष्करमूलस्यतित्तककटफलकेन्दुयवस्य ।
 त्वग्दलमेघनीलोत्पलकस्यवालमूलालसजातिफलस्य ३८॥
 द्रव्यमितंपिचुमात्रक्रमेणचाष्टपलानितथायसकस्य ।
 अष्टपलन्तुशिलाजतुकस्यशुभयाकृतद्व्यक्षसमम् ॥ ३९ ॥
 शुभवासरखादनकालशुभंमुखदारुणरोगशिरोव्यथनम् ४०
 हन्तिभ्रमंपटलंतिमिरश्चपिष्टकशुक्रमथाबुदकञ्च ।
 पीलतहंसुखकामकरंयुवतीरमणेपिवदुग्धसमम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, अतीस, जवाखार, सजी, हगड़, बहेडा, आमला, निसोत, दन्ती, अड्डसा, लोध, तगर, लालचंदन, सुगन्धवाला, गज-पीपल, गिलोय, गाठिवन, पोहकरमूल, नागरमोथा, कुटकी, कायफल, इन्द्रजौ, दालचीनी, तेजपात, मोथा, नीलोत्पल, कच्चीमूली, हरिताल, और जायफल, प्रत्येककाचूर्ण २ तोले, लोहेका चूर्ण आठ ८ पल, शिलार्जीत ८ आठ पल, और वंशलोचन ८ आठपल, सब औषधियोंको एकत्र जलमें पीसकर गोली बनालेवे । इन गोलियोंको उत्तम दिन उत्तम समयमें खावे, इससे मुख दारुणरोग, शिरकीपीडा, भ्रम, पटल, तिमिर, पिष्टक, शुक्र, नेत्राबुद और पलित्तादि रोग दूर होतेहैं और सुखपूर्वक कामदेवको बढावहै, और स्त्रीसंसर्गमें दूधके साथ पीवे ॥ ३७-४१ ॥

अथ सूर्योदयरसः ।

मृतसूताभ्रकंतीक्ष्णंगंधंताम्रमृतंसमम् ।
 स्नुहीक्षीरैर्दिनमर्घ्यभक्षयेन्माषमात्रकम् ॥ ४२ ॥
 मधुनामार्दितंभक्षेल्लोहपात्रेदिनेदिने ।
 सप्ताहात्सूर्यावर्त्तादीञ्छिरोरोगान्निवर्त्तयेत् ।
 सूर्योदयरसोनाम्नासर्वद्विगदापहः ॥

अर्थ—मृतपारा, अभ्रक, ईस्पात, गंधक और ताँबा यह सब औषधि समान-
भाग ले थूहरके दूधमें एकदिन खरल कर गोली बनालेवे, इसको प्रतिदिन एक-
मासेभर खावे । इस औषधिको लौहिके पात्रमें सहतके साथ खरलकर सेवन
करनेसे ७ सात दिनमें ही सूर्यवर्त्तादि नाना प्रकारके शिरोरोग दूर होतेहैं । यह
सूर्योदय रस सर्व ऊर्द्धरोगोंको दूर करैहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ महालक्ष्मीविलासोरसः ।

लौहमभ्रविषमुस्तं त्रिफलात्रिकटुन्तथा ।

धुस्तूरवृद्धदारुबीजमिन्द्राशनस्यच ॥ ४४ ॥

गोक्षुरकद्वयञ्चैव पिप्पलीमूलमेवच ।

एतेषान्तुसमंचूर्णरसैर्धुस्तूरकस्यच ॥ ४५ ॥

निष्पिष्यवटिकाकार्याबदरास्थिप्रमाणतः ।

अनुगण्डष्टोक्तव्यं शुण्ठीचूर्णद्विमासकम् ॥ ४६ ॥

आर्द्रकस्यरसञ्चैव तोलकद्वयमेवच ॥

महालक्ष्मीविलासोऽयं सन्निपातनिवारकः ॥ ४७ ॥

अर्थ—लोहा, अभ्रक, विष, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, भिरच,
पीपल, धतूरेके बीज, विधारेके बीज; भांगरेके बीज, गोखरूके बीज और
पीपरामूल यह सब औषधि समान भाग लेकर धतूरेके रसमें खरलकर बेरकी
गुठलीकी बराबर गोली बनालेवे, २ दो मासे सोंठके चूर्णके साथ खावे,
पश्चात् दो २ तोले अदरकका रस पान करे । यह महालक्ष्मीविलास रस
सन्निपातको दूर करैहै ॥ ४४—४७ ॥

अथ सूर्यावर्तहरयोगः ।

दशमूलीकषायन्तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ।

नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्यावर्तशिरोऽर्तिनुत् ॥ ४८ ॥

ततः तालपल्लवरसे खरमंजरीकल्केन नवनीतम् ।

नस्येन जयति नियतं सूर्यावर्तमुद्वारम् ॥ ४९ ॥

सूर्यावर्तनिहन्त्याऽनस्येनैव प्रयोगराट् ।

कल्याणकं पिबेत् सर्पिः सूर्यावर्तनिपीडितः ॥ ५० ॥

अर्थ—दशमूलका काथ और सैधेनोनके साथ घृतको पकाकर नास लेनेसे अर्द्धाबभेदक और सूर्यावर्त्त नामक शिरोरोग नष्ट होताहै । अमलतासके पत्तोंका रस और चिरचिट्टेका कल्क, इनके साथ नौनी वी मिलाकर नासलेवे और पथ्यसे रहे, उससे सूर्यावर्त्त रोग दूर होताहै । चिरचिट्टेके बीजोंका कल्क और भांगरेके रसके साथ बकरीका दूध मिलाकर सूर्यकी तपनमें पकाकर नास लेनेसे सूर्यावर्त्त रोग दूर होताहै पूर्वोक्त कल्याणक घृतको पीनेसेभी सूर्यावर्त्त रोग दूर होताहै ॥ ४८—५० ॥

अथ सूर्यावर्त्तादिचिकित्सा ।

शारिवोत्पलकुष्ठानिमधुकंचाम्लपेषितम् ।

सर्पिस्तैलयुतोलेपःसूर्यावर्त्तार्द्धभेदयोः ।

एषएवप्रयोक्तव्यःशिरोरोगक्षयात्मके ॥ ५१ ॥

भृंगराजमूलं कांजिकेन पिष्ट्वा नस्यं देयं मस्तकशूलं हन्ति ।

पटोरिमूलं पिष्ट्वा शिरोछेपाच्च शूलं हन्ति ॥

इति शिरोरोगाध्यायः ।

अर्थ—करियावासाऊ, कमल, कूठ और मुलेठी इनको एकत्र काँजीमें पीस घृत और तेलमें मिलाकर मस्तक और ललाटपै प्रलेप करनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धाबभेदक रोग दूर होताहै । भांगरेकी जड़को काँजीमें पीसकर नास लेनेसे मस्तकशूल दूर होताहै पेटारीकी जड़को पीसकर माथेपै प्रलेप करनेसे शिर-शूल दूर होताहै ॥ ५१ ॥

इति शिरोरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ प्रदरचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ वातजप्रदरचिकित्सा ।

दध्नासौवर्चलाजाजीमधुकंनीलमुत्पलम् ।

पिबेत्क्षौद्रयुतंनारीवातामृग्गदपीडिता ॥ १ ॥

कुशमूलं समुद्धृत्यपिबेत्तलवारिणा ॥

एतत्पीत्वात्र्यहान्नारीप्रदस्तप्परेमुच्यते ॥ २ ॥

बलामंशुमतींद्राक्षांलाक्षांकरोहणीम् ।

कारवीकृष्णलवणंशारिवालोध्रचंदनम् ॥ ३ ॥

वातासृग्गदशान्त्यर्थपिबेद्घ्रावराङ्गना ॥ ४ ॥

अर्थ—कालानोन, जीरा, मुलेठी और नीलोत्पल यह सब औषधि समान-
भाग ले दहीमें पीसकर सहतमें मिलाकर सेवन करनेसे स्त्रियोंका वातज प्रदर
रोग दूर होताहै । कुशकी जड़को चावलोंके जलमें पीसकर सेवन करनेसे ३
तीन दिनमेंही स्त्रियोंका प्रदर रोग दूर होताहै । खिरौटी, शालपर्णी, दाख,
लाख, कुटकी, सौंफ, कालानोन, अनंतमूल, लोथ और लालचंदन इनको एकत्र
दहीमें पीसकर सेवन करनेसे वातजनित प्रदररोग दूरहोताहै ॥ १-४ ॥

अथ पित्तजादिप्रदरचिकित्सा ।

धात्रीरसंसितायुक्तंयोनिदाहापहंपिबेत् ।

जीवनीयोपसिद्धंचपयःसमधुशर्करम् ॥ ५ ॥

पीतश्वसृग्गदंहन्तिपित्तजंरक्तजंतथा ।

काकजानुकमूलंवामूलंकार्पासमेववा ॥ ६ ॥

पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थपिबेत्तण्डुलवारिणा ।

रोहितकमूलकलंकपाण्डवेऽसृग्गदेपिबेत् ॥ ७ ॥

अशोकवल्कललाथंशृतंदुग्धंसुशीतलम् ।

यथाबलंपिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्गदनाशनम् ॥ ८ ॥

समंगाधातकीपुष्पमूलंनीलोत्पलस्यच ।

एतत्क्षीरेणपातव्यंस्त्रीणांप्रदरनाशनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—आमलोंके रसमें बृग डालकर पीनेमें योनिदाह दूर होताहै । जीवनी-
यगणकी औषधियोंके साथ दूधको पकाकर सहत और बृग मिलाके पीनेसे
रक्तज और पित्तज प्रदररोग दूर होताहै । काकजंघाकी जड़, अथवा कपासकी
जड़को चावलोंके जलमें पीसकर सेवन करनेमें पाण्डुवर्ण युक्त प्रदररोग दूर
होजाताहै । रोहितककी जड़को पीसकर पीनेसेभी पाण्डुवर्ण प्रदररोग दूर होताहै
अशोककी छालको दूधमें औटाकर शीतल करके बलको देखकर प्रातःकाल
पीवे तो अत्यन्त तीव्र प्रदररोग दूर होताहै । मँजीठ, धायके फूल और नीलो-
त्पलकी जड़को एकत्र दूधके साथ पीसकर सेवन करनेसे स्त्रियोंका प्रदर रोग
दूर होताहै ॥ ५-९ ॥

अथ दार्व्यादिकाथः ।

दावीरसांजनवृषाब्दकिरातबिल्व-

भल्लातकैश्चमुकृतोमधुनाकषायः ।

पीतोजयत्यतिबलंप्रदरंसमूलं

पीतासिताऽरुणविलोहितनीलशुक्रम् ॥ १० ॥

अर्थ-दारुहलदी. रसांत, अट्टसा. नागरमोथा, चिगयता, बेल और भिलावा इनके काथमें सहन डालकर पीनेमें सर्वप्रकारके प्रदर रोग दूर होतेहैं ॥ १० ॥

अथ सर्वप्रदरचिकित्सा ।

गुडेनवादरंचूर्णमोचमामंतथापयः ।

पीतालाक्षाचसघृतापृथक्प्रदरनाशनाः ॥ ११ ॥

अर्थ-सूखे बेरोंके चूर्णमें गुड मिलाकर अथवा कच्चे कैलेको दूधमें पीसकर पीनेसे या लाखको घीके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके प्रदररोग दूर होजातेहैं ॥ ११ ॥

अथ चन्दनादिचूर्णम् ।

चंदनवरुणलोध्रमुशीरंपद्मकेशरम् ।

नागपुष्पञ्चबिल्वञ्चभद्रमुस्तकशर्करा ॥ १२ ॥

ह्रीवेरंचैवपाठाचकुटजस्यफलंत्वचम् ।

शृंगवेरंसातिविषाधातकीसरसांजनम् ॥ १३ ॥

आम्रास्थिजम्बूसारास्थितथामोचरसोऽपिच ।

नीलोत्पलंसमंगाचसूक्ष्मैलादाडिमत्वचम् ॥ १४ ॥

चतुर्विंशतिमेतानिसमभागानिकारयेत् ।

तण्डुलोदकसंयुक्तंमधुनासहयोजयेत् ॥ १५ ॥

योगंलोहितपित्तानामर्शसांज्वरिणान्तथा ।

मूर्च्छामदोषमृष्टानांतृषार्त्तानांप्रदापयेत् ॥ १६ ॥

अतीसारेतथाच्छर्द्यास्त्रीणाञ्चरक्तसंग्रहे ॥

प्रच्युतानां च गर्भाणां स्थापनं परमुच्यते ।

अश्विभ्यां सम्मतो योगो रक्तपित्तनिवर्हणः ॥ १७ ॥

अर्थ—चंदन, वरनाकीछाल, लोध, खश, कमलकेशर, नागकेशर, बेल, नागर, मोथा, चीता, सुगंधवाला, पाठ, कुंडेकीछाल, इन्द्रजौ, अतीस, धायकेफूल, रसौत, आमकी गुठली, जामुनकी गुठली, मोचरम, नीलकमल, मैजीठ, छोटी इलायची और अनारके फलकीछाल, यह औषधि समान भाग ले चूर्ण कर चावलोंके जलके साथ और सहत मिलाकर भोजन करनेमें रक्तपित्त, ववामीर, ज्वर, मूच्छा, आमदोष, तृषा, अतीसार, वमन और स्त्रियोंके रुधिरके विकार दूर होते हैं । यह योग गिरने हुए गर्भको स्थापित करे, और अश्विनी कुमारोंकी सम्मतिसे रचा गया है और रक्तपित्त नाशक है ॥ १२-१७ ॥

अथ प्रदरान्तकलौहः ।

लोहं ताग्रं हरितालं वंगमभ्रं वराटिका ।

त्रिकटुत्रिफलाचित्रं विडंगं पटुपञ्चकम् ॥ १८ ॥

चविकापिप्पलीशं ग्वं वचाहवुपपाकलम् ।

शठीपाठादेवदारुणलाचवृद्धदारकम् ॥ १९ ॥

एतानि समभागानि संचूर्ण्य वटिकांकुरु ।

शर्करामधुसंयुक्तं घृतेन भावयेत्पुनः ॥ २० ॥

रक्तं शीतं तथा नीलं पीतं प्रदरदुस्तरम् ।

कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलं च सर्वगम् ॥ २१ ॥

मन्दाग्रिमरुचिं पाण्डुकृच्छ्रश्च श्वासकामनुत् ।

आयुः पुष्टिकरं वल्यं बलं वर्णं प्रसादनम् ॥ २२ ॥

अर्थ—लोहा, ताँवा हरिताल, वंग, अभ्रक, कौडी, त्रिकुटा, त्रिफला, चीता, वायविडंग, पाँचोन्नोन, चव्य, पीपल, शंख, वच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाठ, देवदारु, इलायची और विधाग, यह सब औषधि समान भाग लेकर ग्रीसलेवे, पश्चात् इसमें वृग और सहत मिलाकर घीमें भावना देकर गोली बना लेवे । यह प्रदरान्तक लौह—रक्तशीत नील और पीत प्रदर, कुक्षि, शूल, कटिशूल,

योनिशूल, सर्वप्रकारके शूल, मंदाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, स्वास, खाँसी इन सबको दूर करैहै आयु और पुष्टिको करैहै; बलको बढ़ावेहै बल और वर्णको प्रसन्न करैहै ॥ १८-२२ ॥

अथ पुष्यानुगंचूर्णम् ।

पाठाजम्बात्रयोर्मध्यंशिलोद्भेदरसांजनम् ।

अम्बष्ठकीमोचरसंसमंगापद्मकेशरम् ॥ २३ ॥

बाह्लीकातिविषामुस्तंबिल्वलोभ्रंसगैरिकम् ।

कट्फलंमारिचंशुण्ठीमृद्वीकारक्तचंदनम् ॥ २४ ॥

कट्फल्वासकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम् ।

पुष्येणोद्धृत्यतुल्यानिश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ॥ २५ ॥

तानिश्चौद्रेणसंयोज्यापाययेत्तण्डुलाम्बुना ।

अशोरिक्तातिसारेषुरक्तंयच्चोपवेश्यते ॥ २६ ॥

दोषागन्तुकृतायेचबालानांतांश्चनाशयेत् ।

योनिदोषंश्वेतनीलंरक्तश्वेतंसपीतकम् ॥ २७ ॥

स्त्रीणांश्यावारुणंयच्चतत्प्रसह्यनिवर्तयेत् ।

चूर्णपुष्यानुगंनमहितमात्रेयपूजितम् ॥ २८ ॥

शिलोद्भेदःपाषाणभेदी अम्बष्ठकी दक्षिणे ख्याता ।

अर्थ—पाठ, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसौत, मोइया, मोचरस, भँजीठ, कमलकेशर, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरू, कायफल, कालीमिर्च, साँठ, दाख, लाल चंदन, श्योनाक, अडूसा, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलेठी और अर्जुनकी छाल यह सब औषधि पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ लावे, पश्चात् सबको समानभाग लेकर वागीक पीम लेवे, इसमें सहत मिलाकर चावलके जलके साथ पान करे । यह बवासीर, रक्तातिसार, रुधिरविकार, बालकौक्रे आगन्तुक दोष, योनिदोष, श्वेत, नील, रक्तश्वेत, पीत, श्याम और लालरंगके प्रदर रोगको दूर करैहै । यह पुष्यानुग चूर्ण आत्रेयका पूजित है ॥ २३-२८ ॥

अथ शीतकल्याणकघृतम् ।

दंपन्नकोशीरंगोधूमोरक्तशालयः ।

मुद्गरजीर्णपुष्पाचकाश्मरीमधुयष्टिका ॥ २९ ॥

लातिबलयोर्मूलमुत्पलंतालमस्तकम् ।

विदारीशतपुत्रीचशालपर्णीसजीवका ॥ ३० ॥

फलं त्रिफलाजानिप्रत्यग्रं कदलीफलम् ।

एगार्द्धप्रालम्भाङ्गव्यक्षीरञ्चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥

पानीयं द्विमुण्डत्त्वाघृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

प्ररेरक्तगुल्मेतुरक्तपित्ते हलीमके ॥ ३२ ॥

बहुरूपं च पित्तकामलायाश्च शोणिते ।

अरोचकेज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदभ्रमे ॥ ३३ ॥

तरुणीचाल्पपुष्पाचयाचगर्भं न विन्दति ।

अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ३४ ॥

फलं त्रिफला प्रत्यग्रमपक्वकदलीफलम् ।

अर्थ—कुमोदिनी, कमल, खश, गेहूँ, लाल शालिधानोंके चावल, मुमबन, काकोली, कुम्भेर, मुलेठी, खिरंटी, कंधी, उत्पल, ताडका मस्तक, विदारी-कन्द, शतावर, शालपर्णी, जीवक, त्रिफला, खीरेके बीज, और केलेकी कच्ची-फली, प्रत्येक दो दो तोले लेकर कलकवना लेवे, गायका दूध ८ आठसेर जल ४ चार सेर, और गायकः घी २ दो मेर लेवे, सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह घी प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, बहुरूप पित्त, कामला, रुधिरविकार, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, मद, भ्रम, इन सब रोगों-को दूर करे। जिन स्त्रियोंके अल्पपुष्प है, और जो गर्भको नहीं ग्रहण करती हैं, उनके भी इस घृतके प्रभावसे गर्भ रहजाता है । और मनुष्योंकी दिन दिन प्रति स्त्रियोंमें प्रीति बढ़ती है ॥ २९-३४ ॥

अथाशोकघृतम् ।

अशोकवल्कलप्रस्थं तैलमाद्यष्टिपाचितम् ।

तेन पादावशेषेण जीरकेन तथैव च ॥ ३५ ॥

घृतप्रस्थं हस्तेनाप्यक्षिप्य च तथा परम् ।

तण्डुलाम्बुत्वजाक्षीरंप्रस्थंप्रस्थंपृथक्पृथक् ॥ ३६ ॥

केशराजरसस्यापि प्रस्थमेकं भिषग्वरः ।

जीवनीयैः प्रियालैश्च परुषैः सरसांजनैः ॥ ३७ ॥

यष्ट्या ह्वाशोकमूलंचमृद्वीकाचशतावरी ।

तण्डुलीयकमूलंचकल्कैरेभिः पलार्द्धकैः ॥ ३८ ॥

शर्करायाः पलान्यष्टौ गर्भदत्त्वासु चूर्णितम् ।

पुण्ययोगेन तत्पीतं निहन्यात्सर्वदोषजम् ॥ ३९ ॥

श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ।

कुक्षिशूलंकटीशूलं योनिशूलंच सर्वगम् ॥ ४० ॥

मन्दाग्रिमरुचिं पाण्डुकृशतां श्वासकासकम् ।

आयुः पुष्टिकरं धन्यं बलवर्णप्रसादनम् ॥

देयमेतद्वरं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दो सेर, चावलोंका जल २ दो सेर बकरीका दूध २ दोसेर, कुकुरभांगरेका रस २ दो सेर, काथके लिये अशोककी छाल १ एकसेर, जल ८ आठसेर, शेष दोसेर, जीरा २ दोसेर, जल ८ आठसेर, शेष २ दोसेर और कल्कके लिये जीवनीय दशक, चिरौजी, फालसा, रसौत, मुलेठी, अशोकके जडकी छाल, दाख, शतावर और चौलाईकी जड दो दो तोलेले यथाविधिसे घृतको पकावे, जब सिद्ध होकर शीतल होजाय तब ८ आठपल सफेद-बूरा मिला देवे इसको पुण्यनक्षत्रमें पीवे, तो सर्वदोषज, श्वेत, नील और कृष्ण इन सर्व प्रकारके दुस्तर प्रदर रोगोंका नाश होताहै । तथा कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सर्वप्रकारके शूल, मन्दाग्रि, अरुचि, पाण्डुरोग, कृशता, श्वास, खाँसी, यह सब रोग दूर होतेहैं । आयु और पुष्टिको करैहै, धन्य, बल और वर्णको प्रसन्न करैहै । यह घृत श्रीमान् विष्णु भगवान्ने रचाहै ॥ ३६-४१ ॥

अथ शिलाजतुः प्रोक्तम् ।

हितश्चात्र विशेषेण लेहोऽयं तृजाष्टकः ।

शुद्धसूतंसमंगन्धरक्तोत्पलदलद्रवैः ॥ ४२ ॥

यामंमर्द्यपुनर्मर्द्यपूर्वादद्धविनिक्षिपेत् ।

कौटजंत्रिफलानिम्बंपटोलघननागरैः ॥ ४३ ॥

भावितानिदशाहानिरसेद्वित्रिगुणे तथा ।

शिलाजतुपलान्यष्टौतावतीसितशर्करा ॥ ४४ ॥

त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यपलोन्मिता ।

निदिग्धिकाफलमूलाभ्यांपलयुञ्ज्यात्रिजातकम् ॥ ४५ ॥

मधुनःपलसंयुक्तंकुर्यादक्षसमान्गुडान् ।

दांडिमाम्बुपयःपक्षिरसतोयसुवासनान् ॥ ४६ ॥

तांभक्षयित्वात्रपिवेत्रिरन्नोभुक्तएववा ।

पाण्डुकुष्ठज्वरप्रीहतमकाशोभगन्दरान् ॥ ४७ ॥

पूतिकृन्मूत्रशुक्रादिदोषमेहमहोदरम् ।

कासामृक्तरक्तपित्तंचप्रदंरक्तसम्भवम् ।

तान्सर्वान्सुतरान्हन्तिसर्वदोषहराः शिवाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रदग् गोगमें कुटजाष्टक विशेष हितकारीहै। पारा और गंधक दोनोंको समानभाग लेकर लालकमलके पत्तोंके रसमें खरल करे, जब एकप्रहर होजाय तब आधारग निकालके अधिको खरल करे पश्चात् कुंडेकी छाल, त्रिफला, नीमकी छाल, पटोल, नागर्मोथा और मोंठ इनके दुगुने या तिगुने रसमें १० दिन भावनादेवे। फिर इसमें आठ ८ पल शिलाजीत, मिश्री ८ आठपल, वंशलोचन, पीपल, आमला, काकडाशिगी एक पल और जड़ सहित कटेरी और त्रिजातक प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले और महत चारतोले मिलाकर दोदो तोलकी गोलियाँ बना लेवे, इस रसको अनागके रसके साथ या दूधके साथ अथवा पक्षियोंके मांसके रसके साथ नित्रे या भोजनके ऊपर खावे। यह रस पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्रीहा, तमकरोग, बवामीर, भगंदर, मूत्र शुक्रादि दोष, प्रमेह, महोदर, खामी, रक्तपित्त, रक्तप्रदग्, इन सब रोगोंको दूर करैहै ॥ ४२-४८ ॥

अथ प्रदरान्तकोरसः ।

शुद्धसूतंतथागंधंशुद्धवंगकरूप्यकम् ।

खरिचवराटंचशाणमानंपृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥

तृतीयतोलकंग्राह्यंलौहचूर्णददौसुधीः ।

कन्यानीरेणसंमर्द्यदिनमेकंभिषग्वरः ॥

असाध्यप्रदरंहन्तिभक्षणान्नात्रसंशयः ॥ ५० ॥

इति प्रदराध्यायः ।

अर्थ—पारा, गंधक, वंग, रूपा, खपरिया और कौडी प्रत्येकका चूर्ण चार चार मासे और लोहेका चूर्ण तीन तोले ले, सबको एकत्र मिलाकर धीकुवारके रसमें एकदिन खरल कर गोली बनालेवे । यह गोली असाध्य प्रदर रोगको दूर करैहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इति प्रदराध्यायः ।

अथसोमरोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौसोमरोगनिदानम् ।

स्त्रीणामतिप्रसंगाद्वालोकाद्वाप्रमादादपि ।

आभिचारिकदोषाद्वागरदोषात्तथैवच ॥ १ ॥

आपःसर्वशरीरेषुक्षुभ्यन्तिप्रस्रवन्तिच ।

तासांताःप्रच्युताःस्थानान्मूत्रमार्गंव्रजन्तिहि ॥ २ ॥

प्रसन्नाविमलाःशीताःनिर्गन्धावीरुजःसिताः ।

स्रवन्तिचातिमात्रन्तुदौर्बल्यंशक्तिहीनता ॥ ३ ॥

शिरसःशिथिलत्वंचमुखतालोश्चशोपणम् ।

मूर्च्छाजृम्भाप्रलापंचदग्धंवाचातिमात्रतः ॥ ४ ॥

भक्ष्यभोज्यैश्चपेयैश्चतृप्तिंनलभतेसदा ।

सोमरोगइतिज्ञेयोदहेसोमक्षयात्स्त्रियाः ॥ ५ ॥

शरीरधरणाच्चापिसोमइत्यभिधीयते ।

सोऽतिक्रान्तंक्रमेणैवस्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णशः ।

मूत्रातिसारमप्येवंतमाहुर्बलनाशनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन, शोक, परिश्रम, अभिचार, और विषदोष, इन सब कारणोंसे स्त्रियोंके सर्व शरीरगत जल क्षोभित होकर गिरैहै, तब वह अपने स्थानसे हटकर मूत्रके मार्गसे निकलताहै । प्रसन्न, विमल, शीतल निर्गन्ध, पीडा रहित, सफेद रंगका अधिक जल मूत्रमार्गसे निकलताहै । इससे स्त्रियोंके दुर्बलता, शक्तिहीनता, मस्तकमें शिथिलता, मुखशोष, तालुशोष मूच्छा, जम्भाई, प्रलाप और शरीरमें रूक्षता उत्पन्न होतीहै । तथा भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थोंके पीनेसे कदापि तृप्ति नहीं हैवैहै । स्त्रियोंके शरीरमें सोमके नाश होनेसे सोमरोग होताहै । शरीरके धारण करनेसे इसको सोमरोग कहतेहैं जिस सोमरोगमें अतिक्रमसे बारंवार योनिके द्वारा अत्यन्त मूत्र निर्गत होवे. उसको मूत्रातिसार कहतेहैं । इससे स्त्रियोंका बल कम होताहै ॥ १-६ ॥

अथ सोमरोगचिकित्सा ।

कदलीनांफलंपक्वधात्रीफलरसमधु ।

शर्करापयसापेयंसोमधारणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

माषचूर्णञ्चमधुकंविदारीमधुशर्करा ।

पयसापाययेत्प्रातस्त्वपांधारणमुत्तमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—केलेकी पकी हुई फली, आमलोंका रस, सहत, बूरा और दूध, इन सब द्रव्योंको एकत्र मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंका सोमधातु निकलना बंद होजाताहै । उडदोंका चूर्ण, मूलेटी, विदारीकंद सहत और बूरा, इन सब द्रव्योंको एकत्र मिलाकर दूधके साथ पीनेसे सोमरोग दूर होजाताहै ॥ ७-८ ॥

अथ धात्रीवृतम् ।

धात्रीफलरसप्रस्थेविदार्याःस्वरसेतथा ।

तृणपंचरसप्रस्थेघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ९ ॥

क्षीरस्यापिशतावर्याःप्रस्थंप्रस्थंरसस्यच ।

दत्त्वामृद्भग्निनावैद्यःपचेत्सिद्धंविधानतः ॥ १० ॥

सुशीतेप्रक्षिपेच्चूर्णमेपाञ्चापिपलंपलम् ।

मधुकंत्रिवृताञ्चैवक्षारंचवृद्धदारकम् ॥ ११ ॥

शर्करायाःपलान्यष्टौमधुनश्चपलाएकम् ।

चूर्णदत्त्वाप्रमथितंहन्त्याशुतृणदाहकम् ॥ १२ ॥

मूत्रकृच्छ्रः कृच्छ्रश्च बहुमूत्रं विनाशयेत् ।
 पित्तजान्निविधान्व्याधीन्वातजांश्च सुदुस्तरान् ।
 करोते शुद्धोऽयं सर्पिरेतदनुत्तमम् ॥ १३ ॥

इति सोमरोगाध्यायः ।

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दो सेर, आमलौका रस, २ सेर विदारीकंद का रस दो २ सेर, तृणपंचमूलका रस २ दो सेर, दूध २ दो सेर और शतावरका रस २ दो सेर ले सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । जब पक कर शीतल होजाय तब मुलेठी, निसोत, जवाखार और विधारा, प्रत्येकका चूर्ण ४ चार चार तोले, बूरा ८ आठ पल और सहत आठ ८ पल मिलादेवे, यह घृत तृषा, दाह, मूत्रकृच्छ्र, कृच्छ्र, बहुमूत्र नाना प्रकारके पित्तरोग और विविध प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है । यह उत्तम घी शुक्रको संचय करे है ॥ ९-१३ ॥

इति सोमरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ योनिव्याधिचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सामान्यचिकित्सा ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ।
 वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥ १ ॥
 कदंबमूलवलकश्च खदिराङ्गरामिश्रितम् ।
 मासं नारीपिबेत् काले योनिशूलनिपीडिता ॥ २ ॥
 रास्नाश्च गन्धावासाभिः शृतं वा शूलनुत्पयः ॥ ३ ॥

अर्थ—योनिव्याप्त रोगमें वातनाशक क्रिया, वस्तिकर्म, अभ्यंग, सेचन, प्रलेप और पिचु (रुई आदिका फोहा) धारण, यह सब हितकारी हैं । कदंबकी जड़की छाल और खैरके अंगारोंका एकत्र चूर्ण करके जलके साथ एक महीने तक पीवे तो योनिशूल दूर होवे । रास्ना, असगंध और अड्डसा, इन तीनों औषधियोंके साथ दूधको पकाकर पीनेसे योनिशूल दूर होता है ॥ १-३ ॥

अथ योनिशूलादिहरयोगाः ।

वासोपकुंचिकाज जीवचारास्नाचाचेत्रकर ।
 यमानीसैन्धवं क्षारं पिष्ट्वा भृष्टाघृतेन तु ॥ ४ ॥

योनिजंमर्मशूलघ्नंपेयमुष्णोपकादिभिः ।
 शतावरीघृतंशस्तंयोनिपित्तविकारनुत् ॥ ५ ॥
 रक्तयोन्यांयथादोषप्रदरघ्नोहितोविधिः ।
 पेटिकामूललेपाच्चयोनिभिन्नाप्रशाम्यति ॥ ६ ॥
 मुसलीमूललेपाच्चप्रविष्टाच्चबहिर्नयेत् ।
 पिष्ट्वाशम्बूकजंमांसंपक्वन्तिन्तिडिसंयुतम् ॥ ७ ॥
 लेपमात्रेणनारीणांयोनिकन्दहरपरंम् ।
 घोषाख्यपुष्पलेपेनकन्दःशान्तिंनृजदंध्रुवम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अड्डसा, कालाजीरा, जीरा, वच, रास्ना. चीतेकी जड, अजवायन, सैंधानोन और जवाखार इन सब औषधियोंको जलमें पीसकर घृतमें भूनकर गरम जल आदिके साथ पीनेसे योनि शूल नष्ट होताहै । शतावरी घृत योनिजात-पित्तके विकारोंमें विशेष हितकारी है । रक्तसाव युक्त योनिमेगमें प्रदरनाशक औषधादि देवे । पेटारीकी जडको पीसकर प्रलेप करनेमें योनिभिन्नारोग दूर होताहै । मुसलीकी जडको पीसकर प्रलेप करनेमें भी उक्तरोग दूर होताहै । पक्की इमलीके साथ शम्बूकके मांसको पीसकर लेप करनेसे अथवा तोरइयोंको पीसकर प्रलेप करनेसे योनिकन्द रोग दूर होताहै ॥ ४-८ ॥

अथ फलघृतम् ।

मंजिष्ठामधुकंकुष्टंत्रिफलाशकरावला ।
 मेदाकाकोलीमूलंमूलञ्चैवाश्वगन्धजम् ॥ ९ ॥
 अजमोदाहरिद्रेद्वेहिङ्गुकःकटुरोहिणी ।
 उत्पलंकुमुदंद्राक्षाकाकोल्याचंदनद्वयम् ॥ १० ॥
 एतेपाकार्पिकैर्भागैर्वृतप्रस्थंविपाचयेत् ।
 शतावरीरसंक्षीरंघृतादयंचतुर्गुणम् ॥ ११ ॥
 सर्पिरेतन्नरःपीत्वास्त्रियंनित्यंवृषायते ।
 पुत्रान्संजनयेन्नारीमेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ १२ ॥
 याचैवाऽस्थिरगर्भास्याद्याचवाजनयेत्स्मृता ।
 स्वल्पायुषंवाजनयेद्याचकन्यांप्रसूयते ॥ १३ ॥

योनिदोषेरजोदोषेपरिस्त्रावेचशस्यते ।

प्रजावर्द्धनमायुष्यंसर्वग्रहनिवारणम् ॥ १४ ॥

नाद्यालघृतं ह्येतदश्विभ्यानिर्मितं पुरा ।

अनुक्लं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ १५ ॥

जीववत्सैकवर्णाया घृतमत्र तु गृह्यते ।

अरण्यगोमयेनात्र वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ १६ ॥

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दो सेर, शतावरका रस ८ आठ सेर, गायका दूध ८ आठ सेर, तथा कल्कके लिये—मँजीठ, मुलेठी, कूठ, हरड, बहेडा, आमला, मिश्री, खिगैटी, भेदा, लक्ष्मणा, काकोली, असगंधकी जड, अजमोदा, हलदी, दारुहलदी, हींग, कुटकी, उत्पल, कुमुद, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, लालचंदन और सफेद चंदन प्रत्येक दो दो तोले लेवे, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पीनेसे मनुष्य वृषकी समान स्त्रियोंमें आचरण करता है। और जो स्त्री पीवे तों उत्तम बुद्धिवाले और सुंदर स्वरूपवाले पुत्रोंको उत्पन्न करती है, जिन स्त्रियोंके गर्भ नहीं रहता है, जिन स्त्रियोंके मरेहुए पुत्र उत्पन्न होते हैं, जिनके पुत्र उत्पन्न होकर मरजाते हैं और जिन स्त्रियोंके कन्यारूप उत्पन्न होती हैं, योनिदोषवाली, रजोदोषवाली और परिस्त्राव रोगमें यह घृत महाहितकारी है। प्रजावर्द्धक, आयुको बढ़ानेवाला और सर्वग्रहनाशक है। यह फल-घृत पूर्वकालमें श्रीमान् अश्विनीकुमारोंने रचा है। जिन गायकोंका बछड़ा जीता है, और जिनका रंग बछड़ेके रंगसे मिलता हो, उन गायकोंका यहाँ घी लेना चाहिये। आरनेउपलोंकी आगसे इस घृतको पकावे ॥ १-१६ ॥

अथ गुह्यस्थानरोमहरलेपौ ।

दग्ध्वाशंखं क्षिपेद्रंभास्वरसेतञ्च पेपितम् ।

तुल्याललेपनाद्धन्तिरोमगुह्यादिसम्भवम् ॥ १७ ॥

रंभा कदली तस्याः स्वरसः । आलं हरितालम् ।

रक्तांजनापुच्छचूर्णयुक्तन्तैलन्तुसार्पपम् ।

सप्ताहमुपितंहन्ति मृलाद्देमाण्यसंशयः ॥ १८ ॥

अर्थ—शंखकी भस्मको केलेके रसमें पीसकर, पश्चात् बराबर हरिताल मिलाके लेप करनेसे गुह्यादि स्थानोंमें उत्पन्नहुए रोम दूर होजाते हैं। रक्तांजनके

पुच्छके चूर्णको सरसोंके तेलमें मिला सातदिन तक बासीकर पश्चात् लेपकर-
नेसे मूलसहित रोम गिरजातेहैं ॥ १७॥१८ ॥

अथारग्वधादितैलम् ।

आरग्वधभूलपलंकर्पद्वितयन्तुशंखचूर्णस्य ।

हरितालस्यचखरस्यमूत्रप्रस्थेकटुतैलम् ॥ १९ ॥

पक्वतैलन्तुदत्वासशंखहरितालचूर्णितलेपात् ।

निर्मूलयतिरोमाण्यन्येषांसम्भवोनैव ॥ २० ॥

खरो गर्द्धभः शंखहरितालयोर्मिलित्वा पादिकत्वम् ।

अर्थ—कडवातेल २ दो सेर, गधेकामूत्र ८ आठसेर, अमलतासकी जड़ ४ चारतोले, शंखका चूर्ण ४ चारतोले, हरितालका चूर्ण ४ चार तोले ले, यथावि-
धिसे तेलको पकावे, पश्चात् इसतेलमें चौथाई भाग शंख और हरितालका
चूर्ण मिलाकर मलनेसे मूल सहित वाल गिर जातेहैं ॥ १९॥२० ॥

अथ कर्पूरादितैलम् ।

कर्पूरभल्लातकशंखचूर्णक्षारोयवानांचमनःशिलाच ।

तैलंविपक्वंहरितालमिश्ररोमाणिनिर्मूलयतिक्षणेन २१॥

अर्थ—कडवातेल २ दोसेर, कल्कके लिये कपूर, भिलावा, शंखका चूर्ण,
जवाखार और मैन्शिल ले, यथाविधिसे तेलको पकावे, फिर इसतेलमें चौथाई-
भाग हरितालका चूर्ण मिलाकर मर्दन करनेसे मूलसहित रोम नाश होतेहैं ॥ २१॥

अथ लोमहरक्षारतैलम् ।

शुक्तिशंबूकशंखानांदीर्घवृन्तात्समुस्ककात् ।

दग्ध्वाक्षारंसमादायखरमूत्रेणगालयेत् ॥ २२ ॥

क्षाराष्टभागंविपचेत्तैलंवैसार्पणंबुधः ।

इदमन्तःपुरेदेयंतैलमात्रेयपूजितम् ॥ २३ ॥

बिन्दुरेकःपतेद्यत्रतत्ररोमनजायते ।

मदनादित्रणेतैलमश्विभ्यामेवनिर्मितम् ॥ २४ ॥

अर्शसांकुष्ठरोगाणांपामादद्रुविचर्चिकाम् ।

क्षारतैलमिदंश्रेष्ठंसर्वक्वेदहरंपरम् ॥ २५ ॥

अर्थ—सीप, शम्बूक, शंख, श्योनाक, और मोखा, इनको एकत्र जलाकर क्षार ग्रहण करले, पश्चात् इस क्षारको गंधके मूत्रमें मिलाकर छानलेवे, यह क्षार ५॥ आधसेर और सरसोंका तेल ४ चार सेर लेवे, यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । यह तेल आत्रेय करके पूजितहै । इस तेलका जिस स्थानमें बृंद गिरजाताहै, वहां रोम उत्पन्न नहीं होतेहैं । मदनादिके व्रणमें इस तेलको अश्विनीकुमारोंने कहाहै, बवासीर, कुष्ठरोग, पामा, दद्रु, विचर्चिका, इन रोगोंमें यह तेल श्रेष्ठ है और सर्व क्लेद नाशक है ॥ २२-२५ ॥

अथ वातजपुष्पदोषनिदानं चिकित्सा च ।

यस्यावाताहतंपुष्पंफलंतस्यानविद्यते ।

यथाशुष्कञ्चकुसुमंमेघोदकसन्वितम् ॥ २६ ॥

कटीशूलंयोनिशूलंबहुरक्तञ्चदृश्यते ।

औषधंतस्यवक्ष्यामियेनचोत्पद्यतेशुभम् ॥ २७ ॥

कदम्बबहतीमूलंबिल्वश्चैवचबुद्धिमान् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके पुष्प वातसे नष्ट होजाताहै, अर्थात् जो स्त्री ऋतुमती नहीं होती, उसके फल अर्थात् सन्तान नहीं होती, जैसे-सूखेफूल मेघके जलके प्राप्त होनेपरभी फलोंको उत्पन्न नहीं करसक्ते । और उससे कटीशूल, योनिशूल और बहुरक्तस्त्रावादि नानाप्रकारके रोग स्त्रियोंके उत्पन्न होतेहैं, उन रोगोंकी औषधि कहतेहैं—कदम, बृहतीकीजड़ और बेलकी जड़, इनको एकत्र जलमें पीसकर सेवन करनेसे—स्त्रियोंके वातज पुष्पदोष दूर होताहै ॥ २६-२८ ॥

अथ पित्तजपुष्पदोषनिदानं चिकित्सा च ।

यस्याःपित्तहतंपुष्पंफलंतस्यानविद्यते ।

जम्बूफलसमंचोष्णंतस्यावहतिशोणितम् ॥ २९ ॥

कटीशूलंमहश्चैवउदरेशूलमेवच ।

औषधंतस्यवक्ष्यामियेनशीतेनशाम्यते ॥ ३० ॥

उत्पलंचंदनंकुष्ठंशूलंतगरमेवच ।

यष्टीमधुसमायुक्तंसमभागानिकारयेत् ॥ ३१ ॥

अजाक्षीरेणपातव्यंयावद्बहतिशोणितम् ।

ततोयोन्यांविशुद्धायामिमांदद्यान्महौषधीम् ॥
लक्ष्मणांक्षीरसंयुक्तानस्यंपानंचदीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके पित्तसे पुष्प दूषित होताहै, उसकेभी सन्तान उत्पन्न नहीं होतीहै । उससे स्त्रियोंके जाग्रद्वि समान गरम रक्तस्त्राव अत्यन्त कटिशूल और उदरशूल उत्पन्न होताहै । अब उनकी औषधि कहतेहैं उत्पल, चन्दन, कूठ, मूली, तगर और मुलेठी यह सब औषधि एकत्र पीसकर बकरीके दूधके साथ पीनेसे विशेष लाभ होताहै । योनिके शुद्ध करनेके लिये यह औषधि देवे लक्ष्मणाकी जड़को दूधमें पीस कर पीवे अथवा नास देवे इससे विशेष लाभ होताहै ॥ २९-३२ ॥

अथ कफजःपदोषानेदन्तंचिकित्सा च ।

यस्याःश्लेष्महतंःपुष्पफलंतस्यानविद्यते ।
लक्षणंतस्यवक्ष्यामिभेषजानिपुनस्तथा ॥ ३३ ॥
बहुलंपिच्छिलंस्निग्धंघनंस्रवतिशोणितम् ।
योनौतुशूलंचक्रतौपरमंदारुणंतथा ॥ ३४ ॥
द्यान्महौषधं तस्यैतेनसम्पद्यतेशुभम् ।
त्रिफलात्रिकटूचैवचित्रकस्यजटातथा ॥ ३५ ॥
एतानिसमभागानिछागीदुग्धेनपायेत् ।
त्रिरात्रंचरात्रंवायावद्वहतिशोणितम् ॥ ३६ ॥
तथायोन्यांविशुद्धायामिमांदद्यान्महौषधीम् ।
लक्ष्मणामूलचूर्णन्तुछागीक्षीरेणपाययेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके कफसे पुष्प दूषित हो, उसकेभी सन्तान उत्पन्न नहीं होती, उसके लक्षण कहतेहैं—बहुत तर, पिच्छिल, स्निग्ध और अनरक्तस्त्राव तथा क्रतुके समय योनिशूल और नाभिशूल उत्पन्न होताहै, अब उसकी औषधि कहतेहैं—हरद, बहेडा, आमला, मातुं मिरच, पीपल और नीलेकी जड़ इन सबको एकत्र पीसके बकरीके दूधके साथ जबतक रक्तस्त्राव हो तबतक सेवन करे । योनि शुद्ध करनेके लिये वह महौषधि देवे कि, लक्ष्मणाकी जड़के चूर्णको बकरीके दूधके साथ पीवे ॥ ३३-३७ ॥

अथ प्रथमपुष्पप्रवृत्तिदिनफलम् ।

अर्कवारेयदायोषिद्भवेदुमतीकिल ।

पुत्रमेकंतदासूतेकाकवन्ध्याभवेद्भुवम् ॥ ३८ ॥

सोमपुष्पवतीनारीबहुकन्याप्रजायते ।

कदाचिल्लभतेपुत्रंसानारीयन्नतोऽपिवा ॥ ३९ ॥

आदावृतुंयदाप्नोतिमंगलेह्लिकुमारिका ।

बहुपुत्रंदुहितरंलभतेप्राप्ययोषिता ॥ ४० ॥

यदापुष्पवतीनारीभवेद्बुधयुतेऽह्यपि ।

बहुपुत्रंतदाप्नोतिसमृद्धंराजपूजितम् ॥ ४१ ॥

यदाबलागुरोर्वारेभवेदुमतीभुवि ।

लभेद्बहुसुतंसातुभूयिष्ठंपानभोजनैः ॥ ४२ ॥

यदाशुक्रदिनेनारीपुष्पञ्चलभतेतदा ।

मूलवन्ध्याभवेत्सापिनारदेनेतिभाषितम् ॥ ४३ ॥

यदाकर्मवशत्पुष्पमाप्नोतिशानिवासरे ।

यावान्पुत्रश्चदुहितातस्यास्तुम्रियतेभुवम् ॥ ४४ ॥

वारलक्षणमेतद्धिनारदेनमहात्मना ।

कथितंप्रथमेनार्याःपुत्रवत्याःसुनिश्चितम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—जो स्त्री प्रथम प्रथम रविवारके दिन ऋतुमती होय, उसके केवल एकही पुत्र उत्पन्न होगा, पश्चात् वह बंध्या होजातीहै । जो स्त्री प्रथम सोमवारके दिन ऋतुमती होय, उसके बहुतसी कन्यायें उत्पन्न होतीहैं और पुत्र उत्पन्न नहीं होता और जो होय तो बड़े यत्नोंसे होय है, जो स्त्री मंगलवारके दिन रजस्वला होतीहै उसके बहुतसे पुत्र और कन्यायें उत्पन्न होतीहैं । प्रथम जो स्त्री बुधवारके दिन रजस्वला होय उसके समृद्धिमान् और राजपूजित बहुतसे पुत्र उत्पन्न होतेहैं । जो स्त्री प्रथम बृहस्पतिवारके दिन रजस्वला होय, उसके पान और भोजनमें बहुतसे पटु पुत्र उत्पन्न होतेहैं । जो स्त्री प्रथम शुक्रवारके दिन रजस्वला होतीहै । वह निश्चय बंध्या होतीहै अर्थात् उसके कदापि संतान नहीं होता है उसके जितने पुत्र और कन्यायें उत्पन्न होवें वह सब मर जातेहैं । यह सब स्त्रियोंके प्रथम ऋतुके दिनोंके लक्षण स्वयं नारदमुनिने कहेहैं ॥ ३८—४५ ॥

अथ ऋतुस्नानानन्तरं कर्तव्यम् ।

चतुर्थेऽद्विततः स्नात्वा शुक्लमाल्याम्बराशुचिः ।
इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरःपतिम् ॥ ४६ ॥
पूर्वपश्येदुत्सृताया दृशं नरमंगना ।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारिं दर्शयेदतः ।
मासि मासिरजः स्त्रीणां स्रवतितत्र्यहं न्यहम् ॥ ४७ ॥
वत्सराद्द्वादशाद्द्वयं याति पंचाशतः क्षयम् ।
सुतन्तुद्वादशनिशा सर्वास्ति स्त्रीऽतिनिन्दिताः ।
एकादशी च युग्मासु पुत्रोऽन्यासु तु कन्यकाः ॥ ४८ ॥
शुक्राधिका च पुरुषः प्रमदारजसोऽधिकात् ।
नपुंसकं समत्वेन शुक्रशोणितयोर्भवेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ—ऋतुमती स्त्री चौथे दिन स्नान करके श्वेतमाला और वस्त्र पहनके पवित्र होकर पुत्रकी इच्छा करती हुई स्वामीके समीप जावे, प्रथम स्वामीहीके दर्शन करे, कारण यह है कि, रजस्वला स्त्री स्नानके अन्तमें प्रथम जिसके दर्शन करे, उसीकी समान उसका पुत्र उत्पन्न होता है। प्रत्येक महीनेमें स्त्री तीन दिन तक एक बार ऋतुमती होती है। १३ तेरह वर्षसे लेकर ५० पचास वर्षकी उमर तक होती है। १२ वागह रात्रियोंमें पुत्रोत्पादन होता है। ऋतुकालकी तीन रात्रि और ११ ग्यारह रात्रि गर्भाधानमें अत्यन्त निन्दनीय अर्थात् अनिष्टदायक हैं। ऋतुकालकी युग्मरात्रियोंमें स्त्रीसे मैथुन करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें मैथुन करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। पुरुषके शुक्र अधिक होनेसे पुत्र और स्त्रीके रजके अधिक होनेसे कन्या, तथा शुक्र और आर्तव समान होनेसे नपुंसक होता है ॥ ४६-४९ ॥

अथ गर्भाधाननियमाः ।

पद्मसंकोचमायातिदिनेऽतीतेयथायथा ।
ऋतवतीतेयोनिः सा शुक्रनातः प्रसीच्छति ॥ ५० ॥
शुद्धः स्नात्वा व्रजेन्नारीमपत्यार्थी निरामयः ।
शुक्रशुक्रार्तवसुस्थं सरत्तमिथुनमिथः ॥ ५१ ॥

उत्तानाउन्मनायोषित्तिष्ठेदङ्गैः सुसंस्थितैः ।

तथाहिबीजंगृह्णातिदोषैः स्वस्थानमस्थितैः ॥ ५२ ॥

अवन्ध्यएवसंयोगः स्यादपत्यञ्चकामतः ।

एतेनापिविधानेन शुद्धासुखलुयोनिषु ॥ ५३ ॥

लभन्तेयोषितोगर्भभेषजैस्तुविशेषतः ॥ ५४ ॥

अर्थ—दिनके अंतमें जिस प्रकार कमल बंद होजाता है, उसी प्रकार ऋतु-कालके बीत जानेपर योनि संकुचित होजाती है, इस कारण ऋतुके पश्चात् पुष्प सूँद जाता है, फिर वीर्यको ग्रहण नहीं करता, अतएव स्त्रियोंके ऋतुके समय विधिपूर्वक सन्तानके लिये निरोगी मनुष्य शुद्ध और स्नान करके स्त्रीके पास जावे । इसप्रकार स्त्री पुरुषोंके परस्पर संयोगमें शुद्ध शुक्ल और आर्तबके मिलनेसे सन्तान उत्पन्न होती है स्त्री और पुरुष दोनोंके संयोगके समय स्त्री सु-खपूर्वक सीधी पाँव फैलाके शयनकर उन्मना हो बीजको ग्रहण करे स्त्रीकी योनि शुद्ध हो और इसविधिसंयोग कियाजावे तो अवश्य सन्तान होवे ॥ ५०—५४ ॥

अथ गर्भधारण प्रयोगाः ।

कटुतैललवणयुक्तंमूलस्वरसंनिपीयकेशराजस्य ।

लभतेगर्भमवश्यं त्रिदिनं नारी तु दृष्टफलम् ॥ ५५ ॥

सितवर्षाभूमूलंमूलंवातुरगगंधायाः ।

परिणतकपित्थगुटिकाभक्षयेच्चैकवर्णगोक्षीरे ॥ ५६ ॥

पृथगितिपीतंहृष्टंगर्भदपरिचयन्नात्रसन्देहः ।

पुष्योद्धृतंलक्ष्मणामूलंपिष्टंचकन्ययातथैव ॥ ५७ ॥

ऋत्वन्तेष्टतदुग्धाभ्यांपीत्वाप्नोत्यबलासुतम् ।

वारिणाशुक्लपक्षेतुपुष्येणतुविशेषतः ॥ ५८ ॥

घृतमंडेनवापीतं नागपुष्परजस्तथा ।

क्वाथेनहयगंधायाःसाधितंसघृतंपयः ॥ ५९ ॥

ऋतुस्नाताबलापीत्वागर्भधत्तेनसंशयः ॥ ६० ॥

अर्थ—कुकुरभांगरेका रस, सरसोंका तेल और सेंधानोन, तीनोंको एकत्र कर पीनेसे ऋतुमती स्त्री गर्भको धारण करती है । सफेद पुनर्नवेकी जड़ अथवा असगंधकी जड़ वा पके हुए कैथेके गूदेको एक रंगकी गायके दूधमें पीसकर

गोली बनाकर सेवन करनेसे निश्चय ऋतुमती स्त्रियोंके गर्भ रहजाता है । लक्ष्मणाकी जड़की पुष्पनक्षत्रमें उखाड़कर धीकुआरके रसके साथ पीस घृत और दूध मिलाकर ऋतुके पश्चात् सेवन करनेसे स्त्रियोंके गर्भ रह जाता है । बड़के अंकुर पुष्प नक्षत्रमें लाकर जलमें पीसकर सेवन करनेसे बंध्या स्त्री रजस्वला हो जाती है । पुष्पनक्षत्रमें अथवा शुक्लपक्षमें पुत्रागके फूलोंका चूर्ण जलके साथ अथवा घृतमंडके साथ पान करनेसे रजस्वला स्त्रियोंके निश्चय गर्भ रहजाता है । असगंध और घृतको दूधमें सिद्धकर पीनेसे निश्चय ऋतुमती स्त्रियोंके गर्भ रहता है ॥ ५५-६० ॥

अथ बन्ध्यागर्भप्रदयोगाः ।

अश्वगंधाकषायेणसाधितंशीतलंपयः ।

पीत्वाकान्तसमाश्लेषाऋतौबंध्याप्रसूयते ॥ ६१ ॥

पिप्पल्यःशृंगवेरंचमरिचंकेशरन्तथा ।

घृतेनसहपातव्यंबन्ध्यागर्भप्रदंपरम् ॥ ६२ ॥

पुत्रजीवकबीजंपीत्वापयसास्यपत्रमूलंवा ।

योषिजीवद्वत्साजनयतिदीर्घायुपंपुत्रम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—बंध्या स्त्री असगंधको दूधमें आटाके शीतल कर पीवे, पश्चात् पतिके साथ रमण करे तो निःसंदेह गर्भ रह जाय । पीपल सांठ, मिरच और नागकेशरके फूल, इनको एकत्र पीस चूर्णकर घृतके साथ पीनेसे बंध्या स्त्री गर्भको धारण करतीहै । पतिजियाके बीज या पत्र अथवा जड़की दूधमें पीसकर सेवन करनेसे स्त्री दीर्घायु पुत्रको जनतीहै ॥ ६१-६३ ॥

अथ सोमघृतम् ।

सिद्धार्थकंवचाब्रह्मीशंखपुष्पीपुनर्नवा ।

पयस्यात्रिफलाकुष्ठंतथाकटुकरोहिणी ॥ ६४ ॥

शारिवाद्रययष्ट्याह्वचोरकेसुमनोलता ।

वृषपुष्पंरसंजिष्ठादेवदारुमहौषधम् ॥ ६५ ॥

पिप्पल्यौभृंगराजश्चनिशाश्यामासुवर्चला ।

दशमूलमपामार्गमश्वगन्धाशतावरी ॥ ६६ ॥

जलद्रोणेपचेदेतान्भागैर्द्विपलिकैरिमान् ।

तत्कषायं परिस्त्राव्यं घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ ६७ ॥

पाचितं तद् घृतं युक्त्या गायत्र्या चाभिमंत्रितम् ।

द्विमासगर्भिणीनारीषट्मासादुपयोजयेत् ॥ ६८ ॥

सर्वज्ञं जनयेत्पुत्रं सर्वामयाविवर्जितम् ।

अस्य प्रभावात्कुक्षिस्थः स्फुटवाग्व्याहरत्यपि ॥ ६९ ॥

योनिदुष्टाश्च याना योरेतो दुष्टाश्च येनराः ।

वन्ध्यापिलभते गर्भं शूरं पण्डितमानिनम् ॥ ७० ॥

जडगद्गदमृकत्वं पानादेवापकर्षति ।

सप्तरात्रप्रयोगेण सुस्वरं कुरुते नरम् ॥ ७१ ॥

मासमात्रप्रयोगे तु भवेच्छ्रुतिधरो नरः ।

नाग्निर्दहतितद्वेश्मनवज्रमपहन्ति च ॥ ७२ ॥

न तत्र प्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञितम् ॥ ७३ ॥

पयस्या क्षीरकाकोली सुमनोलता मालती ।

अर्थ—सफेदसरसों, वच, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, पुर्ननवा, क्षीरकाकोली, हरड, बहेडा, आमला, कूठ, कुटकी, अनंतमूल, करियावासाऊ, सुलेठी, चोरक, मालतीकेफूल, अडूसेकेफूल, भैंजीठ, देवदारु, सांठ, पीपल, गजपीपल, भांगरा, हलदी, कालानिसोत, सुवर्चला, दशमूल, सतावर, चिरचिटा और असगंध प्रत्येक आठ आठ तोले लेकर ३२ बत्तीससेर जलमें पकावे, जब आठसेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् इसको अग्निपे फिर चढ़ादेवे, इसमें ४ चारसेर घी मिलाकर पकावे । इस घृतको त्रिपदी गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रित कर दो महीनेकी गर्भवती स्त्री छे महीने तक सेवन करे, इसके सेवन करनेसे सर्वज्ञ और सर्वरोग रहित पुत्रको उत्पन्न करतीहै । इसके प्रभावसे कोखमें स्थित गर्भ स्फुट शब्दवाला बोलताहै । जो स्त्री योनिदुष्टाहै, जिन मनुष्योंका वीर्य दूषित है उन सबके विकारोंको यह सोमघृत निश्चय दूर करेहै । इस घृतका सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री भी शूर, पंडित और मानी पुरुषोंको गर्भमें धारण करतीहै, तथा जडता, गद्गदपना, गूंगापन, यह सब रोग इस घृतके पीनेसे निःसंदेह दूर होजाते

हैं । इसको सात रोजतक सेवन करनेसे मनुष्य उत्तम स्वरवाले होजातेहैं । इस घृतको एक गृहीष्टसेवन करनेसे बहरे मनुष्य सुनने लगतेहैं । जिस घरमें यह सोमघृत रहताहै, उस घरमें कदापि अग्नि नहीं लगती, न बिजली गिरे और न बालक मरते हैं ॥ ६४-७३ ॥

अथ पुंसवनविधिः गर्भस्थितिलिङ्गाश्च ।

गर्भमासत्रयादर्वाकुर्यात्पुंसवनं बुधः ।

बलीपुरुषकारो हि देवमप्यभिवर्त्तते ॥ ७४ ॥

पुंसवनं गर्भस्य पुत्रत्वोत्पादकम् ।

गोष्ठजातवटस्य प्रागुत्तरशाखजे उभे शुङ्गे मापौ द्वौ तथा
गौरसर्पपौ दग्धि योजितौ दुग्धेन सह पुष्यपीतौ द्रुतापन्नग-
र्भायाः पुत्रकारकौ भवतः ॥

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलनासापुटेऽस्वयम् ।

पुत्रार्थदक्षिणेऽसिञ्चेद्भ्रामेदुहित्वाच्छया ॥ ७५ ॥

भिषक् पुंसवने युञ्ज्यात्तथा सोमघृतादिकम् ।

लिङ्गन्तुसद्योगर्भायोन्यां बीजस्य संग्रहः ॥ ७६ ॥

तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रस्थानानुवर्त्तनम् ।

हृदयस्पन्दनं तन्द्रादृग्घानिलोमहर्षणम् ॥ ७७ ॥

ततः परं गर्भचिह्नं पुष्पाभावोऽक्षिपक्ष्मणाम् ।

क्षामतागारिकाकुक्षेर्मूर्च्छाच्छर्दिरोचकाः ॥ ७८ ॥

जृम्भाप्रसेकः सदनरोमराज्याः प्रकाशनम् ।

अम्लेष्टतास्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूतौ ॥ ७९ ॥

अर्थ—स्त्रियोंके तीन महीनेका गर्भ होजाय तो उनको पुंसवन कर्मकरे, कारण यह है कि, पुरुषार्थ बलवान् है और देव निर्बल है अर्थात् पीछे रहता है । पुंसवन-कर्म गर्भमें पुत्रको उत्पन्न करनेवाला है । गौके स्थानमें उत्पन्न हुए बडके उत्तर और पूर्वकी शाखाओंके दो अंकुर, दो उडद और दो सफेद सरसोंके दाने, इनको दहीमें मिलाकर पुष्यनक्षत्रमें दूधके साथ पीनेसे निश्चय गर्भवती स्त्री पुत्रवाली होजाती है । सफेद कटाईकी जडको दूधमें पीसकर गर्भिणीके दाहिने

नाकके छिद्रमें नास देनेसे पुत्र और बाँए नाकके छिद्रमें नास देनेसे कन्या उत्पन्न होती है । और सोम घृतादिको भी पुंसवन कर्ममें देवे । योनिमें बीजका संग्रह, तृप्तिहोना, भारीपन, स्फुरण होना और शुक्र आर्तव स्थानमें स्थित होजावे, हृदय कम्प, तन्द्रा, दृष्टिलोप और रोमाञ्च, यह सब लक्षण उस स्त्रीके हैं जिसने तत्काल गर्भ धारण कियाहो । ऋतुधर्मका न होना नेत्रोंके पलक बारंबार खुलें भिचें, क्षामता, कुक्षिभार, मूर्च्छा, वमन, अरुचि, जम्भाई, वारंवार, मुखमें थूक आय जावे, शरीर टूटे, रोमांच होजावे, खट्टीचीजें खानेकी इच्छाहो, दोनो स्तन भारी, तथा स्थूल और उनके दोनोके अग्रभाग काले होजावें, यह सब लक्षण गर्भ रहजानेके पीछेके हैं ॥ ७४-७९ ॥

अथ मातृगर्भाङ्गरचनावर्णनम् ।

अव्यक्तं प्रथमे मासि सप्ताहे कललम् भवेत् ।

कललं क्लेदभूतोऽपित तत्तत्तु बुद्धाकृतिः ॥ ८० ॥

द्वितीये मासिकललाद्धनपेष्यथ वार्बुदम् ।

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपंचकम् ॥ ८१ ॥

मूर्द्धाद्वैशंखिनी बाहुसर्वसूक्ष्म जन्म च ।

रम्ये बाहुमूर्द्धाद्वैज्ञानश्च मुखदुःखयोः ॥ ८२ ॥

तथा सापुष्टिमाप्नोति केदार इव जल्यया ।

चतुर्थेऽव्यक्तमंगानां चेतनायाश्च पंचमे ॥ ८३ ॥

षष्ठे स्नायुशिरोरेखेऽप्यङ्गुलिः ।

सर्वैः सर्वाङ्गसम्पूर्णैर्भागैः प्यतिसप्तमे ॥ ८४ ॥

अतएव हि संज्ञातस्तत्र जीवति बालकः ।

नेजोऽष्टमे संचरति मातृदन्वोऽमुदुःक्रमात् ॥

तेन तौ म्लानमुदितौ स्यातां जातो न जावति ॥ ८५ ॥

अर्थ—पहिले महीनेमें गर्भ अव्यक्त अर्थात् गुप्त रहता है तथा बीजको ग्रहण करनेके पश्चात् शुक्र और रज मिलकर ७ सात दिनमें कललाकृति होजाता है, पश्चात् क्लेदरूप होकर बुद्धाकृति होजाता है । दूसरे महीने

बुद्बुदाकृतिसे घनमांस पेशी होजाताहै । जोसरे महीनेमें मांसपेशीका पंचगा-
त्राकार परिणमन होताहै, अर्थात् मांसपेशीसे मस्तकका अर्द्धभाग, बाहु,
शंखिनी और अन्यान्य सूक्ष्म सूक्ष्म अंग उपजतेहैं । और कुछ समयके बाद
मस्तकका अपराद्ध और सुख दुःखका ज्ञान उत्पन्न होताहै । और जिस प्रकार
तडाग तथा नहरोंसे खेत परिपुष्ट होताहै, उसी प्रकार गर्भिणीका गर्भ परिपुष्ट
होताहै । चौथे महीनेमें गर्भके सम्पूर्ण अप्रकट अंग प्रकट होजातेहैं, पाँचवें
महीनेमें चेतना प्रकट होतीहै । छठे महीनेमें स्नायु, शिरा, रोम, बल, वर्ण, नख
और त्वचा उत्पन्न होतीहै सातवें महीनेमें गर्भ सम्पूर्ण अंगयुक्त होजाताहै,
इससे इस महीनेका जन्मा हुवा बालक जी जाताहै । आठवें महीनेमें सर्व-
धातुओंका तेज क्रमसे बारंबार माता और पुत्रमें संचारकगताहै अर्थात् कभी
माताका तेज संचार करे और कभी गर्भगत बालकका तेज संचार करे,
इसकारण गर्भिणी और गर्भस्थ बालक दोनो म्लान (मुग्धाए हुए) और
मुदित (प्रमत्त) होतेहैं । अतएव अष्टम मासकी उत्पन्न हुई मन्तान नहीं
जीतीहै ॥ ८०-८५ ॥

अथ गर्भविलासरसः ।

रसगंधकतुत्थञ्चत्रयहंजम्बीरमर्दितम् ।

त्रिभावितंत्रिकटुनादेयंगुंजाचतुष्टयम् ।

गर्भिण्याःशूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषुकेवलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—पारा, गंधक और नीलाथोथा, यह तीनो द्रव्य समानभाग लेकर
जम्बीरी नीचूके रसमें तीन दिनतक खरल करे, पश्चात् त्रिकुटेके काथमें भावना
देकर चार गत्तीभर सेवन करे, इससे गर्भिणियोंका शूल, विष्टम्भ, ज्वर और
अजीर्ण गेग दूर होताहै ॥ ८६ ॥

अथ प्रथमगर्भचिन्तामणिरसः ।

तुत्थस्थानेस्वर्णदेयंचितामणिरसःस्मृतः ॥ ८७ ॥

अर्थ—उपगैक्त गर्भविलास रसमें स्वर्ण मिलानेसे गर्भचिन्तामणि रस
होजाताहै, इसकी मात्रा गर्भविलास रसकी समान है और गुणभी गर्भविलास-
के तुल्य है ॥ ८७ ॥

अथ द्वितीयगर्भचिन्तामणिरसः ।

जातीफलंटंकणचव्योषपैत्येन्द्ररक्तकम् ।

तच्चूर्णसमभागेनमर्दितप्रहरद्वयम् ॥ ८८ ॥

जम्बीररसयोगेनवटाकुंर्याद्विचक्षणः ।

गुंजाद्वयंप्रमाणेनकृत्वावैद्यःप्रयत्नतः ॥ ८९ ॥

आर्द्रकस्यरसेनैवभक्षयेदुष्णवारिणा ।

निहन्तिस्वरोगंचभास्करस्तिमिरंयथा ॥ ९० ॥

अर्थ—जायफल, सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल, गंधक और सिंगफ इन सबको एकत्र पीसके जम्बीरी नीबूके रसमें दो प्रहर खरलकर दो दो रत्तीकी गोली बनालेवे प्रतिदिन एक गोली अदरखके रसमें मिला कर गरम जलके साथ सेवन करनेसे गर्भिणियोंके सर्व प्रकारके रोग दूर होजातेहैं ॥ ८८-९० ॥

अथ तृतीयगर्भचिन्तामणिरसः ।

रसंतालंतथालौहंप्रत्येकंकर्षमात्रकम् ।

कर्षत्रयंतथाचाभ्रंकपूरंवंगताम्रकम् ॥ ९१ ॥

जातीफलंतथाकोषंगोक्षुरंचशतावरी ।

बलातिबलयोर्मूलंप्रत्येकंतोलकंशुभम् ॥ ९२ ॥

वारिणावटिकाकार्याद्विगुंजफलमानतः ।

सन्निपातंनिहन्त्याशुस्त्रीणांचैवविशेषतः ।

गर्भिण्याज्वरदाहंचप्रदरंसूतिकामयम् ॥ ९३ ॥

अर्थ—पारा, हरिताल और लोहा प्रत्येक एक एक कर्ष, अभ्रक, कपूर, वंग, ताँवा, जायफल, जावित्री, गोखरू और सतावर प्रत्येक तीन तीन कर्ष, दोनो खिरैटियोंकी जड़, प्रत्येक एक एक तोले । इन सबको एकत्र पीसकर जलमें दो दो रत्तीकी गोली बना लेवे, प्रतिदिन एक गोली खावे, इससे गर्भिणी स्त्रियोंके ज्वर, दाह, प्रदर, सूतिका और सन्निपातादि रोग दूर होतेहैं ॥ ९१-९३ ॥

अथ गर्भरक्षार्थमुपायाः ।

अतिव्यवायव्यायामदिवास्वप्नप्रजागरान् ।

तीक्ष्णोपचारशोकादीञ्जलपानोत्कटासनम् ॥ ९४ ॥

दारुणानितथान्यानिगर्भिणीपारिवर्जयेत् ।

संप्राप्तेचाप्येष्टासिद्धैथुनंपारिवर्जयेत् ॥ ९५ ॥

यदिगच्छतिदुर्मेधाकाममोहादचेतनः ।

विपद्यतेतदागर्भेणतत्तेनात्रसंशयः ॥ ९६ ॥
 गर्भेभद्रद्विष्टस्यास्तुगर्भिण्याःपुष्पदर्शनम् ।
 रक्तस्रावोऽथवातत्रपित्तश्लेष्महितोविधिः ॥ ९७ ॥
 गर्भोभिघातविषमाशनपीडिताद्यैः
 पक्वंद्रुमादिवफलंपततिक्षणेन ॥
 मूढंकरोतिपवनःखलुमूढगर्भं
 शूलंचयोनिजठरादिषुमूत्रसंगः ॥ ९८ ॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन, परिश्रम, दिनमें सोना, रात्रिमें जागरण, तीक्ष्ण उपचार, शोकादि, उत्कटपान, उत्कटभोजन उत्कट आसन तथा अन्यान्य दारुण विषयोंको गर्भिणी त्याग देवे। आठवें महीनेमें एकबार भी मैथुन न करे। यदि कोई निर्बुद्धि मनुष्य कामान्ध होकर आठवें महीनेमें गर्भिणीसे संगम करे तो गर्भ निश्चय नष्ट होजाताहै । जो गर्भावस्थामें स्त्रियोंके रजोदर्शन अथवा रक्तस्राव होय तो पित्तश्लेष्मनाशक विधि प्रयोग करे । अभिघात, विषमाशन और पीडनादिसे तत्काल गर्भ पतित होजाताहै । जैसे वृक्षसे पके हुए फल क्षणमात्रमें पतित होताहै । वायुसे मूढगर्भ होताहै, तथा योनि, जठरादिकमें शूल और मूत्ररोध होताहै ॥ ९४-९८ ॥

अथाद्यमासतःगर्भशूलचिकित्सा ।

गर्भिण्याःप्रथमेमासिगर्भशूलंप्रजायते ।
 चन्दनमधुकंलोध्रंकेशरंनीलमुत्पलम् ॥ ९९ ॥
 शृंगाटकंकशेरुञ्चसप्तभागानिकारयेत् ।
 क्षीरेणपाययेत्प्रातर्गर्भधारणमुत्तमम् ॥ १०० ॥
 द्वितीयेमासिगर्भिण्याःशूलमुत्पद्यतेयदा ।
 काकोलीक्षीरकाकोलीआमलामधुयष्टिका ॥ १०१ ॥
 घृतेनसप्तभागानिक्षीरेणालोढ्यपाययेत् ।
 हन्तिशूलंसमुत्पन्नगर्भधारणमुत्तमम् ॥ १०२ ॥

अर्थ—गर्भिणीके प्रथम मासमें गर्भशूल उपजे तो लालचंदन, मुलेठी, लोध, नीलोत्पल, सिंघाडे और कशेरु, इनका चूर्ण कर दूधके साथ प्रातःकाल

पीवे, यह उत्तम गर्भको धारण करनेवाला है गर्भिणीके दूसरे महीनेमें गर्भ शूल उपजे तो काकोली, क्षीरकाकोली, भुई आमला और मुलेठी, इनका चूर्ण घृत और दूधमें मिलाकर पीनेसे गर्भशूल नष्ट होकर निश्चय गर्भकी रक्षा होती है ॥ ९९-१०२ ॥

अथ तृतीयमासतः गर्भशूलचिकित्सा ।

तीयेमासिगर्भिण्याःशूलमुत्पद्यतेयदा ।

अनन्ताशारिवाक्षीरकाकोलीचवृक्षादनी ॥ १०३ ॥

क्षीरेणपाययेत्प्रातःशूलंहन्तिसुनिश्चयः ।

चतुर्थेमासिगर्भिण्याःशूलंवाजायतेयदि ॥ १०४ ॥

उत्पलस्यचशालूकंयष्टीमधुकमेवच ।

लोध्रेणापिसमंपिष्ट्वापिबेत्क्षीरेणसंयुतम् ॥ १०५ ॥

ततोविजयतेशूलंस्वास्थ्यंचैवोपपद्यते ।

पंचमेमासिगर्भिण्यागर्भेशूलंप्रजायते ॥ १०६ ॥

नीलोत्पलस्यशालूकंपद्मबीजंमृणालकम् ।

शर्करायाःसमंपिष्ट्वाक्षीरेणालोडयपाययेत् ॥ १०७ ॥

अस्यसेवाप्रसादेनस्वास्थ्यंसम्पद्यतेक्षणात् ॥ १०८ ॥

अर्थ—गर्भिणीके तीसरे महीनेमें गर्भशूल उत्पन्न होय तो दोनो सारिवा, क्षीरकाकोली और बाँदा इन सबको समान भाग ले दूधमें पीसकर सेवन करनेसे गर्भशूल दूर होताहै । चौथे महीनेमें गर्भिणीके गर्भशूल उपजे तो भैंसीडे, मुलेठी और लोधको पीसकर दूधके साथ पीवे, इससे निःसंदेह गर्भशूल दूर होजाताहै । पाँचवें महीनेमें गर्भशूल उपजे तो नीलोत्पलकी कन्द, कमलगट्टा, मृणाल और शर्करा यह सब समान भाग ले एकत्र पीस दूधमें मिलाकर पीनेसे निश्चय गर्भ शूल दूर होकर गर्भकी रक्षा होतीहै १०३-१०८ ॥

अथ षष्ठमासतःगर्भशूलचिकित्सा ।

षष्ठेमासिगर्भिण्याःशूलपीडादरुणा ।

नीलोत्पलस्यशालूकंकदलीमाचरसस्तथा ॥ १०९ ॥

शर्कराक्षीरकाकोलीजांरकेणसममिश्रितम् ।

गवांक्षीरेणसप्ताहंपानाच्छूलहरंपरम् ॥ ११० ॥

सप्तमेमासिगर्भिण्याःशूलंसंजायतेयदि ।

शृंगाटकंविसंद्राक्षाकशेरुमधुकंसिता ॥ १११ ॥

तत्सर्वसमंपिष्ट्वाक्षीरशर्करयासह ।

नारीणांपानयोगेनगर्भस्थापनमुत्तमम् ॥ ११२ ॥

अर्थ—छठे महीनेमें गर्भशूल उत्पन्न होय तो नीलोत्पलकी कन्द, केला, मोचरस, शर्करा क्षीरकाकोली और जीवक, यह सब समानभाग ले दूधके साथ सात दिन पीनेसे दारुण गर्भशूल नष्ट होताहै । सातवें महीनेमें गर्भशूल उत्पन्न होय तो सिंघाड़े, भर्सीड़े, दाख, कशेरू, मुलेठी और बूरा यह समानभाग ले पीसकर दूध और मिश्री मिलाकर पीनेसे गर्भस्थापन होताहै ॥ १०९-११२ ॥

अथाष्टममासीयगर्भशूलंचिकित्सा ।

अष्टमेमासिगर्भिण्याःशूलंसंजायतेयदा ।

चशालूकंशृंगाटकद्वयन्तथा ॥ ११३ ॥

मंजिष्ठारक्तशालिंचलोध्रंक्षीरेणसंयुतम् ।

प्रातुद्वेयहंस्त्रीणांगर्भधारणमुत्तमम् ॥ ११४ ॥

चममासगर्भिण्यागर्भशूलंसुदारुणम् ।

पिष्ट्वाचक्षीरकाकोलीक्षीरेणसुखमाप्नुयात् ॥ ११५ ॥

दशमेमासिगर्भिण्याःशूलमुत्पद्यतेयदा ।

कमलकुम्भलबीजानिशालूकमधुसैन्धवम् ।

गवांक्षीरेणपातव्यंगर्भस्थापनमुत्तमम् ॥ ११६ ॥

अर्थ—आठवें महीनेमें गर्भशूल उपजे तो कमलकन्द, दोनो प्रकारके सिंघाड़े, मंजिठि, लालशालिधान और लोध, इनको दूधमें पीसकर भोजन करनेमें तीन दिनमें ही गर्भशूल दूर होजाताहै । नवमें महीनेमें गर्भशूल जन्मे तो क्षीरकाकोलीको दूधमें पीनेसे विशेष लाभहोताहै । दशम महीनेमें गर्भशूल उपजे तो कमल, उत्पलके बीज, शालूक, सहत और सैन्धानोनको एकत्र मिलाकर दूधके साथ पीनेसे निश्चय गर्भकी रक्षा होजातीहै ॥ ११३-११६ ॥

अथ गर्भशूलहरयोगौ ।

चंदनेनमृणालेनपद्मकेशरपद्मकैः ।

गर्भप्रदेहंकुर्वीतमधुकेनोत्पलेनच ॥ ११७ ॥

काकोडुम्बरफलजस्वरसोमोचोत्थगर्भोवा ।

मधुनापीतःसद्यःशमयतिगर्भस्रुतिबहुलाम् ॥ ११८ ॥

अर्थ—लालचंदन, खश, कमलकेशर, पद्माख, मुलेठी और उत्पल इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर गर्भिणीके उदरपर प्रलेप करनेसे गर्भशूल नष्ट होताहै । कठूमरके फलोंका स्वरस या केलेका मध्यभाग सहतके साथ पीनेसे तत्काल गर्भस्राव दूर होताहै ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

अथ बृहद्गर्भचिन्तामणिरसः ।

सूतंगंधं तथास्वर्णलौहंरजतमाक्षिकम् ।

हरितालंवंगभस्माप्यभ्रकंसमभागिकम् ॥ ११९ ॥

भावनाखलुदातव्यारसैरेषांपृथक्पृथक् ।

ब्रह्मीवासाभृंगराजपर्पटंदशमूलकम् ॥ १२० ॥

सप्तधाभावयेद्वैद्योगुंजामानांवटींचरेत् ।

गर्भचिन्तामणिरयंपूर्ववत्कथिताःगुणाः ॥ १२१ ॥

अर्थ—पारा, गंधक, सोना, लोहा, रूपा, सोनामाखी, हरिताल, वंगकी भस्म और अभ्रक, यह सब समान भाग ले पीसकर ब्राह्मी, अडूसा, भांगरा, पित्तपापडा और दशमूलके रसमें अलग अलग सात भावना देकर एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे, यह गर्भचिन्तामणि रस ज्वर और शूलाल्दि रोगोंको दूर करैहै ॥ ११९—१२१ ॥

अथ गर्भविनोदरसः ।

त्रिभागंत्रिकटुंदेयंचतुर्भागंचहिंगुलम् ।

जातीकोषंलवङ्गञ्चप्रत्येकञ्चत्रिकार्षिकम् ॥ १२२ ॥

सुवर्णमाक्षिकंचैवपलाद्धंप्रक्षिपेद्बुधः ।

जलेनमर्दयित्वाथचणमात्रावटीकृता ।

निहन्तिगर्भिणीरोगंभास्करस्तिमरंयथा ॥ १२३ ॥

अर्थ—त्रिकुटा३ तीनभाग, सिंग्रफ चार भाग, जायफल और लौंग प्रत्येक३ तीन भाग, सोनामाखी, ४ चार भाग, इन सबका एकत्र चूर्णकर जलके साथ पीसकर चनेकी बराबर गोली बना लेवे । यह गर्भविनोद रस यथानुपानके साथ खानेसे गर्भिणीके सम्पूर्ण रोग दूर करैहै ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अथ गर्भस्थितिस्तच्छूलघ्नयोगश्च ।

घटनप्रवृत्तघटकृतकरयुगसंलग्नकर्दमः पीतः ।

समधुश्छागीक्षीरैर्नियतंसंस्थापयेद्गर्भम् ॥ १२४ ॥

कशेरुशृंगाटकजीवनीयैःपद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः ।

सिद्धंपयःशर्करयाविमिश्रंसंस्थापयेद्गर्भमुदीर्णशूलं १२५

अर्थ—घडेके बनाते समय कुम्हारके हाथमें जो मट्टी लग जातीहै, उस मट्टी-को संहत और बकरीके दूधमें मिलाकर पीवे तो गर्भस्थापन होजाताहै । कशेरु, सिंघाडे, जीवनीयगणकी औषधि, कमल, उत्पल, अंड और सतावर इन सब औषधियोंको दूधमें पकाकर पीनेसे—निश्चय गर्भशूल दूर होजाताहै १२४।१२५

अथाष्टधाविकृतगर्भस्वरूपाणि ।

भुग्नोऽनिलेनविगुणेनततःसगर्भः ।

संख्यामतीवबहुधासमुपैतियोनिम् ॥

द्वारंनिरोध्याशिरसाजठरेणकश्चि-

त्कश्चिच्छरीरपरिवर्तितदेहकूजः ॥ १२६ ॥

एकेनकश्चिदपरस्तुभुजद्वयेन

तिर्यग्गतोभवतिकश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ।

पाश्वर्षोपवृत्तगतिरेवतथैवकश्चि-

दित्यष्टधागतिरियं ह्यपराचतुर्धा ॥ १२७ ॥

अर्थ—दुष्ट वातसे गर्भ टेढ़ा होकर अनेक प्रकारसे योनिके मुखपर आनकर अडजाताहै, तहाँ कोई गर्भ योनिके मुखको मस्तकसे गेक लेताहै कोई उदरसे योनिद्वारको रोकताहै कोई अपने शरीरको गोलघुमाकर कुबडेपनसे-योनि-द्वारको रोकताहै, कोई एकहाथसे, कोई दोनों हाथोंसे योनिद्वारको रोकताहै, कोई तिरछा होकर योनिद्वारको रोकताहै, कोई नीचा मुख होकर योनि-

द्वारको रोकताहै और कोई पसलियोंको टेढ़ा करके योनिं द्वारको रोकताहै, ऐसे आठ प्रकारसे विकृत गर्भकी गति होतीहै । कोई चार प्रकारसे कहतेहैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

अथ गर्भपातयत्नो गर्भिणीज्वरचिकित्सा च ।

करिदमनदहनमूलंपिष्टंसलिलेनपानतःसद्यः ।

चिरमह्नेरुहं गर्भमृतममृतंवापातयति ॥ १२८ ॥

ज्वरादिरोगेगर्भिण्यामृदुकुर्याच्चिकित्सितम् ।

तीक्ष्णंहिभेषजंतस्यागर्भवातायकल्पते ॥ १२९ ॥

चन्दनंशारिवालोध्रंमृद्वीकाशर्करान्वितम् ।

क्वाथंकृत्वाप्रदातव्यंगर्भिण्याज्वरनाशनम् ॥ १३० ॥

शर्करा प्रक्षेप्या ।

अर्थ—नागदौनकी जड़, और लाल चीतेकी जड़को जलमें पीसकर पीनेसे तत्काल थोड़े दिनोंका बहुत दिनोंका, मराहुआ और विनामरा हुआ गर्भ पतित होजाताहै । गर्भिणी स्त्रियोंके ज्वरादि रोगोंमें मृदु चिकित्सा करे, क्योंकि तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करनेसे गर्भ पतित होजाताहै । चन्दन, अनन्तमूल, लोध, इनका क्वाथ बना मिश्री मिलाकर पीनेसे गर्भिणियोंका ज्वर दूर होजाताहै ॥ १२८-१३० ॥

अथ सहचरादिः ।

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटबिल्ववालकैःकथितम् ।

पेयमिश्रमधुमिश्रंसद्योज्वरशूलनुत्सद्यः ॥ १३१ ॥

अर्थ—करसरेया, नागमोथा, गिलोय, भद्रमोथा, बेल और सुगंधवाला, इनके क्वाथमें सहत डालकर पीनेसे गर्भिणियोंके तत्काल ज्वर और शूल दूर होताहै ॥ १३१ ॥

अथ गर्भिणीज्वरादिहरकाथाः ।

एरण्डमूलमृतामंजिष्ठारक्तचन्दनम् ।

दारुपञ्चतःक्वाथोगर्भिण्य ज्वरनाशनः ॥ १३२ ॥

रास्नाछेत्ररुहात्सकुष्ठसहितैर्मूलैश्चपंचान्वितैः ।
 तत्प्रातःकथितंसशर्करयुतंक्षौद्रेणसंयोजितम् ॥ १३३ ॥
 पीतंहन्तिचगर्भिणीज्वरगदंश्लेष्माभिवृद्धिपुनः ।
 सद्यश्चैवचिकित्सकैश्चकुशलैर्ज्ञात्वापुराणैर्मतम् ॥ १३४ ॥
 मुस्तपर्पटदुःस्पर्शकण्टकारीमहौषधम् ।
 वातश्लेष्मारुचिहरंगर्भिण्याज्वरनाशनम् ॥ १३५ ॥
 आम्रजम्बूत्वचक्वाथंलेहयेल्लाजशकुभिः ।
 अनेनलीढमात्रेणगर्भिणीसारकंजयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ—अरंडकी जड़, गिलोय, मजीठ, लालचंदन, देवदारु और पद्माख यह सब औषधि समानभाग ले काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर दूर होताहै । रास्ना, गिलोय, कूठ और पंचमूल, यह सब औषधि समानभाग ले काथ बना बूरा और सहत डालकर पीनेसे गर्भिणियोंका ज्वर और श्लेष्मा, दूर होताहै । नागरमोथा, पित्तपापडा, धमासा, कटेरी और सांठ यह सब समान भाग ले काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणियोंके वात श्लेष्म, अरुचि और ज्वर दूर होताहै । आमकी छाल और जामुनकी छालका काथ बना तिसमें खीलोंके सत्तू मिलाकर पीनेसे तत्काल अतीसार रोग दूर होताहै ॥ १३३-१३६ ॥

अथ हीवेरादिकाथः ।

हीवेराऽरलुरक्तचंदनबलाधन्याकवत्सादनी ।
 मुस्तोशीरयवासपर्पटविपाक्वाथंपिवेद्गर्भिणी ॥ १३७ ॥
 नानावर्गरुजातिसारकगदेरक्तेस्तुतौवाज्वरे ।
 योगोऽयंमुनिभिःपुरानिगदितःसृत्यामयेष्टतमः ॥ १३८ ॥

इति योनिव्यापच्चिकित्सा ।

अर्थ—सुगन्धवाला, श्योनाक, लालचन्दन, खिरंटी, धनियाँ, गिलोय नागर-मोथा, खस, धमासा, पित्तपापडा और अतीस, यह सब औषधि समान भाग ले काथ करके पीनेसे स्त्रियोंके नाना प्रकारकी पीडा और रक्तस्राव युक्त अतिसार तथा ज्वर रोग दूर होताहै ॥ १३७॥१३८ ॥

इति योनिव्यापच्चिकित्सा समाप्ता ।

अथ प्रसूतिकाव्याधिचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ सुखपूर्वकप्रसवार्थयोगाः ।

पाठालांगलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् ।

नाभिबस्तिभगालेपात्सुखंनारीप्रसूयते ॥ १ ॥

परूषकस्थिरामूललेपात्तद्रुतपृथक्पृथक् ।

योनौवासांग्रिलेपेनमहागर्भाप्रसूयते ॥ २ ॥

गृहाम्बुनागेहधूमपानंगर्भापकर्षणम् ।

गृहाम्बुनाहिंशुसिन्धुचूर्णपानंतथैवच ॥ ३ ॥

अर्थ—पाद, कलिहारी, अड्डसा, मोरशिखा, फालसा और शालिपर्णी इनमें किसी एक औषधिको पीसकर नाभि, बस्ति, अथवा योनिपै प्रलेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है । अड्डसेकी जड़को जलमें पीसकर, योनिपै प्रलेप करनेसे सुखसे स्त्री बालकको जनती है काँजीके साथ धूम पान करनेसे अथवा काँजीमें हींग और सैधानोनका चूर्ण डालकर पीनेसे स्त्रियें सुखपूर्वक बालकको जनती हैं ॥ १-३ ॥

अथान्येपिसुखप्रसवार्थयोगाः ।

मातुलंगस्यमूलानिमधुकंमधुसंयुतम् ।

घृतेनसहपातव्यंसुखंनारीप्रसूयते ॥ ४ ॥

पुटदग्धसर्पकञ्चुकमसृणमसीकुसुमसारसुहिताक्षी ।

झटितिविशल्याभवतिगर्भवतीमूढगर्भापि ॥ ५ ॥

तुषाम्बुपरिपिष्टेनमूलेनपरिलेपयेत् ।

लांगल्यासरणीमूतेक्षिप्रमेतेनगर्भिणी ॥ ६ ॥

अर्थ—विजोरे नीबूकी जड़ और मुलेठीको एकत्र पीस सहत मिलाकर घृतके साथ पीनेसे स्त्रियोंके सुखसे प्रसव होता है साँपकी कैंचलीको पुटके द्वारा जलाकर मसी बनालेवे, फिर उस मसीमें सहत मिलाकर आँखोंमें लगानेसे मूढगर्भा स्त्रीभी सुख पूर्वक प्रसव करे । कलिहारीकी जड़को काँजीमें पीसकर गर्भिणीके दोनों पाँवोंमें प्रलेप करनेसे अत्यन्त शीघ्र प्रसव होता है ॥ ४-६ ॥

अथ सुखप्रसवार्थसमन्त्रकयत्नाः ।

तालतरुत्तरमूलेमुक्तशिखाकच्छकोद्धृतेनियतः ।

वासामूलेतद्वत्कटिबद्धेतुद्रुतंसूते ॥ ७ ॥

यासौसरस्वतीतीरेजम्भलानामराक्षसी ।

तस्याःस्मरणमात्रेणविशल्यागर्भिणीभवेत् ॥ ८ ॥

अलक्तकेनलिखितागर्भोपरितथाधार्यम् ॥

क्षितिर्जलं वियत्तेजोवायुर्विष्णुः प्रजापतिः ॥ ९ ॥

गर्भस्थांत्वांसदोपान्तुविशल्यामादिशन्तु च ।

प्रसूप्त्वत्वमविकृष्टमविकृष्टशुभानने ॥ १० ॥

कार्तिकेयद्युतिपुत्रंकार्तिकेयाभिरक्षितम् ।

काचिदप्यनुकूलास्त्रीकर्णेवामेजपेच्छनैः ॥ ११ ॥

विशल्यकरणींविद्यांवक्ष्येयज्जतवारिणा ॥

सुखीभवतिशूलार्त्तक्षतोवज्रास्त्रकण्टकैः ॥ १२ ॥

गर्भिण्याविपमोगर्भःसमोभवतिनान्यथा ।

ॐक्षिपनिक्षिपउन्मथनिमथप्रथमप्रथममुञ्चमुञ्चस्वाहा १३

अनेन चाष्टौ वारानभिमन्त्र्य गर्भिण्यै पानीयं पातुं देयम् ।

प्राक्चैव न वमान्मासात्सासूतागृहमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

देशेप्रशस्तेसम्भारैःसम्पन्नंसाधकेऽहनि ।

तत्रोदीक्षेतसासूतिसूतिकापरिवारिता ॥ १५ ॥

अर्थ—चोटी और धोतीको खोलकर नाडवृक्षकी उत्तर दिशाकी जड़ अथवा अड़सेकी जड़को उखाडलावे, फिर गर्भिणीकी कटिपे बाँधनेसे शीघ्र प्रसव होताहै । “यासौ गर्भिणी भवेत्” इस मंत्रको लाखके रंगसे भोजपत्रपे लिखकर गर्भिणीके गर्भपे धारण करे । अथवा “क्षितिर्जलशुभानने” इसमंत्रको गर्भिणीके बाएँ कानमें मुनानेसे स्वामिकार्तिकेयकी समान पुत्र उत्पन्न होता है ॥ और “विशल्यकरणी—मुञ्च मुञ्च स्वाहा” इसमंत्रसे जलको आठबार पढ़ कर गर्भिणीको पीनेको देवे । गर्भिणी स्त्री नवें महीनेसे पहिलेही सूतिकागृहमें

चली जावे और वह सूतिकागृह उत्तम देशमें बनाहो, तथा उत्तम तरल्ले, कडी और ईंटोंसे पटाहो और शुभदिनमें उसकी नीम रक्खी गईहो । प्रसव होनेके पश्चात् मर्यादासे प्रथम कदापि स्त्री बाहर न निकले ॥ ७-१५ ॥

अथ गर्भिणीप्रसवलिङ्गानि ।

अद्यश्वःप्रसवेग्लानिःकुक्षैः शिथिलताक्लमः ।

अधोगुरुत्वमरुचिःप्रसेकोबहुमूत्रता ॥ १६ ॥

वेदनोरुदरकटीपृष्ठहृद्वस्तिवङ्क्षणे ।

योनिभेदरुजातोदस्फुरणस्रवणानिच ॥

आधीनामनुजन्मातस्ततोगर्भोदकस्रुतिः ॥ १७ ॥

जातेचाशिथिलेकुक्षौमुक्तेहृदयबंधने ।

सशूलजघनेनारीज्ञेयासातुप्रजायिनी ॥ १८ ॥

अर्थ—ग्लानि, कोखमें शिथिलता, क्लान्ति, अधोभागमें गुरुता, अरुचि, प्रतिश्याय, बहुमूत्रता, ऊरु, उदर, पृष्ठ, हृदय, वस्ति और छाती में पीडा, योनिमें भेदकी समान पीडा, सुईचोभनकी समान पीडा, यंत्रणा स्फुरण और स्राव भगसे जलका गिरना, हृदयबंधनमें शिथिलता और जाँघोंमें शूलकी समान पीडा, यह सब प्रसवहोनेके चिह्न हैं ॥ १६-१८ ॥

अथ प्रसवकालिककृत्यानि ।

अतोपस्थितगर्भांतांकृतकौतुकमंगलाम् ।

हस्तस्थपुत्रामफलामभ्यक्तोष्णाम्बुसेविताम् ॥ १९ ॥

गाययेत्सघृतांपेयांततोभूशयनेस्थिताम् ।

पुनःपुनस्तामभ्यज्यकुर्यात्स्वंकर्मसूतिका ॥ २० ॥

मृदुपूर्वप्रवाहेचवाढामाप्रसवाच्चसा ॥

हर्षयेत्तांमुहुर्जन्मशब्दैःसंजननायवै ।

प्रतियान्तितथाप्राणाःसूतिकेशावसादिताः ॥ २१ ॥

अर्थ—स्त्रियाँको गर्भ प्रसवके समय कौतुक और मंगल कार्य्य कराकर पश्चात् प्रसूताके हाथमें पुत्राम फल देकर योनि आदिमें तेलको मलकर गरमजलसे

स्नानकरावै और घृत संयुक्त पेया मिलाकर भूमिपर सुलादे । इस प्रकार प्रस-
वतक सूतिकाको बारंवार तेलालेसे अभ्यक्तकर सर्वदा दृष्ट रक्खै, इससे प्रसूति-
काके अनेक प्रकारके क्लेश दूर होतेहैं ॥ १९-२१ ॥

अथाभिमन्त्रितताम्बूलादिभक्षणम् ।

इहामृतञ्चसोमश्चचित्रभानुश्चभामिनि ।

उच्चैःश्रवाश्चतुरगोमन्दिरेनिवसन्तुते ॥ २२ ॥

इदममृतमपांसमुद्धृतं वैतवलयुगर्भमिमं विमुञ्चतुस्त्री ।

तदनलपवनार्कवासवास्तेसहलवणाम्बुधरैर्दृशन्तुशान्तिम् ॥ २३ ॥

मुक्ताः पाशाविपाशाश्चमुक्ताः सूर्येन्दुरश्मयः ।

मुक्तः सर्वभयाद्गर्भः एह्येहिमाचिरं माचिरं (स्वाहा) ॥ २४ ॥

अनेन सप्ताभिमन्त्रितं जलं पीत्वा स्त्री प्रसूयते ।

ओं चँ क्रँ गर्भफट् स्वाहा इदं चूर्णं प्रक्षयित्वा पर्णं लिखि-
त्वा ताम्बूलं खादितुं देयम् ।

एरण्डस्यवनेकाको गंगातीरमुपागतः ।

भूतः पिबति पानीयं विशल्या गर्भिणी भवेत् ॥ २५ ॥

अनेन सप्ताभिमन्त्रितं जलं पातुं देयम् ।

अर्थ—“ इहामृतञ्चसोमश्च, ...स्वाहा ” इसमन्त्रको पानमें चूनेसे लिखकर
गर्भिणीको ताम्बूल खानेको देवे । “एरण्डस्यवने—गर्भिणी भवेत्” इसमन्त्रके द्वारा
जलको सातवार अभिमन्त्रितकर, गर्भिणीको पीनेको देवे । इसमें सुखसाहित प्रस-
व होताहै ॥ २२-२५ ॥

अथ पुनरपि सुखप्रसवयोगाः ।

श्वेतापराजितामूलं घ्रातं पीतं जलेन वा ।

नाभिप्रलेपतो वापि सुखं सूतिकरं परम् ॥ २६ ॥

मातुलुंगस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।

घृतेन सह । सुखं नारी प्रसूयते ।

सर्पनिर्मोकसर्पिर्भ्याधूपो यो नौ प्रसूतिकृत् ॥ २७ ॥

प्रत्यक्पुष्पीमूलनिहितयो नौगुदेऽथवास्त्रीणाम् ।

बद्धंवाकटिदेशेप्रसवंकुरुतेसुखेनैव ॥ २८ ॥

यद्दामागोत्पाटने मूलं वुट्यति ।

तर्हि दुहितुर्जन्मविजानीयादन्यथा सूनोः ।

अर्थ—सफेद अपराजिताकी जड़को जलमें पीसकर सूघनेसे अथवा पीनेसे या नाभिपै लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है । बिजोरे नीबूकी जड़को और मुलेठी-को एकत्र पीसकर सहत और घीके साथ मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंके अत्यन्त सु-खसे प्रसव होता है । साँपकी कैंचली और घृत दोनोंको मिलाकर योनिमें धुआँ देनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है चिरचिटेकी जड़को उखाड़कर गर्भिणियोंकी योनिमें गुह्यदेशमें अथवा कटिमें बांधनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है । चिरचिटेको उखा-डते समय जो उसकी जड़ टूट जावे तो कन्या उत्पन्न होवे और जो न टूटे तो पुत्र उत्पन्न होवे ॥ २६-२८ ॥

अथ सुखप्रसवार्थयन्त्रेविन्यासः ।

नाडीऋतुवसुभिःसहपक्षदिगष्टादशभिरेवच ।

अर्कभुवनवेदसहितैरुभयंत्रिंशकंपंचदशकंवा ॥ २९ ॥

३०	३०	३०		१५	१५	१५
३०	१६	६	८	३०	१५	८
३०	२	१०	१८	३०	१५	१
३०	१२	१४	४	३०	१५	६
३०	३०	३०		१५	१५	१५

उभयत्रिंशकः ।

उभयपञ्चदशकः ।

अर्थ—उपरोक्त ३० तीस, यम पन्द्रहके यंत्रको लिखकर गर्भिणीको दिखला-नेसे शीघ्र प्रसव होता है ॥ २९ ॥

अथामरापातनं नाडीशुद्धिश्च ।

कचवेष्टितयाङ्गुल्याघृष्टकण्ठेमुखेपतत् मरा ।

मूलेनलांगलक्यासंलिप्तेपाणिपादेच ॥ ३० ॥

अमरापातनंसद्यःपिप्पल्यादिरजःपिबेत् ।

मूर्ध्निदद्यात्सुहीक्षीरममरापातनंपरम् ॥ ३१ ॥

वृद्ध्याद्वित्रिचतुर्मासगंधकमदिरान्वितम् ।

तीक्ष्णपर्णद्रवेणादौनाड्याःशुद्धयैप्रदीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ—बालोंको अंगुलीमें बाँधकर कण्ठ या मुखमें घिसनेसे—निश्चय आंवर (जेर आदि) गिर जातीहैं । कालिहारीकी जडको पीसकर गर्भिणीके पाँवों और हाथोंमें प्रलेप करनेसे—तथा पिप्पल्यादि चूर्णको जलकेसाथ पीनेसे निश्चय आंवर पतित होजातीहै । थूहरके दूधको मस्तकपे डालनेसे आंवर गिरजातीहै । गंधकवृद्धिके अनुसार २ । ३ । या ४ मासे मदिरामें मिलाकर कमरखके रसके साथ गर्भिणीका पिलानेसे गर्भिणीकी नाडी शुद्ध होजातीहै ॥ ३०—३२ ॥

अथ प्रसूताहितयोगाः ।

संस्वेद्यवालुकाद्यैस्तुलंघितायायथाबलम् ।

क्षुधितायाःप्रशंसन्तिपथ्यंलघ्वन्नमेवच ॥ ३३ ॥

पंचकोलकमिश्रन्तुदशमूलमिहेष्यते ।

केवलंदशमूलंवापिप्पलीप्रक्षिपेत्ततः ॥ ३४ ॥

द्वित्रिरात्रंविधिरसौसप्ताहाद्रवृंहणंक्रमात् ।

द्वादशाहेनतित्तान्तेपिशितंनैवयोजयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—प्रसूता स्त्रीको बालुकादिके द्वारा स्वेद देवे और बलानुसार लंघन करावे, भूख लगे तो हलकाभोजन खानेको देवे । गर्भिणीस्त्रीको वातक्षेष्म रोगमें आम-वात रोगमें और कफरोगमें पंचकोलयुक्त दशमूलका काथ पीनेको देवे । अथवा दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेको देवे । जिससे वायुकुपित न होवे और दृष्टरक्त शुद्ध होजाय, ऐसीविधि २—३ रात्रिपर्यन्त गर्भिणीके प्रयोग करे । सातरोजकेबाद वृंहण (पुष्टिकारक) क्रिया प्रदान करे । परन्तु १२ वारह दिनसे कम कदापि मांस न देवे ॥ ३३—३५ ॥

मक्कल्लादिशूलघ्नयोगाः ।

वायुःप्रकुपितंकुर्यात्संरुध्यरुधिरंच्युतम् ।
 सूतायाहृच्छिरोवस्तिशूलमक्कल्लसंज्ञितम् ॥ ३६ ॥
 यवक्षारंभवेत्तत्रसर्पिपोष्णोदकेनवा ।
 पिप्पल्यादिगणकाथंपिबेद्रालवणान्वितम् ॥ ३७ ॥
 पिप्पल्यादिकचूर्णवासुरामण्डेनपाययेत् ।
 वंशपत्राङ्कुरक्वाथःसयवक्षारउत्तमः ॥ ३८ ॥
 बिल्वमल्लीमातुलुङ्गमूललेपःशिरोऽर्त्तिनुत् ।
 घृतंमक्कल्लजिघोनीरुबूतैलाक्तशूलकम् ।
 त्र्युषणंपिप्पलीमूलंदारुचव्यंसचित्रकम् ॥ ३९ ॥
 रजन्यौहवुषाजाजीसक्षारंलवणद्वयम् ।
 कल्कमुष्णाम्बुनापीतंसुखेनाशुविरिच्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—वायुके कुपित होनेसे प्रसूताओंके गिरता हुआ रुधिर बंद होजाताहै, और हृदय, वस्ति तथा मस्तकमें मक्कल्ल नामक शूल उत्पन्न होताहै । जवाखारके चूर्णको घीके साथ या गरम जलके साथ पीनेसे किंवा पिप्पल्यादि गणका काथ संधेनोनके साथ पीनेसे या पिप्पल्यादि गणकी औषधियोंका चूर्ण सुरामण्डके साथ सेवन करनेसे अथवा वाँसके कल्लोंके काथमें जवाखार डालकर पीनेसे प्रसूता स्त्रियोंके मक्कल्ल नामक शूल नष्ट होताहै । हांग, बेलकेफूल और बिजोरेकी जड़को पीसकर प्रलेप करनेसे प्रसूता स्त्रियोंके शिरःशूल नष्ट होताहै । वी और अण्डीका तेल मिलाकर योनिपै प्रलेप करनेसे योनिशूल दूर होताहै । सोंठ, मिरच, पापल, पीपरामूल, चव्य, देवदारु, चीतेकी जड़, हलदी, दारुहलदी, जीरा, जवाखार, सैंधानोंन और कालानोन, इनका चूर्ण गरमजलके साथ पीनेसे प्रसूतास्त्रियोंके सुखसहित जुल्लाव होजाता है ॥ ३६-४० ॥

अथ निदानपूर्विकासूतिकारोगसम्प्राप्तिः ।

मासमध्यर्द्धमासंत्रायावद्वापुष्पदर्शनम् ।

अंगमर्द्दोऽज्वरःकंपःपिपासागुरुगात्रता ॥ ४१ ॥

शोथःशूलातिसारौचसूतिकारोगदर्शनम् ।
 मिथ्योपसेत्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ॥ ४२ ॥
 सूतिकायाश्चयेरोगाजायन्तेदारुणाःस्मृताः ।
 ज्वरातीसारशोथश्चशूलानाहबलक्षयाः ॥ ४३ ॥
 तंत्रारुचिप्रसेकाद्याःकफवातामयोद्भवाः ।
 कृच्छ्रसाध्याहितेरोगाःक्षीणमांसबलाग्निः ॥ ४४ ॥
 तेसर्वेसूतिकानाम्नारोगास्तेचाप्युपद्रवाः ।
 यत्नेनोपाचरेत्सतांदुःसाध्योहिगदामयः ॥ ४५ ॥

अर्थ—प्रसूतास्त्रियोंके एक महीनेके भीतर या आधेमहीनेके भीतर पुनः ऋतुहोतेहुए अंगवेदना, ज्वर, पियास, कम्प, गात्रभार, शोथ, शूल और अतीसार यह सब रोग उत्पन्न होंगे तो उनके सूतिका रोग जानना । मिथ्योपचार, संक्लेश, विषमभोजन और अजीर्णमें भोजन करनेसे सूतिकावाली स्त्रियोंके ज्वर, अतिसार, शोथ, शूल, आनाह, बलक्षय, तन्द्रा, अरुचि, प्रसेकादि दारुण कफवातोत्पन्न रोग उत्पन्न होतेहैं । इस रोगके होनेसे प्रसूता स्त्रियोंके मांस, बल और अग्नि; क्षय होजातीहै, इस कारण कृच्छ्रसाध्य होताहै । अतएव अत्यन्त यत्नांसे सूतिकाकी चिकित्सा करे ॥ ४२-४५ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सा ।

लंघनाभ्यंजनस्वेदैःकटुतीक्ष्णोष्णपेयया ।
 शौष्कमूलककोलत्थैर्यूपैर्मांसरसैःशुभैः ॥ ४६ ॥
 दशमूलीकृतःकाथःसाज्यःमृतीज्वरापहः ।
 आमशूलरुजायान्तुधान्यशुण्ठीसमन्विता ॥ ४७ ॥
 धान्यपंचकयुक्तावादशमूलीप्रशस्यते ।
 काथेनगुर्वीनिर्दिष्टाह्वीवेरादिश्चशस्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ—लंघन, अभ्यंग, स्वेद, कटु, तीक्ष्ण, उष्णपेया, सूखीमूलीका यूप, कुलथीका यूप और मांसरस, इनके द्वाग सूतिका रोगकी चिकित्सा करे । दशमूलका काथ घृतके साथ पीनेसे सूतिका स्त्रियोंका ज्वर दूर होताहै । धनियाँ

सोंठके साथ दशमूलका काथ या धान्यपंचक संयुक्त दशमूलका काथ या बृह-
त्पंच मूलका काथ अथवा हीवेरादिका काथः पीनेसे सूतिका स्त्रियोंका आमशूल
दूर होताहै ॥ ४६-४८ ॥

अथान्यापिसूतीरोगचिकित्सा ।

सहाचरकृतःकाथःपिप्पलीचूर्णमिश्रितः ।

दीपनीज्वरशोथामसूतिकारोगनाशनः ॥ ४९ ॥

पीतझिण्टीकृतःकाथोनिशापर्युषितोजयेत् ।

सूतिरोगहरश्चैवतथातन्मूलचर्व्वणम् ॥ ५० ॥

ध्मापयित्वानलेलौहंमुद्गयूषेनिषेचयेत् ।

पंचमूलस्यवाक्काथेपिप्पलीसलिलेऽथवा ।

पीतंयूषादितच्छीघ्रं सर्वसूतीरुजापहम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—सफेद कटसरैयाके काथमें पीपलका चूर्ण पीनेसे सूतिका स्त्रियोंके अग्नि
दीपन होतीहै और सूजन ज्वर और आमशूलका नाश होताहै । पीली कटसरै-
याका काथ बासी करके पीनेसे अथवा पीली कटसरैया चावनेसे सर्वप्रकारके
सूतिकारोग दूर होतेहैं । लोहेको अग्निमें गरम करके मूंगके यूपमें पंचमूलके
काथमें और पीपलके काथमें तुझाकर उन यूपदिकोंके पीनेसे सूतिकादिके
सम्पूर्ण रोग दूरहोजातेहैं ॥ ४९-५१ ॥

अथ सहचरादिकाथः ।

सहाचरपुष्करवेतसमूलंवैकङ्कतदारुकुलत्थसमम् ।

शृतशीतससैन्धवहिंशुयुतंसद्योज्वरसूतिकशूलहरम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—कटसरैया, पोहकरमूल, वेंतकी जड़, विकंकत, देवदारु और कुलथी
यह सब बराबर लेकर काथ बना शीतलकर हींग और सेंधानोन प्रक्षेपकर
पीनेसे सूतिकावाली स्त्रियोंके तत्काल ज्वर और शूलादि रोग दूर होतेहैं ॥ ५२ ॥

अथ दशमूल्यादियूषः ।

दशमूलीमुद्गमाषयवकोलकुलत्थजम् ।

काथंतक्रयुतंपक्कायूषःकार्यःसजीवकः ॥

ससैन्धवोघृतेभृष्टःपयोभुंजीततेनच ॥ ५३ ॥

अर्थ—दशमूल, मूंग, उडद, जौ, सूखीमूली और कुलथी इनका काथ बनाकर तक्र और जीरेके साथ पकाकर सेंधानोन और घी मिलाकर दूधमें भूनकर पीनेसे सर्वप्रकारके प्रसूतिका रोग दूर होतेहैं ॥ ५३ ॥

अथ सूतिकोपद्रवन्नयोगाः ।

सिद्धंद्विपंचमूलाभ्यांपयःशार्करपादधृक् ।

सूतिकोपद्रवंहन्तिपीतमात्रंनसंशयः ॥ ५४ ॥

देवदारुवचाकुष्ठपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

कट्फलंमुस्तकंनिम्बंतिक्ताधानाहरीतकी ॥ ५५ ॥

गजकृष्णांचदुःस्पर्शांगोक्षुरंधन्वयासकम् ।

बृहत्यतिविषाच्छिन्नाकर्कटकृष्णजीरकम् ॥ ५६ ॥

समभागान्वितैरेतैःसिन्धुरामठसंयुतम् ।

काथमष्टावशेषन्तुप्रसूतांपाययेत्स्त्रियम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—दशमूलको दूधमें आटाकर चौथाईभाग बूरा डालकर पीनेसे सर्वप्रकारके सूतिकारोग दूर होतेहैं । देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सांठ, कायफल, नागरमोथा, नीमकी छाल, कुटकी, धनियाँ, हड्ड, गजपीपल, कटेरी, गोखरू, धमासा, बृहती, अतीस, गिलोय, काठ, आमला और कालाजीरा यह सब आपसि समानभाग ले अष्टावशेष काढा करे, इस काढेमें सेंधानोन और हांग डालकर पीनेसे प्रसूता स्त्रियोंके शूल, मूच्छादि सूतिकारोग दूर होतेहैं ॥ ५४—५७ ॥

अथ, पिप्पल्यादिषुषः ।

पिप्पलीदेवकाष्ठञ्चभद्रमुस्तकएवच ।

अगुरुंपिप्पलीमूलंश्लक्ष्णपिष्टञ्चकारयेत् ॥ ५८ ॥

तक्रेणसहसंयुक्तंपिबेद्यूपैर्विचक्षणा ।

एतेनघृतयुक्तेनपीतमात्रेणनिश्चितम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—पीपल, देवदारु, नागरमोथा, अगर और पीपलामूल इन सबको बारीक पीस तक्रके साथ घृष बनाकर पीनेसे प्रसूता स्त्रियोंके सर्व प्रकारके सूतिका रोग दूर होतेहैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अथ यवाद्यंवृतम् ।

यवकोलकुलत्थानांशालिमूलंतथैवच ।

काथयेदप्रमत्तश्चसुपूतेसलिलाढके ॥ ६० ॥

तत्पादावस्थितंकाथंसर्पिर्युक्तंसजीरकम् ।

पक्वंघृताक्षमात्रेणसैन्धवेनसमायुतम् ॥ ६१ ॥

एतेनैवचयूषेणचाशनीयाच्छालिषष्टिकम् ॥

सूतिकोपद्रवंहन्तिभुक्तमात्रन्नसंशयः ॥ ६२ ॥

अर्थ—जौ, सूखीमूली, कुलथी और शालिधानोंकी जड़, यह सब २ दोसेर लेकर ८ आठसेर जलमें पकावे जब २ दोसेर जल शेष रहै तब उतारकर छानलेवे, पश्चात् इसमें घी और जीरा मिलाकर पकावे, फिर सेंधानोन मिलाकर दोतोले प्रमाण सेवन करे, पश्चात् उक्त यूपके साथ शालि और साठी धानोंका भात भोजन करे तो सर्व प्रकारके सूतिका रोग दूरहो-
तेहैं ॥ ६०-६२ ॥

अथ भद्रोत्कटाद्यंवृतम् ।

समूलपत्रकाथन्तुशतंभद्रोत्कटस्यच ।

वारिद्रोणेनसंसाध्यस्थाप्यपादावशेषकम् ॥ ६३ ॥

घृतप्रस्थंविपक्तव्यंगर्भदत्त्वातुकार्षिकम् ।

व्योषंसपिप्पलीमूलंचित्रकंजीरकन्तथा ॥ ६४ ॥

पंचमूलीकनिष्ठश्चरास्त्रेरण्डसमायुतम् ।

यवसिन्धुयवक्षारंस्वर्जिकाकृष्णजीरकम् ।

सिद्धमेतद्घृतंसद्योनिहन्यात्सूतिकागदान् ॥ ६५ ॥

अर्थ—बकरीकामूत्र ४ चारसेर, काथके लिये भद्रमोथेकी जड़ और पत्र १२॥ साढ़ेबारह सेर, जल ६४ चौंसठसेर, शेष १६ सोलहसेर और कल्कके लिये सोंठ, भिरच, पीपल, पीपरामूल, लालचीतेकी जड़, जीरा, स्वल्पपंचमूल, रास्ना, अरंडकीजड़, जौ, सेंधानोन, जवाखार, सजी और कालाजीरा, यह सब १ एकसेर लेकर इस घृतको सेवन करनेसे अभिमांद्यादि रोग दूर होते हैं ॥ ६३-६५ ॥

अथ पिप्पल्यादिघृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ।

चव्यंनिशावचाकुष्ठंधान्यंभार्ङ्गीयमानिका ॥ ६६ ॥

व्याघ्रीचेन्द्रयवाःपथ्याबृहतीबिल्वपेषिका ।

मरिचानिविडंगानिकल्कैरेतैश्चपादिकैः ॥ ६७ ॥

यवंकोलकुलत्थानानिर्युहेचचतुर्गुणे ।

दधिप्रस्थपयःप्रस्थंदत्त्वाप्रस्थोन्मितंघृतम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—गायका घी ४ चारसेर, दहीचार ४ सेर, दूध ४ चारसेर, यव, बेर और कुलथीका काथ १६ सोलहसेर, तथा कल्कके लिये पीपल, पीपलामूल, चीतेकी जड़, गजपीपल, चव्य, हल्दी, बच, कूठ, धनियाँ, भारंगी, अजवायन, कटेरी, इन्द्रजौ, हरड़, बृहती, बेलकागुदा, कालीमिरच और बायविडंग, यह सब १ एकसेर लेकर, इस घृतको पान करनेसे तथा मलनेसे सर्वप्रकारके सूतिकारोग दूर होतेहैं ॥ ६६—६८ ॥

अथ बृहत्सूतिविनोदरसः ।

शुण्ठ्याभागोभवेदेकोद्रौभागौमरिचस्यच ।

पिप्पल्पाश्चत्रिभागंस्यादर्द्धभागश्चरोमकम् ॥ ६९ ॥

जातीकोषस्यभागौद्रौद्रौभागौतुत्थकस्यच ।

सिन्धुवारजलेनैवमर्दयेदेकयामतः ॥

मधुनासहभोक्तव्यंसूतिकातङ्कनाशनम् ॥ ७० ॥

अर्थ—सोंठ १ एकभाग, कालीमिरच २ दोभाग, पीपल तीन भाग, रोमक-लवण अर्द्धभाग, जायफल २ दोभाग और तृतीयाकी भस्म २ दोभाग, सबको एकत्र सम्हालके रममें एकप्रहर खरलकर गोली बनालेवे, इसको सह-तके साथ सेवन करनेसे सूतिकारोग दूर होताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ धात्रीदूषितस्तन्यशुद्धयर्थयोगः ।

सक्षीरौवाप्यदुग्धौवादोषान्प्राप्यस्तनौस्त्रियः ।

प्रदूष्यमांसरुधिरंस्तनरोगायकल्पते ॥ ७१ ॥

मधुरं चाविवर्णञ्च प्रशमंत तत्प्रशस्यते ।
 तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूली जलं पिबेत् ॥ ७२ ॥
 पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलारिष्टचन्दनम् ।
 धात्रीकुमारश्च पिबेत् काथयित्वा शराविक्रमः ॥ ७३ ॥
 कफदुष्टे पिबेन्मूत्रं त्रिफलाकटुरोहिणी ।
 युक्ताकिराततिक्तेन पिबेद् धात्री शिशुस्तथा ॥
 धात्रीस्तन्यविशुद्धयर्थं मुद्गयूषरसाशनः ॥ ७४ ॥

अर्थ—प्रसूता स्त्रीके वातादिदोष दूधसंयुक्त अथवा दूधहीन स्तनोमांस प्राप्त हो मांस और रुधिरको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न करते हैं । जिस प्रसूता स्त्रीका दूध मधुर, सुन्दरवर्ण और निर्मल हो, उसको शुद्ध स्तन्य जानना । वातके द्वारा दूध दूषित होवे तो प्रसूतिकाको दशमूलका काथ पिलावे । पित्तसे दूध दूषित होवे तो गिलोय, सतावर, पटोल, नीमकी छाल और लालचंदनका काथ धात्री (धाय) और बालकको पीनेको देवे । प्रसूता स्त्रीका दूध कफसे दूषित होवे तो त्रिफला, कुटकी और चिरायतेके साथ गोमूत्रको पकाकर धात्री और बालकको पीनेको देवे । मृगका यूष और मांसरसको पीनेसे भी धायका दूध शुद्ध होजाता है ॥ ७१-७४ ॥

अथ वज्रकाञ्जिकम् ।

पिप्पलीपिप्पलामूलं चव्यं शुण्ठीयमानिका ।
 जीरके द्वे हरिद्वे विडं सौवर्चलं तथा ॥
 एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, हलदी, दारुहलदी, विरियासंचर नोन और कालानोन, इन सबको बारीक पीसकर काँजीमें पकावे, इसको पान करनेसे स्त्रियोंके दूध शुद्ध होजाते हैं ॥ ७५ ॥

अथ सूतिका रिरसः ।

रसगंधककृष्णाभ्रंतद्वन्द्वताम्रकम् ।
 चूर्णितं मर्दयेद् तार्द्रकपर्णीरसेन च ॥ ७६ ॥

छायां २० कावटीकार्याद्विगुं जाफलमानतः ।

क्षीरत्रिकटुनायुक्तासूतिकातङ्कनाशिनी ॥ ७७ ॥

अर्थ—पारा १ एक भाग, गंधक २ दोभाग, अन्नक १ एक भाग और तांबा १॥ डेढ़भाग, सबको एकत्र मण्डूकपर्णीके रसमें खरलकर दोदो रत्तीकी गोली बनाकर छायामें सुखालेवे । प्रतिदिन १ एक गोली खावे और ऊपरसे त्रिकुट्टेको दूधमें औटाकर पीवे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अथ पञ्चजीरकगुडः ।

जीरकंहवुषाधान्यंशताह्वावदराणिच ।

यमानीराजिकाहिंगुपत्रिकाकासमर्दकम् ॥ ७८ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलमजमोदाथबाष्पिका ।

चित्रकञ्चपलांशानितथाधान्यंचतुष्पलम् ॥ ७९ ॥

कशेरुकं नागरञ्चकुष्ठं दीप्यकमेवच ।

गुडस्य च शतं दद्याद्घृतप्रस्थन्तथैवच ॥ ८० ॥

क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निनापचेत् ।

पञ्चजीरकइत्येवसूतिकानांप्रशस्यते ॥ ८१ ॥

अर्थ—गुड १२॥ साढ़ेबारह सेर, गायका घी ४ चारसेर, दूध ८ आठ सेर, और जीरा, हाऊवेर, धनियाँ, सोया, सुखेवेर, अजवायन, राई, हिंगुपत्री, कसौंदी, पीपल, पीपलामूल, अजमोदा, नाड़ी हिंगु और चीतेकी जड़, प्रत्येकका चूर्ण ८ आठ तोले और धनियाँ, कशेरू, साँठ, कूठ और अजवायन प्रत्येकका चूर्ण आधसेर, सबको मिलाकर गुडपाक करे, इसको मेवन करनेसे स्त्रियोंके सर्व प्रकारके सूतिका रोग दूर होतेहैं ॥ ७८—८१ ॥

अथ सूतीरोगहरोपचाराः ।

वैयाघ्रतैलदीपाद्भद्रोत्कटकाष्टपीठभजनाच्च ।

अभिभूयते कदाचिन्नसूतिकातद्गुगातङ्कैः ॥ ८२ ॥

अर्थ—प्रसूताके घरमें व्याघ्रका तेल दीपकमें जलावे और भद्रोत्कट काठके पीठपर प्रसूता स्त्रीको बिठलावे । इससे सर्व प्रकारके सूतिका रोग दूर होतेहैं ८२॥

अथ प्रसूतिकारोगान्तकोरसः ।

लवङ्गरसगन्धौचयवक्षारंयवाभ्रकम् ।

लोहंताम्रंसीसकञ्चपलमानंसमाहरेत् ॥ ८३ ॥

जातीफलंकेशज्वराङ्गेलेषमुस्तकम् ।

धत्तवृन्द्रयवापाठाशृङ्गीबिल्वंचबालकम् ॥ ८४ ॥

कर्षप्रमाणंसंचूर्ण्यसर्वमेकत्रकारयेत् ।

गंधालिकापत्ररसैरनुपानंप्रदापयेत् ॥

सर्वातिसारशमनंसर्वशूलनिवारणम् ॥ ८५ ॥

इति सूतिकाध्यायः ।

अर्थ—लॉंग, पारा, गंधक, जवाखार, जौ, अभ्रक, लोहा, ताँबा और सीसा, प्रत्येकका चूर्ण ४ चारतोले और जायफल, कुरकुरभांगरा, दालचीनी, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ, पाद, काकड़ाशिगी, बेलका गूदा और सुगंधवाला प्रत्येकका चूर्ण २ दो तोले, इन सबको एकत्र जलके साथ पीसकर गोली बनालेवे । इस औषधिके सेवन करनेके पश्चात् प्रसारिणीके पत्तोंका रस पीवे । इससे अतीसार, शूलादि सर्व प्रकारके सूतिका रोग दूर होते हैं ॥ ८३-८५ ॥

इति सूतिकारोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ स्तनरोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौस्तनशोथचिकित्सा ।

शोथंस्तनोत्थितमवेक्ष्यभिषग्विदध्यात् ।

द्वैधंत्रिधाचविहितंबहुधाविधानम् ।

आमेविदह्यतितथैवगतेचपाकं

तस्याःस्तनौसततमेवचनिर्गृहीतम् ॥ १ ॥

विशालामूललेपेनहन्तिपीडांस्तनोत्थिताम् ।

निशाकनकफलाभ्यालेपश्चातिस्तनार्त्तिहा ॥ २ ॥

कुकुन्दरमेचकमूलंचर्वितमास्यविधारितंजयति ।

सप्ताहात्स्तनकाशतुल्यतैकान्ततःकुरुते ॥ ३ ॥
तन्मूलं धावयित्वा मुखे धारयेद्रसं पिबेच्च ।

निर्वाप्यलौहं पिप्पल्याः पीतः काथः स्तनार्तिजित् ।

अर्थ—स्त्रियोंके स्तनोंपर सूजन आजावे तो दोबार या तीनबार अथवा बहुत बार क्रिया प्रयोग करे । स्त्रियोंके स्तनगत अपक्व अथवा पक्व शोथ रोगकी चिकित्सा करनेके समय सदैव स्तनोंसे दूध निकाल देवे, कदापि छुटि न करे । इन्द्रायणकी जड़को जलमें पीसकर लेप करनेसे सर्व प्रकारके स्तनरोग दूर होतेहैं । हलदी और धतूरेको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे सर्व प्रकारकी स्तनोंकी पीडा दूर होतीहै । ककरांदेकी जड़को या सेंजिनेकी जड़को जलमें धोकर दाँतोंसे चाबकर रसको मुखमें धाग्न करनेसे, या पीनेसे ७ सात दिनमेंही सर्व प्रकारके स्तनरोग दूर होतेहैं । पीपलके काथमें लोहेको बुझाकर पान करनेसे सर्व प्रकारके स्तनरोग दूर होजातेहैं ॥ १-४ ॥

अथ स्तनरोगेत्याज्यानिविद्रधिदारणञ्च ।

क्रियांशीतांप्रयुंजीतनस्तनावुपनाहयेत् ॥ ४ ॥

षक्वेचदुग्धहरणीः परिहृत्य नाडीः ।

कृष्णं च चूचुकयुगं निदधीत शस्त्रम् ॥ ५ ॥

अर्थ—स्तनरोगमें सदैव शीतल क्रिया प्रयोग करे, कदापि उपनाह स्वेदन न देवे । स्तन पक्व जावें तो दुग्ध हरणी नाडीको बचाकर कुचोंके कृष्ण मुखपै नस्तर लगावे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ महिषीनवनीतादियोगः ।

महिषीभवनवनीतव्याधिबलोग्रातथैव नागबला ।

पिष्ट्वा मर्दनयोगात्पीनंकठिनं स्तनं कुरुते ॥ ६ ॥

अर्थ—भैंसका माखन, कूठ, खिरंटी, बच और गंगेरन इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर स्तनोंपै मलनेसे दानो कुच स्थूल और कठिन होजातेहैं ॥ ६ ॥

अथ श्रीपर्णीतैलम् ।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं स्तनोपरि ।

दुलकेन घृतं न्यात्पतिता बुत्थितौ स्तनौ ॥ ७ ॥

अर्थ—तिलकातेल २ दो सेर, जल आठ ८ सेर कुम्भेरकी छालका रस ८ आठसेर, और कल्कके लिये कुटीहुई कुम्भेरकी छाल ५॥ आधसेर ले, इस तेलको पकाकर स्तनोंमें मलनेसे, अथवा दूलकके साथ घृतको पका कर दोनो स्तनोंमें मलनेसे गिरे हुए स्तन उठ आतेहैं ॥ ७ ॥

अथ स्तनरोगचिकित्सा ।

शीतार्तिकेस्तनरोगेपीडाभवतिदारुणा ।

मूलमेरण्डवृक्षस्यशीततोयेनपेषयेत् ॥ ८ ॥

कफेप्रतिविषाकुष्ठंतोयलेपसुखावहः ।

यष्टीनिम्बहरिद्राचनिर्गुण्डीधातकीसमम् ॥ ९ ॥

चूर्णस्तनव्रणेदेयंरोपणंकुरुतेभृशम् ।

वचोदुम्बरजाश्वत्थच्युतमर्ज्जुनकत्वचः ॥ १० ॥

जलैश्चतुर्गुणैःकाथंपादशोषंसमुद्धरेत् ।

तेनप्रक्षालयेन्नित्यंव्रणंपूयान्वितंस्तने ।

स्तनरुजाप्रशाम्यतिशोणिताकर्धावनात् ॥ ११ ॥

अर्थ—शीतार्ति स्तनरोगमें दारुण पीड़ा उत्पन्न होतीहै। अरण्डके वृक्षकी जड़को शीतल जलमें पीसकर स्तनोंपै प्रलेप करनेसे शीघ्रही उपरोक्त रोग दूर होताहै। फस्त खुलवानेसे भी स्तनरोग शांत होताहै। कफजन्य स्तनरोगमें अतीस और कूठको जलमें पीसकर स्तनोंपै प्रलेप करे। मुलेठी, नीमकीछाल, हलदी, सम्हाल, और धांयके फूल यह सब समान भाग ले चूर्णकर योजनेसे स्तनोंके घाव भर जातेहैं। वच, गूलरकीछाल, पीपलकी छाल, आमकी छाल और अर्जुनकी छाल यह सब समानभाग ले चौगुने जलमें पकावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, इससे राधयुक्त स्तनोंके व्रणोंको धोनेसे विशेष लाभ होताहै ॥ ८-११ ॥

अथ स्तनशूलनाशकयोगौ ।

आकाशस्योपलंभंगीसर्पाक्षीतिलोष्पकम् ॥ १२ ॥

लांगलीमेघनादञ्चजलेनसहलेपयेत् ॥

अपक्वेसर्वदोषोत्थेस्तनपीडाहरंभवेत् ॥ १३ ॥

बलाचातिबलाकुष्ठं वचाचूर्णं विलेपयेत् ॥

महिषीनवनीतेन स्तनपीडा स्थिरा भवेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—बरफ, अतीस, सर्पाक्षी (खरहटी), तिलकेफूल, कलिहारी और चौलाई इनको जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे सर्व दोष जात अपक्व स्तनरोग दूर होजातेहैं । खिरैटी, कंघी, कूठ, वच, इनको एकत्र पीसकर भैंसके माखनमें मिलाकर प्रलेप करनेसे स्तनोंकी पीड़ा शांत होतीहै ॥ १२-१४ ॥

अथ मुण्डीतैलम् ।

मुण्डीमूलं दशपलं जले पच्यञ्चतुर्गुणे ।

अर्द्धशेषं हरेत् काथं काथाद्धं तिलतैलकम् ॥ १५ ॥

तैलशेषं भवेत् तच्च नस्ये पाने च दापयेत् ।

पतितं यौवनं स्त्रीणां मासादुत्तिष्ठते स्वयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—गोरखमुण्डीकी जड़ १० दशपल, पाककेलिये जल ४० चालीसपल, शेष २० पल और तिलका तेल १० दशपल, सबको मिलाकर पकावे, जबतक तेल शेष न रहै तबतक पकातारहे । इस तेलको नस्य और पानमें व्यवहार करनेसे स्त्रियोंके गिरे हुए स्तन फिर एक महीनेमें ही उठ आतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ श्यामाद्यंतैलम् ।

श्यामानिशाबलालाजालवणं काथयेत् समम् ।

तोये चतुर्गुणे पाच्यं पादशेषं समाहरेत् ॥ १७ ॥

तिलतैलं काथपादं तैलाद्धं माहिषं घृतम् ।

स्नेहशेषं पचेत् तैलं नस्यैश्च मासमात्रकैः ॥

बालस्त्रीवृद्धनारीणां यौवनं कुरुते ध्रुवम् ॥ १८ ॥

अर्थ—तिलका तेल ४ चारसेर, भैंसका घी २ दोमेर, काथके लिये श्यामा-लता, हलदी, खिरैटी, खिलि और संधानोन यह सब आपधि १२ ॥ साढ़ेबारह सेर, जल ६४ चौमठमेर, शेष १६ सोलहमेर, जब केवल स्नेह बाकी रहै तब उतार लेंवै, इसतेलका एकमहीनेतक नास लेनेसे कृद्धा स्त्री भी फिरसे यौवनवती होजातीहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ काशीशाद्यंतैलम् ।

काशीशतुरगगंधासावरगजपिप्पलीविपक्वेन ।

तैलेनयान्तिवृद्धिस्तनवर्णवरांगलिंगानि ॥ १९ ॥

सावरो लोधः ।

अर्थ—ही तकसीस, असगंध, लोध और गजपीपलके साथ तेलको पकाकर नासलेनेसे स्त्रियोंके स्तन, कर्ण और योनि बढ़तीहै ॥ १९ ॥

अथ विडङ्गनस्यादीनि ।

प्रथमतोतण्डुलांस्त्रीनस्यंकुर्यात्स्तनौस्थिरौ ।

दीपास्यभस्मतास्यानावेष्टान्नबहुलौस्तनौ ॥ २० ॥

घोलेनमाधवीमूलंपीतस्त्रीमध्यकार्श्यकृत् ॥ २१ ॥

अर्थ—प्रथम ऋतुकालमें वायुविडंगका नास लेनेसे स्त्रियोंके दोनो स्तन बहुत दिनोतक दृढ रहतेहैं । दीपकके मुखकी भस्मके द्वारा नास लेनेसे स्त्रियोंके दोनो स्तन ऊंचे होजाते हैं । माधवी लताकी जड़को घोलमें पीसकर पानकरनेसे स्त्रियोंके मध्यदेश क्षीण होजातेहैं और स्तन बढ़जातेहैं ॥ २०॥२१ ॥

अथ दर्म्पत्योर्द्वेषहरयत्नाः ।

शववहनस्थितबंधनरज्ज्वासंताडनाद्विदयितेन ।

नश्यत्यबलाद्वेषःपत्यौसहजःकृतोऽथवायोगैः ॥ २२ ॥

दत्तैवदुग्धभक्तंविप्रायोत्पाद्यसितबलामूलम् ।

पृष्येकन्यापिष्टं दत्तमनिच्छां हन्ति निश्चितम् ॥

स्वामिपादोदकंपीत्वानारीवशीभूतोभवेत् ॥ २३ ॥

इति स्त्रीरोगाध्यायः ।

अर्थ—मुरदेकी अर्थांकी रस्सीसे पति स्त्रीको मारे तो पतिमें स्त्रीकी अनिच्छा नहीं होतीहै । ब्राह्मणको दुग्धान्न भोजन कराकर पश्चात् पुष्य नक्षत्रमें सफेद-खिरैटीकी जड़को उखाड घीकुवारके रसमें पीसकर सेवन करनेसे स्त्रियोंकी पतिमें अनिच्छा नहीं उत्पन्न होतीहै स्वामीके पादोदकको पानेसेभी स्त्रियोंकी पतिमें अनिच्छा उत्पन्न नहीं होतीहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति स्त्रीरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ बालरोगचिकित्साधिकारः ।

तत्रादौ शिशुः खेपता र्थमुपायाः ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तकः ॥ १ ॥

स्वास्थ्यं ताभ्यां मदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥

क्षीरपथ्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः ॥ २ ॥

अन्नादस्य शिशोर्देयमौषधं भिषजासदा ॥

यथादोषं स्तनौ लिप्त्वा चौषधं पाययेच्छिशुम् ॥ ३ ॥

मात्रया लंघयेद्भात्री शिशोर्नोक्तं विशोधनम् ॥

सर्वनिवार्यते बाले स्तन्यं न प्रतिवार्यते ॥ ४ ॥

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वातद्वणं पिबेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—बालक तीन प्रकारके होते हैं । पहिले दूध पीनेवाले, दूसरे दूध और अन्नको खानेवाले और तीसरे अन्नको खानेवाले होते हैं । दूध और अन्नके दूषित न होनेसे बालक निरोगी रहते हैं, दूध और अन्नके दूषित होनेसे बालक रोगी होजाते हैं । इस कारण बालकोंको सदैव अदूषित दूध और अन्न भोजनार्थ देवे । दूधको पीनेवाले और दुग्ध तथा अन्न दोनोंको खानेवाले बालकोंकी धाय (दूध पिलानेवाली) को दूध और अन्नका पथ्य देवे । अन्नको खानेवाले बालकोंको औषधि देवे । धाय या माताके स्तनोपे औषधिको लेपकर बालकोंको पिलावे । बालकके रोग उत्पन्न होय तो बालककी धात्री (माता या धाय) को लंघन करावे और बालकको दस्त न करावे, बालककी सर्ववस्तुओंसे वर्ज्यकर चिकित्सा करे, परन्तु दूध पीना कदापि वर्जित न करे, कारण यह है कि, दूध बालकका जीवन है और बिना दूधके बालकोंके प्राण नष्ट होजाते हैं । जो माता या धायके दूधका अभाव होय तो बकरीका दूध या गायका दूध पिलावे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथाचिरजानशिशोर्व्याधिहरयोगाः ।

यो बालोऽचिराज्जातः स्तनं न गृह्णाति न सहसैव ।

धात्रीमृगधृतं पथ्या कल्केनोद्धर्षयेज्जिह्वाम् ॥ ६ ॥

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिकेन सोष्मणा ।

स्वेदयेदुत्थितानां भिशोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ७ ॥

दुग्धेनच्छागशक्तानाभिपाकेऽधूर्णयेत् ।
 त्वक्चूर्णेःक्षीरेण वापिकुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ ८ ॥
 नाभिपाकेनिशालोध्रप्रियंगुमधुकैःशृतम् ।
 तैलमभ्यजनेशस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ ९ ॥
 मूर्वाव्योषवचाकोलजम्बूत्वक्दारुसर्षपाः ।
 सपाठामधुनालीढास्तन्यदोषनिवर्हणाः ॥ १० ॥

अर्थ—बहुत दिनोका बालक दूध न पीवे तो आमला, सहत, घृत और हरडका चूर्ण इनको एकत्र करके बालककी जिह्वामें घिसे । मट्टीके पिण्डको अग्निमें गरम करके दूधमें बुझालेवे, पश्चात् गरमागरम उसको बालककी उत्थित-नाभिपै स्वेद देनेसे सूजन दूर होजातीहै । दूधके साथ बकरीकी विष्टाको या बटादि क्षीरवृक्षोंके छालके चूर्णको अथवा लाल चंदनके चूर्णको नाभिपै घिस-नेसे नाभिपाक दूर होताहै । हलदी, लोध, फूलप्रियंगु और मुलेठी इनके साथ तेलको पकाकर नाभिपै मलनेसे अथवा उक्त औषधियोंके चूर्णको नाभिमें घिस-नेपर निश्चय नाभिपाक दूर होताहै । मूर्वा, सोंठ, पीपल, मिरच, बच, बेर, जामु-नकी छाल, देवदारु, सरसों और पाठ इन सबका चूर्ण सहतमें मिलाकर बाल-कको चटानेसे स्तन्यरोग दूर होताहै ॥ ६-१० ॥

अथ शिशुरोगहरचिकित्सा ।

प्रियंगवश्वासिन्धूत्थंमधुनालेहयेच्छिशुम् ।
 क्षीरामयंनिहन्त्याशुविडंगेनयुतंकिमीन् ॥ ११ ॥
 तैलस्यभागमेकंमूत्रस्तुद्वौद्वौचशिम्बिदलरसस्य ।
 छागंपयश्चतुर्गुणमेवंदत्त्वापचेत्तैलम् ॥ १२ ॥
 तैलाभ्यंगःसततरोगमनासकाख्यमपहरति ।
 अर्कजदुग्धकमाविकरोमाण्यादायकेशराजस्य ॥ १३ ॥
 स्वरसेनाक्तेवस्त्रेकृत्वावर्त्तिञ्चतैलाक्ताम् ।
 तज्जातकज्जललांघितलोचनयुगलोऽप्यलंकृतोबालः १४
 कष्टमन सकरागंमुञ्चतिभूतादिकंचापि ।

लाजांजनसिताब्रह्मीमधुश्लक्ष्णकचूर्णितैः ॥

बालस्यलेहोमधुनादेयः सर्वज्वरापहः ॥ १५ ॥

अर्थ—फूलप्रियंगु और सेंधानोनका चूर्ण सहतमें मिलाकर बालकको चटानेसे स्तन्यरोग दूर होताहै । तथा बायबिडंगका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका कृमिरोग दूर होताहै । तेल १ एकभाग, गोमूत्र २ दो भाग, सेमके पत्तोंका रस २ दो भाग और बकरीका दूध ४ चार भाग इन सबको एकत्र करके पकावे, इस तेलके मलनेसे—बालकोंका अनासक रोग दूर होताहै । आकका दूध और भेडके रोम कुकुरभांगरेके रसमें मिलाकर वस्त्रपै लेपकर देवे, पश्चात् उस वस्त्रकी बत्ती बनाकर तेलमें भिजो लेवे, उन बत्तियोंके काजलको बालककी आँखोंमें लगानेसे अनासक रोग और भूतादिजनक सम्पूर्ण दोष दूर होजातेहैं । खीलें, अंजन, बूरा और ब्राह्मीको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर बालकको चटानेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होजातेहैं ॥ ११-१५ ॥

अथ चोरकादिरोगचिकित्सा ।

हृत्वैकदातिशरणं वमनंतथैव

आध्मानघूर्णनरुजञ्च शिशोर्विधाय ।

यः श्वासमात्रपरिरक्षितजीवयोगा

रोगो बधूभि रुदितः सहिचोरनामा ॥ १६ ॥

शीर्षाग्निहस्ततलयोः सितकुक्कुटाण्ड-

मज्जाघृतो हरति चोरकरोगमाशु ।

एवं न शाम्यति शिशुं परिपालयेत्तं

पूतात्मना किल विधेयमिदं जलेन ॥ १७ ॥

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलामलकैः कृतः ।

काथः सोष्णोम्बुबालानामशेषज्वरनाशनः ॥ १८ ॥

कफकोपज्वरेऽरुच्यां प्रतिश्यायश्वासकासकैः ।

चूर्णितैः पापंचकोलं लिह्यान्मधुघृताप्लुतम् ॥ १९ ॥

अर्थ—एक साथ बालक, अतीसार, वमन, आध्मान और घूर्णरोगमें जड़ताको प्राप्त होजाय, केवल श्वास ही बाकी रहजाय और तबतकसमान दीखे,

उसको चोरक रोग कहते हैं । इस रोगवाले बालकके मस्तकमें, पाँवोंमें और हाथोंमें सफेद सुरगेके अंडेकी मज्जाको मले इससे निश्चय चोरक रोग दूर होता है । जो इससे यह रोग दूर न होवे तो पवित्र साधु बालकको जलप्रदानादि करक पालन करे । नागरमोथा, या हरड, नीमकी छाल, पटोल और आमला इनका गरमागरम काथ पान करानेसे बालकोंका ज्वर दूर होता है । कुटकी और पंचकोलका चूर्ण सहत और घृतमें सानकर बालकोंको चटानेसे ज्वर, अरुचि, प्रतिश्याय, श्वास और खाँसी दूर होती है ॥ १६-१९ ॥

अथ शिशुकादिचिकित्सा ।

शृंगीसमुस्तातिविषांविचूर्ण्य

लेहंविदध्यान्मधुनाशिशूनाम् ।

कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां

समाक्षिकां चातिविषांघनैकाम् ॥ २० ॥

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैःकृतः ।

शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषजित् ॥ २१ ॥

अर्थ—काकडाशिंगी, नागरमोथा और अतीसका चूर्ण सहतके साथ सेवन करनेसे, अथवा अतीसका चूर्ण या नागरमोथेका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंके खाँसी, ज्वर और वमनादि रोग दूर होते हैं । हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, पिठवन और इन्द्रजौका काथ पीनेसे बालकोंके सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ मुस्तादिचूर्णम् ।

घनकृष्णारुणाशृंगीचूर्णक्षौद्रेणसंयुतम् ॥ २२ ॥

इयं बालचातुर्भद्रिकाख्या ।

अर्थ—नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडाशिंगी, इनका चूर्ण कर सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंके ज्वरादि रोग होते हैं । इन चारों औषधियोंको बाल-चतुर्भद्रिका संज्ञा है ॥ २२ ॥

अथान्येऽपिबालरोग-रयोगाः ।

पारसीययमानिकाघनकणाशृंगीबिडंगारुणा ।

चूर्णश्छण्णतरं विलीढमपित्क्षौद्रेणसंयोजितम् ॥ २३ ॥

सर्पत्वकिंछशपारिष्टपञ्चवरजनीवचा ।

रसोनहिंश्वजालोमशृंगीमरिचमाक्षिकैः ॥ २४ ॥

धूपःसर्वज्वरघ्नोऽयंकुमाराणाग्रहापहः ।

पत्रैर्वदरचांगेरीकाकमाचीकपित्थशैः ॥ २५ ॥

शिशोरुग्राण्यतीसारनाशनंमूर्द्धलेपनम् ।

सुवर्णगैरिकस्यापिचूर्णानिमधुनासह ॥

लीढासुखमवाप्नोतिक्षिप्रंहिक्कारहितःशिशुः ॥ २६ ॥

अर्थ—खुरासानी, अजवायन, नागरमोथा, पीपल, काकडाशिगी, बायबिडंग और अतीस, इनका चूर्णकर सहतमें मिलाकर चटानेसे कासादिरोग दूर होतेहैं साँपकी कैचली, सीसम, नीमके पत्ते, बच, हलदी, लहसुन, हांग, बकरीके रोम, काकडाशिगी, कालीमिरच और सहत इनकी धूप देनेसे बालकोंके सर्व प्रकारके ज्वरादि रोग दूर होतेहैं । बेरी, चांगेरी, मकोय और कैथा इनके पत्तोंको पीसकर मस्तकपे प्रलेप करनेसे बालकोंका अनीमाग दूर होताहै । पीली गेरूका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका वमन दूर होताहै ॥ २३-२६ ॥

अथ शिशुज्वरातिसारादिचिकित्सा ।

धातकीबिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयवबालकः ।

लेहःक्षौद्रेणबालानांज्वरातीसास्वान्तिनुत् ॥ २७ ॥

रजनीदारुसरलश्रेयसीबृहतीद्वयम् ।

पृश्निपर्णीशताह्वाचलीढंमाक्षिकसर्पिषा ॥ २८ ॥

मधुसर्पिर्युतचूर्णत्रिफलाव्योषसैन्धवम् ।

लीढंनिवारयत्याशुगात्रशोथज्वरंशिशोः ॥ २९ ॥

जीर्णज्वरंशिशूनालीढातैलेनकेशराजजटा ।

हरतितथातीसारंपटुदशनाढ्योरसःपीतः ॥ ३० ॥

अर्थ—धायकेफूल, बेलकीगिरी, धनियाँ, लोध, इन्द्रजौ और सुगंधबाला इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंके ज्वरादि रोग दूर होतेहैं । हलदी, देवदारु, धूपसरल, गजपीपल, कटाई, कटेरी, पिठवन और सोया इनको एकत्र पीसकर सहत और घृतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंके

संग्रहणी आदि रोग दूर होतेहैं । हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल और सैंधानोर्न यह सब समानभागले सहत और घृतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंके शरीरकी सूजन और ज्वर दूर होताहै । कुकुरभांगरेकी जडको तेलके साथ सेवन करनेसे बालकोंका पुराना ज्वर दूर होताहै । चूकाके रसमें सैंधानोन डाल कर पीनेसे बालकोंके अतीसार दूर होतेहैं ॥ २७-३० ॥

अथ गुण्ठ्यादिकाथाःसिन्दूरादिलेहश्च ।

नागरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैःशृतम् ।

कुमारंपाययेत्प्रातःसर्वातीसारनाशनः ॥ ३१ ॥

कपित्थस्वरसःक्षौद्रलाजचूर्णसमन्वितः ।

पेयःसर्वातिसारघ्नःकुमाराणांविशेषजित् ॥ ३२ ॥

समंगाधातकीलोध्रशारिवाभिःशृतंजलम् ।

सिन्दूरानलकुष्ठमुस्तमरिचैःशृंगीवटस्याग्रजैः ॥ ३३ ॥

पाठागंधककाचटकणविषाविश्वौषधीकट्फलैः ।

कुचीसज्जककोलबीजकुनटीबिल्वेन्द्रलोध्रैस्तथा ॥ ३४ ॥

लाजाऽजाजीयुगैःसचंदनयुतैःसश्रेयसीचूर्णितैः ।

लेहःक्षुद्रविनिर्मितोहरतिवैपश्चाद्रज्जुन्दुस्तरम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगंधवाला और इन्द्रजौ इनका काथ बालकोंको पिलानेसे अतीसार दूर होताहै । कैथेका स्वरस, सहत और खीलोंका चूर्ण एकत्र सेवन करनेसे बालकोंका अतीसार दूर होताहै । मँजीठ, धायकेफूल, लोध और श्यामालता इनका काथ सहत डालकर पीनेसे बालकोंके सर्वप्रकारके अतीसार दूर होतेहैं । सिंदूर, चीतेकीजड, कूठ, नागरमोथा, कालीमिरच, काकडाशिगी, बडके अंकुर, पाद, गंधक, कांच, सुहागाकी खीलें, अतीस, सोंठ, कायफल, राल, बेलकीगिरी, गेरू, बेलकागूदा, इन्द्रजौ, लोध, खीलें, जीरा, कालाजीरा, लालचंदन और गजपीपल इन सबका चूर्ण करके सहतमें मिलाके चाटनेसे बालकोंके अतीसारादि रोग दूर होतेहैं ॥ ३१-३५ ॥

बालकुटजावलेहः ।

मूलत्वचंवत्सकस्यपलमेकंसुकृद्वितम् ।

अष्टभागंजलंदत्त्वाचतुर्भागावशेषितम् ॥ ३६ ॥

अतिविषाचपाठाचजीरकंबिल्वमेवच ।

आम्रास्थिशतः प्याचधातकीमुस्तकंतथा ॥

जातीफलंचसंचूर्ण्यनिक्षिपेत्तत्रयत्नतः ॥ ३७ ॥

अर्थ—४ चार तोले कुडेकी छालको ३२ बत्तीससेर जलमें पकावे, जब आठ तोले जल शेष रहे तब उतारकर छानलेवे । फिर अग्निपै रखके पकावे, जब पकते २ गाढा होजाय तब उसमें अतीस पाद, जीरा, बेलका गूदा, आमकी-गुठली, सोया, धायके फूल, नागरमोथा, और जायफलका चूर्ण डालकर खूब मिलादेवे । इस औषधिको सेवन करनेसे बालकोंका आमशूल और रक्तभेद दूर होताहै ॥ ३६॥३७ ॥

अथामातीसारंदिचिकित्सा ।

व्योषाभयावत्सकदीप्यकञ्च

कैटय्यमुस्ताविजयासमांशकम् ।

घृतेनवाशर्करयासमेतं

सामातिसारंहरतिक्षणेन ॥ ३८ ॥

त्रिकटुवचयमानीगंधपाषाणकुष्ठं

सनिशरजनिपुष्पंजीरकेकाचकञ्च ।

कुलिरकनकबीजंतालसिन्धुंशिलांच

वनजलशुनहिंगुमूलमैशञ्चटंकम् ॥ ३९ ॥

समनृपतिविडंगन्तुल्यभागंगृहीत्वा

दृषदिमसृणपिष्ट्वस्त्रपूतंविधाय ।

ग्रहजनितशिशूनांक्षीरपानांशिशूनां

शमयतिजठरोत्थाजीर्णविष्टम्भकार्यम् ॥ ४० ॥

अर्थ—सांठ, पीपल, कालीमिरच, हर्गड, कुडेकीछाल, अजवायन, कायफल, नागरमोथा और भांगकाचूर्णघृत अथवा बूराके साथ सेवन करनेसे बालकोंका आमातीसार दूर होताहै । सांठ, मिरच, पीपल, वच, अजवायन, गंधक, कूठ, फूलों समेत हलदी, कालाजीरा, सफेद जीरा, काच, काकडाशिगी, कनकधतूरेके बीज, हरिताल, सेंधानोन, मैन्शिल, नागरमोथा, लहशुन, हींग,

ईखकी जड़, सुहागा, सैजिनेकेबीज और बायबिडंग इन सबका चूर्णकर मधु आदि अनुपानके साथ सेवन करनेसे बालकोंके सर्व प्रकारके ज्वर अतिसारादि-रोग दूर होतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ पञ्चविधकासादिचिकित्सा ।

द्राक्षापिप्पलिशुण्ठीनांचूर्णक्षौद्रेणसर्पिषा ।

लीढंनिवारयत्याशुकासंपंचविधंशिशोः ॥ ४१ ॥

धान्यंशर्करयायुक्तंतण्डुलोदकसंयुतम् ।

पानमेतत्प्रदातव्यंकासेपंचविधेशिशोः ॥ ४२ ॥

बिल्वमूलकषायेणलाजाचैवसशर्करा ।

आलोडचपाययेद्बालंछर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—दाख, पीपल और साँठका चूर्णकर सहतमें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंके पांच प्रकारकी खाँसी दूर होजातीहै । धनियाँ और शर्करा चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोंका कास गेग दूर होताहै । बेलकी जड़के काथमें खीलोंका चूर्ण और बूरा मिला आलोडन कर बालकोंको पिलानेसे वमन और अतीसार दूर होताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ ज्वरातीसारादिचिकित्सा ।

समंगोत्पलकिंजल्कंसंपिष्टंतण्डुलाम्बुना ।

मत्स्यण्डीमधुसंयुक्तंज्वरातीसारनाशनम् ॥ ४४ ॥

द्वीवेरशर्कराक्षौद्रंपीतंतण्डुलवारिणा ।

शिशोरक्तातिसारघ्नंतृदुर्द्धिज्वरनाशनम् ॥ ४५ ॥

मरिचमहौषधकुटजंद्विगुणीकृत्यउत्तरोत्तरतः ।

गुडतक्रयुतमेतद्ब्रह्मणीरोगंनिहन्त्याशु ॥ ४६ ॥

लाजासयष्टीमधुकंशर्कराक्षौद्रमेवच ।

तण्डुलादकसंपीतंक्षिप्रंहन्तिप्रवाहिकाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—बराहकान्ता, उत्पल, कमलकेसर, इनको एकत्र चावलोंके जलमें पीसकर मिश्री और सहत मिलाकर बालकोंको पिलानेसे ज्वरातिसार दूर होताहै । सुगन्धवाला, बूरा और सहत एकत्र चावलोंके जलके साथ पीनेसे

बालकोंके रक्तातिसार, प्यास, वमन और ज्वर नष्ट होताहै । मिरच १ एक-
भाग, सोंठ २ भाग और कुंडेकी छाल ४ चार भाग, इनका एकत्र चूर्णकर
गुड और तक्रके साथ सेवन करनेसे बालकोंका संग्रहणी रोग दूर होताहै ।
खाल, मुलेठी, बूरा और सहत इनको चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोंका
प्रवाहिका रोग दूर होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अथ पश्चाद्गुगादिचिकित्सा ।

चंदनंशारिवेद्रेचशंखनाभिसमायुतैः ।

पश्चाद्गुजेप्रलेपोऽयमलेहस्तुप्रशस्यते ॥ ४८ ॥

गुदपाकेतुबालानांपित्तघ्नीकारयेक्रियाम् ।

रसांजनंविशेषेणपानालेपनयोर्हितम् ॥ ४९ ॥

पीतं ग्रीवमलेहस्तुस्तन्यंतमधुसर्पिषा ।

द्विचार्त्ताकीफलरसंपंचकोलंचलेहयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ—लालचंदन, दोनो प्रकारकी शारिवा और शंखनाभि इनको एकत्र
जलमें पीसकर लेप करनेसे अथवा इनका अवलेह बनाकर सेवन करानेसे बाल-
कोंका पश्चाद्गुज दूर होताहै। बालकोंके गुदपाक रोगमें पित्तघ्नी क्रियाका व्यवहार
करे । रसौतके पिलानेसे और रसौतका प्रलेप करनेसे बालकोंका गुदपाक
रोग दूर होताहै । जो बालक बारंबार दूध पीकर बारंबार वमन करदेतेहैं,
उनको बृहतीका रस, कटेरीका रस, पंचकोलका चूर्ण, सहत और घृत यह सब
एकत्र मिलाकर चटावे तो दूध डालना बंद होताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ वमनादिहरयोगाः ।

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थैर्लेहःशौद्रेणछर्दिनुत् ।

कोलास्थिमध्यंसोदीच्यंचन्दनमधुशर्करा ॥ ५१ ॥

भृष्टोमूर्त्तिसंयुक्तंपीतंछर्दिहरंशिशोः ।

ज्वलितवटकाष्ठमम्भसिबहुधानिर्वाप्यकारितंपीतम् ५२

हरतिश्वसनंछर्दिमभयाचापिमात्रयायदत्ता ।

साऽपिमधुलोध्रसंयुक्ताछर्दिरोगंजयेद्भुतम् ॥ ५३ ॥

पुष्करातिविषाशृंगीमागधीधन्वयासकैः ।

चूर्णितैर्मधुनालेहःशिशूनांपंचकासनुत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—आमकी गुठली, खीलें और सेंधेनोनका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका वमन दूर होताहै । बेरकी गिरी, सुगन्धवाला और लालचंदनका चूर्ण सहत और बुरामें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंका वमन दूर होताहै । बडकी जलती हुई लकड़ियोंको बहुत बार जलमें बुझाकर उस जलको पिलानेसे अथवा हरड़का चूर्ण और लोधका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका वमन और श्वास दूर होजाता है । पोहकरमूल, अतीस, काकड़ाशिंगी, पीपल और धमासा इनका एकत्र चूर्णकर सहतमें मिलाकर चटावे तो बालकोंकी खाँसी दूर होतीहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथ हिक्कादिचिकित्सा ।

पिप्पलीमरिचानान्तुचूर्णसमधुशर्करम् ।

रसेनमातुलुंगस्यहिक्काछर्दिनिवारणम् ॥ ५५ ॥

दाडिमस्यतुबीजानिजीरकंनागकेशरम् ।

चूर्णितंशर्कराक्षौद्रंलीढंतृष्णाहरंशिशोः ॥ ५६ ॥

कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैधवैःकृतः ।

मूत्रग्रहेप्रयोक्तव्यःशिशूनालेहउत्तमः ॥ ५७ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राक्कथितंपिबेत् ।

क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणांशान्तयेशिशोः ॥ ५८ ॥

अर्थ—पीपल और कालीमिरचोंका चूर्ण, बूरा और बिजोरेनीबूके रसमें मिलाकर पीनेसे बालकोंकी वमन और हिचकी दूर होतीहै । अनारदाना, जीरा और नागकेशर, इनको एकत्र पीसकर बूरा और सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी प्यास दूर होतीहै । पीपल, कालीमिरच, बूरा, सहत, सेंधानोन, और छोटी इलायची इनका लेह बनाकर बालकोंको चटानेसे मूत्रग्रह (पेशाबका बंद होजाना) दूर होताहै । पटोल, हरड़, बहेड़ा, आमला, नीमकीछाल और हलदी इनका काथ बनाकर पिलानेसे बालकोंके क्षत, विस्फोटादिरोग दूर होतेहैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ तालुकण्टकादिचिकित्सा ।

प्रथ्याकुष्ठवचाचूर्णमधुतैलयुतंपिबेत् ।

ग्रीवादाढ्यकरंश्रेष्ठतालुकण्टकनाशनम् ॥ ५९ ॥

तालुपाकेयवक्षारं मधुनाप्रतिसारणम् ।

सैधवाङ्गारयोश्चूर्णमुखविस्त्रावणेहितम् ॥ ६० ॥

अथवोदधिफेनञ्चसैधवेनसमायुतम् ।

मुखपाकेतुबालानांसाग्रसारमयोरजः ॥ ६१ ॥

गैरिकक्षौद्रसंयुक्तंभेषजंसरसांजनम् ।

केवलेनाप्यनेन मधुना लेह इति वृद्धाः ।

अश्वत्थवल्कलक्षौद्रैर्मुखपाकेप्रलेपनम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—हरड़, कूठ और बचका चूर्ण, सहत और तेलके साथ पिलानेसे बालकोंकी ग्रीवा दृढ होतीहै, तथा तालुकण्टक रोग दूर होताहै । जवाखारका चूर्ण सहतमें मिलाकर उससे बालकोंके तालुको घिसनेसे बालकोंका तालुपाक रोग दूर होताहै । सैधेनोनकाचूर्ण और अंगारोंका चूर्ण अथवा समुद्रफेन और सैधानोनका चूर्ण बालकोंको देनेसे मुखविस्त्रावण (लारका गिरना) दूर होताहै । आमकीर्मांग, लोहा, गेरू सहत और रसौत, यह सब द्रव्य समान भाग लेकर सहतमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका मुखपाक रोग दूर होताहै । तथा केवल सहतके चटानेसे भी मुखपाक रोग दूर होता है यह वृद्धोंका मत है । पीपलकी छालके चूर्णमें सहत मिलाकर प्रलेप करनेसे बालकोंका मुखपाक रोग दूर होताहै ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अथ कर्णव्रणस्त्रावादिचिकित्सा ।

दार्वीयष्टचभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथापरम् ।

जातीपत्ररसःपूतःक्षौद्रयुक्तःप्रशस्यते ॥ ६३ ॥

शिशोःकर्णव्रणस्त्रावेमुखपाकेचशस्यते ।

शारिवातिललोध्राणांकषायोमधुकस्यच ॥ ६४ ॥

विस्त्रावितेमुखेशस्तंधारणार्थंशिशोःसदा ।

हरिद्रानिम्बपत्राणिमधुकंलोध्रमुत्तमम् ॥ ६५ ॥

तैलमेभिर्विपक्तव्यंमुखपाकहरंपरम् ।

सहजम्भीरःसुन्दलरसघर्षणंसद्यः ॥

द्रुतमुपहन्तिहिपाकंमुखगंबालस्यचाश्वेव ॥ ६६ ॥

अर्थ—दारुहलदी, मुलेठी, हरड़ और चमेलीके पत्ते इनको पीसकर सहतमें मिलाके प्रलेप करनेसे अथवा चमेलीके पत्तोंके रसमें सहत मिलाकर प्रयोग करनेसे बालकोंके कानका बहना और मुखपाकरोग दूर होताहै । अनन्तमूल, तिल, लोध और मुलेठी इनका काथ मुखमें कवलरूपसे धारण करनेसे बालकोंका मुखस्त्राव दूर होताहै । हलदी, नीमकेपत्ते, मुलेठी, लोध और उत्पल, साथ तेलको पकाकर प्रयोग करनेसे बालकोंका मुखपाकरोग दूर होताहै । इसके जम्भीरी नीबूका रस और थूहरके पत्तोंका रस दोनोको मिलाकर मुखमें घिस नेसे बालकोंका मुखपाकरोग दूर होताहै ॥ ६३-६६ ॥

अथ कुमारकल्याणघृतम् ।

द्राक्षासशर्करंशुण्ठीजीवन्तीजीरकंबला ।

शठीदुरालभाबिल्वंदाडिमंसुरसास्थिरा ॥ ६७ ॥

मुस्तंपुष्करमूलंचमुक्षुमैलागजपिप्पली ।

एषांकर्षसमैर्भागैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ६८ ॥

कषायेकण्टकार्यातुक्षीरेतस्माच्चतुर्गुणे ।

एतत्कुमारकल्याणघृतरत्नंमुखप्रदम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, कटेरीका स्वरस २ दो सेर, गायका दूध ८ आठसेर और कल्कके लिये दाख, वूरा, सांठ, जीवन्ती, जीरा, खिरैटी, कचूर, धमासा, बेल, अनारकी छाल, तुलसी, शालिपर्णी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोले लेकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह कल्याणकुमार घृत बालकोंको मुखदेनेवाला है । और सर्वरोग शोकोको हरनेवाला है ॥ ६७-६९ ॥

अथ मेधाजनकघृतम् ।

वचाकुष्ठंतथाब्रह्मीसिद्धार्थकमथापिवा ।

शारिवासैन्धवंचैवपिप्पलीवेष्टमुस्तकम् ॥ ७० ॥

मेध्यंघृतमिदंसिद्धंपातव्यंचदिनेदिने ।

दृढस्मृतिःक्षिप्रमेधाःकुमारोबुद्धिमान्भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—उत्तम गायका घी २ दो सेर, जल आठ ८ सेर, तथा कल्कके लिये वच, कूठ, ब्रह्मी, सफेदसरसों अनन्तमूल, सैधानोन, पीपल, बायबिडंग और

नागरमोथा लेकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह मेध्य घृत बालकोंको प्रति-
दिन पिलावे, इससे बालकोंकी मेधा बढ़तीहै, स्मरणशक्ति दृढ़ होतीहै और
बुद्धिमान् होतेहैं ॥ ७०॥ ७१ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमंसिद्धंतैलमस्तुचतुर्गुणम् ।

रास्नाचन्दनकृष्णाब्दवाजिगंधानिशायुगैः ॥ ७२ ॥

शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिकाहरेणुभिः ।

बालानांज्वररक्षोग्रमभ्यंगाद्वलवर्णकृत् ॥ ७३ ॥

अर्थ—तिलका तेल २ दो सेर, लासका काथ २ दो सेर, दहीकातोड़ ८
आठसेर, तथा कलकके लिये रास्ना, लालचंदन, पीपल, नागरमोथा, असगंध
हलदी, दारुहलदी, सोया, देवदारु, मुलेठी, मूर्वा, कुटकी और रेणुका प्रत्येक
दो दो तोले ले इस तेलको यथाविधिमे पकाकर शरीरमें मलनेसे बालकोंके
ज्वरादि रोग दूर होतेहैं । तथा बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथोषधैर्मन्त्रैश्चबालग्रहनाशनम् ।

महामुण्डीतकोदीच्यकाथस्नानंग्रहापहम् ।

श्वेतापराजितामूलंनिम्बपत्राणिसर्षपः ॥ ७४ ॥

भूर्जपत्रंवचासर्पिर्धूपःसर्वग्रहापहः ।

तथाग्रहघ्नान्नस्यांश्चमंत्राञ्छृणुशिवोदितान् ॥ ७५ ॥

“अंगादंगात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे । आत्मा वैपुत्र-
नामासि संजीव शरदां शतम्” ॥ ७६ ॥

शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि ।

नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु ॥ ७७ ॥

ओं नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय सद्यस्तव

स्तवस्तुतस्तुत स्वाहा । ओं कँ ढँ यँ शँ वैनतेयाय नमः ।

ओं ह्रीं क्रीं क्षः ।

तपसांचेतसांचैवयशसांवपुपान्तथा ।

निधानंयोऽव्ययोदेवःसतेस्कन्दःप्रसीदतु ॥ ७८ ॥

दुर्दशनामहाकायापिंगाक्षीभैरवस्वना ।
 लम्बोदरीशंकुपर्णीकुशलीतेप्रसीदतु ॥ ७९ ॥
 नागाःपिशाचागंधर्वाःपितरोयक्षराक्षसाः ।
 अभिद्रवन्ति येयेत्वांब्रह्माद्याग्रंतुतान्सदा ॥ ८० ॥
 पृथिव्यामन्तरिक्षेचयेचरन्तिनिशाचराः ।
 दिक्षुवास्तुनिवासास्तुपान्तुत्वान्संस्कृताः ॥ ८१ ॥

अर्थ—बड़ीगोरखमुण्डी और सुगंधबालाके काथसे स्नान करनेसे बालकोंके ग्रह दोष दूर होतेहैं । सफेद कोयलकी जड़, नीमकेपत्ते, सरसों, वच, भोजपत्र और घृत, इनकी धूपदेनेसे—बालकोंके सर्व ग्रहदोष दूर होजातेहैं । पूर्वोक्त “अंगादंगात्सम्भवसि०” इत्यादिमंत्रोंका पाठ करनेसे बालकोंके सर्व ग्रहदोष दूर होजातेहैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अथाहिण्डिकाचिकित्सा ।

सोमग्रहणेविधिवत्केकिशिखामूलमुद्धतंबद्धा ।
 जवनेऽथकन्धरायांक्षपयतिबालानामहिंडिकांनियतम् ८२
 सप्तदलपुष्पंमरिचपिष्टंगोरोचनयासहितम् ।
 पीतंनिहन्ति तदहिण्डिकारोगंशिशोर्नियतम् ॥
 उदुम्बरमूलंबालकटीबंधनादहिण्डिकांहन्ति ॥ ८३ ॥

इति बालरोगाध्यायः ।

अर्थ—चन्द्रग्रहणमें मोरशिखाकी जड़को उखाड़कर बालकोंकी जाँघोंमें और कंधोंमें बांधनेसे ग्रहदोष जनित अहिण्डिका रोग दूर होताहै । सप्तवनके फूल और कालीमिरचोंको पीसकर गोरोचनके साथ पीनेसे बालकोंका अहिण्डिका रोग दूर होताहै । गूलरकी जड़को बालककी कटिपै बांधनेसे—अहिण्डिका रोग दूर होताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

इति बालरोगाध्यायः समाप्तः ।

अथ विषचिकित्साधिकारः ।

अथ स्थावरादिविषवर्णनंतद्भवरोगास्तच्चिकित्सा च ।
 स्थावरंजङ्गमश्चैवद्विविधंविषमुच्यते ।
 मूलाद्यात्मकमाद्यंस्यात्परंसर्पादिसंभवम् ॥ १ ॥
 मूलंपत्रंफलंपुष्पंत्वक्क्षीरंसारएवच ।
 निर्यासोधातवश्चैवकन्दश्चदशमंविषम् ॥ २ ॥
 निद्रांतन्द्रांक्लमंदाहंसपाकंदाहहर्षणम् ।
 शोथंचैवातिसारश्चकुरुतेजंगमंविषम् ॥ ३ ॥
 स्थावरन्तुज्वरंहिकादिन्तर्ह गलग्रहम् ।
 फेनच्छर्दयरुचिंश्वासंमूर्च्छांश्चकुरुतेविषम् ॥ ४ ॥
 दृष्टस्यपेयंप्रागुक्तंदृढयावरुणंघृतम् ।
 धरणीबंधनेमंत्रःप्रयोगश्चविपापहः ॥ ५ ॥
 दशनंदंशकस्याहेःफलस्यमृदुनोऽथवा ।
 शाखादृष्टस्यदंशोर्द्ध्वविधेयश्चतुरंगुले ॥ ६ ॥
 समंत्रंधरणीबंधोवस्त्रचर्मोदिभिर्दृढम् ।
 नदेहेसर्पतिविषंतद्वन्धेननिवारितम् ॥ ७ ॥
 मंत्रश्च गरुडभेरुण्डादिदेवतानाम् ।
 ओंएहमात्रभेरुण्डेभइऊंवीजंभविअरुण्डे तंत्र
 मंत्रअग्दोषईन्हूँकारेविपनाशइस्थावरजंगमेतिमन्हुकइ ॥ ८ ॥
 अयं मन्त्रः स्पष्टाक्षरैः कर्णे पठनीयः ।
 वृत्तेदंशविधौनभोगिनमसौप्राप्नोतिदृष्टोयदि ।
 वस्त्रंखण्डमृणालकोमलफलंदन्तैर्दंशत्याशुयत् ॥
 गच्छेत्तत्क्षणमेवतस्यगरलंतदृष्टवस्त्वन्तरम् ।
 दंशंनिर्विषतानयेच्चबहुधासम्पीड्यहस्तेनच ॥ ९ ॥

वाच्यंवाकालकण्ठाह्वंध्येयावागारुडीतनुः ।

शून्यताध्यानमात्रेणशून्यतायातितद्विषम् ॥ १० ॥

अर्थ—स्थायर और जंगम इन भेदोंसे विष दो प्रकारका है मूलादिसे उत्पन्न हुए विषको स्थावर विष और सर्पादिके विषको जंगम विष कहते हैं । मूल, पत्र, पुष्प, त्वक्, क्षीर, सार, निर्यास, धातु और कन्द यह स्थावर विषके रहनेके दश स्थान हैं । निद्रा, तंद्रा, क्लम, दाह, पाक युक्तदाह, रोमांच, शोथ और अतीसार, यह सब कार्य जंगम विषके हैं । ज्वर, हिका, दन्तहर्ष, गलेमें पीडा, झागोंकी वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा यह सब स्थावर विषके कार्य हैं, अर्थात् इन सब विकारोंको स्थावर विष कहते हैं । सर्पके काटे मनुष्यको हृदयावरक घृतपान, धरणीबंधन, मंत्र और औषधि प्रयोग योजना चाहिये । साँपके डसे हुए मनुष्यके काटनेकी जगह चार अंगुल ऊपर गुरुभेरुण्डादि देवताओंके मंत्रको पढ़कर वस्त्र चर्मादिसे खूब खेंचकर बाँध देवे, इससे सर्व शरीरमें विष नहीं फैलता है । “ॐ एहमात्र भेरुण्डे जंगम केति मन्दुकइ” इस मंत्रको स्पष्ट अक्षरोंमें साँपके काटे हुए मनुष्यके कानोंमें सुनादेवे । जिस समय साँप काटै उसी वक्त काटतेके साथही वस्त्रखण्ड, मृणाल अथवा कोमल फलोंको चाव ले तो उसका विष वस्त्रखण्डादिमें चला जाता है, अथवा काटनेकी जगह वारंवार हाथसे नोचनेसेभी विष नहीं रहता है । या काल कंठाह्व अथवा गारुडी तनुका ध्यान करनेसेभी विष निजशून्य होजाता है ॥ १-१० ॥

अथ सर्पदष्टचिकित्सा ।

छत्रिसर्षपपाणिश्चचरेद्रात्रौदिवातथा ।

तच्छायाशब्दवित्रस्ताःप्रणश्यन्तिचपन्नगाः ॥ ११ ॥

मधुमधुककाष्ठदीप्तोयत्रज्वलतिप्रदीपकोरात्रौ ।

कुलिकादयोऽपिनागास्तत्रप्राणान्विमुंचन्ति ॥ १२ ॥

तण्डुलीयकमूलन्तुपीतंतण्डुलवारिणा ।

तक्षकेणापिसंदष्टंनिर्विषंकुरुतेनरम् ॥ १३ ॥

गृहधूमोहरिद्रेद्वेसमूलंतण्डुलीयकम् ।

श्वेतापराजितामूलंदेवदालीयमूलकम् ॥ १४ ॥

वारिणापेषितं नस्ये कालदष्टोऽपि जीवति ।

मूषलीटंकणं पाने कालदष्टोऽपि जीवति ॥ १५ ॥

पिण्डीतगरजं मूलं पुष्येणोद्धृत्य योजितोदंशे ।

मृतमपि दष्टपुरुषं शमयति सर्वगात्रं नोचित्रम् ॥ १६ ॥

पुत्रं जीवफलं मज्जां गवां क्षीरेण पेपयेत् ।

लेपां जननस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ १७ ॥

अथ गरुडमंत्रः ।

वाँषोंवाँ अनेन मन्त्रेण सर्पदष्टस्य शिखाबन्धनं कुर्यात् ।

दाँपोंदाँ अनेन मन्त्रेण दंष्ट्रस्य निर्विषं निर्व्वाहयेत् ॥

सर्पदष्टो यदा धीरस्तं सर्पदंशयेत्स्वयम् ।

मुक्तोऽसौ प्रियते सर्पः स्वयं निर्विषतां व्रजेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—मर्गोंको हाथमें लेकर छत्रीको लगाकर जो मनुष्य रातदिन विचरण करता है, उसकी छाया और शब्दमें सम्पूर्ण साँप त्रासयुक्त होकर नष्ट होजाते हैं । गत्रिमं—सहन मिलाकर मुलेटीको दीपककी समान जलानेसे कुलकादि सम्पूर्ण सर्प मर जाते हैं । चौलाईकी जड़को चावलोंके जलमें पीसकर सेवन करनेसे तक्षक सर्पका काटाहुआभी आराम होता है । घरका धुआँ, हलदी, दारुहलदी और जड़ समेत चौलाई एकत्र पीसकर दही और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे साँपका विष दूर होता है । सफेद अपराजिताकी जड़ और देवदालीकी जड़को जलमें पीसकर नास लेनेसे काले साँपका विष दूर होता है । मुसली और मुद्गागेको पीसकर सेवन करनेसे काले साँपका विष दूर होता है । पिण्डीतगरकी जड़को पुष्य नक्षत्रमें उखाड़कर साँपके काटे हुए स्थानमें प्रलेप करनेमें मर्ग हुआ भी जी जाता है । पतिजियाके फलकी मींगको गायके दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे, अंजन लगानेसे और नास लेनेसे काले साँपका काटाहुआभी जी जाता है । वां पों वां इस मंत्रको पढ़कर साँपके काटे हुए मनुष्यकी चोटीको बाँध देवे, दां पों दां इस मंत्रके द्वारा विषको उतारे । साँपका काटा हुआ मनुष्य धीरे धीरे धरकर उसी साँपको डसलेवे तो साँप मरजावे और उस मनुष्यके प्राण बच जाते हैं ।

॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ स्थावरान्दिविषभेदास्तन्नामरूपाणिच ।

शम्भुनोक्तंसमानेनविषंस्थावरजंगमम् ।

कृत्रिमयोगजंचैववृश्चिकाखुविषंतथा ॥ १९ ॥

क्रमादौषधमेतेषामंत्रयुक्तंवदाम्यहम् ।

अन्यन्मंत्रौषधीनान्तुक्रमात्सिद्धिःकचिद्वेत् ॥ २० ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनविषत्वंसममभ्यसेत् ।

चिकित्सांत्वारितंकृत्वासम्यग्रक्षामुपाचरेत् ॥ २१ ॥

नामरूपंविषाणान्तुशम्भुनाकीर्तितंपुरा ।

बहवोवत्सनाभश्चमुस्तकंपुष्करंविषम् ॥ २२ ॥

क्षौद्रंशटिःशर्करश्चहरिद्रंकालकूटकम् ।

इन्द्रवीजंचैववीरंहरितंगालकंविषम् ॥ २३ ॥

शृंगीकर्कटशृंगीचमेषशृंगीहलाहलम् ।

शक्तुकरक्तशृंगीचअंजनंपुण्डरीयकम् ॥ २४ ॥

शंकोचंमधुपाकश्चरोहिणंमतुलंतथा ।

पंचविंशद्भिर्भेदैर्ज्ञेयंस्थावरजंविषम् ॥ २५ ॥

एषामध्येह्यतिक्रूरंशङ्कोचंकालकूटकम् ।

शृंगंमुस्तंवत्सनाभंपंचमन्तुविषाद्विषम् ॥ २६ ॥

एतद्देहगतेकार्यतेषालक्षणमुच्यते ।

वान्तिमूर्च्छातिसारश्चशूलंचातिकरंपरम् ॥ २७ ॥

कासश्वासोप्रवाहौचलक्षयेत्कुमुदंविषम् ॥ २८ ॥

अर्थ—स्वयं शंकरने कहा है कि, विष स्थावर, जंगम, कृत्रिम, योगज, वृश्चिक विष और उन्दुर इन भेदोंसे कई प्रकारका है । मंत्र औषधादिकोंमें कौनसे विषसे किस समय सिद्धि होती है ? इस कारण भले प्रकारसे विष-तत्त्वको जानना चाहिये और शीघ्र चिकित्सा करे । परंतु सर्पके काटे हुए मनुष्यकी बहुत शीघ्र चिकित्सा करे । पहले महादेवने विषके अनेक नामरूप कहे हैं, जैसे वत्सनाभ, मुस्तक, पुष्कर, क्षौद्र, शटि, शर्कर, हरिद्र, कालकूट

इन्द्रबीज, वीर, हरित, गालक, शृंगी, कर्कटशृंगी, मेषशृंगी, हलाहल, शकुन, रक्तशृंगी, अंजन, पुण्डरीयक, शंकोच, मधुपाक, रोहिण, विष और मतुल यह पच्चीस भेद स्थावर विषके हैं । इनमें शंकोच, कालकूट, शृंग, मुस्तक और वत्सनाभ, यह ५ पांच विष अत्यन्त क्रूर हैं । यह सब विष देहमें प्राप्त होनेसे वमन, मूर्च्छा, अतीसार और अत्यन्त शूलके समान पीडा-को उत्पन्न करते हैं । तथा कुछ विष खांसी, श्वास और प्रवाहिका रोगको उत्पन्न करैहैं ॥ १९-२८ ॥

अथाशेषविषचिकित्सा ।

पुत्रंजीवफलंमज्जांशीततोयेनपेषयेत् ।

भोजनेचांजनेपानेलेपःसर्वविषापहः ॥ २९ ॥

स्थावरजंगमंक्रूरं कृत्रिमंयोगजंतथा ।

निष्कमात्रात्रसंदेहःकालदष्टोहिजीवति ॥ ३० ॥

समूलपत्रंसर्पाक्षीतथैवदेवदालिका ।

गिरिकर्ण्याश्ववामूलंनरमूत्रेणपूर्ववत् ॥ ३१ ॥

स्ववस्त्रास्थापिनिर्वाहंनिर्विपीकरणन्तथा ।

कर्तव्यंमंत्रिणाशीघ्रंतत्तथैवप्रदर्शयते ॥ ३२ ॥

“नाधोना” अनेन मंत्रेण शीतजलघटमभिमन्त्र्य विपा-
तुरस्य मस्तके क्षिपेत् । विषं न क्रामति इति स्तम्भन-
मंत्रः । “पंक्षौ” अनेन मंत्रेण विपान्बन्धयेत् “वाँपोवाँ”
अनेन मंत्रेणार्कदण्डमभिमन्त्र्य विपातुरस्य सर्वाङ्गे
निर्वाहयेत् । “ह्वाँदस्त्रीह्नी” अनेन मंत्रेण निर्विपीकर-
णार्थं विपातुरं दण्डेनापमार्जयेत्स्तम्भो भवति ।

अथ मंगलाविद्या ।

ओं नमो भगवति परमतत्त्वपराण्यक्षरैर्महाविद्योलूकाला-
नि घोरश्मशानपरिभ्रमणानि अट्टअट्टहासिनि उन्मान
न्देनिवासिनि एहि एहि योगपीठस्थिते त्रिपुरे त्र्यक्षरे

त्रिपथे त्रिकोणवासिनि वेतालापस्मारयक्षराक्षसप्रेतभूत-
 पिशाचनिवारिणि स्थावरजंगमकृत्रिमविषनाशिनि
 सर्वज्वरनिपातिनि एहि एहि मम पुत्रपौत्रपशुबांधव-
 दुहितृकलत्रपरिजनस्य भीतस्य रक्षां वज्रशरीरं कुरु
 कुरु कुशले स्थितं राजकुले स्थितं सुप्तस्थितं जाग्रत-
 स्थितं चतुष्पथे स्थितं बाह्यस्थितं रक्ष रक्ष सर्वशंकां
 विनाशय सर्वदुष्टान्भंजय भंजय । एकारक्षविद्वाक्षि
 त्रिकोणमुद्रानिवारय बंध बंध आक्रामय उद्यानपीठ-
 प्रसादेन जालबंधपीठप्रसादेन चूर्णं गिरिपीठप्रसादेन
 एवं चतुष्पीठप्रसादेन देवि मम प्रसादं कुरु कुरु ऐका-
 हिकं द्वयाहिकं विषमज्वरं सत्रिपातज्वरं सर्वज्वरं निर्णा-
 शय सर्वाबाधां निवारय सर्वविषं भक्ष भक्ष एहि एहि
 इन्द्रजालान्पञ्चदण्डेन गरुडपक्षप्रपातेन महाकालरू-
 पेण सर्वापदान् विध्वंसय निर्भयं कुरु कुरु रक्ष रक्ष
 मंत्रसिद्धिं ददातु ॐ ह्राँ ह्रीं क्लूं फट् ।

एकादिमंगलाविद्या विषहादृष्टप्रत्यया ।

अनयामंत्रितंतोयंदत्तंसर्वविषापहम् ॥

अर्थ—पतिजियाके फलकी मींगको शीतल जलमें पीसकर भोजन, अंजन, पान और प्रलेपमें प्रयोग करनेसे स्थावर, जंगम, कूर, कृत्रिम और योगजादि सर्व प्रकारके विष दूर होतेहैं । सर्पाक्षी और देवदालीको पत्र और मूल सहित लाकर अथवा सफेद अपराजिताकी जड़ मनुष्यके मूत्रमें पीसकर पानादिमें देनेसे सर्व प्रकारके विष दूर होजातेहैं । सांपके काटे हुए मनुष्यकी बहुत शीघ्र मंत्रोंके द्वारा चिकित्सा करे । “नधोना” इस मंत्रके द्वारा स्तम्भन करे । “यैक्षौ” इस मंत्रसे विषको बाँध देवे । वाँ धौ वाँ इस मंत्रसे एक आककी डालीको पढ़कर विषसे पीडित मनुष्यके सर्व अंगोंमें फैरे । “हौदखीहीं” इस मंत्रको पढ़कर विषातुर मनुष्यके शरीरको पूर्वोक्त आकके दंडसे मार्जन करे,

इससे विषस्तम्भन होताहै । यह गरुडमंत्रहै । “ओं नमो भगवति कूं फद”
इस मंगल विद्यामंत्रसे जलको पढ़कर विषातुर मनुष्यको पीनेके लिये देवे,
इससे सर्व प्रकारके विष दूर होते हैं ॥ २९-३२ ॥

अथ मृत्युपाशापहंवृतम् ।

अभयारोचनाकुष्ठमर्कपुष्पीतथोत्पलम् ।
नलवेतसमूलानिसरलंसुरसांवचाम् ॥ ३३ ॥
सपालिन्ध्रीसमंजिष्ठामनन्तासशतावरीम् ।
शृंगाटकंसमंगाचपद्मकेशरमित्यपि ॥ ३४ ॥
कल्कीकृत्यपचेत्सर्पिःपयोदत्त्वाचतुर्गुणम् ।
सम्यक्पक्वेऽवतीर्णेचशृतशीतेविनिक्षिपेत् ॥ ३५ ॥
सर्पिस्तुल्यंभिषक्क्षौद्रंकृतबंधंनिधापयेत् ।
नाशयत्यंजनाभ्यंगपानवस्तिषुभोजने ॥
सर्पकीटाखुलूताभिर्दष्टानांविपनुत्परम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—गायका घी २ दोसेर, गायका दूध ८ आठसेर, तथा कल्कके लिये
हरड, गोरोचन, कूठ, अर्कपुष्पी, उत्पल, नलकीजड, वेतकी जड, सरल
तुलसी, वच, करियावासाऊ, मजीठ, अनन्तमूल, शतावर, सिंघाडे, बरगह-
क्रान्ता और कमलकेशर ॥ आधसेर ले यथाविधिसे घृतको पकावे । जब पक-
कर शीतल होजाय, तब २ दोसेर सहतमिलादेवे । इसघृतको अंजन, अभ्यंग,
पान, वस्ति और भोजनमें व्यवहार करनेसे साँप, बीछ, मृसा और लूतादिका
विष दूरहोताहै ॥ ३३-३६ ॥

अथ तण्डलीयकघृतम् ।

तण्डुलीयकमूलेनगृहधूमेनचैकतः ।
क्षीरेणसघृतंसिद्धंसमस्तविषरोगनुत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—गायका घी २ दोसेर, दूध ८ आठसेर और चोलाईकी जड तथा घर-
का धुआँ ॥ आधसेर ले, यथाविधिसे घृतको पकाकर पान करनेसे सर्व प्रकारके
विषविकार दूरहोतेहैं ॥ ३७ ॥

अथ विषवज्रपातरसः ।

निशाचटकञ्चसजातिकोषंतुत्थंसमांशंकुरुदेवदाल्याः ।

रसेनपिष्टोविषवज्रपातोरसोभवेत्सर्वविषापहन्ता ॥ ३८ ॥

अर्थ—हलदी, सुहागा, जायफल और तृतिया इनको समानभाग लेकर देवदालीके रसमें खरल करे । यह विषवज्रपात रस सर्व प्रकारके विषविकारोंको हरैहै ॥ ३८ ॥

अथ भीमरुद्रोरसः ।

शिरिषपुष्पकुष्ठैलाशिलासव्योपरेणुका ।

यष्ट्यर्कहिंशुश्वेताग्रासिंधुवारकफज्जिका ॥ ३९ ॥

सूतराजस्यतोलैकंगंधकस्यतथैवच ।

अभ्रात्कर्षततोदेयंतोलैकंकान्तलौहतः ॥ ४० ॥

परोक्तेनौषधेनैवभावयेच्चपृथक्पृथक् ।

विशालाबृहतीब्राह्मीसौगन्धिकसदाडिमैः ॥ ४१ ॥

मर्कट्याश्चात्मगुप्तायाःस्वरसेनपृथक्कृततः ।

एकरक्तिप्रमाणेनवटिकांकारयेद्रिषक् ॥ ४२ ॥

एकावटीभक्षयित्वापिबेच्छीतजलंततः ।

कुक्कुरस्यशृगालस्यविषंहन्तिमुदुर्जयम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—शिरसके फूल, कूठ, इलायची, मैनशिल, सोंठ, पीपल, मिरच, रेणुका, मुलैठी, हींग, आककीजड, सफेदवच, सम्हालू और भारंगीकाचूर्ण, प्रत्येक १ एकतोला, लोहा, पारा, गंधक और अभ्रक प्रत्येक १ एकतोला, इन सब औषधियोंको एकत्र करके इन्द्रायण, बृहती, ब्राह्मी, सफेदकुम्भोदिनी, अनार, चिरचिटा और कौंछ, प्रत्येकके स्वरसमें एक एक बार भावना देकर एक एक-रक्तीकी गोली बनालेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय और ऊपरसे शीतल जल पीवे । यह कुत्ते और गीदडके विषको हरैहै ॥ ३९-४३ ॥

अथ शृगालादिदष्टचिकित्सा ।

नृणांमूत्रेणसंपिष्टोगोपित्तमधुसंयुतः ।

शृगालैरथमार्जारैर्मण्डूकैरथवाहिभिः ॥ ४४ ॥

कालेनापिहिदष्टस्यमृतसंजीवनोद्वयम् ।

मदितोमुनिभिःसर्वैःसूर्योदयमहागदः ॥ ४५ ॥

लशुनोषणवैदेहीवरागोघृतकल्कितम् ।

पाननस्यांजनालेपैःश्वदष्टस्यौषधंपरम् ॥ ४६ ॥

धूस्तूरकरसोविश्वक्षीराज्यगुडपानतः ।

शुनोविषंविनश्येतशशांककृतशेखरः ॥ ४७ ॥

अर्थ—गोरोचनको मनुष्यके मूत्रमें पीस सहत मिलाके सेवन करनेसे गीदड़, बिलाव, भेदक और सर्पादिका विष दूर होता है। लहशुन, कालीमिरच, पीपल, और त्रिफला इन औषधियोंको कल्कके साथ गायके घीको पकाकर पान, प्रलेप, नस्य और अंजनरूपसे प्रयोगकरनेसे कुत्तेका विष दूर होता है। धतूरेका रस, सांठ, दूध, वी और गुड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ ४५-४७ ॥

अथ श्वदष्टचिकित्सा ।

कनकोदुम्बरफलमिवतण्डुलजलपीतमपहरति ।

कनकदलद्रवघृतगुडघृतदग्धपलैकांशुनांगरलम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—कनकधतूरा और गुलरका फल, दोनोंको चावलोंके जलमें पीसकर, या कनकधतूरेके पत्तोंका रस घृत, गुड और दूध सबको मिलाकर सेवन करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ ४८ ॥

इति विषाधिकारः समाप्तः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

तत्रादौरसायनलक्षणंतत्सेवनविधिश्च ।

यज्जराव्याधिविध्वंसभेषजंतद्रसायनम् ।

पूर्वेवयसिमध्येवाशुद्धकायस्समाचरेत् ॥ १ ॥

नाविशुद्धशरीरस्ययुक्तोरसायनोविधिः ।

नभातिवाससिकृष्णेरंगयोगइवार्पितः ॥ २ ॥

अर्थ—जिसके द्वारा जरा और व्याधि नष्ट होयँ, उस औषधिको रसायन कहते हैं। यह रसायन प्रथम अवस्थामें अथवा मध्यम अवस्थामें विरेचनादिसे

शुद्ध होकर सेवन करे । जैसे काले वस्त्रको रँगनेसे रँग नहीं चढ़ता अर्थात् सुन्दरता नहीं आती, इसीप्रकार अविशुद्ध कोष्ठवाले मनुष्यको रसायनविधि कुछ भी फलदायक नहीं होती ॥ १ ॥ २ ॥

अथ मधुहरीतकी ।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् ।

वर्षादिष्वभयासेव्यारसायनगुणैषिणा ॥ ३ ॥

दुर्नामश्वासकासज्वरवमथुतृषापाण्डुतानेत्ररोगान् ।

हिक्काकुष्ठातिसारभ्रममदसदृशाऽजीर्णशूलप्रदोषान् ॥

तृष्णाशूलास्रपित्तज्वरविगतजरारोचकानाहवातान् ।

हन्यादेतानवश्यं मधुनिपरिगतापूतनाचाम्लपित्तम् ॥ ४ ॥

... अर्थ—वर्षाऋतुमें हरड़का चूर्ण सैधेनोनकेसाथ, शरदऋतुमें मिश्रीके साथ, हेमन्तऋतुमें सोंठके चूर्णकेसाथ, शीतऋतुमें पीपलके चूर्णकेसाथ, वसन्तऋतुमें सहतकेसाथ और ग्रीष्मऋतुमें गुड़केसाथ, सेवन करे, यह उत्तम रसायन है । हरड़को कुछ कूटकर बहुत दिनोंतक सहतमें रखकर सेवन करे तो बवासीर, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, तृषा, पाण्डुता, नेत्ररोग, हिचकी, कुष्ठ, अतीसार, भ्रम, मद, अजीर्ण, शूल, तृषा, रक्तपित्त, ज्वर, जरा, अरुचि, आनाह, वातरोग और अम्लपित्त यह सब अवश्य नष्ट होतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथायुषादिवृद्धियोगाः ।

हस्तिकर्णरजःखादेत्प्रातरुत्थायसर्पिषा ।

यथेष्टाहारचारोऽपिसहस्रायुर्भवेद्भ्रुवम् ॥ ५ ॥

गुडूच्यपामार्गविडंगशंखिनीवचाभयाशुण्ठीशतावरीसमा ६

घृतेनमासंस्वरसंपिबन्तिदिनोदिनेशृंगरजःसमुत्थम् ।

क्षीराशिनस्तेबलवर्णयुक्ताःसमाशतं प्रीक्षितमप्युवन्ति ॥ ७ ॥

पीताश्वगंधापयसार्द्धमाप्तंघृतेनतैलेनसुखान्नावा ।

कृशस्यपुष्टिं वपुषोऽभिधत्तेबालस्यसस्यस्ययथाम्बुवृष्टिः ८ ॥

अर्थ—हस्तिकर्ण (पलाश) के बीजोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन सेवन करे तो अत्यन्त आयुकी वृद्धि होतीहै । गिलोय, चिरचिटा, बायबिडंग, शंखाहूली, बच, हरड़, सोंठ और शतावरका चूर्ण घृतमें

मलाकर सेवन करनेसे सहस्र १००० श्लोकोंको धारण करनेवाली बुद्धि
जो जाती है । भांगरेका स्वरस एक महीनेतक सेवन करे और दुग्धान्न भोजन
करे तो बलकी वृद्धि हो, वर्ण सुन्दर होजाय और सौ १०० वर्षतक जीता
है । असगंधका चूर्ण दूध, घी, तेल या गरम जलके साथ १५ पंद्रह दिनतक
सेवन करे तो दुर्बल मनुष्य पुष्ट होजाता है ॥ ५-८ ॥

अथ केशकृष्णीकरणादियोगाः ।

धात्रीतिलान्भृंगरजोविमिश्रान्येभक्षयेयुर्मनुजाःक्रमेण ।

तेकृष्णकेशाविमलेन्द्रियाश्चनिर्व्याधयोव्योमचराभवेयुः ९ ॥

वृद्धदारस्यमूलानिश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ।

शतावर्यारसेनैवसप्तवारान्स्तुभावेत् ॥ १० ॥

अक्षमात्रन्तुतच्चूर्णसर्पिषासहयोजयेत् ।

उपयुञ्जीतदुग्धेनवलीपलितनाशनम् ॥ ११ ॥

अर्थ—आमला, तिल और भांगरा, इन तीनोंको एकत्र पीस चूर्ण कर
सेवन करे तो बाल काले, इन्द्रिय विमल और शरीर नीरोग होता है । विधारेक
चूर्णको शतावरके रसमें सात बार भावना देकर, घृतके साथ १ एक महीनेतक
सेवन करे तो मेधा और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होवे, तथा बली पलित रोगका
नाश होवे परंतु इस औषधिके ऊपरसे दूध अवश्य पीवे ॥ ९-११ ॥

अथामृतभल्लातकी ।

भल्लातकानांपवनोद्धृतानांवृन्ताच्च्युतानांचयदाढकंस्यात् ।

तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्यप्रक्षालयित्वाविसृजेत्प्रवाते ॥ १२ ॥

शुष्कंपुनस्तद्विदलीकृतञ्चततःपचेदप्सुचतुर्गुणासु ।

तत्पादशेषंपरिपूतशीतंक्षीरेणतुल्येनपुनःपचेत्तम् ॥ १३ ॥

तत्पादशेषंपुनरेवशीतघृतेनतुल्येनपुनःपचेत्तम् ।

तदर्द्धयाशर्करयाविमिश्रंततःखजेनोन्मथितंविधाय ॥ १४ ॥

तत्सप्तरात्रादुपजातवीर्यसुधामृतादप्यधिकत्वमेति ।

प्रातर्विशुद्धःकृतदेवकार्योमात्राश्चखादेत्सुशरीरयोग्याम् १५

अर्थ—पवनसे टूटे हुए, घृत रहित ऐसे भिलावे ८ आठ सेर लेकर ईंटोंके चूर्णसे विसकर धोलेवे, पश्चात् धूपमें सुखाकर उनके दो दो टुकड़े कगलेवे फिर चौगुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उताग्रक छानलेवे, पश्चात् ८ आठ सेर दूध मिलाकर पकावे, जब चौथाई भाग शेष रहे तब उतारलेवे, फिर २ दो सेर घृत मिलाकर पकावे, जब गाढ़ा होजाय तब १ एक सेर शर्करा मिलाके मथकर ७ सात दिनतक ग्वखा रहने देवे, इससे पूर्ण वीर्यवान् अमृतके समान होजाताहै । इसको प्रातःकाल देवा-दिको पूजकर निज शक्तिके अनुसार खावे, इससे नानाप्रकारके रोग दूर होतेहैं ॥ १२-१५ ॥

अथ क्रव्यादरसः ।

द्विपलंगंधकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् ।

पारदं पलमानेन मृतशुल्वायसीपुनः ॥

तेन मानेन संमिश्र्य पंचांगुलदले क्षिपेत् ॥ १६ ॥

ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्याय सपात्रके ।

चुल्ल्यानिवेश्य यत्नेन ज्वालयेन्मृदु नानलम् ।

पात्रमात्रं संसम्य कजम्भीरस्य प्रयोजयेत् ॥ १७ ॥

संचूर्ण्य पंचकोलोत्थैः कषायः साम्लवेतसः ।

भावनाः खलु दातव्याः पंचाशत्प्रमितास्तथा ॥ १८ ॥

भृष्टं कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ।

तदद्धं कृष्णलवणं सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ १९ ॥

सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा ।

ततः संशोष्य कुप्यास्तु जठरे च विनिक्षिपेत् ॥ २० ॥

अर्थ—तपायाहुआ शुद्ध गंधक ८ आठ तोले, मृतपारा ४ चार तोले, मृतताँबा ४ चार तोले और शुद्ध लोहा ४ तोले, सबको एकत्रकर अगंडके पत्तेपै डालदेवे, शीतल होनेपर चूर्ण करके लोहेके पात्रमें स्थापन करे, पश्चात् जम्भीरी नीबूका रस मिलाके चूल्हेंपै चढाके मंद मंद अग्निसे पकावे, फिर चूर्ण करके अम्लवेत और पंचकोलके काथमें ५० बार भावनादेवे, फिर बराबर

भुनाहुआ सुहागा और उसका आधा काला नोन, तथा सबकी बराबर काली-
मिरचाँका चूर्ण मिलाकर चनेके खारके जलकी ७ भावना देवे, पश्चात् सुखा-
कर काँचकी कुप्पीमें भरके रख देवे ॥ १६-२० ॥

अथाभ्रकादिरसः ।

अभ्रकंमारितयेनपारदञ्चवशीकृतम् ।

द्वारमृद्घटितंतेनयमस्यधनदस्यच ॥ २१ ॥

अभ्रचूर्णपलशतंगृहीत्वालोहभाजने ।

पुनर्नवारसेनैवभाव्यमेकत्रचैकधा ॥ २२ ॥

त्रिफलायारसैःपंचनिम्बस्यद्वादशैवतु ।

अथनिश्चन्द्रिकायावत्तावदेयःपुटःक्रमात् ॥ २३ ॥

नियोज्यगंधकंचैवपादांशेनतथारसम् ।

विधिनाजारितंलोहंसतुल्यंप्रदापयेत् ॥ २४ ॥

रसेन्द्रमातृकातोयैर्भाव्यंतस्माच्चमर्दयेत् ।

घृतेनमधुनाचापिपश्चादेतच्चभक्षयेत् ॥ २५ ॥

रोगीवात्रिफलापानेरोगीवाक्षीरपानतः ।

वातहापित्तहाचैवकफहाकान्तिवर्द्धनः ॥ २६ ॥

अर्थ—जिसने अभ्रकको मारलिया और पाँचको वशमें करलिया, उम
मनुष्यने यमराज और कुबेरका द्वार उखाडदिया । सो १०० पल अभ्रक-
काचूर्ण लोहेके पात्रमें रखकर पुनर्नवके रसकी एकभावना देवे, फिर त्रिफ-
लेके रसकी ५ पाँच भावनादेवे और नीमके रसकी १२ बारह भावना देवे,
पश्चात् जबतक निश्चन्द्र न होवे तबतक पुट देवे, फिर चौथाई भाग गंधक,
चौथाई भाग पारा, विधिपूर्वक जागित किया लोहा चौथाई भाग मिलकर
रसेन्द्रमातृकारसमें भावना देवे, पश्चात् घृत और सहतके साथ इसको भक्षण-
करे, ऊपरसे त्रिफलेका काथ या दुग्ध पान करे । यह औषधि सर्वप्रकारके वात-
रोग, सर्वप्रकारके पित्तरोग और सर्व प्रकारके कफरोगोंको दूर करे तथा
कान्तिजनक है ॥ २१-२६ ॥

अथ भक्तपावकगुटिका ।

माक्षिकंरसगंधौचहरितालमनःशिला ।

गगनकान्तलौहंचसर्वमेषांसमांशकम् ॥ २७ ॥

त्रिवृद्धन्तीवारिवाहंचित्रकंचमहौषधम् ।

पिप्पलीमरिचंपथ्यायमानीकृष्णजीरकम् ॥ २८ ॥

रामठंकटुकापालीसैन्धवंसाजमोदकम् ।

जातीफलंयवक्षारंसमभागंविचूर्णयेत् ॥ २९ ॥

आर्द्रकस्यरसेनैवनिर्गुण्ड्याःस्वरसेनच ।

सूर्यावर्तारसेनैवज्योतिष्मत्यारसेनतु ॥ ३० ॥

आतपेभावयेद्वैद्यःखलुपात्रेचनिर्मले ।

पेषयित्वावटींकुर्याद्भुजाफलसमप्रभाम् ॥

भक्षयेच्छाणमानेनलवंगस्यचयोगतः ॥ ३१ ॥

अर्थ—पारा, हीरा, सोना, चाँदी, ताँबा, तीक्ष्णलोहा, अभ्रक, मोती, गंधक, शंख, मूँगा, हरिताल और मैन्शिल, यह सब शुद्ध किये हुए ले चूर्णकर लाल चीतेकी जड़के काथमें और आकके दूधमें ३ तीनदिन भावना देवे फिर सम्हालूके पत्तोंके रसमें जमीकन्दके रसमें और थूहरके दूधमें ३ तीन दिन भावना देवे, पश्चात् इस औषधिको पीली कौडीमें भरलेवे और सुहागेको आकके दूधमें पीसकर कौडीके मुखको बंद करदेवे, फिर उस कौडीको भाँडेमें रख तिसके मुखको बंद करके पकावे, स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण करले, पश्चात् इसचूर्णमें बराबर पारेकौ-भस्म और पारेसे चौथाईभाग वैक्रान्तकी भस्म मिलादेवे, इसको सैजिनेकी जड़के रसमें सातबार भावना देवे और लालचीतेकी जड़के रसमें २ दोबार भावना देवे, यह त्रैलोक्यचिंतामणिरस—सर्वरोग नाशक है ॥ २७—३१ ॥

अथ पञ्चामृतोरसः ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामिस्वच्छंमदुर्लभम् ।

पञ्चामृतमिदंख्यातंसर्वरोगहरंपरम् ॥ ३२ ॥

शास्त्रेसौख्यप्रदंनृणांभुविरोगनिवारणम् ॥

पथ्यापथ्यविनिर्युक्तंविष्णुनापरिकीर्तितम् ॥ ३३ ॥

सूतकान्तरविषयोमशुद्धानांभस्मकंशुभम् ॥
 मारितंमाक्षिकंचैवप्रत्येकंचपलंपलम् ॥ ३४ ॥
 गंधंपंचपलंदत्त्वाश्लक्ष्णचूर्णानिकारयेत् ॥
 आर्द्रकस्यरसंदत्त्वात्रिदिनंमर्दयेत्ततः ॥ ३५ ॥
 काथेचदशमूलस्यवह्निमूलरसेनवा ॥
 युत्तयातुक्कथितेनापिमर्दयेच्चदिनत्रयम् ॥ ३६ ॥
 शोषयित्वाततोघर्मेचूर्णयेत्तदनन्तरम् ॥
 त्रिवर्गत्रित्रयाम्भोदतिन्दुतुम्बुरुवेणुकम् ॥ ३७ ॥
 भार्द्गीभूनिम्बतित्ताचजातीफलकशेरुकम् ॥
 पलार्द्धमानेसर्वाणिप्रत्येकैकंभवन्तिहि ॥ ३८ ॥
 निधायश्लक्ष्णचूर्णानिरसेनसहमेलयेत् ॥
 काकमाच्याश्चनिर्गुज्यावर्षाभूमुंडिकातथा ॥ ३९ ॥
 कषायेणार्द्रकाम्भोभिर्भावनाःपीरकल्पयेत् ॥
 कषायेणगुडूच्याश्चशिशुमूलरसेनवा ॥ ४० ॥

अर्थ—अब इसके आगे परम दुर्बल पंचानृत रसको कहतेहैं, यह सर्वरोग नाशक है, सर्वसुखदायकहै और संसारके रोगोंको दूरकरहै, इससे पथ्यापथ्य विधिप्रयोग करनी चाहिये, यह विष्णुभगवान् ने कहाहै । पारा, कान्तलोहा, ताँबा, अभ्रक और सोनामाखी प्रत्येककी भस्म चारचार तोले और शुद्ध-गंधक बीस बीस तोले लेकर सबको एकत्र पीसके बारीक चूर्ण करलेवे इस चूर्णको अदरखके रसमें तीनदिन खरलकरे, फिर दशमूलके काथमें अथवा लाल चीतेके रसमें ३ दिन खरलकर धूपमें सुखालेवे, पश्चात् हरड, बहेडा, आमला, साँठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, चीता, नागरमोथा, तेंदू, तुम्बुरु, रेणुका, भारंगी, चिरायता, कुटकी, जायफल और कशेरू प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिलादेवे, पश्चात् इसको मकोय, सम्हालू, पुनर्नवा और गोरखसु-ण्डीके रसमें, दशमूलके काथमें, धनियेंके काथमें, साँठके काथमें, अदरखके रसमें, गिलोयके काथमें, सँजिनेकी जडके रसमें, तथा फिर अदरखके रस में एक एक बार भावनादेकर शरबेरकी समान गोली बनालेवे, प्रतिदिन

एक गोली बीस २० कालीमिरचोंके साथ खावे । और इसपै तक्रके साथ भोजन करे ॥ ३२-४० ॥

अथ शुद्धपंचामृतरसः ।

भस्मीभूतसुवर्णतारदिनकृत्कृष्णाभ्रसूतैः क्रमात्
गंधानां खलु भागवृद्धिरपितत्कृत्वा शुभांकजलीम् ।
निर्गुण्डीदशमूलवह्निरजनीव्योषार्द्रकैर्भावितै-
गौलीकृत्य विशोष्य तन्निगदितः पंचामृतः स्याद्रसः ४१ ॥

अर्थ-सोनेकी भस्म, चांदीकी भस्म, तौबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, पारेकी भस्म और शुद्ध गंधक, यह सब क्रमसे एकसे एक अधिक लेकर कजली बनावे, पश्चात् इस कजलीको सम्हालू, दशमूल, चीता, हलदी, त्रिकुटा और अदरकके रसकी भावना देकर गोली बना धूपमें सुखा लेवे, यहरस सर्व प्रकारके रोगोंको हरैहै ॥ ४१ ॥

अथ धातुबद्धोरसः ।

गंधकेन शिलावापिसीसकोमाक्षिकेण वा ।
अभ्रोलौहे-
द्रवत्समभागेन पारदः ॥ ४२ ॥
सुभृष्टं कणेनापिरसपादेन संयुतः ।
रसेन पारिजातस्य कारवेल्यारसेन वा ॥ ४३ ॥
द्रवन्त्या तण्डुलीयेन ह्येकाहं मर्दयेद्रसम् ।
अर्धसंचूर्ण्य मण्डूरं दिनान्तं परिमर्दयेत् ॥ ४४ ॥
तज्जलं भाजने क्षिप्त्वा सूर्यतापे निधापयेत् ।
जलादुत्सृज्य मृत्स्नाञ्च पथ्यया सह मर्दयेत् ॥ ४५ ॥
पूर्वसूतस्य तं कल्कं प्रलिम्पेन्मृत्स्नया तथा ।
अंगुलोत्सेधमानेन ततः संवेष्टयन्मयेः ॥ ४६ ॥
विशोष्य तं धमेद्र-
तस्माद्भृत्यतं भित्त्वा शीतलाङ्गेन-
पेकाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-गंधक, मैनाशिल, सीसा, सोनामाखी, अभ्रक और लोहा, प्रत्येक एक एक भाग, पारा छे भाग धुना हुवा सुहागा १॥ डेढभाग, इन सबको एकत्र पीस पारिजातके रसमें कोलेके रसमें मूषाकर्णीके रसमें और चौलाईके रसमें एक एक बार खरल करे । पश्चात् पारिजात (फरहद) करेला, मूषाकर्णी और चौलाईके रसमें एक दिन मण्डूरको खरल करे, फिर मंडूरको सोरठकी मट्टीमें मिलाकर मूषा बना लेवे, पश्चात् पूर्वोक्त गंधकादि खरल कीहुई औषधि इस मूषामें स्थापनकर एक अंगुल ऊँचा मृत्तिकाका लेपकर मृदु अग्निसे पकावे, स्वयं शीतल होजाय तौ चूर्ण करले । इसको त्रिकुटा और चीतादिके चूर्णके साथ खावे ॥ ४२-४७ ॥

अथ सुरसुन्दरी गुटिका ।

अभ्रकं माशिकं वज्रं कान्तं हेमसमं समम् ।

सर्वाणिसमभागानि सूतयुक्तानि कारयेत् ॥ ४८ ॥

गोलकंच ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा ।

ततस्तं पुटपाकेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥

अर्थ-अभ्रक, सोनामाखी, हीरा, कान्तलोहा और सोना, सब समान भाग लेकर समान भाग पारेके साथ समुद्रफलके फलमें खरलकर गोला बनालेवे, पश्चात् इस गोलेको मूषामें रख मूषाको मृत्तिकासे लेपकर मृदु अग्निसे पकावे, यह औषधि सर्व प्रकारके विषरोगोंको दूर करे है ॥ ४८॥४९ ॥

अथ सर्वतोभद्ररसः ।

सूतं कान्तं ह्युपलग्नं ताप्यकं शुद्धतालं

राजावर्त्तं सुरभिं मधुकं मानसीचेति तुल्यम् ।

सर्वेस्तुल्यं दृषदिदं लितं भृंगतोयेन सर्वं

गोलीभूतं भवति विमलः सर्वभद्राभिधानः ॥ ५० ॥

अर्थ-पारा, कान्तलोहा, पन्थर, अभ्रक, सोनामाखी, हरिताल, राजावर्त्त, मूगुल, मुलेठी और दुर्गपुष्पी, यह सब समान भाग लेकर सबकी समान भांगरेके रसमें खरलकर गोली बनालेवे । यह औषधि गुल्मादि रोगोंको दूर करे है ॥ ५० ॥

अथ गुत्तं जावनीरटिका ।

पारदंसारलौहश्चकान्तलौहसमन्वितम् ।

माक्षिकस्यापिसत्त्वश्चसत्त्वंगगनसंभवम् ॥ ५१ ॥

तानिसमभागानिमर्दयेच्च प्रयत्नतः ।

निचुलफलतोयेनगोलकंकारयेत्ततः ॥ ५२ ॥

नवांगुलप्रमाणेनमूषागर्भेऽथपिण्डिका ।

निर्गुण्डीकाकमाचीचगोजिह्वादुग्धिकातथा ॥ ५३ ॥

गृहकन्यामधुकश्चैसैन्धवंपिण्डिकान्ततः ।

स्वेदयेत्पुटयोगेनसापिण्डीदृढतां व्रजेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—पारा, सारलोह, कान्तलोह, सोनामाखीका सत्त्व और अभ्रकका सत्त्व, यह सब समान भाग लेकर जलबेतके रसमें खरलकर गोला बनालेवे, पश्चात् इस गोलेको नौ अंगुली मूषाके गर्भमें स्थापन करे, फिर सम्हालू मकोय, गोजिह्वा, दूधी, धीकुवार, मुलेठी और सेंधानोन यह सब एकत्र पीसकर पूर्वोक्त गोलेमें मिलादेवे, मंद अग्निसे पुटपाक करे, इस औषधिको मुखमें धारण करनेसे सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथोदयभास्कररसः ।

तोलैकं शुद्धसूतस्य गंधकं तच्चतुर्गुणम् ।

कृत्वा कज्जलिकामादौ मर्दयेत्तदनंतरम् ॥ ५५ ॥

पक्वं निचुलतोयेन यथाकल्कोपजायते ।

ततो द्वयस्य ताम्रस्य कृत्वा पात्रान्यतः परम् ॥ ५६ ॥

कज्जल्याः सह पत्राणि पक्वं निचुलवारिणा ।

प्लावयित्वा तु बहुधा स्थापयेदातपेखरे ॥ ५७ ॥

तत्क्षिप्वा चान्धमूषायां पुटपाकं समाचरेत् ।

चुल्लिकामुद्धृतं मूषां कृत्वा त्रीणि प्रदापयेत् ॥ ५८ ॥

तानि कुकुटाख्यानि सूतसंस्कारसिद्धये ।

सिद्धसूतं समादाय गुंजामानं प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥

चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थेर्नागपल्थादलेनवा ।

उपचारन्तुनिर्दिष्टंयथाप्राणेश्वरेरसे ॥ ६० ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ एकतोला, शुद्धगंधक ४ चारतोले, दोनोकी कजलीकर खरलकरे, पश्चात् पके समुद्रफलोंके रसमें इसका कल्क बना ले, फिर दुगुना तांबा लेकर पत्र बना ले, उन पत्रोंको कजलीके साथ बहुतबार पके समुद्रफलोंके रसमें भिजोकर प्रचंड धूपमें धरदेवे, फिर अन्धमृषामें रख पुटपाक करे, पश्चात् चूल्हेसे उतारकर कुक्कुटाख्य तीन पुट देवे, प्रतिदिन १ एक रत्तीभर चीते, अदरख, सैधानोन, या पानके साथ खावे । उपचार प्राणेश्वर रसकी समान है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अथ वारिसागररसः ।

शुद्धाभ्रकस्यगंधस्यरसस्यचततःपरम् ।

तोलकंकल्पयित्वातुमुगंधस्यचसंख्यया ॥ ६१ ॥

निर्गुण्डीकाकमाचीचधुस्तृगार्द्रकशिशुभिः ।

गिरिकर्णजयन्तोचभृगंचतिलपर्णिका ॥ ६२ ॥

दण्डोत्पलीतथाजातीकन्दश्चकेशराजकम् ।

चित्रकश्चमहाराष्ट्रंतथान्यापिप्पलीजटा ॥ ६३ ॥

एतासामौषधानाञ्चव्योमगंधंतथापरम् ।

रसैःप्रमर्दयेत्खल्वेकमेणानेनयत्रतः ॥ ६४ ॥

ततोनिरुन्धयेत्सम्यक्कृत्वासंपुटमध्यगम् ।

आरोप्यसंपुटंचुल्ल्यांकाष्ठाग्निज्वालयेदधः ॥ ६५ ॥

याममात्रंततोध्मात्वास्वांगशीतलनांगतम् ।

संपुटन्तंसमाकर्षेत्सिद्धसूतंप्रयत्रतः ॥ ६६ ॥

सिद्धसूतात्प्रदातव्याश्चित्रकेणसमन्विताः ।

तिस्रोगुंजाश्चतस्रोवासन्निपातेऽतिदारुणे ॥ ६७ ॥

त्र्यृषणंजीरकेद्वेचयमानीबचय सह ।

आर्द्रकश्चतथापंचलघ्णानेप्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

क्षारत्रयंतथासर्वसमभागंप्रकल्पयत् ।

तत्सर्वमेकतःकृत्वारसमेवविधिःपरम् ॥ ६९ ॥

अर्थ—अभ्रक, गंधक और पारा प्रत्येक १ एक एक तोला, लेकर सम्हाल, मकोय, धतूरा, अदरख, सैजिना, कोयल, जयंती, भांगरा, तिलवन, सहदेवी, जातीकन्द, कुकुरभांगरा, चीता, जल पीपल और पीपरामूल, प्रत्येकके रसमें क्रमसे एक एक बार खरल करे, पश्चात् इसको सम्पुटमें रख, सम्पुटको चूल्हेपै स्थापनकर काठकी अग्निसे एक प्रहरतक पकावे, जब स्वांगशीतल होजाय तब सिद्ध पारेको निकाल लेवे, प्रतिदिन १ एकरत्नी खाय, पश्चात् लालचीता, त्रिकुटा, जीरा, अजवायन, वच, अदरख पंचलवण, जवाखार सजी और मुहगेकी खीलोंका चूर्ण सेवन करे, यह बारिसागररस नानाप्रकारके रोगोंको हरे है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अथ श्वेतादिलौहम् ।

श्वेतापुनर्नवादन्तीवाजिगंधात्रिकत्रयम् ।

दशमूलीबलायुक्तैरेभिर्लोहःप्रसाधितः ॥ ७० ॥

निहन्तिनिहतंकाश्चर्मपिभृंगाविटैरपि ।

नास्त्यनेनसमोलोहःसर्वरोगान्तकारकः ॥ ७१ ॥

त्रिफलात्रिमदत्रिकटुमिलितसमं लौहम् ।

अर्थ—सफेदकोयल, पुनर्नवा, दन्ती, असगंध, त्रिफला, त्रिकुटा, त्रिजातक, बायबिडंग, चीता, नागरमोथा, दशमूल, खिरैटी, भांगरा और विडनोन, यह सब एक भाग और सबकी बराबर लोहा लेवे । इस औषधिको यथानुपानके साथ सेवन करे तो—सर्व प्रकारके रोग दूर होंवें ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ कालनियमेनोदकपानादिवर्णनम् ।

कासश्वासातिसारज्वरापिटककटीकोठकुष्ठप्रकारान् ।

मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगलशिरःकर्णशूलाक्षिरोगान् ।

येचान्येवातपित्तक्षयज्वकफकृताव्याधयःसन्तिजन्तो-

स्तांस्तानभ्यासयोगादपनयतिपयःपीतमन्तेनिशायाः ७२

विगतघननिशीथेप्रातरुत्थायनित्यं
पिबतिखलुनरोयोनासरन्नेणवारि ।

सभवतिमतिपूर्णश्रक्षुषाताक्षर्यतुल्यो
वलिपलितविहीनःसर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ७३ ॥

प्रातःपानीयपानेमुनिभिरभिहितंद्रव्यमेतच्चनाद्यात्
मांसंक्षीरंचशाकंसकलविदलकंपिष्टकंचिङ्गटश्च ।

बिल्वंवेत्राग्रनिम्बंबहुपवनकरंनित्यजातंविदाहि
उष्णान्नंतैलभृष्टभ्रमकुपितवपुःस्वेदनलंघनंच ॥ ७४ ॥

त्यज्यादभ्यंगमुष्णंबहुपवनवरंतीव्रमादित्यतापं
अग्नेःसेवाविनीतासुरभिजलयुतंलंघनंशीघ्रयानम् ७५ ॥

भक्तंवारियुतंसुपथ्यविहितंतक्रंप्रशस्तंसदा
स्नानंचापिनिरंतरंचशुभदंनिद्राप्रशस्तमदिना ।

कुर्याद्यानिरसायनेचसततंतन्नारिकेलोदकं

युक्तंदग्धझषेणपानकरणेझोलञ्चमत्स्यस्यच ॥ ७६ ॥

अथ—जो मनुष्य नित्य रात्रिके अंतमें विधिपूर्वक जलपान करतेहैं उनके खाँसी, श्वास, अतीसार, ज्वर, पिटक, कटिरोग, कोठरोग, कुष्ठरोग, मूत्राघात, उदररोग, ववासीर, सूजन, गलरोग, शिरोरोग, कर्णरोग, शूलरोग, नेत्ररोग, वात, पित्त, क्षय और कफग्रे, उत्पन्न हुए यह सबरोग नष्ट होजातेहैं । जो मनुष्य भेद्यहित रात्रिके अंतमें अर्थात् सूर्योदयसे पहिले नित्य उठकर नासिकाके द्वारा जल पीतेहैं,—वह मतिपूर्ण, दृष्टिमें गरुडकीसमान, वलिपलितहीन और सर्वरोगोंसे छूट जातेहैं । नित्य प्रातःकाल जलपीनेवाले मनुष्य मांस, दूध, शाक, सर्वप्रकारके विदल अन्न, विष्टक, चिंगट, बेल, बेतका अग्रभाग, नीम, वातको करनेवाले पदार्थ, दाहजनक पदार्थ, उष्ण अन्न, तेलमें भुनेहुए पदार्थ, परिश्रम, स्वेद, लंघन, तीक्ष्णद्रव्य, अग्निसेवन, शीघ्रगमन आदि त्यागदेवें । और जल-युक्त भात, तक्र, स्नान, दिनमें सोना, गरुडल्लङ्घन जल, भुनीमछली, और मछलियोंका झोल सदैव सेवन करे ॥ ७२-७६ ॥

अथ त्रिफलारसायनम् ।

त्रिफलायाः पलशतंचूर्णभृङ्गरसाम्बुना ।

भावयेत्सप्तवारांस्तुछायाशुष्कन्तुकारयेत् ॥ ७७ ॥

पादंगंधकचूर्णस्यतदर्द्धपारदंक्षिपेत् ।

लिह्यान्मधुघृताभ्यांचमात्रयाप्रत्यहंपुमान् ॥ ७८ ॥

जीर्णभोज्येह्यनाहारेगुणानेतानवाप्नुयात् ॥

प्रसन्नदृष्टिरव्याधिर्जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-१०० सौ पल त्रिफलेके चूर्णको भांगरेके रसमें ७ सातवार भावना देकर छायामें सुखादेवे, पश्चात् इसमें २५ पचीस पल गंधक और १२॥ साढे-बारहपल पारा मिलादेवे । इसको प्रतिदिन सहत घृतमें मिलाकर सेवन करे, भोजनके जीर्ण होनेमें अथवा भोजनसे पहिले खाय । यह दृष्टिको प्रसन्न करैहै, सम्पूर्ण रोगोंको हरैहै, और ३०० तीनसौ वर्षकी आयु करैहै ॥ ७७-७९ ॥

अथ सर्वतोभद्रलौहम् ।

विडंगसारोमेधाख्योरक्तवह्निरुष्करः ।

हस्तिकर्णःसितार्कश्चतथाश्वेतपुनर्नवा ॥ ८० ॥

वागुजीमुण्डिकाभृंगराजकोवृद्धदारकः ।

गुडूच्यतिबलारास्नातालमूलीशतावरी ॥ ८१ ॥

पिण्डारश्चोच्चटगजाःसमूलःकेशराजकः ।

पारदंचपृथक्कर्षलौहस्यपलपंचकम् ॥ ८२ ॥

पलानिपंचचाभ्रस्यपलमेकन्तुगुग्गुलोः ।

द्विपलंगन्धकात्प्रोक्तंषट्कर्षाणिमनःशिला ॥ ८३ ॥

स्वर्णमाक्षिककर्षेकंपलंसाद्धाशिलाजतोः ।

त्रिफलात्रिकटूनाञ्चप्रत्येकंकार्षिकद्वयम् ॥ ८४ ॥

ह्वाण्येतानिसंचूर्ण्यघृतेनमधुनासह ।

घृतभाण्डेसमालोड्यभक्षयेत्क्रमय गतः ॥

संज्ञयासर्वतोभद्रानिरत्ययमुदाहृतम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—बिडंगसार, गारसारा, लालचीता, भिलावा, स्तिकण (पलाश) सफेद आक, सफेद पुनर्नवा, बापची, गोरखमुण्डी, भांगरा, विधारा, गिलोय, कंधी, रास्ना, मुसली, शतावर, पिण्डार, निर्विषीतृण, नागकेशर, मूली, कुकुरभांगरा, और पारा, प्रत्येक एकएक कर्ष, लोहा ५ पाँचपल, अभ्रक १ एकपल, गूगल १ एकपल, गंधक २ दोपल, मैन्शिल ६ छै कर्ष, सोनामाखी १ एककर्ष, शिलाजीत ६ तोले त्रिफला २ कर्ष और त्रिकुटा २ कर्ष सबको एकत्रपीस बारीक चूर्णकर घृत और सहतमें मिलाके घीके बासनमें भरके रखदेवे, इसको सेवनकरनेसे अम्लपित्तादि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ८०—८५ ॥

अथ रसाभ्रगुटिका ।

सहदेवाबलाचैवसूर्यावर्त्तोऽथमारिपः ।
अपामार्गोऽमृताचेतिसम्यक्सम्पादयेद्विषक् ॥ ८६ ॥
एषापलानिचत्वारिप्रत्येकंकुट्टयेत्ततः ।
अत ऊर्द्ध्वतद्वत्त्वामण्डूरंयत्पुरातनम् ॥ ८७ ॥
गोमूत्रेणपचेत्तावद्यावद्गोमूत्रशोषणम् ।
तस्मादुद्धृत्यतच्चूर्णंकुर्यात्पलान्त्रयम् ॥ ८८ ॥
त्रिकटुत्रिफलामुस्तगुडूचीचित्रकंत्रिवृत् ।
दन्तीविडंगमैकैककर्षमेकन्तुचूर्णयेत् ॥ ८९ ॥
एकपत्रीकृतस्याथवज्रकाभ्रस्ययत्पलम् ।
वाय्यत्राम्भस्त्रिरात्रस्थंवारिपर्णरिसाप्लुतम् ॥ ९० ॥
आतपेशोषयेत्तीक्ष्णेदिनमेकं सुरक्षया ।
शूरणस्यरसैःपिपातत्रटकणकस्यच ॥ ९१ ॥
दत्त्वाष्टौमासकांस्तत्रपुटपाकेनपाचयेत् ।
मृन्मयेसुहृदेपात्रेमृदुनागोमया भेना ॥ ९२ ॥
रसाद्वादशमासाश्चकर्षगन्धकतःपृथक् ।
रसेमण्डूपाण्याश्चमूर्च्छितौकज्जलीकृतौ ॥ ९३ ॥

घृतस्यमधुनश्चापेष्टं कपलचतुष्टयम् ।
 तत्सर्वमेकतः कृत्वास्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ९४ ॥
 ततोऽष्टौ मासकान्वादेदशवाद्वादशैव च ।
 कर्षवापितथा कुर्याद्बुद्धादोषबलाबलम् ॥ ९५ ॥
 दुग्धं चापि पिबेद्दोगीव ह्नौ मंदं भवेत्ततः ।
 तप्तोदकानुपानं वा सेवेच्च ग्रहणीगदे ॥
 अजाक्षीरानुपानञ्च श्वासकासे प्रयोजयेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—सहदेई, खिरैटी, हुलहुल मरसा, चिरचिटा और गिलोय, प्रत्येक चार चार पल ले कूटकर आधेको एक हाँडीमें रखदेवे, उसके ऊपर पुराना मण्डूर रस रखकर फिर ऊपरसे पूर्वोक्त आधा कुटाहुवा द्रव्य रखदेवे, फिर गोमूत्र डालकर पकावे, जब गोमूत्र जलकर सूख जाय तब निकालकर ४ चार पल चूर्ण करले फिर इस चूर्णमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, गिलोय, चीता, निसोथ, दन्ती और बायबिडंग, प्रत्येकका चूर्ण एक एक कर्ष मिला लेवे, पश्चात् एकपत्री किया हुआ वज्राभ्रक १ एक पल लेकर जलकुम्भीके रसमें तीनदिन भिजोकर एक दिन धूपमें सुखावे, फिर जमीकन्दके रसमें पीस इसमें ८ आठमासे सुहागा मिला हट्ट मट्टीके पात्रमें मंद मंद उपलोंकी अग्निसे पुटपाक करे पश्चात् इसका चूर्णकर पूर्वोक्त चूर्णके साथ मण्डूकपर्णीके रसमें मूर्च्छित कीहुई कज्जल चार ४ तोले, घृत ४ चारपल, और सहत ४ चारपल लेकर सबको मिलाकर एक घीके बासनमें रखदेवे, इसको दोष और बलानुसार सेवन करे । अनुपात मंदाग्निरोगमें दुग्ध, संग्रहणी रोगमें गरम जल, श्वास और खाँसीमें बकरीक दूध, यह अर्शादि रोगोंको दूर करैहै ॥ ८६-९६ ॥

अथ सर्वेश्वरोरसः ।

चित्रकंमाणकञ्चैव शूरणं घण्टकर्णकम् ।
 ग्रन्थिकं त्रिफलं चोषं च दूफलं सपुनर्नवम् ॥ ९७ ॥
 दण्डोत्पलं वृश्चिकाली रुदन्ती काकमाचिका ।
 सूर्यावर्तं त्रिवृद्दन्ती क्रिमिघ्नं कुष्ठमुस्तकम् ॥ ९८ ॥
 शतपुष्पावचाचव्यं पत्रं रास्ना च तोलकम् ।

माक्षिकाणाञ्चताम्राणांपलंगंधकसूतयोः ॥ ९९ ॥

अभ्रकंद्विपलंग्राह्यंपात्रेकृत्वादृढोपमे ।

सर्वमेकत्रसमर्थद्विगुणंमृतमायसम् ॥

चूर्णसर्वेश्वरोनामसर्वामयनिबर्हणम् ॥ १०० ॥

अर्थ—चीता, मानकन्द, जमीकन्द, घण्टाकर्ण, पीपलामूल हरड़ बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, कायफल, पुनर्नवा, दण्डोत्पल, बिछारी, रुदन्ती, काकमाची, बायबिडंग, दन्तीकी जड़, सूर्यावर्त, कूठ, नागरमोथा, निसोत, सोया, बच, चव्य, तेजपात और रास्ना, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोले, सोनामाखी, ताँवा, पारा, और गंधक प्रत्येकका चूर्ण ४ चार चार तोले, अभ्रकका चूर्ण आठ ८ तोले, और दृगुना लोहेका चूर्ण, सबको एकत्र कर उत्तम दृढपात्रमें मर्दन करे । यह सर्वेश्वर नामवाला चूर्ण सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करैहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ लक्ष्मीविलासोरसः ।

पलंकृष्णाभ्रचूर्णस्यतदद्धेरसगंधके ।

कर्पूरस्यतदद्धन्तुजातीकोषफलेतथा ॥ १०१ ॥

वृद्धदारकबीजञ्चबीजमुन्मत्तकस्यच ।

त्रैलोक्यविजयाबीजंविदारीकन्दमेवच ॥ १०२ ॥

नारायणीतथानागबलाचातिबलातथा ।

बीजंगोक्षुरकस्यापिऐज्जलंबीजमेवच ॥ १०३ ॥

एतेषांकार्पिकंचूर्णंगृहीत्वावारिणापुनः ।

निष्पिष्यवटिकाकार्यात्रिगुंजाफलमानतः ॥ १०४ ॥

निहन्तिसन्निपातोत्थान्गदान्वोरान्सुदारुणान् ।

वातोत्थान्पौत्तिकांश्चापिनास्त्यत्रनियमःकचित् १०५ ॥

अनुपान्तमिदंभोक्तंमांसं पिष्टंपयोदधि ।

वारितकसुधासीधुसेवनात्कामरूपधृक् ॥ १०६ ॥

अर्थ—कृष्णाभ्रक चार ४ तोले, कजली ४ चारतोले, कपूर २ दोतोले जायफल, जावित्रीकाचूर्ण २ दोतोले, और विद्यारेकेबीज, धतूरेके बीज,

सप्तमेवाजिवेगःस्थाष्टमेमंत्रसाधकः ।

सर्वज्ञोनवमेमासि-शमेपवनोऽमः ॥ ११९ ॥

स्त्रीजिदेकादशेमासेनाग्निनाद्वादशेदहेत् ॥

वलीपलितनिर्मुक्तोयुवकादधिकोभवेत् ॥ १२० ॥

एवंसंवत्सरंयावद्यःकरोतिपुमानिह ।

वत्सराणांसहस्राणिजीवेन्नास्त्यत्रसंशयः ॥ १२१ ॥

अर्थ—हरड़, बहेड़ा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, विधारा और वच, प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, सुगंधवाला, चीतेकीजड़, दालचीनी, इलायची और नागकेशर, प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले और सबसे दुगुना गुड़लेवे, सबको मिलाकर ३६० तीनसौ साठ लड़्डू बनालेवे । वमन विरेचनादिसे शुद्ध होकर शुभसमय शुभदिनमें रोज रोज एक लड़्डू खाय और ऊपरसे जल पीवे । इस औषधिपै इच्छानुसार भोजन पान करे । इसको सेवनकरनेसे पहिले महीनेमें सर्वप्रकारके रोग दूर होतेहैं । दूसरे महीनेमें पुष्टि बढ़तीहै । तीसरे महीनेमें सुवर्णकी समान शरीरकी कान्ति होतीहै । चौथे महीनेमें शुक्रकी अधिकता होतीहै । पाँचवें महीनेमें महाबुद्धिमान होजाताहै । छठे महीनेमें हाथीकी समान वली होताहै । सातवें महीनेमें घोडेकी समान वेग होताहै । आठवें महीनेमें मंत्रसिद्धि होतीहै । नववें महीनेमें सर्वज्ञ होताहै । दशवें महीनेमें पवनकी समान गति होतीहै । ग्यारहवें महीनेमें मैथुनके द्वारा स्त्रीको जीतताहै । बारहवें महीनेमें अग्निकी समान तेजकी वृद्धि होतीहै । एकवर्षके पश्चात् वलीपलितादि रोगोंसे रहित होकर दीर्घायु होताहै ॥ ११२-१२१ ॥

अथ शर्करावलेहः ।

क्वाथेमधुरवर्गस्यप्रस्थेप्रस्थेतथैवच ।

पंचमूल्यास्तृणाख्यायाःसिताप्रस्थंविपाचयेत् ॥ १२२ ॥

दत्त्वार्द्धकुडवंसर्पिर्नारिणेलजलस्यच ।

प्रस्थत्रयंविनिक्षिप्यदृढेपात्रेशनैश्शनैः ॥ १२३ ॥

सिद्धेऽवतारितेशीतेक्षणांविनिक्षिपेत् ।

मुस्तैलापत्रधन्याकजीरकाणांगुडत्वचः ॥ १२४ ॥

कारव्यावंशजायाश्चरोचनायास्तथैवच ।

शाणद्वयमिंकृत्वाप्रत्येकंकेशरस्यच ॥ १२५ ॥

खादेदग्निबलापेक्षीपथ्यभुङ्मात्रयानरः ।

सनाशयेत्सर्वरोगाञ्शर्करालेहउत्तमः ॥ १२६ ॥

इति रसायनाधिकारः ।

अर्थ—मेदा, महामेदा, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती और मुलेठी, इस मधुवर्गका काथ २ दो सेर, तृणपंचमूलका काथ २ दो सेर, मिश्री २ दो सेर, घी ५॥ आधसेर, और नागियलका जल ६ छे सेर, सबको एकत्र पकावे, जब सिद्ध होजाय तब उतारले, शीतल होनेपर नागरमोथा, इलायची तेजपात, धनियाँ, जीरा, दालचीनी, साँफ, वंश-लोचन, गोरोचन, और नागकेशर, प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ मासे मिलादेवे, इसको अग्रिका बलाबल देखकर खावे । यह शर्कराबलेह सर्वप्रकारके पित्त वातादि रोगोंको दूर करे । इसपे पथ्य भोजन करे ॥ १२२-१२६ ॥

इति रसायनाधिकारः समाप्तः ।

नत्रादौरसाजीर्णचिकित्सा ।

नाभिमूलेभवेच्छूलंनिद्रालस्यंज्वरोऽरुचिः ।

जाड्यमलग्रहोदाहोरसाजीर्णेभवेन्मृणाम् ॥ १ ॥

रसाजीर्णमितिज्ञात्वाततःकुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।

दिनत्रयं यत्नेनक्रियमाणेरस यने ॥ २ ॥

कर्कोटीकन्दसम्भूतंकषायंत्रिदिनंपिबेत् ।

रसाजीर्णेपिबेद्वापिगोजलंरुच्यन्नेवतम् ॥ ३ ॥

विश्वसैन्धवसंयुक्तंमातुलुंगस्यमूलकम् ।

अंगिनान गकल्केनभुक्तोयदिभवेद्रसः ॥ ४ ॥

नागदाषविद्धयर्थगोमूत्रेणसमान्वतः ।

पटुयुक्तंपिबेन्मूलंकारवेल्ल्याभवन्तथा ॥ ५ ॥

एषानागभवोदोषोनाशमायातिनिश्चितम् ॥

वन्ध्याककोटिकं प्यंगारुडीचततः परम् ॥ ६ ॥
 असामान्यतमं मूलं क्षित्वा गोजलमध्यतः ।
 अत्यम्लकटुतिक्तैश्च सूतः स्रवति सेवितैः ॥ ७ ॥
 अत्यम्ललवणाहारैर्मन्दवीर्यो भवेद्रसः ।
 सततं वर्जयेद्देकाहारञ्च रससेवकः ॥ ८ ॥
 नश्यत्यग्निरनाहारात्सूतो नैव क्रमेत्तनौ ।
 रोगशान्तिं तथा कर्तुं नैव शक्नोति पारदः ॥ ९ ॥
 विचित्रैर्भोजनैस्तस्माद्रसं समुपबृंहयेत् ।
 निषिद्धं वर्जयेत्सर्वरससेवाविधौ नरः ॥ १० ॥
 रसस्रावकरं वज्ज्यं भोजने चाति यत्नतः ।
 अग्निमान्द्यकरं तद्ब्रज्यं चापि प्रयत्नतः ॥ ११ ॥

अर्थ—नाभिशूल, निद्रा, आलस्य, ज्वर, अरुचि, जड़ता, मलबन्ध, दाह, यह लक्षण होयें तो रसाजीर्ण जानना । रसाजीर्णके उत्पन्न होतेही तत्काल उसका प्रतीकार करना चाहिये । ककोडेके कन्दका काथ तीन दिन पीनेसे अथवा कालेनोनके साथ गोमूत्रको पीनेसे रसाजीर्ण नष्ट होता है । सोंठका चूर्ण, सैंधेनोनका चूर्ण और बिजौरेकी केशर, तीनोंको एकत्र सेवन करनेसे रसाजीर्ण रोग दूर होता है । मनुष्योंके नागदोष युक्त पारेको सेवन करनेसे रसाजीर्ण होय तो नागदोषको दूर करनेके लिये सैंधेनोनका चूर्ण और करेलेकी जड़के चूर्णके साथ गोमूत्रको सेवन करें, इससे नागदोष दूर होता है । वन्ध्याककोडेके फूल और छिलहिंडकी जड़, थोड़ेसे गोमूत्रमें पीसकर सेवन करनेसे नागदोष नष्ट होता है । अत्यंत खट्टी, चरपरी और कड़वी वस्तु खानेसे पारा क्षिरकर निकलजाता है, तथा अत्यन्त खटाई और लवणके साथ आहार करनेसे पारा हीनवीर्य होजाता है । रसको सेवन करनेवाला मनुष्य सदैव एक प्रकारका आहार त्याग देवे । और एकवार प्रथम आहार न करनेसे जठराग्नि नष्ट होती है पारा निजशक्तिको प्रकाशित नहीं करता और रोग नष्ट करनेकोभी समर्थ नहीं होता, इसकारण पारेके सेवन करनेवाला मनुष्य नानाप्रकारके आहारोंको सेवन करे । पारेको सेवन करनेवाला मनुष्य रसविधिमें संपूर्ण निषिद्धविषय सदैव

त्यागदे, तथा आहारके द्रव्योंमें रसस्वावक और मंदाग्निजनक पदार्थ समस्त त्यागने चाहियें ॥ १-११ ॥

अथ विधिपूर्वकपारदसेवनगुणाः ।

वलीपलितनिर्मुक्तोमृत्युहीनोभवेन्नरः ।

जायतेमन्मथाकारोनरोऽपिप्रमदारतः ॥ १२ ॥

रसायनेहिनिर्दिष्टंप्रायशोरससेवने ।

बुद्धिप्रजाबलंकान्तिप्रभावेणयथाबहिः ॥ १३ ॥

नौषधंपारदादन्यन्नदेवःकेशवात्परः ।

नवैद्यादपरोबन्धुर्नदानादपरोविधिः ॥ १४ ॥

आरोग्यंलघुतासौष्ट्यंरुचिर्गुर्व्वन्नजीर्णता ।

रोगनाशश्चवृष्यश्चसततरससेवनात् ॥ १५ ॥

इति रसोपद्रवशमनम् ।

अर्थ—विधिपूर्वक पारेको सेवन करनेसे वली (शरीरमें बलोंका पडना), पलित (बिना समयके बालोंका धवल होजाना) हीन, मृत्युके भयसे रहित और कामदेवके समान स्त्रियोंमें रमण करताहै । तथा बुद्धि, सन्तान, बल और कान्ति बढ़तीहै । जैसे संसारमें कृष्णकी समान दूसरा देवता नहीं है, वैद्यकी समान भाई नहीं हैं, दानकी समान अन्य विधि नहीं है, उसीप्रकार पारेकी समान अन्य औषधि नहीं है । सदैव पारेको सेवन करनेसे अरोगिता, शरीरमें लघुता, सुन्दरता, रुचि, गुरुपाकी अन्नोंका जीर्ण होना, रोगोंका नाश और वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ १२-१५ ॥

इति रसोपद्रवचिकित्सा समाप्ता ।

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

तत्रादौवातादिदूषितशुक्रलक्षणम् ।

वातादिकुणपंग्रन्थिक्षीणपूयमलाह्वयम् ।

प्रजासमत्वेरेतोस्त्रस्वलिंगैर्दोषजंवदेत् ॥ १ ॥

रक्तेनकुणपंश्लेष्मवाताभ्यांग्रन्थिसंभवम् ।

पूयाभंरक्तपित्ताभ्यांक्षीणंमारुतपित्ततः ॥ २ ॥

कृच्छ्राण्येतानिसाध्यानित्रिदोषंमूत्रविड्निभम् ।

तेस्वान्याञ्छुक्रदोषांस्तान्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ॥ ३ ॥

अर्थ—मनुष्योंका वीर्य वातादिदोषोंसे दूषित होकर दुर्गन्धित, क्षीण, ग्रन्थि, राधकी समान, और मलकी सदृश होजाताहै, तहां रुधिरसे दुर्गन्धित, कफवातसे ग्रन्थियुक्त, रक्तपित्तसे क्षीण और त्रिदोषसे मूत्र और मलकी समान होताहै । त्रिदोषजको छोडकर अन्यान्य सर्व प्रकारके शुक्रदोष स्नेह स्वेदादिसे आरोग्य होतेहैं, परन्तु त्रिदोषजन्य शुक्र कष्टसाध्य है ॥ १-३ ॥

अथ वाजीकरणयोगाः ।

पिप्पलीलवणोपेतौवस्ताण्डौक्षीरसर्पिषा ।

साधितौभक्षयेद्यस्तुसगच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ ४ ॥

वस्ताण्डसिद्धेपयसिभावितानसकृत्तिलान् ।

यःखादेत्सनरोगच्छेत्स्त्रीणांशतमपूर्ववत् ॥ ५ ॥

चूर्णविदार्याःसुहृत्स्वरसेनैवप्रभावितम् ।

सर्पिःक्षौद्रयुतोलीद्वादशगच्छेन्नरोऽगनाः ॥ ६ ॥

भूमिकूष्माण्डमूलचूर्णमस्यैव मूलरसेन भावितं रात्रौ
लेह्यम् एवामामलकचूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।

शर्करामधुसर्पिर्भ्यायुक्तंलीद्वापयःपिबेत् ।

एतेनाशीतिवर्षोपियुवेवपरिहृष्यति ॥ ७ ॥

विदारीकन्दकल्कन्तुघृतेनपयसानरः ।

उदुम्बरसमंपीत्वावृद्धोऽपितरुणायते ॥ ८ ॥

गोक्षुरकःक्षुरकःशतमूलीवानरीनागबलाऽतिबलानाम् ।

चूर्णमिदंपयसानिशिपेयंस्यगृहेप्रमदाशतमस्ति ॥ ९ ॥

अर्थ—पीपल और सैधानोन मिलाकर बकरेके अंडकोषोंको घी और दूधके साथ पकावे, पश्चात् इनको खानेसे सौ १०० स्त्रियोंसे गमन करनेको समर्थ होताहै । जिस दूधमें बकरेके अंडकोषों को पकायाहै उस दूधमें तिलोंको बार-बार भावनादेकर खानेसे सौ स्त्रियोंसे गमन करनेकी शक्ति होजातीहै । विद ।

रीकन्दके चूर्णको विदारीकन्दके रसमें भावना देकर घृत और सहतकेसाथ सवनकर-से दश १० स्त्रियोंसे गमनकरनेकी शक्ति होतीहै । विदारीकन्दकी जड़के चूर्णको विदारीकन्दके जड़के रसमें भावनादेकर रात्रिमें शर्करा, घृत और सहतके साथ चाटे, ऊपरसे दूध पीवे, अथवा आमलोंके चूर्णको आमलोंके रसमें भावना देकर शर्करा, घृत और सहतके साथ चाटे, पश्चात् दूध पीवे तो ८० अस्सीवर्षका वृद्ध भी जवानकी समान होजाताहै । विदारीकन्दकी जड़को पीसकर घृत और दूधकेसाथ सेवनकरे तो वृद्ध मनुष्य भी तरुणताको प्राप्त होताहै । गोखरू, तालमखाना, शतावर, कौछ, गंगेरन और खिरैटी, इनका चूर्ण करके दूधकेसाथ रात्रिमें पीवे तो १०० सौ स्त्रियोंमें रमणकरनेको समर्थ हो ॥ ४-९ ॥

अथ नरसिंहचूर्णम् ।

शतावर्यारजःप्रस्थप्रस्थंगोक्षुरकस्यच ।

वाराह्याविंशतिपलंगुडूच्याःपंचविंशतिम् ॥ १० ॥

भल्लातकानांद्वात्रिंशच्चित्रकस्यदशैवतु ।

तिलानांशोधितानाञ्चप्रस्थदद्यात्सुचूर्णितम् ॥ ११ ॥

त्र्यूषणस्यपलान्यष्टौशर्करायास्तुसप्तभिः ।

माशिकंशर्करार्द्धेनमाशिकार्द्धेनवैघृतम् ॥ १२ ॥

शतावरीसमंदेयंविदारीकन्दजंरजः ।

एतदेकीकृतंचूर्णंस्निग्धेभाण्डेनिधापयेत् ॥ १३ ॥

पलार्द्धमुपयुञ्जीतयथैष्टास्यभोजनम् ।

मासैकमुपयोगेनजरांहन्तिरुजापहम् ॥ १४ ॥

अर्थ—शतावरकाचूर्ण दो २ सेर, गोखरूकाचूर्ण २ दो सेर, वाराहीकन्द-काचूर्ण २॥ ढाई सेर गिलोयका चूर्ण ३ तीनसेर चार ४ तोले, भिलावेके बी-जोंका चूर्ण ४ चारसेर, चीतेका चूर्ण १। सवासेर, शुद्ध किये हुए तिलोंका चूर्ण २ दो सेर, त्रिकुटेका चूर्ण १ एकसेर, शर्करा ७ सात पल, सहन १४ चौदह तोले, घी ७ सात तोले, और विदारीकंदका चूर्ण २ दो सेर, सबको एकत्र करके एक चिकने वासनमें भरके रखदेवे, इसमेंसे प्रतिदिन २ दो तोले

खाय, इसके ऊपर यथेष्ट भोजन करे, यह औषधि एकमहीनेमें जरा और ज्वरादिरोगोंको दूर करैहै ॥ १०-१४ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

घृतंशतावरीगर्भक्षीरेदशगुणेपचेत् ।

शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद्द्रव्यमुच्यते ॥ १५ ॥

अर्थ—गायका घी २ दो सेर, दूध २० बीससेर, तथा कल्कके लिये शता-
वरका चूर्ण ५॥ आधसेर लेकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । सिद्धहोनेपर
शर्करा, पीपलका चूर्ण, और सहत मिलाके इसको सेवन करे इससे अत्यन्त
वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ १५ ॥

अथ वृष्यवस्तुलक्षणंमैथुनविधिश्च ।

यत्किञ्चिन्मधुरंस्निग्धंजीवनंबृंहणंगुरु ।

हर्षणंमनसश्चैवसर्वतद्द्रव्यमुच्यते ॥ १६ ॥

यदिमासाद्रसंशुक्रमुग्रं बतनिरर्थकम् ।

प्रायश्च्योतयते शुक्रं शय्यान्यत्र करोति तत् ॥ १७ ॥

नरो वीर्यकराजोगान्सम्यक्छुद्धानिरामयः ।

आसप्ततिं प्रकुर्वीत वर्षादूर्द्ध्वं षोडशात् ॥ १८ ॥

नतु षोडशाद्वर्षात्सप्ततेः परतो न च ।

आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ १९ ॥

कल्याणोदग्रवयसोवाजीकरणसेवितः ।

सर्वेषु ऋतुषु बहुव्यवायोहिनिवारितः ॥ २० ॥

आयुष्मन्तो मन्दजस्तवः वर्णबलान्वितः ।

स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ २१ ॥

त्रिभिस्त्रिभिरहोभिश्च सेवेत प्रमदानरः ।

सर्वेषु ऋतुषु ग्रीष्मे पक्षात्पक्षाद्व्रजेद्वयः ॥ २२ ॥

योगान्संश्लेष्यत्वात् संतमथपयः शीतलंचाम्बुपीत्वा
गच्छेन्न रीः रूपांस्मरशतः लांकामुकः काममाद्ये ।

यामेहृष्टप्रहृष्टां व्यपगतसुरतः संस्वपेन्नित्यनित्यां
कान्तःकान्ताङ्गसंगादपहृतनरोधातुवैषम्यमेति ॥ २३ ॥

ग्लानिः कम्पोरुदौर्वल्यंधात्विन्द्रियबलक्षयः ।

क्षयवृद्धच्युपदंशाद्यारोगाश्चातीवदुर्जयाः ॥ २४ ॥

अनेन मरणञ्च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ।

शोषकासज्वरार्शांसिश्वासकासातिपाण्डुता ॥ २५ ॥

अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ।

असेवनान्मेहमेदोग्रन्थिरग्नेश्चमार्दवम् ॥

त्यजेत्पूज्येशुचिस्थाने लोकाध्यक्षश्चमैथुनम् ॥ २६ ॥

ग्लानिः कम्पोऽरुचिः सादस्तदनुचकृशताक्षीणताश्चेन्द्रियाणां

श्वासः शोषोपसंगोज्वरगुदजरुजाक्षीणताश्चेन्द्रियाणाम् ।

जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवः क्लीबतालङ्घभङ्गो ।

रम्याग्रम्याभियोगाद्भजतइहसदावाजिकर्मच्युतस्य ॥ २७ ॥

तोयाङ्गरागशिशिरातपशीतवाताः

ताम्बूलसोमकरशीतिरसेक्षुभक्ष्याः ।

स्नानञ्च दुग्धमधुपूगफलानि निद्रा

सेव्यानिकामुकजनैः सुरतावसाने ॥ २८ ॥

अर्थ—जो पदार्थ किंचित् मधुर, तृप्तिकाक, जीवन, पुष्टिकाक, भारी और मनको हर्षित करनेवाले हैं उनको वृष्य कहते हैं । मनुष्यों में एक महीने की अपेक्षासे अधिक अर्थात् जितना एक महीने में शुक्र उत्पन्न होय उसमें अधिक शुक्रत्वाव होय तो उससे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । शुद्ध और रोगरहित मनुष्य १६ षोडश वर्षसे लेकर ७० सत्तर वर्ष की आयु तक मैथुन करना है, परन्तु षोडश वर्षसे कम और ७० सत्तर वर्षसे अधिक अवस्थावाला पुरुष कदापि स्त्रीसंसर्ग न करे, किसी ऋतु में भी अधिक स्त्रीसंसर्ग नहीं करना चाहिये । आयुष्मान्, जरासे रहित, सुन्दर शरीर वाला, बलवान् और हृष्ट, पुष्ट मनुष्यको प्रत्येक ऋतु में तीन तीन दिनके बाद और ग्रीष्मऋतु में १२ दिनके पश्चात् मैथुन करना चाहिये ।

वीर्यजनक औषधियोंको सेवनकर पश्चात् मिश्रीके साथ दूध और शीतल जलको पीकर, सुन्दर स्वरूपवाली स्त्रियोंके पास जावे । अत्यन्त मैथुन करनेसे ग्लानि, कम्प, घुटनोमें दुर्बलता, धातु और इन्द्रियोंके बलका नाश, राजयक्ष्मा, उपदंश, शोष, खाँसी, ज्वर, बवासीर, श्वास, पाण्डु, और आक्षेपादिरोग उत्पन्न होतेहैं । बिलकुल मैथुन नहीं करनेसे प्रमेह, मेदा वृद्धि, ग्रन्थि, और मंदाग्निरोग उत्पन्न होताहै । पूज्य और पवित्र स्थानमें स्त्रीसंसर्ग न करना चाहिये तथा रमणकरने योग्य या नहीं रमणकरनेके योग्य स्त्रियोंके साथ जो रमण करताहै और जिसने-वाजीकरण औषधोंका सेवन नहीं किया उसके ग्लानि, कम्प, अरुचि, अवसाद, कृशता, शोष, श्वास, गरमी, बवासीर, धातुक्षीण, नपुंसकता और ध्वजभंग रोग उत्पन्न होताहै । जल, अंगराग, शिशिर, आतप, शीतलवायु, ताम्बूल, चन्द्रकिरण, शीतलपदार्थ, ईखकारस, ईखके विकार, दूध, सहत, सुपारी और निद्रा यह सब मैथुनके अंतमें अत्यंत हितकारी हैं ॥ १६-२८ ॥

अथ श्रीमन्मदनमोदकः ।

त्रैलोक्यविजयापत्रंसबीजघृतभर्जितम् ।

त्रिकटुत्रिफलाशृंगीकुष्ठसैन्धवधान्यकम् ॥ २९ ॥

शटीतालीशपत्रंचकटफलं नागकेशरम् ।

यमानीचाजमोदाचयष्टीमधुकमेवच ॥ ३० ॥

मेथीजीरकयुग्मञ्जगृहीत्वाभर्जितंकियत् ।

यावदेतानिचूर्णानितावदेवतदौषधम् ॥ ३१ ॥

तावत्येवसितादेयायावत्यायातिबन्धनम् ।

घृतेनमधुनामिश्रमोदकंपरिकल्पयेत् ॥ ३२ ॥

त्रिसुगन्धिसमायुक्तंकपूरेणाधिवासयेत् ।

स्थापयेद्घृतभाण्डेतुश्रीमन्मदनमोदकम् ।

भक्षयेत्प्रातरुत्थायवातश्लेष्मविनाशनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—घीमें भुने हुए भांगके बीज और पत्ते, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेडा, आमला, काकडाशिंगी, कूठ, सैधानोन, धनियाँ, कचूर, तालीशपत्र, त्रिफल, नागकेशर, अजवायन, अजमोदा, मुलेठी, मेथी, और भुनाहुवा गलाजोरा तथा सफेदजीरा, प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, सबकी बराबर

बूरा, तथा दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची तथा कपूर, प्रत्येक एक-
भाग, यथानुसार घृत और सहत मिलाकर लड्डू बनाके धीके वासनमें भरके
रखदेवे, प्रतिदिन एक मोदक दूधके साथ खाय । यह श्रीमन्मदनमोदक अत्यन्त
कामवर्द्धक, तथा वातश्लेष्मादिरोगोंको हरैहै ॥ २९-३३ ॥

अथ महामदनमोदकम् ।

त्रैलोक्यविजयापत्रंसबीजंघृतभर्जितम् ॥
समेशीतातपेलेपश्चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ ३४ ॥
शतावरीरजश्चैवविदारीकन्दजंरजः ।
बलातिवलयोश्चैवमूलवलकलजंरजः ॥ ३५ ॥
गोक्षुरक्षुरयोर्बीजाद्रजोवानरिबीजतः ।
एतदेकीकृतंयावच्छतावर्यादिकंरजः ॥ ३६ ॥
तस्माच्चतुर्गुणंकार्यत्रैलोक्यविजयारजः ।
पयसाथसमेतस्मिन्गोलयेच्चूर्णसञ्चयः ॥ ३७ ॥
गोलयित्वासिताश्चैवशक्रचूर्णाच्चतुर्गुणाम् ।
पचेदवहितोवैद्योमंदमन्देनवह्निना ॥ ३८ ॥
ततःपाकक्रमंदृष्ट्वाभृष्ट्वाचैवाऽसितंतिलम् ।
बुद्ध्वावतारितंदद्यान्मोदकार्थंभिषग्वरः ॥ ३९ ॥
त्रिकटुत्रिसुगंधंचसैन्धवंसधनीयकम् ।
जातीकोषफलंचैवबालकंजीरकद्रवम् ॥ ४० ॥
शटीकुन्दुरुकोटिश्वमुस्तामधुरिकामुरा ।
मांसीतालीशपत्रंचपत्रंवारेन्द्रमेवच ॥ ४१ ॥
ग्रन्थिपर्णीशिवाचैवतथैवशतपुष्पिका ।
चविकादेवदारुश्चसप्रियंलवंगकम् ॥ ४२ ॥
सरलःशैलजश्चैवसंज्ञितश्चिपटैश्च ।
अत्रघट्टालनेयुक्तंद्रव्यंतद्गन्धवृद्धये ॥ ४३ ॥

ढालयित्वाकृतंचूर्णशक्रचूर्णस्यपादिकम् ।
 सैन्धवस्वादुतायोग्यंदेयंकटुकमेवच ॥ ४३ ॥
 ततःसुमिलितंकुर्यान्मोदकंपरिकल्पयेत् ।
 भूयस्त्रिजातकेचूर्णेचूर्णेऽयूषणजेतथा ॥ ४४ ॥
 लोठयेन्मोदकानेतान्सिद्धार्थानथसिद्धये ।
 कांचनेराजतेपात्रेकांस्येसम्पुटकेन्यसेत् ॥ ४५ ॥
 रजस्त्रिजातानास्तीर्यकपूरेणाधिवासयेत् ।
 भक्षयेत्प्रातरुत्थायमहामदनमोदकम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—घृतमें भुनेहुए भाँगेके बीज और पत्तोंको पीसकर वारीक चूर्ण बना छायामें और धूपमें सुखालेवे । शतावर, विदारीकंद, खिरैटी, कंधी, गोखुरू, तालमखाना और कौँछके बीज, प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, घीमें भुने-हुए भाँगेके बीज और पत्तोंका चूर्ण २८ अट्टाईस भाग दूध समान भाग, और बूरा भाँगेके चूर्णसे चौगुना, सबको मिलाकर मंद मंद अग्निसे पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय तब भुने हुए कालेतिल, त्रिकुटा, त्रिसुगंधि, सैंधा-नोन, धनियाँ, जावित्री, जायफल, सुगंधवाला, सफेद जीरा, कालाजीरा, कचूर, कुँदुरू, सौंफ, नागरमोथा, कपूरकचरी, तालीसपत्र, तेजपात, खिरैटी, हरड, सोया, चव्य, देवदारु, फूलप्रियंगु, लौंग, धूप सरल और भूरिछरीला, इनका चूर्ण करके मिलादेवे, पश्चात् इसको एक परातमें ढालकर चौथाई-भाग भाँगेका चूर्ण, स्वादके योग्य सैन्धव लवणका चूर्ण मिलाकर मोदक-बनालेवे, फिर इन लड्डुओंको त्रिजातके चूर्णमें और त्रिकुटेके चूर्णमें लुंठाक-रके कपूरकी वासनदेवे, पश्चात् सोने, चांदी, या कांसीके पात्रमें भरके रखदेवे, इसमेंसे प्रतिदिन एक मोदक खाय और ऊपरसे दूध पीवे तो अत्यन्त कामकी वृद्धिहो, तथा कास श्वासादि सम्पूर्ण रोग नष्ट होंवें ॥ ३४-४७ ॥

अथ शतावरीमोदकम् ।

शतावर्यःश्वदंष्ट्राचबलाचातिबलातथा ।
 मर्कटीक्षुद्रबीजश्चविदारीकंदजरजः ॥ ४८ ॥
 गतानिसमभाग निपलिकानिविचूर्णयेत् ।
 चूर्णाच्चतुगुणंदेयंत्रैलोक्यविजयारजः ॥ ४९ ॥

सर्वमेकीकृतंयावत्तद्वर्द्धमाहिषंपयः ।
 तावन्मात्रन्तुदातव्यंशतावर्यारसन्तथा ॥ ५० ॥
 विदार्याःस्वरसप्रस्थं सितापलशतंन्यसेत् ।
 गोलयित्वासितान्दत्त्वापात्रेताम्रमयेदृढे ॥ ५१ ॥
 पचेत्पाकविधिज्ञोऽपिमोदकःपरमोहितः ।
 त्र्यूषणंत्रिफलाशृंगीत्रिजातंसन्धवंशठी ॥ ५२ ॥
 धान्यकंबालकंमुस्तंजीरकंकुन्दुरुमुरा ।
 काकोलीक्षीरकाकोलीद्राक्षातुगामृगाण्डजम् ॥ ५३ ॥
 जातीकोलफलंमांसीतालाङ्कुरकशेरुकम् ।
 शतपुष्पाचवीदारुग्रन्थिकंसलवंगकम् ॥ ५४ ॥
 कुष्ठ्यमानिकाचात्मगुप्ताकट्फलमेथिका ।
 मधुरीकाचमधुकंतालीशंवरखज्जुरम् ॥ ५५ ॥
 टंकणञ्चविचूर्ण्यथप्रत्येकंकोलसंमितम् ।
 चूर्णावर्द्धशोधितंगंधगंधपादांशपरदम् ॥ ५६ ॥
 कज्जलीकृत्यदत्त्वातलोडयेत्रिसुगन्धिना ।
 यथाशक्त्यामोदकंचकर्पूरेणाधिवासयेत् ॥ ५७ ॥
 उद्धृत्यस्निग्धभाण्डेतंप्रस्थाप्यचभिपग्वरैः ।
 शिवंसंपूज्यसगुणंधन्वन्तरिमुनिन्तथा ॥ ५८ ॥
 कोलप्रमाणंकर्तव्यंक्षीरंचानुपिवेत्ररः ।
 प्रातर्भोजनकालेवासायंकालेऽपिभक्षयेत् ॥ ५९ ॥
 प्रमदाशतंचभजतेनचशुक्रक्षयोभवेत् ।
 नातःपरतरंकिंचिद्विद्यतेवाजिकर्मसु ।
 शतावरीमोदकंचवासुदेवेननिर्मितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—शतावर, गोखरू, खिरेटी, कंवरी, कोंछ, मंदागकेबीज और विदारी-
 कन्दकाचूर्ण प्रत्येक ४ चारतोले लेंवे इन सब औषधियांसे चौगुना भाँगेके

बीजोंका चूर्ण, सबचूर्णसे आधा मैसकादूध, शतावर और विदारीकन्दका रस २ दोसेर, और बूरा १०० सौपल, इन सबको एकत्र करके तौबेके वासनमें पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय तब त्रिकुटा, त्रिफला, काकडाशिगी, त्रि-
जातक, सैधानोन, कचूर, धनियाँ, सुगंधबाला नागरमोथा, सफेदजीरा, कालाजीरा
कुंदुरू, कपूरकचरी, काकोली, क्षीरकाकोली, दाख, वंशलोचन, कस्तूरी, जायफल,
जावित्री, बालछड़, ताड़केअंकुर, कशेरू, सोया, चव्य, देवदारु गठिवन, लौंग, कूठ,
अजवायन, कौछके बीज, कायफल, मेथी, सौंफ, काच (कालानोन), मुलेठी,
तालीशपत्र, पिण्डखजूर और सुहागेकीखीलें, प्रत्येकका चूर्ण एक एकतोला, सब
चूर्णसे आधागंधक, और गंधकसे चौथाई भाग पारेकी बनाई हुई कज्जली ले
सबको मिलाकर एकएक तोलेके लड्डू बनालेवे, पश्चात् इन लड्डूओंको
त्रिसुगंधिकें चूर्णमें लुटाकर कपूरकी वासनादेवे, फिर एक उत्तम चिकने
वासनमें भरके रखदेवे, प्रतिदिन १ एकलड्डू खाय और ऊपरसे दूधका
अनुपान करे । इसके प्रभावसे सौ १०० स्त्रियोंके पास जासकताहै और
शुक्रका क्षय न होवे । तथा कास, श्वास और प्लीहादि रोग दूरहो-
जातेहैं ॥ ४८-६० ॥

अथ शतावरीमोदकः ।

शतावरीश्वदंष्ट्राचबलाचातिबलातथा ।

मर्कटीक्षुरबीजश्चविदारीकन्दजंरजः ॥ ६१ ॥

एतानिसमभागानिपलिकानिविचूर्णयेत् ।

चूर्णाच्चतुर्गुणश्चैवत्रैलोक्यविजयारजः ॥ ६२ ॥

एतदेकीकृतंयावत्तदद्धमाहिषंपयः ।

तावन्मात्रेणदातव्यंशतावर्यारसन्तथा ॥ ६३ ॥

विदार्याःस्वरसंप्रस्थंसितापलशतद्वयम् ॥

गोलयित्वासितांचैवपात्रेताम्रमयेदृढे ॥ ६४ ॥

पाचयेत्पाकविद्वैद्योमोदकःपरमोहितः ।

त्र्युषणंत्रिफलाशृंगीत्रिज तंसेन्धवंशटी ॥ ६५ ॥

धन्याकंबालकंमुस्तंद्भिजीरंकुन्दुरुमुरा ।

काकोलीक्षीरकाकोलीकस्तूरीमृद्विकातुगा ॥ ६६ ॥

अर्थ—शतावर गोखरूकेबीज, खिरंटीकीजड़, कंधीकीजड़, काँछकेबीज, तालमखानेके बीज और विदारीकन्द, प्रत्येकका चूर्ण एक. १ पल, भाँगकाचूर्ण २८ आठ्ठाईसपल, बूरा १००सौपल, भैंसकादूध, शतावरका रस और विदारीकंदका रस, प्रत्येक ३२ बत्तीसपल लेवे इन सबको मिलाकर ताँबेके पात्रमें मंद मंद अग्निसे पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय, तब त्रिकुटा, त्रिफला, काकडासिंगी, त्रिजातक, सैंधानोन, कचूर, धनियाँ, सुगंधवाला, नागरमोथा, कालाजीरा, सफेदजीरा, कुंदुरू, कपूरकचरी, काकोली, क्षीरकाकोली, कस्तूरी, दाख, वंशलोचन, नावित्री, जायफल, बालछड़, वारेन्द्रपत्र, गठिवन, सोया, चव्वय, देवदारु, फूलप्रियंगु, लोंग, धूपसरल, भुरिछरीला, कूट, चमेलीके फूल, अजवायन, कायफल, नागकेशर, मुलेठी, मेथी, देवनाड़, सौंफ, तालीशपत्र, खजूर, पारा, गंधक, तगर, लालचन्दन और सज्जी प्रत्येकका चूर्ण एकएक तोले, मिलादेवे, पश्चात् एक एक तोलेके मोदक बनाकर त्रिजातक, त्रिकुटा और कपूरके चूर्णमें छुटालेवे । प्रतिदिन एक मोदक प्रातःकाल या भोजनके समय अथवा संध्याके समय खाय और ऊपरसे दूध पीवे । इसके प्रभावसे सौ १०० स्त्रियोंके साथ रमे तोभी शुक्रका क्षय न होवे ॥ ६१-७१ ॥

अथ रतिवल्लभमोदकः ।

शकाशनस्यबीजानिचूर्णितानिपलाष्टकम् ।

कुडवन्तुहविष्यस्यखण्डप्रस्थंप्रगृह्य च ॥ ७२ ॥

शतपुत्रीरसप्रस्थंप्रस्थंशकाशनस्यच ।

गव्यमाजंपयःप्रस्थंदत्त्वाप्रस्थद्वयंपचेत् ॥ ७३ ॥

धात्रीद्विजीरकप्रस्थंत्वगेलापत्रकेशरम् ।

अतिबलाचात्मगुप्तातालांकुरकशेरुकम् ॥ ७४ ॥

शृंगाटकंत्रिकटुकंधन्याकंचित्रकंतथा ।

पथ्याद्राक्षाचकाकोल्यौखज्जूरस्तवकन्तथा ॥ ७५ ॥

कटुकांमधुकंकुष्ठलवंगंक्षारसैन्धवम् ।

यमानिकाचाजमोदाजीवन्तीगजपिप्पली ॥ ७६ ॥

प्रत्येकंकर्षमेकञ्चचूर्णितानिशुभानिच ।

मधुनःकुडवार्द्धञ्चपाकशेषेतथाक्षिपेत् ॥ ७७ ॥

मृगाण्डजंसकर्पूरंयथाभागंविनिक्षिपेत् ।

रतिवल्लभनामायंसेव्यमानोरसायनः ॥ ७८ ॥

अर्थ—भांगका चूर्ण १ एक सेर, वी १ एकसेर, बूरा २ दोसेर, शतावरका-
रस ४ चारसेर, भांगका रस ४ चारसेर, गायका दूध ४ चारसेर, बकरीका
दूध ४ चारसेर, आमलोंका रस ४ चारसेर, तथा दोनो जीरोंका काथ ४
चारसेर, इन सबको मिलाकर पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय तब
दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, कंवी, कौंछ, तालकेशंकर,
कशेरू, सिंघाडे, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, लालचीता, हरड, दाख,
काकोली, क्षीरकाकोली, पिण्डखजूर, कुटकी, कूठ, मुलेठी, लौंग, वज्रखार,
सैधानोन, अजमोदा, जीवन्ती और गजपीपल प्रत्येकका चूर्ण २ दो दो तोले,
सहत एक १ सेर और कस्तूरी तथा कपूर कुछ थोडासा सुगंधिके लिये मिला
देवे । पश्चात् लड्डू बनालेवे । यह लड्डू अत्यन्त कामदेवको बढ़ावेहै और
सर्वरोग नाशक है ॥ ७२-७८ ॥

अथ मञ्जुषातेजोभोमोदकः ।

समूलपत्रशाखायास्तुलांशक्राशनस्यच ।
 संक्षुद्योलूखलेछित्त्वाऽपांद्रोणेदितथाचवै ॥ ७९ ॥
 काथंपादावशिष्टन्तुवस्त्रपूतंचकारयेत् ।
 क्षीरप्रस्थंसमादायखण्डस्यार्द्धशतंतन्यसेत् ॥ ८० ॥
 शतावरीरसस्याष्टौपिप्पल्याःकुडवन्तथा ।
 सर्वमेतत्समालोव्यघृतप्रस्थेनमेलयेत् ॥ ८१ ॥
 औषधानान्ततश्चूर्णंदापयेत्कलिकंपृथक् ।
 त्रिकटुत्रिफलाचव्यमेलान्वक्पत्रकेशरम् ॥ ८२ ॥
 चित्रकंपिप्पलीमूलंधान्यकाजाजिमेथिका ।
 कुष्ठाब्दरेणुकाव्योपभाङ्गीतालीशकेशरम् ॥ ८३ ॥
 तालमूलीत्रिवृद्धन्तीश्रेयसीहिङ्गुपौष्करम् ।
 लवंगजातिकोपश्चयमानीकारवीतथा ॥ ८४ ॥
 शुभाजातीफलंचन्द्रंशृङ्गीचैवविदारिका ।
 अष्टवर्गश्चकाकोलंश्लक्ष्णचूर्णश्चकारयेत् ॥ ८५ ॥
 कुडवद्विपचेद्वैद्योमोदकंकारयेत्ततः ।
 अक्षमात्रश्चजग्धोर्द्धशीतलंपाययेज्जलम् ॥ ८६ ॥
 नाशयेच्छुक्रदोषश्चषण्डश्चैवातिदारुणम् ॥
 श्रीकरंलाघवकरंमेधाबुद्धिप्रवर्धनम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—मूल, पत्र और शाखाओं समेत भांगको लेकर ओखलीमें कूटले, ऐसी कुटी हुई भांग ६। सवा छे सेर लेकर बत्तीस ३२ सेर जलमें पकावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब उताकर कपडेमें छानलेवे, पश्चात् इसमें गायका दूध २ दोसेर, बूरा ६। सवा छे सेर, सतावरका रस १ एकसेर, पीपलका काथ १ एकसेर और घी २ दांसेर मिलाकर पकावे, फिर पकते समय त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, लालचीता, पीपलामूल, धनियाँ, जीरा, मेथी, कूठ, नागरमोथा, रेणुका, त्रिकुटा, भारंगी,

तालीशपत्र, नागकेशर, मुसली, निसोत, दन्ती, गजपीपल, हींग, पोहकरमूल, लौंग, जावित्री, अजवायन, सौंफ, पीपल, जायफल, कपूर, काकडाशिगी, विदारीकन्द, अष्टवर्ग और शीतलचीनी, प्रत्येकका चूर्ण ४ चार तोले मिलाकर गुड़की समान पाक करे, फिर दो दो तोलेके लड्डू बनालेवे, प्रतिदिन १ एक लड्डू खाय ऊपरसे शीतल जल पीवे । यह महारतिबलभमोदक शुक्रदोष और अत्यंत दारुण ण्डत्वदाषको हरैहै । लक्ष्मीजनक, लाघवताकारक, मेधा और बुद्धिको बढ़ावेहै ॥ ७९-८७ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः ।

धात्रीसैन्धवकुष्ठकटफलकणाशुण्ठीयमानीद्वयम् ।
यष्टीजीरकयुग्मधान्यकशटीशृंगीयवाःकेशरम् ॥८८॥
तालीशंत्रिसुगन्धिकंसमरिचंतमेथिकाख्यान्वितम् ॥
चूर्णीकृत्यसमःमनाव्फलयुतंभृष्टञ्चशक्राशनम् ॥ ८९ ॥
सर्वैस्तुल्यमतःसितांसुविमलादत्त्वासमंसंक्षिपेत् ।
माध्वीकंसघृतंप्रशस्तदिवसेकुर्याच्छुभान्मोदकान् ९०॥
कर्पूरैरवचूर्णितानपिहितान्दत्त्वाचभृष्टांस्तिलान् ।
गोप्योऽयंक्षितिमंडलेषुमुधियापाखण्डिनामग्रतः॥९१॥
आधिव्याधिहरंक्षयक्षयकरंकुष्ठापहंबृंहणम् ।
स्त्रीणांतोयकरंमुखद्युतिकरंशुक्राग्निवृद्धिप्रदम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—आमला, सेंधानोन, कूठ, कायफल, पीपल, सांठ, अजवायन, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, कचूर, काकडासिंगी, जौ, नागकेशर, तालीशपत्र, छोटीइलायची, दालचीनी, तेजपात, कालीमिरच, मेथी और सौंफ प्रत्येककाचूर्ण, दो दो तोले, भुनीहुई बीजों समेत भाँगकाचूर्ण, सबकीबराबर, तथा, बूरा, सहत और घी सबकीबराबर, तथा सुगंधिकेलिये कपूर मात्राके अनुसार और काले तिलोंका चूर्ण, सबको एकत्र पकाकर मोदक बनालेवे । इस कामेश्वर मोदकको सेवन करनेसे अत्यन्त कामकी वृद्धि होतीहै तथा सर्व-प्रकारके रोग शोकादि दूर होतेहैं ॥ ८८-९२ ॥

अथ महाकामेश्वरोमोदकः ।

चूर्णांशशोधितत्रैवगगनंशुः ॥ ९३ ॥
तदद्धंशुद्धलौहश्चलौहाद्धवंगभस्मकम् ॥ ९३ ॥
जातीकोषफलं च चूर्णांशतत्रदापयेत् ।
त्रिकटुत्रिफलामुस्तं चातुर्जातिससैन्धवम् ॥ ९४ ॥
शृंगीजीरकयुग्मश्चधन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ।
मांसीशतावरीकुष्ठंतुगाद्राक्षालवंगकम् ॥ ९५ ॥
शालपर्णीचकण्टीचचित्रकंकुन्दुरुमुरा ।
पुनर्नवाश्वगंधांघ्रिपद्मकंक्षुरबीजकम् ॥ ९६ ॥
सितातिलंचधन्याकं मेथिकाहरितालुकम् ।
बलातिबलयोर्मूलंचव्यंचदेवदारुच ॥ ९७ ॥
यमानीशतपुष्पाचमर्कटीबीजबिल्वकम् ।
काकोलीक्षीरकाकोलीतालांकुरकशेरुकम् ॥ ९८ ॥
शृंगीलवणकंचैवकपूरं देवताडकम् ।
एतेषांसमभागानांचूर्णकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ९९ ॥
शोधितं विजयाचूर्णं सर्वचूर्णाद्धंसंयुतम् ।
शर्करांद्विगुणांदत्त्वामोदकंपरिकल्पयेत् ॥ १०० ॥
मध्वाज्यमिश्रितंकृत्वाकर्षमेकन्तुमोदकम् ।
खादेत्प्रतिदिनंचैव सर्वव्याधिविर्वर्जितम् ।
महाकामेश्वरोद्द्वेषमहादेवेन निर्मितः ॥ १०१ ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, चातुर्जातक, सैधानोन, काकडा-
शिङ्गी, जीग, कालाजीरा, धनियौ, गठियन, बालछड, सतावर, कुठ,
वंशलोचन, दाख, लोंग, शालिपर्णी, कटेरी, चीता, कुँदुरु, पुनर्नवा, कपूर,
कचरी, असगंधकी जड़, पद्माख, गोरुखरूकैबीज, मिश्री, तिल, धनियौ, मेथी,
रेणुका, खिरैटी, कंधी, चव्य, देवदारु, अजवायन, सोया, कौंछ, बेलगिरी,

काकोली, क्षीरकाकोली, ताडके अंकुर, कशेरू, काकडासिंगी, सैंधानोन, कपूर और देवताड इन सबका चूर्ण समान भाग, सब चूर्णसे चौथाईभाग अभ्रककी भस्म, जायफल और जावित्रीका चूर्ण, अभ्रकसे आधी लोहेकी भस्म, लोहेसे आधी बंगकी भस्म और सब चूर्णसे आधा भौंगका चूर्ण और इससे दुगुना बूरालेवे, इनको एकत्र पकाकर सहत और घृत मिलाके एक एक कर्षप्रमाणके मोदक बनालेवे । प्रतिदिन एक १ मोदक खाय, इससे सर्वप्रकारके रोग दूर होतेहैं । यह महाकामेश्वर मोदक महादेवने निम्माण कियाहै ॥ ९३-१०१ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः ।

चूर्णाशंगगनंघनार्द्धविमलंकुष्ठञ्चगंधामृता
मेथीमोचरसोविदारिसुषलीगोक्षूरकंक्षूरकम् ।
भीरुश्चैवकशेरुकंयमनिकातालांकुरंधान्यकं
यष्टीनागबलाबलामधुरिकाजातीफलंसैन्धवम् ॥ १०२ ॥
भृंगीकर्कटशृंगकंत्रिकटुकंजीरद्वयं चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवंगजकणाद्राक्षाशटीकटफलम् ।
शाल्मल्यंत्रिफलत्रिकंकपिभवंबीजंसमंचूर्णयेत् ।
चूर्णार्द्धाविजयासिताद्विगुणितामध्वाज्यमिश्रनयेत् ॥ १०३ ॥
कर्षार्द्धगुडकंनिधायविधिनाराजासदासेवयेत्
पेयाक्षीरसिताचवीर्यकरणेस्तम्भोऽप्ययंकामिनाम् ।
वामावश्यकरःसुखातिसुखदःसर्वांगनाद्रावकः
क्षीणेपुष्टिकरःक्षयक्षयकरोनानामयध्वंसकः ॥ १०४ ॥
कासश्वासमहातिसारशमनोमंदानलोद्दीपको
दृष्टःसिद्धिफलोऽरसायनवरःकामेश्वरोदुर्लभः ॥ १०५ ॥

अर्थ—कूठ, गंडक, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकंद, मुसली, गोखरू, तालमखाना, सतावर, कशेरू, अजवायन, ताडके, अंकुर, धानियों, मूलेठी, गंगेरन, खिरौटी, सौंफ, जायफल, सैंधानोन, अतीस, काकडासिंगी, त्रिकुटा, जीरा, कालाजीरा, चीता, चातुर्जातक, गजपीपल, दाख, कन्नूर, कायफल, सेमलकीजड, त्रिफला और कौछके बीज, प्रत्येकका चूर्ण समानभाग, सब-

चूर्णसे आधाभाँगका चूर्ण, भाँगसे आधा अभ्रक और अभ्रकसे आधा रूपा-
माखीकाचूर्ण, सबचूर्णसे दुगुनी खाँड और कुछ थोडासा सहत तथा घृत ले
सबको मिलाकर एक एक तोलेके मोदक बनालेवे । प्रतिदिन १ एकमोदक
खाय, और ऊपरसे मिश्रीसंयुक्त दूधका अनुपानकरे, इससे वीर्यस्तम्भन
होताहै, स्त्रियें वशीभूत होजातीहैं, अत्यन्त सुखहोताहै, सर्वस्त्रियें द्रवीभूत
होजातीहैं, क्षीणमनुष्योंको पुष्टकरैहै, क्षयरोगको क्षय करैहै, नानाप्रकारके
रोगोंको नष्ट करैहै, तथा खाँसी स्वास और अतीसारादि रोगोंको दूर करैहै,
मन्दाग्निको दीपन करैहै इसका फल देखा हुआहै यह उत्तम कामेश्वर रसायन
दुर्लभहै ॥ १०२-१०५ ॥

अथ बृहत्कामेश्वरमोदकः ।

निश्चन्द्रिकाभ्रपलमात्रभागलौहस्यवङ्गस्यतदूर्ध्वभागम् ।
जातीफलकोषफलञ्चजीरंयमानिकाचाथपलप्रमाणा १०६॥
कर्षद्विभागत्रिसुगंधिकुष्ठमांसीमुराकुन्दुरुदेवदारुः ।
चाम्पेयसिन्धूद्रवबालचव्यंसौभाग्ययष्टिमधुग्रन्थिपर्णम् १०७
तालीशकर्पूरलवंगकान्ताकाकोलिकायुग्मकटुत्रिकञ्च ।
शैलेयपद्मसरलसपुष्पहंस्तीकणावत्सकबीजधान्यम् १०८॥
शृंगीशताह्वात्रिफलाथमेथीश्यामाब्दकंकृष्णतिलकशेरुः ।
शक्राशनंतत्सदृशांविभागंसिताचशुभ्राद्रिगुणाविधेया १०९
तत्पाकवेत्ताविधिवद्विधानंलब्ध्वाधिवासंनवनागरेण ॥
मध्वाज्यमिश्रंवटकप्रमाणंखादेन्नरःकाण्डकमंगलेन ॥
सर्वामयानांशमनंविधेयंविशेषतःसंग्रहकोष्ठदोषम् ॥११०॥

अर्थ—निश्चन्द्र अभ्रक चार तोले, लोहा दोतोले, वंग दोतोले जायफल, जावित्री,
जीरा और अजवायन प्रत्येककाचूर्ण, ४ चारतोले, छोटी इलायची, दालचीनी,
तेजपात, कूठ, कपूरकचरी, कुँदुरु, बालछड, देवदारु, सोनेके बरक, संधानोन,
सुगंधबाला, चव्य, सुहागा, गटिवन, तालीशपत्र, कपूर, लौंग, फूलप्रियंगु,
काकोली, क्षीरकाकोली, सोंठ, मिरच, पीपल, भृगुछरीला, पद्मास, धूपमरल,
गजपीपल, इन्द्रजी, धनियाँ, काकडाशिंगी, सोया, हरड, बहेडा, आमला, मेथी, करि
यावासाऊ, नागरमोथा. कालेतिल और कशेरु प्रत्येकका चूर्ण दो कर्ष, भाँगका-

चूर्ण सबकी समान और सब चूर्णसे दुगुना बूरा ले सबको मिलाकर पाकको जाननेवाला उत्तम विधिसे पकावे, फिर नये सोंठकी वासना देकर घृत और सहत मिलाकर बडेकी बराबर मोदक बनालेवे । प्रतिदिन १ एक मोदक खाय । इससे सर्व प्रकारके रोग दूर होतेहैं और विशेष करके यह कोष्ठदोषको हरैहै ॥ १०६-११० ॥

अथ कामाग्निसंदीपनमोदकः ।

कर्षोरसोगंधकमभ्रकश्चित्रिक्षारचित्रेलवणानिपञ्च ।

शटीयमानीद्वयकीटहारितालीशपत्राण्यपरंद्विकर्षम् १११ ॥

जीरंचतुर्जातलवंगजातीफलश्चकर्षत्रयमेवमन्यत् ।

सवृद्धदारंकटुकत्रयंचतथाचतुःकर्षमिदंनिबोध ॥ ११२ ॥

धन्याकयष्टीमधुरीकशेरुकर्षाःपृथक्पंचवरीविदारी ।

वरेभकर्णेभकणात्मगुप्ताफलंतथागोक्षुरबीजयुक्तम् ॥ ११३ ॥

सबीजपत्रेन्द्ररजःसमानंसमासिताक्षौद्रघृतंचतुल्यम् ।

कर्षैकमिन्दोरथमोदकन्तत्कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम् ११४

अर्थ-पारा, गंधक, अभ्रक, सज्जी, सुहागा, जवाखार, चीता, कालानोन, सैंधानोन, विरियासंचरनोन, सांभरनोन सामुद्रलवण, कचूर, अजवायन, अज-मोदा, बायबिडंग और तालीशपत्र प्रत्येक १ एक कर्ष, जीरा २ दो कर्ष, चातुर्जातक प्रत्येक २ दो कर्ष और लौंग २ दो कर्ष जायफल २ दो कर्ष, विधारा ३ तीन कर्ष सोंठ ३ तीन कर्ष, मिरच ३ तीन कर्ष, पीपल ३ तीन कर्ष, धनियाँ, मुलेठी, सौंफ और कशेरू, प्रत्येक ४ चार कर्ष, शतावर, विदारीकन्द, हरड, बहेडा, आमला, हस्तिकर्पा (पलाश) गजपीपल, कौंछकेबीज, और गोखरूकेबीज प्रत्येक ५ पाँच कर्ष, बीज और पत्रोंसमेत भाँगका चूर्ण सबकी बराबर, बूरा, लवकी तुल्य तथा घी और सहत प्रत्येक समानभाग, कपूर एक कर्ष सबको एकत्र करके मोदक बनालेवे इनमोदकोंको सेवन करनेसे कास और यक्ष्मादिरोग दूर होतेहैं ॥ १११-११४ ॥

अथाम्रखण्डम् ।

पक्वचूतरसद्रोणपात्रस्याच्छुद्धखण्डतः ।

घृतमर्द्धततोम्रायंचतुर्थाशश्चतुर्दशपरम् ॥ ११५ ॥

तदद्धमरिचस्यापितदद्धापिप्पलीस्मृता ।
तोखण्डसमं ग्राह्यं सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ११६ ॥
विपचेन्मृन्मये पात्रे यावद्वी प्रलेपनम् ।
चूर्णान्येषां ततो दद्यात्पत्रं पलचतुष्टयम् ॥ ११७ ॥
ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं धन्याकं जीरकद्वयम् ।
ऋषणं जातितालीशं चूर्णमेषां पृथक्पलम् ॥ ११८ ॥
त्वगे लानागपुष्पाणां प्रत्येकञ्च पलं तथा ।
सिद्धशीतेन मधुना प्रस्थाद्धं सर्वमेकतः ॥ ११९ ॥
सन्धाय पिष्टवत्कृत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
भोजनादग्रतः खादेत्पलमेकं प्रमाणतः ॥ १२० ॥
शतं वापिशतार्द्धं वारमेत्स्त्राणां पुमानिह ।
गच्छेत्कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलांस्त्रियम् ॥ १२१ ॥
संसेव्य भेषजं ह्येतद्वन्ध्यायां जनयेत्सुतम् ।
वीरं सर्वगुणोपेतं शतायुश्च ह्यनामयम् ॥ १२२ ॥
कन्याप्रदायिनी चैव ददाति सुतमुत्तमम् ।
मृतवत्सा च यानारीयाचगर्भोपधातिनी ॥ १२३ ॥

अर्थ—पक्के आमोंका रस ३२ बत्तीससेर, बूग ४ चारसेर घी १८ अठा-
रहसेर, सांठकाचूर्ण ९ नौसेर, काली मिरचांका चूर्ण ४॥ साढेचारसेर, पीप-
लका चूर्ण २॥ मवादो सेर, और जल ४ चारसेर, इन सबको एकत्र करके एक
उत्तम मट्टीके बासनमें पकावे, जब पकते पकते गाढा होजाय तब तेजपातका
चूर्ण ४ चार पल, गठिवन, लाल, चीतेकी जड़, नागर्मोथा, धनियाँ, जीरा-
काला जीरा, सांठ, मिरच, पीपल, चमेलीके पत्ते, तालीशपत्र, दालचीनी,
छोटी इलायची और नागकेशर प्रत्येक चार चार तोले ले चूर्णकर मिलादेवे,
शीतल होनेपर १ एक सेर सहित मिलाकर सबको एकजीवकर चिकने बासनमें
भरके रखदेवे । प्रतिदिन भोजनसे प्रथम चार तोले खाय । इसके प्रभावसे
मनुष्य १०० सौ, या ५० पंचाम स्त्रियोंसे रम सकताहै, तथा कंदर्पके समान
कामान्ध होकर रागके वेगसे आकुल स्त्रियोंपे जाताहै । बन्ध्या स्त्रियें भी वीर,

सर्वगुण सम्पन्न, रोगरहित और १०० सौ वर्षकी आयुवाले पुत्रको उत्पन्न करतीहैं । जिन स्त्रियोंके कन्या उत्पन्न होतीहैं, जिसके बालक नहीं जीतेहैं, और जिसका गर्भ पतित होजाता है, उनके इसके प्रभावसे उत्तम सर्व गुणालंकृत और दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ११५-१२३ ॥

अथ मदनसंदीपनचूर्णम् ।

गोक्षुरक्षुरकोमेघोमर्कटीशतपुत्रिका ।

मधुकंक्षीरकाकोलीतालमूल्यमृताम्बुच ॥ १२४ ॥

शाल्मलीलौहगगनेविदारीतालमस्तकम् ।

हस्तिकर्णोबलाधात्रीजातीफलकशेरुकम् ॥ १२५ ॥

शृंगाटकोमासपर्णीभृंगराट्कुङ्कुमंवचा ।

शिलाजतुशिवाबीजंपारदंधातुमाक्षिकम् ॥ १२६ ॥

वटस्यकोमलापादाएलायष्टिकतण्डुला ।

रक्तशालिंचगोधूममासकोयवकस्तथा ॥ १२७ ॥

एतच्चूर्णीकृतंसर्वसितशर्करयासमम् ।

विडालपदकंखादेत्सर्पिषामधुनासह ॥ १२८ ॥

शीतंपयोऽनुपानञ्चकामिनीकामयेन्नरः ।

वीर्यहीनोभवेद्यस्तुजीर्णोव्याधिप्रपीडितः ॥ १२९ ॥

प्रमेहीमूत्रकृच्छ्रीचक्ष्मीदोषात्पतितध्वजः ।

साशीतिवार्षिकोवृद्धोयुवेवरमतेऽङ्गनाः ॥ १३० ॥

पुत्रंजनयतेवीरमरोगंदीर्घजीविनम् ।

भेषजैर्विविधैः किंस्यादन्यैश्चशतसंख्यकैः ॥ १३१ ॥

फलंनकिंचित्तत्रास्तिकेवलंगौरवंबहु ।

बालसस्यंयथातोयैर्वर्द्धतेचदिनेदिने ॥ १३२ ॥

तथानेननृणांदेहःपुष्टोभवतिनान्यथा ।

योऽत्तिमण्डलमात्रन्तुसगच्छेत्प्रमदाशतम् ।

जगतस्तुहितार्थायचूर्णमदनदीपनम् ॥ १३३ ॥

अर्थ—गोखरू, तालमखानेके बीज, नागरमोथा, कौंछके बीज, शतावर, मुलेठी, क्षीरकाकोली, मुसली, गिलोय, सुगंधबाला, मोचरस, लोहा, अभ्रक, विदारीकन्द, ताडकेअंकुर, हस्तिकर्ण (पलाश) के बीज, मषवन, भांगरा, केशर, बच, शिलाजीत, गंधक, पारा, सोनामाखी, बड़की नवीन दाढ़ी, इलायची, बायबिडंग, मुलेठी, रक्तशालि, गेहूँ, उडद और जौ प्रत्येक औषधिका चूर्ण समानभाग ले और सबकी बराबर बूरा मिलालेवे, प्रतिदिन २ दो तोले प्रमाण सहित और घीमें मिलाकर खाय, ऊपरसे शीतल दूधका अनुपान करे । यह मदन-सन्दीपन चूर्ण, कामिनियोंको प्रसन्न करताहै । तथा इसमें वीर्यहीन और रोगोंसे पीडित वृद्ध मनुष्य भी तरुण होजाताहै । प्रमेही, मूत्रकृच्छ्ररोगी, जिसका अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे लिंग शिथिल, होगयाहो, वह ८० वर्षका वृद्ध भी जवानोंकी तरह स्त्रियोंमें रमतहै । और इस चूर्णको सेवन करनेसे वीर, निरोगी और दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होताहै । नानाप्रकारकी सैकड़ों औषधियोंके सेवन करनेसे क्या फल होताहै । केवल उनका गौरव ही बड़ा है । जैसे—बालसेती जलसे दिन दिन बढ़तीहै, इसीप्रकार इस चूर्णको सेवन करनेसे मनुष्योंके शरीरकी पुष्टि होतीहै । इसको अडतालीस दिन नियमसे सेवन करे तो १०० सौ स्त्रियांसे मैथुन करनेकी शक्ति होजातीहै । यह संसारके उपकारके लिये अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ १२४—१३३ ॥

अथ बृहदश्वगंधाघृतम् ।

अश्वगंधापलशतंशुभदेशसमुत्थितम् ।

पुण्येहनिसमाहृत्यसाधयेच्छृङ्गकुट्टितम् ॥ १३४ ॥

द्रोणेऽम्भसिशनैस्तावद्यावत्पादावशेषितम् ।

सर्पिःप्रस्थंपचेत्तेनगव्यंक्षीरञ्चतुर्गुणम् ॥ १३५ ॥

कषायंछागमांसस्यदद्याच्छतद्वयस्यच ।

कल्कानिश्लक्ष्णपिष्टानिकर्पमात्राणिदापयेत् ॥ १३६ ॥

काकोलीयुग्मकंमृद्वीद्विमेदेद्रेचजीरके ।

स्वयंगुप्तामृषभकावेलामधुकमेवच ॥ १३७ ॥

मृद्वीकसूर्पपण्यौचजीवन्तीचपलाबला ।

नारायणीविदारीचदत्त्वासम्यक्विपाचयेत् ॥ १३८ ॥

सितामाशिकयोःशीतेगृहीयात्कुडवेपृथक् ।

लिह्यात्पाणितलंभुक्त्वापरिहारविवर्जितम् ॥ १३९ ॥

क्षीणेन्द्रियानष्टशुकावृद्धाबालास्तथाऽबलाः ।

हीनमांसाश्वयेकेचित्प्राश्येदंमात्रयाघृतम् ॥ १४० ॥

अर्थ—घी २ सेर, दूध ८ आठसेर, काथके लिये उत्तम देशमें उत्पन्न हुई और शुभ दिनमें उखाड़ी हुई असंगंध १२ ॥ सादेबारहसेर, जल ३२ बत्तीससेर, शेष ८ आठसेर, बकरेके मांसका काथ २५ पचीससेर, तथा कल्कके लिये काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीरा, कालाजीरा, कौंछके बीज, जीवक, ऋषभक, इलायची, मुलेठी, दाख, हस्तिकर्ण (पलाश) के बीज, जीवन्ती, पीपल, खिरौंटी, शतावर और विदारीकन्द यह सब औषधि कुटी हुई प्रत्येक २ तोले ले सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे, शीतल होनेपर १ एक सेर बूरा और १ एकसेर सहत मिलादेवे । इसमेंसे प्रतिदिन २ दो तांले खाय और यथेष्ट भोजन करे । यह घृत क्षीण इन्द्रियवाले, नष्ट होगया है वीर्य जिनका, वृद्ध, बालक, निर्बल और हीन मांसवाले प्राणियोंको हितकारी है ॥ १३९-१४० ॥

अथाश्वगंधाद्यंघृतम् ।

शुभदिग्देशसमुत्थंमूलंशतमश्वगंधयोःशुद्धम् ।

पुण्येऽह्निसंक्षुण्णंविपचेद्गोणेऽम्भसांविद्रान् ॥

श्रेष्ठवाजीकरणेनिर्दिष्टंपूर्वमश्विभ्याम् ॥ १४१ ॥

अर्थ—घी २ दोसेर, दूध ८ आठसेर, काथके लिये असंगंधकी जड़ १२ ॥ सादेबारहसेर, जल ३२ बत्तीससेर, शेष ८ आठसेर, तथा, बकरेका मांस २५ पचीससेर, जल १२८ एकसौ अट्ठाईससेर, शेष ३२ बत्तीससेर और कल्कके लिये काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, कौंछके बीज, इलायची, मुलेठी, दाख, हस्तिकर्ण (पलाश) जीवन्ती, पीपल, खिरौंटी, विदारीकन्द और शतावर ये सब कुटेहुए प्रत्येक २ दो तोले ले यथाविधिसे घृतको सिद्धकरे, शीतल होनेपर १ एकसेर सहत और एकसेर बूरा मिलादेवे । इसको सेवन करनेसे नाना प्रकारके वीर्यदोष और विविध-प्रकारके कास आसादि रोग दूर होतेहैं ॥ १४१ ॥

अथ यौवनंवृतम् ।

सुरभिचाश्वगंधककृताञ्जलीकटुकीरजनीसमंसिद्धम् ।

गोमहिषीघृततुल्यंतैलसंसाधितांविधिना ॥ १४२ ॥

कुरुतेपारिणतवयसांविनितानांसप्तरात्रेण ।

स्थिरविपुलतुंगकठिनंस्तनयुगलमस्ययोगेन ॥ १४३ ॥

अर्थ—गायका घी १ एकसेर, भैंसका घी १ एकसेर, तिलका तेल २ दोसेर जल १६ सोलहसेर, तथा कल्के लिये दालचीनी, असगंध, लुई मुई, कुटकी और हलदी सब १ एकसेर ले यथाविधिसे सिद्धकरे इस औषधिके सेवन करनेसे अधिक उमरवाली स्त्रियोंके भी स्तन सात दिनमें स्थिर और पुष्ट होजाते, हैं ॥ १४२॥१४३ ॥

अथ गुडकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकात्पलशतंसुस्विन्ननिष्कुलीकृतम् ।

प्रस्थंचतिलतैलस्यतस्मिंस्तप्तेनिधापयेत् ॥ १४४ ॥

त्वक्पत्रधान्यकव्योषजीवकैलाद्वयानलम् ।

ग्रन्थिकंचव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १४५ ॥

शृंगाटकंकशेरुश्चप्रलम्बंतालमस्तकम् ।

चूर्णीकृतंपलाशंचगुडस्यतुलयापचेत् ।

शीतीभूतेपलान्यष्टौमधुनःसंप्रदापयेत् ॥ १४६ ॥

अर्थ—उबाले हुए और छिले हुए पेंठके टुकड़े १२॥ साढ़े बारह सेर, घी २ दोसेर, तिलकातेल २ दोसेर और गुड १२॥ साढ़ेबारह सेर ले सबको मिलाकर पकावे, जब पकते पकते गाढ़ा होजाय तब दालचीनी, तेजपात, धनियाँ, सोंठ, मिरच, पीपल, जीवक छोटी इलायची, बड़ी इलायची, चीता, पीपरा-मूल, चव्य, गजपीपल, सोंठ, सिंघाड़े, कशेरु, ताडका मस्तक और ताडके अंकुर, प्रत्येक चार चार तोले मिलादेवे, शीतल होनेपर एक १ सेर सहित मिलादेवे । इसको सेवन करनेसे कफ, पित्त, वातादि दोष नष्ट होते-हैं ॥ १४४—१४६ ॥

अथ मेथीमोदकः ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तजीरकद्वयधान्यकम् ।

कटूफलंपौष्करंशृंगीयमानीसैधवंविडम् ॥ १४७ ॥

तालीशकेशरंपत्रंत्वगेलाचफलंतथा ।

यावन्त्येतानिचूर्णानितावदेवचमेथिका ॥ १४८ ॥

संचूर्ण्यगुडकंकार्यपुरातनगुडेनतु ।

घृतेनमधुनामिश्रंखादेदग्निबलंप्रति ॥ १४९ ॥

अग्निचकुरुतेदीप्तंमासमेकंमहौषधम् ।

बलवर्णकरोह्येषस्वरसंधानकारकः ॥ १५० ॥

अर्थ—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, जीरा, काला-जीरा, धनियाँ, कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, अजवायन, सैधानोन, विरिया संचरनोन, तालीशपत्र, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, छोटी इला-यची और जायफल प्रत्येक एक भाग और मोथीका चूर्ण सबकी बराबर लेकर इनको पुराने गुडमें मिलाकर मोदक बनालेवे, यह सहत और घीमें मिलाकर अग्निका बलाबल देखकर खावे इससे एकमहीनेमें अग्निदीपन होतीहै, बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै और स्वर उत्तम होताहै ॥ १४७—१५० ॥

अथ महासुगंधितैलम् ।

कर्पूरागुरुचोचबोलनलिकालाक्षाशटीधातकी-

पुष्पैःसप्तदलैलवालुसरलाशैलेयमांसीप्लवैः ।

एलाकुंकुमरोचनादमनकश्रीवासजातीफलैः

कक्कोलक्रमुकाझटामदमुराकान्तालवंगामयैः ॥ १५१ ॥

तैलोशीरहरेणुकामलयजस्थौणेयचण्डानखै-

र्जातीकोषकुलीरपद्मकनतैःपृक्कान्वितैःपालिकैः ।

लाक्षायोजनवह्निलोध्रसलिलेतैलंएल्युडकं

तेनाभ्यज्यतनुंजरन्नपिपुमान्कान्तःप्रियावल्लभः ॥ १५२ ॥

अर्थ—तिलकातेल १६ सोलह सेर, लाखका काथ, मँजीठका काथ और लोधका काथ प्रत्येक १६ सोलह सेर, तथा कल्कके लिये अगर, कपूर, दाल-

चीनी, बोल, नलिका, लाख, कचूर, धायके फूल, सतवनकी छाल, एलुआ, धूप सरल, भूरिछरीला, बालछड, सुगंध तृण, इलायची, केशर, गोरोचन, दौना, राल, जायफल, शीतलचीनी, सुपारी, भुईआमला, कस्तूरी, कपूरकंचरी फूलप्रियंगु, लौंग, कूठ, शिलारस, खश, रेणुका, लालचंदन, गठिवन, चोरक-द्रव्य, नखी, जावित्री, काकडाशिंगी, पन्नाख, तगर और असवरग प्रत्येक कुटीहुई औषधि ४ चारतोले लेकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलकी मालिस करनेसे वृद्ध पुरुष भी स्त्रियोंका बलभ होजाताहै ॥ १५१॥१५२ ॥

अथ तालकतैलम् ।

हरितालोऽश्वगंधाचजलौकाघृष्टिकञ्चुकैः ।

तिलतैलपचेद्दीरोगोधामांससमन्वितम् ॥ १५३ ॥

तैलेनानेनलिंगस्यश्रवणस्यकुचस्यच ।

भगस्यचतथावृद्धिर्मर्दनान्नात्रसंशयः ॥ १५४ ॥

अर्थ—हरिताल, अमगंध, जोंक, सूकर और सांपकी केंचली तथा गोधाका मांस, इन सबके साथ तेलको पकाकर मर्दन करनेसे लिंग, कर्ण, स्तन और योनि बढ जातीहै ॥१५३॥१५४॥

अथ गर्भस्थितिहरयोगौ ।

रसांजनंहैमवतीव्यस्थाचूर्णीकृतंशीतजलेनपीतम् ।

रजोविनाशंनियतंकरोतिशंकांतथागर्भसमागमस्य ।

क्षिप्तेवराङ्गेसतिदुष्टरणडास्वप्नेऽपिवन्ध्यानहिगर्भशंकाम् १५५

अर्थ—रसौत, सफेद, बच और हरडका चूर्ण करके शीतल जलके संग पीवे तो रजस्त्राव निवारण होकर गर्भ रहनेकी शंका दूर होवे । ढाकके बीजोंका चूर्ण सहित और गायके घीमें मिलाकर ऋतुम्नानके समय योनिमें धिसेनेम व्यभिचारिणी और गण्डा स्त्रियोंके स्वप्नमें भी गर्भ नहीं रहता ॥ १५५ ॥

अथ हेमाङ्गमुन्दररसः ।

शुद्धसूतंसमंग्राह्यं सुवर्णगंधकं ह्ययः ।

कज्जलीकृत्ययत्नेनशुल्वपात्रेभिषग्वरः ॥ १५६ ॥

राजिकास्वरसंदत्त्वाकृष्णोन्मत्तस्यैवैरसम् ।

दत्त्वादत्त्वाप्रयत्नेनमर्दयेच्चत्रिभिर्दिनैः ॥ १५७ ॥

त्रिभिश्चसार्षपंतैलंदत्त्वाकल्कांवेमर्द्दये, ।
 शोषयेद्भानुभिर्भानोज्वालांदद्याच्छनैःशनैः ॥ १५८ ॥
 बालुकायंत्रयोगेतुउक्तोभेषजमध्यतः ।
 तावज्ज्वालाप्रदातव्यायावत्स्यादुष्णबालुका ॥ १५९ ॥
 स्वाङ्गशीतलतांज्ञात्वाकर्षयेत्तंभिषग्वरः ।
 ततो गुंजाप्रमाणेनमासंमासार्द्धकंपुनः ॥ १६० ॥
 ज्ञात्वारोगंशरीरंचयोजनीयंबुधैःसदा ।
 घृतेनमधुनासार्द्धमर्द्दयित्वातुखल्वके ॥ १६१ ॥
 रसंवाभक्षयेत्पश्चादाज्यंगव्यंगवांपयः ।
 सामान्येनतुकर्तव्यंचित्रकार्द्रकसैन्धवैः ॥ १६२ ॥
 रोगिणामनुपानीयंरसमाज्येनभोजनम् ।
 सुस्निग्धंनातिमधुरंमांसञ्चैवविहायसम् ॥ १६३ ॥
 भक्ष्यंछागादिकंमांसंद्वैत्वायस्यतुभक्षणम् ।
 एतेनापिविधानेनप्रातःप्रातर्निषेवयेत् ॥
 साध्यासाध्येषुरोगेषुतथाव्याधिचयेषुच ॥ १६४ ॥

अर्थ—शुद्धपारा, सोना, गंधक और लोहा यह सब समान भाग लेकर ताँबेके पात्रमें खरलकर कजली करे, इस कजलीको राईके रसमें और धतूरेके रसमें ३ तीन दिन खरलकरके पश्चात् सरसोंके तेलमें ३ तीन दिन खरलकर सूर्यकी तपनमें सुखावे, फिर बालुकायंत्रमें पकावे, जबतक बालू गरम न हो तबतक पकाता रहे, पश्चात् स्वांगशीतल चूर्ण करले । इस रसको एकरत्तीसे लेकर एक मासा पर्यंत अथवा आधे मासेपर्यंत रोग और शरीरको जानकर सदैव सेवन करे । अनुपान घृत, मधु, अदरकका रस, चीतेका रस सेंधानोन और औषधिके सेवनकरनेके पश्चात् बकरीका दूध पीना चाहिये । इस औषधिके ऊपर भोजनकरे । आकाशमें उड़नेवाले जीवोंका मांस और बकरी आदि पशुओंका मांस भक्षण करे । इसविधिसे प्रतिदिन प्रातःकाल इसको सेवन करे । इसके द्वारा बली पलितादि सम्पूर्ण साध्यासाध्यरोग दूर होतेहैं ॥ १५६-१६४ ॥

अथ कनककन्दर्परसः ।

पूर्वसिद्धेरसेक्षित्वारसपादन्तुकाञ्चनम् ।
विमर्द्यापिविधानेनसुपिष्टञ्चविनिक्षिपेत् ॥ १६५ ॥
कान्तवैक्रान्तयोरेवंक्षिप्तेतत्रविधानतः ।
मधुरत्रयसंयुक्तंमासमात्रंदिनेदिने ॥ १६६ ॥
लीङ्गानुपानंपातव्यंमन्दतप्तंगवांपयः ।
त्रिसप्तदिवसैःक्षीणोभवेदक्षीणधातुकः ।
उर्ध्वलिङ्गःसदातिष्ठेद्भावयेद्वनिताशतम् ॥ १६७ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हेमांगसुन्दर रसमें चौथाईभाग सोनेकी भस्म मिलाकर खरल करे, पश्चात् इसमें कान्तलोहेकी भस्म और वैक्रान्तकी भस्म मिलाकर घृत, बूरा और सहतके साथ सेवन करे और ऊपरसे किंचित् गरम दूध पीवे तो २१ दिनमें सम्पूर्ण ज्वरादिरोग दूर होवे तथा क्षीणधातुवाले पुष्ट होजातेहैं । और कामदेवकी अत्यन्त वृद्धि होतीहै ॥ १६५—१६७ ॥

अथ ताम्रपर्पटीरसः ।

रसगन्धकताम्राणांचूर्णकृत्वासमांशिकम् ।
पुटपाकविधौपक्तामधुनालोडयसंलिहेत् ॥
सर्वरोगहरंचैतत्पर्पटाख्यंरसायनम् ॥ १६८ ॥

अर्थ—पारा, गन्धक और ताँबा, समान भाग लेकर पुटपाकविधिसे पकाकर सहतमें आलोड़न करे। यह पर्पटाख्य रसायन सम्पूर्ण रोग नाशक है ॥ १६८ ॥

अथ पाण्डुरोगादिहररसः ।

जीर्णताग्रंरसंचैवगन्धकंचसुचूर्णितम् ।
स्वर्णमाक्षिकमादायधूस्तूरकरसेपचेत् ॥ १६९ ॥
यावत्पाकंतथाकृत्वाशास्त्रविन्मृदुवह्निना ।
त्रिफलापिण्डेनावेष्टयविधिवत्सर्पिषापचेत् ॥ १७० ॥
विमर्द्यमधुसर्पिर्भ्यान्नारिकेलंपिबेदनु ।

पाण्डुरोगंचकासंचज्वरांश्चविषमांस्तथा ॥

गुल्मप्लीहामयंचैवविनाशयतितत्क्षणात् ॥ १७१ ॥

अर्थ—तौबा; पारा, गंधक और सोनामाखी इनका चूर्ण करके धतूरेके रसमें मंद मंद अग्निसे पकावे, पश्चात् त्रिफलेसे वेष्टित कर विधि पूर्वक घृतकेसाथ पकावे । इस औषधिको घृत और सहतमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे नारियलका दूध पीवे तो पाण्डुरोग, खाँसी, विषमज्वर, गुल्म और प्लीहादिरोग दूर होंगे ॥ १६९-१७१ ॥

अथ शिलाजतूत्पत्त्यादिवर्णनम् ।

हेमाद्याःसूर्यसन्तप्ताःस्रवन्तिगिरिधातवः ।

जत्वाभंमृदुमृत्स्नाभंयन्मलंतच्छिलाजतु ॥ १७२ ॥

अनम्लंचाकषायञ्चकटुपाकेशिलाजतु ।

नात्युच्चशीतंधातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्यसम्भवः ॥ १७३ ॥

हेम्रोऽथरजतात्ताम्राद्वरंकृष्णायसादपि ।

मधुरञ्चसतिकंचजपापुष्पनिभंचयत् ॥ १७४ ॥

विपाकेकटुशीतंचतत्सुवर्णस्यनिःसृतम् ।

राजतंकटुकंश्वेतंशीतंस्वादुविपच्यते ॥ १७५ ॥

ताम्राद्वर्हिणकण्ठाभंतीक्ष्णोष्णंपच्यतेकटु ।

यच्चगुग्गुलुसंकाशंसतिकंलवणान्वितम् ॥ १७६ ॥

विपाकेकटुशीतंचसर्वश्रेष्ठंदायसम् ।

गोमूत्रगंधःसर्वेषांसर्वकर्मसुयौगिकाः ॥ १७७ ॥

रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुविशिष्यते ।

यथाक्रमंवातपित्तेऽपिःपित्तेकफेऽत्रिषु ।

विशेषेणप्रशस्यन्तेबलाहेमादिधातुजाः ॥ १७८ ॥

अर्थ—स्वर्ण, रूपादि पर्वतोंकी सम्पूर्ण धातु सूर्यकी धूपमें सन्तप्त होकर लाखकी समान और कोमल मिट्टीकी समान मैलको छोड़ती हैं उसको शिला-जीत कहतेहैं । यह शिलाछाँट खदा और कपैला नहीं है, पचनेमें कटु, कुछ

शीतल और गरम है । यह सुवर्ण, रजत, ताँबा और लोहा इन चार प्रकार-
की धातुओंसे उत्पन्न होता है । जो शिलाजीत सुवर्णसे उत्पन्न होता है । वह
मधुर, कडवा, जवाके फूलके समान वर्णवाला, पचनेमें कटु और शीतल है ।
जो शिलाजीत चांदीसे उत्पन्न होता है वह कटु, सफेदरंगका, शीतल और
पचनेमें मधुर होता है । जो शिलाजीत ताँबेसे उत्पन्न होता है वह मोरके कंठके
समान रंगका, तीक्ष्ण, गरम और कटु रसवाला होता है । जो शिलाजीत लोहेसे
उत्पन्न होता है वह गुगुलुकी समान रंगवाला, कडवा और नमकीन पचनेमें
चरपरा और शीतल है यह सबोंमें श्रेष्ठ है । गोमूत्रकी समान गंधवाले सर्व प्रकारके
शिलाजीत सर्व कर्मोंमें लाने चाहिये, परन्तु रसायन कर्ममें लोहेसे उत्पन्न
हुवा शिलाजीत लेना चाहिये । सुवर्णसे उत्पन्न हुवा शिलाजीत वातपित्तरो-
गमें, चांदीसे उत्पन्न हुवा शिलाजीत पित्तकफ रोगमें, ताँबेसे उत्पन्न हुवा
शिलाजीत कफज रोगमें और लोहेसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत सान्निपातिक
रोगमें देना चाहिये ॥ १७२-१७८ ॥

अथ शैवसिद्धान्तोक्ताशिवागुटिका ।

कालेरवितापाढ्येकृष्णायसजंशिलाजतुप्रवरम् ।
त्रिफलारससंस्कृतं त्र्यहं शुष्कं पुनः शुष्कम् ॥ १७९ ॥
दशमूलस्य गुडूच्यारसेवावासायास्तथापटोलस्य ॥
मधुकरसेगोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत्क्रमशः ॥ १८० ॥
एकाहं क्षीरेण तु तत्परं भावयेत्पुनः शुष्कम् ।
सप्ताहं भाव्यं स्यात्काथेनैषां यथा लाभम् ॥ १८१ ॥
काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरीद्राक्ष ।
ऋद्धियुगर्षभकवीरामुण्डातिकां शुभ्रत्यूच ॥ १८२ ॥
रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिंगचव्यान्दाः ।
कटुकाशृंगीपाठाचैतानि पलाशिकानि कार्याणि ॥ १८३ ॥
आभ्रेण साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि ।
गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दशषट्द्विपलंच १८४
विश्वाधात्रीमागधिकाकर्कटारव्यमरिचानाम् ।
चूर्णपलंचविदार्यास्तालीशपलानि चत्वारि ॥ १८५ ॥

षोडशसितापलानिचत्वारिधृतस्यमाक्षिकस्य द्यौ ।

तिलतैलस्यद्विपलंचूर्णार्द्धपलानिपंचानाम् ।

त्वक्क्षीरपत्रत्वग्नागैलाभिःमिश्रयित्वातुतम् ॥ १८६ ॥

अर्थ—कृष्ण लोहेसे उत्पन्न हुए शिलाजीतको ग्रीष्म ऋतुमें संग्रहकर रखे, फिर उस शिलाजीतको त्रिफलेके काथमें ४ चार दिन भावनादेकर धूपमें सुखावे, पश्चात् दशमूल, गिलोय, अड्डसा, पटोल, मुलेठी और गोमूत्र इनके काथमें या रसमें ३ तीन दिन भावनादेवे, पश्चात् दूधमें १ एक भावना देकर धूपमें सुखालेवे, पश्चात् काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, शतावर, दाख, ऋद्धि, वृद्धि ऋषभक, घीकुवार, गोरखमुंडी, रास्ना, पोहरकरमूल, लालचीता, दन्ती गजपीपल, कुडा, चव्य, नागरमोथा, कुटकी, काकडाशिगी और पाठ प्रत्येक चार चार तोले लेकर ३२ बत्तीससेर जलमें औटावे, जब चौथाभाग शेषरहे तब उतारकर इसमें ७ सात दिन भावनादेवे, इसप्रकार शुद्ध कियाहुवा और भावना दियाहुवा शिलाजीत १६ सोलहपल, सोंठ, आमला, पीपल, काकडाशिगी और कालीमिरच प्रत्येकका चूर्ण २ दो पल, विदारीकंदका चूर्ण १ एक पल, तालीशपत्रका चूर्ण ४ चार पल, बूरा १६ सोलहपल, घी ४ चार पल, सहत ८ आठपल, तिलका तेल २ दो पल, और बंशलोचन, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर और इलायची यह सब दो तोले ले इन सबको मिलाकर दो दो तोलेकी गोली बनाकर धूपमें सुखा चमेलीके फूलोंमें वसाकर एक उत्तम वासनमें भरके रखदेवे, प्रतिदिन १ एक गोली खाय और ऊपरसे दूध, उडदादिकोंका यूष, अनारकारस, सुरा, आसव, मधु, शीतल जलादि पान करे । इसके ऊपर यथेष्ट भोजन करे । इससे वात-कृमि, कासादि सर्वप्रकारके रोग नष्ट होतेहैं १७९-१८६ ॥

अथाष्टाङ्गधृतम् ।

मण्डूकीसजटांसशंखकुसुमांसब्रह्मसौवर्चलां

श्वेतांवागुजिकांशतावरियुतांब्रह्मींशुडूचीन्तथा ॥

पिष्ट्वांशैःपलिकैरिमानिविधिवद्ब्याणिपच्यान्नरः

सर्पिःप्रस्थमथाढकेनपयसायुक्तंपचेद्युक्तिः ॥ १८७ ॥

नाम्नाष्टाङ्गमिदंदिवीवतुत्रियत्ख्यातंपिबेच्चामृतं ।

साग्रंग्रन्थसहस्रमेकविसेनैवाखिलंधारयेत् ॥ १८८ ॥

अथ कामदीपकरसः ।

निषेधान्निधनंयातिकरणात्कामदेववत् ॥ १९१ ॥

अथ कामदूतरसः ।

कुर्याद्वित्यंरम्यकान्ताविनोदं हृत्वा दिव्यकामदेवं रसेन्द्रम् १९५॥

अर्थ—पारा, गंधक और कान्तलोहेकी भस्म समभाग लेकर सेमलके रसमें एकप्रहर खरलकर गोला बना घृतके साथ कांचकी कुप्पीमें भरके विदारीकन्द और पानोंके रसमें डालकर एकदिन पकावे । इस औषधिकी घृत और सहतके साथ सेवन करे, पश्चात् दूध और बूराका अनुपान करे । इसपै तित्त, रूक्ष और अत्यंत खट्टे पदार्थ त्याग देवे । खांड, आमला और सेमल इनको दूधके साथ सेवन करे । इससे अत्यन्तवीर्यपुष्टि और रतिशक्ति बढ़ती-है ॥ १९२-१९५ ॥

अथ पूर्णचन्द्ररसः ।

सूतगंधचाश्वगंधागुडूचीयष्टिस्तोथैरेकघसंनिघृष्य ।
 क्षुद्रंशंखंमौक्तिकंलौहकिट्टंभस्मीभूतंसूततुल्यंचदद्यात् १९६
 भूकूष्माण्डैरेकघसंविघृष्यगोलंकृत्वाभूधरेतंपुटेच ।
 चूर्णकृत्वानागवल्लीरसेनदद्यादेवंमर्दयित्वाचनिष्कम् १९७
 मध्वाज्याभ्यांपूर्णचंद्रन्तुयुक्तंपुष्टिर्वीर्यदीपनंचैवकुर्यात् ।
 योज्यंप्रायःपित्तरोगेग्रहिण्यामशोरोगेसेवयेद्वोलयुक्तम् ।
 स्त्रीणांतापेशाल्मलीनीरयुक्तंमात्रामानंकालदेशंविभज्य १९८

अर्थ—पारा और गन्धकको एकदिन असगंध, गिलोय और मुलेठीके काथमें भावना देवे, पश्चात् इसमें पारेकी समान क्षुद्रशंख, मोती और मण्डूरको मिलाकर एकदिन विदारीकंदके रसमें खरलकर गोला बना भूधरयंत्रमें पुटपाक करके चूर्ण करले । फिर इसको पानोंके रसमें खरलकर सहत और घीके साथ सेवन करे तो पुष्टि, तथा वीर्यकी वृद्धिहो, अग्निदीपनहो, पित्तरोग, संग्रहणी और बवासीर रोगमें घोल (जलके विना मथा हुआ दही) के साथ सेवन करनेसे रोगमुक्त होताहै और स्त्रियोंके ताप होय तो सेमलके रसके साथ सेवन करे ॥ १९६-१९८ ॥

अथ बृहत्पूर्णचन्द्रोरसः ।

द्विकर्षशुद्धसूतंचगंधकञ्चद्विकार्षिकम् ।
 लौहभस्मपलञ्चाभ्रंजारितञ्चपलांशिकम् ॥ १९९ ॥
 द्वितोलंरजतंचैववंगभस्मद्विकार्षिकम् ।
 सुवर्णतोलकंचैवताम्रकांस्यंचतत्समम् ॥ २०० ॥

जातीफलचन्द्रपुष्पमेलाभृंगश्वजीरकम् ।

कर्पूरवनितामुस्तंकर्षकर्षपृथक्पृथक् ॥ २०१ ॥

सर्वखलवतलेक्षिष्वाकन्यारसविमर्दितम् ।

भावयित्वावरातोयेकदुकानारसैस्तथा ॥ २०२ ॥

एरण्डपत्रैःसंवष्टयधान्येरात्रिन्दिनोपितम् ।

उद्धृत्यमर्दयित्वातुवाटिकांचणसंमिताम् ॥ २०३ ॥

खादेच्चपर्णखण्डेनसंयुक्तांव्याधिनाशिनीम् ।

सर्वव्याधिविनाशश्चकाशीनाथेनानिर्मितः ॥ २०४ ॥

अर्थ—पारा २ दोकर्ष, गंधक २ दोकर्ष, लोहा ४ चारतोले, अभ्रक ४ चारतोले, चाँदी २ दो तोले, वंग २ दो कर्ष, सोना १ एकतोला, ताँबा १ एकतोला, काँसा १ एकतोला, जायफल, नागकेशर, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियंगु और नागरमोथा प्रत्येक एकएक कर्ष ले इनको एकत्र पीसकर घीकुवारके रसमें खरल करे फिर त्रिफलेके काथमें १ एकदिन भावना देकर १ एकदिन त्रिकुटेके काथमें भावना देवे, पश्चात् इसको अरंडके पत्रोंमें वेष्टित कर एकदिन धानांके ढेरमें गाढ़देवे, फिर निकालकर चनेकी बराबर गोली बनालेवे प्रतिदिन १ एकगोली पानके टुकडेमें रखके खाय, इससे सर्व प्रकारके रोग दूर होतेहैं ॥ १९९-२०४ ॥

अथाभिनवकामदेवरसः ।

तोलकैकंसमादायपृथग्गंधकसूतयोः ।

रक्तोत्पलदलाम्भोभिर्मर्दयेद्विवसत्रयम् ॥ २०५ ॥

मर्दयित्वापुनर्देयंगंधमासञ्चतुष्टयम् ।

तस्यैवपत्रतोयेनपुनर्दत्त्वाचगंधकम् ॥ २०६ ॥

शंखिन्याश्चापितोयेनरुद्धाकाचघटेदृढे ।

ततस्तुबालुकायत्रेपचेद्यामत्रयंततः ॥ २०७ ॥

काचकुप्याःसमाकृष्यसिद्धसूतमतःपरम् ।

खादेत्तुरक्तिकापंचरोगैराक्रान्तमानवः ॥ २०८ ॥

भोजनपूर्ववद्देयंयत्नतःसततंभिषक् ।

दुर्बलंवपुरत्यर्थमल्लवजायतेनृणाम् ॥

मासेनैकेनसूतेन्द्रःपित्तजान्नाशयेद्भृदान् ॥ २०९ ॥

अर्थ—१ एक तोले पारा, और १ एकतोले गंधकको एकत्र लाल कमलके पत्तोंके रसमें तीन ३ दिन खरलकरे, पश्चात् ४ चारमासे गंधक मिलाकर फिर लाल कमलके पत्तोंके रसमें खरल करे, तदनंतर ४ चारमासे गंधक मिलाकर शंखपुष्पीके रसमें खरल कर कांचकी कुप्पीमें भरके वालुकायंत्रमें ३ तीन प्रहर पकावे । मात्रा ५ रत्तीकी है । इससे १ एक महीनेमें सर्व प्रकारके पित्तविकार दूर होजातेहैं, और दुर्बल मनुष्योंका मलकी समान शरीर होजाताहै । भोजन पूर्व रसकी समान जानना ॥ २०५-२०९ ॥

अथ मदनसुंदररसः ।

माक्षिकंधातुमाक्षिकलौहचूर्णशिलाजतु ।

पारदंचविडंचैवगन्धकञ्चसमंसमम् ॥ २१० ॥

घृतेनभावयित्वातुपात्रेकृत्वातुचायसे ।

विडालपदमात्रन्तुभक्षयेच्चपुनःपुनः ॥ २११ ॥

मत्स्याण्डंतिलपिष्टंचघृतेनचपरिप्लुतम् ।

क्षीरेणानुपिबेद्रात्रौशर्करामधुमिश्रितम् ॥ २१२ ॥

मासमात्रपिबेन्नित्यंवीर्यवृद्धयेदिनेदिने ।

सपुमात्रमयेन्नारीमजस्रंचटकोयथा ॥ २१३ ॥

अर्थ—सोनामाखी, रूपामाखी, लोहेका चूर्ण, शिलाजीत, पारा, बिरिया-संचरनोन, और गंधक समान भाग लेकर, लोहेके वासनमें घांकी भावना देवे। मात्रा २ दो कर्षकीहै । इसपै मछलीके अण्डे और तिलोंकी पिट्टीको घृतमें मिलाकर खावे और रातको दूधमें शर्करा और सहत मिलाकर एकमहीने पर्यन्त सेवन करे । इससे प्रतिदिन वीर्यकी वृद्धि होतीहै । इसको सेवन करनेसे बारंबार मैथुन करनेकी इच्छा होतीहै ॥ २१०-२१३ ॥

अथ कामदीपकरसः ।

गंधकस्यतुतोलैकंकृत्वावैतण्डुलाकृतिम् ।

दत्त्वाभृंगद्रवरौद्रेभावयेदिनसप्तकम् ॥ २१४ ॥

तच्चूर्णप्रक्षिपेत्तत्रप्रत्येकंसासकद्वयम् ।

जातीफलस्यकोषस्यतथाचंद्रलवंगयोः ॥ २१५ ॥

ततःसगुडकंकृत्वातस्यगुंजाचतुष्टयम् ।

अभ्यर्च्यभास्करंप्रातर्भक्षयेत्प्रत्यहंततः ॥ २१६ ॥

आर्द्रकंसैन्धवोपेतंमरिचस्यचसप्तकम् ।

तच्चानुचर्वणंकृत्वापिबेत्क्षीरपलद्वयम् ।

अनेनैवप्रयोगेणस्थविरोऽपिगुवायते ॥ २१७ ॥

अर्थ-१. एकतोले गंधकको लेकर चावलोंकी समान छोटे छोटे टुकड़े कर-
लेवे, पश्चात् भांगरेके रसमें ७ सातदिन भावना देकर चूर्ण करलेवे, फिर इस
चूर्णमें जायफल, जावित्री, कपूर और लौंग प्रत्येक दो दो मारामे मिलाकर चार
चार गुंजाकी गोली बनालेवे । सूर्यदेवकी पूजा करके प्रतिदिन १ एकगोली
खाय, उपरमे अदरक, मेंधानोन, सातकाली मिर्चांका चूर्ण, इनको चावे
और दो पल दूध पीवे इसको सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य स्त्रीसंसर्गकी इच्छा
करताहै ॥ २१४-२१७ ॥

अथ वसन्तकुसुमाकररसः ।

पृथग्द्वौहाटकंचन्द्रत्रयोवंगाहिकान्तकम् ।

चत्वारिशुद्धमध्वप्रवालंमौक्तिकन्तथा ॥ २१८ ॥

भावनागव्यदुग्धेनभावनेश्वरसेनच ।

वासालाक्षारसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥ २१९ ॥

शतपत्रसेनैवमालत्याःकुसुमोदकैः ।

पश्चान्मृगमदैर्भावंसुगन्धिरससम्भवैः ॥ २२० ॥

गुंजाद्रयमिदंसेव्यंसितामध्वाज्यसंयुतम् ।

मेहघ्नंकान्तिदञ्चैवकामदंपुष्टिदन्तथा ॥ २२१ ॥

अर्थ-सोना २ दोभाग, चाँदी २ दोभाग, वंग ३ तीनभाग, कान्त लोह ३ तीन
भाग, अभ्रक ४ चार भाग, मोती ४ चार भाग, मूँगा ४ चार भाग इन सबको
एकत्र पीसकर गायका दूध, ईखका रस, अड़मेका रस, लाम्बका रस, सुगंध-
बालेका रस, केलेके फूलका रस, मोच, कमलके पत्तांका रस, मालतीके
फूलोंका रस और कस्तूरीका रस इन सर्वरसोंमें एक एक बार भावना देवे। प्रति-
दिन २ दो रत्ती प्रमाण बूरा सहत और घीमें मिलाकर सेवन करे। यह प्रमेह-
नाशक, कान्तिजनक, कामको देनेवाला और पुष्टिको करनेवालाहै: २१८-२२१

अथ कामकलाख्योरसः ।

मृतसूताभ्रकंस्वर्णवाजिगंधामृतारसैः ।
 मुसलीकदलीकन्दद्रवैस्तंमर्दयेद्दिनम् ॥ २२२ ॥
 रुद्धामृद्रभिनापच्यान्मर्द्यपूर्वोक्तकैर्द्रवैः ।
 पुटन्देयंपुनर्मर्द्यमेवमष्टपुटैःपचेत् ॥ २२३ ॥
 शाल्मलीजातनिर्यासैश्चतुर्मासंचभक्षयेत् ।
 गोक्षीरैर्मर्कटीबीजैःपलाद्धंपाययेदनु ॥ २२४ ॥
 रसःकामकलाख्योऽयंरमतेस्त्रीसहस्रधा ।
 सर्वाङ्गोद्भर्तनंकुर्यात्सयवैःशाल्मलीरसैः ॥ २२५ ॥

अर्थ—पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म और सोनेकी भस्म समानभाग लेकर असगंध, गिलोय, मुसली और केलेके कन्दके रसमें एकदिन खरल कर मृदु-अग्निके द्वारा पुटपाक करे फिर पूर्वोक्त रसोंमें खरलकर पुटपाक करे। इस प्रकार आठ ८ बार पुटपाक करे । इसको प्रतिदिन ४ चारमासेभर सेमलके रसमें मिलाके खाय, ऊपरसे वापचीके बीजोंके चूर्णको गायके दूधमें मिलाकर पीवे । और सेमलके रसमें जौका चूर्ण मिलाकर उबटन करे। इस रसके प्रभावसे १००० सहस्र बार स्त्रीके पास जानेको समर्थ होजाताहै ॥ २२२—२२५ ॥

अथ पूर्णेन्दुरसः ।

शाल्मल्युत्थैर्मर्द्यपलैकंमृतगंधकम् ।
 पृथक्खल्लेत्रिसप्ताहंतद्रवैर्मर्द्यगंधकम् ॥ २२६ ॥
 एकीकृत्यघृतैश्चार्द्धमर्दयेत्तच्चगोलकम् ।
 यामद्वयंपचेदाज्येवस्त्रेवद्धातुपाचयेत् ॥ २२७ ॥
 दिनैकंशाल्मलीद्रावैःपिण्डंयामद्वयंपचेत् ।
 मर्दयित्वापुनःपिण्डंनागवह्न्याचवेष्टयेत् ॥ २२८ ॥
 निक्षिप्यकाचकुप्याश्चद्रवंदत्त्वातुशाल्मलम् ।
 पलैकपरिमाणन्तुपचेद्यामद्वयन्ततः ॥ २२९ ॥
 बालुकायन्त्रमध्येतुद्रवेजीर्णेसमुद्धरेत् ।
 द्विगुंजंभक्षयेत्प्रातर्नागवह्नीदलान्तरे ॥ २३० ॥
 मुसलींससितांक्षीरैःपलैकांपाययेदनु ।
 रसःपूर्णेन्दुनामायंसम्यग्वीर्यकरोभवेत् ॥ २३१ ॥

अर्थ—पारा और गंधक ४ चार तोले लेकर सेमलके रसमें खरल करे और एक खरलमें अलग गंधकको २१ इक्कीस दिनतक खरल करके पूर्वोक्तमें मिलादेवे, पश्चात् घीमें मर्दन कर गोला बना दो प्रहर घीके साथ पकाकर पिण्डकी समान बनादेवे, फिर उस पिण्डको वस्त्रमें बाँधकर सेमलके रसमें १ एकदिन पकावे । तत्पश्चात् सेमलके रसमें फिर खरल कर फिर पानोंमें वेष्टितकर काँचकी कुप्पीमें भरके १ एक पल सेमलके रसके साथ २ दोप्रहरतक बालुकायंत्रमें पकालेवे । प्रतिदिन २ दो रत्ती पानमें रखके खाय और ऊपरसे मुसलीके चूर्णको दूधके साथ बूरा मिलाकर पीवे । इससे अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि होतीहै और अत्यन्त स्त्रीसंसर्गकी इच्छा होतीहै ॥ २२६-२३१ ॥

अथ मदनोदयरसः ।

शुद्धमूतंसमंगंधरक्तोत्पलपलद्रवैः ।

याममर्द्यपुनर्गन्धपूर्वादूर्ध्वविनिक्षिपेत् ॥ २३२ ॥

पंचगुंजासितासार्द्धरसोऽयं मदनोदयः ।

समूलं शत्रुबीजश्च मुसलीशर्करासमम् ॥ २३३ ॥

गवाक्षीरेण तत्पेयं पलाद्धं मनुपानकम् ॥ २३४ ॥

तैलपक्वंच चटकं खादेद्रोजनपूर्वतः ।

भोजनान्ते पिबेत्क्षीरमजस्रं रमतेऽवलाम् ॥ २३५ ॥

अर्थ—पारा और गंधक समान भाग लेकर लाल कमलके पत्तोंके रसमें एक प्रहरतक खरल करे, पश्चात् पूर्व गंधकसे आधा गंधक और लेकर मिलादेवे, तीन तीन रत्तीकी गोलियां बनालेवे । इसको बूरामें मिलाकर खाय, पश्चात् जड़ समेत भांग मुसली और बूरा एकत्र दूधके साथ सेवन करे । इस औषधिको खाकर भोजनके पूर्व तेलमें भुना हुआ चिडेका मांस और भोजनके अंतमें दूधको पीवे ॥ २३२-२३५ ॥

अथ वसन्ततिलकोरसः ।

हेम्नोभस्मकतोलकंद्विगुणितं लौहास्त्रयः पारदा-

श्चत्वारो नियतन्तुवङ्गयुगलंचैकीकृतं मर्दयेत् ।

मुक्ताविद्रुमयोरसेनरत्नगोकण्टवासेक्षुणः ।

सर्ववन्यकरीषकेण सुदृढं तप्तं पचेत्सप्तधा ॥ २३६ ॥

कस्तूरीघनसारमर्दितरसः पश्चात् सुसिद्धो भवेत् ।

कासश्वाससपित्तवातकफजित्पांडुक्षयादीन् हरेत् ॥ २३७ ॥

अर्थ—सोनेकी भस्म २ दो तोले, लोहेकी भस्म ३ तोले, पारेकी भस्म ४ चार तोले, वंगकी भस्म २ दो तोले, मोतीकी भस्म २ दो तोले और मूंगेकी भस्म २ दो तोले इनको एकत्र गोखुरू, अडूसा और ईखके रसमें खरल कर अरनेउपलोंकी आँचसे ७ सातवार पकाकर पश्चात् कपूर और कस्तूरीके साथ खरल करे । इसको यथायोग्य अनुपानकेसाथ सेवन करनेसे—खाँसी, श्वास, पित्त वात—कफ, पाण्डु और क्षयादि रोगोंको क्षय करैहै ॥ २३६—२३७ ॥

अथ धात्रीलौहम् ।

धात्रीफलस्यचूर्णन्तुभावयेत्रिफलाजले ।

एकविंशतिवाराणिशोधयेच्चपुनःपुनः ॥ २३८ ॥

पलैकंभक्षयेन्नित्यंसिताक्षीरंपिबेदनु ।

कामयेत्स्त्रीशतंनित्यंधात्रीलौहप्रभावतः ॥ २३९ ॥

अर्थ—आमलोंके चूर्णको त्रिफलेके काथमें २१ इक्कीसवार भावना देकर पश्चात् चौथाई भाग लोहा मिला लेवे, इसको सहत और घृत तथा बुरामें मिलाकर चार तोले खाय पश्चात् दूधमें बूरा मिलाकर पीवे तो—नित्य १०० मौ स्त्रियोंसे विषय करनेकी शक्ति उत्पन्न होजातीहै ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अथ चन्द्रोदयरसः ।

पलंमृदुस्वर्णदलंरसेन्द्रात्पलाष्टकंषोडशगंधकस्य ।

शोणैःसुकार्पासभवप्रसूनैःसर्वविमर्द्याथकुमारिकाद्भिः २४०

तत्काचकुम्भेनिहितंप्रगाढंमृत्कर्पटैस्तदिवसत्रयञ्च ।

पचेत्क्रममाग्नौसिकताख्ययन्त्रेततोरसःपल्लवरागरम्यम् २४१

संगृह्यचैतस्यपलंपलानिचत्वारिकर्पूररजस्तथैव ।

जातीफलंसोषणमिन्द्रपुष्पंकस्तूरिकायाइहशाणएकः २४२

चन्द्रोदयोऽयंकथितोऽस्यमाषःभुक्तोहिबल्लीदलमध्यवर्ती ।

मदोन्मदानांप्रमदाशतानांगर्वाधिकत्वंश्लथयत्यवश्यम् २४३

अर्थ—नरम सोनेके पत्र ४ चार तोले, शुद्ध पारा ८ आठपल और शुद्धगंधक १६ सोलह पल तीनोंको एकत्र पीसकर नरमावाडीके रसमें और घीकुवारके रसमें खरल करके सुखा लेवे, फिर आतसी सीसीमें भर उपरसे मिट्टी चढ़ाकर धूपमें सुखा लेवे, पश्चात् बालुकायंत्रमें रखकर तीन दिनतक क्रमसे मंद, मध्य और तेज अग्नि देवे तो यह रस लाल वर्ण होजातीहै । यह चंद्रोदय ४

चार तोले, भीमसेनी कपूर ४ चार पल, जायफल, मिरच, लोंग और कस्तूरी प्रत्येक चार चार मासे, इनको एकत्र पीसकर एक मासे पानमें रखके खाय, इसके प्रभावसे मदोन्मत्त सैकड़ों स्त्रियोंके गर्वको इकला मनुष्य दूर करदेताहै । तथा सर्वप्रकारके बली पलितादि रोग दूर होतेहैं ॥ २४०-२४३ ॥

अथ शृङ्गाराभ्रम् ।

शुद्धंकृष्णाभ्रचूर्णाद्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्
कर्पूरं जातिकोपंसजलमिभकणातेजपत्रं लवंगम् ।
मांसीतालीशचोचंगजकुसुमगंधातकीचेतितुल्यं
पथ्याधात्रीविभीतंत्रिकटुचपृथक्त्वर्द्धशाणं द्विशाणम् २४४
एलाजातीफलाख्यां क्षितितलविधिना शुद्धगन्धांश्चमतोलं
तोलाद्धंपारदंचप्रतिपदनिहितं पिष्टमेकत्रामिश्रम् ।
पानीयेनैवकार्यापरिणतचणकास्विन्नतुल्याश्चवत्स्यः ।

प्रातःखादेच्चतसस्तदनुचकियच्छृंगबेरंसपर्णम् ॥ २४५ ॥

पानीयं शीतमन्तेध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान् ।

दीर्घायुः काममूर्तिर्जितबलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् २४६ ॥

अर्थ—शुद्धकृष्णाभ्रकका चूर्ण दोपल, कपूर, जावित्री, सुगंधबाला, गजपीपल, तेजपात, लोंग, बालछड, तालीशपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ और धायके फूलोंका रस प्रत्येक चार ४ मासे, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येकका चूर्ण दो मासे, इलायची और जायफल प्रत्येकका चूर्ण आठ ८ मासे शुद्धगंधक, १ एक तोला और शुद्धपारा आधा तोला, सबको एकत्र पीसकर पानीमें भीजेहुए चनेकी बगवर गोली बनालेवे, प्रतिदिन प्रभातके समय १ एक गोली खाय, पश्चात् अदरक और पानको खावे और जल पीवे । इसके प्रसादसे—कास, यक्ष्मा, शोथादि सर्वप्रकारके रोग नष्ट होकर शरीरकी कान्ति, लावण्य, पुष्टि और बलवीर्यादिकी वृद्धि होतीहै ॥ २४४-२४६ ॥

अथ शुक्रस्थितिकरादियोगः ।

सिद्धंकुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते ।

चरणाभ्यंगे पुंसां बीजस्तम्भं दृढं लिंगम् ॥ २४७ ॥

कर्पूरगोपाङ्गननीरलेपात् स्त्रीणां परं स्वावणमेव पुंसाम् ॥

पिष्टास्थितास्तम्भनमेव लिंगे वदन्ति वैद्या इति चित्रमेतत् २४८ ॥

मेदसाक्षौद्रयुक्तेनवराहस्यप्रलेपितम् ।

सम्यग्लिंगंरतान्तेऽपिस्तब्धताञ्चनमुञ्चति ॥ २४९ ॥

नीलोत्पलसितपंकजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन ।

सुरतेसुचिरंरमतेदृढलिंगंनाभिविवरेण ॥ २५० ॥

नीलोत्पलसितसरसिजयोःकेशरम् ।

एभिर्नाभिलिस्वाबीजानांधारणाच्चिरंरमते ॥ २५१ ॥

श्वेतकोकिलनेत्रांग्रिभुजेशिरसिवाधृतः ।

शाखोटबीजंत्वैलंवातिलकाद्वीजधारणम् ॥ २५२ ॥

श्वेतकोकिलकाश्वेतकुलियाख्यस्यमूलकम् ।

श्वेतक्षुद्राजटाबिम्बीमार्जारास्थिच्युतास्थिरा ॥ २५३ ॥

करोतिनियतंतद्विबीजस्तम्भंदृढध्वजम् ।

श्वेतक्षुद्राश्वेतबृहतीस्थिराशालपर्ण्यपि ॥ २५४ ॥

अर्थ—पकायेहुए कुसुमके तेलमें वनककोडेके चूर्णको मिलाकर दोनों पावोंमें मलनेसे मनुष्योंका वीर्यस्तम्भ और लिंगदृढ़ होजाताहै । कपूर, अनन्तमूलके बीज और शुद्धपारेको एकत्र गोपांगनाके जलमें मिलाकर उससे लिंगको धोवे तो वीर्यस्तम्भहो और योनिमें लगावे तो योनि द्रवीभूत होजातीहै । सुअरकी चरबीको सहतके साथ मिलाकर लेपकरनेसे मैथुनके अंतमेंभी लिंग नहीं बैठताहै । नीलोत्पल और सफेद कमलकी केशरको पीसकर सहत और बूरा में मिलाकर नाभिके छिद्रपै प्रलेप करनेसे अनेकवार मैथुन करनेकी सामर्थ्य और लिंग दृढ़ होजाताहै । सफेद तालमखानेकी जड़को चरणमें बाहुमें अथवा मस्तकमें बाँधनेसे, या सिहोंडेके बीजोंका तेल, या तिलकके बीजोंको धारण करनेसे वीर्यस्तम्भ होताहै । सफेद कटेरीकी जड़, कन्दूरी, बिलावकी हड्डियोंका चूरा और शालिपर्णी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे वीर्यस्तम्भ और लिंग दृढ़ होजाताहै ॥ २४७—२५४ ॥

अथाऽन्येपिवीर्यस्तम्भार्थमुपायाः ।

एकंकरओदरकृतसधवलशरपुंखपारदोनियतम् ।

धारयतिबीजवेगंपुंसावदनापितोयावत् ॥ २५५ ॥

सप्ताहंछागाण्डरसेस्थितंकरभवारुणीमूलम् ।
 गाढोद्वर्त्तनविधिनालिंगस्तम्भंतथाकुरुते ॥ २५६ ॥
 बीजंबृहत्करंजस्यकृतमन्तःसपारदम् ।
 हेम्रासुवेष्टितंनस्यंवदनेबीजधृङ्मतम् ॥ २५७ ॥
 महासुगन्धिकामूलंकटीस्थंबीजधृङ्मतम् ॥ २५८ ॥
 श्वेतार्कमूलवर्त्यावराहमेदःप्रदिग्धयादीपः ।
 स्तब्धंपुरुषवरांगंधारयतिबीजंशर्वरींसकलाम् ॥ २५९ ॥
 डुण्डुभोनामयःसर्पःकृष्णवर्णस्तमाहरेत् ।
 तस्यास्थिचकटौबद्ध्वानरोवीर्यनमुञ्चति ॥ २६० ॥

चरणयुगलेपेनस्तम्भयतिपुरुषबीजयोगो-
 ऽयंयामिनींसकलाम्।आजंवज्रीक्षीरंलज्जालुमूलं पिष्ट्वा-
 चरणयुगलेपेन सेतुरिव तोयवेगं धारयति पुरुषबीजम् ।

अर्थ—पारे और शरफोंकेको कांजुवेके भीतर रखकर जबतक मुखमें धारण-
 किये रहेगा तबतक वीर्य नहीं छूटेगा।इन्द्रायणकी जड़को बकरेके अण्डकोषोंके
 रसमें मिलाकर उबटन करनेसे लिंगस्तम्भ होताहै । बृहत्करंजके फलके भीतर
 पारेको रख स्वर्णसे वेष्टितकर मुखमें धारण करनेसे वीर्यस्तम्भ होताहै । नकुल
 कंदकी जड़को कटिमें बाँधनेसे अथवा सफेद आककी रुईकी बत्ती बनाकर
 सुअरकी चरबीमें मिलाकर दीपक जलावे तो सम्पूर्णगात्रि वीर्यस्तम्भ रहताहै ।
 डुण्डुभ नामवाले काले साँपकी हड्डीको कटिमें बाँधनेसे वीर्य नहीं छूटताहै ।
 बकरीका दूध, थूहरका दूध और गायका घी, एकत्र मिलाकर दोनों पावोंमें
 लेपकरनेसे बहुत देरतक वीर्यस्तम्भ रहताहै । बकरीका दूध, थूहरका दूध,
 और लज्जावंती, इन तीनोंको एकत्र पीमकर दोनों पाओंमें लेप करनेसे बहुत
 देरतक वीर्य रुकताहै ॥ २५५-२६० ॥

अथ रतिवल्लभगुटिका ।

नागवल्लीदलद्रावैःसप्ताहंशुद्धसूतकम् ।
 मर्दयेद्रावयेदम्लैश्चतुर्निष्कप्रमाणतः ॥ २६१ ॥
 विषतुण्डगतंसूतंविषेणापिनिरोधयेत् ।
 ततःसूकरमांसस्यगर्भेक्षिष्वातुशोधयेत् ॥ २६२ ॥

सन्ध्याकालेबलिंदत्वाकुण्डंबलिसंयुतम् ।

ततश्चुह्यामयःपात्रेतैलेधुस्तूरजेपचेत् ॥ २६३ ॥

क्षिप्वावंशानलेपाच्यंतादृशंमांसपिष्टकम् ।

सन्ध्यामारभ्यमन्दाग्रौयावत्सूर्योदयोभवेत् ॥ २६४ ॥

हठाज्जागरणंकुर्यादन्यथानैवसिध्यति ।

प्रातरुत्थायगुटिकांक्षीरभाण्डोविनिक्षिपेत् ॥ २६५ ॥

क्षीरंसापिबतिक्षिप्रंजायतेप्रत्ययोमहान् ।

रतिकालेमुखेधार्यागुटिकावीर्यधारिणी ॥ २६६ ॥

क्षीरंपित्त्वारमेन्नारीयथाकामसुखार्थिनः ।

मुखस्थागुटिकायावत्तावद्वीर्यस्यरोधिनी ॥ २६७ ॥

अर्थ—४ चार निष्क शुद्धपारेको नागरपानोंके रसमें खरलकर अम्लवर्गमें द्रावित कर, पश्चात् विषतुण्डमें रखकर विषसे बंद करदेवे पश्चात् सुअरके मांसमें स्थापन कर शुद्ध करे । फिर संध्याके समय मुरगेको मारकर मुरगेके मांसके साथ इसको लोहेके पात्रमें धतूरेके तेलके द्वारा पकावे, पश्चात् बाँसोंकी मृदु अग्निके द्वारा संध्यासे तडके तक पकावे, फिर प्रातःकाल उठकर गोली बना दूधके बासनमें गरदेवे, जब वह गोली दूधको पीलेवे, तब काममें लावे मैथुनके समय जबतक इसगोलीको मुखमें धारण किये रहेगा तबतक वीर्य नहीं छूटेगा ॥ २६१-२६७ ॥

अथाहिफेनादियोगः ।

अफेनजातीफलयोःप्रत्येकंरक्तिकात्रयम् ।

कर्पूरस्यचरत्तयेकासप्तच्छदसुमस्यच ॥ २६८ ॥

पंचरक्तिप्रमाणन्तुग्राह्यमिद्राशनस्यच ।

मासकञ्चचतुर्ग्राह्यमधुनालेहउत्तमः ॥

धार्यकदापिनोवीर्यरमेत्स्त्रीणांशतानिच ॥ २६९ ॥

अर्थ—अफीम और जायफल, प्रत्येक ३ तीन रत्ती, कपूर १ रत्ती, सतवनके फूल ५ रत्ती और भाँग चार ४ मासे, इन सबको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाके गोली बनालेवे जबतक गोलीको-मुखमें धारण किये रहेगा तबतक वीर्य नहीं छूटेगा, चाहे सौ स्त्रियोंसेभी रमण करे ॥ २६८-२६९ ॥

अथ स्थूलीकरणम् ।

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलकल्कसाधितंसाधु ।
कटुतैलमर्दनवशात्कुरुतेलिङ्गं हिवाजिलिङ्गाभम् २७० ।
अश्वगंधावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ॥
स्तनलिङ्गकर्णपालीवर्द्धनं प्रक्षणादपि ॥ २७१ ॥
भल्लातकबृहतीफलनलिनीदलासिन्धुजन्मजलशूकैः ।
माहिषनवनीतेन च करस्मिते सप्तदिनमुषितैः ॥ २७२ ॥
मूलहयगंधायामहिपीमलमलितपूर्णमवालिसम् ।
भवतिलशुक्रतमपितद्रासभल्लिगंध्रुवंपुंसाम् ॥ २७३ ॥

अर्थ—सरसांका तेल ४ चारसेर, जल १६ सोलहसेर और कल्कके लि
भिलावे; कटाईके फल और अनार, यह सब १ एकसेर ले यथाविधिसे तेलव
पकाकर लिंगपे मर्दन करनेसे लिंग अश्वकी समान होजाताहै । तिलकातेल
चारसेर, दूध १६ सोलहसेर, तथा कल्कके लिये असगंध, शतावर, कुट, बा
छड़ और बृहतीके फल, यह सब १ एकसेर ले यथा विधिसे तेलको सिद्धव
मर्दन करनेसे स्तन, लिंग और कर्णपाली बढ़जातीहैं । भिलावे, बृहती फ
कमलपत्र, संधानोन और जलशूक, इन सबको समान भाग लेकर भैस
नवनीतके साथ मिलाकर ७ सातदिन तक रक्खा रहनेदेवे, पहले असगंध
जड़ और भैसका गोबर एकत्र मिलाकर लिंगपे लेप करे, पश्चात् पूर्वोक्त रक्
डूबा सातदिनका चामी लेपकरे तो लिंगस्थूल होजाताहै ॥ २७०—२७३ ॥

अथ वशीकरणार्थमुपायाः ।

माहिपंनवनीतञ्चकुष्ठंचमधुयष्टिका ।
सौभाग्यं भगलेपेन दासवच्च भवेत्पतिः ॥ २७४ ॥
निम्बकाष्ठस्य धूपेन धूपयित्वा भगंस्त्रियः ।
सुभगाः स्युः पतिस्तासां दासवद्भजते ध्रुवम् ॥ २७५ ॥
सत्यं स्वार्त्तवशो णितभाविनगोरोचनारचिततिलका ॥
नारीयं पश्यति पुरुषं तंतं वशीकुरुते ॥ २७६ ॥
यदि सहदेवामूलं ग्रहणे संगृह्य रोचनापिष्टम् ।
तत्कृततिलकानारीगुरुकुलमपि विकलतानयाति २७७ ॥

चतुर्दशीभूमिजवारयोगेविलुप्तसंपुष्पितसर्षपंयः ।

संपिष्यहस्तौपरिलिप्ययस्याःसन्दर्शयेत्सातदृतेनजीवेत् २७८

रतिकालेनिजंशुक्रं गृहीत्वावामपाणिना ।

वामंकान्तापदंलिप्त्वाभवेत्तस्याःप्रियोध्रुवम् ॥ २७९ ॥

सैन्धवन्तुमहास्वच्छंपारावतमलंमधु ।

एभिलिप्तन्तुलिङ्गवैकामिनीवशकृद्रवेत् ॥ २८० ॥

अर्थ—भैंसका घी, कूठ और मुलेठी, इनको एकत्रपीसकर भगमें प्रलेप करनेसे अथवा नीमकी लकड़ियोंकी भगमें धूपदेकर पतिकेसाथ रमण करे, इससे निश्चय स्त्रीके वशमें पति होजाताहै। स्त्री अपने आर्त्तवमें गोरोचनको भावना देकर मस्तकपै तिलक लगाकर जिस जिस मनुष्यको देखे, वही वही मनुष्य निश्चय वशीभूत होजातेहैं। सहदेवीकी जडको ग्रहणके समय उखाड़ गोरोचनके साथ पीसकर उससे कपालपै तिलक लगानेसे सम्पूर्ण मनुष्य वशमें होजातेहैं। मंगलवार चौदशकेदिन फूलीहुई सरसोंको पीस हाथोंमें लेप करके जिसस्त्रीको देखे, वह स्त्री निश्चय मनुष्यके वशमें होजातीहै। पति अपने शुक्रको बाँधे हाथमें लेकर मैथुनके समय स्त्रीके बाँधे पाँवमें लेप करदेवे तो वह स्त्री निश्चय पतिपरायणा होजातीहै। संधानोन, कबूतरकी बीट और सहत एकत्र मिलाकर लिङ्गपै लेपकर मैथुनकरनेसे निश्चय स्त्री वशीभूत होजातीहै ॥ २७४-२८० ॥

अथान्येऽपिवशीकरणयोगाः ।

अपराजिताशिखांकट्यानीलोत्पलसमन्विताम् ।

ताम्बूलंसहभावेनवशीकरणमुत्ततम् ॥ २८१ ॥

यदाब्रह्माहिनाभेकःसशब्दोगिलितोमनाक् ।

तदादण्डेनसन्ताड्यच्छायाशुष्कन्तुकारयेत् ॥ २८२ ॥

पृथग्नूतनपात्रस्थौदग्धौभस्मत्वमागतौ ।

एषकापालिकायोगो गच्छन्तमनुगच्छति ॥

अनेननिहतानारीक्रमादायातियातिच ॥ २८३ ॥

अर्थ—अपराजिताकी जडको नीलोत्पल और ताम्बूलके साथ कटिमें बाँधनेसे निश्चय स्त्री वशीभूत होजातीहै। ब्रह्मसर्प जिस समय भेंढकको आधा निगल गया हो और आधा बाहर हो, उस समय उस भेंढकसमेत सर्पको लाठीसे मार छायामें सुखालेवे, फिर भेंढकको उसके मुखमेंसे निकालकर दोनोको अलग

अलग पात्रमें रखके जलादेवे, इस औषधिको सेवनकर जिस स्त्रीका दर्शनकरे, वह स्त्री अवश्य वशीभूत होजातीहै ॥ २८१-२८३ ॥

अथ पुनरपि वशीकरणयोगाः ।

सप्तदलमल्लिकामूलं पुष्योद्धृतं ताम्बूलेन भक्षणान्नारी व-
श्याभवेत् । पुष्योद्धृतं दण्डोत्पलमूलं भक्षणात्तथा । शुनो
जिह्वां संगृह्य शंखचूर्णेन तिलकं तेन जगन्नारी वश्या स्यात् ।

गोरोचनासवीर्यश्चमूलं दण्डोत्पलस्य च ।

ताम्बूलं भक्षणे देयं प्रमदारसकारकम् ॥ २८४ ॥

कर्णचक्षुर्मूलं चैव तथा दन्तमूलं पुनः ।

स्वरेतसातु संपिष्टं भक्षणाद्वनितावशम् ॥ २९५ ॥

गोरोचनाप्रियंगुश्च कुनटी नागकेशरम् ।

पुष्ये चाञ्जनयोगे नरनारी वशं भवेत् ॥ २८६ ॥

गोरोचनारोहितपित्तकुडवकटुतैले भावयित्वा मुखप्रक्ष-
णाज्जगद्वश्यम् । दण्डोत्पलमूलं पुष्योद्धृतं गोरोचनातिल-
केन सर्वजनप्रियः स्यात् । पुष्येनोद्धृतं सुदर्शनमूलं करे
बद्ध्वा जगज्जनप्रियः स्यात् ।

अर्थ-पुष्यनक्षत्रमें मल्लिकाकी जड़को उखाड़लावे, पश्चात् पीसकर पानके साथ खानेसे, अथवा पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ीहुई दण्डोत्पलकी जड़ खानेसे स्त्री वशमें होतीहै । कुत्तेकी जिह्वाको शंखके चूनेके साथ जलमें पीसे, इसका तिलक लगाकर जिस स्त्रीको देखे वह स्त्री अवश्य वशमें होजातीहै । गोरोचन, अपना वीर्य और दण्डोत्पलकी जड़ एकत्र पीसकर पानके साथ स्त्रीको खानेको देवे तो निश्चय वशीभूत हो । कानका मूल, नेत्रका मूल और दाँतोंका मूल वीर्यमें पीसकर जिस स्त्रीको खिलावे, वह तत्काल वशमें होजातीहै । गोरोचन, फूलप्रियंगु, मैनशिल और नागकेशर इन सबको एकत्र पीसकर अंजन लगानेसे नर और नारी दोनों वशीभूत होजातेहैं । आधसेर कडवेतेलमें गोरोचन और रोहितके पित्तको भावना देकर मुखपर मालिश करनेसे सब संसार वशमें होजाताहै । पुष्यनक्षत्रमें उखाड़ीहुई दण्डोत्पलकी जड़को गोरोचनके साथ पीसकर तिलक लगावे, जिसको देखे वह अवश्य वशमें होय । पुष्यनक्षत्रमें सुदर्शनकी जड़को उखाड़कर हाथमें बाँधनेसे सर्वजगत्को प्रिय लगताहै ॥ २८४-२८६ ॥

अथ द्रावणम् ।

मनःशिलावचाकुष्ठसैन्धवञ्चपुनस्तथा ।

मधुनालेपयेल्लिङ्गं द्रावयेत्कामिनीजनम् ॥ २८७ ॥

टंकणं मधुना युक्तं सुपिष्टं धारयेद्बुधः ।

तेन लेपेन गुह्यस्य नारीणां द्रावणं ध्रुवम् ॥ २८८ ॥

मूलञ्च काकमाच्याश्च पुण्येणोद्धृत्य यत्नतः ।

ताम्बूलेन समं स्त्रीणां द्रावणं भक्षणादपि ॥ २८९ ॥

शैलजंकटुतैलं च नवनीतं च माहिषम् ।

एतेन भर्दयेल्लिङ्गं मर्दनादश्ववद्भवेत् ॥ २९० ॥

तथा पुनश्चाश्वगंधाजटामांसीकुष्ठञ्चैव ।

माहिषनवनीतं च लेपाद्धजविवर्द्धनम् ॥ २९१ ॥

अर्थ—मैनशिल, वच, कूठ और सैन्धानोन इनको सहतमें पीस लिंगपै लेपकर मैथुन करनेसे शीघ्र ही स्त्रीकी योनि द्रावित होती है। सुहागेको सहतमें पीसकर मुखमें रखलेवे और कुछ थोड़ासा स्त्रियोंके गुह्यदेशमें प्रलेप करदेवे तो मैथुन करते ही स्त्रियोंकी योनि द्रावित होजाती है। मकोयकी जड़ पुण्यनक्षत्रमें उखाड़ पानेके साथ स्त्रियोंको खिलावे तो निश्चय स्त्रियोंकी योनि द्रावित होजाती है। भूरिछरीला, कड़वातेल और भैंसके नौनीधीकी लिंगपै मलनेसे अथवा असंगंध वालछड कूठ और भैंसका माखन इनको एकत्र पीसकर लिंगपै प्रलेप करनेसे लिंग घोडेकी समान बड़ा होजाता है ॥ २८७—२९१ ॥

अथेन्द्रियोत्थानपतनार्थमुपायाः ।

शृंगादृषस्य पतिता पतनक्रमेण

छत्रीसताडकजटावरिताडबीजम् ।

पिष्ट्वा प्रलिम्पति वधूरिहयस्य लिङ्गं

तस्याङ्गनास्तनरतौ पतितो ध्वजः स्यात् ॥ २९२ ॥

गोरोचना सहित खञ्जन युग्मचूर्ण

यो नौ निधाय रमते मद नोत्सवेया ।

तस्याः पतिः कथमिहा परकामिनीषु

स्यात्सर्वदक्षिणतः द्धजकान्तमूर्तिः ॥ २९३ ॥

उद्धाधोमुखगस्त्रीगोशृंगस्यचूर्णयुगलेन ।

योनिगतेनजलिंगोत्थानंपतनञ्चस्यान्नियतम् ॥ २९४ ॥

उद्धाधो शृंगयुगलेनः यथाक्रमं लिंगोत्था-
नं पतनञ्च । ताम्रचूर्णं बलीवर्दस्य शृंगाग्रं

विघृष्य तेन लेपाद्ध्वलिंगस्य ध्वजपतनोत्थाने ।

कटुतैलभावितञ्चटकणकसैन्धवं वापि ।

तत्रक्षिपतिरतान्तेसततंतमादितः पथ्यम् ॥ २९५ ॥

धात्र्यंजनाभयाचूर्णतोयपीतरंजोहरेत् ।

शेलुच्छदमिश्रपिष्टभक्षणञ्चतदर्थकृत् ॥ २९६ ॥

अर्थ—बैलके सींगकी पतितजटा और बीजताडकको एकत्र पीसकर लिंगपै प्रलेप करनेसे लिंग उठता नहीं है । गोरोचन और खंजनका चूर्ण करके योनिमें रखके पुरुषके साथ मैथुनकरे इससे लिंग उठता नहीं है । गायके सींगको बारीक पीसकर लिंगके ऊपर लेपकरे तो लिंग खड़ा होजाय और जो नाँचेके भागमें प्रलेप करे तो लिंग बैठ जाय । तबिके चूर्ण और बैलके सींगके ऊपरका भाग दोनोंको बारीक पीसकर लेप करे तो पतित लिंग खड़ा होजाय । मैथुनके अन्तमें कड़वे तेलमें सुहागे अथवा सेंधेनोनको भिजोकर लेप करे तो लिंगोत्थापन हो । आमलोंका चूर्ण हरडका चूर्ण और रसोतका चूर्ण एकत्र जलके साथ पीनेसे, अथवा लिसोडिके पत्तोंमें पिट्टीमिलाकर भक्षण करे तो स्त्रियोंका रज बन्द होता है ॥ २९२-२९६ ॥

अथ पुष्पप्रकाशनाप्रकाशनाद्यर्थमुपायाः ।

यावन्त्यबलाचम्पकंवारिणापिबति ।

नभवतिकुसुमतस्यानियतंतावन्तिवर्षाणि ॥ २९७ ॥

वेणुतरुबीजकल्कंकुरुतेशारगुडयुतोगिलितः ।

अपगतकुसुमांकुरुतेघनतुङ्गकुचामपिप्रमदाम् ॥ २९८ ॥

जरयाचिन्तयाशुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्मणात् ।

६ यंगच्छत्यनशनात्स्त्रीणामतिनिषेवणात् ॥ २९९ ॥

क्षयाद्भयादविश्रान्ताच्छोकात्स्त्रीदोषदर्शनात् ।

नारीणामभिसंगाद्वा अभिघातादसेवनात् ॥ ३०० ॥

अतिव्यवायशीलोयोनचवाजिक्रियारतः ।

असाध्यं जायते षण्डकैर्व्यतदपरं स्थितम् ॥ ३०१ ॥

तोयांगलेपशिशिरातपशीतवाता-
स्ताम्बूलसोमकरशीतरसेक्षुभक्ष्याः ॥

स्नानञ्च दुग्धमधुमूलफलानि निद्रा
सेव्यानि कामुकजनैः सुरतावसाने ॥ ३०२ ॥

असेवनान्मेहमेदोग्रन्थिरग्नेश्च मार्दवम् ।

इन्द्रियाणाञ्च जडता प्राप्यते यौवने जनैः ॥ ३०३ ॥

योगान्संसेव्यवृष्यान्संसितमथ पयः शीतलं चाम्बुपीत्वा
गच्छेन्नारीं मुरूपां स्मरशरतरलां कामुकः कामदेवः

यामेतुय्ये प्रकृष्टा अपगतसुरतः संस्वपेन्नित्यनित्यं

कांताः कान्ताङ्गसङ्गादसकृदपिनरोधातुवैषम्यमेति ३०४

अर्थ—स्त्री जितने चम्पाके फूलोंको जलमें पीसकर पीवे, उतने वर्ष उसके पुष्प प्रकाशित नहीं होता है। विष्णु वृक्षके बीजोंकी छालके क्षारको गुडके साथ भक्षण करे तो स्त्रियोंका पुष्प प्रकाशित होता है और दोनो स्तन पुष्ट होजाते हैं। जरा, चिन्ता, व्याधि, अधिक कार्य और भोजन नहीं करनेसे तथा अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे शुक्रका क्षय होता है। शुक्रक्षय, भय, परिश्रम, शोक, स्त्रियोंके दोषदर्शन, अधिक स्त्रीप्रसंग, अभिघात, बिलकुल मैथुन नहीं करना और बाजीकरणको नहीं करना, इन सबकारणोंसे मनुष्योंके नपुंसकता उत्पन्न होती है। जल अंगलेपन शिशिर, आतप, शीतलपवन, ताम्बूल, चन्द्रमाकी चाँदनी, शीतलरसोंका भोजन, ईश्वरके रसका भोजन, स्नान, दूध, मधु, मूल और फल तथा निद्रा यह सब कामी पुरुषोंको मैथुनके अंतमें अवश्य सेवन करना चाहिये, नहीं सेवन करनेसे मेह, मेदा, ग्रन्थि, मन्दाग्नि और इन्द्रियोंमें जडता उत्पन्न होती है। कामी पुरुष बुरा, दूध, शीतलजल और पुष्टिकारक द्रव्य सेवन करके तीसरे प्रहरमें मैथुनकर्म कर चौथे प्रहरमें निद्रा लेवे। चौथे प्रहरमें कदापि स्त्रीप्रसंग न करे। बारंबार स्त्रियोंके शरीरके प्रसंगसे मनुष्यकी धातु विषमभावको प्राप्त होती है २९७-३०४

इति श्रीमुरादावादीनवास्यायुर्वेदाद्वारककोषात् कलानिधि-भिषक् शालिमामवैद्य

विरचिते रसरत्नाकरे रसप्रदीपिकाख्यभाषाटीकायां मिश्राधिकारः समाप्तः ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तकमिलनेकाठिकाना—खेमराज श्रीकृष्णदास, “श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टाम्प प्रेस—बंबई.